॥ श्रीः ॥

चौखम्बा राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला
८

संस्कृत महाकाव्य की परम्परा

[कालिदास से श्रीहर्ष तक : १२ वीं शती]

लेखक
डॉ॰ केशवराव मुसलगाँवकर
एम ए (संस्कृत-हिन्दी), डी. फिल्, साहित्यरत्न

प्राक्कथन-लेखक
म० म० डॉ० वी० वी० मिराशी
भूतपूर्व प्राध्यापक एवं अध्यक्ष : संस्कृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१
१९६९

THE

CHOWKHAMBA RASHTRABHASHA SERIES

8

****

SAMSKRTA MAHĀKĀVYA KĪ PARAMPARĀ

(A Critical Study of the Epic Tradition in Sanskrit. From Kālidāsa to Śrī Harṣa : 12th Century A. D.)

By

DR. KEŚAVARAO MUSALGAONKAR

M. A. (Sans. Hindi,), D. Phil., Sāhityaratna

With a Foreword by

MM DR. V V. MIRASHI

Retired Professor and Head of the Dept. of Sanskrit, Nagpur University.

THE

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI-1 (India)

1969

"नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते"
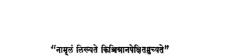
परमपूज्य पितृचरण

म० म० पं० सदाशिव शास्त्री मुसलगांवकर

जिनके चरणो मे बैठकर मैंने प्रथम शती से १२ वी शती तक के अनेक महाकाव्यो का अध्ययन किया और जिनके अमोघ आशीर्वाद पाकर यह प्रबन्ध सफल एव सम्मानित हुआ है, उनके करकमलो मे ही इस ग्रन्थ को समर्पित करता हूं।

तवाङ्के निःशङ्कं प्रथमवयसि क्रीडितवता
मुखाम्भोजान्निर्यद् यदिह परिपीतं मधु मया।
ततो यत् सन्दब्धं तदिदमुपनीतश्चरणयो
प्रमोदं स्वान्ते ते विशदयतु वात्सल्यलसिते ॥

भवच्चरणचञ्चरीक वात्सल्यभाजन पुत्र

'केशव'

FOREWORD

I have gone with great interest through Dr. K. S. Musalgaonkar's Hindi work SANSKRIT MAHAKAVYA KI PARAMPARA (Mahakavyas in Sanskrit from Kalidasa to Sriharsha). It is a comprehensive treatise dealing thoroughly with all known Mahakavyas in Sanskrit literature from the fifth to the twelfth century A. D. besides the Great Epics, the Ramayana and the Mahabharata.

In the beginning the author has discussed some general questions such as the origin and nature of poetry and has given a lucid exposition of the various definitions proposed by the different schools of poetics He has next described the principal salient features of Sanskrit Mahakavyas, tracing their development from early times In the second part of the work he has described in detail the contents of all extant Sanskrit Mahakavyas, illustrating his remarks with appropriate quotations. The work bears the stamp of a thorough and critical study of the subject

The author has made full use of all material available for the study of the subject. His attitude is critical and judgement sober I am sure that this comprehensive study of the Sanskrit Mahakavyas will be both interesting and useful to all students of Sanskrit Literature.

V. V. Mirashi

(Retired Professor and
Head of Dept. of Sanskrit,
Nagpur University).

Nagpur,
2nd October, 1969

निवेदन

मानव के व्यक्तित्व पर जहाँ एक ओर उसके वंश-परम्परा का प्रभाव होता है, वहीं दूसरी ओर वातावरण का भी। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। लेखक को संस्कृत साहित्यविद् के वश में जन्म लेने का लाभ और उसके ज्येष्ठ बन्धुओं के संस्कृत साहित्य के पठन-पाठन का उर्वर वातावरण प्राप्त है। अतः घर पर अहर्निश पठन-पाठन के अवसर पर संस्कृत साहित्य की अव्याज-मनोहर उक्तियों को सुनकर उनके प्रति जो उत्सुकता अङ्कुरित हुई थी, संस्कृत साहित्य में एम० ए० करने के पश्चात् संस्कृत साहित्य के प्रति आकर्षण एवं श्रद्धानुराग से वह पल्लवित होकर प्रौढ़ हो गई। एम० ए० (हिन्दी और संस्कृत) तथा संस्कृत परीक्षाओं के अवसर पर जब संस्कृत काव्यों का अध्ययन किया तो मन में एक प्रबल भावना हुई कि क्यों न इन संस्कृत-महाकाव्यों पर एक शोध कार्य किया जाय। क्योंकि संस्कृत महाकाव्यों में (कालिदास से श्रीहर्ष तक) कवियों की वैयक्तिक विशेषताओं की भिन्नता होने पर भी कई समानताएँ, एकसूत्रता देखने को मिलती हैं जिनमें कवियों की प्रवृत्तियों तथा सामाजिक, राजनीतिक कारणों से उत्पन्न एक निरन्तर विकासपरम्परा या परिवर्तन देखने को मिलता है। किन्तु नियति का विधान दूसरा ही था और अभिलाषा का कार्य में परिणत होना कठिन प्रतीत हुआ 'उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनोरथा।' के अनुसार भावना जागरित होती और उचित उर्वरावसर न पाकर दब जाती थी। इसी बीच श्रद्धेय गुरुवर डॉ० हरिपन्त दिवेकर, एम० ए०, डी० लिट्० के द्वारा पूज्य डॉ० बाबूराम सक्सेना (भूतपूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय) एम० ए०, डी० लिट्० के पास अपनी उत्कट अभिलाषा को व्यक्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। स्वभावतः ही दयालु डॉ० बाबूराम सक्सेना ने अभिलषित संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा विषय पर शोध कार्य करने का आदेश दिया। इसके लिए हृदय उनका सदा आभारी रहेगा। किन्तु अर्थशक्ति के अभाव में (घर से दूर) प्रयाग में २० मास ठहर कर कार्य करना पुनः असम्भव प्रतीत हुआ। अतः भाग कर गुरु-बन्धु प्रयाग निवासी डॉ० राय रामचरणजी अग्रवाल के पास जाकर अपनी स्थिति प्रकट की। बाह्य वातावरण से सद्यः प्रभावित होनेवाले कोमल लतिका-पुष्पों के विशेषज्ञ डॉ० राय रामचरणजी अग्रवाल ने मेरी भावना-लता को अच्छी तरह पहचान लिया और इसे उचित वत्सल आश्रय देकर विलीन होने से

बचा लिया। आज का यह शोध कार्य उसी भावना-लता का पल्लवित रूप है इसके लिए यह अकिंचन-हृदय उनका सदा कृतज्ञ रहेगा।

रिसर्च का विषय अपना मनोभिलषित ही मिला था, अतः इस बौद्धिक व्यवसाय में हृदय ने भी पूर्ण सहयोग दिया और सोत्साह डॉ० सक्सेना के प्रोत्साहनपूर्ण नियंत्रण में जनवरी १९५९ से मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया। एक वर्ष के पश्चात् डॉ० सक्सेना के विश्वविद्यालय की सेवा से निवृत्त होने पर पूज्य गुरुवर डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल के साधु आश्वासन एवं वरद सान्निध्य से कार्य की गति में किसी भी प्रकार की मंथरता नहीं आने पायी।

प्रस्तुत प्रबन्ध में समालोचना का मापदण्ड भारतीय और पाश्चात्य का सम्मिलित रूप रखा गया है। साथ ही प्रबन्ध के विषय में प्रयुक्त 'परम्परा' शब्द को बतलाने के लिए ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विषय को देखा है।

इस प्रबन्ध में सब मिलाकर आठ अध्याय हैं। काव्यानुशीलन के पूर्व शास्त्राभ्यास आवश्यक होने से प्रथम अध्याय में काव्यों के सामान्य सिद्धान्तों का विस्तृत रूप से विवेचन करते हुए उत्तरकालीन संस्कृत महाकाव्यों को कृत्रिम रूप देने वाले कारणों की ओर स्थान-स्थान पर सङ्केत कर अपने विचारों को भी रखा है। प्रथम अध्याय के अन्त में काव्य-विषयक पाश्चात्य और भारतीयों के समन्वित दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के हेतु एक परिशिष्ट की नियोजना की है।

द्वितीय अध्याय में—संस्कृत के महाकाव्यों में प्रयुक्त काव्य के प्रकारों (कुलक, मंदानितक) तथा काव्य के अन्य प्रकारों में संस्कृत महाकाव्य का स्वरूप स्पष्ट करने के लिये लक्षणग्रन्थकारोक्त विभिन्न काव्यप्रकारों को तुलनात्मक रीति से रखा है। साथ ही अपने दृष्टिकोण से संस्कृत के (विदग्ध) महाकाव्यों में पायी जाने वाली शैलियों के अनुसार संस्कृत महाकाव्यों को प्रधान रूप से दो शैलियों (शास्त्रीयशैली-मिश्रशैली) में विभक्त किया है।

तृतीय अध्याय में—आज प्राप्त होने वाले संस्कृत के विदग्ध महाकाव्यों के सुष्ठु-स्वरूप के पीछे उनके विकास की एक दीर्घ परम्परा छिपी हुई है। उसे स्पष्ट करने तथा विकसनशील आर्षमहाप्रबन्धकाव्यों और संस्कृत के महाकाव्यों का तात्त्विक अन्तर बतलाने के लिए महाकाव्य के उद्भव और विकास को ऐतिहासिक और तात्त्विक दृष्टिकोण से देखा है। इस अध्याय में केवल उन्हीं मतों का (पाश्चात्य और भारतीय) उल्लेख किया है जिनके विचार कुछ तर्कसंगत प्रतीत हुए। साथ ही अपनी युक्तिसंगत दृढ़ विचारधारा को भी रखा है।

चतुर्थ अध्याय में—विभिन्न लक्षण ग्रन्थों की संस्कृत महाकाव्य के स्वरूप विषयक (आत्मा और शरीर) कलात्मक मान्यताओं के द्वारा संस्कृत महाकाव्य के स्वरूप में होने वाले विकास को अङ्कित करने के लिए विभिन्न आचार्यों के महाकाव्य विषयक विचारों का तुलनात्मक परीक्षण प्रस्तुत किया है। साथ ही महाकाव्य और महाकवि के वैशिष्ट्य के विषय में अपने तर्कपूर्ण विचारों को प्रस्तुत किया है। परिशिष्ट-२ में—महाकाव्य 'एपिक' विषयक पाश्चात्य और भारतीय धारणाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया है।

पञ्चम अध्याय में—इस अध्याय के पूर्वभाग में विकमनशील आर्ष महाप्रबन्ध काव्यों की विशेषताओं की ओर सङ्केत करते हुए रामायण-महाभारत का भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से विचार किया है। साथ ही परवर्ती संस्कृत महाकाव्यों पर उनका प्रभाव तथा संस्कृत महाकाव्यों का आधार निश्चित किया है। उत्तरभाग में कालिदास के पूर्ववर्ती काव्यों का ऐतिहासिक विकास रखते हुए संस्कृत के प्रथम महाकाव्य का तर्कपूर्ण रीति से निश्चय किया है।

षष्ठ अध्याय में—संस्कृत (विदग्ध) महाकाव्य के विभिन्न प्रेरक तत्वों को रखा है। साथ ही लक्षण ग्रन्थों का संस्कृत महाकाव्यों पर क्या प्रभाव पड़ा है, इसका विचार किया है।

सप्तम अध्याय में—काव्य में परम्परा का अर्थ एवं उसके महत्त्व पर विचार करते हुए तथा संस्कृत महाकाव्य के विषय और शैली में परम्परा (विकास) अङ्कित करने के लिए उनकी विशेषताओं को विस्तारपूर्वक वर्णित किया है। निर्धारित सीमा के अन्तर्गत आने वाले संस्कृत महाकाव्यों के प्रकृति चित्रण का अध्ययन कर उसकी परम्परा (विकास) अङ्कित की है। अर्थात् वह स्वाभाविकता से (आर्ष काव्यों में वर्णित) आदर्श की ओर (संस्कृत महाकाव्यों में वर्णित) फिर आदर्श से रूढ़ी की ओर किस प्रकार बढ़ती गई है, वर्णित किया है। इसलिए हमने संस्कृत महाकाव्यों का अनुशीलन करते समय अलग से प्रकृतिवर्णन पर विचार नहीं किया है। इसी अध्याय के उत्तर-भाग में, प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में शैली के आधार पर किये हुए संस्कृत महाकाव्य के दो प्रकारों तथा उनमें आने वाले अन्य प्रकारों की स्थिति तर्कपूर्ण दृढ़ विचारों पर निश्चित की है। साथ ही उनमें उदाहरण के लिए प्रस्तुत कुछ काव्यों का भी परिचय दे दिया है।

अष्टम अध्याय में—प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में निर्धारित काव्य के दो प्रकारों में आने वाली विभिन्न शैलियों के प्रमुख महाकाव्यों का

अनुशीलन किया है। उसमें प्रत्येक काव्य का कथानक, उसका विषय वर्णन, कथानक का आधार व उसमें किये परिवर्तन, 'आदान' में पूर्ववर्ती काव्यों का उस पर क्या प्रभाव पड़ा है, साथ ही वर्ण्य विषयों तथा शैली की एकसूत्रता में हुए विकास का तुलनात्मक संक्षिप्त विवेचन, रसभावाभिव्यक्ति, वस्तुवर्णन पात्रस्वभाव की सूक्ष्म रूपरेखा तथा व्युत्पत्ति, अलङ्कार, छन्द, भाषा, शैली पर विचार किया है। इसी अध्याय के द्वितीय भाग में अन्य गौण महाकाव्यों पर भी परिचयात्मक रीति से (महाकाव्य का विकास बतलाने के लिए) विचार किया है।

आज प्राप्त होने वाले संस्कृत के विदग्ध महाकाव्यों के सुष्ठुस्वरूप के पीछे उनके विकास की एक दीर्घ परम्परा छिपी हुई है, उसे स्पष्ट करने तथा विकसनशील आर्ष महाप्रबन्ध काव्यों और संस्कृत के महाकाव्यों का तात्त्विक अन्तर बतलाने के लिए जीवन के सर्वांगीण चित्र उपस्थित करने वाले काव्य-रूप—महाकाव्य—के उद्भव और विकास को, उसके प्रेरक तत्वों—ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक—के व्यापक परिपार्श्व में देखा है। इस प्रयास में, मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसके विषय में सहृदय-पाठक ही अधिकारी हैं। किन्तु मेरा विश्वास है कि यह प्रयास, संस्कृत में महाकाव्य से सम्बन्धित समीक्षात्मक साहित्य के लिए एक देन के रूप में अवश्य ही सिद्ध हो सकेगा।

यह ग्रन्थ प्रयाग-विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए शोध-प्रबंध के रूप में लिखा गया था, और विश्वविद्यालय द्वारा सन् ६३ में स्वीकृत भी हुआ। इस अवधि में मैंने ग्रन्थ में यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन एवं परिवर्धन कर दिया है।

इस प्रबन्ध के लिखने में मैंने जिन ग्रन्थों की सहायता ली है, उन सबके प्रति मैं परम कृतज्ञ हूँ। 'महाकाव्य का उद्भव और विकास' वाले अध्याय में मुझे उन ग्रन्थों के अतिरिक्त डॉ० शम्भूनाथ सिंह के 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास' तथा संस्कृत के विदग्ध महाकाव्य के तात्त्विक और तन्त्र-विषयक विवेचन वाले अध्याय में डॉ० के० ना० वाटवे के 'संस्कृत काव्याचे पञ्चप्राण' से विशेष सहायता मिली है। इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त 'प्रकृति-वर्णन' वाले अध्याय के लिए मैंने डॉ० रघुवंश के 'प्रकृति और काव्य' (संस्कृत खंड) पुस्तक से बहुत कुछ सहायता ली है। साथ ही प्रकृति-वर्णन में उद्धृत उदाहरणस्वरूप कुछ श्लोकों का अनुवाद ग्रहण किया है। विषय को समझने में डॉ० भोलाशङ्कर व्यास के 'संस्कृत कवि दर्शन' ने भी सहायता दी है।

उक्त ग्रंथों तथा उनके रचयिताओं के प्रति हृदय विशेषरूप से आभारी है। धर्मशास्त्राचार्य श्री सीताराम शास्त्री कारखेडकर, व्याकरणाचार्य, एम० ए०, श्री नरहरि शास्त्री थत्ते, साहित्याचार्य श्री वेणीमाधव शास्त्री तथा ज्योतिषाचार्य श्री भालचन्द्र शास्त्री का अनुगृहीत हूँ, जिनसे समय-समय पर पुस्तकें भी सुलभ होती रहीं। राजकीय हिन्दी-विद्यापीठ के प्राचार्य श्री धर्मनारायण शर्मा एवं कविचक्रवर्ती, पुराणेतिहासाचार्य पं० पद्मनाभ शास्त्री भट्ट के परम आभार मानता हूँ, जिन्होंने उदारता के साथ मेरे लिये पुस्तकें सुलभ करवा दीं। परम श्रद्धेय गुरुवर्य डॉ० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल, साहित्याचार्यजी का विशेष अनुगृहीत हूँ, जिनसे समय-समय पर पुस्तकें एवं अभिलषित विचार सुलभ होते रहे हैं और अन्त में तो चौदह दिन का अपने बहुमूल्य समय में सम्पूर्ण थिसिस के देखने मे जो परिश्रम किया है, उसे कहा नहीं जा सकता। प्रो० श्रीकांत खर्डेकरजी एम० एस-सी० के लिए तो हृदय में विशेष स्थान है, जिन्होंने तन, मन, धन से सहायता पहुँचा कर कार्य की गति को बढ़ाया है।

एतावता मैंने ग्रन्थकारों एवं विद्वानों के ऋण से ग्रन्थ में यत्र-तत्र उनका उल्लेख कर मुक्ति पाने का प्रयास किया, किन्तु अपने अग्रज—डॉ० गजानन शास्त्री मुसलगावकर, एम्. ए., पी. एच-डी., साहित्याचार्य, प्राध्यापक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, जिन्होंने साहित्यिक-कार्यव्यापृत रहते हुये भी इस ग्रन्थ के लेखन कार्य मे समय-समय पर उपयोगी परामर्श दिया, साथ ही वात्सल्यभाव से ग्रन्थ की आद्यन्त अस्पष्ट टंकित पाण्डु-लिपि को स्पष्ट करने मे अथक परिश्रम किया है, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये इस भाव-विभोर हृदय के शब्द ही असमर्थ हैं।

काव्यों के समय निर्धारण में हमने डॉ० एस० के० डे० तथा कीथ के संस्कृत साहित्य के इतिहास को आधार माना है।

मुद्रण-दोष

पृष्ठ ३९० "शिशुपालवध (स)" शीर्षक के ऊपर पृ० ३८७ से प्रारम्भ "जानकी-हरण" का शेष अंश—जो "आदान" शीर्षक से प्रारम्भ होता है; वह पृ० ४०२ से ४०६ पर "हरविजय" शीर्षक से पूर्व प्रमाद वश छप गया है। विज्ञ पाठक उसे समन्वय करके पढ़ेंगे और कष्ट के लिए क्षमा करेंगे।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी
वि० सं० २०२६

—लेखक

विषयानुक्रमणिका

साहित्य—आर्ष महाकाव्य का स्वरूप—विदग्ध महाकाव्य की व्युत्पत्ति—आर्ष महाकाव्यों—रामायण-महाभारत का महत्व—आर्ष काव्य की विशेषतायें—वीर-काव्येतर आख्यान—महाकाव्य की विषय सामग्री—व कथानक रूढ़ियाँ।

१. सन् प्रथम शताब्दी	काव्य	लेखक—कवि
	१ बुद्धचरित	अश्वघोष ।
	२ सौन्दरानन्द	
४ शती का अन्त	१ कुमारसंभव	कालिदास
	२ रघुवंश	,,
५ शती	१ पद्य चूडामणि	बुद्धघोष
५—५० शती	१ किरातार्जुनीय	भारवि
७ शती का प्रथम पाद	१ भट्टि	भट्टि
८ शती	१ जानकीहरण	कुमारदास
७ शती का उत्तरार्ध	१ शिशुपालवध	माघ
९ शती का प्रथमार्ध	१ हरविजय	रत्नाकर
९ शती का पूर्व भागान्त	१ कप्फिणाभ्युदय	शिवस्वामी
१० शती का मध्यभाग	१ रामचरित	अभिनन्द
१० शती का पूर्वार्ध	१ द्विसन्धान	धनञ्जय
१० शती का उत्तरार्ध	१ राघवपाण्डवीय	कविराजसूरि
१० शती	१ रावणार्जुनीय	भट्टभीम
१००५ शती	१ नवसाहसांकचरित	पद्मगुप्त
१०६६ शती	१ दशावतारचरित	क्षेमेन्द्र
१०७६ शती	१ विक्रमांकदेव चरित	विल्हण
१०८४-११३०	१ रामचरित	संध्याकरनन्दी

॥ श्रीः ॥

संस्कृत महाकाव्य की परम्परा

(कालिदास से श्रीहर्ष तक : १२ वीं शती)

प्रथम अध्याय.

पूर्वार्ध

काव्यों के सामान्य सिद्धान्तों का विवेचन

***काव्य का सामान्य स्वरूप—**

असाधारण धर्म का कथन करना लक्षण कहलाता है[1]। उसके कथन में स्पष्ट, अन्यून, अनतिरिक्त शब्दावली का प्रयोग होना चाहिये। अतिव्याप्ति और अव्याप्ति दोषों से मुक्त लक्षण का कथन अभावात्मक या आलंकारिक भाषा में भी अपेक्षित नहीं[2]। उसकी शब्दावली सन्तुलित एवं पार्थक्यकारी विशेषता से युक्त होनी चाहिये। ऐसी स्थिति में अर्थात्, उपर्युक्त तीनों दोषों का (१) अतिव्याप्ति (२) अव्याप्ति और (३) असंभव) बिना निवारण किए काव्य तत्त्व का असाधारण धर्म बतलाना अत्यधिक कठिन कार्य रहा है। इस दुष्कर प्रक्रिया का अनुभव उन भारतीय चिन्तकों की, 'ब्रह्म' की व्याख्या या लक्षण प्रस्तुत करने की 'नेति नेति' प्रक्रिया से हो सकता है, जो अन्त में भ्रान्त-क्लान्त होकर उक्त प्रक्रिया का अवलम्बन कर बैठे। इसी कारण काव्य की परिभाषा समय समय पर विभिन्न साहित्याचार्यों द्वारा परिवर्तित व परिवर्धित होती रही है। अतः काव्य का लक्षण देने की अपेक्षा उसके सामान्य स्वरूप को बतलाते हुए व्यतिरेक मुख से काव्य का काव्येतर वाङ्मय से पृथक्त्व, उसके निर्माण के हेतु, एवं उसका उद्देश्य आदि बतलाना अधिक श्रेयस्कर प्रतीत होता है।

***मानव जीवन में वाणी का महत्त्व--**

वाणी से बद्ध किसी भी विचार धारा को यौगिक अर्थ में वाङ्मय कहा जा सकता है। किन्तु वाङ्मय के यौगिक अर्थ की अपेक्षा, रूढार्थ ग्रन्थविशेष

---

१. 'लक्षणं त्वसाधारणधर्मवचनम्, तर्क भाषा-केशवमिश्र, सम्पा० शिवराम महादेव परांजपे। द्वितीय संस्करण १९३९ पृष्ठ ७

२ टीकाकार गौरीकान्त के अनुसार,
लक्ष्यतावच्छेदकव्यापकत्वे सति लक्ष्यतावच्छेदकव्याप्यत्वम्,
अत च लक्षणस्य त्रयो दोषा भवन्ति, अतिव्याप्तिरव्याप्तिरसंभवश्चेति
पृष्ठ ४ वही।

अर्थात् ग्रन्थ-निविष्ट वाणी ही वाङ्मय अर्थ मे अधिक प्रसिद्ध है। मानवीय तरल विचारो को प्रस्तर-मूर्तिवत् चिरस्वरूप देने का श्रेय केवल वाणी और वाङ्मय को ही होता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य-कृति के सस्कार भावी जन्म मे फलीभूत होने के लिए 'लिंग देह' या कारणदेह मे अदृष्ट द्वारा एकत्र किए जाते है[1]। अत वाङ्मय, मानव जाति का लिङ्गशरीर है यह सक्षेप मे कहा जा सकता है।

मानव और मानवेतर प्राणी मे व्यवच्छेदक रेखा वाणी है। इस ईश्वर-प्रदत्त शक्ति के कारण मानव का विश्व की मानवेतर सृष्टि मे उच्चतम स्थान है। वाणी शक्ति के सहारे वह, अपना सामाजिक सगठन स्थिर रखते हुए, अपने और दूसरो के भावों विचारो का आदान प्रदान करता जीवन मे आगे बढता जाता है। समस्त मानव समाज मे स्नेह तन्तु की एकसूत्रता का निर्माण करने का श्रेय वाणी को ही है। वाणी उस ब्रह्म की सुई है तथा शब्द डोरे है। वाणी और शब्द के द्वारा उसने समस्त ससार को सी रखा है[2]। वाणी द्वारा मानव अपने अतीत को सुरक्षित रखते हुए वर्तमान कालीन ज्ञान और अनुभव द्वारा मानव सृष्टि को प्रभावित करता रहता है। मानव हृदय मे जब योग-क्षेम की कामना जागरित होती है, तो मानव-हृदय केवल स्वनिष्ठ स्वसपृक्त न रहकर परनिष्ठ या परसपृक्त हो जाता है। इस विस्तार का और स्वार्थ सम्बन्धो के सकुचित क्षेत्र से ऊपर उठने का श्रेय वाणी को है, वाणी की बौद्धिक महत्ता का प्रतिपादन करते हुए भर्तृहरि ने वाक्यपदीय मे बताया है कि शब्दो के अभाव मे ज्ञान नही हो सकता। उनसे सबद्ध होकर ही समस्त-ज्ञान शब्द से प्रतिभासित होता है[3]। उपनिषदो के अनुसार वाणी ही परब्रह्म है, इसी से समस्तभूत प्राणिमात्र जाने जाते है[4] और इसी से मनुष्य की लोक यात्रा चलती है[5]। काव्य में भी वाणी और उससे जन्य वाङ्मय का महत्व

---

१. बृहदारण्यक उपनिषद् ४।५।३, ६, २, २

२ तस्य वाक् तान्तर्नामानि दामानि, तस्येद वाचा तन्त्यानामभिर्दामभि सर्वंसितम्—ऐतरेय आरण्यक २, १, ६

३. न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके य शब्दानुगमादृते
अनुविद्धमिव ज्ञान सर्वं शब्देन भासते ॥ वाक्यपदीय १, १२४

४ सर्वाणि च भूतानि वाचेव सम्राड् ज्ञायन्ते,
वाग् वै सम्राट् परम ब्रह्म—बृहदारण्यक उपनिषद्। ४, १, २

५. वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते। दण्डी काव्यादर्श १, ३

काव्यशास्त्र के विपश्चितो से छिपा नहीं है। अन्य कलाओ में स्थापत्य, मूर्ति, चित्र आदि कलाओ मे वाणी की कोई आवश्यकता नहीं होती। यह वाङ्मय दो प्रकार का है शास्त्र और काव्य[1]। शास्त्र की उपयोगिता बतलाते हुए राजशेखर ने अपनी काव्य-मीमासा मे लिखा है कि काव्य-ज्ञान के लिए शास्त्र-ज्ञान का होना अत्यन्त आवश्यक है। जैसे दीपक के अभाव मे पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान नही हो सकता, उसी प्रकार शास्त्र-ज्ञान के बिना काव्य-ज्ञान असभव है। इसलिए काव्याभ्यास के पूर्व शास्त्राभ्यास आवश्यक है। तथापि काव्याभ्यास के पूर्व शास्त्राभ्यास की प्राथमिकता, काव्य के गौणत्व को सिद्ध नही करती[2]।

तत्वत काव्य और शास्त्र अन्तिम सत्य-शोध की दृष्टि से ज्ञान के भिन्न किंतु परस्पर पूरक साधन-द्वय हैं। उनके श्रेष्ठ कनिष्ठत्व का वाद, बीज-वृक्ष की तरह शुष्क है। वस्तुत काव्य और शास्त्र के मार्ग भिन्न भिन्न होने पर भी दोनो का लक्ष्य, मानव की प्रज्ञा-जाह्नवी के दोनों तटो के समान एक ही है। काव्यानद के उपासक आचार्य धनजय के मत मे काव्य और शास्त्र के कार्य भिन्न है। शास्त्र से काव्य का व्यतिरेक बताते हुए धनजय उन व्युत्पत्तिवादी विद्वानो को नमस्कार करते हैं, जो आनन्द को स्रवित करने वाले काव्य (रूपक)का भी इतिहास पुराण की तरह, व्युत्पत्तिमात्र फल मानते हैं[3]। शास्त्र, अनन्ततत्व का प्रत्यय यदि ज्ञान द्वारा कराने मे प्रयत्न बद्ध रहता है तो काव्य, उसी अनन्त तत्व का प्रत्यय, भावनाओ द्वारा कराने मे लीन रहता है। आचार्य महिमभट्ट के मत मे काव्य, कवि का विभावादि की सम्यक् योजना से जन्य व्यापार है जिसका रस से अव्यभिचरित सम्बन्ध है। यह काव्य अभिनेय एव अनभिनेय अर्थ की दृष्टि से दो प्रकार का होता है। सामान्यत काव्य अपने इन दोनो रूपो मे शास्त्र की तरह कृत्य की विधि और अकृत्य का निषेध करता है, यही विवेक-व्युत्पत्ति इसका फल है। काव्य और

---

१ इह हि वाङ्मयमुभयथा शास्त्रं काव्यं च।
काव्यमीमासा, राजशेखर, २ अध्याय।

२ शास्त्रपूर्वकत्वात् काव्याना पूर्व शास्त्रेष्वभिनिविशेत।
नह्यप्रवर्तितप्रदीपास्ते तत्त्वार्थसार्थमध्यक्षयन्ति॥ वही

३. आनन्दनि ष्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धि।
योऽपीतिहासादिवदाह सधुस्तस्मै नम स्वादुपराङ्मुखाय॥
दशरूपक—६ प्रथम प्रकाश।

शास्त्र मे केवल अन्तर यह है कि शास्त्र का व्युत्पाद्य पुरुष जड़ नही होता और काव्य का जड भी हो सकता है। सक्षेप मे उपाय मात्र का भेद है, फल का नही[1]। महिमभट्ट के पश्चात् प्रतापरुद्रीयकार ने भी इसी तथ्य को इस प्रकार कहा है कि वेद, शास्त्र, पुराण और काव्य एक ही कार्य अर्थात् हित-प्राप्ति और अहित-निवृत्ति का उपदेश करते हैं किन्तु अन्तर यह है कि काव्य से वही वस्तु सरस मार्ग से प्राप्त होती है और शास्त्र से वही वस्तु नीरस रीति से[2]। यद्यपि काव्य और शास्त्र का लक्ष्य पुरुषार्थ की सिद्धि का है तथापि काव्य की अपेक्षा शास्त्र की शैली रूक्ष होने से रसिकजन शास्त्रों से भय खाते हैं। ससार मे कुछ व्यक्ति सुकुमार मति के होते है और कुछ कर्कश मति के। जिन सुकुमार मति के व्यक्तियो मे शास्त्र की ग्राहकता नही होती उनके लिए तो काव्य की कोमलकान्तपदावली ही उपादेय है। रुद्रट ने इसी तथ्य को इस प्रकार कहा है 'लघु मृदुच नीरसेऽभ्यरते हि त्रस्यन्ति शास्त्रेभ्य'[3] आचार्य कुन्तक के मत मे शास्त्र, कटु-औषधि के समान अविद्यारूप व्याधि का नाश करता है और काव्य, आनन्ददायक अमृत के समान अज्ञान रूप रोग का नाश करता है, तथा च काव्यामृत का रसास्वाद चतुर्वर्ग से बढ़कर होता है। कारण यह है कि शास्त्र सुनने मे कटु, बोलने मे कठिन, समझाने मे दुर्बोध और पठन के समय मे दु खदायी होने से सहृदयहृदयाह्लादक काव्य की बराबरी कभी नही कर सकता[4]। कविराज विश्वनाथ का भी यही मन्तव्य

---

१ 'कविव्यापारो हि विभावादिसयोजनात्मा रसाभिव्यक्त्यव्यभिचारी काव्यमुच्येत। तच्चाभिनेयानभिनेयार्थत्वेन द्विविधम् सामान्येनोभयमपि च ······तारतम्यापेक्षया काव्यनाट्यशास्त्ररूपोऽयमुपायमात्रभेदो न फलभेद ।

व्यक्तिविवेक, प्रथम विमर्श पृ० ९५–९६ चौ० प्रकाशन १९३६

२ यथा वेदशास्त्रपुराणादिभिर्हितप्राप्तिरहितनिवृत्तिश्च तथा सत्काव्यादपि। इयान् विशेष· काव्यात्कर्तव्यताधी सरसा, अन्यत्र न तथा।

विद्यानाथ प्रतापरुद्रीयम् पृ० ४ सी० एस० रामशास्त्री मद्रास १९३१

३ रुद्रट काव्यालंकार १२।१

४ कटुकौषधवच्छास्त्रमविद्या व्याधिनाशनम्
आह्लादामृतवत् काव्यमविवेकगदापहम्॥

१।७ वक्रोक्तिजीवितम् वही १।५

है[1]। संभवत शास्त्र की रूक्षता एवं दुर्बोधताको दूर करनेके लिए ही विद्वानो ने शास्त्राभिव्यक्ति के माध्यम से परिवर्तन किया है। क्योंकि छन्दो के माध्यम से अभिव्यक्त होने वालीं मानवीय अनुभूतियाँ अधिक प्रभुविष्णु होने के कारण सहृदयपाठक के हृदय को अनायास प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त अर्थयुक्तसरस छन्दोबद्ध वाणी मे हृदय-तन्त्री को झकझोरने की जैसी अपूर्वशक्ति है। उसी प्रकार उसमे स्मृति को जागरित रखने की भी है। इसी गुण से आकर्षित हो अनेक शास्त्रोने छन्दोमय रूप धारण किया। उदाहरणाथ-आयुर्वेद, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, गणित आदि। काव्य की इसी रमानेवाली एवं सौन्दर्यावि्रण शक्ति को देखकर कवियो ने रमाणीयता का पल्ला पकड़ा और समझने मे दुर्बोध व्याकरण शास्त्र का उपदेश काव्य के सरस माध्यम से देना प्रारम्भ कर सस्कृत एवम् प्राकृत महाकाव्यो मे काव्य-शास्त्र की एक परम्परा का निर्माण कर दिया। भट्टिकाव्य, रावणार्जुनीय, धातुकाव्य, कविरहस्य आदि काव्यो मे इसी परम्परा का दर्शन होता है।[2]

काव्य और शास्त्र की शैली मे वक्रता के आधार पर भेद.— प्राचीन आचार्यों मे भामह और दण्डी ने इस तथ्य की ओर दोनों की शैलियो मे भेद सकेत कर दिया था। भामह ने वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति को एक दूसरे का पर्याय[3] मानते हुए लोकातिक्रान्तगोचरता को उसका मूल तत्त्व स्वीकार किया है।[4] भामह के मत मे वक्रोक्ति का अर्थ है अर्थ और शब्द की वक्रता, उनके लोकोत्तर उपनिबन्ध वक्रोक्ति को काव्य का प्राण-तत्व मानते हुये भामह ने लोक सामान्य शब्दार्थ प्रयोग को (वक्रोक्तिविहीन)

---

१. 'दु श्रव-दुर्भण-दुरधिगमत्वादिदोषदुष्टोऽध्ययनावसर एव सदु सहृदु ख-दायी शास्त्रसन्दर्भस्तत्कालकल्पितकमनीयचमत्कृते' काव्यस्य न कथंचिदपि स्पर्धामधिरोहतीत्येतदप्यर्थतोऽभिहितं भवति।"
वक्रोक्तिजीवितम्-कारिका ५

२. साहित्यदर्पण-१, २

३ "सैषा सर्वत्र वक्रोक्ति" २।८५ भामह, काव्यालंकार।
"एव चातिशयोक्तिरिति वक्रोक्तिरिति पर्याय इति बोध्यम्"
काव्यप्रकाश बालबोधिनी टीका पृ० ९०६ चौखम्बा प्रकाशन

४ "निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रान्तगोचरम्।"
भामह 'काव्यालंकार २।८१

वार्ता (सीधासमाचार) माना है, जैसे सूर्य अस्त हो गया, चन्द्रमा उदित है, पक्षी अपने नीडों को जा रहे हैं—और ऐसे वार्ता-कथन को काव्य कोटि के अन्तर्गत नहीं रखा।[१] आगे दण्डी ने भी काव्यशैली और शास्त्रशैली मे अन्तर माना है। उन्होने वाङ्मय के दो भेद किये हैं।[२] (१) स्वभावोक्ति (२) वक्रोक्ति। इनमे से स्वभावोक्ति का साम्राज्य (क्षेत्र) शास्त्र मे है और वक्रोक्ति का काव्य मे[३]। अभिनवगुप्त ने वक्रता का अर्थ 'लोकोत्तर रूप मे अवस्थित' ही किया है तथा काव्य की वक्रशैली और शास्त्र की सामान्य शैली मे भेद स्वीकार किया है[४]। भोज ने अपने शृंगार-प्रकाश मे शास्त्र, लोक-व्यवहार और काव्य शैली मे स्पष्ट अन्तर लिखा है। इनके मत मे शास्त्र और लोक-व्यवहार मे प्रयुक्त अवक्र वचन, केवल वचन है। अर्थवाद आदि मे प्रयुक्त वक्रवचन की संज्ञा काव्य है[५]। इस प्रकार तीनो मे शास्त्र, लोक और काव्य की शैली मे वक्रता के आधार पर स्पष्ट भेद स्वीकार किया गया है।

यह विवेचन इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि काव्य का, एक समयावच्छेदक रूप से तीन लक्ष्यो की पूर्ति करने वाला एवं शास्त्र और काव्य के प्रयोजनो मे मे मौलिभूत प्रयोजन ही दोनो मे (काव्य और शास्त्र) व्यवच्छेदक है। तब प्रश्न यह होता है कि शास्त्रज्ञान भी मूल ज्ञान मे अभिवृद्धि करने से आनन्दमूलक ही है, किन्तु काव्य मे दोनो का समावेश होने से, वह परिणाम मे 'सद्य परनिर्वृति' तत्काल अलौकिक आनन्द जनक होने के कारण श्रेष्ठ है।

कवि और काव्य शब्द का अर्थ—

कवि और काव्य मे कर्त्ता और कर्म का सम्बन्ध है, या यो कहिये एक जनक है, और दूसरा जन्य। कवि द्वारा जो कार्य किया जाय उसे काव्य

१ वही २।८७

२. "भिन्न द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्।।
२।३६३ दण्डी काव्यादर्श

३ शास्त्रेष्वस्यैव साम्राज्य काव्येष्वप्येतदीप्सितम्॥ २।१३ वही

४ ध्वन्यालोक-लोचनटीका, काव्यमाला, पृ० २५९,६०,३ उद्योत

५ "यदवक्रं वच शास्त्रे लोके च वच एव तत्।
वक्रं यदर्थवादौ तस्य काव्यमिति स्मृतिः॥
शृंगारप्रकाश ९,६ पृ० ४२७.

कहते है।[१] राजशेखर के मत मे कवि शब्द, 'कवृ–वर्णे' धातु से बनता है।[२] शब्दकल्पद्रुमकार सर्वज्ञ और सब विषयो के वर्णनकर्ता के रूप में कवि को देखते हैं[3]। रस तथा भाव के विमर्शक के रूप मे कवि को भट्टगोपाल ने कहा है।[४] वस्तु के बाह्य और अन्तर्निहित तत्व का द्रष्टा होने के कारण ही कवि क्रान्तदर्शी 'कवय क्रान्तदर्शिन' कहलाता है। जैसा कवि के लिये सूक्ष्म द्रष्टा होना आवश्यक है वैसे ही प्रातिभ चक्षु से अनुभूत वस्तुतत्व के ज्ञान को 'सुन्दरम्' के आवरण मे अभिव्यक्त करना परम प्रयोजनीय है। इस प्रकार एक सच्चे कवि मे दर्शन और वर्णन–इन दो गुणो का होना आवश्यक है। भट्टतौत के मत मे कवि दर्शन युक्त होने से ही ऋषि कहलाता है। वस्तु मे निहित विचित्र भाव तथा उसके धर्म को तत्व रूप से जानना ही दर्शन है। इसी तत्व दर्शन के कारण वह शास्त्र मे 'कवि' के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु लोक मे कवि की सज्ञा, वर्णन और दर्शन के कारण रूढ है[५]।

---

१. क "कवेरिदं कार्यं भावो वा।" मेदिनीकोष।
ख (कवे) तस्य कर्म स्मृत काव्यम्॥ "भट्टतौत

२. "कविशब्दश्च" कवृ वर्णे इत्यस्य धातो काव्यकर्मणो रूपम्।"
काव्यमीमासा, अध्याय ३, पृ० १५ पटना प्रकाशन

३ "कवते सर्वं जानाति सर्वं वर्णयतीति कवि यद्वा कु शब्दे अच् इ'।
शब्दकल्पद्रुम। पृ० ६८ द्वितीय भाग, चौखम्बा प्रकाशन १९६१

४."कौति शब्दायते विमृशति रसभावानिति कवि" इति
भट्टगोपाल। भारतीय साहित्यशास्त्र मे प० बलदेव उपाध्याय द्वारा उद्धृत। प्र० ख० पृ० २६५।२००७

५."नानृषि कविरित्युक्त ऋषिश्च किल दर्शनात्।
विचित्रभावधर्मांशतत्वप्रख्या च दर्शनम्॥
स तत्वदर्शनादेव शास्त्रेषु पठित कवि॥
दर्शनात् वर्णनाच्च रूढा लोके कविश्रुति।
तथाहि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिकवेर्मुने।
नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना॥
हेमचन्द्र द्वारा अपने काव्यानुशासन मे पृ० ३१६ पर उद्धृत श्लोको की पं० बलदेव उपाध्याय ने भारतीय साहित्यशास्त्र प्र०खण्ड पृ० २९७,९८ पर उद्धृत किया है।

उपर्युक्त कथन के अनुसार इन दो गुणो मे से एक का अभाव होने पर काव्य सृष्टि का सृजन नही हो सकता। दोनों का मधुर मिलन होने पर ही काव्य (कविता) का उदय होता है। महर्षि वाल्मीकि का दर्शन स्वच्छ होने पर भी उनकी कविता तब तक प्रस्फुटित नही हुई, जब तक उनके दर्शन का वर्णन से मिलन नही हुआ।

इस काव्य-सृष्टि के कार्य मे उसकी सहायक शक्ति का नाम है—प्रतिभा। भट्टतौत के मत मे नव-नव उन्मेष करने वाली प्रज्ञा का ही नाम प्रतिभा है और ऐसी श्लाघनीय शक्ति (प्रतिभा) से अनुप्राणित सजीव वर्णना करने मे निपुण व्यक्ति का नाम है—कवि[1]। सृष्टि निर्माण कर्त्ता के अर्थ मे ही उसे प्रजापति की सज्ञा है। वह अपनी सृष्टि मे नितान्त स्वतन्त्र होता है। वह अपने मनोभिलाष के तरग के अनुसार रसस्यन्दिनी सृष्टि का निर्माण करता रहता है[2]।

कवि और काव्य की व्याप्ति—

संस्कृत साहित्य मे प्रारम्भ से ही 'कवि और काव्य' शब्द का प्रयोग अत्यन्त व्यापक अर्थ मे होता रहा है। महर्षि एवं विभिन्न शास्त्रप्रणेताओ के लिये भी इसका प्रयोग देखने मे आता है। महर्षि वाल्मीकि एव श्री वेदव्यास के लिये 'कवि' शब्द का प्रयोग दृष्टिगत होता है। वाल्मीकि रामायण के प्रत्येक सर्गान्त मे 'इत्यार्ष आदिकाव्ये'' का उल्लेख है। इसी प्रकार महाभारत मे "कृत मयेदं भगवन् काव्य परमपूजितम्" 'महा० भा०' १।६१ यह वाक्य—श्री वेदव्यास जी का है। गच्छताकालेन गद्यग्रन्थो एव उनके लेखको के लिये भी कवि और काव्य का प्रयोग होने लगा। "सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेय" (वामन, का० अ० सूत्र १,२,३०) यह प्रसिद्ध उक्ति तथा काव्य के दो भेद (१ गद्य, २ पद्य) भी इसी अर्थ को पुष्ट करते हैं[3]।

---

१ "प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।
तदनुप्राणनाज्जीवद्वर्णनानि पुरा कवि, तस्य कर्मस्मृत काव्यम्"।
हेमचन्द्र—काव्यानुशासन पृ० ३

२ अपारे काव्यसमारे कविरेक प्रजापति।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ॥ अग्निपुराण, ३३९।१०

३ "तदिदं गद्य-पद्यरूप काव्यम्" वामन—काव्यालंकार सूत्र—१,३,२७

भवभूति जैसे केवल नाटक लिखने वाले और दण्डि जैसे गद्य ('दशकुमार-चरित') लिखने वाले क्रमश महाकवि और कविर्दण्डी त्रिवार रूप में प्रशंसित हैं। यह प्रशसा इसी तथ्य की द्योतक है[२]। काव्य के किसी भी प्राचीन लक्षण में पद्य का समावेश दृष्टिगत नही होता। दण्डी से लेकर पं० जगन्नाथ तक काव्य की व्याख्या में 'पद्य' या तत्समानार्थक कोई शब्द प्रयुक्त नही हुआ है। इसके विपरीत 'गद्य' को काव्य मे स्थान दिया गया है। काव्य के भेद बतलाते हुये दण्डी ने उसके 'गद्य, पद्य और मिश्र भेद कर गद्य' को 'पद्य' के बराबर ही महत्वपूर्ण स्थान दिया है।[३] संभवत वे स्वयं एक उच्चकोटि के साहित्यकार थे। उपर्युक्त विवेचन से यही विदित होता है कि 'कवि' शब्द का प्रयोग सर्वज्ञ और सब विषयो के वर्णन करने वाले के लिये हुआ है। इसी व्यापक अर्थ निर्देशार्थ वेदो मे परमेश्वर के लिये 'कवि' शब्द का प्रयोग किया गया है[३]। कवि शब्द महर्षि वाल्मीकि के समय से ही एक विशिष्ट प्रकार की चित्ताकर्षक रमणीय शैली के रचयिता के लिये और 'काव्य' शब्द का प्रयोग एक विशेष हृदयाह्लादक रमणीय शैली के रचनात्मक ग्रथ के लिये प्रयुक्त होता रहा है।

काव्य हेतु—

जिसके या जिनके द्वारा काव्य रचना मे कवि को सफलता प्राप्त होती है उसे या उन्हे काव्य का (के) हेतु कहते है। ये हेतु आचार्यों के मत में विभिन्न है। सहृदयहृदयाह्लादक एव लोकोत्तर सृष्टि के निर्माण मे कवि की एक विशेष शक्ति कारणभूत होती है। यही काव्य रचना का बीजभूत सस्कार है। इसके अभाव मे काव्य रचना नहीं हो सकती, यदि हठात् की भी जाय तो उपहासास्पद होगी।[४] राजशेखर ने 'शक्ति' को प्रतिभा और व्युत्पत्ति से पृथक् माना है। उसके मत मे शक्ति कर्तृरूप है और प्रतिभा तथा

---

१. "तदिद गद्यपद्यरूप काव्यम्" वामन—काव्यालंकार सूत्र १,३,२७

२. "कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशय." ॥

चिपल्णकरकृत संस्कृतकविपंचक पृ० १९६

३. "गद्यं पद्य च मिश्र च"—काव्यादर्श दण्डी परिच्छेद १।११

३ "कविर्मनीषी परिभू. स्वयंभू." शुक्ल यजु। ४०।८

४ "शक्ति· कवित्वबीजरूप. सस्कारविशेष." यां विना काव्यं न प्रसरेत् प्रसृतं वा उपहसनीयं स्यात्"।

काव्यप्रकाश नागेश्वरी प्रथमोल्लास पृ० ४ सस्करण २.

व्युत्पत्ति, कर्मरूप । शक्तिवाले मे प्रतिभा उत्पन्न होती है और शक्ति सम्पन्न ही व्युत्पन्न होता है ।[१] रुद्रट ने 'शक्ति को' काव्य का प्रधान हेतु मानते हुए उसका स्वरूपवर्णन इस प्रकार किया है —

जिसके द्वारा एकाग्र चित्त होने पर अनेक प्रकार के वाक्यार्थो का स्फुरण होता है और कठिनतारहित कमनीय पदो का स्वय भान होता है, उसे शक्ति कहते हैं[२] ।

प्रतिभा—

कुछ विद्वानों ने इस शक्ति के अतिरिक्त अन्य शक्ति का भी उल्लेख किया है और वह है 'प्रतिभा' । आचार्य अभिनवगुप्त के मत मे अपूर्व वस्तु निर्माण की शक्ति का नाम है प्रज्ञा । उसका विशेष रूप है प्रतिभा । अर्थात् रसावेश की विशदता तथा सुन्दरता से अनुप्रेरित काव्य-निर्माण की शक्ति[३] । काव्य शास्त्र के अनेक ग्रन्थों मे प्रतिभा का विवेचन किया गया है । काव्यशास्त्र के आचार्य दण्डी, वामन, रुद्रट, भट्टतौत, अभिनवगुप्त, कुन्तक, महिमभट्ट, राजशेखर और मम्मट आदि ने प्रतिभा का विवेचन किया है । दण्डी के अनुसार 'प्रतिभा' जन्मान्तरागत पूर्ववासना के गुणो से सबद्ध है[४] । वामन ने प्रतिभा को दण्डी के अनुसार ही जन्मान्तरागत सस्कारविशेष मानते हुए कवित्वके बीज रूपमे स्वीकार किया है[५]। अभिनवगुप्त ने उसे प्राक्तन सस्कार के रूप मे ही देखा है[६] । आचार्य कुन्तक ने उसे पूर्वजन्म तथा इस जन्म के सस्कार के परिपाक से पुष्ट होनेवाली

---

१ "विप्रसृतिश्च मा प्रतिभा व्युत्पत्तिभ्याम् । शक्तिकर्तृके हि प्रतिभा-व्युत्पत्तिकर्मणी । शक्तस्य प्रतिभाति शक्तश्च व्युत्पत्ते ।"

काव्यमीमासा अध्याय ४ पृ० २६ पटना प्रकाशन

२. "मनसि सदा सुसमाधिनि विस्फुरणमनेकधाभिधेयस्य ।
अक्लिष्टानि पदानि च विभान्ति यस्यामसौ शक्ति ।

१।१५ । रुद्रट—काव्यालकार, काव्यमाला । २ ।

३ "प्रतिभा अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा । तस्या विशेषो रसावेशवैशद्य-सौन्दर्यकाव्यनिर्माणक्षमत्वम् ।" ध्वन्यालोक । लोचन पृ० २९

४ 'पूर्ववासना गुणानुबन्धिप्रतिभानमद्भुतम् । काव्यदर्श १।१०४

५. कवित्वबीज प्रतिभानम् ।। जन्मान्तरागतसस्कारविशेष कश्चित्

१, ३. १६ काव्यालंकार सूत्र ।

६ अनादिप्राक्तनसंस्कारप्रतिभानमय.,–अभिनवभारती खण्ड १

कवित्व शक्ति माना है[१]। राजशेखर के अनुसार प्रतिभा शब्दों के समूह, अर्थों के समुदाय, अलंकार तथा सुन्दर उक्तियाँ और अन्य सामग्री को हृदय के भीतर प्रतिभासित करती है[२]। रुद्रट और राजशेखर द्वारा उल्लिखित प्रतिभा के रसात्मक रूपो की सृष्टि का उपर्युक्त विवेचन महिममट्ट ने भी किया है। रसानुकूल शब्द और अर्थ के चिन्तन मे एकाग्रचित्त कवि की प्रज्ञा, शब्द और अर्थ के यथार्थ चित्र को स्पर्श करती हुई, सहसा उद्दीप्त हो उठती है, तब वही प्रतिभा कहलाती है[३]।

विभिन्न आचार्यों के मतानुसार प्रज्ञा, —जन्मान्तरीय संस्कार विशेष है। प्रज्ञा के अनेकरूप और अनेक कार्य हैं, जिनमे से एक रूप है प्रतिभा और कार्य है–नवीन-नवीन अर्थों का उन्मेष। इसी की सहायता से रसाविष्ट कवि, काव्य सृजन मे समर्थ होता है। सम्पूर्ण काव्यसृष्टि का केन्द्र बिन्दु है— प्रतिभा[४]। जो अपूर्व वस्तु के निर्माण मे समर्थ है और जिसका कार्य[५]— नियति-कृतनियमो से रहित है।

काव्य साधक अन्य हेतु—

भामह के पश्चात् दण्डी ने काव्य साधक हेतुओ मे प्रतिभा के अतिरिक्त शास्त्र ज्ञान और अभ्यास को भी आवश्यक माना है। उल्लेखनीय बात यह है कि भामह ने 'प्रतिभा' को प्राधान्य दिया है और काव्यज्ञशिक्षा तथा अभ्यास को सहायक माना है। किन्तु दंडी ने तीनों को समान स्थान देने के बदले, शास्त्रज्ञान और अभ्यास को प्रतिभा से भी प्रधान स्थान दिया है। उन्होंने

---

१. प्राक्तनाद्यतन संस्कार—परिपाकप्रौढा प्रतिभा काचिदेव कविशक्तिः।
वक्रोक्तिजीवितम्—प्रथमोन्मेष कारिका २९

२ या शब्दग्राममर्थसार्थमलंकारतन्त्रमुक्तिमन्यदपि तथाविधमधिहृदय प्रतिभासयति सा प्रतिभा। पटना, काव्यमीमासा अध्याय ४ पृ० २७

३ "रसानुगुण शब्दार्थचिन्तास्तिमितचेतसः।
क्षण स्वरूपस्पर्शोत्था प्रज्ञैव प्रतिभा कवे:" ॥
द्वितीय विमर्श व्यक्तिविवेक, पृ० ३२९, २।११७ चौखम्बा प्रकाशन

४ "यद्यपि द्वयोरप्येतयोस्तत्प्राधान्येनैव वाक्योपनिबन्धः तथापि कविप्रतिभा प्रौढिरेव प्राधान्येनावतिष्ठते।
वक्रोक्ति जी० प्रथमोन्मेष, कारिका—७

५. काव्य प्रकाश १।१

कहा है कि प्राक्तनसंस्कार सेउन्मिषित प्रतिभा के न रहने पर भी यदि शास्त्रों का अध्ययन तथा अभ्यास किया जाय, तो सरस्वती अवश्य ही अनुग्रह करती है। इसलिए कीर्ति की कामना करनेवालो को चाहिये कि वे आलस्य का त्याग कर परिश्रमपूर्वक सरस्वती की उपासना (शास्त्राध्ययन व अभ्यास)मे तत्पर रहे[१]। प्रतिभाको गौण व अन्य साधनोको प्रधान स्थान देने की प्रवृत्तिका उत्तरकालीन कवियो पर क्या प्रभाव पडा, इसका हम आगे विचार करेगे। किन्तु यहा यह कहना अप्रासगिक न होगा कि उत्तरकालीन विदग्ध महाकाव्यो मे विदग्धता या पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना के बीज यही से बो दियेगये थे। दण्डी के मत मे कवि के लिए प्रतिभा, व्युत्पत्ति, तथा अभ्यास तीनो का योग आवश्यक है। इस दृष्टि से वामन भी दडी के अनुयायी प्रतीत होते है। वामन ने काव्य के तीन हेतु माने हैं. —

(१) लोक (२) विद्या और (३) प्रकीर्ण[२]। लोक का अर्थ है लोक व्यवहार[३]। विद्या के अन्तर्गत है—शब्दशास्त्र, कोश, छन्दशास्त्र, कला, दडनीति आदि विद्याएँ[४]। प्रकीर्ण—(१) के अन्तर्गत लक्ष्यज्ञत्व (२) अभियोग (३) वृद्धसेवा (४) अवेक्षण (५) प्रतिभान और (६) अवधान आदि आते है। लक्ष्यज्ञान का अर्थ है—दूसरो के काव्य मे परिचय, अभियोग से तात्पर्य है काव्य रचना मे प्रयत्न, काव्य कला की शिक्षा देने योग्य गुरुजनो की सेवा-वृद्ध सेवा है। उपयुक्त शब्द का चयन और अनुपयुक्त शब्द का त्याग-अवेक्षण कहलाता है। प्रतिभान कवित्व का बीज है। यह जन्मान्तरागत-सस्कार विशेष है जिसके विना काव्य सभव नही और यदि सभव हुआ तो हासास्पद होगा। चित्त की एकाग्रता-अवधान है[५]। वामन ने यद्यपि प्रतिभा

---

१ "न विद्यते यद्यपि पूर्ववासना गुणानुबन्धि प्रतिभानमद्भुतम् ।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुव करोत्येव कमप्यनुग्रहम् ॥ १।१०४
काव्यादर्श । १।१०५ वही ।

२. "लोको विद्या प्रकीर्ण च काव्यागानि ।"
१, ३, १ वामन—काव्यालकारसूत्र

३ 'लोकवृत्त लोक । १, ३, २ वही ।

४. "शब्दस्मृत्यभिधानकोशछन्दोविचितिकलाकामशास्त्रदण्डनीतिपूर्वा-विद्याः ।" १,३,१ वही ।

५. "लक्ष्यज्ञत्वमभियोगो वृद्धसेवाऽवेक्षणं प्रतिभानमवधानंच प्रकीर्णम् ।
१,३,११,१२,१३,१४,१५,१६,१७ काव्यालंकार सूत्र, वामन

को कवित्व का बीज माना है जिसके बिना काव्य-रचना सम्भव नहीं और यदि है भी तो उपहासास्पद होगी। फिर भी उन्होंने उसे अपेक्षित गौरव नहीं दिया है। क्योंकि उन्होने काव्य के जो तीन अंग (हेतु) माने हैं उनमे तीसरे अंग प्रकीर्ण में प्रतिभान को स्थान दिया है। प्रथम और द्वितीय क्रमशः लोक और विद्या का स्थान है। अन्य आचार्यों ने इन दो तत्वों को स्वतन्त्र न मानकर 'प्रतिभा' के पोषक तत्व रूप मे माना है। इसके अतिरिक्त वामन ने लोक और विद्या (शास्त्र) को पृथक् पृथक् माना है जबकि अन्य आचार्यों ने इन दोनो के परिणामभूत 'निपुणता' तत्व को संयुक्त रूप से काव्य का हेतु माना है। आचार्य मम्मट ने तो 'शक्ति', निपुणता और अभ्यास को भी पृथक्-पृथक् रूप मे काव्यहेतु न मानकर सयुक्त रूप मे काव्य का हेतु माना है[१]।

वामन के पश्चात् रुद्रट ने काव्य हेतुओंमे प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास को एक कारण—या हेतु माना है। किन्तु इन्होंने प्रतिभाको भी केवल नैसर्गिकी न मानकर, आहार्य या उत्पाद्य भी माना है[२]। आनन्दवर्धन की सम्मति मे व्युत्पत्ति की अपेक्षा प्रतिभा ही प्रधान है। क्योंकि व्युत्पत्यभावजन्यदोष को कवि-प्रतिभा दूर कर देती है। परन्तु कवि की अशक्ति के कारण जो दोष होता है वह झटिति लक्षित हो जाता है[३]। वाग्भट ने भी प्रतिभाको काव्यका कारण माना है और व्युत्पत्ति आदिको उसका भूषण[४]। रसगंगाधरकार पंडितराज जगन्नाथ ने प्रतिभा को ही कारण माना है। उन्होने 'प्रतिभा' को दो भेदो मे विभक्त कर दिया है। 'प्रथम वह है जो प्रारब्धवश किसी देवता या महापुरुष के प्रसादरूप मे और दूसरी व्युत्पत्ति तथा

---

१ "शक्तिर्निपुणतालोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञशिक्षयाऽभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥
३ काव्यप्रकाश—१ उल्लास १, ३, पृ० ४
और इसकी वृत्ति मे यह भी कह दिया है —
"त्रय. सम्मिलिता न तु व्यस्ता, हेतुर्नतु हेतव "

२ 'प्रतिभेत्यपरैरुदिता सहजोत्पाद्या च सा द्विधा भवति ।
रुद्रट काव्यालकार १।१६

३ 'अव्युत्पत्तिकृतोदोषः शक्त्यासंव्रियतेकवे ' ।
यस्त्वशक्तिकृतस्तस्य सझटित्येव भासते ॥ ध्वन्यालोक उद्योत ३ का० ६

४. "प्रतिभा कारण तस्य व्युत्पत्तिस्तु विभूषणम्" ।
भृशोत्पत्तिकृदभ्यास इत्याद्यकविसंकथा । १।३ वाग्भटालंकार—
चौखम्बा प्रकाशन ।

काव्यनिर्माणजन्य अभ्यास से प्राप्तहोती है[४]। राजशेखर ने भी प्रतिभा को दो भागों में विभक्त किया है (१)कारयित्री(२) भावयित्री । पंडितराज जगन्नाथ का विरोध, हेतुत्रयवादियो से है[२]। आनन्दवर्धन के विपरीत आचार्य मगल, प्रतिभा की अपेक्षा अभ्यास को ही काव्यनिर्माण मे प्रधान कारण मानते हैं[६]। निरन्तर परिशीलन का ही नाम अभ्यास है। यह सभी विषयो के लिये आवश्यक है और उसके द्वारा निरतिशय कौशल प्राप्त होता है। राजशेखर ने श्यामदेव का मत उद्धृत किया है, इसके मत से काव्यकर्म मे प्रधानरूप से सहायक वस्तु, समाधि है, जिसे मन की एकाग्रता कहते है [७]।

उपर्युक्त विवेचन इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि काव्य हेतुओ के विषय मे विद्वानो का मतभेद है। कुछ विद्वान दैवी शक्ति को ही काव्य निर्माण मे प्रधान कारण मानते हैं। कुछ विद्वान प्रतिभा को ही शक्ति का पर्याय मान कर, उसे शक्ति से अभिन्न मानते हैं। इसके अनन्तर कुछ ऐसे है जो प्रतिभा के अतिरिक्त अन्य गौण हेतुओ, (अभ्यास, व्युत्पत्तिको) को भी प्रतिभा के साथ, उसका सस्कार करने के हेतु आवश्यक मानते है। कुछ आचार्य पूर्वोक्त आचार्यों की भाति काव्य के तीन कारण न मानकर चार कारण मानते है और इस प्रकार इस सख्या मे वृद्धि ही होती गई है। इन हेतुओ की एक परम्परा है।

पूर्व के आचार्यों द्वारा स्वीकृत कारणो मे एक विकास दिखाई देता है। ध्वनिवादी तथा रसवादी आचार्यो ने प्रतिभा को प्राधान्य दिया है, जबकि अलंकार का महत्त्व माननेवालो ने व्युत्पत्ति और अभ्यास को प्राधान्य दिया

---

४ 'तस्य च कारण कविगता केवला प्रतिभा। सा च काव्यघटनानुकूल शब्दार्थोपस्थिति'॥

५ 'तस्याश्च हेतु क्वचिद्देवतामहापुरुषप्रसादादिजन्यमदृष्टम् क्वचिच्च विलक्षणव्युत्पत्तिकाव्यकारणाभ्यासो', न तु त्रयमेव।

रसगगाधर काव्यमालाः पृ० ८

काव्यमीमासा अध्याय ४ पृ० २९

६ "अभ्यास" इति मगल अविच्छेदेन शीलनमभ्यास."। सहि सर्वगामी सर्वत्र निरतिशय कौशलमाधत्ते।

काव्यमीमासा चतुर्थ अध्याय।

७ काव्यकर्मणि कवे समाधि परं व्याप्रियते इति श्यामदेव मनस एकाग्रता समाधिः। अध्याय चतुर्थ। वही।

है। सहज स्फूर्ति की अपेक्षा अन्य श्रमजन्य हेतुओं पर ही बल दिया है। युग-प्रवृत्ति के अनुसार काव्यकारणों —हेतुओं में 'व्युत्पत्ति' हेतु ही उत्तरकालीन महाकवियो के लिए अधिक श्रेयस्कर तथा प्रधानभूत होगया, इसलिये अलंकार-प्रिय महाकवियो ने अपने विदग्ध महाकाव्यो को 'व्युत्पत्ति' से सुशोभित किया है और उनके आकार मे उससे वृद्धि की है। इसका विवेचन हम काव्याध-योनियो में देखेगे।

व्युत्पत्ति की उपादेयता

वस्तुत 'प्रतिभा शक्ति' के 'जन्मजात होने पर भी उसका सस्कार आवश्यक है। प्रतिभा शक्ति का संस्कार व्युत्पत्ति, निपुणता, अभ्यास आदि ही है। जन्मत. मधुरस्वर होने पर भी स्वर का संस्कार (अभ्यास से सस्कृत) किये विना श्रोतागणो के श्रवणो मे सुधा उडेलने का सामर्थ्य नही आसकता। राजशेखर ने प्रतिभा के भेदों को बतलाते हुए, कारयित्री प्रतिभा से सम्पन्न कवि भी तीन प्रकार के होते है, कहा है[१]। इसी क्रम मे प्राचीन आचार्यों का मत उन्होंने उद्धृत किया है।—"सारस्वत और आभ्यासिक इन दोनो कवियो को तन्त्र, मन्त्र आदि की आवश्यकता उसी प्रकार आवश्यक नही होती, जिस प्रकार स्वभाव से ही मधुर द्राक्षा को मीठी चासनी में पकाने की आवश्यकता नही होती" किन्तु राजशेखर के मत मे द्राक्षा को चासनी से सस्कृत करना हानिकारक नही, एक कार्य के लिये यदि दो उपाय किये जाय तो उसका फल भी दूना होगा[२]।

राजशेखर का कथन है कि 'जितना भी अधिक उत्कर्ष प्राप्त किया जाय, अच्छा है और उस उत्कर्ष की प्राप्ति अनेक गुणो के सन्निपात से होती है और इसलिए काव्य और काव्याग विद्याओ मे निष्णात, बुद्धिमान् और मन्त्र, अनुष्ठान आदि मे श्रद्धा रखने वाले कवि के लिये कविराज का पद दूर नही होता है[३]। राजशेखर ने अन्य आचार्यों का मत उद्धृत किया है। इनके मत मे

---

१ काव्यमीमासा—चतुर्थ अध्याय, पृ० २९
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्रकाशन १९५४

२ "न", इति यायावरीय एकार्थं हि क्रियाद्वय द्वैगुण्याय सम्पद्यते"
पृ० ३० वही।

३ 'काव्यकाव्यागविद्यासु कृताभ्यासस्य धीमत ।
मत्रानुष्ठाननिष्ठस्य नेदिष्ठा कविराजता ।।
पृ० ३० काव्यमीमासा

व्युत्पत्ति का अर्थ बहुज्ञता है[1]। बहुज्ञता से कवि की वाणी सर्वतोमुखी होती है। क्योकि काव्य मे विविध विषयो का वर्णन करना पडता है जो इस बहुमुखी बहुज्ञता के विना सम्भव नही[2]। मगल नामक आचार्य कहते हैं कि प्रतिभा से व्युत्पत्ति उत्कृष्ट है[3]। क्योकि व्युत्पत्ति के बल से ही कवि अपनी असमर्थता जन्य दोषो को छिपा लेता हैं। इस पर यायावरीय कहते हैं कि प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनो संयुक्त रूप से काव्य-निर्माण मे उपकारक होती हैं। जैसे रूप सौन्दर्य के लिये रूप और लावण्य दोनो अपेक्षित होते हैं, वैसे ही काव्य-सौन्दर्य के लिए प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनो सम्मिलित रूप से आवश्यक है[4]।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नैसर्गिक प्रतिभा के सस्कार के लिए व्युत्पत्ति की आवश्यकता होती है। नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का चमत्कार व्युत्पत्ति और अभ्यास पर ही निर्भर है[5]। कवि का लोकनिरीक्षण, उसका व्यवहार ज्ञान, जितना विस्तृत एवम् गभीर होगा, उतनी ही प्रतिभा चमत्कारपूर्ण होगी। वस्तुत कवि इस ससार मे प्रातिभ चक्षु द्वारा पदार्थों का निरीक्षण करता रहता है, अनेक प्रकार के अनुभवो को ग्रहण कर, कल्पना शक्ति के द्वारा अनुभूत अनुभवो को 'सुन्दर' के परिधान मे प्रकट करता है। उसकी कल्पना शक्ति की स्थिति दृढ अनुभव पर ही है।

अनुभव भडार (व्युत्पत्ति अभ्यास) से ही कल्पना पुष्ट होती है। कवि नवीन सृष्टि का निर्माण नही करता, ब्राह्मी सृष्टि मे यत्र तत्र विखरे हुए सौन्दर्य का सकलन कर एक नवीन आह्लादजनक सृष्टि का निर्माण करता है। कल्पना शक्ति का पृथक्करण सकलन शक्ति है। अर्थात् कवि की प्रज्ञा अनुभूत अनुभवो को पृथक् करके पुन उन्हे नवीन रूप मे सकलित करती है। कवि की अनुभूति

१ 'बहुज्ञता व्युत्पत्ति' काव्यमीमासा, अध्याय ५ पृ० ३७

२. वही

३. व्युत्पत्ति श्रेयसी, इति मगल । सा ही कवेरशक्तिकृत दोषमशेषमाच्छादयति। वही पृ० ३८

४. 'प्रतिभाव्युत्पत्ती मिथ समवेते श्रेयस्यौ "इति यायावरीय न खलु लावण्यलाभादृते रूपसम्पदृते रूपसम्पदो वा लावण्यलब्धिर्महते सौन्दर्याय" वही पृ० ३९

५ व्युत्पत्त्यभ्याससंस्कृता "प्रतिभाऽस्य हेतु" "व्युत्पत्त्यभ्यासाभ्या सस्कार्या,, हेमचन्द्र-काव्यानुशासन १।२

और कल्पना शक्ति अन्योन्याश्रित हैं । उसकी अनुभूति जितनी विस्तृत, संपन्न, व्यवस्थित और गंभीर भावनाओं से पूर्ण होगी उतनी ही कल्पना शक्ति तेजस्विनी तथा बलिष्ठ हुए बिना नही रहेगी ।

प्रत्यक्ष सृष्टि मे जिन सुख दु:खादि भावनाओं से प्रेरित होकर मनुष्य विशिष्ट व्यवहार करता है 'उन्ही भावनाओ को कवि भी' इसी सृष्टि का एक जीव होने से, अनुभव करता है । इसी सहानुभव के योग से सृष्टि की मानवी भावनाओ की प्रतिध्वनि कवि के हृदय मे उठती है । इस मानवी भावनाओ की प्रतिध्वनि को कवि अपने हृदय का प्रतिउत्तर नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा जनित ललित वाणी से देता है । यही सहृदयहृदयाह्लादक काव्य है । सहृदय द्वारा उस काव्य का पठन होने पर उसके भी इसी ब्राह्मी सृष्टि का एक जीव होने एव उन्हीं भावनाओ का अनुभवी होने के कारण, उसका हृदय इन्ही व्यक्त भावनाओ से कंपित होता है । तात्पर्य यह है कि भावनाओ के तार मानवीय हृदयों मे एक ही होने से, कहीं भी स्पर्श करने पर झंकृत हुए बिना नही रहते और इसी झकार मे सहृदय को अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है ।[1] पूर्वोक्त विवेचन अनुभूति (लोक निरीक्षण, व्युत्पत्ति, अभ्यास) अन्त प्रेरणा और प्रतिभा तीनो के स्वरूप को स्पष्ट कर देता है और इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि तीनो के सहयोग से काव्य को जन्म मिलता है ।

काव्य निर्माण मे कवि के समक्ष प्रथम अनुभूति, फिर प्रति ध्वनि के रूप मे अन्त प्रेरणा, तत्पश्चात् प्रतिभा (कल्पना) और अन्त मे काव्य का जन्म होता है । किन्तु सहृदय के समक्ष सर्वप्रथम रहता है काव्य का बाह्यरूप इसी बाह्यरूप के द्वारा वह कवि की अनुभूति तक पहुचता है और अपनी ही अनुभूति भावनाओ का सच्चा रूप पाकर उसका हृदय अलौकिक आनन्द मे मग्न हो जाता है । प्रकारान्तर से कवि और सहृदय पाठक मे तादात्म्य स्थापित हो जाता है, जहाँ पाठक को आनन्द की प्राप्ति होती है ।

काव्य सृष्टि की विशेषतायें :—

इस प्रकार काव्य सृष्टि ब्राह्मी सृष्टि की प्रतिमा न होकर प्रतिमान रूप में होती है । यह उस ब्राह्मी सृष्टि के निष्यन्द (अर्क) रूप मे होती है । इसी लिये काव्य सृष्टि का प्रभाव ब्राह्मी सृष्टि की अपेक्षा अधिक रहता है । जिस

---

१ रस-विमर्श डा० वाटवे पृ ७४

प्रकार किसी जड़ी या बूटी का अर्क उस जड़ी या बूटीसे अधिक प्रभावोत्पादक होता है उसी प्रकार कवि की सृष्टि प्रत्यक्ष सृष्टि के अर्क रूप मे होने से सत्य होकर भी 'असत्य सी', मूल-रूप मे वही होकर भी 'प्रभाव मे अन्य जैसी, प्राकृतिक रूप मे होने पर भी अधिक तेजस्वी, 'लोक की होने पर भी अलौकिक' और मूलरूप मे कष्ट जनक होकर भी यह आनन्द जनक होती है। क्योकि नियति के निर्धारित नियमो से उन्मुक्त (रहित) केवल आनन्दमात्र स्वभावा अन्यकिसी के अधीन न रहनेवाली तथा छह रसो के स्थान पर नौ रसो के योग से नितान्त मनोहारिणी काव्य सृष्टि की रचना करनेवाली कवि की भारती सर्वोत्कर्ष-शालिनी है[1]।

काव्य का प्रयोजन और आदर्श

मनुष्य की किसी प्रयोजनवश ही कार्य मे प्रवृत्ति होती है। उसके प्रत्येक कर्म का-निष्काम कर्म का भी–कुछ न कुछ प्रयोजन रहता है इसी प्रकार शास्त्र तथा काव्य का भी प्रयोजन होता है क्योकि प्रयोजन के अभाव मे उसकी क्या सार्थकता ! भारतीय काव्यशास्त्र मे काव्य-प्रयोजन को अनुबन्ध-चतुष्टय का प्रमुख अग मानकर उसका विशद विवेचन किया गया है[2]।

भरत मुनि ने लिखा है :—

> "धर्म्यं यशस्यमायुष्य हित बुद्धिविवर्धनम् ।
> लोकोपदेशजनन नाट्यमेतद् भविष्यति ।।
>
> नाट्यशास्त्र, अध्याय १ ८१,

अर्थात् यह नाट्य (काव्य) धर्म, यश और आयु का साधक, हित और बुद्धि का वर्धक तथा लोकोपदेशक होगा। भामह ने ईषद् परिवर्तन व परिवर्धन के साथ इसे इस प्रकार रखा—

> धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्य कलासु च ।
> करोति कीर्ति प्रीति च साधुकाव्यनिबन्धनम् ।।
>
> 'भामह-काव्यालकार' १, २

---

१ 'नियतिकृतनियमरहिता ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम् ।
नवरसरुचिरा निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति ।।
काव्यप्रकाश-प्रथम उल्लास

२ "तत्रानुबन्धोनामाधिकारिविषयसम्बन्धप्रयोजनानि ।।
वेदान्तसार

सत्काव्य के सेवन से धर्म, अर्थ काम और मोक्ष-पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति, कलाओ मे निपुणता और कीर्ति तथा प्रीति की उपलब्धि होती है। दोनो आचार्यों के उक्त प्रयोजनो मे समानता होते हुए भी थोडा पार्थक्य है। भरत और भामह ने क्रमश 'लोकोपदेश' और कीर्ति तथा प्रीति (आनन्द) का स्वतंत्र रूप से उल्लेख किया है। भरत के 'लोकोपदेश' का अन्तर्भाव भामह के पुरुषार्थ चतुष्टय मे हो सकता है। शेष भामह की कीर्ति और प्रीति रसवादी भरत को कदापि अस्वीकृत नही हो सकते। भामहोक्त प्रयोजन को उत्तरवर्ती सभी आचार्यों ने अपनाया है। आचार्य कुन्तक ने चतुर्वर्ग का उल्लेख करते हुए कहा है कि चतुर्वर्ग से भी अधिक इष्ट अन्तश्चमत्कार की प्राप्ति काव्य द्वारा होती है[१]। अर्थात् काव्य के दो प्रमुख प्रयोजन है १. पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि और २ आनन्द। ये दोनो प्रयोजन परस्पर विरोधी नही है। क्योकि चतुर्वर्ग की परिणति आनन्द मे ही तो होती है और चतुर्वर्ग से अनुप्राणित जीवन की स्थिति आनन्द मे ही है। आगे चलकर मम्मट ने प्रयोजन षट्क का उल्लेख किया है। उनके मत मे, यश, अर्थ, व्यवहारज्ञान, अशिव की क्षति, सद्य आनन्द और कान्तासम्मित उपदेश ये छह काव्य के प्रयोजन है। मम्मटोक्त प्रयोजन कोई नये नही। भरत और भामह के प्रयोजनो से कुछ भिन्न नही है। निश्चित अवश्य है, किन्तु स्थूल होने से आज के विज्ञान युग मे एकाध पहलू उतना विश्वासार्ह नही भी हो सकता।

उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात हो जाता है कि भरत से लेकर मम्मट तक प्रायः सभी आचार्यो ने काव्य प्रयोजन का विवेचन सहृदय और कवि की दृष्टि से ही किया है। कुछ आचार्यों ने आनन्द या इसके अन्य पर्याय-वाची शब्द का स्पष्ट उल्लेख काव्य प्रयोजन मे किया है और जिन आचार्यों ने आनन्द शब्द का उल्लेख नही किया है, उनके कथित अन्य प्रयोजनों की परिणति अन्त मे अनन्द मे ही होजाती है[२]।

---

१. चतुर्वर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम्।
काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते॥
कुन्तक-वक्रोक्तिजीवितम्। १।५

२. 'तत्र कवेस्तावत्कीर्त्याऽपि प्रीतिरेव सपाद्या। यदाह कीर्ति स्वर्गफलामाहुः श्रोतृणाञ्च यद्यपि व्युत्पत्तिप्रीतीस्त ... तथापि तत्र प्रीतिरेव प्रधानम्, अन्यथा प्रभुसंमितेभ्य. वेदादिभ्यो मित्रसंमितेभ्यश्चैतिहासादिभ्यो व्युत्पत्तिहेतुभ्य. काव्यरूपस्य व्युत्पत्तिहेतोर्जायासंमितत्वलक्षणो विशेष. चतुर्वर्गव्युत्पत्तेरपि चानन्द एव पार्यन्तिकं मुख्यं फलम्"
ध्वन्यालोकलोचन १ उद्योत पृ० १४ काव्यमाला

लोचनकार ने सभी आचार्यों के मतो को ध्यान मे रखते हुए उत्तर दिया है कि जो लोग कीर्ति और प्रीति को काव्य प्रयोजनो मे प्रमुख मानते है, उन्हे भी अन्त मे कीर्ति से प्रीति ही प्राप्त होती है। जो प्रीति और व्युत्पत्ति को प्राप्य मानते हैं, उन्हे भी अन्त मे प्रीति प्राप्त होती है। वस्तुत. काव्य का साध्य रस ही है। आचार्य मम्मट ने रसास्वादजन्य अन्तश्चमत्कार को अधिक महत्त्व देते हुए उसे ही सकल प्रयोजनमौलिभूत कहा है[1]। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि रस को काव्य का प्राण मानते हुए भी, आचार्यो ने उसके लिये नैतिक औचित्य का आधार अनिवार्य रूप से माना है[2]। क्योंकि इसके अभाव मे रस दुष्ट होकर रसाभास बन जाता है। यद्यपि यह नैतिक औचित्य का नियन्त्रण परिपाक की प्रक्रिया तक ही रहता है। रसोद्रेक की अखण्ड अवस्था मे आनन्द की अवस्था के सिवाय अन्य किसी विवेकाविवेक का ज्ञान ही नही रहता।

निर्दिष्ट प्रयोजनो से यही विदित होता है कि कविता जीवन को सर्वाङ्ग-पूर्ण बनाने की सचेत साधना है। ससार की विभीषिकाओ से त्रस्त एव तृषित मानव पथिक के लिये कविता ही जीवन का पूर्ण पाथेय है। मानव को प्राकृतिक अवस्थाओ से सस्कृत अवस्था मे लाकर उसे आत्मदर्शन कराने का श्रेय कविता को ही है। कविता मानव को स्वार्थगध से दूषित एव सकुचित वातावरण से कही दूर ऐसे निर्मल वायुमडल पर ले जाती है जहाँ मानव को मानवता प्राप्त होती है। इस वायुमण्डल पर पहुचे हुए मानव को कुछ काल के लिए, अपना पराया का 'अय निज परो वेत्ति' कुछ पता नही होता। उसकी सीमित सत्ता लोक की असीमित सत्ता मे विलीन हो जाती है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होजाती है। इसी अनुभूति के योग से उसके मनोविकारो का परिष्कार होकर शेष सृष्टि के साथ उसका रागात्मक सबध स्थापित होजाता है। 'वसुधैव कुटुबकम्' की भावना को जागृत करने का काम कविता ही करती है। और इस प्रकार "भावयोग की सबसे उच्च कक्षा पर पहुचे हुए मनुष्य का जगत् के साथ पूर्ण तादात्म्य होजाता है, उसकी अलग भावसत्ता नही रह जाती, उसका हृदय विश्वहृदय हो जाता है। उसकी अश्रुधारा मे जगत् की

---

१ "सकलप्रयोजनमौलिभूत समनन्तरमेव रसास्वादनसमुद्भूतं विगलित-वेद्यान्तरमानन्दम्" काव्यप्रकाश. प्रथम उल्लास

२ "औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा।"

ध्वन्यालोक। ३ उद्योत पृ० १८०

अश्रुधारा का, उसके हास विलास मे आनन्द नृत्य का, उसके गर्जन, तर्जन मे जगत् के गर्जन तर्जन का आभास मिलता है[1]।"

मानव और मानवेतर प्राणियो मे व्यवच्छेदक गुण ज्ञान के साथ भावना का भी है। ज्ञान और सभ्यता की वृद्धि के साथ साथ भाव प्रसार की भी वृद्धि होती है। फलत मानव हृदय का विस्तार केवल उसके परिवारों, पडोसियो या देशवासियों तक ही नही रहा, वल्कि प्राणिमात्र तक हो गया है और इसका स्मारक स्तम्भ काव्य है, जिसकी उत्तेजना से हमारे जीवन मे एक नया जीवन आ जाता है[2]।" मानव जीवन मे भावना का प्राधान्य है। यहां तक की सपूर्ण मानव प्रवृत्तियो का उद्गम काम-इच्छा या भावना से ही होता है। मानव को किसी कार्य मे प्रवृत्त करने का काम भावना का है। बुद्धि का व्यवसाय नही। कर्म मे प्रवृत्ति करने का या मनमे उत्तेजना लाने का काम शुद्ध ज्ञान का नही, भावना का है। कविता की सर्वस्व भावना ही भाव प्रसार द्वारा मानव के लिए कर्मक्षेत्र का विस्तार करती है। विलास जन्य कर्त्तव्य-विमूढ मानव को प्रकृतिस्थ कर कर्तव्य पथ का प्रदर्शन करना कविता का ही काय रहा है।[3] और अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कविता 'सौन्दर्य'को साधन बनाती है। किसी सुन्दर वस्तु को देख हमारी अतस्सत्ता का तदाकार हो जाना ही सौन्दर्यानुभूति है। इस अनुभूति मे पृथक सत्ता की प्रतीतिका विसर्जन ही दिव्यानन्द का अनुभव करना है। सौन्दर्य के प्रमुख दो क्षेत्र है-मानवजगत् और प्रकृति और इस सौन्दर्य की पूर्णता बाह्य और आन्तरिक रूपो से ही होती है। बाह्य मे शारीरिक या स्थूल सौन्दर्य और आन्तरिक मे सूक्ष्म या शील सौन्दर्य समाविष्ट है। कविता केवल स्थूल या बाह्य सौन्दर्य की छटा नही दिखाती प्रत्युत सूक्ष्म और आन्तरिक सौन्दर्य के हृदयाल्हादक मार्मिक दृश्य भी सामने रखती है। "जिस प्रकार बाह्य प्रकृति के बीच वन, पर्वत, नदी, निर्झर आदि की रूप-विभूति से हम सौन्दर्य मग्न होते है उसी प्रकार अन्त प्रकृति मे दया, दाक्षिण्य, श्रद्धा, भक्ति आदि वृत्तियो की स्निग्ध शीतल आभा मे सौन्दर्य लहराता हुआ पाते है। यदि कही बाह्य

---

१ रसमीमासा-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३५

२ रसमीमासा-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० वही

३ जयपुर नरेश को विलासबन्धन से मुक्त करने का कार्य प्रसिद्ध है।

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही तें बिंध्यौ आगे कौन हवाल।" बिहारी.

और आभ्यन्तर दोनो सौन्दर्य का योग दिखाई पडे तो फिर क्या कहना है ! यदि किसी अत्यन्त सुन्दर पुरुष की धीरता, वीरता,सत्यप्रियता आदि अथवा किसी अत्यन्त रूपवती स्त्री की सुशीलता, कोमलता, प्रेमपरायणता आदि भी सामने रख दिये जाय तो सौन्दर्य की भावना सर्वांगपूर्ण हो जाती है "[१]।

शक्ति, शील और सौन्दर्य—भगवान् की इन तीन विभूतियो मे से कवि सौन्दर्य को लेकर चला है" "शुद्धकाव्य क्षेत्र मे न कोई बात भली कही जाती है न बुरी, न शुभ न अशुभ, न उपयोगी और न अनुपयोगी सब बातें केवल दो रूपो मे दिखाई जाती हैं—सुन्दर और असुन्दर जिसे धार्मिक शुभ या मगल कहता है कवि उसके सौन्दर्य पक्ष पर ही मुग्ध रहता है और दूसरो को भी मुग्ध करता है। जिसे धर्मज्ञ अपनी दृष्टि के अनुसार शुभ या मगल समझता है उसी को कवि अपनी दृष्टि के अनुसार सुन्दर कहता है। दृष्टि भेद अवश्य है। धार्मिक की दृष्टि जीव के कल्याण, परलोक मे सुख 'भव बन्धन मे मोक्ष आदि की ओर रहती है। पर कवि की दृष्टि इन बातो की ओर नही रहती। यह उधर देखता है जिधर सौन्दर्य दिखाई पडता है।" काव्य मीमासा पृ० ३२, वही।

आचार्य अभिनव गुप्त के अनुसार काव्य मे सौन्दर्य तो होता ही है किन्तु इस तत्त्व के अभाव मे शब्दार्थ को काव्यत्व प्राप्त नही होता। आपने काव्य और सौन्दर्य का अव्यभिचारीभाव अन्वयव्यतिरेक से सिद्ध माना है। आप ने आगे कहा है कि केवल उपमा, रूपक, श्लेष आदि के प्रयोग से शब्दार्थों मे काव्यत्व नही आता, उसके लिये आवश्यक है चारुत्व[२]। इसलिये वे कहते है कि गुणालकार सस्कृत शब्दार्थों मे व्यक्त ध्वनि की ही काव्यसंज्ञा है, वही काव्य का आत्मा[३] है। अन्त मे यहा तक कि अभिनव गुप्त ने चारुत्व (सौन्दर्य) प्रतीति

---

१ रस मीमासा-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ० ३२

२ "तथा जातीयानामिति चारुत्वातिशयवताम् इत्यर्थं सुलक्षिता इति यत्किलैषा तद्विनिर्मुक्त रूपं न तत्काव्येऽभ्यर्थनीयम्। उपमा हि "यथा गौस्तथा गवय" इति। रूपक "गौर्वाहीक" 'इति। श्लेष 'द्विर्वचनेऽचितन्त्रात्मक .... एवमन्यत् न चैवमादि काव्योपयोगीति" काव्यमाला—ध्वन्यालोक —लोचन, पृ० २६२,

३ "काव्यग्रहणाद्गुणालकारोपस्कृतशब्दार्थपृष्ठपाती ध्वनिलक्षणआत्मेत्युक्तम्। लोचन पृ० ३९

को ही काव्यात्मा कहा है[1]।

प्रश्न यह हो सकता है कि आखिर कवि अपने काव्य में इस प्रकार का सौन्दर्योत्पादन किस साधन से करता है? इसका उत्तर यह है कि कवि अपनी अम्लान प्रतिभा से अपना हृदगत-कवि की भावना-सहृदय के हृदय मे संक्रमित करने के लिये शब्द और अर्थ की तथा तद्भावना विषयक प्रसंग की सम्यक् रचना करता है। इस सम्यक् रचना से तात्पर्य शब्द, अर्थ, रीति, अलकार, वक्रोक्ति,ध्वनि आदि तत्त्वो की औचित्यपूर्ण योजना से है। प्रकृति-प्रागण मे यत्र तत्र विस्खलित सौन्दर्य कणों को कवि अपने भावनानुरूप एकत्र कर एक विशिष्ट उज्ज्वल प्रतिभा का निर्माण करता है। कवि कालिदास ने इसी सिद्धान्त को इस प्रकार कहा है —

> "सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेश विनिवेशितेन ।
> सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थसौन्दर्यदिदृक्षयेव ।।"
>
> कुमारसभव १।४९

प्रकृति प्रागण मे यत्र तत्र विस्खलित उपमा-द्रव्यो को ब्रह्मदेव ने (कवि ने) एकत्र किया, उन्हे औचित्यपूर्ण रीति से उचित स्थान पर स्थापित कर पार्वती की मूर्ति का निर्माण किया, केवल एकत्र सन्निविष्ट सौन्दर्य देखने की लालसा से। अपूर्ण प्रकृति की पूर्णता करने के लिए ही मानो कवि का यह प्रयास होता है। और इस कविव्यापार (संकलन व्यापार) मे वाछित भाव सौन्दर्य के प्रभाव की वृद्धि करने के लिए कवि शास्त्र और लोक-रूढि के विपरीत उपमा-द्रव्यो (कवि समय) की काव्य मे योजना करता है। कविसमय की चर्चा हम आगे करेंगे। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सौन्दर्य मगल का प्रतीक है, वह सत्य का प्रतिनिधि होकर हमारे सामने आता है। हृदय और बुद्धि को एक साथ उज्ज्वल, पुष्ट और समुन्नत करने वाले इस काव्य के सौन्दर्य साधन द्वारा आनन्द की प्राप्ति का अर्थ है सत्य की प्राप्ति, सत्य ही ब्रह्म का स्वरूप है। सत्य आनन्द से अभिन्न है और ईश्वर आनन्द स्वरूप है। वस्तुत. ब्राह्मी सृष्टि के मूल मे आनन्द प्राप्ति की प्रेरणा कार्य करती है। इस-आनन्द की प्राप्ति मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। आनन्द की प्राप्ति के लिए मानव

---

१. "चारुत्वप्रतीतिस्तर्हि काव्यस्यात्मा स्यात् [illegible] तदंगीकुर्म एव, नास्ति खल्वयं विवाद इति।

ध्वन्यालोकलोचन, पृ० [illegible] १९३५,

निरन्तर अथक प्रयत्न करता रहता है। मनुष्य मात्र मे आनन्द तत्त्व (परमेश्वर)का अश है।[1] परन्तु मनुष्य के इस परमेश्वर अश पर नित्य व्यावहारिक क्षुद्र भावनाओ की तहे जमती रहती है, यहा तक कि वह निर्मल अनत तत्त्व ढक सा जाता है। वह स्वार्थ भावनाओ मे जकडा रह जाता है। उसे परमेश्वर की सृष्टि का निरीक्षण करने तक का अवकाश नही मिलता। संसार मे कृष्णता ही उसे दृष्टिगोचर होती रहती है। किन्तु काव्य अपने अलौकिक तत्व से दिव्य अश पर जमी हुई क्षुद्र भावनाओ की तहो को, तत्काल दूर कर उसे उसके अनत अश-परमेश्वर अश की पहचान कराता है, और शुद्ध आत्म स्वरूप का दर्शन होने से मानव को उस आनन्द की प्राप्ति होती है जो सभी प्रयोजनो का भी प्रयोजन है, 'और सब विषयो के परिज्ञान से शून्य परमानन्द है। किन्तु यह आनन्दानुभूति केवल बुद्धि के बल से अथवा केवल भावना से प्राप्त नही हो सकती, इसके लिए आवश्यक है भावना और बुद्धि (प्रतिभा) का सन्तुलित सयोग, तभी उस 'सकलप्रयोजनमौलिभूत' आनन्द की प्राप्ति सभव है[2]।

कविता का आधार लौकिक होने पर भी उसका आनन्द स्वरूपत अलौकिक होना है[3]। इसके विषय मे अभिनवगुप्त ने आगे कहा है कि यह आस्वादमात्रस्वरूप एव विभावादि की स्थिति पर्यन्त ही रहने वाला प्रपानक के समान आस्वाद्यमान होता है[4] शुद्ध अनुभूतिमूलक आनद वेद्यान्तरशून्य

---

१. "ममैवांशो जीवलोके जीवभूत सनातन ।"
श्रीमद्भगवद्गीता—अध्याय १५-७

२. "परन्तु आत्मा की तुष्टि के लिए आवश्यक है कि विचार गाभीय हो नवीनता हो, सूक्ष्मदर्शिता हो, हृदय और मस्तिष्क दोनो के पोषण की सामग्री हो।" डा० अमरनाथ झा, चित्ररेखा की भूमिका

३ कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादे स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययो ॥ २७
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्तेव्यभिचारिण.।
व्यक्त स तैर्विभावाद्यै स्थायी भावो रस स्मृत, २८ काव्यप्रकाश ४उ०

४ प्रमाणासकलसहृदयसवादभाजा साधारण्येन स्वाकार इवाभिन्नोऽपि गोचरीकृतश्चर्व्यमाणतैकप्राणो, विभावादिजीवितावधि पानक-रसन्यायेनचर्व्यमाण" काव्यप्रकाश, ४ उल्लास का० २७, २८, सू० ४३

तन्मयता ही काव्य-साधना का चरम लक्ष्य है। इसी आनन्द की प्राप्ति के लिए अपने-अपने विशिष्ट माध्यमो द्वारा सगीत, चित्रकला, नृत्यादि कलायें, साहित्य, धर्म, दर्शन, भक्ति आदि प्रादुर्भूत हैं। यदि इनका यह ध्येय न होता तो मनुष्य अपनी वेदना कैसे सहता? उपर्युक्त विविध साधनाओ मे से काव्य भी भावना का सहारा लिये शब्द और अर्थ का सौन्दर्यरूपी माध्यम बनाकर इस लक्ष्य मे लीन है। मानवहृदय की भावसत्ता का उसे ज्ञान होने से वह मानव हृदय को आदेश (प्रभुसम्मित,) और सलाह (सुहृत् सम्मित) न देकर कान्तासम्मित सरस उपदेश करती हुई एक समयावच्छेदक रूप से (प्रभु और सुहृद् द्वय द्वारा असाध्य लक्ष्यो की) तीन लक्ष्यो की पूर्ति करती है[1]—(१) शिक्षण, (२) रंजन, (३) और प्रेरणा।

काव्य की आत्मा

ऊपर के विवेचन से सुस्पष्ट हो चुका है कि कविता की रागात्मक अभि-व्यजना ही प्रधान है। उसका एक मात्र चरम लक्ष्य उच्चकोटि के आनन्द रस के स्रोत का प्रस्रवण करना ही है। साधन-भेद से लक्ष्यभेद नही होता। चाहे वह साधन ज्ञान प्रधान हो चाहे भावना प्रधान। कर्मवादी मीमासक के मत मे कर्म के विना मुक्ति असभव है[2]। ज्ञानवादियो के मत मे ज्ञान से ही मुक्ति सभव है।[3]

"मनुष्य जब अपने योग-क्षेम, हानिलाभ, सुखदुःख आदि की अपनी पृथक्सत्ता की धारणा से छूटकर-अपने आपको बिल्कुल भूलकर-विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है तब वह मुक्त हृदय होजाता है। जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था

---

१ "प्रभुसम्मितशब्दप्रधानवेदादिशास्त्रेभ्य. सुहृत्सम्मितार्थतात्पर्य-वत्पुराणादीतिहासेभ्यश्च शब्दार्थयोर्गुणभावेन रसाङ्गभूतव्यापार-प्रवणतया विलक्षण यत्काव्य लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म तत् कान्तेव सरसतापादनेनाभिमुखीकृत्य रामादिवद्वर्तितव्यं, न रावणादिवदित्युपदेशं च यथायोग कवे सहृदयस्य च करोतीति सर्वथा तत्र यतनीयम्॥ काव्यप्रकाश उल्लास १।२

२ 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम् तस्मादनित्यमुच्यते। जैमिनि-मीमासा सूत्र १ २, १

३. ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' अभ्यकर,द्वि. आवृ-सर्वदर्शनसग्रह दर्शनाकुरा व्याख्या पृ० ३६८.

रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिये मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और उसे कर्मयोग और ज्ञान योग के समकक्ष मानते है[१]। इस प्रकार सबका लक्ष्य-बिन्दु एक ही है-आनन्द, ब्रह्म या सत्य की अनुभूति या प्राप्ति। वह आनन्द ही ब्रह्म है, ब्रह्म ही आनन्द है और आनन्द ब्रह्म का रूप ही सत्य है[२]। क्षेत्र-भिन्नता से ही नाम-भेद प्रतीत होता है, वास्तव मे स्वरूप तो एक ही है, भावना के क्षेत्र मे जिसे 'आनन्द' 'रस' ब्रह्मानन्दसहोदर कहते हैं, ज्ञान के क्षेत्र मे उसे ही हम सत्य के नाम से अभिहित करते हैं, क्योकि सत्य ही ब्रह्म का पहला नाम है[३]। प्रत्येक मनुष्य नारायण बनना चाहता है[४]। क्योकि मनुष्य उसी सत्, चित्, आनन्द का ही एक अश होने से उस सत्य ज्ञान और अनत पुजीभूत ब्रह्म की प्राप्ति के लिए अपनी रुचि के अनुसार साधन का आश्रय लेकर अपने प्रछन्न रूप से विद्यमान तीनो का विकास करता रहता है और अन्त मे वह स्वय कह उठता है 'सोऽहम्' 'अहं ब्रह्मास्मि'। इस प्रकार रस ब्रह्म की अनुभूति ही मनुष्य की साधना का चरम लक्ष्य है। साधना के उपकरण भिन्न-भिन्न होने पर भी उसी सत्य की ओर उन्मुख हैं। चाहे वह ज्ञानगगा हो, चाहे वह प्रेम भक्ति की यमुना हो और चाहे वह कर्म की सरस्वती हो। निर्धारित सीमा के पश्चात् त्रिवेणी का रूप धारण कर एक ही अपने गन्तव्य सिन्धु मे विलीन हो जाता है।[५]

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'रसमीमासा, काव्य की साधना पृ०, १ २

२. ज्ञान ब्रह्म, आनन्द ब्रह्म, रसो, वै स रसह्येवाय लब्ध्वा आनन्दी भवति" तैत्तिरीय उपनिषद्।

३ सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म' तैत्तिरीयोपनिषत् प्रथम अनुवाक, ब्रह्म, आनन्दवल्ली पृ० ४७ मुंबई प्रकाशन

४ 'नरोनारायणो बुभूषति' जगद्गुरु श्री शकराचार्य श्री भारती कृष्ण तीर्थ स्वामी महाराज द्वारा 'कल्याण गीता अक मे उद्धृत पृ० १७

५ 'सत्य ज्ञानमनन्त च ह्यस्तीह ब्रह्म" पंचदशी श्रीमद्विद्यारण्यमुनि विरचिता तृतीय प्र० श्लो० ३७ शके १८१७' पूना।

६ 'रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषा
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

७ पुष्पदन्ताचार्यः महिम्नस्तोत्र.

किन्तु साधनों की विभिन्नता में 'तर' 'तम', की भावना ने यह एक सहज अनुभवगम्य सत्य का अनुभव कराया है कि उस परम सत्य की प्राप्ति एक दार्शनिक की अपेक्षा कवि, कलाकार, भक्त आदि को सहजगत्या पूर्ण या अखंड रूप मे होती है। कारण यह है कि भारतीय क्रान्तदर्शी मनीषियो ने शरीर मे पच कोषो की कल्पना की है। वे है अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, और आनन्दमय कोष। इन कोषो मे उत्तरोत्तर कोष अधिक सूक्ष्म है। प्रथम दो कोष तो जीवमात्र में समान हैं, मनोमय कोष मानव मात्र मे है, किन्तु बुद्धिप्रधान विषय को लेकर चलने वाले शिक्षित या दर्शनविद् केवल प्रथम तीन कोषो से सन्तुष्ट नही होते, उन्हें आवश्यकता होती है, विज्ञानमय कोष की। कवि, कलाकार और भक्त आदि का संबध आनन्दमय कोष से ही है[1]। क्योकि काव्य निर्मिति या काव्यास्वाद (जैसे पूर्व बतलाया है) का एक मात्र आधार भावना या भाव है। भावनाओ से ही सपूर्ण मानवी प्रवृत्तियो का उद्गम सचालन एव नियंत्रण होता है।[2] भावना के बाष्प से ही मनोयत्र तीव्रगति से चलायमान रहता है और उसकी निरतर गतिशीलता भी उसी पर निर्भर है। डा० वाटवे ने 'रसविमर्श' मे एक स्थान पर रिबो का मत उद्धृत करते हुए लिखा है कि मानवी प्रवृत्तियो का निगूढ उद्गम मानवी बुद्धि मे न होकर उनकी भावना मे है।[3]

तात्पर्य यह है कि जीवन मे (आत्मस्वरूपता) भावनाओ का ही प्राबल्य है[4]। भाव से रस और रस से ही भावो का निर्माण होता है।

---

१. तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्लि, प्रथम अनुवाक,

२ 'रसविमर्श' डा० वाटवे पृ० ३५२ प्रथम आवृत्ति

" Appetite is the very essence of man from which necessarily flow all these things which seem to preserve him" (Ethica iii prop. 9)

रसविमर्श मे 'स्पिनोजा का मत उद्धृत।

3, *"The man is hidden in the heart and not in the head" The Psychology of the Emotions.*

वही, पृ० ३५३

४. आत्मानं रथिन विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ कठोपनिषद्

अभिनवगुप्त के मत मे भावनाओं का व्यापार ही सर्वत्र होने से सपूर्ण विश्व ही रसमय है। इस प्रकार काव्य मे भावना का प्राधान्य होने से उन्ही से रस निष्पत्ति होती है[1]।

पाश्चात्य टीकाकार एव कवियो को भी भावनाओ का महत्त्व स्वीकार है। वर्ड्स्वर्थ की व्याख्या मे तो भावनाओ का स्पष्ट उल्लेख है ही। मिल् की व्याख्या निम्न प्रकार है।

"what is poetry but the thoughts and words in which emotion spontaneously embodies itself ?"

'एनसायक्लोपिडिया ब्रिटानिका मे थिओडोर वेट्स ने काव्य की व्याख्या मे लिखा है–"

"No literary expression can properly speaking, be called poetry which is not in a certain deep sense emotional.

तात्पर्य यही है कि काव्य मे भावना ही मुख्य रसबीज है और वह विभावादिको से उद्दीप्त होने पर रस रूप में परिणत होती है। यही 'रस' काव्य की आत्मा है। (इसे आगे बताया जायगा)

ऊपर का विवेचन इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि काव्य मे रस भाव प्रधान है और शब्द (शब्द-अर्थ) शरीर अभिव्यक्ति का साधन। कवि कविता का जनक होने पर भी कविता उसके लिए 'परकीय अर्थ, है। उसे रसिको को अर्पण कर एव उसके द्वारा सहृदयो को प्रदत्त परितोष मे ही कवि का तोष निहित रहता है[2]। कविता के रस माधुर्य का ज्ञान (कवि की अपेक्षा) सहृदय पाठको को ही होता है[3]। और जब काव्य रचना के बाद कवि भी अपने

---

१ नाट्यशास्त्र अध्याय ६, ३६, ३७, ३८ काव्यमाला ४२, मुबई प्रकाशन "एवं मूलबीजस्थानीयात् कविगतो रस। कविर्हि सामाजिकतुल्य एव। ततो वृत्तस्थानीयकाव्यम्, तत्र पुष्पादिस्थानीयोऽभिनयादि नटव्यापार। तत्र फलस्थानीय सामाजिकरसास्वाद. तेन रसमयमेव विश्वम्।" अ. गु टीका गायकवाड ओरियन्टल सीरीज भाग १ पृ० २९४

२ आपरितोषाद्विदुषा न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।
　　कालिदास शाकुन्तल प्रथमाक

३. कविता रसमाधुर्यं कविर्वेत्ति न तत् कवि।
　　भवानीभ्रुकुटीभग भवो वेत्ति न भूधर॥

काव्य का आनन्द लेने लगता है, तो वह भी उस समय सहृदय रूप में रहता है कवि रूप मे नहीं।[1] एतदर्थ अभिव्यजनात्मक शब्द शक्तियो (अभिधा, लक्षणा व्यजना)—मनोगत को स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त करने वाली शैलियो अलकारो और छन्दो आदि विभिन्न विद्याओ का उसे आश्रय लेना पडता है स्पष्टत ही अभिव्यक्ति के, रस निष्पत्ति के, विभिन्न घटक (शब्दशक्तिया, अलंकार, रीति, छन्द आदि) साधन है, साध्य नही। आत्मा नही, शरीर है। आत्मा के लिए शरीर है न कि शरीर के लिए आत्मा। शरीर तो आत्मा की गति के लिए[2] रसनिष्पति के लिए एक साधन मात्र है।

"अग अगी से भिन्न गुण वाला नही होता इसलिए जीवनकी मूल प्रेरणायें ही साहित्य की मूल प्रेरक शक्तिया हैं"[3]। इस न्याय से 'रथिन आत्मान विद्धि' का प्रभाव साहित्य क्षेत्र मे भी पर्याप्त उलझन का विषय बनकर (काव्य मे प्राधान्य किसका? रस या अलकार का? रीति ध्वनि, या वक्रोक्ति क. ?) अलकार सप्रदाय, रीति सप्रदाय, ध्वनि सप्रदाय व वक्रोक्ति सप्रदाय आदि के रूप मे दिखाई देने लगा।

साहित्य शास्त्र मे भरतादि साहित्य शास्त्रियो ने रसनिष्पत्ति (रागात्मक अभिव्यजना) के विभिन्न घटको का सूक्ष्म विचार किया है। आनन्दवर्द्धनाचार्य से आगे के सम्पूर्ण साहित्य शास्त्रियो ने बहुमत से काव्य घटको मे "रस" को ही प्राधान्य देकर अन्य शेष घटको का गौणत्व उपाग के रूप मे स्वीकार किया है। कविराज विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण मे इन घटकों का गौणप्रधान भाव काव्यपुरुष के रूपक द्वारा स्पष्ट किया है[4]। शब्दार्थ काव्य

---

१. 'कविस्तु सामाजिकतुल्य एव, (अ भा पृ० २९५) गायकवाड प्रकाशन भाग १

२. 'आत्मान रथिन विद्धि, शरीर रथमेव तु ॥ कठोपनिषद् २, ३, १४

'उपनिषदो के ज्ञान के प्रकाश मे एव मनुप्रोक्त आर्य सस्कृति मे लालित पालित भारतवर्ष के साहित्यविदो के जीवन का साहित्य क्षेत्र मे भी यही लक्ष्य रहा तो कोई आश्चर्य नही।

३ 'सिद्धान्त और अध्ययन' गुलाबराय पृ० ६९

४ 'गुणा शौर्यादिवत् अलकारा कटककुण्डलादिवत् रीतयोऽवयवसस्थानविशेषवत् देहद्वारेणेव शब्दार्थद्वारेण तस्यैव काव्यास्यात्मभूत रस मुत्कर्षयन्त काव्यस्योत्कर्षका इत्युच्यते' साहित्यदर्पण १ परिच्छेद। उपर्युक्त

पुरुष का शरीर है, ओज माधुर्यादिगुण. काव्य पुरुष के शौर्यादि गुण है। उपमारूपकादि अर्थालंकार व यमकादि शब्दालंकारादि उस पुरुष के किरीट कुण्डलादि भूषण हैं। रीति उसके अवयव, विन्यासादि और रस उसकी जीवनाधायक आत्मा है।

काव्यपुरुष के रूपक की तरह, काव्य का स्त्रीरूपक भी प्रचलित है। यथार्थतः काव्य के अंग उपांगो की चर्चा करते समय कविताकामिनी का ही रूपक जितना आकर्षक, कौतूहलजनक एवं संवेद्य होता है, उतना उक्त रूपक नही। जगन्नाथ पंडित ने "करुण विलास' मे नायिका की कविता कामिनी की तरह मनोभिरामा कहा है। इसके अतिरिक्त निर्दूषणा, गुणवती, आदि विशेषण साम्यसूचक शब्दो का प्रयोग किया है।

"यस्याश्चोरश्चिकुरनिकर कर्णपूरो मयूरो भासो हास कविकुलगुरु. कालिदासो विलास। हर्षो हर्षो हृदयवसति पचबाणस्तु बाण केषा नैषा कथय कविता कामिनी कौतुकाय ॥ प्रसन्नराघव जयदेव १।२२

यहा तो रही कवियो की बात। टीकाकारो ने भी कविता कामिनी के स्वरूप वर्णन मे आनन्द लिया है। आनन्दवर्धन ने तो काव्य सौन्दर्य को एक स्थान पर अगना के लावण्य की उपमा दी है, तो अन्यत्र व्यग्यार्थ को योषिताओ की लज्जा को शोभा बतलाया है। ध्वन्यालोक उद्योत ३,३,३८

'विभाति लावण्यमिवागनासु। वही उद्योत १ कारि ४

काव्यप्रकाश मे मम्मट ने काव्य से मिलने वाले उपदेश को कामिनी के उपदेश की तरह परिणाम कारक बताया है। काव्य प्र० उल्लास १, कारि० २

इसके अतिरिक्त काव्य शास्त्रज्ञो द्वारा दी हुई काव्य की परिभाषाओ से यही ज्ञात होता है कि साहित्यशास्त्र उपर्युक्त कल्पना पर ही आधारित है। दण्डी ने सर्वप्रथम काव्य परिभाषा मे शरीर शब्द का प्रयोग किया है।

"शरीर तावदिष्टार्थव्यवच्छिना पदावली।'

काव्यादर्श, परि० १ श्लोक १०

वामन ने रीति को काव्य की आत्मा कहकर आत्मा की ओर ध्यान आकर्षित किया है। "रीतिरात्मा काव्यस्य" 'काव्यालकार सूत्र, १,२,६ अन्य भी काव्य शरीर सम्बन्धी कुछ परिभाषाये हैं, जो निम्नानुसार हैं —

(क) हेमचन्द्र ने काव्य की व्याख्या करते समय लिखा है (काव्य मे) मुख्य रस है, और उसका अग (शरीर) शब्दार्थ।

शरीर और आत्मा

इस प्रकार शरीर और आत्मा का काव्यक्षेत्र मे भी अटूट सम्बन्ध है। शरीर के अभाव मे आत्मा के अस्तित्व का प्रश्न ही उपस्थित नही होता। आत्मा के अभाव मे शरीर निर्जीव, जड है, तो शरीर के अभाव में उसकी कोई गति ही नही। काव्य की व्याख्या करते समय विद्वानों ने शरीर के रूपक का ही आश्रय लिया है। इस रूपक के दो भाग हैं १ शरीर व २ रा आत्मा। गच्छता काटेन मानव के इस सूक्ष्म रूपक का विकास दृग्गोचर होता है किन्तु इसका प्रारम्भिक रूप दो भागो मे ही सीमित रहा है। यद्यपि दोनों का (शरीर, आत्मा) सम्मिलित रूप में ही विचार होना चाहिये क्योंकि एक के अभाव में दूसरे का विचार हो ही नही सकता। दोनो अन्योन्याश्रित हैं। आत्मा और शरीर का संयोग सम्बन्ध है। आत्मा की तुलना में शरीर का विचार अधिक आकलन योग्य होने से आत्मा के विचार के पूर्व उसका (शरीर) विचार करना अधिक श्रेयस्कर है।

"रसस्य अगिन, यदंग शब्दार्थौ"—काव्यानुशासन निर्णयसागर अध्याय १ पृ० १७

(ख) विद्यानाथ ने शब्दार्थ को काव्य की मूर्ति कहा है।
"शब्दार्थौ मूर्तिराख्यातौ"। पृ० ३।३, श्लो० २ काव्यप्रकरणम्, प्रतापरुद्रीयम्।

(ग) भामह ने शब्दार्थ मिलकर काव्य होता है, कहा है।
'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्—काव्यालंकार परिच्छेद १, कारि० १६

(घ) रुद्रट' "ननु शब्दार्थौ काव्यम्—काव्यालकार अध्याय २ श्लोक १

(ङ) काव्य को वक्र कहने वाले कुन्तक ने 'शब्दार्थौ सहितौ वक्रकवि-व्यापारशालिनी बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं–वक्रोक्ति जीवितम् उ० १

(च) मम्मट–'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणौ अनलंकृती पुन. क्वापि।
काव्यप्रकाश उल्लास १, ४।

उपर्युक्त परिभाषायें प्राय बाह्यांग से ही सम्बद्ध है। कुछ आचार्यों ने तो आत्म तत्त्व का उल्लेख किया है और कुछ ने नही। विश्वनाथ ने केवल व्याख्या मे काव्य के आत्मभूत तत्त्व को प्रधान स्थान दिया है।

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्, साहित्यदर्पण, परि १ कारिका ३

शब्द और अर्थ

शब्द और अर्थ दोनो अभिन्न है। अर्थ के बिना शब्द का कोई मूल्य नही। कविकुलगुरु कालिदास ने दोनो की अभिन्नता पार्वती परमेश्वर की एकता द्वारा प्रकट की है।[1] काव्य का विचार करते समय विचारणीय वस्तु, उसकी शब्द रचना है। यह काव्य का स्थूल जड़रूप है, फिर भी अर्थशून्य शब्दो का कोई मूल्य नही। वह काव्य क्षेत्र हो या काव्येतर क्षेत्र हो, दोनो मे अर्थ का भाव अपेक्षित है। किन्तु काव्य मे काव्येतर क्षेत्र की अपेक्षा शब्द और अर्थ के प्रयोग के औचित्य की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। आचार्य कुन्तक के अनुसार अन्य शब्दो के रहते हुए भी विवक्षित अर्थ का बोधक केवल एक ही शब्द होता है और सहृदयो को अपने स्पन्द से आह्लादित करने वाला अर्थ होता है।[2] अस्तु।

इस विचार से प्रसगौचित्यपूर्ण सार्थ शब्द की रचना काव्य का एक भाग है। यद्यपि शब्दो की तुलना मे वाच्यार्थ सूक्ष्म है, फिर भी इसकी गणना स्थूल मे ही करनी पडेगी, इसमे दो मत नही हो सकते।

प्रश्न यह है कि शब्द और अर्थ मे किसका प्राधान्य काव्य मे रहता है? केवल शब्द का ही या केवल अर्थ का या दोनो का? इस प्रश्न पर भारतीय काव्य क्षेत्र में अधिक विचार विमर्श हुआ है। इनमे कुछ विद्वान तो केवल शब्द पक्ष मे है और कुछ दोनो के सम्मिलित पक्ष में। प्रथम पक्ष मे दण्डी, अग्निपुराणकार, विश्वनाथ, जयदेव और पडितराज जगन्नाथ हैं। आप लोगो ने शब्द पक्ष पर अधिक बल दिया है। आप के मत मे शब्द की अपेक्षा अर्थ गौण है, वह तो अनायास ही शब्द के पीछे-पीछे आ जाता है।

द्वितीय पक्ष के आलोचको के विचार मे शब्द और अर्थ का सम्मिलित रूप ही काव्य कहला सकता हैं। इस पक्ष के आलोचक भामह, रुद्रट वामन, भोजराज, मम्मट और हेमचन्द्र आदि हैं, आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त प्रसग-

---

१ वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगत पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ। रघुवश १,१

२ शब्दो विवक्षितार्थैक-वाचकोऽन्येषु सत्स्वपि।
अर्थ सहृदयाह्लादकारीस्वस्पन्द सुन्दर॥"
वक्रोक्तिजीवितम्—प्र० उ० का०९

वश इसका उल्लेख करते हैं, अपने पक्ष के समर्थन में पण्डितराज जगन्नाथ ने लिखा है।

"शब्द और अर्थ दोनों सम्मिलित रूप में काव्य के लिये व्यवहृत होते हैं तो यह ठीक नही। एक और एक मिलकर दो होते हैं। दो सम्मिलित इकाइयों का नाम ही दो है। दो के अवयवभूत एक को हम दो कथमपि नही कह सकते। इसी प्रकार श्लोक के वाक्य को आप काव्य नही कह सकते, क्योंकि वह उसका अवयव रूप शब्द ही तो केवल है, अब यदि शब्द और अर्थ को पृथक्-पृथक् काव्य कहा जायगा तो एक पद्य मे दो काव्य होने लगेंगे, जो व्यवहार से नितान्त विरुद्ध है। इसलिये वेद, शास्त्र तथा पुराणों के समान काव्य को भी शब्द रूप ही मानना चाहिये, शब्द और अर्थ के युगलरूप को नही[1]"।

उपर्युक्त पण्डितराज का मत सर्वथा निर्दोष सिद्ध नही होता, क्योंकि जिसका आश्रय लेकर जगन्नाथ ने यह कहा है कि यह व्यवहार विरुद्ध है उसी आश्रय से यह भी कहा जा सकता है कि 'बुद्धं काव्यम्' (मैंने काव्य समझ लिया) इससे स्पष्ट होता है कि काव्य शब्द से अर्थ की प्रतीति होती है। वस्तुत काव्यत्व शब्द और अर्थ के सम्मिलित रूप मे ही विद्यमान रहता है। यदि शब्द पाठक की श्रुति को अनुरंजित करता है, तो अर्थ उसके हृदय को रसानन्द से आप्लावित करता है। अर्थाभाव में शब्द केवल अपनी शक्ति से पाठक के हृदय को उच्चकोटि के आनन्द का अनुभव नही करा सकता। शब्द और अर्थ दोनो मिलकर काव्य हैं। केवल एक ही काव्य नहीं। जैसे प्रत्येक तिल मे तेल की सत्ता रहती है। इसी प्रकार शब्द और अर्थ दोनों मे ही तद्विदाह्लादकारित्व होता है किसी एक मे नही। दोनो के सहयोग से ही काव्य का जन्म होता है। ये (शब्द-अर्थ) दोनों परस्पर अलौकिक आनन्द की उत्पत्ति के लिए मित्रवत् प्रयत्नशील रहते हैं[2]। निष्कर्ष यह है कि शब्द-अर्थ

---

१ भा० सा० शा० प्र०खण्ड बलदेव उपाध्याय

"एको न द्वौ इति व्यवहारस्येव श्लोकवाक्यं न काव्यमिति-व्यवहारापत्ते न द्वितीय एकस्मिन् पद्ये काव्यद्वयव्यवहारापत्ते तस्माद् वेदशास्त्रपुराणलक्षणस्येव काव्यलक्षणस्यापि शब्दनिष्ठतै वोचिता।" रसगंगाधर प्र० आ० पृ० ७

२. शब्दार्थो काव्यम्, वाचको वाच्यश्चेति द्वौ सम्मिलितौ काव्यम्। तस्मात् द्वयोरपि प्रतितिलमिव तैलं तद्विदाह्लादकारित्वं वर्तते न पुनरेकस्मिन्।

का सम्मिलित रूप ही काव्य-शरीर है। यदि शब्द काव्य का स्थूल शरीर है, तो अर्थ उसका लिंग-सूक्ष्म-शरीर। स्थूल शरीर दृष्टिगम्य रहता है और सूक्ष्म-लिंग-शरीर हृदयगम्य। अर्थ काव्य का हृदयगम्य सूक्ष्म शरीर है। और जड़ शरीर का आधेय भी। जिस प्रकार आत्मा शरीर से भिन्न होता है उसी प्रकार शब्द और वाच्यार्थ से काव्यतत्व भिन्न होता है[१]। विभिन्न सम्प्रदायो पर विचार करने के पूर्व काव्यशास्त्र मे आत्मा अर्थ मे यत्र तत्र प्रयुक्त 'जीवित' शब्द भी विचारणीय है। इस विषय मे प्रो० जोग ने अभिनव काव्यप्रकाश मे चर्चा की है। विद्यानाथ ने आत्मा के विषय मे 'जीवित व्यग्यवैभवम्' कहा है। अग्निपुराणकार ने 'रस एवात्र जीवितम्' का उल्लेखकिया है।

वस्तु मे निहित आत्मा का अस्तित्व, उसके जीवित पर से ही अनुमित होता है। दोनो का शरीर से एक ही समय पर अस्तित्व समाप्त होता है। तथापि जीवित और आत्मा भिन्न-भिन्न है, यह स्वीकार किया जाता है। आत्मा है इसलिये जीवित है, यह कहा जाता है। ये दोनो एक न होकर भिन्न-भिन्न है। अतः काव्य क्षेत्र मे भी, पूर्व कथानुसार यही सत्य है। प्रो० जोग के मत मे, जैसा कि ऊपर कहा है "आत्मा और जीवित शब्द एक ही अर्थ मे प्रयोग करना भूल है। काव्य, चित्र, शिल्प आदि ललित कलाओ का अस्तित्व उनमे निहित सौन्दर्य पर ही अवलबित है। सौन्दर्य ही उनका प्राण जीव है। इस सौन्दर्य को साहित्यशास्त्र मे कोई वैचित्र्य कहता है तो कोई चमत्कृति, कोई विच्छित्ति कहता है, तो कोई चारुत्व, हृद्यत्व आदि। यह सौन्दर्य काव्य का जीवित होने पर भी उसकी आत्मा नही हो सकता"।[२]

उपर्युक्त प्रो० जोग महोदय के मत का निष्कर्ष यह है कि 'आत्मा' और जीवित का निकट संबध है। आत्मा की सत्ता जीवित अवस्था से ही लक्षित

"मम सर्वगुणौसन्तौ सुहृदाविव संगतौ।
परस्परस्य शोभायै शब्दार्थौ भवतो यथा ॥
वक्रोक्ति जीवितम् का० ७ प्र० उ० श्लो० १८

१ 'आत्मा चिदानदमयोविकारवान्देहादिसघातव्यतिरिक्त ईश्वर —अध्यात्मरामायण सुन्दरकाड २०

'एतेभ्य' सूक्ष्मशरीराणि स्थूलभूतानि चोत्पद्यन्ते ॥ १२
सूक्ष्मशरीराणि सप्तदशावयवानि लिंगशरीराणि—१३—सृष्टिक्रम वे० सा०

२ अभिनव काव्यप्रकाश, प्रो० जोग पृ० ८

होती है, फिर भी आत्मा और जीवित दोनो भिन्न-भिन्न हैं। दोनो को अभिन्न समझना महती भूल है। किन्तु इस भूल का कारण, मेरी समझ में काव्यशास्त्र का दार्शनिक दृष्टि से, परिष्कार किया जाता है। काव्यशास्त्र के आचार्य विभिन्न दर्शनो के अनुयायी होने से, काव्यशास्त्र मे भी दार्शनिक शब्दो का प्रयोग होना आश्चर्य नही। ललित कलाओं का अस्तित्व उनमे निहित सौन्दर्य पर होता है। सौन्दर्य आत्मा की सत्ता को सूचित करता है। वस्तुत: काव्य मे सौन्दर्य तत्व गौण न होकर प्रधान है। सौन्दर्य के अभाव में शब्दार्थों को काव्यत्व ही प्राप्त नही हो सकता। आचार्य अभिनवगुप्त के मत मे काव्य और सौन्दर्य का अव्यभिचारी भाव अन्वयव्यतिरेक से सिद्ध है। इसलिये गुप्त जी ने 'चारुत्व प्रतीति को काव्यात्मा स्वीकार कर लिया है'[1]। विद्वानों ने इस सौन्दर्य को अनेक भिन्न-भिन्न शब्दो द्वारा अभिव्यक्त किया है। नव विकसित पुष्प का सौन्दर्य उसकी जीवित अवस्था के साथ-साथ आत्मा के अस्तित्व को भी सूचित करता है और उसकी म्लानावस्था आत्मा के अभाव को। इसी अर्थ मे अभिनवगुप्त ने सौन्दर्य को आत्मा कहा है। सौन्दर्य (अलकारादि) काव्य का जीवित होने पर भी वह आत्मा का स्थान ग्रहण नही कर सकता। आत्मा के अस्तित्व पर ही यथार्थ सौन्दर्य का अस्तित्व निर्भर रहता है अत यह मत समीचीन है, जैसा कि हम ''काव्य के विभिन्न संप्रदाय' के अन्तर्गत देखेंगे। यद्यपि काव्यगत सौन्दर्य विद्वानों ने विभिन्न रूपो मे (ध्वनि, अलकार गुण) देखने का प्रयत्न किया है, किन्तु रस ही उन सबका (प्राणतत्व) आत्मतत्व है। सारत इन आचार्यों ने 'जीवितम्' शब्द का प्रयोग उसकी प्रधानता द्योतित करने के लिये ही किया है।

ऊपर का विवेचन हमे इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि साहित्यविदों के सामने प्रधानभूत विषय था काव्य की आत्मा का विवेचन। वह कौन तत्व है जिसके अस्तित्व से काव्य मे काव्यत्व विद्यमान रहता है। इस जिज्ञासा मूलक प्रश्न के उत्तर मे साहित्यशास्त्र में अनेक सम्प्रदायो का उद्‌भव हुआ। इस काव्य संप्रदाय की कल्पना का औचित्य हम आगे कहेंगे। कुछ विद्वानों ने अलंकार को ही काव्य का प्रधानभूत आत्मतत्त्व माना, कुछ ने

---

१. "यच्चोक्तम् चारुत्वप्रतीतिस्तर्हि काव्यस्यात्मा स्यात् इति,
तदंगीकुर्म एव, नास्ति खल्वयं विवाद इति।"

ध्वन्यालोक-लोचन पृ० ३९ उद्योत १

रीति को, कुछ विद्वानो ने ध्वनि को, कुछ ने वक्रोक्ति को और कुछ ने औचित्य को। इस प्रकार काव्य के प्रधान तत्त्व की समीक्षा के विषय मे भिन्न-भिन्न मत होने से भिन्न-भिन्न शताब्दियो मे अनेक संप्रदायो का निर्माण होता गया। ध्वन्यालोक मे तीन विरोधी सप्रदायो का उल्लेख है[1]। एक ध्वनि के अस्तित्व को ही न माननेवाला, दूसरा ध्वनि का अन्तर्भाव भक्ति या लक्षण मे करने वाला, और तीसरा ध्वनि को लक्षणातीत एव केवल सहृदय सवेद्य होने से शास्त्रीय चर्चा के क्षेत्र मे न माननेवाला है। इसके अतिरिक्त लोचनकार ने प्रथम सप्रदाय ध्वन्यभाव के तीन उपसप्रदायो का भी उल्लेख किया है[2]। इसी प्रकार अलकारसर्वस्व के टीकाकार 'समुद्र-बन्ध' ने इन सप्रदायो की चर्चा की है। उनका कहना है कि विशिष्ट शब्द और अर्थ सम्मिलित रूप में काव्य होते है। शब्द और अर्थ का यह वैशिष्टय धर्ममुख से, व्यापारमुख से और व्यग्यमुख से तीन प्रकार से आ सकता है। धर्ममुख से वैशिष्टय प्रतिपादन करनेवाले दो सप्रदाय— १ अलंकार, २ गुण या रीति। व्यापारमुख से वैशिष्ट्य प्रति-पादन करनेवाले दो हैं। १ भणिति वैचित्र्य (वक्रोक्ति), २ भोजकत्व (रससप्रदाय) और व्यग्यमुख से शब्दार्थ मे वैशिष्टय प्रतिपादन करनेवाले ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धनाचार्य हैं। इसमे गुण या रीति से काव्य मे वैचित्र्य (चमत्कार) मानने वाले 'वामन' रीति सप्रदाय के प्रतिपादक है। वक्रोक्ति से चमत्कार माननेवाले आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति सप्रदाय के प्रतिपादक है। भोजकत्व व्यापार की कल्पना करनेवाले भट्टनायक और व्यग्य से वैशिष्टय माननेवाले आचार्य आनन्दवर्धन हैं[3]। इसमे भरत के

---

१. "काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैय समाम्नातपूर्व (ध्वन्यभाववादी)
तस्याभाव जगदुरपरे [लक्षणान्तर्भाववादी] भाक्तमाहुस्तमन्ये।
(सहृदयहृदयसवेद्यवादी) केचिद्वाचा स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयम्॥
ध्वन्यालोक १ उद्योत। १।१

२. 'इह विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्। तयोश्च वैशिष्टय धर्ममुखेन, व्यापारमुखेन, व्यंग्यमुखेन वेति त्रय पक्षा। आद्येऽप्यलकारतो गुणतो वेति द्वैविध्यम्। द्वितीयेऽत्रापि भणितिवैचित्र्येण भोगकृत्वेन वेति द्वैविध्यम्। इति पञ्चसुपक्षेष्वाद्य उद्भटादिभिरगीकृत., द्वितीयो वामनेन, तृतीयो वक्रोक्तिजीवितकारेण, चतुर्थो भट्टनायकेन, पचम-श्चानन्दवर्धनेन।

'रस' संप्रदाय का स्पष्ट उल्लेख नही है। भट्टनायक वस्तुतः रससंप्रदायी हैं। भरत के 'रस' की निष्पत्ति समझने के लिये भट्टनायक ने 'भोजकत्व' व्यापार की नवीन कल्पना की है। इसके अतिरिक्त अन्य दो सप्रदाय काव्यक्षेत्र मे आये किन्तु आगे चलकर उनके कोई अनुयायी न होने से, वे पनप न सके। वे ये हैं– १ महिमभट्ट का अनुमान संप्रदाय। इस संप्रदाय के अनुसार ध्वनि-प्रकारों का समावेश अनुमान मे ही हो जाता है।[1] और दूसरा क्षेमेन्द्र का औचित्य सप्रदाय। अलकारसर्वस्व के टीकाकार जयरथ ने अपनी विमर्शिनी मे दो पद्यो को उद्धृत कर बारह ध्वनि विरोधी सप्रदायो का उल्लेख किया है। किन्तु इन द्वादश सप्रदायो मे से केवल तीन ही सप्रदायो को प्रधान[2] बताकर आनन्दवर्धनोक्त तीन सप्रदायो के अन्तर्गत उनका समावेश कर दिया है[3]।

अलंकार संप्रदाय

काव्यशास्त्र मे संप्रदाय का महत्वपूर्ण स्थान है। रससंप्रदाय और अलकार सप्रदाय सभवत समकालीन है, क्योकि उभय तत्वो का उल्लेख वेद में प्राप्त है। अलकार सप्रदाय के प्रवर्तक भामह हैं तथा इस मत के पोषक और अनुयायी उद्भट और रुद्रट हैं। (भोज आदि), दण्डी को भी अलकार सप्रदाय में परिगणित करने मे कोई अनुपयुक्तता प्रतीत नही होती क्योकि इन्हे भी अलकार की प्रधानता स्वीकृत थी ही। किन्तु दण्डी काव्य में गुणों एव रीतियो को अलकार के तुल्य ही प्रधानता देते है। इस सप्रसाय के अनुसार

काणे सस्कृत, सा. शा, चा इतिहास मराठी, पृ० २८२ पर उद्धृत समुद्रबन्ध अलंकारसर्वस्व टीका त्रिवेन्द्रम् प्रति पृ० ४

१. अनुमाने ऽन्तर्भाव सर्वस्यैव ध्वने प्रकाशयितुम्।
व्यक्तिविवेक कुरुते प्रणम्य महिमा परां वाचम्॥ चौखं० प्रकाशन व्यक्तिविवेक १।१

२, 'तात्पर्यशक्तिरभिधा लक्षणानुमिती द्विधा।
अर्थापत्तिः क्वचित्तन्त्र समासोक्त्याद्यलकृति ॥
रसस्य कार्यता भोगो व्यापारान्तरबाधनम्
द्वादशेत्थं ध्वनेरस्य स्थिता विप्रतिपत्तयः॥ विमर्शिनी पृ० ९

३. तथापि काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति इत्युक्तनीत्यैव ध्वनेर्विप्रतिपत्ति-प्रकारत्रयमिह प्राधान्येनोक्तम्। पत्र ९ वही
इस विषय में प्रो० सोवनी का 'ध्वनिकारापूर्वी के अलंकार शास्त्रातीत सम्प्रदाय, भाडारकरस्मृतिग्रन्थ मे प्रकाशित लेख पठनीय है। पत्र ३८३

अलंकार ही काव्य का प्रधान तत्व (जीवातु) है। काव्य मे अलकार का महत्त्व प्रकट करने के (मम्मट की अनलंकृती पुन क्वापि, पर आक्षेप करते हुए) हेतु ही जयदेव ने कहा है कि जो विद्वान काव्य को अलकार हीन स्वीकार करते है, वे अग्नि को अनुष्ण क्यो नही मानते[१]। रुय्यक ने प्राचीन आलंकारिकों के मतानुसार काव्य मे अलकारो की सत्ता प्रधान रूप से स्वीकार की है[२]। वामन ने अलकार का प्राधान्य द्योतित करने के लिये ही काव्य को अलकार युक्त होने से ग्राह्य बताया है। किन्तु वामन ने यहा 'अलंकार', शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ मे किया है। उनका तात्पर्य काव्य के 'सौन्दर्यमात्र' से है। और काव्य सौन्दर्य से ही उपादेय होता है। इस सौन्दर्य की निर्मिति के साधनभूत उपमादि हैं। साधनदृष्टि से ही उन्हे अलकार कहा है। और वह सौन्दर्य, दोषो के हान और गुण तथा उपमादि अलंकारो के उपदान से सपन्न होता है[३]।

सर्वप्रथम भरत ने नाट्योपयोगी चार अलकारो का निर्देश नाट्यशास्त्र मे किया है। वे है उपमा, दीपक, रूपक और यमक इनमे तीन अर्थालकार और एक शब्दालकार (यमक) है[४] इन्ही चार अलकारो का विकसित और परिवर्धित रूप १२५ सख्या मे कुवलयानन्द मे देखने को मिलता है।

गच्छताकालेन अलंकारो के स्वरूप मे भी परिवर्तन आचार्यो ने किया। अलंकार सप्रदाय के आद्यप्रवर्तक भामह ने वक्रोक्ति को ही सपूर्ण अलकारो का आधारतत्व माना था, उनके मत मे कोई भी अलंकार वक्रोक्ति से रहित नही हो सकता[५]। आगे चलकर वामन ने इसे अर्थालकार माना और रुद्रट ने इसे शब्दालकार मे रखा। इसके अतिरिक्त वामन ने उपमा को और दण्डी ने

---

१. 'अंगीकरोति य काव्य शब्दार्थावनलकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ॥ चन्द्रालोक १।८

२. तदेवमलकारा एव काव्ये प्रधानमिति प्राच्याना मतम्।"
अलकारसर्वस्व, पृ० ७

३. 'काव्य ग्राह्यमलकारात्।' १।१।१ का. अ सू. वामन वही १।१।३

४ उपमा दीपकं चैव रूपकं यमकं तथा काव्यस्यैते ह्यलंकाराश्चत्वार परिकीर्तिता ॥ ना.शास्त्र, अध्याय १६।४१

५. "सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्या कविना कार्य. कोऽलकारोऽनया विना ॥"
काव्यालंकार २।८५

अतिशयोक्ति को अलकारों का मूल माना[1]। अलकारों का संख्या की दृष्टि से विकास इस प्रकार है—भामह ने ३८, दण्डी ने ३७, वामन ने ३१, उद्भट ने ४०, मम्मट ने ६९, चन्द्रालोककार ने १०० और कुवलयानन्द ने १२५ अलंकारो का निरूपण किया है।

उपर्युक्त विवेचन का यह तात्पर्य नही कि उक्त विद्वानो को काव्य का प्रधानतत्व रस अज्ञात था। यह तत्व उन्हे पूर्णरूप से अवगत था, अन्तर इतना ही है कि उन्होने अलंकार को गौणरूप मे स्वीकार न कर प्रधान रूप मे मान्य किया है। जिस प्रकार नायिका का मुख कान्त होने पर भी अनलंकृत होने से शोभा नही देता, उसी प्रकार कान्तिगुण-विभूषित होने पर भी अनलकृत कविता मे विभावन का सामर्थ्य उदित नही होता[2]। इस वचन को कहनेवाले भामह ने इस का उल्लेख करते हुए महाकाव्य मे उसकी स्थिति आवश्यक बताई है[3]। "रसवत्" अलकारो के वर्णन मे श्रृंगारादि रसो का निर्देश भी किया है[4]। दण्डी रसतत्व से परिचित हैं, उन्होने रसवत् अलंकार के अन्तर्गत आठो रस और आठ स्थाई भावो का उल्लेख किया है[5]। उन्होने माधुर्य गुण के अन्तर्गत रस की स्थिति मानी है[6]।

उद्भट ने 'रसवत्' अलंकार की व्याख्या करते हुए आगे स्थायीभाव, सचारीभाव, विभाव आदि पारिभाषिक सज्ञाओ का निर्देश कर, रस की नव-प्रकारता भी मानी है[7]। रुद्रट ने काव्य को प्रयत्नपूर्वक रसयुक्त करने के लिए कहा है[8]। १२ से १४ तक तीन अध्यायो मे रुद्रट ने केवल श्रृगाररस का

---

१. वामन—चतुर्थ अधिकरण—द्वितीय अध्याय।
   दडी—द्वितीय परिच्छेद २२० श्लो० काव्यादर्श.

२. न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम् भामह-काव्यालकार १।१५

३ 'युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलै पृथक्।'

४. 'रसवद्दर्शितस्पष्टश्रृंगारादि रसं यथा' वही १।२१
   भामह-काव्यलकार। ३।६

५ "इह त्वष्टरसायत्ता रसवत्ता स्मृता गिराम्" काव्यादर्श—२।२९२
   प्राक् प्रीतिर्दर्शिता सेयं रति. श्रृगारता गता॥ वही २।२८१

६ 'मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थिति.' वही, १।५१

७. रसवद् दर्शितस्पष्टश्रृगारादि रसोदयम्।' उद्भट काव्यालंकार ४-२-४

८. 'तस्मात् तत् कर्तव्यं यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम्।' रुद्रट काव्यालंकार १२-२

विवेचन किया है। इनके मत में शृंगाररस ही सर्वश्रेष्ठ रस है[१]। अलंकार मत की ओर रुचि होने पर भी यत्र-तत्र रस का उल्लेख किया है[२]। ग्रन्थकारों के अतिरिक्त उद्भट के 'काव्यालंकार संग्रह' के टीकाकार प्रतीहारेन्दुराज ने उद्भट के काव्य हेतु काव्यलिंग अलंकार पर टीका लिखते हुए अपना रसमत स्पष्टतया उद्घोषित किया है[३]।

इस प्रकार उपर्युक्त उल्लेखों का यही तात्पर्य है कि अलंकार संप्रदाय के मान्य आचार्यों को (भामह, दंडी, उद्भट तथा रुद्रट) रस तत्व से पूर्ण परिचय था। किन्तु वे काव्य मे अलंकारो को ही महत्व देते है। और अलंकार की अपेक्षा 'रस' को गौण समझ कर उसका अलंकार मे अन्तर्भाव करते हुए एक स्वतन्त्र 'रसवत्' अलंकार की कल्पना करते हैं। भामह और दंडी ने गुण और अलंकार मे कोई भेद नही किया। दंडी ने तो काव्य के दसो गुणो को अलंकार ही कहा है[४]।

अलंकार और ध्वनि

अलंकारसर्वस्वकार के मत मे भामह तथा उद्भट आदि आचार्यों ने प्रतीयमान अर्थ को वाच्य का सहायक मान कर उसे अलंकार के अन्तर्गत समाविष्ट किया है[५]।

भामह को 'प्रतीयमान' अर्थ से पूर्ण परिचय था। आपने समासोक्ति, आक्षेप, पर्यायोक्ति, अलंकारो के भीतर 'प्रतीयमान' अर्थ की कल्पना की है।[६]

---

१ वही १४-३८ २. १,४ वही

३ 'न खलु काव्यस्य रसाना वा अलकार्यालंकारभाव
किन्तु आत्मशरीरभाव रसा हि काव्यस्य आत्मत्वेन अवस्थिता,
शब्दार्थौ च शरीररूपतया।'

४ काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान् प्रचक्षते……
काश्चिन्मार्गविभागार्थमुक्ता प्रागप्यलंक्रिया। काव्यादर्श-परि० २ १,३

५ 'इह तावत् भामहोद्भट प्रभृतयश्चिरन्तनालंकारकारा
प्रतीयमानार्थवाच्योपस्कारतया अलंकारपक्षनिक्षिप्तम् मन्यते।'
रुय्यक-अलंकारसर्वस्व. पृ० ३.

६ यत्रोक्ते गम्यतेऽन्योऽर्थस्तत्समानविशेषण।
सा समासोक्तिरुद्दिष्टा संक्षिप्तार्थतया यथा॥ भामह काव्यालंकार
पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते। २।७९
वाच्यवाचकवृत्तिभ्यां शून्येनावगमात्मना॥ वही ३।८

रुद्रट ने 'भावनामक' अलंकार के दो प्रकारो का उल्लेख करते हुए व्यग्यार्थ की सत्ता स्वीकार की है[1]। और इन दोनो के उदाहरणों को क्रमश मम्मट और अभिनवगुप्त ने अपने अपने ग्रन्थो मे गुणीभूत व्यंग्यो के उदाहरणो मे उद्धृत किया है। तात्पर्यत रुद्रट को भी व्यग्य का सिद्धान्त पूर्णरूप से ज्ञात था।

साराश यही है कि भामह और दण्डी आदि अलकारिक आचार्यों ने काव्यक्षेत्र मे अलकार का जो महत्त्व प्रतिपादन किया वह दीर्घकाल तक कुछ अशो तक बना ही रहा। आगे ध्वनिवादियो ने भी अलकार तत्व से उदासीनता प्रकट नही की। ध्वनिसम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य मम्मट भी 'अनलकृतीपुन. क्वापि' कहकर काव्य मे अलकार के प्रति मोह प्रकट करते हैं।

आलोचना

रस, ध्वनि, गुण आदि काव्यतत्वो की अपेक्षा अलकार बाह्य शोभा के जनक है। इस विषय मे दो मत नही हो सकते। लक्षण ग्रन्थों के प्रणेताओ (भामह, दण्डी, वामन) की दृष्टि काव्य के बाह्याग पर ही लिप्त रही। काव्यचर्चा करते हुए आपने रीति और अलकार का ही विवेचन किया है। नि सन्देह शब्दालकारो अथवा अर्थालंकारो से काव्य को सौन्दर्य प्राप्त होता है। इसी अर्थ मे वामन ने 'सौन्दर्यमलकार' कहा है। किन्तु सहृदय को केवल बाह्याग से ही कभी आनन्द प्राप्त नहीं होता। तस्मात् वह अन्तरग अर्थ सौन्दर्योन्मुख हो जाता है। केवल अनुप्रासजनित शब्दचमत्कृति सहृदय को आनन्द नही दे सकती, उसे अर्थसौन्दर्य भी अपेक्षित है। अर्थचमत्कृति ही अर्थालंकारो की जननी है। अर्थालकार काव्येतर वाङ्मय से काव्य को उच्चासन पर खींच ले जाते है। इसलिये यदि अर्थ-तत्व अर्थात् अर्थालकार को काव्य के बाह्याग शब्दों की अपेक्षा प्रधान तत्व समझा गया तो कोई आश्चर्य नही। फिर भी काव्यात्मा 'रस' से वे अधिक दूर भी नहीं रह सकते। सामान्यत. आलकारिक भाषा के विना काव्य पंगु बन जाता है। यदि पुनरुक्ति न हो तो स्मरणरूप मे यह यहा कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि भामह के मत मे वक्रोक्ति अलंकारो का जीवनाधायक तत्व है। कवि लोकव्यवहार और शास्त्र मे प्रयुक्त शब्द, अर्थ के उपनिबन्ध से भिन्न सहृदयाह्लादकारी रचना करना चाहता है। इसी अर्थ में भामह ने वक्रोक्ति से हीन

---

१. रुद्रट-काव्यालंकार, ७,३८,४०
उदाहरणरूप में उद्धृतश्लोक वही ७।३९, ४१

कथन को (वार्ता) कहा है। उस वार्ता को काव्यक्षेत्र में परिगणित नहीं किया है। दण्डी ने स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति के आधार पर वाङ्मय के दो भेद किये हैं। ध्वन्यालोककार के मत मे तो अतिशयोक्ति जिस अलंकार को प्रभावित करती है उसे ही शोभातिशय प्राप्त होता है, अन्य तो केवल अलकार ही रह जाते हैं।[१] कहने का तात्पर्य यह है कि कवि के मनोगत या उसकी भावनाभिव्यक्ति के साथ-साथ शब्दार्थ योजना का भी निर्माण होता है और इसलिये बाह्याग अलकारो की आवश्यकता भी है। रस की दृष्टि से उनका स्थान गौण है, फिर भी रसौचित्य की दृष्टि से उनकी योजना होने पर वे (अलकार) शोषक न होकर पोषक बन जाते हैं।[२] काव्य मे रस का ही महत्व है। उपमादि अलंकारो से भूषित होने पर ही घनरस के अभिषेक के बिना काव्य महाकाव्य के आसन पर स्थित नही हो सकता।[३] और इसी मे अलकारत्व की कल्पना भी निहित है। किन्तु अलकारसम्प्रदाय मे काव्यानन्द का कारण काव्य का बाह्य सौन्दर्य समझा गया। फलत काव्य का बाह्य सौन्दर्य ही आनन्द का गौण घटक होने पर भी प्रधान तत्व के रूप मे स्वीकृत हुआ।

रीति सम्प्रदाय—

रीति सम्प्रदाय के प्रधान प्रतिष्ठापक आचार्य वामन हैं। आचार्य वामन के पूर्व भी किसी रूप मे (मार्ग) रीति पर विचार-विमर्श हो चुका था।[४] परन्तु वामन के ग्रंथ मे रीति विचार-विमर्श जितना सूक्ष्मावस्था तक हुआ उतना किसी पूर्ववर्ती लक्षणग्रथ मे नहीं हुआ। वामन ने रीति को काव्य की

---

१. अतिशयोक्तिर्यमलंकारमधितिष्ठति तस्य चारुत्वातिशययोग.
अन्यस्य अलकारमात्रता। 'ध्वन्यालोक ३।३७

२ ध्वन्यालोक—उद्योत २।१७ वही उद्योत ३।६

३ तैस्तैरलकृति शतैरवतंसितोऽपि
रूढो महत्यपि पदे धृतसौष्ठवोऽपि।
नूनं विना घनरसप्रसराभिषेकं
काव्याधिराजपदमर्हति न प्रबन्धः॥
मंखक श्रीकण्ठचरितम् २।३२

४. वामन के पूर्ववर्ती भामह ने रीति के स्थान पर मार्ग, शब्द का प्रयोग किया है और तीन के स्थान पर केवल दो ही भेद किये हैं। "वैदर्भ मार्ग, गौडीय मार्ग, भामह काव्यालंकार। १,३१ = ३५

आत्मा कहा है[१]। लक्षण शब्दावली मे 'काव्य की आत्मा' इस प्रकार के शब्द प्रयोग करने का श्रेय वामन को ही है। पदो की विशिष्ट प्रकार की रचना ही रीति है, यह पदरचना का वैशिष्ट्य गुणाश्रित है।[२] इस प्रकार गुणात्मक पदरचना का नाम ही 'रीति' है। गुणों के अभाव मे रीति का कोई मूल्य नहीं। तस्मात् 'रीति' सम्प्रदाय 'गुण' सप्रदाय के नाम से भी अभिहित होता है। यह रीति तीन प्रकार की १. वैदर्भी, २. गौडीया, ३. पाचाली मानी है। इनमे समग्र गुणयुक्ता वैदर्भी, ओज और कान्ति गुण-युक्ता गौडी तथा माधुर्य एव सौकुमार्य गुणयुक्ता पाचाली रीति है[३]।

आचार्य वामन के पूर्व दण्डी ने इसी को 'मार्ग' कहा है। और संक्षेप मे चार श्लोको मे इसका निरूपण किया है[४]। भामह तो न रीतिपक्ष मे थे और न मार्गपक्ष मे। उन्होने इस मार्ग या रीति की कल्पना को गतानुगतिक न्याय से भेडचाल ही कहा है[५]। आनन्दवर्धनाचार्य ने 'रीति' नाम न देकर 'सघटना' शब्द का प्रयोग करते हुए उसे गुणाश्रित कहा है[६]। राजशेखर ने वामनोक्त तीन रीतियो का उल्लेख काव्यमीमासा मे किया है[७]। 'वक्रोक्ति' सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य कुन्तक ने पूर्ववर्ती आचार्योक्त रीति के नाम निर्देश का खण्डन कर, रचनाशैली के आधार पर सुकुमार, मध्यम और विचित्र तीन भागो का प्रतिपादन किया है[८]।

रुद्रट ने 'लाटीया, का अधिक उल्लेख कर, रीतिसंख्या मे वृद्धि की है[९]।

---

१. रीतिरात्मा काव्यस्य, विशिष्टा पदरचना रीति ।
काव्यालंकार —सूत्रवृत्ति, अधिकरण १

२ विशेषो गुणात्मा, १, २, ८, वही अध्या० २, सूत्र ६, ७

३ सा त्रिधा, वैदर्भी, गौडीया पाचाली चेति कव्यालकार सूत्रवृत्ति २–९
समग्रगुणा वैदर्भी २ · ११, ओज कान्तिमती गौडी २ : १२,
माधुर्यसौकुमार्योपपन्ना पाचाली २, १३, वही

४. दण्डी काव्यादर्श प्रथम परिच्छेद ४० से ४२, १०१

५. भामह का० ल० १।३२

६ ध्वन्यालोक ३,५,६

७ राजशेखर, काव्यमीमांसा तृतीय अध्याय कर्पूरमंजरी की नान्दी मे मागधी, का भी उल्लेख है।

८. वक्रोक्ति जीवितम् १ २४

९. रुद्रट काव्यालंकार ७,२,४,६

भोजराज ने सरस्वतीकण्ठाभरण मे पूर्व की चार रीतियो की संख्या मे दो नाम अधिक जोड़कर १ अवन्तिका, २ मागधी, उनकी सख्या छह कर दी। रीति की सख्या मे एवं नामो मे परिवर्तन होता रहा है और अन्त मे केवल तीन रीतिया ही स्वीकृत हुई। नाटयशास्त्र मे वर्णित गुणो को ही दडी और वामनने स्वीकार किया है। नाटयशास्त्र मे रस को प्रधान बताकर अलकार और गुण को गौण बताया है[1]। दडी ने अलंकार व गुण मे कोई भेद प्रकट न करते हुए शब्द व अर्थ के अलंकार को ही महत्व प्रदान किया है।

आलोचना—

वामन ने सर्वप्रथम गुण और अलकार मे भेद स्पष्ट किया। उनके मत से काव्य में शोभा उत्पन्न करने वाले धर्म गुण हैं और उस उत्पन्न शोभा मे वृद्धि करने वाले अलकार है[2]। अलकारों की अपेक्षा गुण अधिक महत्वपूर्ण हैं। वे नित्य हैं, उनके अभाव मे काव्यशोभा की उत्पत्ति नही हो सकती। वामन ने दस शब्दगुण और दस ही अर्थगुण माने है[3]। प्रारम्भ मे गुणो की सख्या मे भी वृद्धि होती गई है, यहा तक कि भोजराज ने शब्द और अर्थ के ४८ गुणों का विवेचन किया है। यह गुणों मे वृद्धि उचित भी प्रतीत होती है। काव्य को मानवी रूप देकर गुणो की सख्या निश्चित या मर्यादित करना उसके वास्तविक स्वरूप से अनभिज्ञ रहना है। आगे चलकर इन गुणो का अन्तर्भाव मम्मटोक्त तीन गुणो माधुर्य ओज, प्रसाद मे ही हो जाता है। यह एक प्रकार से दुराग्रह मात्र है। किन्तु काव्यप्रकाशकार का गुणविषयक विवेचन मनोवैज्ञानिक होने से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गुण आत्मा के है, शरीर के नही, यह सूचित कर मम्मट ने मानसशास्त्रीय सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। स्थूल या कृश शरीर को देखकर शूरत्व या भीरुत्व की कल्पना करना, एक प्रकार से सत्य से मुख मोडना है[4]।

ये माधुर्यादि गुण केवल वर्णमात्र पर आश्रित न रहकर समुचित वर्णो द्वारा काव्य मे व्यंजित होते हैं। इस प्रकार गुण केवल वर्णविशेष न होकर

---

१ ना० शा० १६।१०४

२. काव्यशोभाया कर्तारो धर्मा गुणा, तदतिशयहेतवस्त्वलकारा।
वामन का० सू० ३,१,१ = २

३ पूर्वे नित्या'''' ''तैर्विना काव्यशोभानुपपत्ते, वही

४. त्रय ते, न पुन दश, काव्यप्रकाश उल्लास ८, कारि ३

एक प्रकार से चित्तवृत्ति विशेष हैं[1]। यहां एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि चित्तवृत्ति विशेष गुण होने पर 'रस' की क्या स्थिति है? इसका उत्तर देते हुए डा० वाटवे ने लिखा है कि कवि की भावना ही काव्यगत रस होता है। भावना कविहृदय मे जागरित होने पर उसके मन की व उसके ज्ञानतन्तुओ की तदनुरूप अवस्था का नाम गुण है[3]। मम्मट का गुणो के विषय में उल्लेखनीय कार्य यह है कि उसने माधुर्य, ओज और प्रसाद ये तीन गुण कवि के या वर्णित पात्रो की मन स्थिति मे किस प्रकार संबद्ध हैं, इस विषय को मनोवैज्ञानिक रीति से प्रतिपादित किया है। मम्मट ने मन की तीन अवस्थाये कल्पित की है। १. द्रुति, अर्थात् गलितत्व, २. दीप्ति अर्थात् उद्दीप्त होना ३ व्याप्ति अर्थात् चित्तविकास। इन उपर्युक्त तीन अवस्थाओ के माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण क्रमश कारणभूत हैं। संभोगशृंगार, विप्रलंभशृंगार, करुण और शान्त। इन रसो का परिपोष माधुर्य गुण से होता है, ओजोगुण से वीर, बीभत्स और रौद्र रसो का परिपोष होता है[4]। किन्तु भामह, दण्डी या वामन आदि आचार्यों द्वारा प्रतिपादित रीति या गुण विवेचन कवि की या वर्णित पात्र की मन स्थिति से सबद्ध न होने से मनोवैज्ञानिक नही हैं। इसलिए डा० वाटवे दण्डी के मार्ग को या वामन की रीति को Style कहने मे सकोच करते है, उनके मत मे यह मार्ग या रीति Diction या Compositon हो सकती है[5]। अस्तु। आगे रुद्रट ने इस दोष का परिहार कर दिया है। रुद्रट ने सभी रीतियो का सबंध रसो से निबद्ध कर बताया है कि वैदर्भी और पाचाली रीतियो, तथा प्रेयान्, करुण, भयानक व अद्भुत रसो के लिए और लाटी तथा गौडी रौद्ररस के लिए अनुकूल होने से प्रयुक्त होनी चाहिये[5]। पहिले कह चुके हैं कि आनन्दवर्धन ने 'रीति' के लिये 'सघटना' शब्द का प्रयोग किया है। उसने रस को रीति का प्रमुख नियामक हेतु मानते हुए रीति को पूर्णत रस के अधीन कहा है। इसके अतिरिक्त औचित्य के हेतु भी उसके नियामक है।

---

१ 'अतएव माधुर्यादयो रसधर्मा समुचितैर्वर्णैर्व्यज्यन्ते न तु वर्णमात्राश्रयाः
का० प्र० ८,६६.

२. डा० वाटवे 'रसविमर्श' पत्र ३६१

३. काव्यप्रकाश ८,६८,७१

४ डा० वाटवे रस विमर्श पृ० ३५८

५. वैदर्भीपाचाल्यौ प्रेयसि करुणे भयानकाद्भुतयो· रुद्रट, का० ल० १६।२०
लाटीयागौडीये रौद्रे कुर्याद् यथौचित्यम् ॥

वस्तुत उपर्युक्त कथन वक्ता के स्वभाव और मन स्थिति की व्याख्या है। इसलिए वक्ता के स्वभाव और उसकी मन स्थिति के अनुकूल ही रीति का प्रयोग उचित प्रतीत होता है[१]।

वस्तुत अलंकार का महत्त्व काव्य मे गौण होने पर भी उसे अलकार सप्रदाय में प्राधान्य दिया गया है। इस दृष्टि से रीति या गुण का महत्व प्रतिपादन करने वाले रीति सप्रदाय ने साहित्यशास्त्र के विकास मे वास्तविक प्रगति की है। वामन ने रीति को काव्य मे प्राधान्य दिया है, किन्तु ध्वन्यालोककार और मम्मट के इस मत का सारगर्भित शब्दों मे खंडन किया है। गुण या रीति काव्य की आत्मा नही हो सकती। जो स्थिति काव्य मे अलकारो की है वही स्थिति रीति (शब्दार्थ की विशिष्ट रचना) पर निर्भर होने से वह काव्य के बाह्य शरीर से ही सबद्ध है। तीन रीतियो के भीतर काव्य इस प्रकार स्थित रहता है जिस प्रकार रेखाओ के भीतर चित्र प्रतिष्ठित रहता है, यह कहकर वामन ने स्वय रीति और काव्यतत्व भिन्न उद्घोषित करते हुए उसे काव्य के बाह्य शरीर से ही अधिक सबद्ध कर दिया है[२]। ध्वनिकार के मत मे रीति संप्रदाय प्रवर्तको को वस्तुतः ध्वनिरूप काव्यतत्व का ज्ञान नही हो पाया था। वह उन्हे अस्फुट रूप मे ही विदित था[३]। शब्दार्थजन्य सौन्दर्य कभी शरीर का आत्मतत्व नही हो सकता। आत्मा के गुण होने पर भी वे उसके गुणरूप मे ही परिगणित होगे, आत्मतत्व के रूप मे कदापि नही। इसके अतिरिक्त रीति विचार मे प्रकार के ही वर्णन का अन्तर्भाव होता है। 'क्या कहा है' इस प्रकार विषय की चर्चा का अन्तर्भाव नही होता। सक्षेप मे रीति का सबध बाह्य शोभा से ही आता है, वह काव्य-का आत्म—तत्व नही हो सकता।

ध्वनि संप्रदाय—

भामह, दडी, वामन आदि के दीर्घकाल मे गुणीभूत उपागभूत भरत के रस मत को आनन्दवर्धन ने अपने ग्रंथ ध्वन्यालोक मे पुन एकबार प्राधान्य

---

१. ध्वन्यालोक ३।६,७,८

२ 'एतासु तिसृषु रीतिषु रेखास्विव चित्र काव्यं प्रतिष्ठितमिति' १।१३
काव्यालकार सू० वामन.

३. अस्फुटस्फुरित काव्यतत्त्वमेतद्यथोदितम्।
अशक्नुवद्भिर्व्याकर्तुं रीतय. सम्प्रवर्तिता ॥
ध्वन्यालोक तृ० उद्योत ४७

देने का सफल प्रयत्न किया। ध्वनिकार ने काव्य के बाह्यांगभूत अलंकार, रीति, गुण, दोष, वक्रोक्ति, औचित्य आदि का सम्यक् परीक्षण करते हुए उनका ध्वनि मत मे योग्य समन्वय कर शब्द की तीसरी शक्ति व्यंजना पर आश्रित ध्वनि को काव्य की आत्मा उद्घोषित किया। इसके अतिरिक्त अद्यावधि काव्य के आत्मतत्व एवं उसमें पाठक की चित्तवृत्ति का Subjective विचार होना शेष था, इन दोनों की सम्यक् अवस्था ध्वनिमत से प्रारम्भ हुई।

किन्तु इस ध्वनिमत का विरोध भी खूब किया गया। विरोध करने वाले आचार्यों में प्रमुख थे, प्रतिहारेन्दुराज, कुन्तक, भट्टनायक और महिमभट्ट। इन आचार्यों मे महिमभट्ट ने ग्रंथ के आरम्भिक श्लोक मे यह बतलाया है कि ध्वनि को अनुमान के अन्तर्गत बतलाने के लिये ही यह ग्रन्थ प्रस्तुत किया गया है[1]।

जिस काव्य मे अर्थ स्वय को एव शब्द अपने वाच्यार्थ को गौण करके उस अर्थ को (प्रतीयमान) प्रकाशित करते हैं उस काव्यविशेष को विद्वानो ने ध्वनि कहा है[2]। काव्य का वाच्यार्थ उपमादि प्रकारों से सहजगत्या प्रकट हो जाता है किन्तु महाकवियो की वाणी मे प्रतीयमान अर्थविशेष होता है। यह काव्य के अलंकार, रीति, गुण, वक्रोक्ति, आदि घटको से व्यतिरिक्त, ही शोभित होता है। रमणियों के प्रसिद्ध अवयव सौष्ठव से भिन्न उनके लावण्य के समान महाकवियो की वाणी मे वाच्यार्थ से अलग ही वह भासित होता है। यही लावण्य के समान (रमणियों के नाक, कान, आँख आदि प्रसिद्ध अवयवादि से भिन्न) भासित होने वाला प्रतीयमान अर्थ ध्वनि है[3]। घंटे पर आघात करने से उससे उत्पन्न होने वाला नाद कुछ समय तक गूजता-प्रतिध्वनित होता रहता है, उसी प्रकार ध्वनि भी रसिक हृदयो में गूजते हुए एक विशेष स्वादु अर्थ को उत्पन्न करता है। ध्वन्यालोककार ने 'स ध्वनिरिति

---

१. व्यक्तिविवेक महिमभट्ट १।१

२ 'यत्रार्थ शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्त. काव्यविशेष. स ध्वनिरिति सूरिभि. कथित:
ध्व०लो० १। १३

३ 'प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु।।
ध्व० लो० १।४

सूरिभि. कथित.' । कहकर ध्वनि कल्पना के लिये वैयाकरणों के ऋणीरूप मे स्वयं को सहर्ष स्वीकार किया है। आचार्य अभिनवगुप्त ने ध्वनिकाव्य की व्याप्ति बतलाते हुए कहा है कि केवल ध्वनि के सद्भाव से ही शब्दार्थ को काव्य की संज्ञा नही मिल सकती, ध्वनि काव्य की सज्ञा, गुणालंकार संस्कृत शब्दार्थों से व्यक्त ध्वनि की ही है। ध्वनि यह काव्य विशेष है। गुणालकार संस्कृत शब्दार्थों से व्यक्त होनेवाला ध्वनि ही काव्यात्मा है, अन्य प्रकार का ध्वनि काव्यात्मा का पद ग्रहण नहीं कर सकता[1]।

लोचनकार ने ध्वनि शब्द का प्रयोग पाच अर्थों मे किया है—व्यजक–शब्दव्यंजक, अर्थव्यजक (ध्वनति इति) व्यग्य (ध्वन्यते सौ) व्यञ्जना ध्वननम् तथा काव्यविशेष (ध्वन्यते स्मिन्)[2] वस्तुत ध्वनि-मत भरत-प्रतिपादित रसमत का ही विस्तार है। रस सिद्धान्त का अध्ययन प्रधानत नाटक के ही सम्बन्ध मे किया गया था। विभावानुभाव आदि के आविष्कार से शृङ्गार, करुण आदि रसो का परिपोष करना नाटको का प्रधान उद्देश्य होता है। इसलिए रसकल्पना के लिए विस्तृत काव्यरचना आवश्यक होती है। यदि एक ही रमणीय पद्य हो तो, उससे पूर्ण रस की अभिव्यक्ति होना कठिन होता है। किसी रस के किसी अग का मान भले ही हो किन्तु समग्ररस का उन्मीलन, आस्वादन उससे होना प्राय असम्भव होता है। और रस को ही काव्यात्मा स्वीकार करने पर स्फुट या मुक्तक पद्य काव्यक्षेत्र से बहिष्कृत हो जाते है। रस कभी वाच्य न होकर व्यंग्य होता है। इसी आधार को स्वीकार कर ध्वन्यालोककार ने चमत्कारपूर्ण या रमणीय व्यग्य अर्थ से समन्वित कविता को ही उत्तम काव्यकोटि मे रखा है। आनन्दवर्धन ने स्पष्ट रूप से कहा है कि महाकवि का मुख्य व्यापार है कि वह रस, भाव को ही काव्य का मुख्यार्थ मानकर उन्ही शब्दो तथा अर्थों की रचना करे जो उसकी अभिव्यक्ति

---

१. 'तेन सर्वत्रापि न ध्वननसद्भावेऽपि तथा व्यवहार ....तेन, एतन्निरवकाशं, यदुक्तं हृदयदर्पणे 'सर्वत्र तर्हि काव्यव्यवहार स्यात् इति'

ध्वन्यालोक लोचन, उद्योत १ पृ० ३२

'काव्यग्रहणात् गुणालंकारोपस्कृतशब्दार्थपृष्ठपाती ध्वनिलक्षण आत्मा इत्युक्तम्। तेन एतन्निरवकाशं श्रुतार्थापत्तावपि ध्वनि-व्यवहारः स्यादिति। वही पृ० ३९

२. ध्वन्यालोक-लोचन उद्योत १, पृ० ५६, १९२५ चतुर्थसंस्करण

के अनुकूल हो। भरत आदि का यही मत था। रस तत्त्व ही काव्य और नाटक का जीवनभूत है।[1]

इस ध्वनि के मुख्य तीन प्रकार हैं। १. रसादिध्वनि, २. अलंकारादिध्वनि, ३. वस्तुध्वनि। जहाँ शृङ्गार, वीर, करुणादि रस, भाव या रसाभास भी व्यक्त हों, वहाँ रसादिध्वनि, जहा केवल कोई कल्पना या विचार सूचित हो, वहाँ वस्तुध्वनि और जहां उपमा, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेकादि अलकार व्यक्त हों, वहां अलंकार ध्वनि होती है। किन्तु इन उपर्युक्त तीनों भेदो मे केवल रसादि ध्वनि ही प्रधान है क्योंकि अलंकार और वस्तुध्वनि का अन्त में पर्यवसान रसादिध्वनि मे ही होता है।[2]

ध्वन्यालोककार ने ध्वनिकाव्य, गुणीभूतव्यंग्य और चित्रकाव्य, ये काव्य के तीन प्रकार बतलाते हुए, अन्त मे चित्रकाव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार का समावेश कर दिया है। जिस काव्य मे शब्दालंकार, अर्थालकार व गुण आदि सौन्दर्योत्पादक घटको से मुख्यार्थ रस का परिपोष होता है वह ध्वनि काव्य। जिसमे व्यग्यार्थ की अपेक्षा वाच्यार्थ अधिक सुन्दर होता है (यद्यपि उस वाच्यार्थ को सुन्दर बनाने का श्रेय व्यग्यार्थ की सत्ता को ही है) वह गुणीभूत व्यग्य काव्य। और इन दोनो प्रकारो से भिन्न चित्रकाव्य होता है।[3] आगे शब्द और अर्थ नाम के चित्रकाव्य के दो भेद किये हैं। इस प्रकार रस की प्रधानता बतलाते हुए ध्वनिकार ने कहा है कि परिणत बुद्धि के कवियो को रसविरहित काव्य की रचना शोभा नही देगी, अलकार, रीति आदि काव्य शरीर के बाह्य घटक हैं और इनसे व्यक्त होने वाला अर्थ, वाच्यार्थ ही होता है, तस्मात् सहृदय की भावनाओं से उसका उतना सम्बन्ध न आने से वह स्वादु अर्थ नहीं होता। इसीलिये ध्वनि काव्य की आत्मा है

---

१. अयमेव हि महाकवेर्मुख्यो व्यापारो यद् रसादीनेव मुख्यतया काव्यार्थीकृत्य तद्व्यक्त्यनुगुणत्वेन शब्दानामर्थानाञ्चोपनिबन्धनम्।
एतच्च रसादितात्पर्येण काव्यनिबन्धनं भरतादावपि सुप्रसिद्धमेवेति।
रसादयो हि द्वयोरपि तयो: काव्यनाट्ययो जीवितभूता:,
ध्वन्यालोक पृ० २२५:२२६

२. "तेन रस एव वस्तुत आत्मा। वस्त्वलंकारध्वनी तु सर्वथा रसं प्रति पर्यवस्येते इति वाच्यादुत्कृष्ट इत्यभिप्रायेण ध्वनिः काव्यस्यात्मेति सामान्येनोक्तम्,, ध्वन्यालोक, लोचन पृ० ३१

३. ध्वन्यालोक, उद्योत २।४, ३।३५, ३।४२

और अलंकार, गुण और रीति आदि उसके शरीरभूत तत्व हैं।[१] ध्वनि-मतानुयायी आचार्यों ने ध्वनि सिद्धान्त के अनुसार गुण और अलंकार को उनके वास्तविक स्थान पर ही प्रतिष्ठित कर दिया है। आनन्दवर्धन ने कहा है कि रस पर अवलंबित रहने वाले गुण (शौर्य आदि) और शब्दार्थ पर अवलंबित रहने वाले अलंकार होते हैं। (कटक कुण्डलादिवत्)[२] काव्य मे अलकार योजना के विषय मे लिखते हुए ग्रन्थकार ने लिखा है—रसौचित्य की दृष्टि से ही अलकार की योजना होनी चाहिये।[३] वर्ण, पद, वाक्य, पद-रचना, और प्रबन्ध में ध्वनि होती है।[४] रीति माधुर्यादि गुणो की आश्रित होने पर ही रस व्यक्त करने मे समर्थ होती है, अन्यथा नही। प्रबन्ध मे, भी कवि का लक्ष्य सर्वदा रस की ओर ही होना चाहिये।[५] काव्य मे अलकारो की नियोजना की अपेक्षा व्यंजकत्व अपेक्षित है। लज्जा जिस प्रकार स्त्रियो का भूषण है, उसी प्रकार व्यजकत्व काव्य का भूषण है।[६] ध्वनिकार ने संघटना को तीन प्रकार का माना है।

१. असमासा, २ मध्यमसमासा, ३. दीर्घसमासा। इन तीनो मे से प्रत्येक का प्रकार एक विशिष्टरस के अनुकूल होता है। सघटना के औचित्य का विचार रस, वक्ता, वर्णविषय के अनुसार निश्चित किया जाता है।

काव्य मे दो वृत्तिया शब्दवृत्ति और अर्थवृत्ति प्रसिद्ध हैं। उपनागरिका, परुषा तथा ग्राम्या (कोमला) शब्दवृत्ति पर तथा कैशिकी, आरभटी, सात्वती तथा भारती अर्थ पर आश्रित हैं। इन वृत्तियो को रीति की तरह समझना चाहिये और रसौचित्य की दृष्टि से प्रयुक्त होने पर ये काव्य की शोभा को बढ़ाती है।[७]

---

१. 'यत काव्यविशेषोऽसौ ध्वनिरिति कथित तस्य पुनरगानि अलकारा, गुणा वृत्तयश्चेति प्रतिपादयिष्यन्ते।" वही, उद्योत १, पृ० ५४

२ ध्वन्यालोक उद्योत २।७ पृ० ९५

३ वही, २।१७ पृ० १०४।

४. वही ३।२, पृ० १४९

५. वही, ३।१४ पृ० १८३

६. वही, ३।३८ पृ० २६४

७, तत्र रसानुगुण औचित्यवान् वाच्याश्रयो यो व्यवहार·
ता एता कैशिकाद्या वृत्तय वाचकाश्रयाश्च उपनागरिकाद्या वृत्तयो हि रसादितात्पर्येण निवेशिताः कामपि नाट्यस्य काव्यस्य च छाया-

ऊपर का विवेचन हमे इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि ध्वनि को इतना व्यापक बना दिया कि उसमे काव्य के सम्पूर्ण घटक गुण, रीति, अलकार, आदि यहा तक कि काव्य के आत्मतत्त्व रस का भी समाहार हो जाता है। ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवतक होने से ध्वन्यालोककार ने ध्वनि को काव्य की आत्मा घोषित अवश्य किया किन्तु वास्तविक काव्य की आत्मा रस की ओर ही उनका अन्त तक झुकाव रहा और आखिर मे यह कहा कि हमारा मुख्य ध्येय रस ही है, ध्वनि के अभिनिवेश से हम ग्रन्थ न लिखकर हमारा मुख्य बल रसध्वनि पर ही है, कहकर कुछ शान्ति प्राप्त की।[1]

इसके अतिरिक्त काव्य की आत्मा ध्वनि सिद्ध करते हुए ध्वनिकार ने उसे अभिव्यक्ति की पद्धति का रूप दे दिया है। तब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि काव्यात्मा ध्वनि है या रस ? किन्तु ध्वनिसम्प्रदाय के अध्ययन से यह विदित हो जाता है कि ध्वनि रस प्रतीति का एक उत्तम मार्ग है, साधन है। ध्वनिकार ने अपने सिद्धान्त की चौखट मे रस, वस्तु और अलंकार को रखकर ध्वनि को अभिव्यक्ति की विधा का स्वरूप दे दिया है। परिणामत. रस, वस्तु और अलकार ये तीनों आत्मपद के लिये अपना-अपना अधिकार सूचित करते हैं, जब कि किसी वस्तु का एक ही आत्मा होना योग्य है।

उपर्युक्त तथ्य का विवेचन प्रो० जोग ने किया है।[2] सारत ध्वनि के दो अर्थ हैं १. सूचित अर्थ—२. अभिव्यक्ति की विधा। यह विधा काव्यात्मा नही हो सकती। यह विषय नही है शरीर है। ध्वनिकार ने ध्वनित अर्थ के साथ विधा को भी अधिक महत्व दिया है। और 'रस' भी ध्वनित होता है, कहा है।

वक्रोक्ति सम्प्रदाय

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रधान प्रवर्तक आचार्य कुन्तक हैं। आचार्य कुन्तक के अनुसार काव्य की आत्मा वक्रोक्ति है और यह उनके ग्रन्थ नाम से भी परिलक्षित होता है। आचार्य कुन्तक के पूर्व भी वक्रोक्ति भिन्न-भिन्न अर्थ

मावहन्ति। रसादयो हि द्वयोरपि तयोर्जीवितभूताः इतिवृत्तादि तु शरीर-भूतमेव। ध्वन्यालोक, उद्योत ३, कारिका ३३, पत्र नं० २२६

१ "इतिवृत्तमात्रवर्णनप्राधान्ये अंगागिभावऽरहितरसभावनिबंधनेन च कवीनां एवंविधानि स्खलितानि भवन्ति इति रसादिरूपव्यंग्यतात्पर्य-मेवैषा युक्तमिति यत्नोऽस्माभिरारब्ध न ध्वनिप्रतिपादनमात्राभिनि-वेशेन।" ध्वन्यालोक, उद्योत ३, पत्र नं० २०१

२. अभिनव काव्य प्रकाश, पृ० १९ तृतीय संस्करण

में रूढ थी किन्तु कुन्तक ने उसके स्वरूप का विस्तार कर काव्य के अन्य तत्वों को (रस को भी) उसी में समाविष्ट किया। आचार्य कुन्तक के अनुसार वक्रोक्ति का अर्थ है प्रसिद्ध कथन (अभिधान) से भिन्न (व्यतिरेकिणी) विचित्र अभिधा असाधारण वर्णन शैली (उक्ति) ही वक्रोक्ति है। अर्थात् वैदग्ध्यपूर्ण शैली द्वारा कथन (उक्ति) ही वक्रोक्ति है। वैदग्ध्य का अर्थ विदग्धता है। कवि कर्म (काव्य) कौशल की शोभा (भगी, विच्छित्ति) द्वारा कही हुई उक्ति (कथन)। सक्षेप मे विचित्र (अभिधा) कथन शैली ही वक्रोक्ति है।[१] कारण यह है कि कवि अपनी उक्ति मे सहृदय आह्लादकारित्व उत्पन्न करने के लिए चमत्कारपूर्ण एवम् सर्वसाधारण द्वारा प्रयुक्त शैली से भिन्न कथन शैली का आश्रय लेता है। अम्लानप्रतिभासंपन्न कवि के द्वारा यह शब्द व अर्थ की विशेषयोजना ही वक्रता है। वक्रता से ही काव्य में सहृदय-आह्लादकारित्व आता है तस्मात् वक्रोक्ति काव्य का प्रमुख तत्व (जीवत) है। भामह के मत मे वक्रोक्ति अलकार का जीवन-आधायक तत्व है।[२] और वक्र अर्थ वाचक शब्दो का प्रयोग ही काव्य मे अलकार का जनक है[३]।

दडी ने स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति के रूप मे वाङ्मय को (दो भागो मे) विभक्त किया, किन्तु 'श्लेष' से ही वक्रोक्ति मे शोभा आती है, यह कहकर उसका स्वरूप-विस्तार कुछ अशो मे सीमित सा कर दिया प्रतीत होता है[४]। बाणभट्ट आदि कवियो ने भी वक्रोक्ति का प्रयोग सीमित ही किया है[५]।

---

१ "वक्रोक्ति. प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा। कीदृशी वैदग्ध्यभंगीभणिति वैदग्ध्य विदग्धभाव. कविकर्मकौशलं, तस्य भगी विच्छित्तिः, तया भणिति। विचित्रैवाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते, व० जी० १।१० कारिका की वृत्ति

२. "सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविभि. कार्यः कोऽलकारोऽनया विना॥ भामह का० लं० २।८५

३. "वाचां वक्रार्थशब्दोक्तिरलकाराय कल्पते" ५।६६ वही।

४. 'श्लेष सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्।
भिन्नं द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम्॥ काव्यादर्श २,३६३

५.'सुबन्धु,र्बाणभट्टश्च कविराज इतित्रय वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा"। राघवपाण्डवीयम्, सर्ग १, श्लो० ४१

निश्चय ही कुन्तक ने उपर्युक्त कल्पना को अपनाकर वक्रोक्ति को काव्य का जीवनाधायक तत्व बनाया है। कुन्तक ने सपूर्ण काव्य तत्वो का समावेश वक्रोक्ति मे किया है। यही व्यापक अर्थ उसकी काव्य परिभाषा से द्योतित होता है[1]। उसके अनुसार कवि के वक्रोक्ति व्यापार से सुशोभित एवं सहृदय आनन्ददायक रचना में व्यवस्थित शब्द व अर्थ मिलकर काव्य कहलाते हैं। वक्रतायुक्त शब्द व अर्थ का स्वरूप बतलाते है कि अनेक पर्यायवाची शब्दों के होते हुए भी कवि के इष्ट या विवक्षित अर्थ का बोधक केवल एक शब्द ही वस्तुत. शब्द कहलाता है, यही बात अर्थ की भी है। अपने स्वभाव (स्पन्द) से सुन्दर सहृदय को आह्लादित करनेवाला अर्थ ही काव्य के उपयुक्त है[2]। काव्य में ये दोनो (शब्द अर्थ) मुख्य होने से अलंकार्य होते हैं और वैदग्ध्यपूर्ण शैली से (चतुरतापूर्ण) कथनरूप वक्रोक्ति ही इन दोनो का (शब्द, अर्थ) अलकार होती है। तस्मात् दंडीकृत स्वभावोक्ति अलंकार आचार्य कुन्तक को मान्य नही, क्योकि स्वभाव ही अलंकार्य है उसको अलकार रूप मे मानने पर 'अलकार्य, किसको कहा जायगा। शरीर ही अलकार होने पर वह किसे भूषित या अलकृत करेगा[3]।

इस प्रकार लोक प्रसिद्ध वस्तुधर्म या व्यवस्था में वैचित्र्य के भाव को वक्रोक्ति का व्यापक अर्थ बतलाते हुए कुन्तक ने वक्रोक्ति के मुख्य छह प्रकार बतलाये हैं[4]। (१) वर्णविन्यास वक्रता (२) पदपूर्वार्द्ध वक्रता (३) प्रत्यय-

---

१ 'शब्दार्थौ सहितौ यत्र वक्रव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि ॥ व. जी. १।७
कवि के वक्रोक्ति व्यापार से सुशोभित एव सहृदयो को आनन्ददायक रचना मे व्यवस्थित शब्द व अर्थ (सम्मिलित) मिलकर काव्य कहलाते है।

२. शब्दो विवक्षितार्थैकवाचकोऽन्येषु सत्स्वपि।
अर्थ सहृदयाह्लादकारिस्वस्पन्द सुन्दरः। व. जी. १·९

३ अलंकारकृतां येषां स्वभावोक्तिरलंकृतिः
अलंकार्यतया तेषा किमन्यदवतिष्ठते १ ११ व. जी.
शरीरं चेदलंकारः किमलकुरुते परम्
आत्मैव नात्मन स्कन्धं क्वचिदप्यधिरोहति ॥ १ व जी.

४ 'वक्रत्वं प्रसिद्धप्रस्थानव्यतिरेकि वैचित्र्यम्।'
कविव्यापारवक्रत्वप्रकाराः सम्भवंति षट् ॥

वक्रता (४) वाक्यवक्रता (५) प्रकरणवक्रता (६) प्रबन्धवक्रता[१]।

पदपूर्वार्ध वक्रता उपचारवक्रता का भेद है। अलंकारसर्वस्वकार के अनुसार इसमे सपूर्ण ध्वनिप्रपच का सन्निवेश कर दिया गया है[२]। इसी प्रकार वर्णविन्यास वक्रता मे अनुप्रासयमकादि अलकार आदि का समावेश कर दिया है[३]। इसके अतिरिक्त रस का भी उपयोग वक्रोक्ति के पोषक रूप-में ही वर्णित किया है[४]।

उपर्युक्त विवेचन आचार्य कुन्तक की सारगर्भित विवेचन शक्ति का परिचायक है। भामह से कुन्तक तक वक्रोक्ति का स्वरूप परिवर्तित व परिवर्धित होता आया है। भामह की सम्पूर्ण अलकारो की मूल तत्व वक्रोक्ति वामन के पास कुछ समय तक अर्थालकार के रूप मे रहकर रुद्रट के पास शब्दालंकार के रूप में अवतीर्ण हुई और गच्छताकालेन वही कुन्तक के मतानुसार समस्त काव्य तत्त्वो की आधारशिला बन गई। काव्य सौन्दर्य,के सपूर्ण घटकों को एक सूत्र मे गूथते हुए वक्रोक्ति तत्व के स्वरूप को व्यापक बनाने मे कुन्तक का प्रयत्न सर्वथा प्रशसार्ह है। किन्तु शब्दालकार और अर्थालकार काव्य के बाह्य शोभाजनक तत्व है और इन बाह्य शोभाजनक तत्वो से अधात्मक आनन्द प्राप्त होता भी उन्हे हो तो भी काव्यात्मा के आसन पर स्थित करना सर्वथा विचारणीय प्रश्न है। वास्तविक काव्य तत्व इन बाह्य तत्वो में नही हो सकता। शब्द या उनका अभिधार्थ काव्य शरीर ही है। शब्दों और अर्थों के शोभाजनक धर्मों का नाम ही अलकार है और इन अलकारो की मूलरूप वक्रोक्ति है तस्मात् वक्रोक्ति भी काव्य के शरीर से सबद्ध है। ध्वन्यालोककार ने तो ध्वनि के अभाव मे सालकार काव्य को अधम चित्र-काव्य की सज्ञा दी है[५]। वक्रोक्ति तत्व काव्य के बाह्य शरीर से सबद्ध होने

प्रत्येक बहवो भेदास्तेषा विच्छित्तिशोभिनः। प्रथम उन्मेष, व. जी. कारिका १८

१. वी जी १९।२२। प्रथम उन्मेष।

२ 'उपचारवक्रतादिभि समस्तो ध्वनिप्रपंचः स्वीकृत'। अलकार। म० म० पी० वी० काणे—सस्कृत सा. शा. का इतिहास पृ १६१

३ 'यत्रालकारवर्गोऽसौ सर्वोऽप्यन्तर्भविष्यति। व० जी० १।००

४. स्वाभावः सरसाकूतो भावनां यत्र बध्यते। व० जी० १।४१

५ "न तन्मुख्य काव्यं। काव्यानुकारोऽह्यसौ। ध्वन्यालोक" उद्योत ३ टीका कारिका ४३.

के कारण काव्य का आन्तरिक तत्व नही हो सकता।

औचित्य संप्रदाय

औचित्य सम्प्रदाय के आचार्य क्षेमेन्द्र हैं। यद्यपि औचित्य का विचार प्रारम्भ से ही अलकार शास्त्र मे किसी न किसी रूप मे मिलता है। किंतु उसे स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में (औचित्यविचारचर्चा) समस्त काव्य तत्वो मे ग्रथित करते हुए व्यापक रूप से चर्चा करने का श्रेय क्षेमेन्द्र को ही है।

औचित्य विचार का सूक्ष्म तन्तु भरतनाट्यशास्त्र मे ग्रथित है[1]। उसके पश्चात् ध्वन्यालोककार ने इस विषय का महत्व अपने ग्रन्थ मे पर्याप्त रूप से प्रतिपादित किया है। श्री आनन्द के मत में तो अनौचित्य ही रसभंग का प्रमुख कारण है। औचित्य के अभाव मे रस का परिपाक काव्य मे हो ही नहीं सकता। औचित्य ही रस का परम रहस्य, परा उपनिषद है[2]।

क्षेमेन्द्र के मत मे औचित्य रस का जीवितभूत तत्व है। इसी से काव्य में सौन्दर्य आता है[3]। औचित्य की व्युत्पत्ति बतलाते हुये क्षेमेन्द्र ने कहा है कि जिस वस्तु का जिस वस्तु से संगति—सादृश्य हो उसे उचित कहते है और उचित का भाव ही औचित्य है[4]। अलंकार, गुण, रस आदि औचित्य सूत्र मे ग्रथित हैं[5]। इसके अतिरिक्त क्षेमेन्द्र ने औचित्य की व्यापकता बतलाने के लिये पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, देश, काल के साथ क्रिया, कारक, लिंग, वचन, उपसर्ग आदि का काव्यदृष्टया औचित्य और इनके अभाव में अनौचित्य की सागोपांग एवं बडी हृदयंगम चर्चा की है। भरत प्रणीत सूत्र के आधार पर औचित्य का महत्व प्रतिपादन करते हुए उचित वस्तु और अनुचित वस्तु के

---

१. अदेशजो हि देशस्तु न शोभा जनयिष्यति।
मेखलोरसि बन्धेन हास्यायेव प्रजायते। ना० शा० २१।६८

२. ध्वन्यालोक उद्योत ३,६,७,८,९ कारिका,
'अनौचित्यादृते नान्यद्रसभंगस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा।'

३. औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे।
रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना॥ का० ३ औचित्यविचारचर्चा,

४. उचितं प्राहुराचार्याः, सदृशं किल यस्य तत्
उचितस्य च यो भाव' तदौचित्यं प्रचक्षते। का. ७

५. अलंकारास्त्वलंकारा गुणा एव गुणाः सदा
औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्। का. ५

सन्निवेश से क्रमश क्या उपादेयता और अनुपादेयता होती है, सुन्दर ढंग से बतलाया है[1]।

संक्षेप मे, वस्तु या मनोभाव के उचित चित्रण पर ही मुख्य रूप से क्षेमेन्द्र का कटाक्ष होने से काव्य की मूल सामग्री का ही प्रधान रूप से उसने विचार किया है। काव्य के समग्रघटकों मे औचित्य का महत्व म० म० कुप्पुस्वामी शास्त्री कृत यत्र द्वारा बलदेव उपाध्याय जी ने अपने संस्कृत सा० के इतिहास मे दिखलाया है[2]। किन्तु जो स्थिति काव्य मे रीति, अलंकार, गुण आदि की है वही स्थिति औचित्य की है। रस परिपोष के लिये गुण अपरिहार्य होने पर भी वह गुण की स्थिति मे ही सीमित है वह गुणी नही बन सकता। वह काव्य तत्व का एक अग है अंगी नही। वह उसके सौन्दर्य का एक घटक है, धर्म है धर्मी नही, इस बात को दृष्टि से ओझल नही करना चाहिये। गुण या धर्म को गुणी या धर्मी का आत्म-स्थान नही मिल सकता। औचित्य मे आखिर प्रकार का ही तो महत्व होता है अर्थात् अभिव्यक्ति के लिये शब्दार्थ, रीति की योजना पर ही तो ध्यान दिया जाता है, तस्मात् यह भी एक साधना है। इसलिये औचित्य काव्य का 'जीवित' नही हो सकता। यद्यपि क्षेमेन्द्र ने औचित्य को 'काव्य का आत्मा' कही नही कहा फिर भी 'जीवित' कहने से उसका 'आत्मा' से ही तात्पर्य है[3]।

रस सम्प्रदाय

अलकार शास्त्र के प्रमुख छह सप्रदायो मे से 'रस, सप्रदाय सर्वाधिक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण है। संप्रति उपलब्ध, अलकार, शास्त्र के ग्रथो मे भरत का नाट्यशास्त्र ही सर्वाधिक प्राचीन है। इस संप्रदाय के प्रमुख एव प्रथम आचार्य भरत हैं।[4]

---

१ 'कण्ठे मेखलया' नितम्बफलके तारेण हारेण वा
पाणौ नूपुरबन्धनेन चरणे केयूरपाशेन वा
शौर्येण प्रणते, रिपौ करुणया नायान्ति के हास्यता-
मौचित्येन विना रुचिं प्रतनुते नालकृतिर्नो गुणा। औचित्य वि० च०

२, 'संस्कृत सा का इतिहास' बलदेव उपाध्याय, १९४८, पत्र ३६८,४२३

३ 'अभिनव काव्यप्रकाश, प्रो० जोग पत्र न० १५

४: यद्यपि राजशेखरकृत काव्य मीमांसा मे सर्वप्रथम नदिकेश्वर रसनिरूपणाचार्य के रूप मे उल्लिखित हैं। किन्तु नंदिकेश्वर के रस विषयक ग्रथ का अभी तक पता नही चला है। 'रसाधिकारिकं

यद्यपि नाटयशास्त्र नाटकादिसे ही अधिक संबद्ध है, फिर भी संपूर्ण नटयशास्त्र मे रस चर्चा मिलती है विशेषत. षष्ठ व सप्तम अध्यायों में रस विषयक सांगोपाग निरूपण किया गया है। नाटयशास्त्र मे आया हुआ सूत्र, 'विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्ति' अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से रसनिष्पत्ति होती है। यह सूत्र रस संप्रदाय का केन्द्र बिन्दु है, इसी सूत्र के आसमन्तात् संपूर्ण रस प्रपंचका विस्तार है आपातत तो यह सूत्र अत्यन्त साधरण और छोटा है। किन्तु विचार-विमर्श होने पर उतना ही सारगर्भित प्रतीत होता है। टीकाकारो ने इस सूत्र की अपने-अपने दृष्टिकोण से जो व्याख्यायें लिखी हैं, उनमे चार व्याख्यायें या मत प्रसिद्ध हैं। इन टीकाकारो के विभिन्न मतो को देखने के पूर्व 'रस सामग्री' के विषय मे भी, अर्थात् रसिकगत रसोत्पत्ति के कारणो की जानकारी कर लेना आवश्यक है।

आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश मे इस प्रकार कहा है—लोक में रति आदि स्थायी भाव के जो कारण, कार्य और सहकारी होते हैं, वे यदि नाटक या काव्य मे प्रयुक्त होते हैं तो क्रमश विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव कहलाते हैं'।[१] भरत मुनि ने अपने उपर्युक्त सूत्र मे, इन्ही नामों का सर्वप्रथम उल्लेख किया है[२]।

(१) विभाव—विभाव, कारण, निमित्त, और हेतु ये पर्याय शब्द हैं।[३] रति आदि जो मनोविकार हैं और काव्य क्षेत्र मे स्थायी भाव कहे जाते हैं, उन रति आदि स्थायी भावो के उत्पन्न होने के जो कारण होते हैं, उन्हे विभाव कहते हैं।

विभाव दो प्रकार के होते हैं–(१)आलम्बन विभाव(२)उद्दीपन विभाव। साहित्य कौमुदिकार ने इस प्रकार कहा है। (१)विषय (२)आश्रय[४]। जिसका आलंबन करके रत्यादि स्थायीभाव जागरित या उत्पन्न होते हैं, वे विषय या

नन्दिकेश्वरः""""ततस्ते पृथक् पृथक् स्वशास्त्राणि विरचयाचक्रुः'। काव्यमीमासा प्र. अ पृ. ४

२. नाट्यशास्त्र ६–३४

१ का. प्र. ४–२७–२८।

३, विभाव कारणं निमित्तं हेतुरिति पर्यायाः—भरत ना. शा. पृ ३४७ प्र. खं

४ "यमुद्दिश्य रत्यादि प्रवर्तते सोऽस्य विषयः, आश्रयस्तु तदाधार" सा० कौ. ४–२९।

आलंबन हैं। और रत्यादि स्थायीभाव का जो आधार वह उसका आश्रय है। जैसे श्रृंगाररस मे,नायक को देखकर नायिका का रतिभाव जागरित हुआ,अत. नायक उस रतिभाव का आलबन या विषय और इस रति स्थायीभावका आधार नायिका क्योकि नायिका मे यह स्थायीभाव है। अत. नायिका इस रतिभाव की आश्रय है, उद्दीपन विभाव--रति आदि मनोविकारो को जो बढ़ाते हैं,वे उद्दीपन विभाव कहे जाते हैं। जैसे--शृगार रस मे सुन्दर वेश भूषणादि की रचना, पुष्पवाटिका, एकान्तस्थान, चन्द्रोदय, शीतल समीर आदि, रति बढ़ाने वाले होने से, उद्दीपन विभाव कहे जाते है।(२)अनुभाव--ये उत्पन्न हुए स्थायीभाव का अनुभव कराते है। अर्थात् रत्यादि स्थायीभाव की सूचना करनेवाले विकार जो आश्रय मे पाये जाते है।[१]

(२)सात्विकभाव = सत्व से उत्पन्न भावो को सात्विक कहते है। ये आठ प्रकार के होते हैं[२]। (१) स्तम्भ (२) स्वेद, (३) रोमाच (४) स्वरभंग (५) वेपथु (६) वैवर्ण्य (७) अश्रु.(८)प्रलय। इन भावों की 'सात्विक' सज्ञा क्यो है, इस विषय में विद्वानो का मतभेद है।

(३)संचारी या व्यभिचारी भाव सभी रसोमें यथासंभव सचार करते हैं। इसीलिये नाट्यशास्त्र में इन्हें संचारी कहा गया है[३]।

धनंजय ने इन्हे समुद्र की तरगो की तरह, अर्थात् जो भाव विशेषरूप से स्थायीभाव के अन्तर्गत कभी उठते और कभी गिरते है, कहा है[४]। ये सख्या मे ३३ कहे है। निर्वेद, ग्लानि, शका, श्रम, धृति, जड़ता, हर्ष, दैन्य, औग्र्य, चिन्ता, त्रास, ईर्ष्या, अमर्ष, गर्व, स्मृति, मरण, मद, सुप्त, निद्रा, विबोध, व्रीडा, अपस्मार, मोह, मति, अलसता, वेग, तर्क अवहित्था, व्याधि, उन्माद, विषाद, उत्सुकता तथा चपलता।

भरत के मत में स्थायीभाव सर्वभावों का अधिपति है जैसे लोगो का अधिपति राजा और शिष्यो का गुरु होता है[५]।

---

१ अनुभावो विकारस्तु भावससूचनात्मकः। दशरूपक, धनंजय ४=३

२. ना० शा० ६, २२। दशरूपक ४,५=६।

३ विविधाभिमुख्येन रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः।

ना. शा गायकवाड सस्करण, पृ० ३५६. प्र. ख

४. दशरूपक=४,७--८

५ ना. शा. ७,८

स्थायीभाव—जो रत्यादिभाव अपने से प्रतिकूल अथवा अनुकूल किसी भी तरह के भाव से विच्छिन्न नहीं हो पाता तथा दूसरे सभी प्रतिकूल या अनुकूल भावो को आत्मरूप बना लेता है। और जो विभावादि से संबंध होने पर रसरूप में व्यक्त होता है, उस आनन्द के मूलभूत भाव को स्थायीभाव कहते हैं।[1] भरत ने इनकी संख्या ८ कही है।[2] कुछ आचार्य शम, जैसे नवें स्थायीभाव को भी मानते हैं। किन्तु इसकी पुष्टि नाट्य में नहीं होती।[3]

वस्तुत. रसप्रक्रिया मे आलबन विभाव और उद्दीपन विभाव रस के बाह्य कारण हैं, रसानुभूति का आन्तरिक और मुख्य कारण तो स्थायीभाव है। स्थायीभाव मन के भीतर स्थिर रूप से रहनेवाला एक प्रसुप्तसंस्कार विशेष है जो अनुकूल आलबन और उद्दीपन सामग्री को प्राप्त कर अभिव्यक्त हो उठता है। परिणामत हृदय मे एक अपूर्व आनद का संचार हो जाता है। इस स्थायीभाव की, विभावादिको से अभिव्यक्ति होने पर, 'रस' संज्ञा है[4]।

काव्यप्रकाशकार ने आठ स्थायी भावो की गणना इस प्रकार की है[5]। (१) रति, (२) हास (३) शोक (४) क्रोध (५) उत्साह (६) भय (७) जुगुप्सा और (८) विस्मय। इनके अतिरिक्त निर्वेद नवा स्थायीभाव माना गया है[6]।

इस प्रकार नौ स्थायी भावो के अनुसार ही नौ रस माने गये हैं[7]— (१) श्रृंगार (२) हास्य (३) करुण (४) रौद्र (५) वीर (६) भयानक (७) वीभत्स और (८) अद्भुत। (९) शान्त ?।

दशरूपकाचार्य धनंजय के मत मे रसानुभूति के काल मे चित्त की (१) विकास (२) विस्तार (३) विक्षोभ (४) विक्षेप चार अवस्थायें होती है, इसलिए चार ही रस मानने चाहिए, शेष चार रसो की उत्पत्ति उन चार से ही होजाती है। उपर्युक्त चित्त की चार अवस्थायें क्रमश. श्रृंगार, वीर, वीभत्स,

---

१ वही दशरूपक ४,३४। काव्यप्रकाश ४,३८

२. नाट्यशास्त्र. ६,१७

३ दशरूपक=४,३५,

४ का. प्र. ४,२८

५. रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भय तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावा. प्रकीर्तिता.॥ का. प्र. सू ४५

६. निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः। वही. सू. ४७

७ नाट्य शास्त्र ६, १५

तथा रौद्र रसों से होती है। ये ही चार अवस्थायें अन्य शेष रसों–हास्य, अद्भुत, भय तथा करुण मे भी होती हैं अतः क्रमश हास्यादि चार रसों को श्रृंगारादि चार रसों से उत्पन्न माना जाता है[१]।

इस प्रकार रस निष्पत्ति की आवश्यक विभावानुभावादि काव्यगत सामग्री का विवेचन करने के पश्चात्, यह आवश्यक है कि इस सामग्री से सहृदय पाठक के हृदय मे अलौकिक रस की निष्पत्ति किस प्रकार होती है।

इस विषय में उपर्युक्त भरत का यह सिद्धान्त है कि विभाव, अनुभाव, व्यभिचारि भाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। किन्तु इस सूत्रमय सिद्धान्त का अभिप्राय आचार्यों ने अपनी अपनी दृष्टि से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है फलत भरताभिमत सिद्धान्त से इन आचार्यों का पर्याप्त मतभेद रहा है। इस मतभेद का प्रमुख कारण, उन आचार्यों का भिन्न भिन्न शास्त्र का मतानुयायी होना है। ये आचार्य मीमासा, न्याय, साख्य और अद्वैतवेदात मत के थे। इनमे (१) भट्टलोल्लट (२) शकुक, (३) भट्टनायक (४) अभिनवगुप्त प्रधान हैं।

१. वस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त सयोग, व निष्पत्ति, दो शब्दो के सबन्ध मे टीकाकारो का मतभेद है।

२. टीकाकारो के सम्मुख रस के दो स्वरूप थे। (१) नाट्यप्रयोग से उत्पन्न होनेवाला नाट्य रस (२) काव्यवाचन से उत्पन्न होनेवाला काव्य रस। भट्टलोल्लट, शकुक आदि के विवेचन मे तो 'नट' शब्द का प्रयोग हुआ भी है। किन्तु अभिनवगुप्त ने काव्य का व्यापक अर्थ मे प्रयोग कर नाटक को भी उसी में अन्तर्निहित कर लिया है।

भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद

आप उत्पत्तिवाद के माननेवाले हैं। आपके मत मे विभाव, अनुभाव आदि के संयोग से अनुकार्य 'राम' में रस की उत्पत्ति होती है। यह विभावादि से परिपुष्ट रस दो स्थानो पर होता है। (१) अनुकार्य 'राम' आदि मे (२) नट–अनुकर्ता मे। राम (अनुकार्य) में साक्षात् संबन्ध से और नट (अनुकर्ता) मे राम के वेष, रूप आदि के बल से अर्थात् 'अनुसन्धानबलात्'। भट्टलोल्लट ने 'भरत सूत्र' मे प्रयुक्त 'सयोग' शब्द के तीन अर्थ किये हैं। विभावो के साथ सयोग अर्थात् उत्पाद्य, उत्पादक भाव संबन्ध, अनुभावोंके साथ गम्य-गमक-भाव सबन्ध

---

१. दशरूपक ४,४३,४४।

तथा व्यभिचारिभावो के साथ पोष्य, पोषकभावरूप संबन्ध। इसी प्रकार 'निष्पत्ति' के भी तीन अर्थ किये हैं। (१) उत्पत्ति (२) प्रतीति (३) पुष्टि।

इनके मत में सामाजिको में रस की उत्पत्ति नहीं होती। केवल अभिनयादि के समय, अभियन कौशल्य के बल से रामादिगत सीताविषयिणी अनुरागादि रूपा रति के विद्यमान न होने पर भी, नट में उसकी प्रतीति और उसके द्वारा सहृदय सामाजिको मे रस की उत्पत्ति होती है। विचारणीयभाग —

१. यह मत दर्शक तथा अभिनय के संबन्ध की विवेचना नही करता।

२ रस राम मे उत्पन्न होता है तो दर्शको (सामाजिकों) का उस रस से क्या सबन्ध ?

३ गौणरूप से रस नट मे उत्पन्न होता है, तो सामाजिकों का उससे क्या सम्बन्ध ? आदि प्रश्नो का उत्तर भट्टलोल्लट के सिद्धान्त से नही मिलता।

शकुक—

न्याय सिद्धान्त के अनुयायी शकुक ने भरतसूत्र की दूसरी प्रकार से व्याख्या की। इनके मत मे भी रत्यादि मुख्य स्थायीभाव अनुकार्य 'राम' मे ही होता है। किन्तु नट कृत्रिम रूप से अनुभाव आदि का प्रकाशन करता है। अभिनय चातुर्य के बल से उनमें वास्तविकता सी प्रतीत होती है। उन कृत्रिम अनुभावो (नटकृत) आदि को देखकर दर्शक, अनुकर्ता नट मे वस्तुत विद्यमान न होने पर भी उसमे रस का अनुमान कर लेता है।

शकुक ने नट मे रस को अनुमेय माना है। अभिनय की कला मे निपुण नट को ही दर्शक राम से अभिन्न समझने लगता है। और यह अनुमेय अभिन्नता (१) सम्यक् (२) मिथ्या (३) संशय (४) सादृश्य चारों प्रकार की प्रतीतियों से विलक्षण होती है।

नट और राम की अभिन्नता 'चित्रतुरगन्याय' के ऊपर आश्रित होती है। सक्षेप में चित्रतुरगन्याय से उपस्थित राम सीता रूप अनुकर्ता नट में तो यथार्थ स्मित कटाक्षादि नहीं है। नट अपनी शिक्षा और अभ्यासजन्य चातुर्य से कृत्रिम हाव भाव स्मित कटाक्षादिकों का प्रदर्शन करता है। इस प्रकार कृत्रिम आलंबन रूप सीताराम आदि मे नटों द्वारा प्रकाशित स्मित, कटाक्षादिकों से अनुमानिक रस की प्रतीति होती है।

शंकुक ने भरत के सूत्र में 'संयोगात्' शब्द का अर्थ अनुमानात् और 'निष्पत्ति' का अर्थ 'अनुमिति' माना है।

भट्टनायक का भुक्तिवाद—

भरत सूत्र के आप तीसरे व्याख्याकार हैं। आपने रस की व्याख्या में दर्शक के महत्व को समझा है। आपके मत मे रस की निष्पत्ति न अनुकार्य राम मे होती है और न अनुकर्ता नट मे। अनुकार्य और अनुकर्ता तो उदासीन है। इन दोनो को रसानुभूति नहीं होती। वास्तविक रसानुभूति दर्शक (सामाजिक) को होती है। भट्टलोल्लट ने प्रधान रूप से 'तटस्थ' राम आदि मे और गौण रूप से 'तटस्थ' अनुकर्त्ता नट मे रस की उत्पत्ति स्वीकार की है। इनके सिद्धान्त मे सामाजिक का स्थान नही है। इनके पश्चात् शकुक ने 'तटस्थ' नट मे रस की प्रतीति 'अनुमिति' मानी है और उस अनुमान द्वारा सस्कारवश सामाजिक की रस चर्वणा का उपपादन करने का यत्न किया है। अनुमिति से साक्षात्कारात्मक रसानुभूति की समस्या हल नही हो सकती। इस प्रकार आप रस को न तो उत्पन्न मानते हैं न उसकी प्रतीति और न उसकी अभिव्यक्ति मानते हैं। आपने रसानुभूति मे भुक्तिवाद ही उपयुक्त समझा है। और इस भुक्तिवाद की स्थापना के लिए 'भावकत्व' और भोजकत्व दो नये व्यापारो की कल्पना की। इस प्रकार आपने काव्य प्रयुक्त भाषा मे रसास्वाद के लिये तीन व्यापारो की कल्पना की (१) अभिधा (२) भावना (३) भोगीकरण।

अभिधा से तात्पर्य उस शक्ति से है जिससे शब्द का विशिष्ट अर्थ बोध होता है। शकुन्तला कहते ही कण्व की पुत्री और दुष्यन्त की पत्नी का अर्थबोध अभिधा शक्ति से ही होता है। भावना, विभाव और स्थायीभाव के व्यक्तिगत गुण निकाल लेने से सर्वसामान्य भाव का ज्ञान होता है। इस शक्ति से साधारणीकरण होता है। संक्षेप मे दुष्यन्त या शकुन्तला एक विशिष्ट ऐतिहासिक व्यक्ति न रहकर केवल सर्व सामान्य पुरुष और स्त्री रूप मे ही रह जाते हैं।

भोजकत्व के भोगीकरण व्यापार मे काव्यगतपात्र के साधारणीकृत विभाव अनुभाव व्यभिचारिभाव व स्थायीभाव का प्रेक्षकों को आस्वाद मिलता है। आस्वाद प्रत्यक्ष अनुभव या स्मृति से भिन्न होता है। इस अवस्था में सामाजिक के हृदयस्थ रजोगुण और तमोगुण पर सत्वगुण का प्रभाव अधिक होता है और कुछ अंशो में रजोगुण और तमोगुण की वहां उपस्थिति होने से प्रत्यक्ष ब्रह्मास्वाद का आनन्द नही मिलता, केवल ब्रह्मा-स्वादसदृश आनन्द उसे प्राप्त होता है। भट्टनायक ने 'संयोग' का अर्थ भोज्य-भोजकभाव और रसनिष्पत्ति का अर्थ, भुक्ति किया है। काव्यगत रस सर्व-प्रथम सहृदयगत माना गया है। भट्टनायक के मत में यह त्रुटि है कि उन्होंने

शब्द के त्रिविध व्यापार की मनमानी कल्पना की है। अभिधा व्यापार तो सर्वस्वीकृत व्यापार है परन्तु भावकत्व तथा भोजकत्व का क्या आधार है?

अभिनवगुप्त—

आपने पिछले आचार्यों के दोषों को दूर कर अपने 'अभिव्यक्तिवाद' की स्थापना की है। अभिनवगुप्त ने अपने पूर्ववर्ती ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन के आधार पर अभिव्यक्तिवाद का प्रतिपादन किया है। उसमे यह स्पष्ट कर दिया कि समग्रस्थायीभाव वासना रूप से सहृदयो के हृदयों मे विद्यमान रहते हैं। सहृदय की व्याख्या आपने इस प्रकार की है:—विमल प्रतिभा-शक्ति से युक्त हृदय रखनेवाला सहृदय होता है।

'विमलप्रतिभानशालिहृदय' अ. भा. पृ. २८० इसके अतिरिक्त ध्वन्यालोक की लोचन टीका मे सहृदय की व्याख्या अधिक स्पष्ट रूप से दी है। 'काव्यपरिशीलन के अभ्यास से निर्मलीभूत, जिनके मनोदर्पण में वर्ण्य विषय से तादात्म्य प्राप्त करने की योग्यता उद्भूत हुई हो, वे काव्यवर्णित भावनाओ से समरस होनेवाले सहृदय है।[1] इन सहृदयों के हृदय में जैसा कि ऊपर बताया है, वासना सुप्तावस्था मे रहती है। इन वासनाओ से युक्त मनुष्य प्राणी की प्रवृत्ति दु ख-पराङ्मुख और सुखाभिमुख होती है।

'दु खसश्लेषविद्वेषी सुखास्वादन-सादरः', काव्य के वाचन या नाटक आदि के दर्शन के प्रसग में विभावादिको द्वारा वे सुप्त भावनायें—उद्दीप्त होकर आनन्दमय रस का रूप धारण करलेती हैं किन्तु ये विभावादि, उद्दीपन का कार्य व्यक्तिगत रूप मे न कर साधारणीकृत स्वरूप में ही करते है और सहृदय के स्थायीभाव साधारणीकृत रूप में ही होते है।[2] इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ सामान्य रूप से तथा सबध रहित होकर ही ग्रहण किया जाता है। सक्षेप मे स्थायीभाव साधारणीकृत रूप से विद्यमान काव्यगत विभावादि सामग्री से उद्बुद्ध हो जाता है और तन्मयी-भाव के कारण ब्रह्मास्वाद के सदृश परमानन्द के रूप मे अनुभूत होता है। यही भरतसूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारिसयोगात् रसनिष्पत्ति.', का अर्थ है और यही

---

१ 'येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते हृदयसंवादभाजः सहृदयाः।"
ध्वन्यालोक काव्यमाला लोचन, पृ० १३ उद्योत १,

२ परस्य न परस्येति ममेति न ममेति च।
तदास्वादे विभावादेः परिच्छेदो न विद्यते॥ सा० दर्पण ३।१२

उसकी रसनिष्पत्ति है। अभिनवगुप्त ने भरतसूत्र के संयोग शब्द का अर्थ व्यंग्यव्यंजकभाव और रसनिष्पति का अर्थ अभिव्यक्ति माना है। आपने भट्टनायक के भावकत्व और भोजकत्व के व्यापार की कल्पना नही की। भावकत्व के स्थान पर साधारणीकरण व्यापार और अभिधा, लक्षणा शक्ति के स्थान पर व्यंजना शक्ति स्वीकार की है।

रस संख्या और उसका महत्व

आचार्य भरत ने पूर्व ही रस का महत्व प्रतिपादित किया था। भरत ने गुणालंकारों को भूषण रूप में ही स्वीकार किया है, इन अलकारो का उपयोग रसके लिये रसानुकूल होना चाहिये[1] नाटय के अगोपांगोमे भी रस और भाव को ही प्रधानता दी है[2] आचार्य रुद्रट ने प्रेयान् को भी रस माना है[3]। इसके अतिरिक्त आचार्य भोजराज ने अपने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' के पचम परिच्छेद मे आठ रसो के अतिरिक्त तीन अन्य रसो का उल्लेख किया है। वे तीन हैं–शान्त, उदात्त एव उद्धत[4]। आचार्य विश्वनाथ ने 'वात्सल्य, रस को भी रस माना है[5] किन्तु अन्य विद्वानो के द्वारा स्वीकृत वात्सल्य, लौल्य, भक्ति एवं कार्पण्यादिरसो का 'रसतरगिणीकार ने खडन किया है[6]। रस-रत्नहारकर्ता शिवराम ने नवरसो के अतिरिक्त सभी रसोका खडन कर उनका अन्तर्भाव नवरसो एव भावो मे ही कर दिया है।[7] वस्तुत साहित्य मे रस का महत्व सभी साहित्यविदो ने स्वीकार किया है, किन्तु अपनी अपनी दृष्टि से उसे गौण प्रधान-भाव का स्थान दिया है।

छन्द:

काव्य के शरीर पक्ष मे ही छन्द का अन्तर्भाव होता है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र के १५ वे अध्याय मे वृत्तों का विवेचन किया है और १६ वे अध्याय मे उन वृत्तो का रस से संबध स्थापित किया है। अर्थात् किस रस मे कौनसे वृत्त या छन्द की योजना होनी चाहिये बतलाया है। वीर के भुजदण्डां

१ ना शा ६,३४ 'न हि रसाहते कश्चिदर्थ प्रवर्तते।,
२ वही १६. ४, ११३।६,—१०
३. रुद्रट—काव्यालकार १२, ३, १६-१७
४. सरस्वतीकण्ठाभरण पंचम परिच्छेद।
५. सा दर्पण ३ २५१
६. तरंग. ६
७ संस्कृत सा. इतिहास पी. व्ही काणे मराठी अनुवाद पृ० २८६

वर्णनमें स्रग्धरा और नायिका के वर्णनमें वसन्ततिलकादि छन्दोंका प्रयोग होना चाहिये।[1] शृङ्गार रस मे रूप, दीपक संयुक्त आर्याओं और वृत्तों का प्रयोग होना चाहिये उत्तरोत्तर वीर रस मे जगती, अतिजगती संस्कृति वर्ग के छन्दो का, युद्ध सफेट मे प्रकृतिवर्गके छन्दो का, करुण मे शक्वरी, तथा अतिधृतिछन्दो का प्रयोग होना चाहिये। जिन छन्दो का वीर रस मे प्रयोग होता है उन्ही का रौद्र रस मे भी प्रयोग होना चाहिये। अन्त मे कहा है कि शेष छन्दों का प्रयोग रस के अनुकूल करना चाहिये।[2] क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक, (काव्यमाला गुच्छ २) के तृतीय परिच्छेद मे काव्य रस और वर्णन के अनुसार वृत्तो का प्रयोग बताया है। शास्त्रकाव्य मे अतिदीर्घ वृत्तो का प्रयोग नही होना चाहिये। काव्यशास्त्र मे भी रसानुरूप वृत्तो का प्रयोग आवश्यक है। शम का उपदेश देने के लिये अनुष्टुभ, शृगार आदि के लिये वसन्ततिलका, तथा उपजाति, वीर और रौद्र रस के मिश्रण के लिये वसन्ततिलका, राजाओ के शौर्यादि के वर्णन के लिये शार्दूलविक्रीडित आदि वृत्तो का प्रयोग कहा है।[3] वस्तुत छन्द और रस का अभिन्न सबध है। किन्तु छन्द है बाह्यतत्व। मानव की भावनोत्कटता के स्तर के अनुसार ही शब्दोच्चार भी दीर्घ, ह्रस्व या तीव्र निकलता है। व्यक्ति के संस्कारविशेष, समाज मे प्रचलित नैतिक मूल्यो, विश्वासो, जीवनविषयक विचारों आदि से निर्मित होते हैं–इन संस्कार वृत्तियो को रसरूप मे परिणत करना महाकवि का कर्म है। कवि जितना जीवन की गभीरता से परिचित होगा और उसकी अभिव्यक्ति जितनी कुशलता से कर सकेगा रसनिष्पत्ति उतनी ही सफलता से होगी "रससिद्ध कवीश्वरो के समय मे ही विशाल छन्दोवैविध्य एवं छन्द के प्रौढ़ प्रयोगों के दर्शन होते हैं किसी युग के छन्दोवैभव को स्पष्ट करना, उस युग की साहित्यिक अभिरुचि एवं सामाजिक गरिमा का इतिहास अंकित करना है[4]"

सारत काव्य के सामान्य स्वरूप को स्पष्टांकित करने के लिये यदि हम पुन पूर्ववर्णित रूपक को अकित करें, तो कोई आपत्तिजनक नही होगा। इस

---

१ वीरस्य भुजदण्डाना, वर्णने स्रग्धरा भवेत्।
नायिकावर्णने कार्यं वसन्ततिलकादिकम्।
भरत० ना० शा० १४ अध्याय ११२, कात्यायनमत

२. वही अध्याय १६, १०६ से १०९ काव्यमाला

३. सुवृत्त तिलकम्–क्षेमेन्द्र–काव्यमाला तृतीयविन्यास ७–२३

४. आधुनिक हिन्दीकाव्य में छंदयोजना पृ० ३९ डा० पुत्तूलाल शुक्ल

प्रकार उपर्युक्त विवेचन हमें इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि शब्दार्थ तो काव्य पुरुष का शरीर है, ओज, माधुर्य आदि गुण उस काव्य पुरुष के शौर्य औदार्यादिगुण हैं, उपमादि अर्थालंकार व यमकादि शब्दालंकार उसके किरीट कुडलादि भूषण हैं, रीति उसके अवयवादि की रचना है, दोष उसके शरीर के काणत्वादि व्यग हैं, छन्द उसके शब्द-अर्थ रूप शरीर पर रहने वाले रोमादि हैं और रस उसकी आत्मा है।[1]

रस ही काव्यात्मा है

संप्रदायों, (रस, अलकार, रीति, वक्रोक्ति व ध्वनि आदि) का विवेचनात्मक विश्लेषण हमें इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि काव्य के आत्मस्थानीय प्रतिष्ठा के योग्य केवल रस ही है, अलकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य आदि अग उस काव्यपुरुष के अवयवसस्थानविशेष हैं। रस ही आत्मा क्यो है इसका विवेचन हमने पीछे कर दिया है, उसी का पुन विवेचन करना उपयुक्त न होगा तस्मात् हम यहा केवल लक्षण ग्रन्थों के वचनों को उद्धृत कर रसात्मा का औचित्य बताते हैं।

कवि विश्वनाथ ने दर्पण मे 'वाक्य रसात्मकं काव्य' लिखकर रस को काव्य की आत्मा उद्घोषित कर दिया है। भरत ने इसी प्रधान तत्व की ओर स्पष्ट सकेत कर दिया था। किन्तु केवल सकेत मात्र होने से गच्छता कालेन आत्मशोध ने अनेक सप्रदायो का रूप धारण कर लिया। ध्वन्यालोककार ने अपने ध्वन्यालोक मे ध्वनि का विवेचन करते समय यत्र तत्र आत्मतत्व के अधिकारी रस की ओर सकेत करते हुये ही उल्लेख किया है।[2] ध्वनि को काव्यात्मा सिद्ध करने का प्रयोजन होने से यद्यपि आनद ने 'रस ही काव्य की आत्मा है') यह स्पष्ट विधान नहीं किया है, फिर भी वे वास्तविकताको अपनी दृष्टि से ओझल न कर सके। ध्वन्यालोक के टीकाकार अभिनवगुप्त ने अवसर प्राप्त होते ही कहा कि वस्तुत रस ही आत्मा है, और वस्तुध्वनि तथा अलंकारध्वनि रस मे ही विलीन होते हैं, किन्तु वे वाच्यार्थ की अपेक्षा अधिक रमणीय

---

१ सा० दर्पण १ परिच्छेद। राजशेखर काव्यमीमांसा ३ अध्याय

२. 'रस, एव वस्तुत आत्मा' ध्वन्यालोक लोचन पृ० २७ निर्णयसागर,
अयमेवहि महाकवेर्मुख्यो व्यापारो यद्रसादीनेव मुख्यतया
काव्यार्थीकृत्य तद्व्यक्त्यनुगुणत्वेन शब्दार्थाना चोपनिबन्धनम्।
ध्व० लौ० उद्योत ३ टीका० का० ३२

होने के कारण ध्वनि काव्यात्मा है, यह सामान्यतः उल्लिखित किया है।[1] एक स्थान पर आनन्द ने कहा कि वाच्यार्थ और वाचक शब्द दोनों का पर्यवसान रसानुकूल ही होना चाहिये।[2] माधुर्यादिगुणों का नियामक रस ही है[3]। अन्यत्र कहते हैं कि प्रधानभूत रस के आश्रय से काव्य की रचना करने पर एक विशेष नवीन अर्थ की प्राप्ति होती है और प्रस्तुत रचना का सौन्दर्य भी अधिक बढ़ जाता है।[4] इस प्रकार रीति, गुण अलंकार आदि का निबन्धन यदि सर्वथा रस पर ही निर्भर है तो क्या रस को काव्यात्मा मानना समीचीन नहीं है[5]? राजदरबार मे सपूर्ण कार्य राजा की मनोवृत्ति के अनुरूप ही संचालित होते हैं। उसी प्रकार काव्यदरबार में प्रसाद, माधुर्य, ओज आदि गुण गौडी, वैदर्भी आदि भाषा-प्रकार, यमक आदि शब्दालंकार और उपमादि अर्थालंकार ये सब (काव्यदरबार के) सदस्य रूप हैं। इन सभी को राजसिंहासनाधिष्ठित रसराज की दृष्टि की ओर देखते हुये ही कार्य में प्रवृत्ति करनी पड़ती है। शृंगार रस मे माधुर्य गुण एवं अर्थालंकार ही प्रवृत्त हो सकते हैं। यमकादि शब्दलंकार 'ष' कार 'ठ' कार आदि को तो अधोमुख होकर ही स्तब्ध रहना पड़ता है। इसी प्रकार वीर रसराज होने पर एव करुण रसराज होने पर उनकी प्रकृति के अनुरूप ही दरबारी सदस्यो को (अलकार, रीति गुण) राजदरबार मे प्रवृत्त या निवृत्त होना पड़ता है।

---

१. रस. एव वस्तुत: आत्मा। वस्त्वलकारध्वनी तु सर्वथा रस प्रति पर्यवस्येते इति वाच्यादुत्कृष्टौ तौ इति अभिप्रायेण ध्वनिः काव्यस्य आत्मा इति सामान्येन उक्तम्।

२. वाच्यानां वाचकानाच यदौचित्येन योजनम्।
रसादिविषयेणैतत्कर्म मुख्यं महाकवे: ३—१२

३. गुणानाश्रित्य तिष्ठन्ति माधुर्यादीन् व्यनक्ति सा
रसस्तन्नियमे हेतुः औचित्य वक्तृवाच्ययो: ३—३

४ तस्मात् स्थितमेतत् अंगीकृतरसाश्रयेण काव्येक्रियमाणे नवनवार्थलाभोभवति बंधच्छाया च महती संपद्यत इति। ध्वन्या० कारिका ५ उद्यो० ४

५ ग्रन्थ की समाप्ति करते हुए लिखते हैं :—

'नित्यक्लिष्टरसाश्रयोचितगुणालंकारशोभाभृतो।
यस्माद्वस्तु समीहितं सुकृतिभिः सर्वं समासाद्यते।
ध्व० लो० कारिका १७ उद्योत ४

इसी रूपक की व्यञ्जना हमें शिशुपालवध के एक श्लोक मे मिलती है।[1] सारतः रीति, गुण, अलकार और छन्द आदि का वैभव रसानुकूल औचित्य-पूर्ण योजना पर निर्भर है। काव्य की रूपरेखा निश्चित करते समय सर्वप्रथम रस का निश्चय आवश्यक है और तदनुसार रसभूमिका के औचित्यानुसार अलंकार, रीति, गुण छन्द आदि की योजना अपेक्षित होती है। अरिस्टॉटल के मत मे कथानक को प्रधानता दी जाती है किन्तु यह मत भारतीय साहित्यशास्त्रियों को मान्य नहीं। इनके मत मे कथानक की अपेक्षा रस ही प्रधान है[2]। भरत ने भी कथानक को आत्मा न मानकर उसे नाटक का शरीर ही माना है[3]।

इसके अतिरिक्त मम्मट ने दोष का स्वरूप बतलाते हुए कहा है कि काव्य के मुख्य अर्थ का विघात अथवा अपकर्ष ही दोष है। और काव्य का मुख्यार्थ रसादिरूप अर्थ है[4]। ये दोष भी वक्तृ आदि के औचित्य से प्रकृत रस भावादि के उत्कर्षक होने के कारण गुण मान लिये जाते है। और कही रस शून्य सन्दर्भ में वे न तो दोष रूप में रहते हैं और न गुण रूप में[5]। श्लेषादि बन्ध मे अप्रयुक्त, निहतार्थ कोई दोष नही होते। बोद्धव्य वैयाकरण हो, या व्यग्य रस भाव रौद्रादि हो (वीर, बीभत्स) तो ये दोष (कष्टत्व आदि) दोष नही अपितु गुण माने जाते हैं[6]। अश्लीलत्व दोष भी स्थान

---

१. तेज क्षमा वा नैकान्तं कालज्ञस्य महीपते ।
नैकमोज प्रसादो वा रसभावविद कवे । शिशुपालवध २।८५

२. Plot is the first Principle of tragedy and charecter the second Poeties 15

३. कविना प्रबन्धमुपनिबध्नता सर्वात्मना रसपरतन्त्रेण भाव्यम्। न हि कवे इतिवृत्तमात्रनिर्वहणेन किंचित्प्रयोजनम् इतिहासादेव तत्सिध्दे' पृ० १४८ ध्वन्यालोक

३, कथाशरीरमुत्पाद्य वस्तु कार्यं तथा तथा
यथा रसमयं सर्वमेवैतत्प्रतिभासते ॥ (ध्व० पृ० १४७)

३. 'इतिवृत्तंहि नाटयस्य शरीर परिकल्पितम्' ना० शा०

४ 'मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्य:' का० प्र० ७।४९

५. 'वक्त्राद्यौचित्यवशाद्दोषोऽपि गुण' क्वचित्क्वचिन्नोभौ ॥
क्वचिन्नीरसे न गुणो न दोष ७।८१। का० प्र० काशी संस्करण

६. 'तत्र वैयाकरणाद्यौ वक्तरि प्रतिपाद्ये च रौद्रादौ च रसे व्यंग्ये कष्टत्वं-गुण' ७।७१ ५२ का० प्र० वही।

विशेष एव प्रकरण विशेष मे गुण हो जाता है[1]।

काव्यसंप्रदायों की कल्पना का औचित्य

उपर्युक्त सप्रदायो के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्य निर्माण के विभिन्न घटकों रस, अलकार, रीति, ध्वनि, आदि, पर काव्य संप्रदायों की कल्पना की गई है। कुछ आचार्यों ने काव्य मे रसतत्व को प्रमुख स्थान देकर काव्य के अन्य पोषक तत्वो को गौण समझा। अलंकारसप्रदाय के आचार्यों ने इसके विपरीत अपने अभीष्ट तत्व (अलंकार) को इतना व्यापक स्वरूप दिया कि शेष तत्व (रस, रीति, गुण, ध्वनि) उसी में समाविष्ट हो गये। इस गौण प्रधानभाव की कल्पना के अन्तस् में काव्य-शरीर के आत्मतत्व और शरीरतत्व के विचार की सूक्ष्मधारा प्रवाहित थी। इन सप्रदायो के निरीक्षण से शरीर तत्व से आत्मतत्व के शोध की विकासावस्था का एक क्रमिक इतिहास परिलक्षित होता है। भामह आदि ने रस को 'रसवत्' अलकार मानकर उसे काव्य का बहिरग साधन रूप मे ही स्वीकार किया। "अपने ग्रथ मे रसतत्व का सक्षिप्त विवेचन करने से या रसतत्व को 'रसवत्' अलकार के अन्तर्गत रखने से भामह को अलकारवादी नहीं कहा जा सकता[2] यह उक्ति समीचीन प्रतीत नही होती, जैसा कि आनन्दवर्धन तथा अभिनव गुप्त ने भामह आदि प्राचीन आचार्यों के प्रति अपना क्षोभ प्रकट करते हुये काव्य की आत्मा रस को अलकार रूप मे व्यक्त करना अत्याचार कहा है। किन्तु इसके विपरीत वामन ने 'रस' को कान्ति गुण में समाविष्ट कर काव्य में रस तत्व पर पूर्व की अपेक्षा कुछ अधिक बल दिया। भामह दडीद्वारा अलक्षित एव अस्पष्ट गुणालकार के भेद को वामन ने सर्व-प्रथम स्पष्ट किया। एक आचार्य ने एक स्थान पर एक गुण माना तो दूसरे ने उसी स्थान पर अनेक गुणो की कल्पना की। भरत आदि के गुणो की सख्या वामन ने द्विगुणित कर दी और अन्त में मम्मट ने केवल तीन गुणों मे ही उन सबका अन्तर्भाव कर दिया और यही स्वीकृत भी हुआ। ध्वनि विरोधियोमे सबसे प्रसिद्ध तीन आचार्य हैं–१ भट्टनायक २ महिमभट्ट ३ कुन्तक। भट्टनायक ने व्यञ्जना का खंडन किया। महिमभट्ट ने ध्वनि को अनुमित मानकर व्यञ्जना का निषेध किया और कुन्तक ने वक्रोक्ति को इतना व्यापक किया कि ध्वनि का संपूर्ण प्रपंच उसी में समाविष्ट हो गया। इससे ज्ञात होता है कि भारतीय आचार्यों मे पर्याप्त मतभेद रहा है।

---

१ अश्लीलं क्वचिद्गुण यथा सुरतारम्भगोष्ठयाम।
काव्यप्रकाश, उल्लास-सप्तम

२ 'भारतीय साहित्यशास्त्र म० म० देशपाण्डे पृ० ५६–५७

इसका एक मात्र कारण है आलोच्य विषय मे विचारभेद, दृष्टिभेद। किन्तु केवल इस दृष्टिभेद के आधार पर इन आचार्यों को विभिन्न सप्रदायो मे विभाजित कर भिन्न भिन्न सप्रदायों की कल्पना करना सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है। विद्वानो के मत मे विभिन्न संप्रदायो की कल्पना युक्ति युक्त नहीं है। इनके मत मे साहित्य शास्त्र का क्रमिक विकास हुआ है। (वस्तुत: यह Schools सप्रदाय) पश्चिम के लेखकों का अनुकरण 'गड्डलिका प्रवाहवत्' ही है। यह विकास किसी वस्तु के अतरग के शोध मे ऊपर की तह के भीतर रहने वाली सूक्ष्मतर तह का परिचायक है। पूर्वकालीन आचार्य के प्रधान रूप से स्वीकृत तत्वो का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए उत्तरकालीन आचार्यों ने उनका सूक्ष्मतर विश्लेषण किया है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने का अखडप्रवाह दृग्गोचर होता है।

इसके अतिरिक्त किसी विशिष्ट संप्रदाय में अन्य संप्रदाय के स्वीकृत तत्वो या सिद्धान्तो का खडन और एकान्ताभाव ही अपेक्षित होता है। किन्तु इन तथाकथित सप्रदायों मे (रस संप्रदाय, अलकार सप्रदाय, रीति संप्रदाय, ध्वनि संप्रदाय) उपर्युक्त सिद्धान्त का अभाव है। ये सप्रदाय एक दूसरे से अन्त: प्रवाहित अखड धारा द्वारा सबद्ध हैं। एक दूसरे के विरोधरूप मे इनका अस्तित्व नही है। भामह का रस या गुणो से विरोध नही है। वामन का रस अलकार से विरोध नही या आनंदवर्धन का गुणालकारो से कोई विरोध नही। उपर्युक्त तीनो बातें तीनो को मान्य है। ध्वनिविरोधियो का केवल व्यंजनाव्यापार से विरोध था। इसके अतिरिक्त 'रीतिरात्मा काव्यस्य,' मानने वाले आचार्य बहुत नही हुए है। मम्मट के पश्चात् ध्वनि विरोधी भी कोई नहीं हुआ। सभी ने एक स्वर से व्यजना को स्वीकार किया। इन सभी आचार्यों मे केवल एक ही तत्व को काव्य का प्रधानतत्व मानने वाला कोई नहीं हुआ। काव्य के सभी पोषक तत्वो मे एक समन्वय स्थापित करने की पूर्वाचार्यों की भावना ने आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक में आ कर समन्वयात्मक रूप धारण किया और यही काव्य-पुरुष या काव्य-कामिनी के शरीररूपक की कल्पना का आधार बन गया। इस काव्य शरीर के बाह्यागो ने ही सर्व प्रथम भारती चिन्तको का ध्यान आकर्षित किया। इसके पश्चात् भारतीय तत्ववेत्ता कुछ पूर्व की अपेक्षा शरीर तत्व से अन्तस्तत्व की ओर अग्रसर हुए हैं। और पूर्वकालीन अलंकार एवं उत्तरकालीन गुण, उनकी

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास डा० दास गुप्ता, प्रथम भाग, भारतीय साहित्य शास्त्र, ग. त्र्यं. देशपाण्डे. पत्र १२१-१२५

स्थूल दृष्टि से सूक्ष्मदृष्टि की ओर आने का परिचायक है "आत्मानं रथिनं विद्धि" औपनिषदिक लक्ष्य की सिद्धि ध्वनि के अनुसंधान में ही हो जाती है। और कवि विश्वनाथ के 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' मे दिव्य आत्मज्ञान होने का स्पष्ट अनुभव हो जाता है। इस प्रकार ये तथाकथिक संप्रदाय साहित्य चर्चा के विकास के स्तर या उसकी अवस्थाविशेष है।

यही कहना युक्ति युक्त भी प्रतीत होता है। यह विकास औपनिषदिक 'अरुन्धतीदर्शन न्याय' का ही एक रूपान्तर मात्र है। अर्थात्, जैसे सर्वप्रथम स्थूल नक्षत्र ज्ञान से पार्श्व मे ही स्थित सूक्ष्म नक्षत्र ज्ञान, सहजगत्या हो जाता है। उसी प्रकार 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' की परिभाषा से उत्तरकालीन सूक्ष्मतर परिभाषाओ का उल्लेख मिलता जाता है। सर्वत्र 'तर,' 'तम,' की विचारधाराही प्रवाहित रही है। तस्मात् यदि कोई 'श्रवणसुख, 'परंपरासुख,' आदि की भावना से ही अंग्रेजी के रूपान्तर (स्कूल्स) संप्रदाय शब्दो का प्रयोग करना चाहे तो कोई आपत्ति नहीं।

द्वितीय अध्याय

काव्य के प्रकार

सस्कृत साहित्य शास्त्र के उपलब्ध ग्रन्थो मे सर्वाधिक प्राचीन ग्रथ भरत का नाट्यशास्त्र है। भारतीय परंपरा मे आस्था रखने वाले विद्वान 'अग्नि-पुराण' को नाट्यशास्त्र से पूर्व का मानते है किन्तु डा० पी० व्ही० काणे ने इस मत का खंडन कर दिया है।[1] कन्हैयालाल पोद्दार ने इसका समय भरत के पश्चात् और भामह तथा दडी के पूर्व माना है[2]। काव्यशास्त्र पर अनेक ग्रथ उपलब्ध हैं इन ग्रथो मे हमारा सबंध कुछ ग्रंथों से है जिनमें काव्य के रूप, प्रकार एव उसके वर्गीकरण पर अधिक विचार किया गया है। लक्षण ग्रन्थों मे काव्य प्रकार का विचार विभिन्न दृष्टिकोणो से किया गया है। सुविधा और व्यवस्था की दृष्टि से हम उन्हे इस प्रकार रखते हैं—

(१) शैली की दृष्टि से, (२) भाषा की दृष्टि से, (३) विषय की दृष्टि से, (४) इन्द्रियमाध्यम की दृष्टि से, (५) अर्थ की दृष्टि से, (६) बन्ध की दृष्टि से, (७) उद्भव की दृष्टि से

आधुनिक विचारको की दृष्टि से भी कुछ काव्य के प्रकार हैं—

(१) आनन्द की सिद्धावस्था, (२) आनन्द की साधनावस्था। (३) वस्तुनिष्ठ, (४) आत्मनिष्ठ

शैली की दृष्टि से—

यहा शैली से हमारा तात्पर्य, गद्य एव पद्य से है। आचार्य भामह ने काव्य के दो भेद किये है (१) गद्य काव्य और (२) पद्य काव्य[3]। दण्डी ने उक्त भेदो मे एक भेद और बढा दिया है — गद्यकाव्य, पद्यकाव्य एव मिश्रकाव्य[4]। वामन ने भामहकृत प्रभेदो की ही पुष्टि की है।[5]

---

१ साहित्यदर्पण की भूमिका पृष्ठ ३

२ 'सस्कृत साहित्य का इतिहास' भाग–१० पृ ९२

३ "शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यञ्च तद्द्विधा"

भामहकाव्यालंकार १।१६।

४. "गद्यं पद्य च मिश्र च तत् त्रिधैव व्यवस्थितम्"

दण्डी-काव्यादर्श प्रथम. परि १।११

५ "काव्यं गद्यं पद्यञ्च।" वामन-का० सू० १, ३, २१

वाग्भट के अनुसार, वाङ्मय दो प्रकार का होता है—

(१) छन्दोबद्ध और (२) छन्दोहीन। इनमे प्रथम को (छन्दोबद्ध) पद्य और द्वितीय को (छन्दोहीन) गद्य कहते हैं। पद्य और गद्य से मिले हुए वाङ्मय को मिश्रित कहते हैं[१]। आगे बढने के पूर्व पद्य और गद्य का स्वरूप देख लेना आवश्यक है। गद्य का स्वरूप बतलाते हुए दण्डी ने कहा है कि जिस सुबन्त, तिङन्त पद समुदाय मे गणमात्रादि नियत पाद नहीं हो, उसे गद्य कहते हैं और विश्वनाथ छन्द-बन्धहीन शब्दार्थयोजना को गद्य कहते हैं[२]। दण्डी के मत मे पद्य का चार पादों से युक्त होना आवश्यक है।[३] वस्तुत पद्य के चार चरणो का होना आवश्यक नहीं है। यह संख्या नियत नहीं हो सकती। वेद मे तीन चरणो (गायत्री) और छ. चरणो (षट्पदी) के वृत्त प्रसिद्ध हैं।

आचार्य वामन ने गद्य के तीन रूपो का निर्देश किया है—(१) वृत्तगन्धि, (२) चूर्ण, (३) उत्कलिकाप्राय[४]।

इसके आगे 'साहित्य-दर्पणकार' ने 'गद्य' का एक और भेद 'मुक्तक'[५] माना है। इस प्रकार विश्वनाथ के मत मे गद्य के चार भेद हैं। यह गद्य मुक्तक, सामासिक बन्धन से मुक्त रहता है[६]। वृत्तगन्धि के विषय मे दोनो आचार्य एक मत हैं। दोनों के मत मे, छन्दोबन्ध से युक्त वाक्य वृत्तगन्धि है।

चूर्ण—असमस्त और ललित पदो से युक्त गद्यभाग चूर्ण कहलाता है।

उत्कलिकाप्राय—यह चूर्णात्मक गद्य से विपरीत होता है। इसमें दीर्घसमास और उद्धत पद होते हैं।

एक अन्य दृष्टि से भी दण्डी ने पद्य का विभाजन किया है। एक पद्य का पद्यान्तर से सम्बन्ध है या नहीं और यदि है, तो

---

१. छन्दोनिबद्धमच्छन्द इति तद्वाङ्मयं द्विधा।
पद्यमाद्यं तदन्यच्च गद्यं मिश्रं च तद् द्वयम्॥ २।४ वाग्भटालंकार।

२ "अपाद पदसन्तानो गद्यम्" १।२३ काव्यादर्श।
"वृत्तगन्धोज्झितं गद्यम्", ६।३३० विश्वनाथ, दर्पण।

३. "पद्य चतुष्पदी" १।११ काव्यादर्श।

४. "गद्यं वृत्तगन्धि चूर्णमुत्कलिका प्राय च"।
वामन-काव्यालंकारसूत्र १, ३, २२

५ "वृत्तगंधोज्झितं गद्यं मुक्तक वृत्तगन्धि च॥
भवेदुत्कलिका प्राय चूर्णक च चतुर्विधम्"॥ ६।३३० साहित्यदर्पण।

६. "आद्य (मुक्तकम्) समासरहितम्।" ६।३३१ वही।

कितने पद्यो से ? भेद इस प्रकार है– (१) मुक्तक, (२) कुलक, (३) कोष, (४) संघात[१]। अन्य आचार्यों ने कुछ उनके प्रभेदो की चर्चा की है। आनन्द-वर्धन ने "मुक्तक, सद्रानितक, विशेषक, कलापक, कुलक" आदि क्रिया समाप्तिमूलक प्रभेदो का नाम लिया है[२]। आचार्य विश्वनाथ ने भी मुक्तक, युग्मक, सन्दानितक, कलापक एव कुलक के नाम से पद्य के उपर्युक्त पाच प्रभेदो की चर्चा की है[३]। मुक्तक के विषय मे आचार्य अभिनवगुप्त ने कहा है कि मुक्तक वही है जो अन्य श्लोक से असबद्ध होकर भी स्वतन्त्ररूप से रसास्वाद पैदा कर सके[४]। अग्निपुराण में भी मुक्तक का यही लक्षण दिया है। मुक्तक वह एक-एक[५] श्लोक है जो सहृदयो को चमत्कृत या प्रभावित करने मे समर्थ होता है। विश्वनाथ ने कहा है कि मुक्तक अपने अर्थ मे अन्य किसी पद्य की आकाक्षा से मुक्त होता है[६]। दण्डी ने मुक्तक को प्रबन्ध का अंग ही कहा है। राजशेखर ने अपनी काव्यमीमासा मे मुक्तक के पाच प्रभेदों का उल्लेख किया है—

(१) शुद्ध, (२) चित्र, (३) कथोत्थ, (४) सविधानकम् (५) आख्यानकवान्। इतिहास से रहित अर्थ शुद्ध है। उसे विस्तार के साथ कहना चित्र है। इतिहास युक्त अर्थ कथोत्थ है। जिसमे घटना सम्भावित हो, उसे संविधानकम् कहते हैं और जिसमे इतिहास की कल्पना की जाय, उसे आख्यानकवान् कहते हैं[७]। राजशेखर ने जिसे मुक्तक कहा है उसे भामह और वामन ने "अनिबद्ध" कहा है[८]।

---

१. 'मुक्तक कुलक कोष सघात इति तादृश" १।१३ काव्यादर्श।

२ ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत लोचन पृ० ३२३,३२४ चौखम्बा प्रकाशन

३. छन्दोबद्धपद पद्य तेन मुक्तेन मुक्तकम्।
द्वाभ्या तु युग्मक सादानितक त्रिभिरिष्यते ॥
कलापकं चतुर्भिश्च पञ्चभि. कुलक मतम् ६।३१४ सा० दर्पण

४. यदि वा प्रबन्धेऽपि मुक्तकस्यास्तु सद्भावः पूर्वापरनिरपेक्षेणाऽपि हि येन रसचर्वणा क्रियते, तदेव मुक्तकम् "लोचन" पृ०३२६ चौ० प्रकाशन

५. मुक्तक श्लोकैकश्चमत्कारक्षमः सताम्"
३६ अग्निपुराण का काव्य शास्त्रीयभाग,

६ "तेन मुक्तेन मुक्तकम्" ६।३१४ सा० दर्पण

७. काव्यमीमासा, अध्याय ९,

८. भामह काव्यालकार १ परि० १८, वामन काव्यालकारसूत्र १।३।२७

युग्मक—प्रबन्ध या महाकाव्य के भीतर प्रयुक्त होनेवाले ऐसे भी श्लोक होते हैं जिनमे दो, तीन, चार, पाच और इससे भी अधिक श्लोकों का सम्बन्ध एक ही समापिका क्रिया से होता है और यह क्रिया परवर्ती श्लोक में या निर्धारित श्लोक के अन्तिम श्लोक मे होती है। इस प्रकार के श्लोक कालिदासोत्तरकालीन अलंकृत या विदग्ध महाकाव्यो मे प्राय देखने मे आते हैं। कवियो ने उक्त श्लोको के नियोजन में अपनी विशेष विदग्धता समझी। कालिदास के कुमारसमव और रघुवंश महाकाव्यों में तो यह प्रवृत्ति यह (शैली) सीमित मात्रा में ही रही है। किन्तु किराता-र्जुनीय, शिशुपालवध, हरविजय और श्रीकण्ठचरित आदि महाकाव्यो मे यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर क्रमश. बढ़ती ही गई और उन "कुलक" आदि श्लोकों को "महाकुलक" की संज्ञा से अभिहित किया[१]। विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण मे इनकी सख्या दी है[२]। लोचनकार अभिनवगुप्त ने युग्मक का पर्याय "सन्दा-नितक" कहा है[३]।

सांदानितक—मे तीन श्लोको की एक क्रिया से परिसमाप्ति होती है। कलापक, मे चार श्लोको की एक क्रिया से परिसमाप्ति होती है। कुलक, मे पाच श्लोको की एक क्रिया से परिसमाप्ति होती है।

कोष—इसमे पद्यो का सग्रह होता है, जो (श्लोक) परस्पर स्वतंत्र अस्तित्व रखते है। काव्यानुशासनकार हेमचन्द्र ने स्वरचित या अन्य रचित सूक्तियो के सग्रह को कोष कहा है।[४]।

---

१ "मुक्तक, कुलक," आदि के विषय में 'श्रीकण्ठ चरित' में समन्वय प्रदीप का मत उद्धृत किया है। 'विशेषक' का पर्याय कश्मीर मे 'तिलक' की सज्ञा से प्रसिद्ध है। 'सबद्धं श्लोकचतुष्टयं चक्कलक-मित्युच्यते। यथा समन्वयप्रदीपे—यत्र वाक्यार्थविश्रान्ति श्लोकेनैकेन जायते। तन्मुक्तक युगं द्वाभ्या त्रिभि स्यात्तिलक पुन॰ ॥ चतुर्भिः स्या-च्चक्कलक पचभि॰ कुलक तत. । महाकुलकमित्यार्या॰ कथयन्ति तत. परम्" ॥ इति तिलकस्य पर्यायान्तरं, विशेषकमिति । चक्कलकशब्दस्तु प्राय कश्मीरदेशे प्रसिद्ध एव । काव्यमाला॰ ३ सर्ग ३, पृ॰ ३९

२ "द्वाभ्या क्रियासमाप्तौ सन्दनिकतम्"
पृ॰ ३२४ ध्वन्यालोक लोचन ३ उद्योत, चौ॰ प्रकाशन

३. "स्वपरकृतसूक्तिसमुच्चयः कोष" काव्यानुशासन ८,१३

४. "संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा । १।१६ काव्यालंकार,

भाषा की दृष्टि से—

भामह ने भाषा की दृष्टि से काव्य के तीन भेद कहे हैं—

(१) सस्कृत, (२) प्राकृत, (३) अपभ्रंश ।

आचार्य दंडी के मत मे—काव्य भाषाभेद से चार प्रकार का होता है—(१) सस्कृत, (२) प्राकृत, (३) अपभ्रंश, (४) मिश्र । दडी ने भामह से एक अधिक(मिश्र)भेद कहा है ।[1] इसी मिश्रण के कारण आचार्य विश्वनाथ ने भी विविध भाषाओं के मिश्रित काव्य को "करम्भक" की संज्ञा दी है ।[2]

वाग्भट ने अपने "वाग्भटालकार" मे कहा है कि सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश और भूतभाषा मे काव्य रचना की जाती है ।[3] इसके आगे रुद्रट ने काव्यालंकार मे छ भाषाओ का उल्लेख किया है ।

(१) प्राकृत, (२) संस्कृत, (३) मागधी, (४) पैशाची, (५) शौरसेनी, और (६) अपभ्रश[4] ।

भामह ने विषय की दृष्टि से भी काव्य का विभाजन किया है। वह चार प्रकार का है (१) ऐतिहासिक चरित्रवाले काव्य, (२) कल्पित वस्तु वाले काव्य, (३)कलाप्रधान काव्य, (४)शास्त्रप्रधान काव्य, जैसे भट्टिकाव्य[5] इसके अतिरिक्त भामह ने एक अन्य दृष्टि से भी काव्य का विभाजन किया है। (१) सर्ग, (२)अभिनेय,(३)कथा,(४)आख्यायिका,(५)अनिबद्ध[6]। विषय की दृष्टि से भी क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक मे वाङ्मय के चार प्रभेदो का उल्लेख किया है। (१) शास्त्र, (२) काव्य, (३) शास्त्रकाव्य (४) काव्यशास्त्र[7]

संभवत. क्षेमेन्द्रने तत्कालीन रामायण, महाभारत के अतिरिक्त लब्धप्रतिष्ठ कालिदासादि महाकाव्यो,भट्टिकाव्य,भट्टभौम कृत रावणार्जुनीय काव्य, आदिको देखकर ही उपर्युक्त विभाजन किया हो । उपर्युक्त विभाजन के अनुसार महाभारत शास्त्र काव्य के और भट्टिभौमकादि के काव्य काव्यशास्त्र के अन्तर्गत आते हैं। मोक्षरूप परम पुरुषार्थ के प्रतिपादन की दृष्टि से तो महाभारत शास्त्र है

१. तदेतद्वाग्मय भूय सस्कृत प्राकृत तथा । अपभ्रशश्च मिश्र चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम् ।। १।३२ काव्यादर्श

२ करम्भक तु भाषाभिर्विविधाभिर्विनिर्मितम् ।। ६।३३७ सा० दर्पण

३ वाग्भटालकार २ १ विद्याभवन स० ग्र०—३३ चौखम्बा प्रकाशन

४ "काव्यमाला २ रुद्रटकाव्यालकार, अध्याय २

५. भामह काव्यालकार १।१७

६. १।१८ वही ।

७ "शास्त्र काव्य शास्त्रकाव्यं काव्यशास्त्र च भेदत । चतुष्प्रकार प्रसर. सतांसारस्वतो मत ।। सुवृत्ततिलकम् तृतीय विन्यास ।

और शान्त रस की मधुर अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'काव्य' है। इसी दृष्टिकोण से ध्वन्यालोककार ने महाभारत को शास्त्र और काव्य रूप (दोनो) की छाया से युक्त माना है।[1]

इन्द्रिय माध्यम की दृष्टि से—

हमारी ज्ञानेन्द्रियो मे दो ही इन्द्रियाँ ऐसी है जिनके माध्यम से काव्यार्थ का आस्वाद लिया जा सकता है। जो काव्य रंगमंच पर अभिनीत होकर देखा जाय, वह दृश्य काव्य है और जो कानो द्वारा सुना जाय, वह श्रव्य काव्य है। भारतीय परम्परा ने काव्य को दो रूपो मे देखा है। (१) दृश्य काव्य, (२) श्रव्य काव्य। प्राचीन काल मे तो मुद्रण के अभाव मे सभी काव्य गायन द्वारा प्रचलित होते थे। यह विभाजन जनसमुदाय के बौद्धिक स्तर को ध्यान मे रखकर किया गया प्रतीत होता है। क्योंकि श्रव्यकाव्य शिक्षित समाज के लिये ही था, इसलिये उसमें नाटकसन्धियों की नियोजना होती है, किन्तु दृश्य काव्य मे सभी जनसाधारण आनन्द ले सकते थे। दृश्यकाव्य भी पढा या सुना जा सकता है, किन्तु इससे पूरा आनन्द प्राप्त करने के लिये आलोच्य या पाठ्य-काव्यान्तर्गत पात्रों का रंगमच पर नटो के द्वारा अभिनय अत्यन्त आवश्यक है।[2] अस्तु।

श्रव्य काव्य के अन्तर्गत पद्य और गद्य दोनो का समावेश हो जाता है। गत पृष्ठो मे पद्य काव्य को हम देख चुके है। भामह द्वारा किया हुआ काव्य-विभाजन इसी दृष्टि से है। श्रव्य काव्य के अन्तर्गत उन्होने सर्गबन्ध (महाकाव्य) आख्यायिका और कथा और मुक्तक को रखा है। दृश्य काव्य के अन्तर्गत-अभिनेयार्थ (नाटक) काव्य को रखा है।[3] भामह के भेद को ही दडी ने स्वीकार किया है किन्तु आख्यायिका और कथा के अन्तर की आलोचना की है। आगे आचार्यों ने भामह कृत प्रभेदो को ही स्वीकार किया है।

---

१ "महाभारतेऽपि शास्त्रकाव्यरूपच्छायान्वयिनि मोक्षलक्षण पुरुषार्थं शान्तो रसश्च मुख्यतया विवक्षाविषयत्वेन सूचित । ध्व० लो० ४ उ०

२. "न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्य शूद्रजातिषु ।

तस्मात् सृजापरं वेद पञ्चमं सार्ववर्णिकम् ॥

"काव्यमाला ४२ नाट्यशास्त्र १ अध्याय श्लोक १२,

३. सर्गबन्धोऽभिनेयार्थस्तथैवाख्यायिकाकथे ।

अनिबद्धं च काव्यादि तत्पुनः पञ्चधोच्यते ॥ १।१८ भामहकाव्यालंकार

हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन मे काव्य को स्थूल रूप से 'प्रेक्ष्य' और 'श्रव्य' दो भागों से विभक्त किया है। 'प्रेक्ष्य' के दो उपप्रकार, पाठ्य और 'गेय' किये है। इन उपप्रकारो के भी पुन उपोपप्रकार किये हैं।[१] 'श्रव्य' के पाँच प्रकार—महाकाव्य, आख्यायिका, कथा, चम्पू और अनिबद्ध बताये है। हेमचन्द्र ने काव्य प्रकार-कथा को पुन अनेक उपभागों मे विभक्त किया है। (१)उपाख्यान, (२)निदर्शन,(३)प्रवल्हिका, (४)मतल्लिका, (५)मणिकुल्या, (६)परिकथा, (७) खंडकथा, (८) सकलकथा, (९)उपकथा[२]। अग्निपुराण तथा लोचन में भी इन प्रभेदो की चर्चा मिलती है[३]। अग्निपुराण में 'कथानिका' प्रभेद की अतिरिक्त चर्चा है[४]।

अर्थ की दृष्टि से—

अर्थ की दृष्टि से किया हुआ काव्य का विभाजन, अर्थ मे निहित चमत्कार के तारतम्य पर आधारित है। यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि काव्य का उद्देश्य 'चमत्कार जनन' है। और इस लक्ष्य की सिद्ध के लिये काव्य में शब्दार्थ का सन्निवेश किया जाता है। यहाँ बोधार्थ गौण है। उक्त चमत्कार दो कारणो से उत्पन्न होता है।(१)वाग्वैदग्ध्य,(२)रस। यद्यपि इन दोनों मे रस ही प्रमुख है। रस के अभाव मे इसका जीवन नही। अग्निपुराणकार के मत मे वाग्वैदग्ध्य प्रधान होने पर भी काव्य का जीवन रस ही है[५]। किन्तु ध्वनिवादियो के मत मे यह चमत्कार प्रतीयमान अर्थजन्य है। पडितराज जगन्नाथ के मत मे ऐसा कोई भी वाच्य अर्थ नही मिलेगा जो प्रतीयमान से अस्पृष्ट रहकर, स्वयं चमत्कार का आधान करने मे समर्थ हो[६]। रमणियो के प्रसिद्ध अवयवो से भिन्न उनके लावण्य के समान झिलमिलाने वाला

---

१ 'काव्यानुशासन' अ० ८, सू०१–१३, हेमचन्द्र

२. वही १९०,९१,९२,९३·······—२०१

३. लोचन, अभिनवगुप्त पृ० ३२४। अग्निपुराण, ३३६ अध्याय।

आख्यायिका कथा खंडकथा परिकथा तथा।
कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्य च पंचधा॥

१२ अग्निपुराण अध्याय ३३६

४ भयानकं सुखपरं गर्भे च करुणो रस।
अद्भुतोऽन्ते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका॥ २० अ ३३६ वही

५. अग्निपुराण अ. ३३७। ३३

६ न तादृशोऽस्ति कोऽपि काव्योऽर्थो यो मनागनामृष्टप्रतीयमान एव स्वतो रमणीयतामाधातु प्रभवति। काव्यमाला, रसगंगाधर पृ०२३

प्रतीयमान अर्थ, अभिधा, लक्षणा और तात्पर्याख्या तीनों वृत्तियों से भिन्न व्यंजना नामक वृत्ति से ही प्राप्त होता है। वह (प्रतीयमान) शब्दशास्त्र और अर्थशास्त्र के ज्ञान मात्र से ही प्रतीत नहीं होता। वह तो केवल काव्य-मर्मज्ञों को ही ज्ञात होता है[1]।

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब तक व्यंजना शक्ति साहित्यमे स्थापित नहीं हुई थी तब तक प्रतीयमान अर्थ-तत्व अज्ञात था, और जब तक यह तत्व अव्यक्त था तब तक इस पर आधारित चमत्कार भी अविश्लेषित था, और इस तत्व के विश्लेषण के अभाव में काव्य मे निहित चारुत्व, चमत्कार के तारतम्यमूलक काव्य प्रभेदो की चर्चा कैसी ? इसीलिये काव्य में 'ध्वनि' के आविर्भाव के पूर्व अर्थ की दृष्टि से स्थूल विभाजन की अपेक्षा काव्य का सूक्ष्म विभाजन उपलब्ध नही होता। भामह, दंडी, वामन आदि आलंकारिक तथा रीति के आचार्यों ने उक्त प्रकार का काव्य मे कोटि निर्धारण नहीं किया था। ध्वन्याचार्यों से पूर्व के आचार्यों ने इस प्रकार की विवेचना की ही नहीं।

अर्थ की दृष्टि से लक्षणग्रथो में चार प्रकार का विभाजन किया गया है। ध्वनि विरोधी महिमभट्ट ने एक प्रकार का, विश्वनाथ ने दो प्रकार के, आनन्दवर्धन ने तीन प्रकार के और अन्तमें पण्डितराज जगन्नाथ ने चार प्रकार के काव्य प्रभेदो का उल्लेख किया है।

(१) महिमभट्ट—

महिमभट्ट के मत मे प्रतीयमान रूप में प्रतीत होनेवाला अर्थ वाच्यरूप से अधिक चमत्कृति उत्पन्न करता है[2]। फिर भी वह ध्वनिकार की स्वीकृत शब्द शक्ति 'व्यञ्जना' को न मानकर केवल यह कहते हैं कि वाच्य अर्थ का अनुमित अर्थ (प्रतीयमान) अनुमेय अर्थ है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे ही कहा है कि व्यग्यार्थ या ध्वनि वस्तुत अनुमेयार्थ है और कुछ नहीं[3]। इस प्रकार

---

१. "शब्दार्थशासनज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते।
वेद्यते स तु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम् ॥" ७। ध्व० लो० १ उद्योत

२. वाच्यो हि अर्थो न तथा स्वदते, यथा स एव प्रतीयमान.।
व्यक्ति. वि. चौ० प्रकाशन, द्वितीय विमर्श पृ० ७३ (तृ. स.)
वाच्यो हि न तथा चमत्कारमातनोति यथा स एव विधिनिषेधादिः
काक्वभिधेयतामनुमेयतां वावतीर्ण इति स्वभाव एवायमर्थानाम् ॥
वही पृ० ५४ (चौ० स० सी०)

३. "अनुमानेऽन्तर्भावं सर्वस्यैव ध्वनेः प्रकाशयितुम्।
व्यक्तिविवेकं कुरुते प्रणम्य महिमा परां वाचम् ॥" वही १, १ पृ० १

इनके मत में अर्थ दो प्रकार के हैं। (१) वाच्य, (२) अनुमेय। काव्य की दृष्टि से यह अर्थ, वस्तु, अलकार और रस, इन तीन रूपो मे होता है। इनमे प्रथम दो वस्तु और अलकार तो वाच्य भी हो सकता है किन्तु रस सदा अनुमेय ही रहता है[१]। आपने ध्वनिकार की इस उपस्थापना को कि 'ध्वनि काव्य उत्तम काव्य है' खडन करते हुये कहा कि काव्य के किसी प्रकार विशेष की ध्वनि संज्ञा इष्ट नही है[२]। क्योंकि ध्वनि का विषय काव्य मात्र है। जहा रसमयता होगी वह काव्य होगा, रस ही काव्य की आत्मा है। वही चमत्कारमय तत्व है और इस चमत्कारमय तत्व मे प्रधानाप्रधान भाव कहा ? इस प्रकार काव्य एक ही प्रकार का हो सकता है। उसमे भेद-प्रभेद की कल्पना करना एक प्रकार से नीरस उक्ति को भी काव्य मानना है। जैसा कि हमने इसके पूर्व कहा है कि यद्यपि भामह, दंडी, रुद्रट आदि समासोक्ति पर्यायोक्ति, अन्योक्ति, आदि अलकारो मे ध्वनि की सत्ता मानते थे[३]। वामन आदि आचार्यों के सामने ध्वनि का कोई स्पष्ट चित्र न होने से, उसे स्पष्ट करने का उन्होने कोई प्रयत्न नही किया। काव्य सौन्दर्य के मूलतत्व को उन्होंने रीति मे या अलंकार या गुरण मे ही प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया[४]। ध्वन्यालोककार ने काव्य के आत्मभूत मूलतत्व ध्वनि को अत्यन्त

---

१. अर्थोऽपि द्विविधो वाच्योऽनुमेयश्च। तत्र शब्दव्यापारविषयो वाच्यः स एव मुख्य उच्यते......तत एव तदनुमिताद्वा लिंगभूताद्यदर्थान्तरमनुमीयते सोऽनुमेय, स च त्रिविध, वस्तुमात्रमलकारा रसादयश्चेति तत्राद्यौ वाच्यावपि सम्भवत. अन्यस्त्वनुमेय एवेति।

१ विमर्श, व्य० वि० पृ० ३६

२. 'काव्यमात्रस्य ध्वनिव्यपदेशविषयत्वेनेष्टत्वात्'

प्रथम विमर्श पृ० ९२, १०० वही,

३. अभिनवगुप्ताचार्य, लोचन टीका।
भट्टोद्भटवामनादिना। भामहोक्त शब्दश्छन्दोभिधानार्थं इत्यभिधानस्य शब्दाद् भेदं व्याख्यातु भट्टोद्भटो बभाषे 'शब्दानामभिधानमभिधाव्यापारो मुख्यो गुणवृत्तिश्च इति। वामनोऽपि सा सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्ति इति। (४, ३–८) मनाक् स्पृष्ट तैस्तावद् ध्वनिदिगुन्मीलिता। काव्यमाला ध्व० लो० लोचन पृ० १२ उद्योत १

४. अस्फुटस्फुरितं काव्यतत्त्वमेतद्यथोदितम्।
अशक्नुवद्भिर्व्याकर्तुं रीतयः सम्प्रवर्तिताः॥ ४७ ध्व० लो० तृ० उद्योत

स्पष्ट एवं विस्तृत रूप मे प्रतिपादित करते हुए ध्वनि काव्य, गुणीभूत व्यंग्य तथा चित्रकाव्य के रूप में काव्य के कोटि निर्धारण का उल्लेख (संकेत) भी कर दिया है। ध्वनिकार ने और अभिनवगुप्त ने काव्य मे निहित चारुत्व के तारतम्य का बोध करने के लिये ही—ध्वनिकाव्य उत्कृष्ट काव्य है तथा गुणीभूत व्यंग्य भी हेय नही—प्रतिपादित किया है[1]। इन सकेतो को ग्रहण कर सर्वप्रथम आचार्य मम्मट ने उत्तम, मध्यम और अधम आदि प्रकार की काव्य कोटियों का निर्धारण किया[2]।

मम्मट के पश्चात् अलकारसर्वस्वकार, रुय्यक, अप्पयदीक्षित, हेमचन्द्र, प्रतापरुद्रीयकार विद्यानाथ तथा एकावलीकार विद्याधर ने मम्मट का ही अनुसरण किया किन्तु मम्मट प्रतिपादित उत्तम काव्य के संलक्ष्यक्रम व्यग्यध्वनि मे हेमचन्द्र ने १२ के स्थान पर केवल ४ तथा मध्यम काव्य के ८ भेदो के स्थान पर ३ ही भेद माने हैं[3]।

विश्वनाथ का मत—

सर्वप्रथम मम्मटोक्त काव्य के श्रेणी विभाजन का खंडन विश्वनाथ ने किया। उन्होने साहित्यदर्पण मे ध्वनि व गुणीभूत व्यंग्य का ही उल्लेख किया है। उनके मत से चित्रकाव्य काव्य नहीं हो सकता। साहित्यदर्पणकार ने मम्मट का विरोध इस प्रकार किया है, 'किन्तु चित्रकाव्यवाद, युक्तियुक्त नही। क्योकि (शब्दार्थयुगल के) अव्यंग्य का अभिप्राय यदि व्यंग्य का अभाव मान लिया जाय तो वह (शब्दार्थ युगल) काव्यत्व से रहित होगा।' (चित्र भले ही हो) अव्यग्य का तात्पर्य 'ईषद्व्यंग्यत्व, मान लें तो "ईषद्-व्यग्यत्व" का क्या तात्पर्य है ? यदि इसका तात्पर्य यत्किञ्चित् रूप व्यंग्य का अनुभवयोग्य मान लें तो यह ध्वनि या गुणीभूतव्यग्य के अन्तर्गत होगा और यदि इसका तात्पर्य अनुभव के अयोग्य मान लें तो यह काव्य ही नही हो सकता। यदि यह व्यंग्यरूप अर्थ, आस्वाद्य हुआ तब ईषत्, क्यों होने लगा ?

---

१. ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत कारिका ३७

२. उत्तम—"इदमुत्तमतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथित. ॥
मध्यम—अतादृशि गुणीभूतव्यंग्ये व्यंग्यं तु मध्यमम्।' ४
अधम—'शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम् ॥.५
काव्यप्रकाश, उल्लास १

३. असत्संदिग्धतुल्यप्राधान्ये मध्यमं भेधा। काव्यानुशासन,२,५७ पृ० १५२
"इति त्रयो मध्यमकाव्यभेदा न त्वष्टौ। काव्यानुशासन पृ० १५५.

व्यंग्य का ईषद् होना उसके अनास्वाद्य होने के बराबर है[1]। आगे अपने समर्थन में ध्वन्यालोककार की पंक्ति उद्धृत की है। "व्यंग्यार्थ के प्राधान्य और अप्राधान्य ही शब्दार्थयुगल काव्यता के प्रयोजक हैं। इन दो के अतिरिक्त जो भी शब्दार्थ रचना है, वह चित्र है।"[2]

किन्तु ध्वनिकार ने इस कारिका की वृत्ति मे उसे (चित्रकाव्य) काव्य प्रकार के रूप में माना है। यद्यपि उसमे काव्य की आत्मादि सभी वस्तुये नही हैं, फिर भी वह काव्य का चित्र तो है। जैसा कि ध्वनिकार ने स्वय कहा है। व्यंग्य अर्थ का प्राधान्य होने पर, ध्वनि नाम का काव्य प्रकार होता है और गौण होने पर गुणीभूत व्यंग्यत्व होता है। इन दोनो से भिन्न रस, भाव आदिमे तात्पर्य से रहित, तथा व्यंग्यार्थ विशेष के प्रकाशन की शक्ति से रहित, केवल वाच्य-वाचक के वैचित्र्य के आधार पर निर्मित जो काव्य चित्र के समान प्रतीत होता है उसे चित्र कहते है। वह प्रधान रूप से काव्य नहीं है किन्तु काव्य की अनुकृति तो है। उनमे दुष्कर यमक, आदि कुछ शब्दचित्र होते हैं और उत्प्रेक्षादि अर्थचित्र होते है।[3]

---

१. साहित्यदर्पणकार ने मम्मट का विरोध इस प्रकार किया है–
"केचिच्चित्राख्य तृतीयं काव्यभेदमिच्छन्ति। तदाहु —
शब्दचित्र वाच्यचित्रमव्यग्यं त्ववर स्मृतम्। इति। तन्न, यदि हि अव्यग्यत्वेन व्यंग्याभावस्तदा तस्य काव्यत्वमपि नास्तीति प्रागेवोक्तम् ईषद्व्यग्यत्वमिति चेत् किं नामैतद् व्यंग्यत्वम्? आस्वाद्यव्यंग्यत्वम, अनास्वाद्यव्यग्यत्व वा? आद्ये प्राचीनभेदयोरेवान्त पात'। द्वितीये त्वकाव्यत्वम्। यदि चास्वाद्यत्वं तदाऽक्षुद्रत्वमेव क्षुद्रतायामनास्वाद्यत्वात्।

२. तदुक्तं ध्वनिकृता—
प्रधानगुणभावाभ्यां व्यंग्यतैवं व्यवस्थिते।
उभे काव्ये ततोऽन्यद्यत्तच्चित्रमभिधीयते। साहित्यदर्पण चतुर्थ परि०

३ "व्यग्यस्यार्थस्य प्राधान्ये ध्वनिसंज्ञितकाव्यप्रकार., गुणभावे तु गुणीभूतव्यंग्यता। ततोऽन्यद्रसभावादितात्पर्यरहितं व्यग्यार्थविशेषप्रकाशनशक्तिशून्यं च काव्यं केवलवाच्यवाचकवैचित्र्यमात्राश्रयेणोपनिबन्धमालेख्यप्रख्यं यदाभासते तच्चित्रम् न तन्मुख्यं काव्यम्। काव्यानुकारो ह्यसौ। तत्र किंचिच्छब्दचित्र, यथा दुष्करयमकादि वाच्यचित्र तत. शब्दचित्राद् अन्यद् व्यंग्यार्थसंस्पर्शरहितं,प्राधान्येन वाक्यार्थतया स्थितं रसादितात्पर्यरहितमुत्प्रेक्षादि"। ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत

पंडितराज जगन्नाथ का मत—

मम्मट के पश्चात् श्रेणी विभाजन मे अधिक सूक्ष्म दृष्टि से कार्य करने वाले रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ हैं। पंडितराज ने मम्मटप्रोक्त काव्य की तीन कोटियां उत्तम, मध्यम और अधम न मानकर चार कोटियां मानी हैं। ये चार कोटि के काव्य हैं (१) उत्तमोत्तम, (२) उत्तम, (३) मध्यम, (४) अधम[१]। आपने मम्मट के उत्तम तथा मध्यम काव्य को क्रमशः उत्तमोत्तम और उत्तम कहा है। अब मम्मट के अधम काव्य के (१) शब्दचित्र (२)अर्थचित्र दो भेद हैं। पंडितराज ने मम्मटके अर्थचित्र को मध्यम और शब्द चित्र को अधम काव्य कहा है। आपने मम्मट के और अप्पयदीक्षित के एक ही अधम काव्य मे निहित दो, अर्थ और शब्द चित्रकाव्यों का खण्डन किया है। आपने कहा है कि "स्वच्छन्दोच्छलदच्छ"। और "विनिर्गत" आदि काव्यो को कौन सहृदय एक ही कोटि के अन्तर्गत रखेगा।

पंडितराज का उत्तमोत्तम काव्य—

जहां शब्द और अर्थ स्वय को गुणीभूतकर किसी विशेष अर्थ को व्यक्त करे, वह प्रथम श्रेणी का काव्य है। इसी को मम्मट ने इस प्रकार कहा है "वाच्य (अर्थ) की अपेक्षा व्यग्य के (अर्थ) अधिक चमत्कार युक्त होने पर, उत्तम काव्य होता है। विद्वानो ने उसे "ध्वनि" संज्ञा दी है।

उत्तम काव्य—

उत्तमोत्तम के पश्चात् पंडितराज ने उत्तम काव्य का उल्लेख किया है। यही काव्य मम्मट का गुणीभूतव्यंग्य, मध्यम काव्य है। पण्डितराज के अनुसार उत्तम काव्य वहां होता है, जहां व्यंग्यार्थ गौण होने पर भी चमत्कार-युक्त अवश्य हो। इसे मम्मट ने बताया है कि वाच्य से अधिक चमत्कारी व्यंग्य न होने पर गुणीभूत व्यंग्य होता है।

मध्यम काव्य—

पंडितराज के मत मे यह काव्य वहां होता है जहां वाच्य का चमत्कार व्यंग्य (अर्थ) चमत्कार का समानाधिकरण न होकर उससे विशिष्ट होता है। यह मम्मट का अधम काव्य है। इसमे मम्मट के अर्थ चित्रकाव्य का समावेश

---

१ "शब्दार्थौ" यत्र गुणीभावितात्मानौ कमप्यर्थमभिव्यञ्जयतस्तदाद्यम्।"
काव्यमाला रसगंगाधर पृ० ११ प्रथमानन

- उत्तम—"यत्र व्यंग्यमप्रधानमेव सच्चमत्कारकारणं तद् द्वितीयम्"
वही, पृ० २०

हो जाता है। अप्पयदीक्षित ने चित्रकाव्य के तीन रूपो का उल्लेख किया है। (१) अर्थचित्र, (२) शब्दचित्र, (३) उभयचित्र।[१] किन्तु मम्मट का एक ही श्रेणी मे (अधम) शब्द-अर्थ चित्रकाव्य को रखना ठीक नही है। क्योकि शब्द की अपेक्षा कही अधिक सूक्ष्मता अर्थ मे होती है। यदि शब्द चित्रकाव्य का शरीर स्थूल है तो अर्थचित्र काव्य का शरीर सूक्ष्म है।

अधम काव्य—

जहा अर्थचमत्कृति से शून्य शब्दचमत्कृति ही प्रधान हो वहा अधम काव्य होता है। इसमें मम्मट के शब्दचित्र काव्य का समावेश होता है।

श्रेणी विभाजन का तारतम्य—

काव्य की सूक्ष्म से सूक्ष्म श्रेणिया कर, उनका तारतम्य निश्चित किया जाने पर भी एक दूसरे मे प्राय सभी काव्यो का साकर्य रहता ही है।

इसी तथ्य को प्रभाकरभट्ट ने रसप्रदीप मे कहा है कि सभी काव्यों मे सभी श्रेणियो के काव्यो का साकर्य रहता ही है। "नि.शेषच्युतचन्दन" आदि उत्तमोत्तम (पण्डितराज) व उत्तम (मम्मट) काव्य मे भी व्यग्य इतना चमत्कारी नही है। "ग्रामतरुण" आदि मध्यम काव्य मे (पडितराज के उत्तमकाव्य मे) भी चमत्कारी व्यग्य की प्रतीति होती है।[२]

इसी तथ्य का मम्मट ने भी काव्यप्रकाश मे सकेत किया है "यद्यपि ऐसा कोई उदाहरण नही मिलेगा जिसमे ध्वनि या गुणीभूतव्यग्य का अपने प्रभेदादि के साथ सकर अथवा ससृष्टि न हो, फिर भी प्रधानता से उसका नामकरण किया जाता है।[३]

---

१. मध्यम काव्य—

"यत्र व्यग्यचमत्कारः समानाधिकरणो वाच्यचमत्कारस्तत्तृतीयम्।"
रसगंगाधर पृ० २२

तत्त्रिविधम् शब्दचित्रमर्थचित्रमुभयचित्रमिति। चि० मी० पृ० ४

अधम काव्य—

यत्रार्थचमत्कृतिशून्या शब्दचमत्कृति प्रधानं तदधम चतुर्थम्।
वही, रसगंगाधर पृ० २३

२. "अयं तु सर्वत्र संकर एव तथाहि उत्तमकाव्ये नि.शेषेत्यादावचमत्कारि व्यंग्यप्रतीतिः ग्रामतरुणमित्यादौ मध्यमकाव्ये च चमत्कारि व्यग्यप्रतीति.। रसप्रदीप, पृ० १७

३ यद्यपि स नास्ति कश्चिद्विषयः, यत्र ध्वनिगुणीभूतव्यंग्यो स्वप्रभेदादिभिः सह संकर संसृष्टिर्वा नास्ति तथापि "प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति। काव्यप्रकाश पंचम उल्लास का० ४१, सू० ६६

अर्थचमत्कार के अनुसार काव्य के तीन (ध्वन्यालोककार या मम्मट के अनुसार) या चार (पंडित जगन्नाथ के अनुसार) भेदो का निरूपण करने के पश्चात ध्वन्यालोककार ने उत्तमकाव्य या ध्वनिकाव्य के प्रभेदो का उल्लेख किया है।

उत्तम काव्य या ध्वनि काव्य—

ध्वनिकार ने उत्तम काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है कि जहाँ धर्म अपने को अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके उस अर्थ को अभिव्यक्त करते है उस काव्यविशेष को विद्वान लोग ध्वनि काव्य कहते हैं।[1] इस ध्वनि काव्य के मुख्य दो भेद हैं। (१) लक्षणामूलकध्वनि और (२) अभिधामूलक-ध्वनि। लक्षणामूलकध्वनि लक्षणा पर आधारित होती है। इसे अविवक्षित वाच्यध्वनि भी कहते है। लक्षणामूला ध्वनि के दो भेद हैं (१) अर्थान्तरसं-क्रमित वाच्य, (२) अत्यन्ततिरस्कृत वाच्य। प्रथम मे वाच्यार्थ दूसरे अर्थ में संयमित हो जाता है और द्वितीय मे वाच्यार्थ का त्याग कर दिया जाता है।

अभिधामूलाध्वनि —यह अभिधा पर आश्रित रहती है। इसे विवक्षिता-न्यपरवाच्य भी कहते हैं। इसके भी दो भेद है। (१) असलक्ष्यक्रम (२) संलक्ष्य क्रम। असलक्ष्यक्रम मे पूर्वापर क्रम सम्यक्‌रीति से लक्षित नही होता, इसलिये इस क्रम को शतपत्रभेदन्याय भी कहते हैं जैसे शतपत्रो मे सुई भेदने पर, पत्रो के भेदन से कोई पूर्वापर क्रम ज्ञात नहीं होता। समस्त रस प्रपञ्च इसी ध्वनि के अन्तर्गत आता है, इसके विपरीत संलक्ष्यक्रम मे यह पूर्वापर क्रम सम्यक् रूप से लक्षित होता है। इसके तीन भेद —(१) शब्दशक्ति से उद्‌भव, (२) अर्थशक्ति से उद्‌भव, (३) शब्दार्थ उभयशक्ति से उद्‌भव। मम्मट के अनुसार ध्वनि के ५१ शुद्धभेद हैं। और १०१०४ मिश्रित इन मिश्रित भेदो मे १०४०४ मे ५१ शुद्ध भेदो के मिलाने पर कुल १०४५५ होते हैं।

गुणीभूत व्यंग्य के आठ भेद—[2]

जहा व्यग्य का सम्बन्ध होने पर वाच्य का चारुत्व अधिक प्रकर्ष युक्त हो जाता है वह गुणीभूतव्यंग्य नाम का दूसरा भेद है। ध्वन्यालोककार ने इस

---

१. यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
यक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥
१३ ध्वन्यालोक प्र० उद्योत०

२. अगूढमपरस्याग वाच्यसिद्ध्यंगमस्फुटम्।
संदिग्धतुल्यप्राधान्ये काक्वाक्षिप्तमसुन्दरम्।
व्यंग्यमेवं गुणीभूतव्यंग्यस्याष्टौ भिदाः स्मृताः॥
काव्यप्रकाश ५ उल्लास सू० ६६,

काव्य के प्रभेदों की चर्चा तो अवश्य की है किन्तु ग्रन्थ में एकत्र नहीं है। (१) इतरांग व्यंग्य, (२) काकु से आक्षिप्त व्यंग्य, (३) वाच्य सिद्धि का अंगभूत व्यंग्य, (४) सन्दिग्ध प्राधान्यव्यंग्य, (५) तुल्यप्राधान्य व्यंग्य (६) अस्फुट व्यंग्य, (७) अगूढ़ व्यंग्य, (८) असुन्दर व्यंग्य।

ध्वनि और गुणीभूतव्यंग्य काव्य के भेद सहृदयों के अनुभव के आधार पर ही किये जाते है। अतः उपर्युक्त आठ भेदो मे से दो भेदो (१) अगूढ व्यंग्य, (२) गूढ़ व्यंग्य की गणना गुणीभूत व्यंग्य मे की गई है। इसका कारण यह है कि स्फुट व्यंग्य को सहृदय से भिन्न सामान्य व्यक्ति भी ग्रहण कर लेता है, अत वह वाच्यार्थ के समान ही है और गूढव्यंग्य की प्रतीति सहृदय व्यक्ति को भी सरलता से नही हो पाती, अत. उसमे व्यंग्य का चमत्कार नही रहता। जिस व्यंग्य की प्रतीति सहृदयो को होती है उसको ध्वनि काव्य कहते है।

अतः गुणीभूत व्यंग्य के चमत्कार का निरूपण कामिनि-कुच-कलश-न्याय से किया जाता है। न तो आन्ध्रदेश की कामिनी के पयोधरो के समान अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रकट अगूढ व्यंग्य शोभा देता है और न गुर्जर स्त्रियो के स्तनों की तरह अत्यन्त अप्रकाशित (दिखाई न देने वाला गूढ व्यंग्य ही चमत्कारजनक होता है) किन्तु महाराष्ट्र कामिनी के कुचों की भाँति, कुछ प्रकाशित और कुछ अप्रकाशित केवल सहृदयमात्र संवेद्य व्यंग्यार्थ ही शोभा देता है।[1]

चित्रकाव्य का सप्रभेद विवेचन गत पृष्ठो मे किया जा चुका है।

उपर्युक्त काव्य विभाजन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि दीर्घकाल तक भामह से लेकर रुद्रट तक—काव्य विभाजन उत्तरकालीन (अर्थात् आनन्दवर्धन के) काव्य विभाजन से भिन्न प्रकार का है। संस्कृत मे काव्य विभाजन प्रथम तो केवल दो भागो में दृश्य और श्रव्य मे ही हुआ है और श्रव्य काव्य के अन्तर्गत काव्य के अन्य विभागो को गद्य-पद्य और मिश्र-समाविष्ट किया गया है। तत्पश्चात् पद्य को बन्धाबन्ध की दृष्टि से दो भागों मे विभाजित

---

१ "नान्ध्रीपयोधर इवातितरां प्रकाशो
नो गुर्जरीस्तन इवातितरां निगूढ.।
अर्थो गिरामपिहितः पिहितश्च कश्चित्
सौभाग्यमेति मरहट्टवधूकुचाभः॥" काव्यप्रकाश उल्लास ५

किया। प्रथम भेद के अन्तर्गत महाकाव्य और खंड काव्य और द्वितीय भेद मुक्तक के अन्तर्गत कोष, संघात, समाविष्ट किये गये श्रव्य-काव्य के अन्तर्गत आनेवाले काव्य विभागों में से प्रस्तुत प्रबन्ध का संबन्ध केवल 'पद्य' विभागगत महाकाव्य से है। सारत. यह वर्गीकरण गद्य–पद्य, निबन्ध–मुक्तक, सर्गबन्ध, अभिनेयार्थ, इस प्रकार का है। किन्तु ध्वन्यालोक का काव्य विभाजन, काव्यवस्तु वही है किन्तु ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य और चित्रकाव्य इस प्रकार का किया गया है। स्थूल दृष्टि से सूक्ष्म की ओर इसकी गति है यह विभाजन अर्थ की दृष्टि से किया गया है, जो शब्द की अपेक्षा सूक्ष्मतर है। इस प्रकार का विभाजन कर, "तर, तम," का भाव द्योतित किया है। यह वर्गीकरण पूर्वोक्त वर्गीकरण की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म एवं शास्त्रीय होने से सर्वग्राह्य हुआ। बन्ध की दृष्टि से—

भामह ने इसी दृष्टि से विभाजन किया है किन्तु सुविधा की दृष्टि से प्रथम वामन कृत प्रभेद को रखते हैं। इस दृष्टि से काव्य के दो भेद हो सकते हैं (१) निबद्ध, (२) अनिबद्ध।[१] निबद्ध के अन्तर्गत भामहोक्त भेद इस प्रकार है–(१) सर्गबन्ध, (२) अभिनेयार्थ, (३) आख्यायिका, (४) कथा। और अनिबद्ध मे अनिबद्ध अर्थात् मुक्तक। वामन ने आगे अनिबद्ध और निबद्ध के विषय में कहा है कि इन दोनो की सिद्धि क्रमश: माला और मौर के समान होती है[२]। इसी के आगे वामन ने मुक्तक की गौणता और प्रबन्ध महाकाव्य की प्रधानता प्रतिपादित की है, किन्तु प्रबन्ध मे दशरूपक की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए वामन कहते हैं कि महाकाव्य आदि दशरूपक का ही विस्तार मात्र है[३]। विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि दशरूपक को श्रेष्ठ कहनेवाले वामन के ग्रंथ मे रस विवेचन प्राप्त नही होता, यह कहना सर्वथा अविचारणीय है क्योंकि वामन ने कान्तिगुणहीन काव्य को "पुराणछाया", प्राचीन चित्र की तरह निस्तेज कहा है। इसके अतिरिक्त समाधिगुण के विवेचन मे काव्यार्थ की "भाव्यता", "वासनीयता", का उल्लेख किया है।[४]

---

१. 'तदनिबद्धं निबद्धञ्च। १।३।२७ वामनकृत काव्यालंकारसूत्रवृत्ति।

२. 'क्रमसिद्धिस्तयो: स्रगुत्तंसवत्' ।,१,३,२८ वही

३ सन्दर्भेषु दशरूपक श्रेय· १,३,३०

दशरूपकस्यैव हीदं सर्वं विलसितम्........ ...।

४. ३।१।२५। "सूक्ष्मो भाव्यो वासनीयश्च।" ३।२।१० वही.

लक्षण ग्रंन्थों में उल्लिखित (प्रबन्धकाव्य) निबद्ध काव्य के दो प्रभेदों का प्रतिपादन किया गया है। (१) महाकाव्य (२) खण्डकाव्य। आचार्य विश्वनाथ ने काव्य नामक तीसरे प्रभेद की कल्पना की है। यह संस्कृत, प्राकृत, या अपभ्रंश भाषा मे निबद्ध किया जा सकता है। इसमें न सर्ग की आवश्यकता होती है और न सन्धिपचक की। यह एक वृत्त अथवा चरित से सबद्ध पद्यकदम्ब से ही पूर्ण हो जाता है[१]। महाकाव्य के विषय मे भामह, दंडी, हेमचन्द्र, रुद्रट और विश्वनाथ आदि ने चर्चा की है। अगले अध्याय में इसकी चर्चा करेगे। खडकाव्य के विषय मे विश्वनाथ ने लिखा है कि वह महाकाव्य के कतिपय लक्षणो से युक्त अथवा उसके एक देश का ही अनुसरण करने वाला होता है[२]।

उद्भव की दृष्टि से—

उद्भव की दृष्टि से काव्य के दो प्रभेद किये जा सकते हैं।

(१) आर्ष महाप्रबन्धकाव्य (२) महाकाव्य (विदग्ध)

रामायण और महाभारत आर्ष वीरयुगीन विकसनशील महाप्रबन्ध काव्य है। ये दोनो प्राचीन सस्कृति के द्योतक होने से उद्भव मे प्रथम है। रामायण और महाभारत के पश्चात्‌वर्त्त कालिदासादि के महाकाव्य उत्तर-कालीन सामन्तयुगीन सस्कृति के द्योतक होने से विदग्ध महाकाव्य है।

सस्कृत के विदग्ध महाकाव्य के भी प्रभेद हो सकते हैं।

(१)शास्त्रीय महाकाव्य, (२)मिश्र शैली के महाकाव्य। शास्त्रीय शैली के भी अन्य भेद होते है। (१) रसप्रधान, (२) लक्षणप्रधान, (३) शास्त्रकाव्य या यमककाव्य या श्लेषकाव्य।

मिश्र शैली के अन्तर्गत (१) ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य (२) पौराणिक शैली के महाकाव्य और (३) कथात्मक काव्य आते हैं।

संस्कृत मे यद्यपि अधिकांश शास्त्रीय शैली के महाकाव्य ही उपलब्ध हैं किन्तु कुछ महाकाव्यो मे एकाधिक शैलियों का सांकर्य भी मिलता है फिर भी उनमे प्राप्त प्रधान शैली के आधार पर ही उनका नामकरण करने का प्रयत्न किया है। हमारे लक्षणग्रन्थकारों ने उपर्युक्त प्रकार का शैली विभाजन नहीं किया है।

---

१. ६।३२८। साहित्यदर्पण विश्वनाथ

२. "खंडकाव्य "भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च"।' वही।

आधुनिक भारतीय सा० शा० के चिन्तकों ने संस्कृत काव्यों के विषय में अपना मत इस प्रकार दिया है—

आनन्द की अभिव्यक्ति की अवस्थाओ के अनुसार भी काव्य के दो भेद किये जा सकते हैं[1]—

पूर्वकथानुसार, ब्रह्म के सत्, चित् और आनन्द तीन स्वरूपों मे से काव्य केवल आनन्द स्वरूप को लेकर चला। इस लोक मे आनन्द की अभिव्यक्ति की दो अवस्थाएँ पाई जाती हैं—(१) साधनावस्था, (२) सिद्धावस्था। साधनावस्था प्रयत्नपक्ष है, जिनमें पीड़ा, बाधा, अन्याय, अत्याचार, आदि के दमन मे तत्पर शक्ति के सचरण मे भी उत्साह, क्रोध, करुणा, भय, घृणा आदि की गतिविधि मे भी पूरी रमणीयता का परिचय मिलता है। (२) सिद्धावस्था, उपभोग पक्ष है जिसमे आनन्द, मंगल के सिद्ध या आविर्भूत स्वरूप को लेकर सुषमा, विभूति, प्रेम, आदि उपभोग पक्ष का वर्णन होता है। आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों के उदाहरण हैं—रामायण, महाभारत, रघुवश, शिशुपालवध, किरातार्जुनीय आदि आर्ष और विदग्ध संस्कृत के महाकाव्य। आनन्द की सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यो के उदाहरण हैं—आर्यासप्तशती, गाथासप्तशती, अमरुशतक, गीतगोविन्द तथा शृंगार रस के फुटकल पद्य।

इसका विस्तृत विवेचन हम 'संस्कृत के विदग्ध महाकाव्य' के अन्तर्गत करेंगे।

पाश्चात्य विद्वानो की मान्यता के अनुसार आधुनिक विद्वान काव्य को दो मूल विभागो मे विभक्त करते हैं। एक है विषयीप्रधान और दूसरा विषयप्रधान। अर्थात् आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ। वाल्मीकि और व्यास के काव्य वस्तुनिष्ठ विषयप्रधान हैं। इनमे (विषयप्रधान काव्यो मे) कवियो की व्यक्तिगत भावना-विचारो का प्राधान्य नही होता, जबकि आत्मनिष्ठ विषयीप्रधान काव्यो मे कवियो की भावना, विचार व उनका व्यक्तित्व ही प्रधान रहता है। इस दूसरे विभाग (विषयीप्रधान आत्मनिष्ठ) मे संस्कृत के विदग्ध महाकाव्यो का समावेश हो जाता है। इसका विवेचन यथास्थान करेंगे।

—:०:—

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि १

तृतीय अध्याय

महाकाव्य का उद्भव और विकास

आधुनिक विद्वानो के मत मे, प्रारम्भिक या आर्ष महाकाव्यो के मूलस्रोतो का शोध, मानव जाति के प्रारम्भिक साहित्य रूप और उसके सामाजिक इतिहास से होना चाहिये। अत उसके प्राचीनतम साहित्य में निहित किन तत्वो तथा समाज की किस अवस्था विशेष से महाकाव्य का उद्भव और विकास हुआ, देखने के लिये हम समाज को विकसित करने वाले उसके विभिन्न युगो को सक्षेप मे देखते हैं।

समाज-शास्त्र के अनुसार मानव समाज के विकास को निम्नलिखित अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है।

कबीला या	१—फल मूल एकत्र करनेवाली सरल व्यवस्था।
जनसमूहयुग	२—फल मूल एकत्र करनेवाली विकसित अर्थव्यवस्था।
सामन्तयुग	३—कृषि सम्बन्धी सरल अर्थ व्यवस्था।
	४—कृषि एव पशुपालन सम्बन्धी विकसित अर्थ व्यवस्था।
राष्ट्रयुग	५—विभिन्न अर्थव्यवस्थाओ का सम्मिश्रण या प्रभाव या औद्योगिक व्यवस्था।

उपर्युक्त मानवसमाज के विकास के विभाजन से न तो यह तात्पर्य है कि सब कालों या युगों में सर्वत्र एक-सी ही आर्थिक व्यवस्था पायी जाती है और न इसका यह मतलब है कि एक व्यवस्था से दूसरी में जाते हुये बीच के मार्ग या अवस्था को आवश्यक रूप से क्रमित करना पड़ता है। यह भी सभव है किसी जंगली जाति में केवल प्रथम अवस्था ही, दूसरी और तीसरी अवस्था को क्रमित किये बिना भी अन्य किसी विकसित समुदाय के सम्पर्क मे आने के कारण इसमे एकदम कृषि सम्बन्धी विकसित अर्थ व्यवस्था का समावेश हो जाय। यह भी संभव है कि एक ही काल में पृथ्वी के एक भाग मे जातियाँ केवल फल मूल एकत्र कर रही हों, और दूसरे किसी भाग में विकसित रूप की कृषि सम्बन्धी अर्थ व्यवस्था में से गुजर रही हों।

समाज शास्त्रियों एव नृतत्व वेत्ताओं का अनुमान है कि पहले युग मे प्राचीन मानव का जीवन अस्थिर था। वह निवासार्थ एवं आजीविका के लिये सदा नवीन प्रदेशों के खोज में यत्र तत्र घूमता रहता था। 'महाजनो येन गतः स पन्थाः

उसके जीवन का मार्गदर्शक था। 'बलवती खलु नियति.' में विश्वास करने वाला मानवजीवन उस समय सामूहिक भावना से प्रेरित था।

इसीलिये उसके कार्यों मे, उसकी गति मे, वशीय, संघीय भावना की एक सूत्रता थी। जीवन मे व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि को, एकाकी वृत्ति की अपेक्षा सघवृत्ति को, प्राधान्य था। टोलियो मे रहने वाला मानव वृद्ध अनुभवी व्यक्ति को केन्द्र बनाकर रहता था। और कभी - कभी अपने स्वार्थ में बाधा पहुँचाने वाली दूसरी टोली के साथ संघर्ष भी करता। व्यक्तिगत संपत्ति और व्यष्टि भावना का उदय नही हुआ था। छोटे - छोटे कबीलों मे रहनेवाला तत्कालीन मानव, समाज की एक छोटी प्रतिमारूप मे था[१]। यही समष्टि प्रधान आदि मानव का रूप था। इस जनसमूह युग की दोनो अवस्थायें कितनी लबी रही, नही कहा जा सकता किन्तु सामूहिक भावना पूर्वावस्था से उत्तर अवस्था मे ही अधिक दृढ हुई होगी। मानव समाज के विकास के साथ विभिन्न कारणो के परिणामस्वरूप कृषियुग का उदय हुआ होगा। इस कृषियुग में पूर्वकालीन सस्कृति की अपेक्षा मानव अधिक सस्कृत और स्थिर हुआ होगा। इस युग को सामन्त युग भी कहा जाता है। इसकी तीन अवस्थायें मानी जाती हैं। प्रारम्भिक, मध्य, अन्तिम या उत्तर।

उपर्युक्त इन तीनों अवस्थाओं को हम, भारतवर्ष में वैदिक काल से लेकर १९ वी शती तक के लम्बी समयावधि मे फैली पाते हैं। इन तीनों अवस्थाओ ने महाकाव्य के रूप को जन्म दिया। महाकाव्य की सामग्री इस युग के आदिकाल में उद्भूत होकर मध्यकाल मे विकसित हुई और मध्यकाल मे ही महाकाव्य के रूप मे दिखाई देने लगी। इस युग मे तृतीय काल में ही, यह अलकृत महाकाव्य के रूप मे परिणत हुई। इसी सामन्तयुग मे विविध कारणो से (आन्तरिक और बाह्य) वर्तमान आर्यभाषाओं का विकास होने से विकसनशील और उत्कृष्ट अलंकृत महाकाव्यों की रचनायें हुई। उलेखनीय यह है कि कृषियुग के पश्चात् औद्योगिक क्रान्ति होने से सामन्ती बन्धन शिथिल हो जाते हैं। अब वैयक्तिक भावनाओं का प्राधान्य रहता है।

---

१. He thinks, he feels, he lives, all in a whole.

"Each person is the tribe in little"

The Epic—The art & Craft of letters.

L. Abercrombie. Page 7

सामूहिक गीत नृत्य :—[1]

समाजशास्त्रियों के मत में मानव के सामूहिक नृत्य गीतों में ही उसकी धार्मिक क्रियायें निहित थी। धार्मिक उत्सवो या विशेष पर्वों पर सामूहिक नृत्यगीत होता था।

इष्ट देवी देवता या पितरो के सम्बन्ध मे अपने मनोगतो की अभिव्यक्ति के लिये वे एकत्र होकर सामूहिक रूप से नृत्यगान करते थे।[2] इस प्रकार प्राचीन मानव का सामूहिक नृत्यगीत का उपयोग विशेषत उनके धार्मिक उत्सवों में होता था।[3]

आख्यानक नृत्यगीत

किन्तु गच्छताकालेन इन सामूहिक नृत्यगीतो में अर्थपूर्ण भाषा के प्रयोग के साथ-साथ उनके देवताओं एवं पितरो के कृत्यो पराक्रमों के सम्बन्ध में अनेक कल्पनाओ का उदय हुआ। कथासूत्र से गीत ग्रथित होने लगे। आदि मानव ने प्राकृतिक शक्तियों मे देवी-देवताओ की कल्पना की। इस प्रकार सामूहिक नृत्यगीतों मे आख्यान (पुराण) एव दन्तकथा का सूत्र भी आबद्ध किया गया। स्पष्ट ही इसमे महाकाव्यो का बीज निहित था[४] किसी

---

१. अग्रिम पृष्ठ पर क्रमाक–१–पर देखिये।

२. "The earliest poetry of all races–it is not altogether a conjecture– appears to have been the ballad–dance"

English Epic and Heroic Poetry
M. Dixion, Page 28,

३. To this god the assembled multitude sanga hymn at first merely a chorus, exclation & ncoherent ehant full of repetitions. As they sang teey kept time with the foht in a solemn dance wh ch was inceperable from the chant itself & Governed the woads"

F B Gummere A Hand Book of Poeties
London, Page 9

४. "Early poetry was undoubtedly choral & mainly in the service of communal religious ceremonies"
Introduction to old English Ballads.

F. B. Gummere. Page 84. London

भी देश के मानव को निसर्ग और मानवी जीवन से प्राप्त प्रथम अनुभव का कथात्मक एव कल्पनारम्य चित्रण ही उस देश के महाकाव्य हैं।[१]

पतंजलि ने अपने महाभाष्य मे (३-१-२६) 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' का उल्लेख करते हुए कहा है कि शौभिक लोग बलिवध और कसवध के आख्यानो का प्रदशन करते थे। इन आख्यानक नृत्य गीतो का स्पष्ट सकेत दुर्गापूजा, धर्मपूजा, शिवपूजा आदि एव रासलीला, रामलीला मे होनेवाले धार्मिक उत्सवों में दिखाई देता है[२]। जैसा कि हमने पूर्व बताया है कि ऋग्वेद

---

1. "As order & matter penetrated teis whis ceremony there resulted a rude hymn, with intelligible words & a connecting ides Naturally this connecting idea would concern the deeds of the god–his birth & bringing up & his mighty acts Thus a thread of legend would be woven into the hymu......Healtributed will & passion to the acts of nature Something dimly personal stood behind the flash of lightning the roaring of the wiud. Hence a second sort of thread woven into the hdmn... Mythology. But both legend & Mythology arenarrative
   A Hand Book of Poeties, F. B Gnmmere. Page 9
   London.

"The epics grew out of a poetic theology, Clorifying aristocratic history" Caaweli.
(Illusion and Reality) Page N. 13

3. Music, song and dance form an integral psrt of these festivities & these are performed by the Populace putting on masks of god, gopess & many lower animals. Beside this mask dances of he-sparrow & she sdarrow (Performed by the washer Men (byda-budi, Ravan, Hanuman kali etc. are also peaformed*'.
   *Benoy kumar Saraar–The Folk Element in Hindu Culture Page 91-92 London. 1917.

के संवाद सूक्तों मे भी कुछ विद्वान आख्यानो का अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

प्राचीन समय मे नृत्य एव गीत का अलग अलग रूप मे विकास नही हुआ था। दोनो एक दूसरे से सबद्ध थे। नृत्यगीत द्वारा ही किसी कथा का अभिनय करने की प्रथा इस देश मे एव विदेशो में भी प्राचीन काल से प्रचलित थी[1]।

अनेक युगो के बीतने के पश्चात् विभिन्न कारणों ने प्राग् ऐतिहासिक मानव जीवन मे कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पन्न कर दिये। आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन के साथ काव्यरूपों में भी कुछ उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। फल-मूल तथा कृषि-सम्बन्धी सरल अर्थव्यवस्था में तो निजी संपत्ति होती ही नही। किन्तु अर्थ व्यवस्था की विकासावस्था के साथ कुछ मुखिया, सरदार उठ खडे होने लगते हैं। बलशक्ति से खाद्य - पदार्थों, उनके उत्पादन स्थानो पर अपना स्वामित्व जमा लेते हैं। यद्यपि निजी सपत्ति उस काल मे नही होती, वह समूह की ही होती है। तथापि विकसित अर्थव्यवस्था मे नदी, तालाबो पर सरदारो का अपने समूह के लिये प्राप्त स्वामित्व ही 'निजी वैयक्तिक संपति' का विचार उत्पन्न करता है। और कृषि तथा पशुपालन सबंधी विकसित आर्थिक अवस्था मे समूह समाजवाद का स्थान व्यक्तिवाद लेने लगता है। वैयक्तिक सपत्ति बढ़ने लगती है, इस प्रकार वर्गभेद प्रारम्भ होता है। समाज मे धनी वर्ग और निर्धनवर्ग दिखाई देते हैं। मुखियो, सरदारो की इच्छा प्रधान होने लगती है किन्तु वर्ग के प्रधान जो शक्तिशाली होते है, वर्ग के प्रधान वयोवृद्धो से कार्य में सलाह लेते रहते हैं। गच्छताकालेन

1. "The dance, in early days, was inseparable form song "N0 dance Without singing" says Bohme, and no song without a dance" Besides this wider associatson of song and dance, it is of importance to note the close connection between dancing and the narrative ballad. As early as the seventeenth century Faroe-islanders Were knoWn to use their traditional songs as music for the dance".

Intorduction to old English Ballads, F. B. Gummere Page 65-66, London.

ये मुखिया सरदार और वृद्ध जन, राजा और मंत्री के रूप में क्रमशः सामने आये। इन्हीं को आगे चलकर महाराजा, सम्राटों आदि नामों से अभिहित किया जाने लगा। और इस प्रकार नवीन आर्थिक व्यवस्था के फलस्वरूप एक नवीन शासन पद्धति ने जन्म लिया। सामूहिक भावना के लोप के साथ समाज मे व्यक्ति का महत्व बढने लगा। प्रारम्भिक आख्यानक नृत्य गीतो से, नृत्य, संगीत एव काव्य आदि का अलग-अलग विकास होने लगा।[1] सामूहिक नृत्य गीतो मे सभी एक साथ मिलकर नाचते एव गाते थे किन्तु अब एक ही व्यक्ति अग्रगामी होकर नाचता एवं गाता था और बाद में अन्य व्यक्ति उसके गाने या नाचने की आवृत्ति करते। इस प्रकार एक एक विशिष्ट प्रतिभाशाली व्यक्ति उस प्रारम्भिक मानव समाज से आगे आये और इन्होने नृत्य गीत, काव्यादि मे एक-एक मे क्रमश विशेषता प्राप्त की। व्यक्तिगत भावना से ही नृत्य, गीत एव काव्य का अलग-अलग रूप मे विकास हुआ। इन्ही विशेषता प्राप्त नेताओं से चारणो एव कथागायको का विकास हुआ[2]।

---

1 'In fact the three arts–Poetry, music, dancing were once united as a single art. Little by little their paths diverged, but for the oldest times they were inseparable ..Introduction–A Hand Book of Poetics F. B. Gummere Page 1

'Poetry for long in the histroy of mankind was produced and never otherwise produced then under social conditions at a gathering of the community. The dancing the singing, the music, these were one'—

English Epic and Heroic poetry
M. Dixion. Page 29. London

2 "Only in later times was conduct of the dance or singing of new verses assigned to one man. Still another advance from the primative ways was the separation of dance from the song. And when he has sung a verse, he sings no further, but the whole throng who either know the ballad or else have paid close attention to him, repeat and echo the same Varse".

वेद सूक्त प्रधान रूप से देवाराधनात्मक होने पर भी, कुछ सूक्त सवादात्मक एवं स्तुत्यगो से परिपूर्ण हैं। इनमे राजदानतृप्तऋषियों ने प्रभूत दान देनेवाले अपने आश्रयदाताओ के गुणानुवाद किये हैं। ये सूक्त स्तुतिपूर्ण होने से, दान स्तुति के नाम से अभिहित किये जाते है। वेद मे इन सूक्तो की सख्या अधिक नही है। कात्यायन ने अपनी ऋक् सर्वानुक्रमणी मे केवल २२ सूक्तो मे दानस्तुतियो का उल्लेख किया है[१]। इन दानस्तुतिगर्भित सूक्तो के अतिरिक्त कुछ आख्यान सूक्त भी (सवाद सूक्त) मिलते है। जिनमे सवाद रूप में कुछ आख्यान कहे गये है। ये सवाद सूक्त संख्या मे २० हैं जिनमे यम यमी संवाद (१०।११) पुरूरवा - उर्वशी सम्वाद (१०।९५) सरमा-पणिस् सवाद (१०।१३०) इन्द्रवरुण सवाद (४।४२) वरुण - अग्नि सवाद (१०।५१) इन्द्र-इन्द्राणी सवाद (१०।८६) आदि प्रसिद्ध है। डा० एस० के० दे के मत मे ये संवादात्मक सूक्त पौराणिक आख्यान हैं[२]। यास्क ने

The some time leader is now a minstrel who composes stances, has a latent sense of literary responsibility and literary property only to lose his occupation with spread of printing books"

Introduction toold English Ballads. F B. Gummere London Page 72–75.

Single persons (Minstrels) took the place of the dancing multitude and chanted in a sort of recitative' some song full of myth and legend but entered in the person of the tribal God. Now what is such a song ? It is a Epic.

A Hand Book of Poetics F B Gnmmere London. Page N0 10.

१. श्री बलदेव उपाध्याय ने वैदिक साहित्य मे पत्र न० ११३ पर डा० पटेल का मत उद्धृत किया है। डा० पटेल ने ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ मे ६८ सूक्तो मे दानस्तुतियो का उल्लेख किया है।

2. S. N. Das Gupta and S. K. De. A History of Sanskrit Literature. P. 43–44 Calcutta. 1947.

(Most of them like those of Pururavas and Urvasi, Sarma and Panis are not in any way connected with

'निरुक्त' में पुरुरवोर्वशी तथा सरमापणिस् 'सवादों' को आख्यान ही कहा है[1]।

इन्हीं सम्वादों का विकसित रूप परवर्ती नाटक साहित्य मे दिखाई देता है। कालिदास का विक्रमोर्वशीय नाटक पुरुरवोर्वशी संवाद का ही विकसित एवं पल्लवित रूप है। इन्ही सवादात्मक आख्यान सूक्तो मे परवर्ती महाकाव्य के बीज सन्निहित है। इन संवादो में प्राप्त होनेवाले आख्यानों को प्रारम्भ मे गाथा, नाराशसी कहा जाता था। अथर्ववेद मे गाथा और नाराशंसी का नाम इतिहास और पुराण के साथ प्रयुक्त है[2]। अथर्ववेद मे भी कुछ सूक्त स्तुति विषयक हैं जिनमे राजाओं के वीरोदारतादि गुणो का रोचक कथन है। इन्हें 'कुन्तापसूक्त' कहकर अभिहित किया गया है। ये भी ऋग्वेद के 'वीरोदारता', 'दानस्तुति' विषयक सूक्तो की तरह आगे चलकर वीररसप्रधान काव्य के जनक हैं (अथर्व म० २०-१२७-१३६) शतपथ ब्राह्मण मे आये हुए 'पारिप्लव' आख्यान से विदित होता है कि अश्वमेघ यज्ञ मे कला प्रदर्शन के अवसर पर किसी राजा के दान, वीरतादि गुणो का गान किया जाता था। अध्वर्यु होता से कहता था कि इस राजा की अन्यो की अपेक्षा अधिक प्रशंसा करो[3]।

---

the religious sacrifice, nor do they represent the usual type of religious hymns of prayer and thanks giving, but they appear to possess a mythical or legendary content)

१ "देवा मुनीन्द्रेण प्रहिता पणिभिरसुरे समुदा इति आख्यानम्"
निरुक्त ११–२५

२. तमितिहासश्च पुराण च गाथाश्च नाराशसीश्चानुव्यचिलन् इतिहा-स्यस्य च वै पुराणस्य च गाथाना च नाराशसीना च प्रिय धाम भवति (अथर्ववेदसहिता, श्रीमद्दयानन्दसरस्वती षष्ठा वृत्ति का १५ सू० ७ मा ४, पैज ३०४)

३. 'समुपविष्टेष्वध्वर्युः संप्रेष्यति' होतर्भूतान्याचक्ष्व, भूतेष्विम यजमान-मध्यूह, इति सम्प्रेषितो होताध्वर्युमामंत्रयते। वीणागणगिन उपसमेता भवन्ति। तानध्वर्यु. सम्प्रेष्यति। वीणागणगिन इत्याह। पुराणैरिमं यजमान राजभि. साधुकृद्भिः सगायते ति सायं वाचि विसृष्टायाम्। वीणागणगिन उपसमेता भवन्ति तानध्वर्यु. सम्प्रेष्यति। वीणागणगिन इत्याह 'देवैरिम यजमानं संगायत, इवि तं ते तथा संगायन्ति।
२।१३-३-१ शतपथ ब्राह्मण।

पाश्चात्य विद्वानों के मत मे (सिल्वालेवी, हर्टेल, मैक्समूलर) ये संवाद सूक्त एक प्रकार के नाटक थे[1]। विण्टरनित्स के मत मे इन सवाद एव प्रशसात्मक सूक्तों में ही महाकाव्य का आदिजीवात्मक रूप मिलता है[2]।

सारत· प्राचीन काल से ही देव मुनि राजादि के वीरोदारतादि गुणो की प्रशंसात्मक कथाओं को इतिहास, पुराण, आख्यान, उपाख्यान, गाथा, वाको-वाक्य, नाराशसी आदि कहकर अभिहित किया जाता है। किसी राजा के कृत्य के मिष से पूर्वघटित घटनाओ के कहने को 'इतिहास' कहा जाता है। सर्ग, ससारोत्पत्ति, प्रतिसर्ग, सहार के पश्चात् पुन होनेवाली उत्पत्ति, वंश, देव-वशावली मन्वन्तर, मनुयुग, वशानुचरित, राजवंशावली आदि का वर्णन करनेवाले ग्रन्थ को पुराण कहा गया है[3]। विष्णुपुराण की श्रीधरीटीका मे स्वयं दृष्ट घटना का वर्णन या उसके कथन को आख्यान, श्रुत घटनाओ के कथन को, उपाख्यान पितर, पृथ्वी आदि द्वारा कथित घटनाओ को गाथा और मानव स्तुति को नाराशसी कहा गया है[4]।

---

१. Winternitz. A History of Indian terature

Vol 1, P. 102, Calcutta 1927.

२. "These songs in praise of men probably soon developed into epic poems of considerable length i. e. heroic songs and into entire cycle of epic songs centering around one hero or one great . "

History of Indian Literature by M. Winternitz

Vol. 1 314

३ प्राग्वृत्त कथनं चैकं राजकृत्यमिषादित.
यस्मिन्स इतिहास स्यात्पुरावृत्त स एवहि ॥ ९२
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वंतराणि च ।
वंशानुचरितं यस्मिन्पुराण तद्विकीर्तितम् ॥ ९३ शुक्रनीति अ० ४
द्रष्टव्य काव्यमीमांसा राजशेखर अ० २ पृ० ३

४ 'स्वयं दृष्टार्थकथन प्राहुराख्यानकं बुधा
श्रुतस्यार्थस्य कथनं उपाख्यानं प्रचक्षते ॥
गाथास्तु पितृ पृथवी गीताख्या. कल्पशुद्धि कल्पादिनिर्णय·'
विष्णुपुराण तु० अ० श्री० टी० अ० ६ श्लोक १५

वैदिक संहिताओ एवं उपर्युक्त लक्षणों से विदित होता है कि राजाओं के प्रशंसात्मक वीरोदात्तता का वर्णन मौखिक रूप से गाया या सुनाया जाता था। इस कार्य के लिये एक विशेष वर्ग था जिसे 'सूत', 'मागध', 'बन्दी' आदि नामो से अभिहित किया गया है। प्राक्कालीन कथाओ का संग्रह कर, देव, ऋषि और राजाओ के वंश चरितो एव उनके माहात्म्यों का ज्ञान रखना सूतों का पुनीत कर्तव्य कहा गया है[१]। जैमिनी अश्वमेध पर्व मे प्राचीन काल के राजाओं की कथा कहने वालो को 'सूत' दिवगत वीर राजाओं के वर्णन करने वालों को 'मागध' और विद्यमानो की प्रबन्धो द्वारा स्तुति करने वालो को बंदी कहा गया है[२]।

पुराण :

उपर्युक्त विवेचन हमे इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि भारतीय साहित्य आख्यानो से परिपूर्ण है। इन आख्यानोपाख्यानो को सूत कण्ठस्थ कर गाया या सुनाया करते थे। और कभी-कभी अपने वर्ण्यविषय को अधिक आकर्षक बनाने के लिये परंपरागत गाथाओ मे स्थान, समयोचित परिवर्तन और परिवर्धन भी करते चलते थे[३]। इसलिये पुराणों में सभी प्रकार की बातें शास्त्रीयज्ञान, इतिहास, राजा, ऋषि आदि के सम्बन्ध मे देखने को मिलती हैं।

---

१ धर्म एष हि सूतस्य सद्भिर्दृष्ट: सनातन । देवताना ऋषीणा च राज्ञां चामिततेजसाम् । वंशाना धारणं कार्यं स्तुतीना च महात्मनाम् ॥
पद्मपुराण १-१ २८

२ वाल्मीकि रामायण की 'गोविन्दराजीय', टीका मे सूत का लक्षण दिया है—"मागधा वंशशंसका:, सूता पुरावृत्त कथाशसिन:"
बाल्मीकि रामायण पृ० १२३ अयोध्या का सर्ग २६

३. "Clearly the leader may introduce into the line anything he wishes, clearly the poem may vary and proceed indefnitely. Adjusting itself to the work inhand, it need never be exactly repeated, insptration and fancy are free to alter its phrases. The leader may draw upon his memory or invent as the humour takes him, nor is he under obligations to previous singers. Improvisation is here easy, & author's rights are unknown"
English Epic and Heroic Poetry
(The Ballad) Dixion. Page 31 to 32.

और यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि मौखिक काव्य स्थिर नहीं रह सकता। प्रत्येक नये अवसर पर नये गायक द्वारा उस गाथा का नवीन सस्करण होता जाता है। इसी तथ्य को मोल्टन ने अपने विश्वसाहित्य मे कहा है कि मौखिक साहित्य सतरणशील साहित्य होता है[१]। उसमे लिखित काव्य जैसी स्थिरता नही रहती। वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य तक एक ही कथा गाथा अनेक रूपो मे मिलने से यह ज्ञात होता है कि कुछ गाथाएँ लोकप्रियता से या योग्यतमावशेष न्याय से भिन्न-भिन्न स्थानो तथा कालो पर भिन्न-भिन्न रूप से मिलती है। एक ही कथा मे अनेक उपकथायें जुडती चली जाती है और एक वृहदाकार रूप धारण करती हैं। इसे ही गाथाचक्र कहते है। वैदिक साहित्य मे इन्द्र सबधी अनेक रूपो मे मिलने वाली गाथाओ को, 'गाथाचक्र' का पूर्व रूप कहा जा सकता है। 'सुपर्णाख्यान' को विण्टरनित्स ने 'गाथाचक्र' ही कहा है।[२]

वायुपुराण मे दी हुई पुराण की परिभाषा से एव उनके लक्षणो से ज्ञात होता है कि प्राक्कालीन सामग्री गाथाओ तथा गाथाचक्रो से ही, इतिहास, पुराण आदि का विकास हुआ है[३]। पुराणो का उल्लेख, वेद, ब्राह्मण, सूत्रग्रन्थ और स्मृति मे प्राप्त होने से उनकी प्राचीनता सुविदित है[४]। विष्णुपुराण मे कहा है कि आख्यान, उपाख्यान और गाथा आदि से ही पुराणो की रचना हुई है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अनेक गाथाचक्रो का विकसित, परिवर्तित एव परिवर्धित रूप ही पुराणो मे मिलता है। इसीलिये पुराणा मे

१. "Oral poetry is a floating literature because apart from writing that gives fixity, each delivering of a peom becomes a fresh edition"

Molton—Wurld literatore, Page 102

२. Winternitz. A History of Indian Literature, 312 Page. Vol. I

३ 'पुरापरम्परा वक्ति पुराण तेन वैस्मृतम्, वायु पु० १, २, ५३

४. अथर्ववेद ११-७-२४, शतपथ व गोपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य व वृहदारण्यक उपनिषद्, आपस्तम्बधर्मसूत्र व गौतम याज्ञवल्क्यादि।
आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभि
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारद. ॥ विष्णुपुराण।
अंश ३ अध्याय ६ श्लोक १५

अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन होते हैं। उनमे अन्विति नही होती और तत्कालीन प्रचलित घटनायें एवं कथायें बिना पूर्वापर सम्बन्ध के जुडी हुई मिलती है। इसके अतिरिक्त पुराणो में ऐक्य नही के बराबर होता है और कुछ-कुछ प्रसग भी ऐसे मिलते हैं जिनमे काव्यत्व नही के बराबर रहता है। इसलिये मोल्टन ने ऐसे गाथाचक्रो को काव्य न मानकर उन्हें काव्य की पूर्वावस्था में ही स्वीकृत किया है। वस्तुत ये गाथा-चक्र लोकगाथाओ का विकसित रूप एव विकसनशील महाकाव्य का पूर्वरूप होने से दोनो के बीच की आवश्यक शृंखला है।[1] वैदिक साहित्य मे महाकाव्य के जिन सूक्ष्म बीजों को पाया जाता है वे ही पुराण काल मे अंकुरित एवं विकसित प्राय· होते हैं। रामायण, महाभारत अनेक गाथाचक्रो द्वारा निर्मित हैं। स्वयं महाभारत ही पुराण सामग्री से निर्मित है। इस तथ्य का अनुमोदन मत्स्यपुराणकार ने एक स्थान पर किया है[2]।

रामायण मे अनेक उपकथाओ का उल्लेख मिलता है (सावित्री, उर्वशीपुरुरवा, वामन, ययाति, श्येनकपोत) महाभारत मे यत्र तत्र पूर्व वीरो का स्पष्ट उल्लेख है।[3] रामायण का गायन वाल्मीकिजीने अश्वमेधयज्ञ के अवसर पर लवकुश द्वारा कराया था[4]। महाभारत के भी तीन सस्करण स्पष्ट ही हैं। सर्वप्रथम व्यास जी ने शुकदेव को, बाद मे वैशपायन ने राजा जनमेजय को और अन्त में सौति ने ऋषियो को महाभारत कथा मौखिक रूप से ही सुनाई है। परिणामस्वरूप जय, भारत और महाभारत ये तीन नाम भी विकसनशील कथा के तीन सस्करणो को द्योतित करते हैं[5]। इससे स्पष्ट होता है कि युग युग की प्रदीर्घ यात्रा मे कोई घटना या कथा लोकप्रियता से अपने आसपास अनेक उपकथाओं का जाल

१. Molton–World Literature. Page 103.

२. "अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवती सुत·।
भारताख्यानमखिल चक्रे तदुपबृंहितम्" ॥ मत्स्य पु० ५३-७०

३. प्रभा आदि १-२२०-२२५

४. बाल ४ व उत्तरकाण्ड सर्ग ९३

५. 'जयोनामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा, महाभारत आदिपर्व ६२-२२
चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्। उपाख्यानैर्विनातावत् भारतं प्रोच्यते बुधैः ॥ महाभारत
महत्वाद् भारवत्वाच्च महाभारतमुच्यते।
महाभारत आदि पर्व १–३००

एकत्र करती हुई, और कभी-कभी अपने पूर्व या मूल रूप मे परिवर्तित होती हुई किसी प्रतिभाशाली लेखक कवि द्वारा संयोजित कर दी जाती है और अन्त मे एक बृहदाकार ग्रंथ के रूप में सामने आती है। विस्खलित रूप मे प्राप्त होनेवाली गाथायें गाथाचक्रो का रूप धारण करती हुई एक विकसनशील काव्य का रूप धारण करती है और इनका प्रातिभ चक्षु से निरीक्षण कर कोई अम्लान प्रतिभाशाली कवि इनका एक सुन्दर सयोजन करता है। वही इस संयोजित रूप का लेखक या कर्ता माना जाता है। वस्तुत इनका कोई एक विशेष कवि या कर्ता नही होता। सूतमागध आदि द्वारा गाये हुये पुराणो, आख्यानो, उपाख्यानो का एक समष्टि रूप मे विकसित एवम् सयोजित रूप होता है।[१] पाश्चात्य महाकाव्य इलियड, ओडेसी और पौरस्त्य महाकाव्य महाभारत आदि अनेक कथाचक्रो से विकसित महाकाव्य है।

उपर्युक्त विवेचन हमे मेकनील डिक्सन के इस कथन की सत्यता पर ले जाता है कि विकसनशील महाकाव्य का (रामायण महाभारत) आज प्राप्त होनेवाला यह सुष्ठुरूप कोई निश्चित अवधि मे निर्मित नही हुआ। इसके निर्माण मे न जाने कितने सामूहिक गीतनृत्यो, आख्यानक नृत्यगीतो, आख्यानो, गाथाओ एवं गाथाचक्रो का उपयोग किया गया होगा[२]। किन्तु उन प्राचीन

---

१. "This creative power in earlyti mei, when the great epics were forming, when their materials were gradually drawing to-gether, lay rather in the national life itself than in any individual. There were no poets only singers. The race of nation was the poet. For the final shade in which these epics come down to us, we must assume the genius of a singer poet"

A hand Book poeties F. B. Gummere,

page 10, London 1890.

२. "The Epic a highly developed form of art could not have come to birth, save for the cruder poems rt took up and transformed and these were, in turn, more finally wrought than the earliest narratives and lyrics of men in the infancy of society' M. Macneile Dixon—English Epic and Heroic Poetry,

P. 27, D London 1912.

गीतो एव आख्यानो का रूप महाकाव्यो मे पहुँचकर कटने घटने एवं परिवर्तित, परिवर्धित होने से अब यह निश्चित रूप से बतलाना कठिन हो गया है कि प्रारम्भिक सामूहिक गीतो से लेकर विदग्ध महाकाव्यो तक की दीर्घ यात्रा में काव्य पथिक को विकास के किस मार्ग से होकर यात्रा करनी पड़ी होगी।

आर्थिक व्यवस्था, सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के फलस्वरूप युग परिवर्तन हुआ। छोटे-छोटे गणराज्यो के स्थान पर साम्राज्यों की स्थापना हुई। ग्राम, नगरो एव वन उपवनो मे परिवर्तित हुए। समाज मे स्थिरता, शान्ति और व्यवस्था दिखाई देने लगी। परिणामस्वरूप शास्त्रो एव कलाओ का विकास हुआ। नव सस्कृति व सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ। सम्राटो एवं राजाओं की राजधानियो मे धार्मिक, साहित्यिक एवं कलात्मक केन्द्रो की स्थापना हुई। स्वभाविकता, ऋजुता का स्थान चतुरता, पाटव एव नागरिकता ने ले लिया। शास्त्रो के सूत्र काल की समाप्ति के साथ-साथ भाष्यकाल के चिह्न दृग्गोचर होने लगे। पाडित्य का प्रभाव बढा।

गुरुकुलों, कलाशालाओ एव विद्यापीठो की स्थापना हुई। राजदरबारों मे कलात्मक वातावरण का प्राधान्य होने से पुरानी लोककथाओ लोकगाथाओं एवं गाथाचक्रो को नागर, चारणो एव कवियो ने कलात्मक ढंग से प्रस्तुत कर साहित्यिक कथाओ और काव्यो को जन्म दिया। मानवीय मनोव्यापारो पर नैतिक नियन्त्रण बढने से मिश्र भावनाओ का उदय हुआ। अभिधा के स्थान पर ध्वनि का, एव श्लेष तथा पाण्डित्य प्रचुर भाषा का प्रयोग होने लगा। जगत् और परमेश्वर के स्वरूप एवं सम्बन्ध की चर्चा को लेकर भिन्न-भिन्न पंथ एव वादों का जन्म हुआ। नौकायानो का विकास होने से विनिमय के क्षेत्र की वृद्धि हुई। रामायणकालीन नैतिक एव महाभारतकालीन बौद्धिक युग समाप्त हुआ। भौतिक युग के आरम्भ से भोगलिप्सा, क्रीडावृत्ति एव सुखेच्छा का प्रादुर्भाव हुआ। पूर्वकालीन दृढ़ता के स्थान पर मृदुता दिखाई देने लगी। अद्भुत विषयक प्रेम एवं श्रद्धा तथा अमानवीय विषयो की रुचि का अन्त होकर, समाज की दृष्टि वास्तवाभिमुख हुई। और इस प्रकार पूर्व की सत्य, प्रत्यक्ष व मूर्त घटनाओं के स्थान पर अमूर्त तत्त्व का प्राधान्य हुआ।

जैसा कि पूर्व बता चुके हैं कि कृषि तथा पशुपालन सम्बन्धी नवीन आर्थिक विकासावस्था मे वर्ग भेद उत्पन्न हो गया था। यह वर्ग भेद राजतन्त्र युग मे कला साहित्य आदि की उन्नति होने से शिष्ट समाज एवं ग्रामीण समाज के रूप मे भी दिखाई देने लगा। गुरुकुलो, विद्यापीठों एवं साहित्यिक केन्द्रों में

लिखने का विकास हुआ फलस्वरूप उक्त दो भेदों के अनुसार साहित्य भी दो भेदों मे विभक्त हुआ। लोक साहित्य और शिष्ट साहित्य। लोक साहित्य को ही नागर, चारण एवं कवि कलात्मक ढंग से लिपिबद्ध करने लगे। इनके गायक ही चारण, सामन्तो एव राजदरबारो में आश्रय पाकर कवि के रूप में प्रसिद्ध हुये। इन्होने अपने-अपने वैयक्तिक विशेषताओ के अनुसार, प्राचीन काव्यो, प्राचीन नायको, प्राचीन कथाओ को नवीन ढंग से लिखकर प्रस्तुत किया। इस नवीन शिष्ट युग के प्रभाव से प्रभावित कवियो ने प्राचीन और नवीन समन्वय स्थापित किया तात्पर्यत प्राचीन चित्रों की रूपरेखा को नवीन चमकीले रग से भरकर वर्तमानकालीन भौतिक युग की चौखट मे सजाया। इस युग की प्रेरणा से निर्मित प्राचीन तत्त्वो का कालोचित पुनर्नवनिर्माण ही विदग्ध महाकाव्य है। इस शिष्ट समाजनिर्मित काव्य पूर्व की अपेक्षा अलकृत, पाडित्यपूर्ण होने लगा इन्ही अलकृत या विदग्ध महाकाव्यो को अनुकृत या कलात्मक महाकाव्य भी कहा जाता है[१]। क्योकि इन कवियो ने उन्ही प्राचीन गाथाओ, इतिहास, पुराण, कथा का आश्रय लिया और यह आश्रय लेते हुये नवीन पात्रो, नवीन मतो, नवीन विद्याकलाओ और नवीन युग को प्राचीन रेखाओ मे स्थापित किया। प्राचीन या मूल कथानको मे कल्पना के मिश्रण से कुछ अश त्याग दिया और कुछ अश नवीन जोडा।

उपर्युक्त विवेचन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि विकसनशील काव्य दो प्रकार का होता है। जब तक कोई गाथा,आख्यान, चारण या भाटो के मौखिक परम्परा मे ही पनपता रहता है तब तक उसके विकास की प्रथम अवस्था मानी जाती है किन्तु जब इन गाथाओ एव आख्यानो को कोई प्रतिभाशाली कवि एकत्र कर लिखित रूप दे देता है, उसी समय से इसका विकास रुक जाता है। लिखित अवस्था मे उतने परिवर्तन तो नही होते किन्तु किसी लोकप्रिय प्रसिद्ध काव्य की प्रतिया बनाते समय भी कवि वर्ग उस काव्य की कुछ कमियो को दूर करने के लिये अथवा उसे सर्वांगपूर्ण बनाने के निमित्त उसमे अनेक प्रक्षेपो की वृद्धि करते चलते है और इस प्रकार कुछ शताब्दियों मे उस काव्य का रूप

---

1. I 'prefer to divide into Primary Epic and Secondary Epic The Secondary here means not the Secondrate, but what comes after, and grows out of the Primary
A Preface to Paradise Lost—G.S. Lowis Page 12.

मूल रूप से कहीं अधिक बड़ा हो जाता है। महाभारत या रामायण की भिन्न-भिन्न प्रतियो मे इन्ही प्रक्षेपो की अधिकता दिखाई देती है। महाभारत मे अनेक वर्णनो को सूतवर्ग मे जोड़ दिया है परिणामतः पास ही पास मे एक ही वर्णन परस्पर विरोधी दिखाई देते हैं। जैसे अर्जुन कुछ वर्षों के लिये प्रतिज्ञाभग होने से ब्रह्मचर्य धारण कर बाहर जाता है। (आदि २१५) किन्तु आगे वर्णन मे उसने विवाह कर लिये थे।[१] ब्रह्मचर्य और विवाह वर्णन एक दम विरोधी ज्ञात होते है। कालान्तर से इन प्रक्षिप्त अंशो की इतनी अधिकता हो जाती है कि मूल कथानको या वर्णनो का निर्णय करना असभव-सा हो जाता है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि इन विकसनशील महाकाव्यो का विकास व्यक्तिगत भावना के उदय के साथ-साथ होता है। अर्थात समाज की प्रारम्भिक अवस्था मे या वर्गहीन समाज में महाकाव्यो का विकास नहीं होता। क्योकि इस समाज मे व्यक्तिगत भावना का अभाव होने से, एवं काव्य के लिये नायक (व्यक्तिगत विशेषताओ से युक्त) की आवश्यकता होने से, महाकाव्य का उदय असम्भव होता है[२]। महाकाव्य के लिये तो वीर नायक की आवश्यकता होती है। किन्तु जैसे-जैसे समाज का विकास होता जाता है, जैसा हमने पूर्व देखा है कि समाज के कबीलो मे भी पारस्परिक सघर्ष होता है। इस सघर्ष से ही व्यक्तिगत चेतना जागृत, उद्बुद्ध होती है और वर्ग भेद उत्पन्न होना है। अब व्यक्तिगत विचारो, पराक्रमो एव कार्यों का महत्व

---

१ अर्जुन ने ब्राह्मण के गोधन की रक्षा करने के लिये पूर्वनिश्चित नियम का भग किया फलत उसने ब्रह्मचर्य की शपथ ले वन को प्रस्थान किया। आदिपर्व, अर्जुन बनवास पर्व अध्याय २१२ किन्तु मार्ग मे उसका उलूपी के साथ प्रेमसम्बन्ध, मणिपुर मे चित्रागदा का पाणि-ग्रहण और उससे पुत्रोत्पत्ति, बभ्रुवाहन, पश्चात, उसका प्रभासतीर्थ मे जाना, श्रीकृष्ण से मिलना एव द्वारिकापुरी मे आकर सुभद्रा को देखना और श्रीकृष्ण की आज्ञा से रैवतक पर्वत से उसका हरण करना। २१७–१८, १९

२. 'Even the beginings of Epic then are impossible while society is perfeclty hemegeneous, for epic requires eminent persons, distinguished · '

Page 38, London 1915

English Epic anb Heroic Poctry W, M. Dixion.

बढ़ जाता है। इस प्रकार कृषियुग के प्रारम्भिक अवस्था को वीरयुग के नाम से अभिहित किया जाता है। इस वीर युग मे व्यष्टिभावना, सपत्ति, वीरता आदि का महत्व बढा। इसी वीरयुग को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक अवस्थाओ से ही महाकाव्य का उद्भव विकास हुआ।

पाश्चात्य आलोचक सभी देशो के साहित्य के इतिहास का श्रीगणेश वीरगाथाओ से मानते है और इन वीरगाथाओ को जन्म देने वाले युग को 'वीरयुग' के नाम से अभिहित करते हैं। यही वीर युग अन्य देशो की तरह भारतीय महाकाव्यो का भी उद्भव काल कहा जाता है।(जैसा कि आगे देखेंगे कि) सभी देशो में यह वीरयुग सामाजिक परिस्थितियो के अनुसार, भिन्न भिन्न समय पर आता है और इसी वीरयुग मे महाकाव्यो का बीजारोपण एव विकास होता है। भारतीय वीरयुग में रामायण, महाभारत, युनानी वीरयुग ने, इलियड ओडेसी, जर्मनी के वीरयुग ने 'नेबुलन गेनालीड' इटली के वीरयुग ने एनीड और आग्ल वीरयुग ने ब्युवुल्फ जैसे विकसनशील महाकाव्यो को जन्म दिया।

वीरयुग की विशेषतायें

आज की पूर्ण विकसित सस्कृति एव सभ्यता के युग मे यद्यपि वीरयुग अत्यन्त असभ्य युग प्रतीत होता है क्योकि उस युग मे युवक की वृद्ध पर, सबल की निर्बल पर विजय गौरव समझी जाती थी। उस समय भीम जैसे शक्तिशाली पुरुष द्वारा युद्ध मे दु शासन का रक्त पीना, भरी हुई सभा मे द्रौपदी का वस्त्रापहरण करना, ब्रह्मचर्य की शपथ लेकर भी अर्जुन जैसा प्रेमव्यापार करना, हिडिम्बा जैसी स्त्री के साथ विवाह करना, आदि बाते सभव हो सकती हैं। किन्तु उस युग की भी सस्कृति थी। वीरयुग मनुष्य की प्राकृतिक अवस्था से (जगली) उन्नत और पूर्ण विकसित सामाजिक युग से नीचे का होता है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण मध्य की श्रृंखला है जो दोनों युगो को जोड़ती है[1]। यह वीरयुग भिन्न-भिन्न जातियो के इतिहास मे

1. 'Heroic' Society cannot be regarded as primitive and the people of the Heroic Ages are not to be considered as savages. The characteristics of such ages are those neither of infancy for maturity the typical man of the Heroic Age is to be compased rather with

Page N. 223

The Heroic Age of India N. K. Sidhanta···London 1956.

विभिन्न कालो में आया। प्रसिद्ध लेखक शाडविक ने ग्रीक (यूनान) वीरयुग का समय ई० पू० १००० माना है[१]। किन्तु ट्यूटन, वीरयुग ईसा की तृतीय और षष्ठ शताब्दी के मध्य मे होने से ऐतिहासिक माना जाता है। इसी प्रकार यूरोप की अन्य जातियो का वीरयुग भी ट्यूटन वीरयुग के सम-कालीन ही रहा।

यूरोप के प्राचीन विकसनशील महाकाव्य (इलियड, ओडेसी, बियोउल्फ) इन्ही वीरयुगों में हुए है। भारतीय वीरयुग ऋग्वेद काल मे ही प्रारम्भ हो गया था। वेद, ब्राह्मण आदि ग्रथों मे इन्द्र, अश्विन आदि के वीर आख्यान उपलब्ध होते हैं। मेक्डॉनल ने कहा है कि वेदकालीन देवो का मूर्तस्वरूप सगुण है। वे वीरो की तरह कवच पहने हुए, शस्त्रों से सुसज्जित होते हैं।[२]

बार्नेट ने इन्द्र, अश्विन आदि देवो को ऋग्वेद के प्रधान वीर मानते हुये, ऐतिहासिक ही माना है[३] केगी ने भी इन्द्र को वीर, नेता आदि कहते हुये वैदिक काल के महाकाव्य नायक ही माना है[४]। भारतीय वीरयुग के प्रतिनिधि महाकाव्य महाभारत और रामायण हैं, जैसा कि पूर्व देखा है, वैदिक काल के पश्चात् और ई० के पूर्व के हैं। भारतीय वीरयुग प्राक् ऐतिहासिक काल का है। यह ऋग्वेद काल से ही प्रारम्भ हो जाता है। जो ई० पू० २००० से ई० पू० ६०० के मध्यवर्त्ति काल मे रहा है। क्योकि ६०० ई० पू० का काल भारतवर्ष के इतिहास में एक नया मोड है जिसमे नवीन युग का प्रारम्भ होता है इस वीरयुग की समाप्ति गौतम बुद्ध के समय तक, सामततन्त्र का रूप स्थिर होने के साथ साथ हुई। इतने प्राचीन काल के मानव की संस्कृति एव उनकी सभ्यता यदि कुछ प्राकृतिक अवस्था की द्योतक हो तो कोई आश्चर्य नहीं। इस युग मे व्यक्तिगत पराक्रम शक्ति का अधिक महत्व होता है। इस युग की तुलना युवावस्था से

---

१. 'The Growth of Literature Ehadwick. Vol I, P. 17eam-bridge 1932.

२ संस्कृत साहित्याचा इतिहास, डा० मेक्डनॉलकृत हिस्टरी आफ संस्कृत लेटरेचर का अनुवाद, सीताराम व पेंडसे बडौदा, १९१५, पृ. न. ७६

३. Lionet D. Barnett. Hindu Gods and Heroes. Page 25, London 1886.

४. Kaegd. The Rigveda. Page. 43, London 1886.

की जा सकती है। जिसमें युवक अपने अदम्य साहस तथा असमान शक्ति से जयश्री प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य समझता है। रामायण मे पराक्रम के साथ-साथ असाधारण व्यक्तिगत त्याग का निदर्शन भी है, उस समय नीति, वंश और कुलधर्म की मर्यादा पालिनीय होने पर भी व्यक्तिगत पराक्रम, अभूतपूर्व साहस का ही महत्व था। शौर्य ही गुण और दौर्बल्य ही दुर्गुण समझा जाता था। वीरयुग मे राष्ट्र, धर्म, देव, साम्राज्य जैसे व्यापक तत्वों की अपेक्षा व्यक्तिगत पराक्रम पर ही लोगों की दृष्टि रहती है। व्यक्ति अपने बाहुबल या शस्त्र चालन की दक्षता से ही समाज या जाति का नेतृत्व प्राप्त करता है उसमे अवस्था की प्रौढता और अनुभव वृद्धता की जगह, शारीरिक शक्ति को ही अधिक महत्व दिया जाता है। सभी आधुनिक सभ्य जातियो के इतिहास मे ऐसे युग आये थे जिसका प्रमाण उनका प्राचीन साहित्य और इतिहास है। प्राचीन यूनानी और भारतीय साहित्य से तो इस कथन की सत्यता और भी स्पष्ट हो जाती है उस काल मे युद्धो मे व्यक्तिगत वीरता का ही अधिक महत्व था, सामूहिक वीरता या सैन्य शक्ति का नही क्योकि युवको की प्रबल शारीरिक शक्ति और महान साहस से ही युद्ध जीते जाते थे।

स्वभावत: ऐसे युग मे प्राचीन बर्बरयुगीन सामूहिक विश्वासो और मान्यताओं की जगह नये विश्वासो, नये देवताओ और वीरो तथा नये सामाजिक और राजनैतिक सगठन की प्रतिष्ठा होगी। ऋग्वेद मे बर्बर युग और वीरयुग दोनो ही के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। ब्राह्मण साहित्य और पुराण इतिहासो से वैयक्तिक वीरता के महत्व को पूर्ण रूप से स्वीकार किया गया है।

उदाहरण के लिये महाभारत को ले सकते हैं। इस महाकाव्य की कथा (अथवा इतिहास) मुख्यतया अर्जुन, भीम, कर्ण, द्रौण, भीष्म, दुर्योधन आदि की व्यक्तिगत वीरता की कथा है। साथ ही उसमे पुराने वीर नये वीरो के सामने झुकने और पराजित होते हुये दिखाई पड़ते हैं[1] तत्कालीन वीरो का एक विशिष्ट लक्ष्य था, जिसकी प्राप्ति के लिये वे भौतिक शरीर एव सपत्ति की उपेक्षा करते तथा स्वयं को असामान्य वीरो मे अभूतपूर्व साहसिको मे

1 N. K Sidhanta—The Heroic age of India, Page 114-115.
हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास डा० शम्भूनाथसिंह पृ० १७, १८
हि० प्रचारक पुस्तकालय।

परिगणित करने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे। वीरभोग्या वसुन्धरा के सिद्धान्त में विश्वास रखनेवाला तत्कालीन वीर नियतिवादी था[१]। महाभारत के वीरो को यदि युवको की दृष्टि से देखे तो प्रतीत होता है कि भारतीय वीरो का युवाकाल समाप्त हो चुका था। महाभारत मे प्रधान वीरो की आयु कुछ अधिक है। अर्जुन, भीम, कर्ण, दुर्योधन आदि वीरों की आयु बढी हुई भी और इनकी अपेक्षा भीष्म और द्रोण तो वृद्ध ही थे। वीरयुगीन महाकाव्यों को देखने से यह सुविदित हो जाता है कि युवक वीरो की महत्वाकाक्षायें उनका अदम्य साहस और शारीरिक पराक्रम की प्रखरता से गच्छताकालेन वश के बन्धन, पारस्परिक प्रेम भाव टूटने लगते हैं या शिथिल हो जाते हैं। इस प्रकार के ग्रीक और टयूटाग्यिक वीरकाव्यो मे, अनेक महत्वपूर्ण उदाहरण मिलते है। जिनमे सम्बन्धियो के पारस्परिक बन्धन सदा के लिये टूटते प्रतीत होते है[२] इसी प्रकार महाभारत मे पाण्डव-बन्धुओ के प्रेमबन्धन भी किसी कारणवश शिथिल होते दिखाई देते हैं किन्तु ब्राह्मण सूतवर्ग के प्रभाव से यह आदर्श बन्धुप्रेम चित्रित किया गया प्रतीत होता है[१]।

---

१. 'In the period we are discusing, howveer, the issue of warfare depends on the personal bravery of vigurous young men, ambitous of fame, confident of powers, proud and boas tful, but fatalists about the over ruling powers of destiny.

N. K. Sidhant The Heroic Age of India Page 114 London · 1929.

२. One of the moit noticeable features of the age we are discussing is, tnen, the āmbition and vigour of youthful heroes, and their strength and violence bringout the weakness of the older ties of clan and kindred so much so that the bends of kinship seem on the point of difintergration. Thus there are too many instānces of strife among relatives of both in greek ane teutonic heroic poems. N. K. Sidhant. The Heroic Age of India London Page 116. 1929.

वीरयुग का साहित्य (आर्ष)

आलोचित युग मे अर्थात् ऋग्वेद काल से पुराण काल तक निम्नोक्त प्रकार से भारतीय साहित्य का क्रमिक विकास हुआ है ।

१ वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ।
प्रत्येक वेद चार भागो मे विभक्त है।
(१) सहिता, (२) ब्राह्मण, (३) आरण्यक, (४) उपनिषद् ।

२. वेदाग—(१) शिक्षा, (२) व्याकरण, (३) छन्द, (४) निरुक्त, (५) ज्योतिष और (६) कल्पसूत्र ।

३ महाकाव्य—रामायण, महाभारत ।

४. पुराण[२]

उपर्युक्त वेद से लेकर पुराण तक प्राप्त साहित्य मे निम्न प्रकार का काव्य मिलता है । इन काव्यो मे गौण प्रधान भाव से वीर काव्य का स्वरूप दिखाई देता है ।

---

१. These facts would seem to suggest that the real reason fcr Agıun's qanıshment was perhaps some quarrel wıth hıs elder brother (1-215) & Uadhı shthar remark on the beath of Draupadı...(X∨I102) . There were probably serıous quarrels between the Pandava brothers but these have perhaps been glossed over by the prıestly bard of later times, desırous of holdıng up the Pandavas as a Pattern of brotherly lcve. Idıd Page 123

२. राजशेखर के अनुसार शास्त्र दो प्रकार का है । (१) अपौरुषेय और (२) पौरुषेय । अपौरुषेय के अन्तर्गत वेद आता है, वेद के दो भाग हैं (१) मन्त्र भाग (२) ब्राह्मण भाग । वेद के पश्चात वेदाग ६ और एक अलकार शास्त्र भी सातवा अग है । पौरुषेय शास्त्र पुराण (२) आन्वीक्षिकी मीमांसा व धर्मशास्त्र इतिहास भी पुराण का एक भेद है । इतिहास दो प्रकार का बताते हुये प्रथम में वाल्मीकि रामायण और दूसरा महाभारत कहा है । अर्थात् राजशेखर के मत मे पुराण से अन्तर्गत ही महाकाव्यो का 'रामायण, महाभारत' समावेश हो जाता है । काव्यमीमासा, द्वितीय अध्याय ।

१—कथात्मक काव्य या वीर आख्यान गीत

२—सवाद गीत

३—उपदेशात्मक या नीति सम्बन्धी गद्य पद्य

४—प्रशस्तिकाव्य या आवाहन—जैसे यज्ञ या देवताओ की प्रार्थना, राजाओ की स्तुति, शोककाव्य

५—वर्णनात्मक काव्य

६—गीतिकाव्य

७—मत्र, तन्त्र या धर्म का काव्य

८—कूट प्रश्नात्मक काव्य

९—तत्व विचारात्मक काव्य

१०—औपरोषिक काव्य

उपर्युक्त काव्य प्रकारो मे से अधिकाश काव्य वेदो मे उपलब्ध होते हैं। प्राचीन साहित्य, वेद तथा पुराण धार्मिक विचारो से परिपूर्ण होने पर भी उसमे कथात्मक, वीर काव्य की कमी नही है। रामायण महाभारत तो वीरकाव्य ही हैं। (३) और (४) का काव्य वेदो से लेकर पुराण तक उपलब्ध होता है। ८ ६ का काव्य वेदो मे मिलता है। (१०) का वेदो मे तथा पुराण एव महाभारत मे मिलता है।

उपर्युक्त काव्यप्रकारो का उपयोग अधिकाशत महाकाव्यो मे किसी न किसी विषय को लेकर किया गया है।

निष्कर्षत वीरो के अदम्य साहस एवं असामान्य पराक्रम के फलस्वरूप तत्कालीन युग की प्रधान भावना 'वीर भावना, ही हो जाती है। अतीत-कालीन वीरो की स्मृतियो के परिणामस्वरूप इसी वीरभावनाजन्य वीरों के उद्‌गार ही वीरगीतो का रूप धारण करते हैं। इन्ही 'वीरगीतो को भिन्न-भिन्न नामों से वीरगाथा, वीरकाव्य आदि कहा जाता है। इन वीरगीतो का प्रचलन या गान केवल राजदरबारो तक ही सीमित न होकर समूचे समाज मे भी होता है। इसके अतिरिक्त ये वीरगीत महाकाव्यो के अन्य उपादान को भी एकत्र करते चलते है और यही वीरयुग ऐसे अम्लान प्रतिभाशाली कवि को जन्म देता है, जिसमे सृजनात्मक प्रतिभा विद्यमान रहती है, वही इन वीरगीतो एव अन्य उपादानो को कलात्मक ढग से सगृहीत कर महाकाव्य का रूप देता है। ये महाकाव्य जातीय अथवा प्रमाणिक कहे जाते हैं। किन्तु सभ्यता के विकास के साथ साथ कला का भी विकास होता है। कला व्यक्तित्वप्रधान होती जाती है। अब कवि महाकाव्य लिखने के

ध्येय या लक्ष्य से महाकाव्य लिखने बैठता है। अपनी कला के विषय मे अत्यधिक सचेत होने से, उसकी शैली परिष्कृत होती है और इस परिष्कृत शैली मे निर्मित महाकाव्य कलापूर्ण या अलंकृत महाकाव्य कहा जाता है[1]। इस प्रकार महाकाव्य के दो स्वरूप सामने आते हैं। (१) आर्ष और (२) विदग्ध

आर्ष महाकाव्य का स्वरूप

महाकाव्यो का विकास ऐतिहासिक एव तात्विक दृष्टि से अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिये महाभारत रामायण जैसे विकसनशील महाकाव्यो को आर्ष काव्य कहा गया है। कवि विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण मे (६, ३२५) रामायण महाभारत को 'आर्ष, विशेषण अधिक जोडकर, उनकी प्राथमिकता, प्राचीनता, प्रामाणिकता, पवित्रता एव स्वाभाविक विकसनशीलतादि गुणो को व्यक्त करते हुये, उत्तरकालीन सस्कृतिजन्य महाकाव्यो रघुवश, किरात, माघ, को इनसे अलग कर दिया है। आर्ष से तात्पर्य ऋषिप्रणीत से है। ऋषिप्रणीत होने से उक्त भाव प्राचीनतादि एवं स्वयस्फूर्तता तथा ऋषिदर्शनादिभाव उसमे स्वयमेव ही निहित है। कवि को ऋषि कहा गया है। भट्टतौत ने कवि को ऋषि कहते हुये उसे स्वयप्रज्ञ एव द्रष्टा कहा है। और उदाहरण स्वरूप आदिकवि वाल्मीकि को उद्धृत किया है। वस्तु मे निहित भाव-वैचित्र्य, धर्म एवं तत्व को *सम्यक्रीत्या अवगत करने वाला व्यक्ति* 'ऋषि' शब्द से अभिहित होता है। कवि को भी क्रान्तदर्शी 'कवय क्रान्तदर्शिन' कहा गया है। किन्तु दोनो मे थोडा अन्तर है। यावत् वस्तुतत्व को अवगत कर, उससे अनुभूत वस्तुतत्व को वह अपने सरस शब्दो मे व्यक्त नही करता है, तावत् वह कविशब्दवाच्य नही हो सकता[2]। इस प्रकार कवि की कल्पना मे दर्शन के साथ साथ सरस वर्णन का भी मनोरम सामजस्य है।

---

१. " A man would decide that he would like best to be an epic poet and he would set out, in consious determination, on an epic poem The result good or bad, of such a determination is calla Literary Epic'

The Epic. The Art and Craft of letters.

L. Abercrombiec. Page 21.

२. 'दर्शनात् वर्णनाच्चाथ रूढालोके कविश्रुति
तथाहि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिकवेर्मुने.
नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना ॥ आदिपर्व ५५ अ. प्र.

इसके अतिरिक्त आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक मे उद्योत ३ रामायण महाभारत को इतिवृत्तप्रधान, कथाश्रय, एवं सिद्धरसप्रख्य कहा है[1]। इनसे आर्ष काव्य के विशेषण एवं निम्नलिखित तत्व स्पष्ट होते हैं। (१) आर्ष महाकाव्य ऋषिप्रणीत प्राचीन, स्वयंस्फूर्त, सत्य एव प्राथमिकतासे इतिहास कथन करने वाले होते हैं। पाश्चात्य आलोचको ने भी इसी प्रकार के कुछ विशेषणों का प्रयोग विकसनशील या सकलनात्मकम Epic of growth महाकाव्यो के लिये किया है primitive आद्य प्राकृतिक अवस्था के द्योतक, (primary) मूल-आधारभूत (Natural) निसर्गस्फूर्त, Authentic सत्य, प्रामाणिक, Communal विशिष्ट जमात, सघ या वंश से सम्बन्धित (Popular) लोक जीवन स्पर्शी, राष्ट्रीय (Oral) लोकसमुदाय के सामने मौखिक रूप से कही या गाई जानेवाली (Epic of Growth) विकसनशील या सकलनात्मक।

उपर्युक्त इन दोनो काव्यो मे (१) आर्ष (२) सस्कृतअलंकृत-भेद प्रतिपादन करने वाले विशेषण का प्रयोग भामहादि से लेकर साहित्य दर्पणकार तक किसी आचार्य ने नही किया है। सर्वप्रथम विश्वनाथ ने ही आर्ष विशेषण का प्रयोग कर पूर्वकालीन संस्कृति की ओर संकेत किया।[2] यद्यपि ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने महाभारत को महाकाव्यात्मक शास्त्र कहा है[3]। फिर भी इस प्रयुक्त विशेषण से उसके स्वरूप विकास का संकेत नही मिलने पाता जो आर्ष से मिलता है। इन आर्ष महाकाव्यो रामायण महाभारत ने ही उत्तरकालीन सस्कृत महाकाव्यो रघुवंशादि को अपने जीवन से अनुप्राणित किया है यह हम आगे देखेंगे।

अतः इन प्राचीन काव्योपजीवी नवीन काव्यो के लिये संस्कृत के अलंकृत रघुवशमाघादि 'विदग्ध, विशेषण यदि अधिक जोड़ दिया जाय तो अधिक समीचीन प्रतीत होता है। विदग्ध महाकाव्यो से तात्पर्य उत्तरकालीन सस्कृति सभ्यता की परिवर्तित धारा मे प्राचीन काव्यो के आधार पर ही विशिष्ट

---

१. सन्ति सिद्धरसप्रख्या ये च रामायणादय
कथाश्रया न तैर्योज्या स्वेच्छा रसविरोधिनी।
ध्वन्यालोक कारिका १४, उद्योत ३

२ 'अस्मिन्नार्षे पुन सर्गा भवन्त्याख्यानसंज्ञका
अस्मिन्महाकाव्ये यथा महाभारतम्। सा. दर्पण ६·३२५

३ महाभारतेऽपि शास्त्ररूपे काव्यच्छायान्वयिनि.........
ध्वन्यालोक ४थं उद्योत

हेतु चातुर्य, विद्वत्ता, एव कलामण्डित महाकाव्य से है। पाश्चात्य आलोचको ने भी इसी अर्थ मे Epic of Growth ईलियड, ओडेसी व बेओउल्फ की विकसनशील प्रामाणिक, प्राचीन महाकाव्य और एनीड पेरेडाइज् लोस्ट को विदग्धमहाकाव्य, कलायुक्त Literary परोपजीवी, Secondary कृत्रिम Artificial राजसभा निमित्तकृत, या राजप्रशस्ति पर, Epics of Culture नवसंस्कृत प्रधान classical नियमवद्ध, आदर्शदर्शी written विशिष्ट पाठको के लिये लिखी हुई कहा है। उपर्युक्त सभी विशेषण सस्कृत के महाकाव्यो, रघु, किरात, माघादि, के लिये अधिक उपयुक्त एव समीचीन है। इन सभी विशेषणो के लिये, उपयुक्त एव सर्वव्यापी विशेषण विदग्ध ही है। इस विदग्ध शब्द मे चातुर्य कलात्मकता, पाडित्य, नागरिकता, एव सास्कृतिक विकासादि प्रमुख अर्थछटा निहित है।

विदग्ध का यौगिक अर्थ विशिष्ट प्रकार से भुजा हुआ well roasted वि+दह्+क्त, है। अपक्व मूल खाद्य वस्तु को प्रथम सुखाकर बाद मे पकाकर Baked or Toasted दग्ध उपयोग मे लाया जाता है। अर्थात् इससे तात्पर्य' प्राकृतिक खाद्य वस्तु को सुसकृत नागरिक मनुष्य के द्वारा विशिष्ट सस्कारो से सस्कृत कर उपयोग मे लाये हुए पक्व या सम्वृत अन्न से है।

'सुश्रुत, मे विदग्ध अन्न का उल्लेख मिलता है।[1] त्रिकाण्डकोश व शब्द रत्नावली कोश के अनुसार प्राकृतिक वस्तु पर, मानव द्वारा बुद्धिपूर्वक किये हुये सस्कारो को विदग्ध शब्द द्योतित करता है।[2] 'रसमंजरी, मे विदग्ध, एक नायिकाप्रकार के लिये प्रयोग किया गया है[3] यह नायिका

---

१ विदग्ध त्रि (वि.+दह+क्त) छेक, कुशल नागर 'विदग्धाया विदग्धेन संगमोगुणवान् भवेत्। इति देवी भागवते ९ निपुण, लिप्तं न मुखं नागम् न पक्षती चरण परागेण अस्पृशतेव नलिन्या विदग्धमधुपेन मधुपीतम्' इति आर्यासप्तशत्याम्। ५०६। पिहित विशेषेणदग्ध।

२ शोफयोरुपनाहतु कुर्यादामविदग्धयो। अविदग्ध शम याति विदग्ध पाकमेति च इति सुश्रुते। ४।१।३८५ पेज ६१२ हलायुध कोश

३. उपपति सभोगोपयोगिवचनक्रियाऽन्यतर नैपुण्यं विदग्धात्वम्,
वाक्क्रियाम्या विदग्धा द्विधा विभक्तु-
माह विदग्धा च द्विधा वाग्विदग्धा क्रिया विदग्धा च,
पत्र न० ५५ रसमजरी, चतुर्थमणि महाकाविभानुदत्त-
मिश्रविरचिता

क्रियाचतुर एवं भाषण चतुर होती है । किन्तु विदग्ध शब्द से द्योतित होनेवाली अर्थ छटाओ की कलात्मकता नागरिकता, चातुर्य आदि का आर्ष काव्य मे अभाव समझना भ्रम है । संस्कृत महाकाव्यो मे उपर्युक्त गुण (सुसंबद्धता एवं गठन सहेतुकता, और चमत्कारप्रियतादि) उत्तरकालीन सस्कृत एव सभ्यता की विकासावस्थाजन्य ही है । यह आगे देखेंगे ।

आर्षकाव्यो का महत्व *

ये दोनो आर्ष काव्य, पाश्चात्य विद्वानो के अनुसार, कपोलकल्पित या केवल रूपक भी नही है (Allegory) । मनुष्य-जीवन के उद्देश्यरूप धर्म अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थ की शिक्षा देते हैं । लौकिक भावो से युक्त होने पर भी ऐतिहासिक घटनाओ को अभिव्यक्त करते हैं । तत्कालीन मानव का अतिमानुष शक्ति पर अधिक विश्वास होने से एवं कथा केन्द्रस्थ मानव का महत्व प्रतिपादन करने के हेतु ही इनमे देव दानवो की नियोजना की गई है। धर्म स्वरूप राम एवं पाण्डवो के पथ मे जो पद पद पर विषमतायें एवं अवरोध है, वे केवल सद्गुण-दुर्गुणो के प्रतीक स्वरूप हैं । महाकाव्यो की प्रत्येक कथा या विशिष्ट प्रसंग, मानवी जीवन का गंभीर अर्थ और चिरन्तन सत्य की ही द्योतक है । मानवी मन सदा एक रूप होने से, मानवी कार्य सदा पूर्ववत् ही घटित होते है और सुख-दु ख के वे ही अनुभव आते है । द्रौपदी का स्वाभिमान, रावण की परस्त्रीलोलुपवृत्ति, भीम एव वेओउल्फ की साहस प्रियता, राम, धर्मराज एव युलिसीस की धैर्यवृत्ति, सीता, सावित्री की पतिभक्ति, दुर्योधन दु:शासन की दीर्घद्वेष वृत्ति भावना, शकुनि की कपटमनोवृत्ति आदि मनोविकारो का चित्रण इतना सुस्पष्ट एवं सूक्ष्म हुआ है कि इन सभी मनोविकारो की प्रतिध्वनि आज भी तत् तत् परिस्थितियो मे सुनाई पड़ती है ।

इसीलिये कुछ विद्वानों ने आर्ष काव्यो में, त्रिकालाबाधित चिरन्तन सत्य को देखकर इन्हे इतिहास की पुनरावृत्ति के रूप मे स्वीकार किया है । इन काव्यो में वर्णित घटनाओं के द्वारा प्राचीन कवि ने मानवी जीवन के कुछ त्रिकालाबाधित विचार सिद्धान्त रूप मे प्रतिपादित किये हैं ।

पाडवो जैसे पराक्रमी वीरों एवं श्रीकृष्ण जैसे कुशल राजनीतिज्ञ होने पर भी, वीर अभिमन्यु का वध होना, रामलक्ष्मण एव पाण्डवों का वनवास, आदि बातें नियति की सर्वशक्तिमत्ता ही निश्चित करती है । चौदह वर्ष के पश्चात् कण्टकाकीर्ण वनवास करके जब श्री रामचन्द्र जी अयोध्या लौटे और

* संस्कृत काव्याचे पञ्चप्राण—डॉ० आटवे पृ० १८-२४

अब वे मुझे (भरत) दर्शन देंगे, यह शुभ वार्ता हनुमान जी से सुनकर भरत ने कहा कि मनुष्य जीवित रहने पर, सौ वर्ष के पश्चात् भी, आनन्द को प्राप्त करता है, यह लोकानुभव है 'कल्याणी बत गाथेय लौकिकी प्रतिभाति मे।'

एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतै रपि। रामायण युद्ध का० १२६–२

उपर्युक्त वाल्मीकि का जीवनविषयक आशावादी दृष्टिकोण और भारतीय युद्ध के निराशा एव करुण घटनाओ के पश्चात् मानवी जीवन के संपूर्ण संचयो का क्षय होता है। उन्नति का पतन मे, सयोग का वियोग मे और जीवन का मृत्यु मे पर्यवसान होता है। यह निराशावादी दृष्टिकोण

सर्वे क्षयान्ता निचया पतनान्ताः समुच्छ्रया
सयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्त च जीवितम्।। महा० १२-२७-३१

उपर्युक्त परस्पर विरोधी विचार अन्तिम एव सार्वकालिक है।

ऋगवेद कालीन ऋषि की प्रतिभा से जिस प्रकार कुछ तत्त्वज्ञान विचार प्रथम बार प्रस्फुटित होकर अपनी सार्वकालिकता से अन्तिम सिद्ध हुये, उसी प्रकार इन दो भारतीय आर्ष काव्यों ने मानवीय गुण दोष की उन्नति, अवनति की दो त्रिकालाबाधित मर्यादाओ की स्थापना की है। आर्यों का सयम और साहस, धैर्य और भय, उनकी सहृदयता और दुष्टता, उनका त्याग और भोग, उनकी उदारता और कृपणता, विशालता और सकुचितता, आदि गुण किस सीमा का कम से कम और अधिक से अधिक अतिक्रमण करते है इनका भी रामायण महाभारतादि आर्ष काव्यो मे वर्णन किया गया है। अर्थात् भारतीय आर्यों के गुणावगुण उक्त शीशे का अतिक्रमण नही करते, प्रतिपादित कर दिया है। इसलिये उत्तरकालीन भारतीय वाङ्मय मे इन्ही गुणो की यदि पुनरावृत्ति दिखाई दे तो आश्चर्य नहीं।

उपर्युक्त विचार हमे इस निष्कर्ष पर ले जाते हैं कि भारतीय आर्षकाव्य रामायण महाभारत केवल प्राचीन होने से ही लोकप्रिय नही हुये किन्तु कुछ त्रिकालाबाधित मानवी मनोविकारो का सूक्ष्म प्रतिपादन करने से ही जब तक पृथ्वी पर पर्वत और नदिया स्थित रहेंगे, तब तक ससार मे रामायण की कथा का प्रचार रहेगा, ससार मे जितने भी श्रेष्ठ कवि होगे उनके काव्य के लिये यह (महाभारत) मूल आश्रय रहेगा। जैसे मेघ सम्पूर्ण प्राणियो के लिये जीवनदाता है। वैसे ही यह अक्षयभारत वृक्ष है[1] उनके प्रति ये उद्गार आज

१. यावत्स्थास्यन्ति गिरय सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।। बाल, का २-३६
इतिहासोत्तमादस्मात् जायन्ते कविबुद्धय।
सर्वेषां कविमुख्याना मुपजीव्यो भवष्यति।। महाभा० आदि २ · ३८५

भी यथार्थ सिद्ध हो रहे हैं। संक्षेप मे यदि कहा जाय तो यह कह सकते हैं कि भारतीय आर्यवंशों के सपूर्ण विशेषों के एकत्र गुणों के लिये निष्यन्द है। इसी विचार को ध्यान मे रखकर किसी विद्वान ने 'व्यासोच्छिष्ट जगत् सर्वम्, यथार्थ रूप मे ही कहा है[1]

किन्तु ऐसे वचनो मे भी एक मर्यादा आवश्यक है जिस प्रकार ऊपर यह बताया गया है कि रामायण महाभारत आर्ष काव्यों मे कुछ भाग तो सार्वकालिक होने से आज भी यथार्थ सिद्ध हो रहा है किन्तु उनमे कुछ भाग तत्कालीन भी है और इसलिये उसमे यथासमय सुधार भी किये गये हैं। जैसे द्रौपदी के पाच पति, भीम द्वारा दु शासन का रक्तपान, भक्ष्याभक्ष्यविचार, गवालंभ पलपैत्रिक (ममासश्राद्ध) सन्यास आदि बातो में युगानुरूप परिवर्तन किये गये हैं स्मृतिकारो निबन्धकारणो ने प्रत्येक युग के कृत, त्रेता, कलि आदि धर्म भिन्न भिन्न होते हैं।[2]

इसी प्रकार उत्तरकालीन शास्त्रो ने विद्याकलाओ ने, संस्कृति व भाषा को पूर्व की अपेक्षा कही अधिक उन्नति की है। उत्तर कालीन सस्कृत के विदग्ध महाकाव्यो ने किस प्रकार और किस क्षेत्र में आर्ष काव्य की अपेक्षा उन्नति की, यह हम विदग्ध महाकाव्यो की विशेषताओ मे देखेंगे।

आर्ष काव्य की विशेषतायें

१ आर्ष काव्य मे भयंकर युद्धसग्राम वर्णित होता है। युद्धभूमि हाथियो की गरज, घोडो की हिनहिनाहट, तीक्ष्ण बाणो की सनसनाहट, और रथो के पहियो की गडगडाहट की आवाज से पूर्ण होती है। सर्वत्र ही मृत्यु का नग्न नृत्य दृग्गोचर होता है।

२, रामायण, महाभारत मे इसकी कमी नही, योद्धागण विभिन्न अस्त्र शस्त्रो मे निपुण होते हैं। भीमसेन गदासचालन मे युधिष्ठिर तोमर फेंकने मे, माद्रीपुत्रढाल तलवार मे, राम लक्ष्मण और अर्जुन धनुर्वेद मे पारगत हैं।

३ दीर्घ और साहसपूर्ण यात्रा और उसमे दृष्टिगत होनेवाले प्राकृतिक दृश्य नदिया पर्वत, सागर, वन हिंस्र पशु आदि होते हैं वनवासी पाडव और और राम सीता और लक्ष्मण आदि के प्रचण्ड और भयंकर प्रवास प्रसिद्धि ही है। इस प्रकार की यात्रा, ओडेसिअस एनीअस देवोउरफ आदि ने भी की है।

---

१. धर्मेचार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदि हास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कर्हिचित्॥

२ निर्णयसिन्धु पूर्वभाग पृ० २६३-६४ मुंबई १९२६

४, साहसी और शूर जमातो या सघो के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे आक्रमण परिभ्रमण भी होते हैं और ये ही आगे चलकर महाकाव्यो के प्रेरणास्रोत वन जाते हैं[१]।

५. पाडवो का दिग्विजय, राम का लकाविजय, आदि प्रसिद्ध ही है। परस्त्री अपहरण सीता द्रोपदी, और हेलन आदि के अपहरण प्रसग होते है।

६ द्यूत सर्त खेल आदि का कथन होता है। रामायण महाभारत मे शर्त की पूर्तिहोने पर विवाह होता है। स्वयं वर मे राम ने और अर्जुन ने धनुष फुकाने की एव मत्स्यवेध की शर्त पूर्ण की है।

७ भयकर वाद विवाद वाक्कलहादि प्रसग होते हैं 'महाभारत मे भीम द्रौपदो और धर्म के बीच हुये और ईलियड के योद्धाओ के बीच हुये वादविवाद प्रसग प्रसिद्ध है।

८ अतिमानुष शक्ति का व्यापार वर्णन होता है। रामायण महाभारत मे इन्द्र, अग्नि, वरुण, ब्रह्मादेव विष्णु, शकर आदि वैदिक और पौराणिक देवो और राक्षसो का मानवी व्यवहार मे प्राधान्य है।
ये पात्र मानवी कुटुम्बी जनो जैसा व्यवहार करते हैं। यही स्थिति ग्रीक देवताओ और राक्षसो की है। ऐपोलो, ज्युपिटर, आफिलम् मिनव्र्हा ज्यूनो, थेटिस और ग्रेडेल।

९. अति मानुष पात्रो के साथ साथ अधोमानुष पात्रो का भी नियोजन होता है। अर्थात् काव्य मे पशु पक्षियो की योजना सर्वत्र होती है। रामायण के हनुमान अतिमानुष मानुष और अधोमानुष अशो के एक आदर्श मात्र हैं जटायु जामवन्त आदि रामपक्षीय हैं। महाभारत मे हस और गरुड हैं ही। महाभारतांन्तर्गत शकुन्तला का रक्षण जिस प्रकार पक्षियो द्वारा किया गया है, उसी प्रकार शाहनामा मे वर्णित झाल राजपुत्र का मरक्षण सिमर्घन्कोम के सुवर्ण पंखी गुरुडी द्वारा किया गया वर्णित है।[२]

---

१. Volker Wanderings A study of History
पृ० ५९६।६०६ ए० जे टोइनवी।

२. आर्ष काव्यो मे पशु पक्षियो, सर्पों की बहुलता है। वे मानवो की तरह वाणी बोलते हैं। हंसगीता मे हसरूपधारी ब्रह्मा का साध्यगणो को उपदेश है। गरुड़ और गालवसवाद काश्यप ब्राह्मण और इन्द्र का सवाद (शान्तिपर्व मोक्षधर्म पर्व अ १८०) गरुड गालव सवाद उद्योगपर्व भगवद्यानपर्व अं० १०७ (इन्द्रदेव ने सिआर का रूप

१०. आर्षकाव्य प्रधानतया वर्णनात्मक कथात्मक होता है। अनेक उपकथायें और आख्यानो के साथ साथ उपर्युक्त विषय भी सम्मिलित होते है। विभिन्न वर्णनों भाषणो धर्म तथा तत्वज्ञान के विवेचनो से उसका विस्तार किया जाता है। इसीलिये ईलियड और ओडेसी मे प्रत्येक काव्य मे चौबीस सर्ग हैं। वेओकल्फ साढेतीन महस्र पंक्तियों का काव्यग्रथ है। शाहनामा साठ सहस्र पक्तियो और महाभारत एक लाख श्लोको का महाप्रबन्ध काव्य है। महाभारत का विस्तार ईलियड ओडेसी के एकत्र विचार से आठ गुना है। रामायण को चतुर्विंशतिसाहस्री सहिता, कहा गया है। अर्थात् इसमे २४००० सहस्र श्लोक संख्या है।

११. आर्ष काव्य का नायक एक महान शौर्य धैर्य त्याग और औदार्यादिगुणो से समन्वित युगपुरुष होता है। उसके सपूर्ण जीवन का विस्तृत वर्ण-नात्मक चित्रण होता है। काव्य की भव्यता उसमे वर्णित विश्वव्यापक मानवी कथा की पार्श्वभूमि पर स्थित होती है।

१२. काव्य की शैली सरल और सुबोध होती है किन्तु गभीरता की भी कमी नही होती। उसमे पाडित्य प्रदर्शन की भावना के अभाव के साथ सहजस्फूर्तता और जीवनानुभव की कमी नही होती है।

१३' आर्ष काव्य विकसन शील, काव्य के है विकसित काव्य होने से किसी एक विशिष्ट कवि के नही होते, वे समूचे समाज की रचनाये होती है। रामायण महाभारत भी वाल्मीकि और व्यास की क्रमश रचनाये यद्यपि कही जाती है किन्तु इनका भी अज्ञात कवियो या समूचे समाज की अम्लान प्रतिभा से युग युग की धारा मे किस प्रकार विकास हुआ है यह हमने पूर्व देख लिया है।

१४. आर्ष काव्यो मे सवाद शैली की प्रचुरता रहती है। रामायण महाभारत मे प्राप्त होने वाली सवादो की बहुलता ईलियड और वियोउल्फ मे भी

धारण करके उपदेश दिया। इसके अतिरिक्त वृक्ष तक बोलते हैं। नारद और सेमलवृक्ष संवाद शान्तिपर्व में १५४-१५५ अध्याय) शेषनाग ने ब्रह्माजी से वर प्राप्ति के लिये तपस्या की (आदि पर्व मे आस्तिकपर्व, अध्याय ३६। सर्पों के साथ सबन्ध जरत्कारू ब्राह्मण को वासुकी ने अपनी बहिन विवाह में दी थी। आदिपर्व आस्तिक पर्व अ. ४७)

पाई जाती है।[१]

१५. एक कथा से दूसरी और दूसरी से तीसरी कथा का जन्म होता जाता है ये कथाये प्राय प्रथम कथा में दृष्टान्त रूप मे आती जाती है। जैसे महाभारत मे 'रुरु'के चरित्र वर्णन करते समय डुहुम, सर्प सवाद। इसी मे दुहुभ की आत्मकथा है। रुरु डुहुम सवाद मे जनमेजय के सर्प यज्ञ की चर्चा है और इस चर्चा मे आस्तिक का उपाख्यान प्रारम्भ होता है(आदि पर्व अध्याय ७,८,९,१०) महाभारत रामायण पुराण के वृहदाकार का प्रमुख कारण उपर्युक्त प्रवृत्ति ही है।

१६. एक ही प्रकार के विशेषणो और शब्दावली का प्रयोग बारम्बार होता है। हाप्किन्स मे रामायण महाभारत के इस प्रकार के प्रयोगो का तुलनात्मक अध्ययन करके एक लबी सूची तैयार की है।[२]

१७. इनमे मानव जीवन नियति की शक्ति द्वारा चालित होता है। रामायण, महाभारत के पात्रो के जीवन पर नियति या भवितव्यता की छाया स्पष्ट परिलक्षित होती है। काल का सर्वभक्षित्व सर्वत्र दृग्गोचर होता है। 'अचिलस, और अभिमन्यु की युवावस्था मे मृत्यु सीता को काचन मृग और धर्मराज को द्यूत का मोह। आदि सबका एक मात्र कारण है, नियति[३]

---

१ इन सवादो मे कथापात्रो के जीवन के सुखदुख पर प्रभाव डालने वाले भाग्यचक्र नियति की विशेषता बतलाकर एक सामान्य उपदेशात्मक तथ्य का प्रतिपादन किया जाता है। सभापर्व मे धृतराष्ट्र की चिन्ता और उनका सजय के साथ वार्तालाप इसी प्रकार का है। अध्याय ८१ श्लोक ८,९, १०, ११ इसी रुढी का दर्शन या प्रभाव विदग्ध महाकाव्यो मे भी अर्थान्तरन्यास दृष्टान्त के रूप मे दिखाई देता है।

२. 'The gaeat Epic of india' Washburn Hopkins Yale Univrsity 1220 P. 402 to 445.

३. आदिपर्व अध्याय १—२४६—२४८
धर्मराज प्रारब्ध के वशीभूत हो गये थे उन्हे भीष्म, द्रोण, विदुर द्वारा जुआ खेलने से रोक रहे थे। युयुत्सु, कृपाचार्य तथा सजय भी मना कर रहे थे। गाधारी, कुन्ती भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदा अश्वत्थामा आदि ने भी पर्याप्त रोका किन्तु 'भावी' के वश होने के कारण धर्मराज जूए से नही हटे। सभापर्व अनुद्यूतपर्व अ. ७६ 'काल

१८. आर्ष काव्यो में कथा की प्रधान घटना के घटित होने का काल बहुत ही सीमित या कम होता है। राम रावण का युद्ध १० दिन और महाभारत का युद्ध १८ दिन वैसे तो महाभारत का प्रमुख युद्ध १७ दिन हुआ। अस्त्र-शस्त्रो के सर्वोपरिमर्मज्ञ भीष्म पितामह ने १० दिनो तक युद्ध किया, आचार्य द्रोण ने पाँच दिनो तक कौरव सेना की रक्षा की। इसके पश्चात वीरवर कर्ण ने दो दिन युद्ध किया और शल्य ने आधे दिन तक। इसके पश्चात् दुर्योधन और भीमसेन का परस्पर गदायुद्ध आधे दिन तक होता रहा (किन्तु युद्ध का प्रधान वीर दुर्योधन का युद्ध शेष था और वह आधे दिन तक चला है, इस प्रकार १८ दिन पूर्ण हुये है। छोटी मोटी घटनायें इसके पश्चात् भी हुई हैं किन्तु प्रधान युद्ध और वीर १८ दिनो तक ही रहा है[1]।

प्रमुख घटना का काल सीमित होने पर भी दोनो काव्यो का विस्तार प्रक्षेपो, धार्मिक प्रभाव एवं मौखिक परम्परा के कारण हुआ है। अनेक कथाओ उप कथाओ और युद्ध मे सम्मिलित वीर योद्धाओं के चरित्रवर्णन मे यह सीमित समय गौण हो जाता है[2]।

आर्षकाव्य की उपर्युक्त विशेषताओ मे अलौकिकता अतिप्राकृतता तथा अमानवीयता को देखने से यह ज्ञात होता है कि इनमे वर्णित कथाओं का स्वरूप सार्वभौम होता है। थोडे थोडे रूप परिवर्तन के साथ संसार की विभिन्न जातियो मे ये कथाये पाई जाती हैं। ऐसी कथाओं का उल्लेख करते हुये लेखक 'ड्रिकवाटर' ने कहा है कि संसार की विभिन्न जातियो मे समान रूप से पाई जाने वाली कथाओ या गीतो का कारण व्यापार सम्बन्ध या जाति मिश्रण के अतिरिक्त मानव मनोविज्ञान के अनुसार, मानव की समान

डंडा या तलवार लेकर किसी का सिर नही काटता। काल का बदला इतना ही है कि वह प्रत्येक वस्तु के विषय में मनुष्य की विपरीत बुद्धि कर देता है। सभापर्व अ ७६—२०'

१ आदिपर्व अध्याय २—३०, ३१, ३२

२. कौरवो के उस महासमर मे युद्ध करने के लिये राजाओ के कईलाख योद्धा आये थे १० हजार वर्षों तक गिनती की जाय तो भी उन असंख्य योद्धाओ के नाम पूर्णत नही बताये जा सकते। यहा कुछ मुख्य मुख्य राजाओ के नाम बताये गये हैं जिनके चरित्रो से इस महाभारत कथा का विस्तार हुआ है। 'आदिपर्व अध्याय ६३-१२६—१२७

परिस्थितियो में समान अनुभव तथा एकसा विचार करने की प्रवृत्ति है। वेदों में पायी जाने वाली पुरुरवा और उर्वशी की कथा समान रूप से पाश्चात्य की विभिन्न जातियो मे पायी जाती है।[1] एक देश की अथवा संसार की विभिन्न जातियो की लोक कथाओ और लोक गाथाओ मे कुछ विशेषताये समान होती है और उपर्युक्त कारणो से इन कथाओ मे उन विशेषताओ की बार-बार आवृत्ति दिखलाई पडती है। इस आवृत्ति को विद्वानो ने कथानक रूढि की सज्ञा से अभिहित किया है। इस प्रकार की कथानक रूढियो का विवेचन कुछ विद्वानों ने ब्लूम फील्ड, पेन्जर टानी नार्मन वाऊ ने किया है।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक कथाओ, लोक गाथाओ तथा पौराणिक आख्यानो मे पाई जानेवाली इन कथानक रूढियो का प्रभाव उत्तरकालीन काव्य पर महाकाव्य, नाटक मुक्तक और कथा आख्यान साहित्य पर भी पडा है। क्योकि उत्तरकालीन काव्यसा-हित्य का उपजीव्य ये ही कथाये है इन कथानक रूढियो का वर्णन कालि-

१. There is nc more interesting and important fact in human history than the universality of iolk sengs and legends. There is an amazing similarity betw een the subjects of the songs of the East and the songs of the West and stories are common to all the peoples of the world ..Probably the most satisfactory explanation of the universality of myths is that they are the result of universal evperience and sentinent'. The story of cupid and Psyche is one of the best known incidents in greek mytnology, this same story of a bride who diobeys the orders of her husband oceurs in the Norse legend of Frela and Oddure, and is told in the Indian Vedas of Purusavas and Urvasi, There is also wesish and a zulu Form of the same story,

Page N0 28 to 30. The outline of literature john Drink water Vol. I 1940. London

२ History of Sanskrit Literature.
Dr S. N. Das Gupta ānd S. K. De. Vol. I Page 26–29

दास के काव्यों मे तथा उत्तर कालीन अन्य महाकाव्यो मे भी देखने को मिलता है।

जैसे—(१) रघुवश मे–अज के बाण से हाथी का मारा जाना, और अपना स्वरूप त्याग कर हाथी का गधर्व रूप धारण करना। (२) अज-पत्नी, इन्दु-मती की पुष्पमाला गिरने से मृत्यु होना। (सर्ग ८)

(३) राजा कुश को स्वप्न में अयोध्या नगरी का स्त्रीरूप मे दिखाई देना, और मनुष्यवाणी मे अयोध्या नगरी का करुणाजनक स्थिति का वर्णन करना। सर्ग १६ के १२ से १२ (४) नवसाहसाकचरित मे––सिन्धुराज द्वारा रत्नचूडनामक नागयुवक को शुकयोनि से मुक्त कराना। पुन सिन्धु-राज द्वारा विद्याधर नृपति शिखण्डकेतु के पुत्र को मर्कटयोनिसे मुक्त कराना।

सर्ग—१० श्लोक—४६, ४८,

सर्ग—१० श्लोक—२८, २९,

किन्तु इन कथानक रूढियो के आधिक्य ने अर्थात् उनकी बार-बार आवृत्ति होने से उनमे निहित आश्चर्य या चमत्कार उत्पन्न करने वाले तत्व को समाप्त कर दिया है[१]।

वीर काव्येतर आख्यान

जैसा कि पूर्व कहा है वीरयुग मे वीर काव्यतर आख्यानो की भी रचना हुई है। इसमे प्रसिद्ध हैं नलोपाख्यान, सावित्री सत्यवान कथा और शकुन्तलो-पाख्यान। इन आख्यानो का लक्ष्य भिन्न-भिन्न दृष्टान्तो द्वारा जीवन में भाग्यचक्र की प्रधानता स्पष्ट करना है। अस्तु।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह विदित होता है कि विकसनशील काव्य की विषय वस्तु सम्बन्धी सामग्री विद्वानो के मत मे विभिन्न स्रोतो से प्राप्त होती है। (१) पौराणिक विश्वास (२) निजन्धरी आख्यान (३) ऐतिहय और वशानुक्रम (४) समसामयिक घटनायें (५) प्राचीन-ज्ञान-भडार (६) लोक गाथा और लोक कथा[२]।

उपर्युक्त विकसनशील महाकाव्य की विषय वस्तु सामग्री का संघटन लोक-तत्व और कथानकरूढियो द्वारा होता है। कुछ प्रमुख रूढिया इस प्रकार हैं।

१. 'Even the various motifs which occure in legends, fables and plays are wornout by repetition and lose thereby their element of surprise and charm'.

S. N. Dac Gupta & S. K. De. A. History of Sanskrit Lrterature Vol. I Page 28-29.

२ डा० शम्भूनाथसिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० २६ तथा ३७ और ३९

१. विशाल सर्प पशु पक्षी या दानव के साथ युद्ध ।
२. पक्षियो या अन्य किसी की बातचीत से किसी कठिन कार्य का रहस्य मिल जाना ।
३ जादू की वस्तुयें घोडा, खटोला, खडाऊँ, घर तथा अभिमन्त्रित शस्त्रादि ।
४. उजाड नगर जिममें भवनादिहो पर कोई जीवधारी मनुष्य न हो
५. पर काय प्रवेश
६ विर्यस्ताभ्यस्त अश्व
७ समुद्र मे जहाज का टूटना और काष्ठफलक के सहारे नायक नायिका की रक्षा ।
८ हस, कपोत, आदि से सन्देश भेजना ।
९. शरीर के किसी विशेष अग मे भ्या किसी वाह्य वस्तु मे प्राण बमना और उस पर आघात होने से प्राणान्त ।
१० किसी के स्पर्श या प्रश्नोत्तर से शापमुक्ति
११. रूप परिवर्तन और लिंग परिवर्तन ।
१२ स्वप्न अथवा चित्र मे किसी नायिका को देखकर पूर्वानुराग और प्रिय की प्राप्ति का उद्योग अथवा शुक परिचारक वन्दी जन से रूप गुण की प्रसंसा सुनकर आसक्ति ।
१३ किसी वस्तु या सकेत से अभिज्ञान ।
१४ राजा का किसी दासी से प्रेम और बाद मे उसके राजकुमारी होने का पता लगना ।
१५ मरुण्ड, गरुण्ड यक्ष गन्धर्वादि द्वारा प्रेमी प्रेमिका का एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाना ।
१६. आकाश मे उडना और आकाशवाणी ।
१७ हाथी के द्वारा छद्म राजा की पहचान
१८ मृत व्यक्ति का जीवित हो जाना ।
१९ सत्य क्रिया
२० दोहद कामना और उसकी पूर्ति के लिये प्रिय का प्रयत्न ।
२१. जल की तलास मे जाते समय यक्ष, गन्धर्व, असुर राक्षस आदि से भेंट और प्रिय व्यक्तियो का वियोग ।
२२ विजन वन मे सुन्दरियो और अप्सराओ से साक्षात्कार ।
२३ राक्षसो, कापालिकों, अथवा मतवाले हाथी से किसी सुन्दरी की रक्षा और उससे प्रेम आदि ।

— o —

चतुर्थ अध्याय

विदग्ध महाकाव्यों का स्वरूप विकास

महाकाव्य यह एक सामाजिक शब्द है। यह 'महत्' और 'काव्य' इन दो शब्दों के समास से बना है। इस सामासिक महाकाव्य शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में हुआ है।

'किम्प्रमाणमिद काव्य का प्रतिष्ठा महात्मन ।

कर्त्ता काव्यस्य महत क्वचासौ मुनिपुगव ।। ९४।२३

अर्थात् यह काव्य कितना बडा है और महात्मा की क्या प्रतिष्ठा है। महत् काव्य के रचयिता के श्रेष्ठ मुनि कहा है। प्रस्तुत श्लोक मे 'कर्त्ता काव्यस्य महत ' इसी महत् और काव्य के योग से बने हुए महाकाव्य शब्द की ओर संकेत करते है। महाभारत मे भी यत्र तत्र ऐसे अनेक विशेषण प्रयुक्त हैं जिनसे महाकाव्य की कल्पना आ जाती है। सर्व प्रथम व्यास जी ने ब्रह्मदेव से निवेदन किया कि 'मैंने श्रेष्ठ काव्य की रचना की है,[1] जिसमे वेदो शास्त्रो इतिहासो और पुराणो का रहस्य भरा है। जिसका पुरुषार्थ-चतुष्टय, धर्म अर्थ, काम, और मोक्ष मे से मोक्षरूप पुरुषार्थ एवं शान्त रस को मुख्य रूप से सूचित किया है।' इसके उत्तर मे ब्रह्मदेव ने व्यास जी से कहा कि ऐसे श्रेष्ठ काव्य को पृथ्वी पर लिखवाने के लिये गणेश जी जैसे श्रेष्ठ लेखक आवश्यक है। इस प्रकार श्रेष्ठकर्त्ता, विषय, वाह्यागवर्णन,[2] एव लक्ष्य की ओर सकेत करते हुए, इन शब्दो का प्रयोग किया गया है।

महत्वाद् भारतत्वाच्च महाभारतमुच्यते, अर्थात् महत्ता, गंभीरता अथवा भार की विशेषता से ही इस काव्य को महाभारत कहते हैं।

---

१ कृतं मयेद भगवन् काव्य परमपूजितम्, ६१
ब्रह्मन् वेदरहस्य च यच्चान्यत् स्थापितं मया ६२
इतिहास पुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत् ६३
काव्यस्य लेखनार्थाय गणेश- स्मर्यता मुने ७३

महाभारत आदिपर्व अनुक्रमणिका प्रथम अध्याय

२ 'अलंकृतं शुभै. शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषे. ।
छन्दो वृतैश्च विविधै रन्वितं विदुषा प्रियम् ।। १२८

आदिपर्व अनुक्रमणिका प्रथम अध्याय

लक्षण ग्रन्थ में—

उपलब्ध लक्षण ग्रन्थो मे प्रथम लक्षण-ग्रंथ भामह का है जिसमे भामह ने महाकाव्य की परिभाषा देते हुये काव्य के पाच भेद बतलाये है।

'सर्गबन्धो महाव्य महताच महच्च यत्'।

काव्यभेद—(१) सर्गबन्ध (२) अभिनेयार्थ आख्यायिका (४) कथा (५) अनिबद्ध। इन पाच भेदो मे भामह ने सर्गबद्ध, काव्य को ही महाकाव्य की सज्ञा दी है। महाकाव्य म 'सर्ग' की कल्पना भी आदिकाव्य रामायण से ही मिली है। इस सर्गबद्ध महाकाव्य के लक्षण को सभी आचार्यों ने आगे स्वीकार किया। भामह ने कहा है कि इस सर्गबद्ध महाकाव्य मे उदात्त या महान् चरित्रो का वर्णन होना है और वह स्वय भी बड़ा होता है। इस प्रकार भामह ने सर्गबद्ध कहकर महाकाव्य के बाह्यतत्व की ओर और महताच महच्च यत्, कहकर उसकी आन्तरिक महत्ता की ओर सकेत किया है। अस्तु।

अब हम लक्षण ग्रन्थो मे निर्दिष्ट महाकाव्य के स्वरूप को देखते हैं।

लक्षण ग्रथ परम्परा मे, आचार्य भरत के पश्चात् महाकाव्य की विवेचना करने वाले आचार्य भामह का स्थान अत्यन्त महत्व पूर्ण है। आगे के आचार्यों ने उनके निर्दिष्ट लक्षणो मे यत्र तत्र परिवर्तन कर, उन्हे स्वीकार कर, उन्हे स्वीकार कर लिया है। आचार्य भामह ने महाकाव्य का स्वरूप निर्देश करते हुए लिखा है कि महाकाव्य सर्गबद्ध होता है, उसका विषय गभीर होता है, उसका नायक महान या धीरोदात्तादि गुणान्वित होता है। उसकी भाषा मे वैदग्ध्य होता है, उसकी कथा मे निरर्थक तत्वो या बातो का परिहार किया जाता है और वह सालकार होने पर भी सदाश्रित होता है। मत्र, दूत, प्रयाण, युद्ध,और अन्त नायक के अभ्युदयान्वित तत्वो से युक्त होने पर भी उसमे समृद्धि अर्थात् ऋतु, चन्द्रोदय, उद्यान पर्वत आदि का रम्य वर्णन भी होता है। उपर्युक्त वर्णनो से युक्त होने पर भी महाकाव्य व्याख्यागम्य या दुर्बोध नही होता। उसमे चतुर्वर्णों का प्रतिपादन होना है। उसका उपदेश सदा अर्थोपदेश होता है। उसमे नाटक की पाचो सन्धिया और कार्यावस्थाये होती है। ऐसे काव्य मे लोक स्वभाव और सभी रस स्फुटित होते है। नायक का उत्कर्ष बताकर अन्य किसी पात्र के उत्कर्ष निमित्त, उसका वध वर्णित नहीं होता। उपर्युक्त रीति से महाकाव्य मे नायक व्यापक रीति से वर्णित नही तो प्रारम्भ मे की हुई उसकी प्रशसा या स्तुति व्यर्थ होती है।[1]

१ सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्च यत्।
अग्राम्यशब्दमर्थं च सालकार सदाश्रयम्॥
मन्त्रदूतप्रयाणाजि नायकाभ्युदयच यत्।

उपर्युक्त आचार्य भामह प्रतिपादित महाकाव्य की परिभाषा को देखने से यह विदित होता है कि भामह देहवादी आचार्य होते हुए भी, उन्होंने महाकाव्य के बाह्य शरीर सम्बन्धित लक्षणों को न आवश्यक बताया और न सूची रूप में बाह्य लक्षणों को उपस्थित ही किया। अर्थात् न सर्गों की संख्या, वर्ण्य विषयों की सूची, नायक या पात्रों के गुणों की सूची, छंद, और काव्यारम्भ की आवश्यक बातें—आशीर्वाद, नमस्क्रिया और वस्तुनिर्देश की—ही उपस्थिति की। उनके मत में महाकाव्य में आवश्यक तत्त्व ये हैं—
(१) सर्गबद्धता, (२) महान् और गभीर विषय (३) उदात्तनायक (४) चतुर्वर्गका प्रतिपादन, (५) नायक का अभ्युदय (६) सदाश्रितत्व (७) पंच संधि—नाटकीयगुण (८) लोक स्वभाव और विविध रसों की प्रतीति (९) समृद्धि—चन्द्रोदय, ऋतुवर्णन आदि।

सम्भवत आचार्य भामह ने अपनी उपर्युक्त महाकाव्य की परिभाषा रामायण जैसे प्रसिद्ध विकसनशील महाप्रबन्धकाव्य को दृष्टिपथ मे रखकर ही की है। उनके समय तक कालिदासोत्तरकालीन अलकृत या विदग्ध महाकाव्य का रूप रूढिबद्ध नही हुआ था। इसके अतिरिक्त अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य भी प्रकट होता है। भामह, भरत रस सप्रदाय के विरोधी न होकर उसके समर्थकों में से हैं[१]।

पंचभि संधिभिर्युक्त नातिव्याख्येयमृद्धिमत्॥ भामह काव्यालंकार
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत्
युक्त लोकस्वभावेन रसैश्च सकलै· पृथक्
नायक प्रागुपन्यस्य वशवीर्य-श्रुतादिभि
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया
यदि काव्य-शरीरस्य न स व्यापितयेष्यते
न चाभ्युदय-भाक्तस्य मुधादौ ग्रहणस्तवौ

भामह काव्यालकार १–२३

१ भामह ने अपनी महाकाव्य की परिभाषा मे महत्वपूर्ण शब्दो का प्रयोग किया है जो उन्हे रस विरोधियो से पृथक् सिद्ध करते हैं। पचभि सधिभि युक्तम्, युक्त लोक स्वभावेन रसैश्च सकलै. पृथक्, १।२१ संक्षेप मे भामह ने वस्तु, नेता, रस, तीनो का निर्देश स्पष्ट रूप से किया है। ध्यान मे रखने की बात यह है कि भामह ने 'रसो, का उल्लेख महाकाव्य

दंडी—

आचार्य भामह के पश्चात् दडी ने पूर्वशास्त्रो की सहायता से तथा प्रयोगो को देखकर अपने काव्यादर्श मे महाकाव्य के समन्वयात्मक एवं विश्लेषणात्मक लक्षण देकर महाकाव्य की निर्माण शैली मे एक नया मोड़ उपस्थित किया[1]। आचार्य दडी ने सर्वप्रथम भामह प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणो को अपने समन्वयात्मक लक्षणो मे समेट लिया। परिणामस्वरूप महाकाव्य के बाह्याङ्ग का महत्व बढ़ा। दडी के मत मे, महाकाव्य सर्गबन्ध रचना होती है। उसके प्रारम्भ में आशीर्वचन, स्तुति या नमस्कार एव कथा वस्तु का निर्देश होता है। उसकी कथावस्तु ऐतिहासिक या सज्जन व्यक्ति के सत्य जीवन पर आश्रित होती है[2]। उदात्तादिगुणान्वित चतुर नायक की चतुर्वर्ग धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन इसमें होता है। उसमे नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, उद्यान, सलिल, रहते है। उसमे क्रीडा, मधुपान, रतोत्सवादि वर्णन, विप्रलम्भ शृगार, विवाह और कुमारजन्म का समावेश होता है। मन्त्र, दूत, प्रयाण और नायकाभ्युदयवर्णनो से वह युक्त होता है। महाकाव्य अलकृत, विस्तृत, और रस भावादि से सपन्न होता है। उसके सर्ग अतिविस्तर्ण न हो उसकी कथा श्रव्य वृत्त एव सध्यादि अंगो से गठित होनी चाहिये, सर्गान्त मे छन्द परिवर्तन होना चाहिये। उपर्युक्त गुणो से युक्त महाकाव्य लोकरजक और कल्पान्त स्थायी होता है[3]। दडी ने भामह के नायक विषयक प्रतिपादित

सर्गबन्ध के लक्षणो मे ही किया है, नाटक के वर्णन मे नही। डा० शकरन् भामह की उपर्युक्त पक्ति का सबन्ध नाटक से लगाकर उन्हे रस विरोधी सिद्ध करते है।" But he betrays his Knowledge of all the rasas when he says युक्त लोकस्वभावेन etc. meaning thereby that in the drama all the Rasas should be delineated (Page 24 Some aspects of Literary criticism in Sanskrt) भामह का सर्गबन्ध वर्णन प्रथम परिच्छेद के १९—२३ श्लोक मे है, नाट्य का निर्देश १।२४ से प्रारम्भ होता है।

१ पूर्वशास्त्राणि सहृत्य प्रयोगानुपलक्ष्य च १।२ काव्यादर्श

२ सदाश्रयमित्यनेन कल्पितवृत्तान्तस्य महाकाव्ये वर्णन प्रतिषिद्धम्। काव्यादर्श तर्कवागीश भट्टाचार्य श्री प्रेमचन्द्र की टीका पृ० २७

३ सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥ १४

१।२२,२३ के स्थान पर चमत्कृति उत्पन्न करने वाले तथ्यों को बताया है। नायक के गुणों का प्रथम प्रतिपादन कर, प्रतिनायक के कार्यों का निराकरण करना सरल होता है[१]।

भामह के महाकाव्य लक्षण मे लिखित "महताच महच्चयत्,' 'अग्राम्य शब्दमर्थञ्च सालंकार सदाश्रयम्' शब्दो के स्थान पर बाह्यांग वर्णनों को व्यक्त करने वाले शब्दो को रखा गया। दंडी ने प्रारम्भ मे मंगलाचरण—आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक, और वस्तुनिर्देशात्मक—का उल्लेख किया, उसके मध्य में उद्यान-सलिल-क्रीडा-मधुपानादि, "श्रव्यवृत्तै" और अन्त मे सर्वत्र "भिन्नवृत्तान्तैरुपेत" आवश्यक बताकर, अलंकृत काव्य की ओर स्पष्ट संकेत किया। भामह के "नातिव्याख्येयमृद्धिमत्" लक्ष्य (शब्दो) को भुला दिया गया। आगे के आचार्यों, अग्निपुराण, हेमचन्द्र, विश्वनाथ ने दंडी के ही लक्षण मे कुछ घटाबढ़ाकर महाकाव्य के लक्षणो का निर्माण किया। प्रायः दंडी के कहे लक्षणो ने उत्तरकालीन महाकाव्यो को प्रभावित किया प्रतीत होता है। दरबारी कवि अर्थ और काम को ही लक्ष्य कर महाकाव्य निर्माण पथ पर अग्रसर हुए। रामायण, महाभारतादि जैसे आर्ष काव्यो और कालिदास के रघुवंश, कुमारसंभवादि काव्यो की सरसता, सरलता और महत्तादिगुणों को

इतिहासकथोद्भूतमितराद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलोपेत चतुरोदात्त नायकम्। १५
नगरार्णव-शैलर्तु-चन्द्रार्कोदयवर्णनै।
उद्यान-सलिल-क्रीडा मधुपान-रतोत्सवै। १६
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदय-वर्णनै।
मन्त्र-दूत-प्रयाणाजि-नायकाभ्युदयैरपि ॥ १७
अलंकृतमसंक्षिप्त-रसभाव-निरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णै श्रव्यवृत्तै सुसन्धिभि ॥ १८
सर्वत्र भिन्न-वृतान्तैरूपेत लोकरञ्जकम्।
काव्य कल्पान्तरस्थायि जायेत सदलंकृति ॥ १९

का द. १।१४।१९

१. महाकाव्य मे प्रतिनायक के भी उच्चवंश, शौर्य, विद्या आदि की प्रशंसा करनी चाहिये क्योंकि इससे उनके ऊपर विजय प्राप्त करने वाले नायक का उत्कर्ष बढ़ता है। काव्यादर्श १।२१,२२।

भुला दिया गया : केवल लक्षण ग्रन्थो मे निर्दिष्ट महाकाव्यादि लक्षणो–साचा के अनुसार महाकाव्यो का निर्माण होने लगा और प्राय स्वतन्त्र विचारजन्य महाकाव्यो की रचना बन्द सी हो गई[१]। दडी ने काव्यादर्श मे महाकाव्य के सर्गों की सख्या के विषय मे कोई विचार व्यक्त नही किया। किन्तु ईशान सहिता मे कहा गया है कि महाकाव्य आठ सर्ग से कम न हो और तीस सर्गों से अधिक न हो और उनमे किसी महापुरुष की कीर्त्ति का वर्णन होना चाहिये[२]।

महाकाव्य सबधी (उसके स्वरूप) विवेचन अग्निपुराण मे भी मिलता है। यह विवेचन युग विशेष की धारणा को अभिव्यक्त करता है। दडी ने अपने काव्यादर्श मे महाकाव्य के बाह्यशरीर सम्बन्धी जिन विचारो को बीज रूप मे रख दिया था वे ही कालान्तर मे अग्निपुराणकार, रुद्रट, हेमचन्द्र आदि आचार्यों के काव्यलक्षणो मे प्रस्फुटित हुए है। अग्निपुराणकार के मत मे महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है। इसमे विभिन्न वृत्तो की योजना होती है। उसमे इतिहास प्रसिद्ध अथवा किसी सज्जन व्यक्ति के जीवन पर आश्रित कथानक वर्णित होता है। इसमे विभिन्न छन्दो–शक्वरी, अतिशक्वरी, जगती, अतिजगती, त्रिष्टुप, पुष्पिताग्रादि का प्रयोग होता है। उसमे, नगर, वन पर्वत, चन्द्र, सूर्य, आश्रम, उपवन, जलक्रीडा आदि उत्सवो का, समस्त रीतियो, वृत्तियो और

---

१ 'It is generally believed that the poems which are composed in accordance with the rules laid down in the Alankar Shastra are slightly inferior to the early poems on which the rules of definitions were based There is of course, some truth in the assertion as the later poets were somewhat handicapped by the rules in making use of their free thinking which is essential in all forms of creative poetry '

Ramacharita of Abhinanda—Edited by Ramaswami Shastri, Sheromani, Preface Page 23.

२. तदुक्तमीशान-सहितायाम्–

"अष्टसर्गान्न तु न्यून त्रिंशत्सर्गाच्च नाधिकम्
महाकाव्य प्रयोक्तव्य महापुरुषकीर्तियुक्। इति।

काव्यादर्श प्रथम परिच्छेद।

रसो का समावेश होता है। उक्ति वैचित्र्य की प्रधानता होने पर भी जीवित प्राणरूप मे रस की नियोजना होती है। विश्वविख्यात नायक के नाम से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति दिखाई जाती है[1]। उपर्युक्त अग्निपुराणकारकृत लक्षणो मे 'वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्' इस पंक्ति से, तथा विभिन्न छन्दो के नामनिर्देशों से और बाह्यागसम्बन्धी वर्णनो से स्पष्ट हो जाता है कि महाकाव्य के निर्माण का लक्ष्य अलंकृति एवं चमत्कार प्रधान की ओर हो गया था। इन लक्षणो से (महाकाव्य का प्रारम्भ संस्कृत मे ही हो) महाकाव्य की व्यापक विशेषता व्यक्त न होकर युग विशेष की विशेषता अधिक अभिव्यक्त होती है।

रुद्रट—

आनन्दवर्धन के विवेचन की पार्श्वभूमि तैयार करने वाले आठवी शती के महान आचार्य रुद्रट हैं जिन्होने अपने ग्रंथ 'काव्यालंकार,' मे परम्परागत विचारो मे कुछ स्वतन्त्र विचारो को अभिव्यक्त कर शास्त्रकारो मे अपना स्थान महत्वपूर्ण बना लिया है[2]।

रुद्रट के समय तक प्राकृत अपभ्रंश की कुछ रचनाये प्रकाश मे आ चुकी थी। इन रचनाओ पर जैन - बौद्ध पुराणो, लोकगाथाओ, लोककथाओ तथा रामायण, महाभारत का पर्याप्त प्रभाव पडा था। इसीलिये आचार्य रुद्रट ने अपने काव्यविवेचन मे महाकाव्य की परिभाषा को इतना विस्तृत एव समन्वयात्मक रूप दिया जिसमे संस्कृत के रामायण, महाभारतादि काव्य ग्रन्थो

१. अग्निपुराण, अध्याय ३३७।२४ से ३४।

२. रुद्रट का दोषविवेचन अनेक दृष्टियो से महत्वपूर्ण है, विशेषत दो दोष ग्राम्यत्व और 'विरस, ग्राम्यत्व उसके मत मे माधुर्य का विरोधी है। अनौचित्य से ही ग्राम्यत्व का उद्‌भव होता है यही कल्पना आगे चलकर ध्वन्यालोक मे "अनौचित्यादृते नान्यद्रसभंगस्य कारणम्" इस कारिका मे दिखाई देती है। रुद्रट का 'विरस, दोष ध्वन्यालोक की ३।१८,१९ कारिका मे ही अधिक स्पष्ट हुआ है।

कुल शैलाम्बुनिधीना न भ्रूयाल्लंघन मनुष्येण। आत्मीयैव शक्त्या सप्तद्वीपानिचक्रमणम्॥ ३७ येऽपि तु लघितवन्तो भरतप्राया कुलाचलाम्बुनिधीन् तेषां सुरादिमुख्यै सगादासन्विमानानि॥३८॥ रुद्रट काव्यालकार १६ अध्याय। इसी का आगे ध्वन्यालोक के तृतीय उद्योत में विस्तृत विवेचन मिलता है। कारिका ११–१४ तक।

के अतिरिक्त प्राकृत, अपभ्रंश के काव्य भी सम्मिलित हैं। परिणामत आचार्य दंडीकृत महाकाव्य की परिभाषा से आप की परिभाषा कुछ सीमा तक मिलती जुलती होने पर कुछ भिन्न सी भी है। आप के मत मे महाकाव्य मे उत्पाद्य अथवा अनुत्पाद्य, कोई पद्यबद्ध कथा रहती है। उसमे प्रसगानुसार अवान्तर कथाये भी होती हैं जिनका उद्देश्य मूल कथा को गति देना होता है। महाकाव्य मे सर्गबद्ध एव नाटकीय तत्वो से युक्त कथा होती है। उसमे सम्पूर्ण जीवन का चित्र अंकित होता है और इस चित्र मे कोई साहसिक कार्य अथवा किसी प्रधान घटना का चित्रण किया जाता है। कवि इस प्रधान घटना से सम्बन्धित अलंकृतवर्णनो, प्रकृति-चित्रणो तथा विभिन्न लौकिक और अलौकिक वर्णनो से इस काव्य का निर्माण करता है। लौकिक वर्णनो मे प्रकृति-वर्णन वाटिका-वर्णन, नगर-वर्णन आदि, अलौकिक वर्णनो मे देवता और स्वर्गादि के चित्र अंकित होते है। महाकाव्य का नायक द्विजकुलोत्पन्न, सर्वगुणसम्पन्न, और विजिगीषु—समस्त विश्व को जीतने की इच्छा रखनेवाला कोई महान वीर होना है। वह शक्तिसपन्न, नीतिज्ञ, व्यवहारकुशल राजा होता है। महाकाव्य मे प्रतिनायक और उसके वश कुल का भी वर्णन होता है। इसमे नायक की विजय और प्रतिनायक की पराजय दिखाई जाती है।

उद्देश्य रूप मे चतुर्वर्गफल अर्थ, धर्म, काम, और मोक्ष की प्राप्ति दिखाई जाती है और महाकाव्य मे सभी रसो की नियोजना होती है। आचार्य रुद्रट की रसात्मकता ही प्रधान विशेषता है। उत्पाद्य महाकाव्य मे नायक के वश की प्रशसा के साथ-साथ उसकी नगरी के भी सुन्दर वर्णन होते हैं। महाकाव्य मे अलौकिक अतिप्राकृतिक तत्व भी होते है। किन्तु उसमे मानवकृत अस्वाभाविक घटनाओ का वर्णन नही होता।[१]

---

१ सन्ति द्विधा प्रबन्धा काव्यकथाख्यायिकादय काव्ये।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोपि ॥ २ ॥
तत्रोत्पाद्या येषा शरीरमुत्पादयेत्कवि सकलम्।
कल्पितयुक्तोत्पत्ति नायकमपि कुत्रचित्कुर्यात् ॥ ३ ॥
पञ्चरमितिहासादिप्रसिद्धमखिल तदेकदेशं वा।
परिपूरयेत्स्ववाचा यत्र कविस्ते त्वनुत्पाद्या ॥ ४ ॥
तत्र महान्तो येषु च विततेष्वभिधीयते चतुर्वर्ग।
सर्वे रसा क्रियन्ते काव्यस्थानानि सर्वाणि ॥ ५ ॥
ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात्।
असमग्रानेकरसा ये च समग्रैकरसयुक्ता ॥ ६ ॥

रुद्रट ने महाकाव्य के व्यापक और आवश्यक तत्वों का ही उल्लेख किया है। महाकाव्य के लक्षणो मे व्यापकता लाने के लिये उन्हे पूर्वाचार्यों द्वारा भामह, दण्डी, अग्निपुराण मे उल्लिखित तत्वों को अपनी परिभाषा मे समेटने के साथ अनावश्यक तत्वो का त्याग भी करना पड़ा है। रुद्रट ने महाकाव्य को अलकृत काव्य का रूप देने का प्रयत्न नही किया है। महाकाव्य

तत्रोत्पाद्ये पूर्वं सन्नगरी-वर्णनं महाकाव्ये।
कुर्वीत तदनु तस्या नायकवंश-प्रशंसा च ॥ ७ ॥
तत्र त्रिवर्गसक्त समिद्धशक्तित्रयं च सर्वगुणम्।
रक्त-समस्त-प्रकृतिं विजिगीषु नायकं न्यस्येत् ॥ ८ ॥
विधिवत्परिपालयत सकल राज्य च राजवृत्तं च।
तस्य कदाचिदुपेत शरदादि वर्णयेत्समयम् ॥ ९ ॥
स्वार्थं मित्रार्थं वा धर्मादि साधयिष्यतस्तस्य।
कृत्यादिष्वन्यतम प्रतिपक्ष वर्णयेद्गुणिनम् ॥ १० ॥
स्वचरात्तद्दूताद्वा कुलोपि वा वर्णयतोरिकार्याणि।
कुर्वीत सदसि राज्ञा क्षोभ क्रोधेद्धवित्तगिराम् ॥ ११ ॥
समन्त्र्य सम सचिवैर्निश्चित्य च दडसाध्यता शत्रो।
न दापयेत्प्रयाणं दूत वा प्रेषयेन्मुखरम् ॥ १२ ॥
अत्र नायक-प्रयाणे नागरिकाक्षोभजनपदाद्रिनदीन।
अटवीकानन-सरसीमरुजलधिदीपभुवनानि ॥ १३ ॥
स्कन्धावारनिवेश क्रीडा यूना यथायथ तेषु।
रव्यस्तमय सन्ध्या संतमसमथोदय शशिन ॥ १४ ॥
रजनी च तत्र यूना समाजसंगीतपान-शृङ्गारान्।
इति वर्णयेत्प्रसगात्कथा च भूयो निबध्नीयात् ॥ १५ ॥
प्रतिनायकमपि तद्वत्तदभिमुखममृष्यमाणमायान्तम्।
अभिदध्यात्कार्यवशान्नगरीरोधस्थित वापि ॥ १६ ॥
योद्धव्यं प्रातरिति प्रबन्धमधुपीतिनिशि कलत्रेभ्य.।
स्ववधं विशकमानान्सदेशान्दापयेत्सुभटान् ॥ १७ ॥
सन्नह्य कृतव्यूहं सविस्मय युध्यमानयोरुभयो।
कृच्छ्रेण साधु कुर्यादभ्युदय नायकस्यान्तम् ॥ १८ ॥
सर्गाभिधानि चास्मिन्नवात् प्रकरणानि कुर्वीत।
सन्धीनपि संश्लिष्टंस्तेषामन्योन्य-सबधात् ॥ १९ ॥

रुद्रट-काव्यालंकारे, षोडशोध्याय:

के बाह्यांग सम्बन्धी तत्वों–मगलाचरण, सर्गों की सख्या का निर्देश, प्रत्येक सर्ग मे एक ही छन्द या अनेक छन्दो की योजना, या विशिष्ट छन्दो का उल्लेख— को अपने लक्षणों मे स्थान नही दिया है। महदुद्देश्य, महच्चरित्र, महती घटना और समग्रजीवन का रसात्मक चित्रण इन आवश्यक चार तत्वों का ही उल्लेख कर, रुद्रट ने अन्य आचार्यों से स्वय को अलग कर लिया है। वैसे तो सूत्र रूप मे भामह, दण्डी ने भी प्राय इन तत्वो का उल्लेख किया है।[1] किन्तु अलकारग्रन्थ मे सविस्तार रसविवेचन करने वाले एव उक्त चारो तत्वो का उल्लेख करने वाले रुद्रट ही सर्वप्रथम आचार्य है। आपने शान्त और प्रेयान् को रस मानकर, रस की सख्या दस प्रतिपादित की है किन्तु आपने रस सख्या को दस मे ही सीमित करना उचित नही समझा, आपके मत मे आस्वाद्यता तक आने वाली कोई भी वृत्ति रस रूप मे परिणत हो सकती है।[2] आपने महाकाव्य मे नायक और प्रतिनायक एवं नायक की विजय को भी भामह, दण्डी की तरह ही महत्व दिया है।[3]

दण्डी ने नायक की विजय के एव उसके उत्कर्ष के उपाय बताये हैं। रुद्रट ने महाकाव्य मे अवान्तर कथाओं एवं युगजीवन के लोकरजनकारी वृत्तान्तो का होना दण्डी की अपेक्षा अधिक स्पष्टतया विस्तृत रूप मे कहा है।[4] आचार्य

---

१ 'महतांच महच्चयत्' 'युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्,
भामह काव्यालकार १–२३

२ 'रसनाद्रसत्वमेषा मधुरादीनामिवोक्तमाचार्यैः ।
निर्वेदादिष्वपि तन्निकाममस्तीति तेऽपि रसा॥ १२।४
रुद्रट काव्यालकार
तस्मात् तत्कर्तव्य यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम्। १२।१।२। वही।

३. "नायकाभ्युदय च यत्,
नायक प्रागुपन्यस्य वशवीर्यश्रुतादिभि ।
न तस्यैव वध ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया ।
भामह काव्यालकार १।२३

चतुरोदात्तनायकम्, १५। 'नायकाभ्युदयैरपि, १७
गुणत. प्रागुपन्यस्य नायकं तेन विद्विषाम् ।
निराकरणमित्येष मार्ग प्रकृतिसुन्दर ॥ २१ ॥
वशवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा रिपोरपि ।
तज्जयान्नायकोत्कर्षवर्णन च धिनोति न ॥ २२ ॥ दण्डी काव्यादर्श
१ परिच्छेद

४ 'सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरंजनम्। दण्डी काव्यादर्श १ परिच्छेद

रुद्रट ने[1] अरस्तू की तरह महाकाव्य मे अलौकिक और अतिप्राकृत तत्वों पर नियन्त्रण रखने के लिये कहा है। क्योंकि मानुष राजा आदि के वर्णन मे पहाड, समुद्र और समस्त पृथ्वी का अपनी शक्ति से लघन और चंक्रमण आदि के उत्साह के वर्णन सुन्दर होने पर भी नीरस होते है। इसलिये मानव शक्ति का ध्यान न रखकर, असभव घटनाओ का वर्णन नही करना चाहिये। आगे चलकर जैसा कि पूर्व मे कहा है, ध्वन्यालोक मे, इसी (अनौचित्य) को रस भग का कारण कहा है।[2] इस प्रकार निष्कर्षत आचार्य रुद्रट की महाकाव्य की परिभाषा समन्वयात्मक एव विश्लेषणात्मक होने पर भी, स्वतन्त्र विचारों को अभिव्यक्त करने, एवं महाकाव्यो को अनलकृत रूप देने वाली होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनके पश्चात् विद्यानाथ ने अपने ग्रन्थ 'प्रतापरुद्र यशोभूषण' मे तथा आचार्य हेमचन्द्र ने अपने ग्रन्थ, 'काव्यानुशासन' मे महाकाव्य का अत्यन्त सक्षिप्त वर्णन लक्षण रूप मे प्रस्तुत किया है। किन्तु दोनो आचार्यों के लक्षणो मे कोई विकास या नवीनता नही मिलती। 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' मे दण्डी के लक्षणो की ही छाया है।[3] काव्यानुशासन मे कवि की मौलिकता से अधिक सग्रह योग्यता का ही परिचय मिलता है।

'काव्यानुशासन', सूत्रबद्ध ग्रथ है। इस पर आचार्य हेमचन्द्र ने स्वयं 'अलंकार चूड़ामणि' नाम की वृत्ति और विवेक नामक टीका लिखी है। उनके मत मे सस्कृत भाषा के अतिरिक्त, प्राकृत, अपभ्रश तथा ग्राम्य भाषाओ मे भी महाकाव्य की रचना हो सकती है। सस्कृत भाषा मे सर्गबन्ध, प्राकृत मे आश्वासक बन्ध, अपभ्रश मे सन्धिबध, और ग्राम्यापभ्रश मे अवस्कन्धकबन्ध महाकाव्य होते है[4]। पर कभी-कभी सस्कृत मे सर्ग के स्थान पर आश्वासक-बन्ध, नाम से विभाजन दृष्टिगत होता है। वह नाटकादि सधियो—मुख, प्रतिमुख गर्भ, विमर्श, निर्वहण—तथा शब्दार्थ वैचित्र्य, से युक्त होता है। आचार्य

१. रुद्रट काव्यालंकार ३७,३८ १६ अध्याय

२ तथाच केवलमानुषस्य राजादेर्वर्णने सप्तार्णवलघनादिलक्षणा व्यापारा उपनिबध्यमाना सौष्ठवभृतोऽपि नीरसा एव नियमेन भवन्ति। तत्र त्वनौचित्यमेव हेतु ॥ 'तृतीय उद्योत १४ कारिका ध्वन्यालोक।

३. 'विद्यानाथ का प्रतापरुद्रयशोभूषण, 'काव्यप्रकरण, पृ० ९६।

४ तत्र सस्कृतभाषानिबद्धसर्गबन्ध—हयग्रीववधादि,
प्राकृतभाषानिबद्धाश्वासकबन्धं—सेतुबन्धादि, अपभ्रशभाषानिबद्ध-सधिबन्ध—अब्धिमथनादि, ग्राम्यापभ्रश-भाषानिबद्धावस्कन्धकबन्धं, भीमकाव्यादि ॥

हेमचन्द्र ने महाकाव्य के लक्षणो को शब्दवैचित्र्य अर्थवैचित्र्य और उभयवैचित्र्य मे विभाजित किया है। शब्दवैचित्र्य मे, असक्षिप्तग्रन्थत्व, (अधिकसंक्षिप्त काव्य के होने से कथारस विच्छेद की शंका निराकरण होजाता है') अविषम बन्धत्वादि, आशीर्नमस्कार वस्तुनिर्देशादि उपक्रम, कविप्रशंसा, दुर्जन, सुजनादि का स्वरूपनिर्देश, दुष्कर चित्रादि सर्गत्व, किराता-र्जुनीय महाकाव्यान्तर्गत प्रयुक्त यमक श्लेषादि अलकारादि का ग्रहण, आदि बातो का, अर्थवैचित्र्य मे,–(चतुर्वर्गो के फलो के उपाय,) चतुर्वर्गफलोपायत्व, चतुरोदात्तनायकत्व, रस भावो की योजना, सुसूत्रसविधान, नगर, आश्रम, शैल, सेना, आवास, अर्णवादि का मन्त्र, दूत, प्रयास. संग्राम अभ्युदयादि का 'चित्रण' तथा वनविहार, जलक्रीडा, मधुपान, मानापगम, रतोत्सवादि 'का, वर्णन, और उभय वैचित्र्य मे–रसानुरूप सन्दर्भ, अर्थानुरूप छन्द, (शृंगाररस मे द्रुतविलम्बित, वीररस मे, वसन्ततिलक, करुणरस मे वैतालीय, रौद्ररस मे स्रग्धरा, आदि छन्द) समस्त लोकरंजकता, (अलौकिकता का परिहार) और देश, काल, पात्रो की क्रियाये तथा गौण या अवान्तर कथाओ की योजना का निर्देश किया है।

दडी आदि आचार्यों द्वारा छन्दो के विषय मे स्वीकृत तथ्य–कि प्रत्येक सर्ग मे एक छन्द हो, सर्गान्त मे छन्द परिवर्तन किया जाय, और सभी सर्गों मे भिन्न-भिन्न छन्द हो[1], को स्वीकार करते हुए भी अपवाद रूप मे 'रावणविजय' 'हर विजय, 'सेतुबन्ध' आदि काव्यो की चर्चा की है। और कहा है कि इनमे समाप्ति पर्यन्त एक ही छन्द है। इस तरह आचार्य हेमचन्द्र ने इस सूत्रबद्ध महाकाव्य के लक्षण मे, छन्द, सर्गादिबन्धता, सधिसगठन, अलंकार, उक्तिवैचित्र्य वर्णन और रसभावादि तत्वो को महाकाव्य मे आवश्यक कहा है।

इस उपर्युक्त महाकाव्य के लक्षण में महाकाव्य की विचार परम्परा में कोई नवीन विकास नही है। हा, कथा सगठन मे, देश, काल, पात्र, चेष्टा, कथान्तरानुषंजनम् ,कहकर आचार्य रुद्रट द्वारा स्वीकृत तत्व की ओर सकेत करते हुए जीवन तथा युग के व्यापक चित्र का अकन करने का निर्देश अवश्य किया है।[2]

---

१ दडी–सर्गै. अनतिविस्तीर्णै श्राव्यवृत्तै सुसन्धिभि १८
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेत लोकरजनम् . १९...काव्यादर्श

२ पद्यं प्राय सस्कृतप्राकृतापभ्रशग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नान्त्य-वृत्तसर्गा-श्वाससध्यवस्कन्धकबन्ध सत्संधि शब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम् छन्दोविशेषरचितं प्राय सस्कृतादिभाषानिबद्धैर्भिन्नान्त्य-वृत्तैर्यथासख्यं

ध्वनिकार आनन्दवर्धनाचार्य– तथा वक्रोक्तिजीवितकार कुन्तक ॥

आप दोनो का स्थान भामह आदि साहित्याचार्यों मे महत्वपूर्ण है। आनन्दवर्धन ने काव्य के प्रभेदो का सूक्ष्म कथन मात्र किया है। ध्वनि सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए भी आप ने रस सिद्धान्त की उपेक्षा नही की है[१] आप ने यद्यपि महाकाव्य के शरीर निर्माण तत्वों की–मगलाचरण, सर्गसख्या छन्द निर्देश आदि जैसा कि भामह, दडी आदि आचार्यों ने काव्य के प्रभेदों मे से महाकाव्य के लक्षणो का विवेचन किया है–ध्वन्यालोक में चर्चा नही

सर्गादिभिर्निर्मित मुश्लिष्टमुखप्रतिमुखगर्भविमर्शनिर्वहणसधिसुन्दर शब्दार्थवैचित्र्योपेत महाकाव्यम्।

शब्दवैचित्र्य यथा–असक्षिप्तग्रथत्व, अविषमबन्धत्वं अनतिविस्तीर्णपरस्परसबद्धसर्गादित्व, आशीर्नमस्कारवस्तुनिर्देशोपक्रमत्वं, वक्तव्यार्थ-प्रतिज्ञान-तत्प्रयोजनोपन्यास-कविप्रशसा-दुर्जन-सुजनस्वरूपवदादि-वाक्यत्व, दुष्करचित्रादिसर्गत्व, स्वाभिप्राय-स्वनामेष्टनाममंगलाकित-समाप्तित्वमिति।

अर्थवैचित्र्यं यथा–चतुर्वर्गफलोपायत्व, चतुरोदात्तनायकत्वं, रसभावनिरन्तरत्व, विधिनिपेध-व्युत्पादकत्वं सुसूत्र सधि-विधानकत्वं,नगराश्रम-शैल-सैन्यावासार्णवादि-वर्णनं, ऋतुरात्रि दिवार्कास्तमय-चन्द्रोदयादि-वर्णन, नायक-नायिका-कुमार-वाहनादिवर्णन, मन्त्र-दूत-प्रयाण-संग्रामा-भ्युदयादिवर्णनं, वनविहार-जलक्रीड़ा-मधुपान-मानापगमरतोत्सवादि-वर्णनमिति।

उयवैचित्र्यं यथा–रसानुरूप-सन्दर्भत्वम्, अर्थानुरूपछन्दस्त्वम्, समस्तलोकरजकत्वम्, सदलकारवाक्यत्वम्, देशकालपात्र-चेष्टाकथान्तरानुषजनम्, मार्गद्वयानुवर्तन च, इति। प्रायोग्रहणात्संस्कृत-भाषयाप्याश्वासकबन्धो हरिप्रबन्धादौ न दुष्यति। प्रायोग्रहणादेव रावणविजयहरिविजय-सेतुबन्धेष्वादित समाप्तिपर्यन्तमेकमेव छन्दो भवतीति। गलितकानि तु तत्र कैरपि विदग्धमानिभि क्षिप्तानीति तद्विदो भाषन्ते।

हेमचन्द्र काव्यानुशासन आठवाँ अध्याय.।

१. ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत कारिका ७

"अनौचित्यादृते नान्यद् रसभंगस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत् परा ॥

ध्वन्यालोक ३ उद्योत कारिका १४.

की है। तथापि रस के सम्बन्ध से प्रबन्ध कल्पना विषयक अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों का प्रतिपादन किया है। आनन्दवर्धन ने महाकाव्य और महाकवि में अपेक्षित तत्वो की चर्चा करते हुए कहा है–

"सोऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन।
यत्नत प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवे। उद्योत १।८

इस प्रकार आनन्दवर्धन ने महाकाव्य के रूढिगत लक्षणो का विचार न कर, महाकाव्य को अलकृत या साचा, निर्माण शैली से मुक्त करने का प्रयत्न किया है। आपने तो प्रबन्धान्तर्गत रसाभिव्यक्ति के लिये निम्नलिखित पाच तथ्यों का ध्यान रखना आवश्यक कहा है। यहा हम इन ५ तथ्यो का विचार न कर आगे महाकाव्य के आवश्यक तत्वो की चर्चा प्रसंग मे करेंगे।

१—सुन्दर मूलकथा का निर्माण या निर्धारण
२—उस कथा का रसानुकूल सस्करण
३—कथा मे अपेक्षित सधि तथा सन्ध्यग की रचना
४—यथावसर रसो के उद्दीपन तथा प्रशमन, और प्रधान रस का अनुसधान
५—शक्ति होने पर भी रसानुरूप अलंकारों की योजना[1]

कुन्तक —आप ने भी आनन्दवर्धन की तरह महाकाव्य के बाह्य लक्षणो पर कोई विचार प्रस्तुत नही किया है। आचार्य कुन्तक ने 'वक्रोक्ति' का अत्यन्त विस्तृत रूप से विचार किया है।

ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने जिस प्रकार ध्वनि की सार्वभौम सत्ता स्थापित की, उसी प्रकार कुन्तक ने वक्रोक्ति की सार्वभौम स्थापना वर्णविन्यास से लेकर प्रबन्धकल्पना तक, और उपसर्ग से लेकर महाकाव्य तक की है। कुन्तक ने वक्रोक्ति के प्रधान रूप से ६ भेद किये हैं। इन भेदो मे प्रकरण-वक्रता और प्रबन्ध[2] वक्रता की चर्चा महाकाव्य के अन्तरग पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। अन्य आचार्यो की तरह महाकाव्य के लक्षणो का उल्लेख नही किया है और प्रबन्ध को काव्य का श्रेष्ठतम रूप माना है[3] क्योकि यही महाकाव्यो के यश का मूलाधार है। उपर्युक्त वक्रोक्ति के दो भेदो की चर्चा समष्टि रूप से महाकाव्य के आवश्यक तत्वो मे करेंगे।

---

१ ध्वन्यालोक ३ उद्योत कारिका १० से १४

२. 'प्रबन्धविधानप्रकरण नियोजना पर ही पूर्णरूप से निर्भर रहता है प्रबन्धस्यैकदेशाना, प्रबन्ध के अग रूप प्रकरणो की समष्टि का नाम ही प्रबन्ध होता है और इस प्रबन्धविधान के अन्तर्गत कथा विधान की विभिन्न प्रणालियो का समावेश हो जाता है। व जी. ४।५

३. प्रबन्धेषु कवीन्द्राणा कीर्तिकन्देषु किं पुन ४।२६।४३

आचार्य कुन्तक के अनुसार महाकाव्य मे एक ही प्रधान कार्य होना चाहिये। उसमे विभिन्न प्रकरणो की उपकार्य उपकारक भाव से अन्वितियुक्त नियोजना होनी चाहिये। अनुचित प्रसगो का निवारण करना चाहिये। यह औचित्य 'उत्पादलावण्य' पर ही निर्भर रहता है। सजीव वर्णन और सजीव-परिकल्पना का 'प्रकरण वक्रता' के अन्तर्गत उल्लेख कर, आवश्यक बतलाया है। 'प्रबन्धवक्रता' के द्वितीय भाग मे नायक के चरमोत्कर्ष पर कथा की समाप्ति हो जाती है। इसके द्वारा नायक केन्द्रित कथा का होना स्वीकार किया है। कथा का आकस्मिक अन्त, कथा मे नाटकीय गुण को आवश्यक बतलाया है। प्रबन्धवक्रता के चतुर्थ भेद तथा अन्य तत्वो के उल्लेख से नायक की सिद्धि ही अभिव्यक्त की है। प्रकरणवक्रता के सप्तम भेद के अनुसार कथा मे एक नवीन चमत्कार उत्पन्न होता है। आपने भी अन्य आचार्यों की तरह जीवन के समग्ररूप को अकित करने के लिये महाकाव्य की मूलघटनाओ के अतिरिक्त अनेक सरस प्रसगो की जलक्रीडा आदि उद्भावना प्रकरण वक्रता के अन्तर्गत, आवश्यक कहा है। इस प्रकार के प्रसगो का उल्लेख कर जीवन को प्राकृतिक तथा मानवीय पक्षों से सम्बद्ध किया है। काव्य के लक्षण तथा उसके प्रयोजन मे आप ने रस के महत्व को स्वीकार किया है। प्रबन्धवक्रता के अन्तर्गत आपने प्रबन्धवक्रता को कवियो की कीर्ति का मूलकारण कहा है। निरन्तर रस को प्रवाहित करने वाली कवियो की वाणी केवल कथामात्र के आश्रय से जीवित नही रहती अर्थात् काव्य का सर्वोत्कृष्ट रूप प्रबन्ध है और उसका प्राण रस है ४।२६ और ४।११ व जी

आचार्य विश्वनाथ

लक्षण ग्रन्थकारो मे विश्वनाथ कविराज का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आपने अपने पूर्ववर्त्ती सभी आचार्यों के मतों का समाहार करते तथा यत्र तत्र नवीन लक्षणो या तत्वो का निर्देश करते हुए सुबोध शैली मे काव्य-लक्षणो का प्रतिपादन किया है। प्राय आपने पूर्ववर्ती दडी को ही आदर्श रूप मे मानकर काव्यलक्षण निश्चित किये हैं। इसके अतिरिक्त—रामायण महाभारतादि आर्षकाव्यो को ध्यान मे रखते हुए—कालिदासादि कविकृत रघुवश, किरात, माघ—काव्यो को भी अपनी समन्वयात्मक महाकाव्य की परिभाषा मे समेट लिया है। इसी कारण आधुनिक आलोचना पद्धति तथा सस्कृत शिक्षा परम्परा मे साहित्यदर्पण को सर्वाधिक उद्धृत किया जाता है।

विश्वनाथ कविराज ने संस्कृत महाकाव्य के साथ-साथ प्राकृत अपभ्रंश के महाकाव्यो की चर्चा की है। आपने कहा है कि प्राकृत तथा अपभ्रंश के

महाकाव्यो में सस्कृत के सर्ग की जगह क्रमश आश्वास, 'कुडवक' का विधान होता है और प्राकृत मे स्कन्धक, और गलितक, तथा अप्रभ्रश मे उसके योग्य अन्य विविध प्रकार के छन्दो का प्रयोग होता है। आपने सर्गसख्या, उनका नाम निर्देश तथा प्रारम्भ मे मगलाचरण, सज्जनस्तुति, दुर्जननिन्दा के विषय मे भी कहा है। किन्तु ये सभी महाकाव्य के बाह्याग के विषय मे ही है और परम्परागत विचारो को ही आपने स्वीकार किया है। विश्वनाथ कविराज ने अपनी परिभाषा मे दडी आदि से भिन्न तत्व निर्दिष्ट किये हैं, वे निम्नानुसार हैं —

१—महाकाव्य का नायक धीरोदात्तादि गुणो से युक्त, सद्वश, क्षत्रिय या देवता होता है।

दडी ने इस तरह नायक के वश वर्ण सम्बन्धी कोई निर्देश नही किया है। दडी ने तो केवल सदाश्रयम्, चतुरोदात्तनायकम् का होना ही आवश्यक कहा है। 'एक वंशभवा भूपा कुलजा बहवोपि वा' लक्षण कालिदास के रघुवश महाकाव्य को ही दृष्टिपथ मे रखकर विश्वनाथ कविराज ने निर्मित किया है।

२—भामह तथा दडी ने क्रमश रसैश्च सकलै पृथक् 'रसभावनिरन्तरम्, का निर्देश किया था किन्तु विश्वनाथ कविराज ने, इस व्यापक तत्व को सीमित कर शृङ्गार, वीर और शान्त केवल तीन रसो मे से किसी एक रस का प्रधान या अगी होना स्वीकार किया है।

(३) विश्वनाथ कविराज के पूर्ववर्ती आचार्यो ने–भामह, दडी, रुद्रट, हेमचन्द्र–किसी ने भी सर्गों की सख्या निर्धारित नही की थी। दडी ने तोकेवल, 'सर्गैरनतिविस्तीर्णे' ही कहा था किन्तु विश्वनाथ कविराज जी ने इसे सीमित कर महाकाव्य को कम से कम आठ सर्गो का होना आवश्यक मान लिया है।

(४) सर्गों की लम्बाई के सम्बन्ध मे दण्डी ने तथा आचार्य हेमचन्द्र ने क्रमश सर्गैरनतिविस्तीर्णै और असक्षिप्तग्रन्थत्वं, अनतिविस्तीर्णं परस्पर-सबद्धसर्गादित्व, अतिविस्तीर्ण और सक्षिप्त भी न हो कहा था क्योकि अतिविस्तीर्ण होने से सन्धियो की योजना मे बाधा उपस्थित होगी और सक्षिप्त होने से रसविच्छेद होने का भय होता है। विश्वनाथजी ने इसी तथ्य को अपने शब्दो मे कह दिया कि वे (सर्ग) बहुत बडे भी न हो और अधिक छोटे भी न हो। विश्वनाथ जी ने अपभ्रंश महाकाव्य मे सर्ग के स्थान पर 'कुडवक' का प्रयोग बताया है। जबकि आचार्य हेमचन्द्रजी ने कुडवक न बताकर'सधि' नाम बताया है।

(५) विश्वनाथ जी ने सर्वप्रथम (भामह से लेकर) रामायण, महाभारत को आर्षकाव्य की सज्ञा दी है। इन आर्षकाव्यो में 'सर्ग के स्थान पर आख्यान, शब्द का प्रयोग स्वीकार किया है। किन्तु आख्यान शब्द से महाभारत मे तथा रामायण मे प्रयुक्त 'पर्व' और 'काण्ड' शब्द का मेल नही होता यह विचारणीय है ?

(६) प्रकृति चित्रण सन्ध्या, सूर्येन्दु, रजनी, प्रदोषध्वान्तवासरा., आदि और जीवन, व्यापार वर्णन के सम्बन्ध मे विश्वनाथ जी ने पूर्वाचार्यों द्वारा कथित बातो को ही दुहराया है। महाकाव्य मे नाटकीयता लाने के लिये तथा रसभाव निरन्तरता को स्थिर करने के लिये सर्गान्त मे भावि अग्रिम सर्ग की कथा का सकेत होना आवश्यक कहा है।

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायक सुर ॥
सद्वश क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वित ॥
एकवशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा।
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽगी रस इष्यते ॥
अंगानि सर्वेपि रसा सर्वे नाटकसन्धय ।
इतिहासोद्भव वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥
चत्वारस्तस्य वर्गा स्युस्तेष्वेक च फल भवेत् ॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥
क्वचिन्मन्द - खलादीना सता च गुणकीर्तनम् ।
एकवृत्तमयै पवेदे पद्यैरवसानेन्यवृत्तकै ॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ।
नानावृत्तमय क्वापि सर्ग कश्चन दृश्यते ॥
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथाया सूचन भवेत् ।
सध्यासूर्येन्दु-रजनी-प्रदोष-ध्वान्तवासरा ॥
प्रातर्मध्याह्नमृगया-शैलर्तु-वनसागरा ॥
सभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वरा ॥
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादय ॥
वर्णनीया यथायोग सागोपागा अमी इह ॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ॥
अस्मिन्नार्षे पुन सर्गा भवन्त्याख्यानसंज्ञका ॥
प्राकृतैर्निर्मिते तस्मिन्सर्गा आश्वास - सज्ञका. ॥

छन्दसा स्कन्धकेनैतत्क्वचिद्गलितकैरपि ।।
अपभ्रंशनिबद्धेऽस्मिन् सर्गा कुडवकाभिधा. ।।
तथापभ्रंशयोग्यानि छन्दांसि विविधान्यपि ।
भाषा-विभाषा-नियमात्काव्य सर्गसमुज्झितम् ।।
एकार्थप्रवणै पद्यैः सधिसामग्र्यवर्जितम् ।। ३२८

विश्वनाथ कविराज, साहित्यदर्पण ६ परिच्छेद

उपर्युक्त तथ्यो के विवेचन से ज्ञात होता है कि विश्वनाथ जी ने दंड आदि आचार्यों की परिभाषा को ही परिवर्द्धित कर व्याख्यात्मक शैली मे प्रस्तुत किया है । परिणाम यह हुआ है कि महाकाव्य के बाह्याग विषयक दडी की गिनाई हुई बाते रूढि रूप मे स्वीकृत करने के कारण तथा परवर्ती महाकाव्यो का वस्तुव्यापारवर्णन उस सूची से प्राय बाहर नही जा सका है और आचार्यों द्वारा प्रस्तुत महाकाव्य विषयक शर्तों की पूर्ति अधानुकरण की तरह होती रही। इस प्रकार विभिन्न विद्वानो ने महाकाव्य सम्बन्धी मान्यताओ को अपने अपने शब्दो मे विभिन्न शब्दावली मे व्यक्त किया है । उनके द्वारा स्वीकृत महाकाव्य के तत्व इस प्रकार है—

१. कथानक—

महाकाव्य का कथानक न अधिक दीर्घ और न अतिसंक्षिप्त होना चाहिये ।

अ —वह सर्गबद्ध होना चाहिये । उसमे नाटक की साध योजना होनी चाहिये जिससे कथानक मे एकान्विति रहे और रसाभिव्यक्ति भी हो[1]।

ब —सपूर्ण कथानक के आधारस्वरूप, उसमे कोई एक महती घटना हो । इस महत्ती घटनाओ की ओर ही संपूर्ण अप्रधान घटनाओ का, उसे गतिशीलता प्रदान करने के लिये, प्रवाह आवश्यक है । इस महती घटना को ही रुद्रट ने नायक का अभ्युदय कहा है ।[2]

स —अवान्तर कथाये—विकसनशील प्रबन्ध काव्यो तथा विदग्ध महाकाव्यो मे प्रधान कथा के अतिरिक्त इनकी भी विनियोजना होती है ।

---

१ आनदवर्धन के ध्वन्यालोक के अनुसार सन्धियोजना रसाभिव्यक्ति के लिये परमावश्यक है । और यही कुन्तक के अनुसार प्रकरण वक्रता का प्रकार है । ध्व० ४ । १३ व जी ४ । १४

२ रुद्रट के अतिरिक्त अन्य किसी आचार्य ने इस तत्व की ओर ध्यान आकर्षित नही किया है ।

इन अवान्तर कथाओं की नियोजना महाकाव्य के जीवितत्व तथा लोकसपृक्तता की द्योतक है।[१]

(द) कथा उत्पाद्य, अनुत्पाद्य और मिश्र, तीन प्रकार की हो सकती है। अधिकतर कथा अनुत्पाद्य और मिश्र ही होनी चाहिये। पर उसमें औचित्य परमावश्यक है। अर्थात ऐतिहासिक कथा मे रसयुक्त नाना कथाओ के होने पर भी उनमे जो विभावादि के औचित्य से युक्त कथावस्तु है, उसे ही ग्रहण करना चाहिये, अन्य को नही।

कल्पित कथावस्तु को ग्रहण करने पर उसमे सावधान रहने का प्रयत्न करना चाहिये या वह सपूर्ण कल्पित वस्तु इस प्रकार निर्मित हो जिससे वह समग्र रसमय ही प्रतीत हो। कथावस्तु पौराणिक या ऐतिहासिक होने से पाठक रसग्रहण अनायास ही कर सकता है। आनन्दवर्धन ने कथावस्तु के सम्बन्ध मे आवश्यक ५ तत्व बताये हैं जिनका गत पृष्ठो में उल्लेख कर दिया गया है। यहाँ उनकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है। कुन्तक ने उस ओर ध्यान आकर्षित किया है जहाँ कोई प्रतिभाशाली कवि प्रसिद्ध कथा के मूल रस मे ही परिवर्तन कर देता है। उदाहरणार्थ, उन्होने उत्तररामचरित्र और वेणीसहार नाटको को प्रस्तुत किया है। उत्तररामचरित्र के कथानक का आधार वाल्मीकि रामायण और वेणीसंहार का आधार महाभारत है। प्राचीन आचार्यों के मत से रामायण और महाभारत दोनो का प्रधान रस शान्त है। किन्तु यहाँ दोनो के कवियो ने अपनी प्रतिभा के बल से मूल रस मे परिवर्तन कर, करुण और वीर रस की स्थापना की है[२]। मिश्र कथा से तात्पर्य यह है कि कवि ऐतिहासिक कथा होने पर भी, उसमें से रस विरोधी घटनाओ को छोडकर बीच में कल्पित, औचित्य के आधार पर, नवीन कथा की योजना कर देता है। जैसे, रघुवश मे अजादि राजाओं का विवाहवर्णन, हरिविजय मे (सर्वसेन विरचित) कान्ता के अनुनय के लिये पारिजातहरणवर्णन और अर्जुन चरित महाकाव्य मे अर्जुन का पाताल विजयादि। उस रूप मे इतिहासादि मे वर्णित न होने पर भी, कथा को रसान्वित बनाने के लिये ही कल्पित किया गया है।

---

१ रुद्रट और हेमचन्द्र के अतिरिक्त किसी भी आचार्य ने इनका उल्लेख आवश्यक रूप मे नही किया है। कथा के भीतर कथा रखने की प्रवृत्ति लोककथाओ तथा पुराणो मे होती है।

२ इसे कुन्तक ने ४।१६–१७ मे कहा है। व० जी०

कथा में नाटकीय गुण—

'सर्वनाटकसन्धय' आचार्यों ने कहकर इसी गुण की ओर संकेत कर दिया है अर्थात् महाकाव्य के कथानक मे सभी नाट्यसन्धियाँ रहती हैं, वे ही वस्तुसंगठन के मूल आधार हैं। इसी के साथ-साथ कथा मे चमत्कार उत्पन्न करने के लिये, आकस्मिकता तथा एकाग्रता का होना आवश्यक है। इनसे ही कथा के प्रति पाठक के अनुराग की परिवृद्धि होती है। इस गुण का उल्लेख आचार्य कुन्तक ने व० जी० ४।१८–१९,२०,२१ मे किया है। जहाँ कवि कथा के उत्तर भाग की नीरसता को दूर करने के उद्देश्य से नायक के चरित्र पोषक एवं ऐतिहासिक कथा के प्रकरण विशेष पर ही कथा की समाप्ति कर देता है, और कभी-कभी बीच मे प्रतिभाशाली कवि प्रधान कार्य की सिद्धि कर देता है। जैसे–किरातार्जुनीय महाकाव्य मे,अर्जुन किरातवेषधारी शिव के साथ युद्ध मे पराक्रम प्रदर्शित कर जैसे ही पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति करता है वैसे ही, अर्जुन (नायक) के इस चरमोत्कर्ष की स्थिति पर, कथा समाप्त हो जाती है। किन्तु महाकाव्य के प्रारम्भिक श्लोको से, बीच मे ही कथा समाप्ति का आभास भी नही हो पाता और इस समाप्ति से उत्तरवर्ती नीरस प्रसगो का परिहार हो जाता है और नायक के चरित्र का उत्कर्ष भी।

२–शिशुपाल वध

महाभारतान्तर्गत युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की घटना है। इस राजसूय यज्ञ का उद्देश्य युधिष्ठिर द्वारा यज्ञ का सम्पादन करना और महाभारत की मूल कथा का उद्देश्य दुर्योधन का पराजय है। किन्तु शिशुपालवध मुख्य या राजसूय यज्ञ की कथा का बाधक न होकर साधक ही सिद्ध हुआ है।

चरित्र—

(क) महाकाव्य का नायक धीरोदात्त, सद्वंशोत्पन्न, क्षत्रिय या देवता होना चाहिये। नायक के विषय मे आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत है। किन्तु सभी ने धीरोदात्त, सद्वंशोत्पन्न नायक, आवश्यक कहा है। रुद्रट के अनुसार त्रिवर्णों मे से किसी वर्ण का और आचार्य दंडी के अनुसार कोई भी धीरोदात्त व्यक्ति हो। विश्वनाथ के अनुसार एक वंश के कई राजा या उच्च कुलो मे उत्पन्न अनेक राजा महाकाव्य के नायक हो सकते है। किन्तु अनेक नायको के होने से महाकाव्य के प्राणतन्तु अन्विति की रक्षा नही हो सकती। उसके सद्भाव के लिये एक नायक ही अपेक्षित है। अनेक नायको का समावेश करने वाले महाकाव्य उच्च कोटि के न होकर ऐतिहासिक, धार्मिक या प्रशस्तिमूलक ही होते हैं।

(ख) नायक के पश्चात् काव्य मे, प्रतिनायक की योजना होती है। प्रतिनायक के अभाव मे नायक का उत्कर्ष चमत्कारपूर्ण नही होता, और न संघर्षपूर्ण कोई महती घटना ही घटित होती है। वस्तुत संघर्ष और उत्कर्ष अन्योन्याश्रित जैसा ही है। दडी ने नायक के चरित्रोत्कर्ष के लिये कुछ उपाय बतलाये हैं[1]। आचार्य दडी के स्वर मे स्वर मिलाते हुए रुद्रट ने भी कहा है कि प्रतिनायक को नायक के समान ही बलशाली तथा गुणी होना चाहिये।

(ग) नायक-प्रतिनायक के अतिरिक्त भी महाकाव्य में अन्य पात्रो की नियोजना होती है। किन्तु किसी आचार्य ने स्पष्ट उल्लेख नही किया है। केवल 'मंत्र दूतप्रयाण तथा विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः' वर्णनीया यथायोग्यं, आदि उल्लेख अवश्य मिलते है। अर्थात् मत्री, सहायक, दूत, सेना, राजा-रानियाँ, दास और दासियाँ आदि की महाकाव्य मे आवश्यकता होती है। अन्यथा महाकाव्य मे जल-क्रीडा, उत्सवादि वर्णन विहित होने से किस प्रकार संपन्न होगे। परन्तु पात्रो के स्वभाव, व्यवहार आदि के विषय मे प्राय काव्यशास्त्र मौन है। रुद्रट ने राजा, वीरो, मन्त्रियो तथा शत्रुओ के स्वभाव की कुछ चर्चा की है। किन्तु नायिकाओ की चर्चा तो किसी ने नही की है। (संभवत दशरूपक जैसे ग्रंथो मे चर्चा होने से, छोड़ दी है)।

३—वस्तुव्यापार और परिस्थिति वर्णन

महाकाव्य मे जीवन के सभी दृश्यो, प्रकृति के विभिन्न रूपो और विविध भावो की योजना आवश्यक होने से, आचार्यों ने वस्तु व्यापार और परिस्थिति-वर्णन पर अधिक बल दिया है। विदग्ध महाकाव्यो मे और आर्ष काव्यो मे यही भेद है। इनमे प्रधान घटना प्रवाह-क्षीण होने पर भी, अलंकृत वर्णनो की परंपरा से कवि विदग्धता प्रदर्शित करता है। किन्तु आर्ष काव्यो मे इन सब वर्णनो की स्वाभाविकता और औचित्य से नियोजना होती है किन्तु इनका सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व होता है।

प्रकृति चित्रण—

(क) रात्रि, सध्या, प्रभात, मध्याह्न, वन, सूर्य, चन्द्र, नदी, समुद्र, पर्वत आदि प्राकृतिक वस्तुओ का यथायोग्य, सागोपाग और अलकृत वर्णन होता है।

---

१. काव्यादर्श १।२१,२२

(ख) जीवन के विविध व्यापारो और परिस्थितियो का चित्रण, प्रेम, विवाह, सयोग-वियोग, कुमारोदय, मधुपान, गोष्ठी, राजकाज, मंत्रणा, दूत प्रेषण, सैनिक, अभियान, व्यूहरचना, युद्ध, नायक की विजय, यज्ञ आदि।[१]

४— अलौकिक और अतिप्राकृत तत्व

प्राचीन प्रबन्धकाव्यो मे अलौकिक और अतिप्राकृत तत्वां की बहुलता है। इन प्रबंध काव्यो की सामग्री से ही निर्मित विदग्ध महाकाव्यो मे भी इन तत्वो की उपलब्धि होती है। प्राचीन काल से ही मानव की कविता का आधार पौराणिक देव-देवता एव धर्म रहा है। पौराणिक विश्वासो तथा औत्सुक्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति सहजरूप से मानव-हृदय मे स्थित होने से प्राचीन महाप्रबन्ध काव्यो—रामायण तथा महाभारत मे अलौकिक तथा अतिप्राकृत तत्वो की बहुलता है। रुद्रट ने इन तत्वो को स्वीकार कर लिया है किन्तु यह कहा है कि इन कार्यों का आधार औचित्य आवश्यक है, अतिप्राकृत कार्य मानव अपनी शक्ति से नही कर सकते अत अलौकिक कार्य सपादनार्थ पर्वत, समुद्र-लघन, सारी पृथ्वी का भ्रमण (अलौकिक शक्ति) गन्धर्व, किन्नर, देवता, अप्सरा आदि का ही उपयोग करना चाहिये। विश्वनाथ ने केवल इतना ही कहा कि महाकाव्य मे देवता भी नायक हो सकते हैं और उसमे मुनि तथा स्वर्ग-वर्णन होना चाहिये। आनन्दवर्धन ने भी कहा है कि मानव राजा आदि से अलौकिक कार्य समुद्रोल्लघन नही कराना चाहिये, क्योकि ये अनौचित्य होने से, नीरस प्रतीत होते है। और इसी अनौचित्य को आनन्दवर्धन ने रस

---

१ राजशेखर ने काव्यमीमासा मे भट्ट लोल्लट के मत को व्यक्त करते हुए कहा है कि काव्य मे सरस अर्थ का निबन्धन होना आवश्यक है किन्तु वह सरस होने पर भी अधिक मात्रा मे नही होना चाहिये —

मज्जनपुष्पावचयनसन्ध्याचन्द्रोदयादिवाक्यमिह।
सरसमपि नाति बहुल प्रकृतरसान्वितं रचयेत्॥

क्योकि इन वणनो मे नदी, पर्वत, समुद्र, नगर, घोड़े, हाथी एवं रथ, कविगण जो प्रयत्न करते है वह केवल उनकी काव्यरचनाशक्ति का ही द्योतक है। मर्मज्ञ सहृदय इसे उचित नही समझते।

'यस्तु सरिदद्रिसागरपुरतुरगरथादिवर्णने यत्न
कविशक्तिख्यातिफलो विततधियानोमत सइह।'
काव्यमीमासा, अनु०—केदारनाथ सारस्वत, पृ० १११, अध्याय ९

भंग का कारण माना है।[1] रुद्रट की परिभाषा की व्यापकता से स्पष्ट होता है कि उसने रामायण, महाभारत तथा रोमांचक कथा-काव्यो को भी देखा था।

छन्द—

छन्द के विषय मे केवल भामह और रुद्रट आदि दो आचार्यों को छोड़कर सभी ने कुछ न कुछ कहा है। अग्निपुराणकार[2] दंडी, हेमचन्द्र, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने छन्द के विषय मे अपने विचार प्रकट किये हैं। दंडी के अनुसार महाकाव्य मे श्राव्यवृत्तो का प्रयोग होना चाहिये अर्थात् पढने, सुनने में पाठक को रमणीयता का अनुभव हो। किन्तु यह (नियम) काव्य मात्र का लक्षण है, केवल महाकाव्य का नहीं। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग और सर्गान्त मे भिन्न छन्द का प्रयोग होना चाहिये[3]। इनके पश्चात् विश्वनाथ ने दंडी की मान्यता को ही दुहराते हुये कहा कि किसी-किसी महाकाव्य मे नाना छन्दो वाले सर्ग भी होते है[4]।

हेमचन्द्र ने कहा है कि महाकाव्य मे अर्थानुरूप छन्द की योजना होनी चाहिये। किन्तु हेमचन्द्र की कही हुई बात अर्थानुरूप छन्दस्त्वम् काव्य मात्र के लिये लागू होती है। कोई महाकाव्य का विशेष लक्षण नहीं।

अलंकार—

अलंकार के विषय मे भामह, दंडी, हेमचन्द्र आदि आचार्यों का स्पष्ट मत है कि महाकाव्य मे अलकारो की योजना होनी ही चाहिये। भामह ने सालकारं, व दडी ने अलंकृत शब्दो के प्रयोग से इसी तथ्य की अभिव्यक्ति की है। वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि, कहकर अग्निपुराणकार ने इसी तत्त्व का अनुमोदन किया है। हेमचन्द्र ने स्पष्ट कहा है कि महाकाव्य मे दुष्कर चित्रादिसर्गत्व का विधान होना चाहिये अर्थात् यमक, श्लेषादि अलकारों का प्रयोग होना चाहिये किन्तु आचार्य रुद्रट और विश्वनाथ ने अलंकारों की चर्चा नहीं की है। उत्तरकालीन महाकाव्यो मे नाना अलंकारो के प्रयोग को कवियों ने वाग्वैदग्ध्य-अभिव्यक्ति का माध्यम ही बना लिया है। आर्ष काव्यो मे अलंकारो का प्रयोग होने पर भी वह दुरूह कोटि का नही है। उनकी योजना स्वाभाविक रीति से

---

१ ध्वन्यालोक आनन्दवर्धन तृतीय उद्योत, कारिका १४

२. अग्निपुराणकार ने तो विशिष्ट छन्द, शक्वरी, अतिशक्वरी, जगती, अतिजगती, त्रिष्टुप, पुष्पिताग्रा ही गिना दिये हैं। ३३७।२६

३ सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरजनम, १।१९—दडी

४. नानावृत्तमयः क्वापि सर्ग कश्चय दृश्यते। ६।३२० साऽ दर्पण

हुई है। कालिदास ने भी उन्ही का अनुसरण करते हुए अलकार प्रयोग करने का कोई लक्ष्य नही बनाया। उनके महाकाव्यो मे कथा, रस, भाव आदि के प्रवाह मे ही उद्भूत अलंकारो का दर्शन होता है किन्तु सामाजिक (दरबारी) प्रभाव के कारण परवर्ती महाकाव्यो मे कवियो के वाग्वैदग्ध्य आचार्यत्व की प्रतीति होती है, सहज प्रतिभा की नही। विदग्ध महाकाव्यो का 'अलकृतत्व' यह एक प्रमुख लक्षण ही बन गया। इसीलिये आनन्दवर्धनाचार्य ने कहा है कि अलकार-रचना मे समर्थ कवि कभी-कभी अलकार योजना मे ही इतना मग्न हो जाता है कि वह रस-प्रवाह की चिन्ता न कर अलकार निरूपण मे ही आनन्द लेने लगता है (उसे) शक्ति (अलकार प्रयोग की) होने पर भी रसानुरूप ही अलकारो की योजना करनी चाहिये।[1]

भाषा —

आचार्यों ने महाकाव्य की भाषा के विषय मे बहुत कम विचार किया है। इसके कई कारण हैं क्योकि इस तत्व का अन्यत्र (शब्दशक्ति मे) विचार हुआ है। फिर भी कुछ आचार्यों ने काव्य के हेतु तथा महाकाव्य के लक्षण मे भाषा विषयक सकेत अवश्य कर दिये है। काव्य के हेतुओं मे लोक, विद्या (शब्द-शास्त्र, कोश, छन्द, कला आदि) और प्रकीर्ण (लक्ष्यज्ञान, अभियोग), काव्य-कला की शिक्षा (प्रतिभा)। दडी ने प्रतिभा का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी श्रम और यत्न को पर्याप्त महत्त्व दिया है। काव्यमीमासा मे महाकवि को दस गुणो से युक्त माना है। इसका परिणाम यह हुआ कि (यह स्वीकार कर लिया है) जो महाकवि होगा वह भाषा पर अधिकार रखता ही होगा।

भामह ने इतना ही संकेत किया है कि महाकाव्य मे ग्रामीण शब्द और अर्थ का प्रयोग नही होना चाहिए अर्थात् वह—नातिव्याख्येयम्—क्लिष्ट भी न हो, उसकी भाषा सरल और बोधगम्य हो। इसी का अनुमोदन आचार्य हेमचन्द्र ने 'समस्तलोकरंजकत्व' महाकाव्य के गुण को स्वीकार कर किया है। रामायण तथा महाभारत मे सर्वबोधगम्यत्व गुण है किन्तु महाभारत मे भी कुछ अशो मे

१ यदलकृतीना शक्तावप्यानुरूप्येण योजनम्........
शक्तो हि कवि कदाचित् अलकारनिबन्धने
तदाक्षिप्ततयैवानपेक्षितरसबन्ध प्रबन्धमारमते
तदुपदेशार्थमिदमुक्तम्। दृश्यन्ते च कवयो अलकारनिबन्धनैक
रसा अनपेक्षितरसा, प्रबन्धेषु।। १४।३ ध्वन्यालोक० ३।१४

भाषा क्लिष्ट होगई है, जिसमें श्लिष्टप्रयोगो की अधिकता है। कालिदास और अश्वघोष की कुछ सीमा तक भाषा मे प्रसादगुण वर्तमान है। उत्तरकालीन महाकाव्यो मे भाषा ने प्रसादगुण छोड दिया है। वह श्लिष्ट, समासबहुला, अलंकृत होगई है, यहाँ तक की श्लिष्ट भाषा का प्रयोग कर दो, तीन, पाँच और सात अर्थों को बतलाने वाले काव्यो की रचना हुई है[1]। किन्तु केवल समास-बहुला और श्लिष्ट भाषा के प्रयोग से महाकाव्य की शैली मे गाभीर्य या गरिमा नही आती। पाठक रसग्रहण करने में असमर्थ रहता है।

शैली

आचार्यों ने महाकाव्य की शैली के कुछ तत्वो के विषय मे तो पर्याप्त विचार किया है और कुछ को छोड दिया है। कुछ तत्वो पर जैसे शैली की गरिमा, गभीरता, महाकाव्य का महत्त्व विचार न करने के अनेक कारण हैं। प्राय आचार्यों ने, उन तत्वों पर विचार नही किया है जो अन्यो द्वारा कहे जा चुके है और उन्हें स्वीकृत प्रसिद्ध भी है[2] या उनके कार्यक्षेत्र मे ही उनका अन्तर्भाव नही होता है पर कुछ, संकेत वे सूक्ष्म ही क्यो न हो, अवश्य मिलते है। जैसे महाकाव्य की गरिमा, उसके महत्त्व के विषय मे वामन ने ही 'क्रमसिद्धिस्तयो स्रगुत्तसवत्' (माला और उत्तस का सबध बताते हुये कहा है कि माला गुफन की कला मे पारगत होने के पश्चात् ही उत्तस गुफन मे सिद्धि प्राप्त होती है। मुक्तकरचना मे सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् ही कवि प्रबध-रचना महाकाव्य मे सिद्धि प्राप्त करते है।) कहकर कविकर्म और महाकाव्य की महत्ता द्योतित की है। कुन्तक ने—प्रबन्धेषु कवीन्द्राणा कीर्त्तिकन्देषु किं पुनः ४।२६-कहकर इसी तथ्य का अनुमोदन किया है। आचार्य अभिनव गुप्त ने भी 'तत्र रसास्वादोत्कर्षकारकं विभावादीना समप्राधान्ये प्रबन्ध एव[3]।' अर्थात् विभाव

---

१ धनंजय का राघवपाण्डवीय, हरदत्त सूरी का राघवनैषधीय, चिदम्बर का राघवपाण्डवयादवीय इसमे एक साथ रामायण, महाभारत तथा भागवत की कथा निबद्ध है। चूडामणि दीक्षित कृत राघवयादव पाण्डवीय, मेघविजयगणि तथा सोमप्रभाचार्य के सप्तसंधान तथा शतार्थकाव्य हैं।

२ जैसे वामन ने काव्य के गद्य पद्य भेद बतालाते हुये,उनके लक्षण प्रसिद्ध होने के कारण नही कहे है। 'तदिद गद्यपद्यरूप काव्यमनिबद्धं निबद्धच अनयो प्रसिद्धत्वाल्लक्षण नोक्तम् २७ प्रथम अधिकरण ३ अध्याय काव्यालकारसूत्रवृत्ति।

३ अभिनव भारती, गायकवाड़ सस्करण पृ० २१८ प्रथम खंड

आदि समस्त रसागो का सम्यक् वर्णन रसोत्कर्ष का कारण है और यह प्रबन्ध-काव्य मे ही संभव होता है सारांश मे मुक्तक की अपेक्षा प्रबन्धमहाकाव्य का महत्त्व निश्चय ही अधिक है। आचार्य आनन्दवर्धन ने तृतीय उद्योत मे इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला है तात्पर्य यह है कि अलकारशास्त्र मे यत्र तत्र कवि की महाप्राणता महाकाव्य की गरिमा पर विचार अवश्य हुआ है किन्तु मेरी धारणा यह है कि, इन सब विचारो के होते हुये भी उत्तरकालीन महाकाव्यो पर विदग्ध समाज का पर्याप्त प्रभाव पडा जिसके कारण वे क्लिष्ट हो गये हैं।

अलंकारशास्त्र मे शैली के जिन तत्वो पर विचार हुआ है वे ये हैं —

(क) विश्वनाथ और ईशान साहित्यकार को छोडकर अन्य आचार्यों ने सर्गों की सख्या पर विचार नही किया है[१]। सभी ने कहा है कि वे न अधिक बडे हो न अधिक छोटे। विश्वनाथ के अनुसार सर्गों के नाम उसमे वर्णित कथा के आधार पर होने चाहिए।

संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश, मे उनके नाम क्रमश सर्ग, आश्वासक और सन्धि (विश्वनाथ के अनुसार सन्धि के स्थान पर कडवक) होते है। सर्गान्त मे दूसरे सर्ग की कथा की सूचना देनी चाहिये। महाकाव्य का नामकरण कवि या कथावस्तु या चरितनायक के नाम पर होना चाहिये। महाकाव्य के प्रारम्भ मे मंगलाचरण, इष्टदेवता को नमस्कार, वस्तुनिर्देश या कथा की प्रस्तावना होनी चाहिए किन्तु अनेक महाकाव्यो मे उनका पालन नही किया गया है। जैसे कुमारसंभव, शिशुपालवध आदि। आचार्य रुद्रट के अनुसार महाकाव्य के अन्त मे नायक का अभ्युदय वर्णित होना चाहिये, यह समीचीन भी है, क्योकि महाकाव्य मे वर्णित कथानक का वही चरमोत्कर्ष होता है। हेमचन्द्र ने उपसहारात्मक वर्णन आवश्यक कहा है। इसके अतिरिक्त कवि को अपना अभिप्राय, अपना और अपने इष्टदेव का नाम, और मगलवाची वाक्यो का प्रयोग भी उसमे आवश्यक कहा है[२]। रुद्रट, हेमचन्द्र और विश्वनाथ ने महाकाव्य के प्रारम्भ में प्रस्तावना के रूप मे सज्जनप्रशसा, दुर्जननिन्दा, कवियो की प्रशंसा, नायक के वश की प्रशसा तथा अपना प्रयोजन आदि आवश्यक कहा है[३]। भामह, दडी आदि ने

---

१. ईशानसंहिताकार 'अष्टसर्गान्नतु न्यूनं त्रिशत्सर्गाच्चानधिकम्।
विश्वनाथ सा० दर्पण नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ३२०

२. स्वाभिप्राय-स्वनामेष्टनाममगलाकितसमाप्तित्वम्'।

२. रुद्रट-आरम्भ में सन्नगरीवर्णन और नायकप्रशसा होनी चाहिये।
'तत्रोत्पाद्यपूर्वं सन्नगरीवर्णनं महाकाव्ये।

इनका उल्लेख नहीं किया था। ये उपर्युक्त महाकाव्य-संबंधी रूढियाँ उत्तर-कालीन विदग्ध-समाज की ही देन है, ऐसी मेरी धारणा है।

रूपसंघटन

अग्निपुराणकार के अतिरिक्त किसी भी आचार्य ने,महाकाव्योचित रीति, गुण का उल्लेख नही किया है। 'पचभि सन्धिभिर्युक्त 'सर्वे नाटकसन्धय' का उल्लेख तो प्राय सभी ने किया है। अर्थात् उसमें नाटक की सन्धियो मुख प्रतिमुख की योजना होनी चाहिये। जिससे कथानक की विभिन्न घटनाओ मे एक अन्विति रहे, और रस प्रवाह मे किसी प्रकार की बाधा भी न हो। भारतीय-परपरा के अनुसार प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत नाटक,महाकाव्य और कथाकाव्य, भी आते हैं। महाकाव्य अपने रूपसघटन के लिये इतिहास, पुराण, नाटक, गीतिकाव्य आदि से सामग्री एकत्र करता है। अन्य आचार्यों ने तो 'इतिहास-कथोद्भूतम्, इतिहासोद्भवम् आदि की चर्चा की है। रुद्रट ने इसके आगे भी कहा है कि इतिहास एव पुराण से केवल कथानक को ग्रहण करना चाहिये और कवि उस कथाशरीर मे रक्त, मास की तरह अपनी वाणी तथा कल्पना का मिश्रण कर, एक रमणीय एवं सुगठित महाकाव्यशरीर का निर्माण करे। इसी तथ्य को आनन्दवर्धन तथा कुन्तक ने क्रमश प्रबन्धान्तर्गत रसाभिव्यक्ति तथा प्रकरणवक्रता और 'प्रबन्धवक्रता' मे बताया है। रुद्रट, आनन्दवर्धन तथा कुन्तक ने लिखा है कि महाकाव्य मे पूर्णतया उत्पाद्य या कल्पित कथानक भी होता है।[1] किन्तु आनन्दवर्धन के मत मे वह उत्पाद्य कथाशरीर औचित्यपूर्ण रसमय प्रतीत होना चाहिये[2]। केवल ऐतिहासिक इतिवृत्त ग्रहण करने से कवि के प्रयोजन की सिद्धि नही हो सकती। इतिहास और काव्य मे यही अन्तर है

कुर्वीत तदनु तस्यां नायकवशप्रशसा च ॥

हेमचन्द्र—आशीर्वचन, नमस्कार, वस्तुनिर्देश के साथ ही वक्तव्य अर्थ का प्रतिज्ञान उसके प्रयोजन का निर्देश, कवि-प्रशंसा, सज्जन - दुर्जन-स्वरूप-वर्णन आदि होना चाहिये। 'आशीर्नमस्कारवस्तुनिर्देशोपक्रमत्वम्, वक्तव्यार्थ तत्प्रतिज्ञान-तत्प्रयोजनोपन्यासकविप्रशसा-सुजन-दुर्जन-स्वरूपवदादिवाक्यत्वम्।

विश्वनाथ—केवल खलनिन्दा और सज्जनो का गुणकीर्तन।
क्वचिन्निन्दा खलादीना सता च गुणकीर्तनम्।

१ ध्वन्यालोक कारिका १० उद्योत ३

२. कथाशरीरमुत्पाद्य वस्तुकार्यं तथा तथा।
यथा रसमयं सर्वमेव तत्प्रतिभासते ॥

कि इतिहास का उद्देश्य केवल 'इतिवृत्त' का निर्वाह करना ही होता है। किन्तु कवि कल्पना और वाणी के रक्त मास को कथा शरीर में यथेष्ट भरकर, जीवित रमणीय महाकाव्य का निर्माण करता है[१]

प्राचीन ज्ञानवर्णन, पाण्डित्यप्रदर्शन और वस्तुविवरण

उत्तरकालीन विदग्ध महाकाव्यो मे प्राचीन ज्ञान, पाण्डित्यप्रदर्शन और वस्तुओ की विवरणसूची उपस्थित करना कवियो का एक लक्ष्य सा बन गया है। इन तत्त्वो से घटना-प्रवाह मे बाधा उपस्थित होने से, रसादि-व्यक्ति भी पूर्ण रूप से नही हो पाती। महाभारत मे भी इन्ही तत्त्वो की-दर्शन, औपनिषदिक ज्ञान, धर्मशास्त्र, प्राचीन इतिहास, पुराण-सबन्धी ज्ञान-विपुलता है। इन तत्त्वो का उद्भव विदग्ध नागरिकजीवन के काव्य-हेतुओ मे प्रतिभा से श्रम और प्रयत्न को अधिक महत्व देने, से कवित्व शक्ति के लिये लोक और विद्या का (शास्त्र आदि) ज्ञान आवश्यक बतलाने से हुआ है। इन्ही तत्त्वो को उत्तरकालीन विदग्धमहाकाव्यो मे अधिक देखकर ही विश्वनाथ ने लिखा है कि महाकाव्य मे इनका यथायोग्य सागोपाग विवरण उपस्थित करना चाहिये[२]।

रस और भाव-व्यजना

भामह से लेकर आचार्य विश्वनाथ तक सभी ने महाकाव्य मे रस की योजना पर बल दिया है। भामह ने 'रसैश्चसकलै पृथक्'। दडी ने 'रस-भाव-निरतरम्'आचार्य रुद्रट ने 'सर्वे रसा। समग्रैकरसयुक्ता' कहकर उसकी अनिवार्यता स्पष्ट की है। देहवादी आचार्य कुन्तक ने भी प्रकरणवक्रता और प्रबन्ध-वक्रता के विधान मे रस की प्रतिष्ठा स्पष्ट शब्दो मे की है। उनके विचार से निरतर रस को प्रवाहित करने वाले सन्दर्भों से परिपूर्ण कवियों की वाणी कथामात्र के आश्रय से जीवित नही रहती[३]। आनन्दवर्धन ने तो रस को प्रबन्ध का साध्य माना है। उन्होने प्रबन्धान्तर्गत रस के पाँच अभिव्यंजक हेतुओं का

---

१ न हि कवेरितिवृत्तमात्रनिर्वहणेन किञ्चित् प्रयोजनम्।
इतिहासादेव तत्सिद्धे। ध्वन्यालोक, उद्योत ३ कारका १४
महाभारत मे वस्तुविवरणात्मक सूची—वनपर्व मे यक्षयुद्ध पूर्व अध्याय, १५८ मे पक्षी, पुष्प। वृक्ष, आदि के नामो की सूचियाँ हैं। गन्धमादन पर्वत, का वर्णन अत्यन्त हृदयहारी एवं सश्लिष्ट है।

२ सहित्य-दर्पण ६।३२४. वर्णनीया यथायोग्य सागोपागा अमी इह।

३ निरन्तररसोद्गारगर्भसन्दर्भनिर्भरा।
गिर कवीना जीवन्ति न कथामात्रमाश्रिता ४–४–११ व० जी०

निर्देश किया है, जिनका उल्लेख हमने गतपृष्ठो मे किया है। उनके मत मे वस्तु के अन्तर्वाह्य अगों के निर्माण के रसौचित्य का पूर्ण निर्वाह होना चाहिये कवि को काव्य-निर्माण करते समय पूर्ण रूप से रसपरतंत्र बन जाना चाहिये[1]। रस की दृष्टि से आनन्दवर्धन ने महाकाव्य के दो भेद बतलाये हैं (१) रसप्रधान, (२) इतिवृत्तप्रधान। इन दोनो मे आपने रसप्रधान महाकाव्य को ही श्रेष्ठ कहा है। इतिवृत्त को उन्होने कामचार कहा है। [उद्योत ३ कारिका ७]

तात्पर्य यह है कि महाकाव्य मे सभी रसो की अभिव्यजना आवश्यक है किन्तु विश्वनाथ ने शृंगार, वीर, शान्त मे से कोई एक आवश्यक कहा है। उत्तरकालीन महाकाव्यो मे, लक्षण-ग्रथो के अनुसार, रसो की योजना यन्त्रवत् ही की गई है। उनमे घटना-प्रवाह, वस्तुव्यापारयोजना और रसभावव्यजना का सन्तुलित प्रयोग नही किया है।

बाल्मीकि और कालिदास मे ही घटनाप्रवाह और वस्तुव्यापारयोजना मे एकान्विति तथा उनका सन्तुलित प्रयोग होने से रसभावव्यंजना भी सन्तुलित और सुष्ठुरूप मे हुई है।

उद्देश्य

आचार्यों ने जीवन के पुरुषार्थचतुष्टय की अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को ही महाकाव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है। भामह, दंडी, रुद्रट और हेमचन्द्र सभी पुरुषार्थो को लक्ष्य मानते हैं किन्तु विश्वनाथ ने किसी एक को स्वीकार किया है। इसके विपरीत रुद्रट ने लघु प्रबन्ध काव्य को कोई एक पुरुषार्थ लक्ष्य रूप मे माना है और महाकाव्य का उद्देश्य पुरुषार्थ-चतुष्टय की प्राप्ति कहा है[2] सामान्यत चतुर्वर्गफलप्राप्ति काव्य मात्र का प्रयोजन है किन्तु दडी के मत मे महाकाव्य के लिये वह सर्वथा अनिवार्य है और यह समीचीन भी है क्योकि इसकी प्राप्ति ही जीवन की गरिमा और उदारता की द्योतक है। किन्तु विद्वानो को शका होती है कि जब सभी आचार्यों ने रसनिष्पत्ति महाकाव्य मे अनिवार्य मानी है तो वह किस उद्देश्य से ? उसका (रस) स्वरूप महाकाव्य मे क्या है ? इसका उत्तर आचार्य कुन्तक ने

---

१ 'ध्वन्यालोक उद्योत' ३ कारिका १४

२ विश्वनाथ-चत्वारस्तस्य वर्गा स्युस्तेष्वेक च फलभवेत्। सा०द०(६-३१८)
रुद्रट, तत्र महान्तो येषु च विततेष्वभिधीयते चतुर्वर्ग
ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गात्। काव्यलकार १६,५-६

दिया है कि पुरुषार्थ-चतुष्टय की प्राप्ति से भी अधिक काम्य काव्यामृत रस से अन्तश्चमत्कार की प्राप्ति होती है । अर्थात् दोनो सिद्धियां (१) पुरुषार्थ-चतुष्टय की प्राप्ति (२) आनन्द, वस्तुतः दोनो एक दूसरे के पूरक हैं क्योंकि पुरुषार्थ-चतुष्टय की प्राप्ति की परिणति अन्त मे आनन्द मे ही तो होती है । इसी लिये मम्मट ने इसे सकल प्रयोजनमौलिभूत कहा है । वास्तव मे महाकाव्य का लक्ष्य अप्रत्यक्ष रहता है जो रसानुभूतित होने के पश्चात् ही, लोकचित्तका परिष्कार होकर, उसकी गरिमा या उदात्तता के रूप मे प्रकट होता है । अत महाकाव्य का उद्देश्य पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति है ।

महाकविः—

यहा महाकवि के विषय मे भी कुछ विचार कर लेना आवश्यक है । हमारे यहाँ महाकवि व्यापक अर्थ मे प्रयुक्त होता रहा है । और उसकी कृति को महाकाव्य । जैसे सप्रति कालेज का प्रत्येक व्याख्याता प्रोफेसर नाम से अभिहित होता है । जैसे सगीत-गायन-का अल्पज्ञ भी प्रोफेसर या सगीताचार्य कहा जाता है । इस अतिव्याप्ति का प्रधान कारण यह है कि व्यक्ति का उसके केवल कर्मसे सबन्ध स्थापित करना 'तस्य कर्म स्मृत काव्यम्' कवि कर्म का काव्य और उसके आकार मे या उसकी सख्या मे वृद्धि करनेमे महाकाव्य और महा-कवि पद की अनायास ही प्राप्ति होती रही है। वस्तुत. इस कर्म के आकार मे (चाहे वह निर्धारित नियमो की पूर्ति करता हो) महाकवि का किंचित् भी सम्बन्ध नही है उसका सम्बन्ध है कर्म के प्रकार से, उसमे निहित उत्कृष्ट गुणो और उसे अभिव्यक्त करने वाली प्रतिभाविशेष से । इन असाधारण गुणो के अस्तित्व के कारण ही वह महाकवि और उसका काव्य महाकाव्यपदवाच्य होता है (चाहे वह कृति बाह्यागो की पूर्ति न करता हो) इस ओर संकेत करते हुए आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक मे कहा है कि रस, भाव रूप अर्थतत्त्व को प्रवाहित करनेवाली महाकवियो की वाणी (उनके) अलौकिक, प्रतिभा के वैशिष्ट्य को प्रकट करती है । और इसी कारण नानाविध कवि परपराशाली इस ससार में कालिदास आदि दो-तीन अथवा पाच-छ ही महाकवि गिने जाते हैं [१]। इस महत् कर्म को और भी स्पष्ट करने के लिये ही आनन्दवर्धन ने कहा

---

१ 'सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु नि ष्यन्दमाना महता कवीनाम् ।
अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्त प्रतिभाविशेषम् ॥ ६
तद्वस्तुतत्व निष्यन्दमाना महतां कवीना भारती अलौकसामान्यं प्रतिभाविशेषं परिस्फुरन्तमभिव्यनक्ति । येनास्मिन्नतिविविध-

है कि केवल वाच्य-वाचक रचनामात्र से ही कोई महाकवि नही बन सकता, इस पद-प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि व्यंग्य और व्यंजक के सुन्दर प्रयोग, और वह सुन्दर प्रयोग तभी संभव है जब वह कवि, प्रतीयमान अर्थ और उसकी अभिव्यक्ति मे समर्थ विशेष शब्द को पहिचानने (प्रत्यभिज्ञा) की क्षमता रखता हो[१]।

राजशेखर ने काव्यमीमासा मे प्रतिभा और व्युत्पत्ति के आधार पर कवियो के तीन प्रकार बतलाये हैं—(१) शास्त्र कवि,(२) काव्य कवि, (३) शास्त्र-काव्योभय कवि। फिर काव्य कवि के आठ प्रभेद किये हैं और कहा है कि जिस कवि मे आठो गुण होगे वही महाकवि होगा। इतना ही नही उन्होने कवियो की दस अवस्थाएँ मानी है इनमे से एक विशेष अवस्था की ओर लक्ष्य करते हुए कहा है कि जो किसी एक तरह का काव्य प्रबन्ध रचता है वह महाकवि होता है। राजशेखर ने महाकवि के इन गुणो की चर्चा की है।

"शब्दार्थोक्तिषु य पश्येश्चोचेदिह किंचन नूतनम्।

उल्लिखेत्किंचन प्राच्य मन्यता स महाकवि ।। काव्यमीमांसा अध्याय ११

अर्थात् जो कवि शब्दो अर्थो और उक्तियो के कुछ नये भावो को देखने की शक्ति रखता है जो अपनी प्रतिभा से अलौकिक वस्तु के उन्मेष करने की क्षमता रखता है, वही महाकवि होता है। अवन्तिसुन्दरी के मत मे महाकवि मे एक विशेष शक्ति होती है जिससे वह एक ही भाव को नाना प्रकार के शब्दो मे व्यक्त करता है अर्थात् परिपक्वता का गुण होता है जिसमे शब्द और अर्थ की योजना रसानुकूल होती है।[१]

उपर्युक्त विश्लेषण हमे इस निष्कर्ष पर ले जाता है। कि कवि मे नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा नाम की एक विशिष्ट शक्ति होती है जिससे वह उदात्त या उत्तम महाकाव्य की रचना करता है। वास्तव मे इस कवि-

---

कविपरंपरावाहिनि ससारे कालिदासप्रभृतयो द्वित्रा. पचषा एव वा महा-काल इति गण्यन्ते। ६ ध्वन्यालोक कारिका ६ प्रथम उद्योत।

१ सोऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन।
यत्नत प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवे।८ वही,

१ 'कविरहस्य' महामहोपाध्याय गंगानाथ झा
पेज ३१—१९५० हिन्दुस्तानी एकेडेमी उत्तरप्रदेश

प्रतिभा का निर्माण भी कल्पना और सवेदनक्षमता के आधार पर ही होता है । इन दो तत्वो से निर्मित प्रतिभाशक्ति के सहारे वह पात्रों से तादात्म्य कर सकता है । वह अपनी विराट कल्पना मे अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियो से ऊपर उठकर वर्ण्यविषय मे खो जाता है । इस कल्पनालोक मे उसका युग, समाज समग्र रूप से प्रत्यक्ष होजाता है और वह महाकवि अपनी आवश्यकतानुसार वर्ण्य विषय को कलात्मकरूप प्रदान कर एक जीवित महाकाव्य के रूप मे बदल देता है ।

महिमभट्ट ने व्यक्तिविवेक मे इस प्रक्रिया का वर्णन किया है कि 'रसानुकूल शब्द और अर्थ की चिन्ता मे लीन समाहित चित्त की प्रज्ञा जब क्षणमात्र के लिये पदार्थ के सच्चे स्वरूप का स्पर्श करती हुई उद्बुद्ध होती है, तभी वह प्रतिभा कहलाती है । वही भगवान शिव का तृतीय नेत्र है उसी के द्वारा महाकवि त्रैलोक्यवर्त्ती भावो का साक्षात्कार करता है ।

अर्थात् कवि की व्यष्टि संसार की समष्टि मे विलीन हो जाती है । उसका अनुभव ससार का अनुभव हो जाता है । उसकी अभिव्यक्ति मे समस्त जगत का कल्याण निहित रहता है । उसकी कृति के अन्तस्तल से सम्पूर्ण देश, और युग के हृदय का स्पन्दन भासित होता है । इसी श्रेणी के कवि को रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने महाकवि कहा है—"सारे देशो और सारी जातियो की सरस्वती इनका आश्रय ले सकती है। ये जो रचना करते है वह किसी व्यक्ति विशेष की रचना मालूम नही होती । कहने का अभिप्राय यह है कि उनकी उक्तियाँ देशमात्र और जातिमात्र को मान्य होती है"[1] किन्तु उपर्युक्त रवीन्द्रनाथ टाकुर की महाकवि-विषयक परिभाषा हमारे यहाँ के बाल्मीकि और व्यास जैसे आर्ष कवि के लिये ही उपयुक्त हो सकती है । सस्कृत के विदग्ध महाकवियो के लिये उपयुक्त नही हो सकती । यहाँ दोनो का भेद जान लेना आवश्यक है । रामायण और महाभारत आद्योपान्त देखने पर भी उनमे बाल्मीकि और व्यास कही दृष्टिगोचर नही होते जब कि विदग्ध महाकाव्यो मे कालिदास, भारवि, माघ, रत्नाकर, मख़क आदि कवि स्वकालिक समाज मे समरस होते हुये भी क्रमश अपने-अपने व्यक्तित्व का परिचय देना नही भूलते । इन काव्यो मे व्यक्तिनिरपेक्षत्व की भावना नही मिलती । उसमे भाषा का माधुर्य छन्द का महत्व और रस-परिपाक का सौष्ठव सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होता है। वस्तुत. महाकवि चाहे आर्ष हो या विदग्ध, होता है

१ 'प्राचीन साहित्य' पृ० २ रवीन्द्रनाथ ठाकुर ।

असाधारण प्रतिभा से संपन्न। उसके लिये अपेक्षित होती है हृदय की गंभीरता, शब्दार्थ की सुष्ठुता और शैली की विशालता। उसका अवधान शब्दक्रीडा चमत्कार (यमक, श्लेष, चित्रकाव्यादि) लक्षणग्रंथो मे निर्दिष्ट आवश्यक अंगो की पूर्ति करने की ओर न होकर, काव्य की आत्मा रस की ओर रहता है। वस्तुत केवल इतिवृत्तप्रधान काव्य या शब्दक्रीडाप्रधान काव्य महाकाव्य के अन्तर्गत नही आ सकते, भले ही उन्होने अपेक्षित बाह्यागो की पूर्ति की हो। इसीलिये आनन्दवर्धन ने कादबरी कथासार, जैसे इतिवृत्त-प्रधान महाकाव्यो को, सर्गादि, बाह्यागो से पूर्ण होने पर भी निम्न कोटि का काव्य कहते हुए, कामचार कहा है।'

सारत ऐसे रसपेशल काव्य-महाकाव्य का निर्माता और प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करने वाला कवि ही महाकवि होता है। उसके काव्य का एक-एक अग महत् होता है। क्या कथा, क्या चरित्र और क्या अभिव्यञ्जना, सभी अपनी गरिमा से पुष्ट होते है। महाकाव्य मे निहित 'महत्' शब्द बाह्या-भ्यन्तरिक महत्ताद्योतक है। कवि का महाकवित्व काव्य की बहुसंख्या पर या उसके बाह्याकार पर निर्भर न होकर उसमे विहित रसवत्ता पर निर्भर है।

उत्तरार्ध : विशेष विवेचन

रामायण और महाभारत ।

आदिकवि वाल्मीकि और व्यास के रामायण और महाभारत क्रमश उत्तरकालीन विदग्ध महाकाव्यो के उपजीव्य आर्ष महाप्रबन्ध काव्य हैं। यद्यपि रामायण और महाभारत के साथ वाल्मीकि और व्यास के नामकर्त्ता के रूप मे जुड़े हुए है किन्तु आधुनिक शोध के अनुसार ये दोनो ग्रन्थ एक की रचनायें न होकर कई हाथो की रचनायें हैं। आज प्राप्त होने वाले इनके सुष्ठुरूप के पीछे उनके विकास की एक दीर्घ परम्परा छिपी हुई है। असंख्य युगों के व्यक्तियो की प्रतिभा एव वाणी के योग से इन्हे आज का रूप प्राप्त हुआ है। इन दोनो-वाल्मीकि और व्यास-के जीवन से सम्बन्धित अनुश्रुतिया प्रचलित हैं। कही कही तो इनमे आई हुई कथाओ तथा उनसे सम्बन्धित वीरो की चर्चा तो मिलती है किन्तु व्यास, वाल्मीकि के सम्बन्ध मे कोई निर्देश नही मिलता, पाणिनि की अष्टाध्यायी मे युधिष्ठिर अर्जुन वासुदेव आदि नाम तो मिलते हैं किन्तु व्यास का नाम नही मिलता। वैदिक साहित्य मे व्यास को पाराशर्य की चर्चा तो देखने को मिलती है किन्तु वाल्मीकि का नाम नही मिलता[1] यह हम पूर्व ही कह आये हैं कि वैदिक साहित्य मे प्राप्त होने वाली दानस्तुतियो, गाथाओ, आख्यानो मे एवं इतिहास और पुराण मे प्राप्त होने वाला इनका प्रारम्भिक रूप अनेक शताब्दियो मे विकसित होकर रामायण, महाभारत और पुराण मे मिलता है। भारतीय परम्परा रामायण को आदिकाव्य और महाभारत को इतिहास, पुराण धर्मग्रन्थ एव महाकाव्य मानती रही है।

रामायण

इसकी सम्पूर्ण कथा सात काण्डो मे विभक्त है काव्योपयुक्त, आकर्षक, सूत्रबद्ध, दीर्घ एव भव्यादि गुणो से युक्त ही सर्वप्रथम रामायण कथा है। जैसा कि हमने पूर्व देखा है कि ऋग्वेद एव ब्राह्मण ग्रन्थो मे गाथा नाराशसी इतिहास, आख्यान, कथा, पुराण आदि थे।

---

१ तैत्तिरीय आरण्यक व सामविधान-'ब्राह्मण-मे व्यास पाराशर्य का नाम मिलता है १-४-३७७

History of indian Literature, by wober. P. 148.

किन्तु ये केवल घटित प्रसगो को कहनेवाली स्फुट, विस्खलित एवं अत्यन्त सूक्ष्म कथाएँ थी उनमे कथन कौशल, भावात्मक चित्रण, सरस कथोपयोगी वृत्त की योजना नहीं थी। हृदयहीन व्याध के बाण से बिद्ध काममोहित क्रौंच के लिये करुण विलाप करनेवाली, क्रौंची का जब आर्तरव वाल्मीकि ने सुना तो हृदय विह्वल होकर उनके मुख से अकस्मात् हृदयशोक श्लोक के रूप मे परिणत होकर उद्गीरित होता है। उसी सहृदय-हृदयस्पर्शिनी घटना से काव्यारम्भ होता है। अनुश्रुति है कि अनुष्टुभवृत्त मे व्यक्त ऋषि की यह शाप वाणी है—'निषाद तुमने काममोहित क्रौंच पक्षी के जोडे मे से एक को मारा है। अत तुम सदा के लिये स्थिति और सम्मान प्राप्त न करो'[1]। सुनकर स्वयं ब्रह्मा जी उपस्थित हुये और वाल्मीकि ऋषि को इस नवीन छन्द मे रामचरित लिखने की आज्ञा दी[1] और तदनुसार बाल्मीकि ने राम-सीता के उदात्त चरित्र को अर्थात् रामायण की आधिकारिक कथावस्तु—सीताहरण और रावणवध अनेक भावपूर्ण आख्यानोपाख्यान से युक्त कर प्रभावोत्पादक सरस एव प्रसन्न शैली मे रामायण को महाप्रबन्ध काव्य मे चित्रित किया है।

उपकथाये[2]:—

प्रमुख रामकथा के साथ प्रसगानुसार अनेक उपकथानको की नियोजना भी की गई है। अधिकाश उपकथाये बालकाण्ड (नायक के वश से सम्बन्धित) और उत्तरकाण्ड (प्रतिनायक रावण से सम्बन्धित) मे आती हैं। इनमे से प्रमुख ये है—बालकाण्ड मे (१) वामनअवतार, कार्तिकेयजन्म, गंगावतरण, समुद्रमथन और उत्तरकाण्ड मे ययातिकथा, नहुषकथा, वृत्रवधकथा, पुरुरवस्-उर्वशीकथा, शम्बूककथा। दो काण्डो मे इनकी अधिकता एव पूर्वकथानक से उनके सकेताभाव से अधिकाश विद्वान बालकाण्ड और उत्तर-

---

१ मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम्। बालकाण्ड सर्ग २ १५

२ यहाँ क्रौञ्च पक्षी के जोडे मे से एक का निषाद ने वध किया, यह दृश्य आगे आने वाली कथा का सूचक है। राम और सीता के जोडे मे सीता का हरण रावण ने किया। नवीन छन्द कहने का तात्पर्य यह है कि वैसे तो अनुष्टुभ्, वेद, उपनिषदो मे भी है किन्तु जिसे स्वय वाल्मीकि ने पद्य (बालकाण्ड २, १८) कहा है कि वह सम अक्षरो से युक्त और लघु-गुरु के विशेष नियम से बद्ध है। वैदिक अनुष्टुभ् अनियमित है। इसी से अग्रिम कथाभाग सूचित कर दिया है।

काण्ड को प्रक्षिप्त मानते हैं। जर्मन विद्वान याकोबी मूल रामायण मे अयोध्या काण्ड से युद्धकाण्ड तक केवल पाँच काण्ड ही मानते हैं। कतिपय प्रमाणो से सिद्ध होता है कि उत्तरकाण्ड बाद में जोड दिया गया है। वैसे तो मूल रामायण मे भी अर्थात् २ से ५ तक के काण्डो में अनेक प्रक्षिप्त अश मिलते हैं।

गत पृष्ठो मे हम देख चुके है कि रामायण भी एक विकसनशील महाप्रबन्ध काव्य है। उपर्युक्त प्रक्षिप्त अशो की अधिकता, उपकथाओ की बहुलता एव तज्जन्य कथासगठन एव अन्विति की शिथिलता का होना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। क्योकि विकसनशील काव्य मे घटनाप्रवाह ही प्रधान होता है। फिर भी रामायण, महाभारत की अपेक्षा अधिक सुसगठित अन्वितियुक्त एव काव्यकलायुक्त है। इसमे महाभारत की अपेक्षा उपकथाए बहुत कम है और बीच-बीच मे आए हुए सरस प्रसग भी कवि की भावुकता का परिचय देते है।

किन्तु रामायण का वर्तमान रूप पूर्व की अपेक्षा इतना विकसित है कि उसका मूलरूप (वीर रसात्मक काव्य) दब-सा गया है और आज रामायण मे अन्यान्य रसो—शृगार, वीर, रौद्र, अद्भुत के साथ करुणरस की ही प्रधानता है। उसमे (मूलरूप मे) वीर राम के ही महत्कार्यों का वर्णन, ओजपूर्ण भाषा मे है। वस्तुत रामायण वीररसात्मक वीणाकाव्य है, राम आयु-क्रम मे यद्यपि पाण्डवो की तरह विविधता या प्रसग बहुलता नही है फिर भी रामचरित्र वीररसप्रधान, कल्पनारम्य एव उदात्त है। जैसा कि हमने पूर्व देखा है कि वीरयुग के दो भाग होते है एक वह जिसमे वैयक्तिक वीरता के सामने नैतिक धार्मिक विचारा का कोई मूल्य नही होता और दूसरा जिसमे वैयक्तिक वीरता नैतिक विचारो से आक्रान्त हो जाती है। और एक प्रकार से वीरता का उद्दाम वेग सामाजिक नैतिकता के अकुश से, नियंत्रित हो जाता है। महाभारत मे प्रथम प्रकार, और रामायण में द्वितीय प्रकार का विकसित वीरयुग की प्रधानता है। इसमे राम और लक्ष्मण प्रारम्भ से ही अनेक राक्षसो का वध करते हुए अपनी वैयक्तिक वीरता से तथा अन्य वीरो की सहायता से रावण को जीतते हैं, किन्तु यह वैयक्तिक पराक्रम नैतिक विवेक से अनुप्राणित रहा है।

उत्तरकालीन रामायण के विकसित एवं परिवर्तित रूप को देखकर उसके प्रधान रस के सम्बन्ध मे विद्वानो का मतभेद है। आचार्य कुन्तक के अनुसार तो रामायण का अगी रस शान्त ही है। उन्होने अपने समर्थन मे 'पूर्वसूरिभि'

कहकर पूर्व आचार्यों का उल्लेख अवश्य किया है, किन्तु किन आचार्यों से उनका तात्पर्य है, ज्ञात नहीं होता[1]।

यद्यपि कुन्तक प्रतिपादित रामायण मे शान्त रस के अस्तित्व की कल्पना निराधार भी नहीं है क्योंकि रामायण का प्रतिपाद्य परमपुरुषार्थ की सिद्धि ही तो है। राम-सीता का मिलन नहीं। आनन्दवर्धन जैसे प्रतिभाशाली आचार्य के मत मे रामायण का अंगी रस करुण है, शान्त नहीं। 'रामायणे हि करुणो रस' स्वयं आदिकविना सूत्रित शोक श्लोकत्वमागत "।

वस्तुत रामायण की प्रतिष्ठा आदर्श गृहस्थधर्म की स्थापना के साथ-साथ बाहुबल वीरता पराक्रम और राष्ट्रगौरव करने मे ही है।[2] चाडविक ने कहा है कि वीरगाथाएँ सामान्यत क्षत्रियो या राजन्यवर्ग के पात्रो से ही सम्बन्धित होती है। उन्हीका आधार ग्रहण कर उनका निर्माण किया जाता है और धार्मिक कथाएँ प्रमुखत ब्राह्मणो से सम्बन्धित होती हैं। किन्तु वीरगाथाओ के नायक यदि, दया, तपस्या आदि की ओर उन्मुख होने से प्रसिद्ध होते हैं तो निश्चय से उस कथा को वीरगाथा नहीं कहा जायगा, उसका उद्भव ब्राह्मणस्रोतो से ही माना जायगा।[3]।

---

१ व जी कुन्तक (कारिका) १७ की वृत्ति

२ रामायण मे भी युद्धव्यापार यथेष्ट हैं, राम का बाहुबल भी सामान्य नहीं है, तथापि रामायण मे जो रस सर्वापेक्षा प्रधान है, वह वीर रस नहीं है। उसमे बाहुबल की विजय दुन्दुभि नहीं बजी है। युद्धघटना उसके वर्णन का मुख्य विषय नहीं है मनुष्य के चूडान्त आदर्श की स्थापना के लिये ही कवि ने इस महाकाव्य की रचना की है और उस दिन से आज तक मनुष्य के उस आदर्शचरित्रवर्णन का पाठ भारतवासी अत्यन्त आग्रह और परम आदर के साथ करते आ-रहे हैं।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर 'प्राचीन साहित्य' (हिन्दी पृ० ४-५)

३. It may be remarked here that the contrast between heroic and non-heroic elements is as a rule very clearly marked in early Indian literature. In general heroic stories are concerned with persons of the Kshattriya or Princely caste, non-heroic stories primarily with Brahmans references to other castes are rare. But stories of Princes whose fame is due to piety and asceticism,

अत: इस दृष्टि से भी महाभारत तथा रामायण में अनेक अंश ब्राह्मण प्रभाव से ही उद्भूत हैं[1]।

इसलिये रामायण के मूल रूप को वीर काव्य माना जा सकता है। दोनों में मानव-चरित्र का ही वर्णन है। किन्तु कालान्तर में ही पाण्डवों को तथा श्री राम को अवतार मान लिया गया है बाल्मीकि ने राम को नर-चन्द्रमा ही कहा है। रामायण के राम, मानव-सुलभ गुणों एवं दुर्बलताओं से युक्त होने से पूर्ण मानव ही हैं। राम-काव्य के सभी पात्र अलौकिक आवरणों में मानव ही हैं। उनमें गुणों और दुर्बलताओं का एक अलौकिक मिश्रण है उनमें एक ही स्थान पर भ्रातृभक्त भाई, क्रूरतम सापत्न माता, अलौकिक कर्तव्यनिष्ट पुत्र, अलौकिक प्रेमी पति और पतिनिष्ठ पत्नी और अलौकिक शत्रु हैं। रामायण के पात्र वीरता से समन्वित होकर आदर्श गृहस्थधर्म के प्रतिष्ठापक है। राम में राजा के, भाई के, मित्र के, पुत्र के सभी आदर्श गुण समन्वित है। वैयक्तिक पराक्रम एवं वीरता से पृथ्वीतल से ऊपर उठाकर, एक उदात्त चरित्र आदर्श स्थापित करते है। यहाँ तक की 'रामराज्य', सुराज्य का प्रतीक ही बन गया। उन पात्रों ने समाज और राष्ट्र के लिए एक आदर्श स्थापित कर दिया है। इसलिये प्रो० सिद्धान्त का यह मत कि रामायण विकसित वीर युग की रचना है। बाल्मीकि ने अपने पात्र वीरगाथाओं से लिये है और उनका चरित्र अपने युग के स्तर के अनुसार निर्मित किया है, युक्तियुक्त प्रतीत होता है।[2] रामायण का कवि यद्यपि भावपक्ष का ही प्रेमी है तथापि

---

rather than to prowess, or who come to grief through impiety, must be regarded as non-heroic. They are doubtless of Brahmanic origin

Growth of Literature, Part III by Chadwick P 466

१. डा० सुकथनकर ने पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध किया है कि महाभारत का वृद्धिगत रूप ब्राह्मण प्रभाव का ही फल है।

भंडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट की पत्रिका भाग १८, पृ० १ ७६ तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका का भाग ४५ पृ० १०५-१६२

२. 'Even though the Ramayan does not have the didactic overgrowth of the Mahabharat, it seems the product of an age of polish and Culture, quite distinct from the barbarism of the heroic age. The personality of the poet is well defined he is a creature of flesh

वह कलापक्ष का भी समर्थक है। रामायण मे अर्थालंकार एवं शब्दालंकारों की भी कमी नही है। उसमे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अनन्वय, काव्यलिंग जैसे अलंकारो की छटा दर्शनीय हैं। सुन्दरकाण्ड मे तो चन्द्रवर्णन में शब्दालंकार का प्रयोग ही किया गया है। सप्रति प्राप्त रामायण मे तो १४ विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। वे इस प्रकार हैं (१) अनुष्टुप, (२) उपजाति, (३) वंशस्थ, (४) इन्द्रवज्रा, (५) उपेन्द्रवज्रा, (६) पुष्पिताग्रा, (७) प्रहर्षिणी, (८) वैश्वदेवी, (९) अपरवक्त्र, (१०) रुचिरा, (११) वसन्ततिलका, (१२) मालिनी, (१३) वियोगिनी, (१४) भुजगप्रयात। इतिवृत्त को काव्य का एक आकर्षक रूप देने के लिये विविध वर्णन की योजना अव्याज मनोहर शैली मे की गई है। रामायण में उत्तरकालीन महाकाव्य के (पैटर्न) ढांचे का बीज सन्निहित है। उसमे कालिदास की स्त्रीरूप मे उपस्थित होनेवाली अयोध्या की पूर्व कल्पना, सुन्दरकाण्ड मे वर्णित स्त्रीरूपिणी लंका मे मिलती है। परवर्ती (महाकाव्य मे वर्णित) काल के समुद्रो, नदियो, पर्वतो, आश्रमो, ऋतुओ (हेमन्त, शरद्, वर्षा, आदि), नगरों और युद्धो के चित्र के आदर्श बीज हैं। इसके अतिरिक्त मनोभावो मत्सर, द्वेष, विलाप के भी सूक्ष्म चित्र मिलते है।[1]

किन्तु वाल्मीकि ने जिस स्वाभाविक शैली का सूत्रपात रामायण मे किया, उसका उत्तरवर्त्ती कालिदास अश्वघोष को छोडकर कवियो ने विकास कर,

---

and blood, not an abstraction like Vyas. He has tried to reproduce the atmosphere of the heroic past. He has taken his characters from the horoic legend and attempted to make them act sccording to heroic standards But his heroes are animated with the ideas and sentiments of his own age and these do not at all harmonise with deeds of blood they perform'.

P 89–90, Prof. N K. Sidhant.
'The Heroic age of India' London 1929.

१ सागर (युद्ध ४, ११०-१२४) भागीरथी (अयोध्या २, ५०-१५-२६) चित्रकूट (अयोध्या ५६-६-१२) लका (सुन्दर २, ७-२३) लक्ष्मण इन्द्रजित व राम-रावण युद्ध (युद्ध ८९, ९३-९६) अगस्त्य भ्राता का आश्रम (अरण्य ११, ४६-५२) हेमंत (अरण्य १६, ४-२६) शरद किष्किधा ३०)वर्षा (किष्किधा २८) मंदोदरीविलाप (युद्ध ११) मंथरा का द्वेष (अयोध्या ७-६) आदि।

कृत्रिमता का रूप दे दिया। उनका वे भलीप्रकार से निर्वाह नहीं कर सके। वाल्मीकि का प्रकृति विषयक प्रेम, जो स्वाभाविक रूप से रामायण मे प्रस्फुटित हुआ है, दर्शनीय है। कथात्मकता की दृष्टि से विकसनशील महाप्रबन्ध काव्यो और परवर्ती महाकाव्यो मे अन्तर है। महाकाव्यो मे कथा विस्तार सम्बन्धी आग्रह नही होता इसके विपरीत महाप्रबन्धो मे कथा विस्तार का आग्रह है किन्तु रामायण और महाभारत मे भेद है। महाभारत की तरह रामायण मे कथा का इतना आग्रह नही है। इसका परिणाम यह हुआ कि महाभारत के कथा प्रसग मे जो यत्र-तत्र प्रकृति चित्र हैं वे केवल व्यापक रेखा चित्र है। किन्तु कही-कही प्रकृति का वास्तविक रूप, गाढलाट चित्र के साथ भी अंकित है। इस प्रकार महाभारत मे प्रकृति दो रूपो म ही चित्रित है'। महाभारत की यह रेखा चित्र की सरलता फिर अन्यत्र नही मिलती। रामायण मे भी इस शैलीका प्रयोग उस समय किया गया है जब कवि का उद्देश्य प्रकृति का परिचय मात्र कराना है। पात्र-प्रकृति को देखते-दखते आग बढते जाते है।

> तौ पश्यमानौ विविधाञ्शैलप्रस्थान् वनानि च।
> नदीश्च विविधा रम्या जग्मतु सहसीतया ॥
> सारसा चक्रवाकाश्च नदीपुलिनचारिण ॥
> सरांसि च सपद्मानि युतानि जलजै खगै ॥
> यूथबन्धाश्च पृषता मदोन्मत्तान्विषाणिन ।
> महिषाश्च वराहाश्च गजाश्च द्रुमवैरिण ॥²

"मार्ग मे ये लोग विविध प्रकार के पर्वत शृगो वनो और मुरम्य नदियो को देखने जा रहे थे। नदियो के पुलिन पर सारस और चक्रवाक क्रीडा कर रहे थे। उन्होने ऐसे सरोवरो को भी देखा जिनमे कमल खिल रहे थे और जलचर पक्षी विचरण कर रहे थे। वे मृगो मतवाले गैडो, भैसो, वराहो और वृक्षो के शत्रुस्वरूप हाथियो के समूहो को देखते जा रहे थे।" इसमे कवि ने प्रमुख प्रमुख वस्तुओ उल्लेख द्वारा एक विशेष रमणीय वातावरण का चित्र अवश्य अंकित किया है। किन्तु ये सभी वस्तुएँ द्रुतगति से पथिको के साथ आगे बढती जाती है। यह दृश्य मानो पथिक किसी दूसरे को सकेत द्वारा बतला रहा हो कि हमने मार्ग मे 'यह यह' देखा इस प्रकार की सकेतात्मक सरलरेखा शैली मे प्रकृति के चित्र रामायण मे मिलते है किन्तु वाल्मीकि का ध्यान प्राय

१. महाभारत आर० पर्व० अध्या० ३९, १७-१९
महाभारत आर० पर्व० अध्याय ९६, १३-१७

२ रामायण अर० का० सर्ग ११-२-४

प्रकृति के विस्तृत संश्लिष्ट चित्रो मे ही अधिक रमा है। यह सकेतात्मक शैली विदग्ध महाकाव्यो मे भी ऐसे ही अवसरो पर देखने को मिलती है किन्तु उन्होने उसे कलात्मक रग अवश्य दिया है।

रामायण मे प्रकृति के कुछ चित्र ऐसे मिलते है जिसमे प्रकृति की क्रिया या उसकी स्थिति का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। ऐसे स्थलो पर कवि का हृदय उन दृश्यो के साथ रहने के कारण तदाकार रूप धारण कर लेता है। और इसलिये ये चित्र पूर्ण सश्लिष्ट है। राम सीता को मन्दाकिनी नदी का दृश्य बता रहे है।

विचित्रपुलिना रम्या हमसारससेविताम्।
कुसुमै रूपसंपन्ना पश्य मन्दाकिनी नदीम्।।
मारुतोद्धूतशिखरै प्रनृत्त इव पर्वत।
पादपै पुष्पपत्राणि सृजद्भिरभितो नदीम्।।
निर्धूतान्वायुना पश्य विततान्पुष्पसचयान्।
पोप्लूयमानानपरान्पश्य त्व तनुमध्यमे।।
रामायण अयोध्या का० स० १५, ३, ८, १०

'हे सीते, इस विचित्र रमणीय पुलिनवाली मन्दाकिनी नदी को देखो जिसके तट पर हस और सारस पक्षी विचरण कर रहे है, और पुष्पों से युक्त है। पवन से प्रताडित वृक्षो से युक्त यह पर्वत ऐसा लगता है मानो वह नृत्य कर रहा है। और नदी पर चारो ओर पुष्प पत्रो को विकीर्ण करता है। वायु के झोके से नदी तट पर बिखरे हुए पुष्पो को देखो और उनको भी देखो जो नदी जल मे उडकर जा गिरे हैं वे कैसे तैर रहे है।

कही-कही प्रकृति की क्रिया कलापो की तुलना मानव-प्रकृति से की गई है। ऐसे स्थलो पर दोनो मे (प्रकृति क्रिया मे और मानवीय जीवन) सामजस्य स्थापित किया गया है।

दिवस परिकीर्णानामाहारार्थं पतत्त्रिणाम्।
संध्याकाले निलीनाना निद्रार्थं श्रूयते ध्वनि ।। अयो० १२०,४,६,७
एष फुल्लार्जुन शैल कैतकैरभिवासित।
सुग्रीव इव शातारिर्धाराभिरभिषिच्यते।। किष्किधा काण्ड ।।

प्रथम चित्र मे मानव जीवन के भाव को उद्भासित किया गया है सन्ध्या का समय है जब मानव अपने क्रिया-कलापो से विश्रान्ति लेना चाहता है और दूसरे मे सुग्रीव की विशिष्ट मानव प्रकृति को अङ्कित किया गया है। इनमे कलात्मक प्रवृत्ति अवश्य पाई जाती है किन्तु सभी चित्र अपने स्वाभाविक

सौन्दर्य से उल्लासित हैं। प्रकृति के एक चित्र से, दूसरे चित्र को या प्रकृति के एक चित्र को अन्य अप्रस्तुत चित्र से उद्भासित करने की प्रवृत्ति यहाँ थी किन्तु यही विदग्ध महाकाव्यो मे विकसित होकर माघ या श्रीहर्ष के काव्यो मे रूढीवादी एव वैचित्र्यमूलक हो गई है। इस स्वाभाविक शैली का कालिदास अश्वघोष ने निर्वाह अवश्य किया है किन्तु इन दोनो कवियो ने इसे कलात्मकता का पुट देकर ही स्वीकृत किया है। इसका विवेचन हमने विदग्ध महाकाव्य की शैली के प्रसग मे किया है। किसी-किसी प्राकृतिक चित्र मे पात्र या वक्ता की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का प्रतिबिम्ब अङ्कित किया गया है।

एपा धर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता।
सीतेव शोकसन्तप्ता मही वाष्प विमुञ्चति।
कशाभिरिव हैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम्।
अन्तस्तनितनिर्घोष सवेदनमिवाम्बरम्॥
नीलमेघाश्रिता विद्युत्स्फुरन्ती प्रतिभाति मे।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी॥

रामायण किष्किं० सर्ग १ (५, ३४) २८ (१८, २०) ७ (११,१२)

इन श्लोको मे प्रकृति की प्रत्येक क्रिया तथा स्थिति मे मानव-प्रकृति की मनोवैज्ञानिक झलक अकित है। यह धूप से क्लान्त, नवीन घटाओ से सिंचित पृथ्वी सीता के समान शोक से व्याकुल होकर वाष्प (आसू) छोड रही है। आकाश मे मेघो की गर्जना से जो नाद हो रहा है, मानो बिजली के स्वर्ण कोडे की चोट से वह आन्तरिक वेदना से कराह रहा है और नील मेघ मे चमकती हुई बिजली मुझे (राम) ऐसी लगती है मानो रावण की गोद मे साध्वी सीता विकल हो। यहाँ उत्प्रेक्षालकार द्वारा 'महीवाष्प' 'सम्वेदनमिवाम्बरम्', 'नीलमेघाश्रिता विद्युत' में राम की वेदनाजन्य मन - स्थिति को अकित किया गया है।

इन चित्रो के अतिरिक्त आदिकाव्य मे आदर्शप्रकृति का चित्रण भी किया गया है। किन्तु यह आदर्शप्रकृति का चित्रणस्थल - विशेष पर ही किया गया है। जिससे स्वभाविकता का पूर्ण रूप से निर्वाह हो गया है। किन्तु इस आदर्श चित्रण का परवर्ती महाकाव्यो मे स्वरूप भिन्न हो गया है वह एकना प्रसगानुकूल नही है। दूसरे उनमे वैचित्र्य कल्पनाओ की अधिकता होने से कृत्रिम हो गये हैं।

भाषा एवं शैली की दृष्टि से रामायण वेद और लौकिक सस्कृत के (जिस पर पाणिनि का पूर्ण प्रभाव है) विदग्ध महाकाव्यो की मध्य

शृङ्खलास्वरूप है। संस्कृत भाषा के दो रूप है (१) वैदिक (२) लौकिक। इस लौकिकी भाषा मे ही वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत की रचना हुई। रामायण महाभारत की संस्कृत भाषा उत्तरकालीन सस्कृत भाषा से कुछ अंशो मे मिलती जुलती होने पर भी भिन्न है। आदिकाव्य की भाषा मे कुछ शब्द ऐसे भी प्रयुक्त है जो पाणिनि व्याकरण के अनुसार अशुद्ध है, उन्हे आर्ष प्रयोग कहकर छोड दिया गया है। किन्तु उत्तरकालीन काव्यो की भाषा अर्थात् कालिदास अश्वघोष से पाणिनि के नियमो से सयत तथा सुव्यवस्थित की गई है। अस्तु। रामायण की भाषा अनलकृत किन्तु रमणीय है। उसमे सरसता, सुबोधता एव मनोहारिता से सस्कृत भाषा का नैसर्गिक सौन्दर्य अव्याज मनोहर शैली मे प्रस्फुटित किया है।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार वाल्मीकि रामायण एक विकसनशील महाप्रबन्ध काव्य है। और इसके मूलरूप मे प्रधानता वीर रस की ही है। किन्तु अपने स्वरूप के अनुसार वह सप्रति दूसरे ही रूप मे प्रतिष्ठित है। इसलिये इसका प्रधान उद्देश्य युगानुरूप सयमित वीरता के साथ-साथ भारतीय आदर्श गार्हस्थ्य जीवन को अभिव्यक्त करना ही है। इस प्रकार रामायण प्राचीन राष्ट्रीय इतिहास एव सस्कृति का एक रमणीय कलात्मक प्रतीक है।

महाभारत—

महाभारत के रचयिता वेदव्यास का सबध महाभारत के पात्रो से था। वे कौरव तथा पाण्डवो के पितामह थे। (महा १-६३-१००) महाभारत के युद्ध के पश्चात् व्यास जी ने तीन वर्षों के अथक प्रयत्न से इस ग्रंथ की रचना की[1] सम्प्रति महाभारत मे एक लाख श्लोक मिलते हैं। इसीलिये इसे 'शतसाहस्री सहिता' कहते हैं।[2] किन्तु विद्वानो के मत मे यह शतसाहस्री रूप अनेक शताब्दियो मे विकसित हुआ है। और यह रूप आज से डेढ हजार वर्ष पूर्व भी था क्योकि गुप्तकालीन शिलालेख मे यह शत साहस्री नाम मिलता है[3]। बहुत प्राचीन काल से कौरवो और पाण्डवो की वीरता के सम्बन्ध मे अनेक गाथाएँ एव आख्यान प्रचलित थे। ऋग्वेद मे भरत वंशवाली का उल्लेख है। अथर्ववेद

---

१ "त्रिभिर्वर्षै सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनि.।
महाभारतमाख्यान कृतवानिदमुत्तमम्॥ (आदिपर्व ५६। ३२)

२. इद शतसहस्रतु लोकाना पुण्यकर्मणाम्।
उपाख्यानै सह ज्ञेयमाद्य भारतमुत्तमम्॥ १०१

३ सस्कृत साहित्य का इतिहास–बलदेव उपाध्याय चतुर्थ सस्क०, पत्र ८७

मे राजा परीक्षित का आख्यान उपलब्ध होता है। महाभारत मे शकुन्तलापुत्र भरत के वंशज कुरु और पाण्डवो मे हुए युद्ध की कहानी है। पाणिनि ने महाभारत शब्द का अर्थ महायुद्ध बताया है।[१] महाभारत के वीरों एव युद्ध के गीत प्रचलित थे जिस प्रकार ईलियद् मे वर्णित वीरगीत गानरूप मे प्रचलित थे।

वस्तुत (ईलियद्)और महाभारत का मुख्य विषय युद्ध की ही कहानी है[२] इन्ही सब गीत रूप मे प्रचलित तथा गाथाओ और आख्यानो को एकत्र कर व्यास जी ने महाभारत जैसे अनुपम साहित्यिक ग्रथ मे परिणत कर दिया। अनेक शताब्दियो मे इस मुख्य विषय के आस-पास धर्म,नीति, क्षत्रियधर्म आदि विषय अनेक प्रकार के गीत प्राचीनतर देवो ऋषियो और राजाओ के तथा कथा,जगदुत्पत्तिवाद तत्वज्ञान आख्यान जुडते चले गये यहा तक कि इन गीतो, प्राचीनतर आख्यानो व कुछ प्राचीनतर वीरो की वीरता सम्बन्धित गाथा-चक्रो का इस प्रधान विषय से साक्षात सबध भी नही जुडने पाता। प्रधान विषय के इर्द-गिर्द जुडी हुई गाथाओ एव गाथाचक्रो का रूप महाभारत के प्रधान विषय मे इस प्रकार घुल-मिल गया है कि उन्हे अलग करके मूल कहानी का पता (निर्णय) भी नही किया जा सकता।[३]इस स्वरूप का प्रधान कारण चारणो भाटो द्वारा मौखिक रूप मे गाया जाना है। और मौखिक रूप मे गाया जाने-वाला काव्य मन्तरणशील होता है, यह हम पूर्व देख चुके हैं इस प्रकार महाभारत का भी विकास होता रहा है। इस विकास की तीन अवस्थाये मानी जाती हैं (१) जय, (२) भारत, (३) महाभारत। इस ग्रथ का प्राचीन नाम जय

---

१ ४, २-५६

२ 'The History of this bloody battle . Was told in songs .. Thus as in the Iliad and in the Nibelungen— Song the tragedy of a terrible war of annihilation forms the actual subject of the heroic poem'.
History of Indian literature by Winternitz
P. 317, Calcutta Vol. I.

३ 'In any case our Mahabharat is not only the heroic poem of the battle of the Bharatas, but at the same time also a repertory of the whole of the old bard poetry'
Winternitz, Vol. 1, P 317-318 Ibid

था[1]। भारत युद्ध के पश्चात् इसी जय नामक ग्रंथ की व्यास ने रचना की और अपने शिष्य वैशंपायन को सुनाया। इसी को वैशपायन ने नागयज्ञ के समय जनमेजय को सुनाया। वैशपायन के ग्रथ का नाम भारत था इस भारत मे केवल युद्ध वर्णन था, उसमे उपाख्यानो का समावेश नही किया गया था[2]। इसी भारत को लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा ने शौनक के द्वादशवर्षीय यज्ञ के अवसर पर सुनाकर उसे महाभारत के रूप मे परिणत कर दिया। जैसा कि ऊपर लिखा है कि व्यास जी ने २४ हजार श्लोको की रचना की थी। एक स्थान पर यह भी मिलता है कि व्यासजी ने ६० लाख श्लोको की महाभारत सहिता बनायी थी। उसके चार संस्करण थे। इनमे पहला सस्करण ३० लाख श्लोको का था जिसे नारद जी ने देवताओ को सुनाया था। १५ लाख का द्वितीय संस्करण पितृलोक मे प्रचलित हुआ। उसके वक्ता देवल, असित थे। तीसरे सस्करण मे १४ लाख श्लोक थे। उसे शुकदेव जी ने, गंधर्व, यक्ष तथा राक्षसो को सुनाया था। एक लाख श्लोको के चतुर्थ सस्करण का प्रचार मनुष्य लोक मे हुआ इसके वक्ता थे वैशपायन[3] और श्रोता थे जनमेजय तथा ऋषि आदि जनमेजय के यहाँ से तथा सुनने के पश्चात् सौति उग्रश्रवा ने शौनकादि ऋषियो को वही कथा सुनाई थी।

उक्त विवेचन से महाभारत का आज प्राप्त होनेवाला स्वरूप पूर्व नही था स्पष्ट होता है। इस विषय मे चिन्तामणि विनायक वैद्य का मत है कि 'इससे यही अनुमान होता है कि महाभारत के रचयिता एक मे अधिक होगे महाभारत के ही वर्णनानुसार ये रचयिता तीन थे। व्यास, वैशंपायन और सौति। भारतीय युद्ध के बाद व्यास ने 'जय', नामक इतिहास की रचना की··· · इसमे सन्देह नही कि जो प्रश्नोत्तर वैशपायन और जनमेजय के बीच हुए होगे वे व्यास जी के मूलग्रथ से कुछ अधिक अवश्य होगे। इसी प्रकार सौति तथा शौनक के बीच जो प्रश्नोत्तर हुए होगे वे वैशपायन के ग्रथ से कुछ

---

१ नारायणं नमस्कृत्य नरचैव नरोत्तमम्,
दैवीसरस्वती चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ महाभारत मगलश्लोक
"जयोनामेतिहासोऽय श्रोतव्यो विजिगीषुणा, महा० आदि० २०-६२

२ चतुर्विंशतिसाहस्त्री चक्रे भारतसहिताम्। उपाख्यानैर्विना तावत् भारत प्रोच्यते बुधैः ॥ महा० आदि १, १०२

३ त्रिशच्छतसहस्त्रं तु देवलोके प्रतिष्ठितम्।. महा० आदि १-६-७८-९

अधिक अवश्य होंगे। साराश व्यास जी के ग्रथ को वैशपायन ने बढाया और वैशंपायन के ग्रथ को सौति ने बढाकर एक लाख श्लोको का कर दिया[1]। उपर्युक्त विवेचन इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि महाभारत एक हाथ की रचना न होकर अनेक व्यक्तियो की प्रतिभा एव वाणी के योग से निर्मित रचना है। व्यासकृत ग्रथ जय मे श्लोको की संख्या का ठीक-ठीक अनुमान करना असंभव है। पाश्चात्य विद्वानो (वेबर और मैकडानल) के मत मे उन श्लोको की सख्या ८८०० थी किन्तु यह मत श्री चि० विनायक वैद्य जी को ग्राह्य नही है। उनके मत मे 'वैशपायन के भारत मे श्लोको की संख्या २४००० होगी और शेष ७६००० श्लोको मे तत्कालीन लोगो की मनोरंजक कथाओ का वर्णन है। सौति के ग्रथ के विषय मे यह बतलाने की आवश्यकता नही कि उसका विस्तार कितना है,[2] इस वैशपायन कृत भारत मे ही सौति ने अनेक उपाख्यानो को जोडकर एक लाख श्लोको का महाभारत बना दिया'। उपर्युक्त विवेचन से यही सिद्ध होता है कि महाभारत एक विकसनशील महाकाव्य है। उसकी रचना एक कवि की न होकर अनेक प्रतिभाशाली कवियो ने की है[3]।

---

१ महाभारत मीमासा हि अनुवाद ले० चिन्तामणि वि० वैद्य, अनुवादक प० माधवराव सप्रे। पूना, सन् १९२० पृ० ५, ६

२ वही पृ० ८, ९

३. व्यास शब्द के अनेक अर्थ हैं, उनमे मुख्य अर्थ है सपादक अथवा सग्राहक। यूनानी महाकवि होमर शब्द का अर्थ भी एकत्र लानेवाला जोडनेवाला होता है। व्यासजी ने ही वेदो को ऋग्, यजु, साम और अथर्व इन चार भागो मे विभक्त किया था अतएव इनका नाम व्यास पडा। विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्मात् व्यास इति स्मृत। महाभा० आदिपर्व ६४, १३०

'The very name "Homer" which means "Piecer together" is sufficient proof that the belief in a single authorship, one and indivisible can not be maintained, and every part of the poems bears the marks of division'

'The outline of Literature' John Drinkwater Vol. one, 1940, London, P 65

उसमे निहित तत्वज्ञान, धर्म नीति काव्य तथा अवान्तरकथायें शनै शनै. सूत, मागधो की परम्परा मे विकसित हुई है। यहाँ तक कि कुछ विद्वानो के मत मे तो यह कुरु पाण्डवो का युद्ध भी वैदिक कुरुपाचाल युद्ध का ही परिवर्तित रूप है महाभारत मे वर्णित एक ही कथा अनेक स्थानो पर परस्पर विरोधी दिखाई देती है।[1]

---

१ लाक्षागृह के सम्बन्ध मे अनेक स्थानो पर उल्लेख मिलता है किन्तु एक दूसरे का विरोधी प्रतीत होता है।
(१) आदिपर्व अध्याय २ श्लोक ४३ (२) आदिपर्व अध्याय ६१ श्लोक १७-२३
(३) वनपर्व अध्याय १२ श्लोक ८६ से ९२ तक
(४) आदिपर्व अध्याय १४७
आदिपर्व अ० ६१ श्लोक १७ से २३ के अनुसार पाण्डवो ने स्वयं लाक्षागृह मे आग लगाकर, सुरग द्वारा वे भाग निकले है।

आदिपर्व के १४७ वे अध्याय के लाक्षागृह प्रसग मे बतलाया है कि भीमसेन ने माता को तो कधे पर चढ़ा लिया और नकुल सहदेव को गोद मे उठा लिया तथा शेष दोनो भाइयो को दोनो हाथो से पकड कर उन्हे सहारा देते हुये चलने लगे। इस कथा से द्रौपदी के वचन भिन्न है किन्तु इसके उत्तर मे कुछ विद्वान बताते है कि उस समय द्रौपदी का विवाह नही हुआ था उसने सुनी हुई बातें ही कही है इसलिये विरोध है। वनपर्व, ८६ से ९२ के अनुसार आर्या कुती के साथ ये बालक पाण्डव सो रहे थे। उस समय उस घर मे आग लगवा दी। कुन्ती भयभीत हो उठी। भीम ने कुन्ती को बाये अक मे धर्मराज को दाहिने अक मे नकुल और सहदेव को दोनो कंधो पर तथा अर्जुन को पीठ पर चढा लिया और सबको लिये सहसा वेग से उछल कर उन्होने भयकर आग से भाइयो तथा माता की रक्षा की। इन भिन्न उल्लेखो को देखकर होपकिन्स ने कहा कि यह सुरग शब्द ग्रीक (syrinx) शब्द से निकला है और यही इसके बाद का प्रक्षेप सिद्ध करता है। किन्तु १४७अध्याय की कथा पाण्डवो के चरित्र को दूषित कर देती है। इसी प्रकार पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् माद्री पाण्डु के साथ सती हो गई। आदिपर्व अध्या० १२५ ३१ आगे के वर्णन से ज्ञात होता है कि मुनि लोग पाण्डु के शरीर को रक्षित कर दाह सस्कार के लिये ले जाते हैं। आगे के वर्णन परस्पर विरोधी है। १२५,४।१२५,३०।१२६, ६,२३,२४। अर्जुन ब्रह्मचर्य की शपथ लेने पर भी वह विवाह करता है और शपथभग का कही भी बीच मे सकेत नही मिलता। आदिपर्व मे अर्जुन वनवासपर्व अध्याय २१२,२१३,२१७,१८,१९

किन्तु समग्ररूप मे महाभारत का विवेचन तो यही सिद्ध करता है कि महाभारत इतिहास के साथ-साथ शास्त्र काव्य भी है और उसके गीत रूप मे प्रचलित लोकगाथाओ, लोककथाओ एव अनुश्रुतियो का मिश्रित रूप आख्यान, गीतो मे परिवर्तित होकर उसका सरक्षण केवल क्षत्रियो द्वारा संरक्षित सूत मागधो की परम्परा मे ही नही हुआ है अपितु वैदिक ब्राह्मणों द्वारा किये गये प्रयत्नो ने ही वर्तमानकालीन वृद्धिगत महाभारत के रूप को जन्म दिया। इसी समग्र रूप को देखकर विण्टर-नित्स ने महाभारत को केवल एक महाकाव्य या एक ग्रन्थ न कहते हुए उसे समग्र साहित्य कहा है। किन्तु इसमे सन्देह नही कि मौखिक परम्परा से गान होने या पठन-पाठन होने के फलस्वरूप तथा किसी सबल कारणवश उसकी मूल कथा के आस-पास अनेक उपाख्यान, इतिहास, धार्मिक, दार्शनिक एव साहित्यक वर्णन जुडते चले गये। महाभारत का वर्तमान रूप निम्नलिखित कारणो से बना—
ई० पू० छठी शताब्दी का समय भारतवर्ष के इतिहास मे अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। यह वह रेखा है जो पूर्वकालीन धार्मिक एव चिन्तन क्षेत्रो मे नवीन विचारो को जन्म देती है। मानवीय जीवन के वे अनेक अन्तर्स्रोत जो शताब्दियो से प्राचीन धार्मिक विश्वासो रूढियो की तह से आच्छादित होने से अपनी अभिव्यक्ति के हेतु मुखद्वार ढूढ रहे थे, इसी अवसर पर फूट पडते है। इस काल मे विभिन्न क्षेत्रो मे राजनैतिक, धार्मिक एव आर्थिक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। विशेषत धार्मिक चिन्तन क्षेत्र मे एक नवीन युग का प्रादुर्भाव होता है जो जैनो, बौद्धो एव सनातनियो के धार्मिक विचारो को विकसित करता है। निरीश्वरवाद एव अनात्मवाद ने सनातन धर्म को

An Examination of the Stories recorded in the Mahabharat will verify the gradual growth of the whole work, for there are different and inconsistent versions of the same story in different parts Let us take the description of Pandu's death This certainly indicates a combination of two versions, in one of which the cremation of Pandu took place in the forest, while in the other his body was carried to his relatives for the ceremony

Heroic Age of India, Page 17, N K. Sidhanta.

समन्वयात्मक रूप धारण करने के लिये बाध्य कर दिया। इसी समय उपासना मार्ग मे बहुदेववाद ने (शिव, विष्णु, सूर्य गणपति) एक पारस्परिक कलह का रूप धारण कर दिया था। जैनो एव बौद्धो ने सनातन धर्म की वेदो ब्राह्मणो मे पडी हुई प्राचीन राजाओ, ऋषियो एव वीरो की गाथाओं को अपने धार्मिक पुस्तको मे स्थान देकर, अपने धर्म की प्राचीनता, पावनता एव श्रेष्ठता उद्घोषित करने के लिये प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया था। अत भारत तो समग्र साहित्य विश्वकोश का रूप देने मे यदि वह महाभारत बन गया तो कोई आश्चर्य नही। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन यह सिद्ध करता है कि सौति ने या सूत वर्ग ने धार्मिक क्षेत्र मे एकता सिद्ध करने के लिये शिव-विष्णु के पारस्परिक भेद-भावो को मिटाने के लिये कुछ ऐसी कथाओ को उसमे ग्रथित किया जिनमे इन परस्पर विरोधी देवो को एक दूसरे का उपासक चित्रित किया था। सौप्तिक पर्व (महाभारत) अध्याय १८

इसी प्रकार तत्कालीन प्रचलित वेदान्त, सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, पाशुपत, भिन्न मतो एव मोक्ष मार्गों का एकीकरण करने के लिये इन सबका लक्ष्य एक ही है, नारायण की प्राप्ति, यज्ञ, तीर्थ, व्रत, दान का भी स्थान-स्थान पर वर्णनो को इसमे जोडा।[1]

कथासग्रह के लिये सौति ने अनेक प्राचीन राजाओ, ऋषियों की कथायें जो लोगो मे तथा अन्य गाथाओ के इधर-उधर बिखरी हुई थी (१) षोडश-राजीयउपाख्यान (द्रोणपर्व) जिसका प्राचीन आख्यान शतपथ ब्राह्मण मे मिलता है (२) रामायण की पूरी सक्षिप्त कथा (वनपर्व के रामोपाख्यान) (३) सरस्वती आख्यान (शल्यपर्व) इसमे जोडा।

ज्ञान संग्रह के लिये—राजनीति, धर्मशास्त्र, तत्वज्ञान, भूगोल, ज्योतिष जैसे भूगोल की जानकारी भीष्मपर्व के आरम्भ मे मिलती है ज्योतिष (वनपर्व शान्तिपर्व) इसी प्रकार वक्तृत्व शास्त्र के सम्बन्धी कुछ तत्त्व सुलभा और जनक सवाद मे मिलते है। विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान इसमे सगृहीत करने का प्रयत्न किया।

सनातन धर्म का ज्ञान एव नीति की शिक्षा देने के लिये—स्थान-स्थान

---

१ शा० अ० ३४९, ६४, ६८, महाभारत।
सर्वेषु च नृपश्रेष्ठ ज्ञानेष्वेतेषु दृश्यते।
यथागम यथाज्ञानं निष्ठा नारायण प्रभु॥

पर सनातन धर्म के मुख्य-मुख्य तत्वो एवं नीति के तत्वो को इसमें बतलाया है।[1]

अन्त में काव्य का स्वरूप देने के लिये सौति ने मूल भारत के वर्णनों को (जैसे—युद्ध वर्णन) प्राकृतिक दृश्यो को (वनपर्व में हिमालय पर्वत के दृश्यों के वर्णन एव गन्धमादन पर्वत) शोकवर्णन को (स्त्रीपर्व) तथा विराट-पर्व के अनेक मनोहर वर्णनो को बढा दिया है।

इसके अतिरिक्त कुछ कूटश्लोक भी उसमे भर दिये हैं इन कूट श्लोको की सख्या ८८०० बताई जाती है किन्तु यह उक्ति चि० वि० वैद्य के मत मे केवल गर्वोक्ति मात्र है।[2] जैसे कर्णपर्व के ९० वे अध्याय के अन्त मे शार्दूल विक्रीडित वृत्त के श्लोक मे 'गो' शब्द को भिन्न अर्थ मे प्रयुक्त कर उसे कूटश्लोक का स्वरूप दे दिया है।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सौति ने भारत को महाभारत बना दिया या सूत वर्ग ने धर्म मतो की एकता, कथासग्रह, ज्ञानसग्रह, धर्म तथा नीति के एवं काव्यत्व प्रतिपादनादि उपदेश के लिये विभिन्न दृष्टिकोणो से भारत को महा-भारत बना दिया। विशेष परिस्थितियो मे किये गये सामूहिक प्रयत्नो के फल-स्वरूप आज का महाभारत कई युगो मे जाकर निर्मित हुआ है। इसी कारण महाभारतीय कहानी का स्वर बाद मे परिवर्तित दिखाई देता है।

एक ही स्थान पर वीरो के चरित्र—दुर्योधन, कर्ण दो-दो प्रकार के मिलते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाभारत एक सकलना-त्मक या विकसनशील महाकाव्य है। राजनैतिक और धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियो ने इसके रूपवृद्धि मे योग दिया है। हम यह भी देख चुके है कि प्राचीन इतिहास, पुराण और आख्यान सूतो—मागधों द्वारा परिवर्तित, परिवर्धित होते हुये महाकाव्य का रूप धारण कर लिया उसकी मूल कथा के चतुर्दिक शतश उपाख्यान, काव्यात्मक दार्शनिक और धार्मिक वर्णन एकत्र होने के भी ये ही कारण है। इस कथानक की अपेक्षा पाँच गुना अधिक उपदेश या नीति प्रधान भाग उसमे सम्मिलित है। इसीलिये

१ विदुरनीति उद्योगपर्व अध्याय ३२, ३९ महाभारत

२ महाभारत मीमासा चि० वि० वैद्य, अनु० हि० माधवराव सप्रे पूना पेज १३-१६

३. शान्तिपर्व अ. १७० १०, अ० ३४९, २१९

विंटरनित्स महाभारत को एक पूरा साहित्य मानते हैं[1]। उनके अनुसार महाभारत का वर्तमान रूप चौथी शताब्दी मे निर्मित हो चुका था[2]।

महाभारत की कथा के खण्डो या भागो को पर्व कहा है। सम्पूर्ण महाभारत १८ पर्वो मे विभक्त है। ये अठारह पर्व इस प्रकार हैं।

(१) आदि और।
(२) सभा—मे पाण्डवो की द्यूत क्रीड़ा।
(३) वन—मे पाण्डवो का वनवास है।
(४) विराट—में पाण्डवो का अज्ञातवास है।
(५) उद्योग—मे श्रीकृष्ण का दूत बनकर कौरव की सभा मे जाना है।
(६) भीष्म—मे श्रीकृष्ण का युद्ध मे अर्जुन को गीता का उपदेश और भीष्म युद्ध।
(७) द्रोण—मे अभिमन्यु और द्रोणाचार्य का युद्ध और वध।
(८) कर्ण—मे कर्ण का युद्ध और वध है।
(९) शल्य—मे युद्ध और उसका वध।
(१०) सौप्तिक—मे पाण्डव पुत्रो का सोते समय अश्वत्थामा द्वारा वध।
(११) स्त्री पर्व—मे स्त्रियों का विलाप।
(१२) शान्ति-पर्व—मे भीष्म का युधिष्ठिर को मोक्ष का उपदेश।
(१३) अनुशासन—पर्व मे धर्म, नीति सम्बन्धी कथाये।
(१४) अश्वमेध—पर्व मे युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ।
(१५) आश्रमवासी—पर्व मे कौरवराज धृतराष्ट्र एव गाधारी का वनगमन।
(१६) मोसल—पर्व मे यादवो का मूसल द्वारा नाश।

---

१. 'It is only in a very restricted sense that we may speak of the Mahabhrata as an epic and a Poem indeed in a certain sense, the mahabharata is not one poetic production but rather a whole literature'

History of Indian Literature VOI.I
Winternitz Calcutta 1927.

2 Ibid 464.

महाभारत बुद्ध के पहले की रचना है, परन्तु वर्तमान रूप उसे बुद्ध के पीछे प्राप्त हुआ यही मानना न्यायसंगत है,।
सस्कृत साहित्य का इतिहास पेज नं० ९०

आचार्य बलदेव उपाध्याय। परिवर्द्धित चतुर्थ सस्करण

(१७) महाप्रास्थानिक—पर्व मे पाडवो की हिमालय यात्रा ।

(१८) स्वर्गारोहण—पर्व मे पाण्डवो का स्वर्ग मे जाना वर्णित है ।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक पर्व, अन्तर्गत पर्व तथा घटनाओ के अनुसार अध्यायो मे विभक्त है। जैसे आदि पर्व मे 'अर्जुन वनवास पर्व, और इस पर्व की प्रत्येक घटना के अनुसार भिन्न-भिन्न अध्याय है ।

(१) आदि पर्व मे ही सम्भवपर्व आदि[१] ।

महाभारत का आरम्भ मगलाचरण से अर्थात् नारायण, नर और सरस्वती की बन्दना मे होता है[२] । तत्पश्चात् कवि ग्रन्थ का उपक्रम, ग्रथ में कहे हुए अधिकांश विषयो की सक्षिप्त सूची एव पात्रो और कथानक का परिचय देता है । मुख्य कथानक के अतिरिक्त महाभारत मे रामायण की अपेक्षा अधिक उपकथायें हैं जिनमे से कुछ दोनो मे समान हैं और शेष केवल महाभारत मे ही। इन उपकथाओ मे से कुछ बहुत प्राचीन है । शकुन्तला, ययाति, नहुष, नल, रामचन्द्र, सावित्री आदि उपाख्यान बहुत सरस और मानवीय मनोविकारो के सजीव चित्र होने के कारण इन्हे पाश्चात्य विद्वानो ने महाकाव्य माना है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह विदित होता है कि कथाका विस्तार अधिक होने पर भी उसमे एकता और पूर्णता है लक्ष्य विच्छेद करने वाली असंबद्धता नही है ।

कथा की गति मे शिथिलता और मुख्य कथा तथा विविध कथाओ के बीच अन्विति का अभाव, बाद किये गये प्रक्षेपो के कारण दिखाई देता है फिर भी व्यास जी ने इस महाकाव्य मे विषयान्तर करने वाले प्रसगो का नियोजन नही किया है। जैसे महाभारत का प्रधान विषय है भारतीय युद्ध, इसलिये इस भारतीय युद्ध के अतिरिक्त अन्य प्रसगो को—दुर्योधन का विवाह प्रसंग आदि कही पाया नहीं जाता। श्री कृष्ण का चरित्रवर्णन भारतीय युद्ध से सम्बन्धित है। शेष चरित्र का वर्णन नही मिलता।

पात्रो के चरित्र चित्रण मे व्यास जी ने अपनी अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया है। महाभारत के प्रधान पात्र कृष्ण, युधिष्ठिर, भीम अर्जुन,

---

१. (अ) महाभारत, आदिपर्व, सपादक हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर ।

(ब) महाभारत, आदिपर्व नीलकंठ, चित्रशाला प्रेस पूना १९२९

२. 'नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वती व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

कर्ण, द्रोण, दुर्योधन और भीष्मपितामहादि सभी पात्रों का चरित्र उदात्त एवं सजीव हैं। सभी अपनी-अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं से पूर्ण हैं। धर्म जैसा सत्यवादी, कर्ण जैसा वदान्य, द्रोणाचार्य जैसा योद्धा, श्रीकृष्ण जैसा कुशल नीतिज्ञ, दुर्योधन जैसा अटल निश्चयी और मानी का चरित्र अन्यत्र दुर्लभ है। यूनानी कवि होमर के पात्र चरित्रचित्रण की अपेक्षा व्यास जी का पात्रचित्रण अत्यन्त सफल है।

द्रौपदी जैसी आत्मगौरवप्रिया, कुन्ती जैसी तेजोदृप्ता, गान्धारी जैसी पति-परायणा, और उदात्तचरिताञ्चिता दमयन्ती, सावित्री जैसी नारियाँ भी अन्यत्र दुर्लभ हैं। प्रत्येक पात्र जीवन की कठिनाइयों का हँसते-हँसते सामना करते आगे बढता है। विद्वानो के मत मे 'महाभारत उज्ज्वल चरित्रो का वन है'।

महाभारत की वर्णन शैली प्रभावोत्पादक है। सृष्टिसौन्दर्यवर्णन मे वनपर्वान्तर्गत हिमालयवर्णन अत्यन्त स्वाभाविक एव यथार्थ है। युद्ध-वर्णन अत्यन्त सजीव एव चित्रोपम है। उसमे कही भी पुनरुक्ति नही है। वैसे तो अग रूप से सभी रसो की नियोजना की गई है किन्तु महाभारत का मुख्य रस शान्त है। उसमे युद्धो की प्रधानता होने पर भी 'वीर अग रूप मे है। इसके द्वारा व्यास जी ने जीवन की निःसारता प्रतिपादित की है और इस निःसारता द्वारा प्राणियो को मोक्ष की ओर उत्सुक किया है।[1]

महाभारत की रचना अनुष्टुप् छद मे की गई है फिर भी बीच बीच मे उपजाति वंशस्थ छन्दो का प्रयोग किया गया है। सपूर्ण महाभारत में 'शार्दूल-विक्रीडित छन्द का प्रयोग एक बार ही किया गया है। आदि कर्ण और द्रौण पर्व मे द्रुतविलबित, रुचिरा, प्रहर्षिणी, मालिनी, वसन्ततिलका, भी मिलते हैं। हाप्किन्स के मत मे महाभारत मे ९५ प्रतिशत छन्द एक प्रकार (अनुष्टुप्-त्रिष्टुप्) के है[2])

भाषा मे प्राचीन शब्द और कही कही व्याकरण की उपेक्षा भी है। 'कृष्ण उवाच 'भगवानुवाच', 'सूत उवाच आदि शब्द श्लोक के बाहर भी आते हैं।

---

१ महाभारतेऽपि शास्त्रकाव्यरूपच्छायान्वयिनि वृष्णिपाण्डवविरसावसान-वैमनस्यदायिनी समाप्तिमुपनिबध्नता महामुनिना वैराग्यजनन तात्पर्य-प्राधान्येन स्वप्रबन्धस्य दर्शयता मोक्षलक्षण पुरुषार्थ शान्तो रसश्च मुख्य-तया सूचित ॥ ध्वन्यालोक ४ उद्योत

२ Washburn Hopkins, The great Epic of India
Yale university p 192, 1920

भाषा सरल, स्पष्ट, सुबोध, श्रुतिमनोहर एवं गम्भीर है। सवादों की प्रचुरता है। सवादो की सहायता से ही पात्रो का चरित्र चित्रण किया गया है।

महाभारत मे, अनेक उपाख्यानो, नीति उपदेशो एवं वर्णनो की बहुलता होते हुये भी सर्वत्र आदि से अन्त तक एक ही व्यापक सूत्र ग्रथित दिखाई देता है। महाभारत की प्रत्येक कथा या घटना का एक ही व्यापक हेतु है और वह है 'यतो धर्मस्ततो जय'। कर्तव्य या धर्म से पराङ्मुख होकर सुख या आनन्द प्राप्त नही हो सकता, कर्तव्य या धर्म से पराङ्मुख मानव मानवता से वचित रहता है। समग्र कर्म सृष्टि का केन्द्रबिन्दु मानव है, उससे श्रेष्ठतर कोई वस्तु नही है[1]। इसलिये उसमे निहित मानवता की रक्षा कर्त्तव्य या धर्म से पराङ्मुख होकर नही हो सकती, उसके लिये अपेक्षित है सत्यानुसन्धान और इन्द्रिय-निग्रह (दम)। उपर्युक्त बातो का और इन दोनो का इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि अन्तिम लक्ष्य की सिद्धि के लिये अनायास ही ये तत्त्व ग्रथित हो जाते हैं। इसी को लक्ष्यकर व्यासजी ने एक स्थान पर कहा है कि वेद का उपनिषद् (रहस्य) सत्य है, सत्य का रहस्य है दम और दम का रहस्य है 'मोक्ष'।

रामायण-महाभारत का परवर्ती विदग्ध काव्यो पर प्रभाव एव परवर्ती काव्यो का आधार

"दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्था काव्ये रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमा॥"

ध्वन्यालोक उ ४र्थ।

'प्रत्येक साहित्य मे प्रतिभाशाली कवियो की लेखनी से प्रसूत कतिपय ऐसे मर्मस्पर्शी काव्य हुआ करते है जिनसे स्फूर्ति तथा प्रेरणा लेकर अवान्तरकालीन कविगण अपने काव्यो को सजाया करते है'[2] क्योकि रस, भाव आदि के आश्रय से काव्यार्थ अनन्त हो जाते है। वसन्त ऋतु मे वृक्षो के समान काव्य मे रस को प्राप्त कर पूर्वदृष्ट सारे पदार्थ भी नये-से प्रतीत होते हैं। ऐसे व्यापक प्रभावशाली काव्यो को 'उपजीव्य' नाम से अभिहित किया जा सकता है। सस्कृत साहित्य मे भी ऐसे कुछ उपजीव्य है जिनकी रसधारा ने साहित्य की शाखा-प्रशाखाओ को अपने जीवन से अनुप्राणित किया है। तात्पर्य सस्कृत तथा अन्य प्रान्तीय भाषा के कवियो ने इन्ही उपजीव्य काव्य सामग्री से अपने काव्य

१. 'नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्' शान्ति १८०।१२.

२ 'संस्कृत सा० इतिहास'—बलदेव उपाध्याय, चतुर्थ सस्करण पत्र ६४

का निर्माण किया। इन उपजीव्य काव्यो–महाभारत, रामायण एवं पुराण का उत्तरकालीन भारतीय साहित्य पर अत्यन्त व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। यहा तक कि भारतीय काव्य साहित्य की ९०प्रतिशत भाग इन दोनो रामायण एवं महाभारत काव्यो से प्रेरित और प्रभावित होकर निर्मित हुआ है।[१]

जैसा कि हमने पूर्व कहा है कि भारतीय परम्परा महाभारत और रामायण को क्रमश इतिहास और आदिकाव्य मानती रही है। वाल्मीकि और व्यास ने ही पाणिनि कालीन (लौकिक महाकाव्यो) संस्कृत तथा अन्य भाषाओं के कवियो को मधुमय रचना का मार्ग प्रदर्शित किया है।[२] सामान्यत महाभारत मे उत्तरकालीन कवियो ने कथाओ को तथा रामायण से शैली को ग्रहण किया है। उत्तरकालीन महाकाव्यो के लक्षण रामायण के ही आधार पर निर्मित हुए हैं[३]। क्योकि रामायण का वर्तमान रूप तो ई० पू० दूसरी शताब्दी तक निर्मित हो चुका था[४] यद्यपि इसमे भी अनेक अंश, जिनकी शैली अधिक परिष्कृत है, बाद के जुडे हुए है। सी० ह्वी० वैद्य के मत मे तो ई० स० ७०० तक रामायण मे काण्ड के विभागो का नाम सर्ग, न होकर अध्याय ही था। इसकी पुष्टि मे भवभूति ने उत्तररामचरित मे से एक श्लोक उद्धृत किया है जिसमे भवभूति ने अध्याय शब्द का प्रयोग

१ 'परवर्ती भारतीय साहित्य को इन दोनो ग्रथो ने कितना प्रभावित किया है इसका अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि यदि समूचे भारतीय साहित्य का विश्लेषण किया जाय तो अधिकाश शायद ९० प्रतिशत रचनाये इन्ही दोनो ग्रथो के आधार पर हुई हैं और आज हो रही हैं—डा०हजारीप्रसाद द्विवेदी, सस्कृत के महाकाव्यो की परम्परा, आलोचना अक १९५१.

२. मधुमयभणितीना मार्गदर्शी महर्षि —भोजकृत रामायण चपू १, ८ अहो सकलकविमार्थसाधारणी खल्विय वाल्मीकीया सुभाषितनीवी' मुरारिकृत अनर्घराघव की प्रस्तावना।

३. 'Rāmayan, the Adikavya is the first poem. It is a Mahakavya answering in every detail to the description rhetoricians. The Mahakavyas are modelled upon Ramayan ··Krishnamachariar. P. 82 Hist. of classical Sanskrit Literature 1937.

४. A History of Sans. Literature A. B. Keith. p. 42–43 London 1948

किया है।[1] इससे इतना तो स्पष्ट है कि वर्तमान रामायण का निर्माण २०० ई० पू० ही हो चुका था और रामायण की परिष्कृत शैली एवं उसके विकास मे योग देने वालो ने ही सर्वप्रथम अलकृत काव्य का सूत्रपात किया था। क्योकि परवर्ती विदग्ध महाकाव्यो के रूप शिल्प सम्बन्धी सभी तत्वो का पूर्वाभास हमें रामायण मे मिलता है। इसका सकेत हमने रामायण के अनुशीलन मे तत् तत् स्थानों पर कर दिया है। तात्पर्य यह है कि महाभारत और रामायण का परवर्ती कवियो ने विषयवस्तु रूपशिल्प मे अनुकरण कर अपने काव्यो का पुनर्निर्माण किया है और इसीलिये इन काव्यो को विदग्ध महाकाव्य कहते हैं। विदग्ध शब्द की व्युत्पत्ति हमने पूर्व ही दे दी है।

विदग्ध महाकाव्यो का आधार—

इस प्रकार रामायण एवं महाभारत उत्तरकालीन महाकाव्यो की आधार-शिला है। कालिदास ने रघुवश के ९ से १६ सर्ग का आधार रामायण की कथा से ही लिया है।[2] रघुवंश और कुमारसभव आदि काव्यो के नाम भी रामायण से ही लिये हैं।[3] कुमारसभव के कथानक की रूपरेखा भी रामायण से ही ग्रहण की है[4] यहाँ तक कि मेघदूत की कल्पना भी हनुमान-सन्देश पर ही आधारित है। कुमारदास का जानकीहरण, भट्टि का रावणवध और धनंजय के राघवपाडवीय काव्य पर भी रामायण का प्रभाव है।

महाभारत

उत्तरकालीन कवियो को महाभारत की कथा ग्रहण करने की भी प्रेरणा मिली है। महाभारत की कथा पर आधारित महाकाव्य ये है—

(१) किरातार्जुनीय, (२) शिशुपालवध, (३) नैषधीयचरित। इनके अतिरिक्त कृष्णानन्द का सहृदयानन्द, बन्धारुभट्ट का उत्तरनैषध,राघवपाडवीय, राघवनैषधीय, पांडवाभ्युदय और बालभारत, युधिष्ठिरविजय आदि।

---

१ 'बालकाण्डस्यातिमे अध्यायेऽय श्लोकः—
प्रकृत्यैव प्रियासीता रामस्यासीन्महात्मन ।
प्रियभाव स तु तया स्वगुणैरेव वर्धित ॥ चि० व्ही० वैद्य
रिडल् आफ दि रामायण १९२० पेज २६ अनु शि. गो. भावे.

२ रघुवश १, ४, १४, ७०, १५, ३३, ६४

३ रघुवशस्य चरितं चकार भगवान्मुनि । बाल ३, ९
कुमारसभवश्चैव धन्य' पुष्यस्तथैव च । बाल ३७, ३१

४. बाल. कां. ३६-३७

उपर्युक्त दो आधारो के अतिरिक्त विदग्ध महाकाव्यो के अन्य तीन आधार भी हैं (१) पुराण, (२) धार्मिक या चरित्रकथा, (३) अर्वाचीन इतिहास[1]। पुराणो के अन्तर्गत प्राय शिव या विष्णु, हरिवंश और भागवत पुराण हैं, जिन पर महाकाव्य आधारित हैं। इन पुराणो मे श्रीमद्भागवत भावपक्ष तथा कलापक्ष की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विंटरनित्स ने इसे भाषा शैली की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण साहित्यिक रचना कहा है।[2] मंख कवि का श्रीकंठचरित, लिंग, मत्स्य और शिवपुराणोक्त कथा पर आधारित २५ सर्गों का महाकाव्य है। विद्यामाधव का पार्वतीरुक्मिणीय, शैव पुराण और हरिवंश पर आधारित काव्य है। कविराज का पारिजातहरण, भागवत पुराण पर ही आधारित है। वेंकटाध्वरि का 'यादवराघवीय' भागवत और रामायण पर आधारित है। रत्नाकर राजानक का हरविजय ५० सर्ग का महाकाव्य लिंग, पद्म और स्कन्दपुराणो पर ही आधारित है।

धार्मिक चरित्र कथा—

बौद्ध कवि अश्वघोष के बुद्धचरित और सौदरानन्द महाकाव्य, ललित-विस्तर सदृश चरित्रविषयक धार्मिक कथा पर ही आधारित है। शिवस्वामी का कप्फणाभ्युदय महाकाव्य अवदानशतक पर आधारित है। भट्टारहरिचन्द्र का धर्मनाथ के जीवनचरित पर आधारित धर्मशर्माभ्युदय, वाग्भट का नेमिनाथ तीर्थंकर के जीवन चरित पर आधारित 'नेमिनिर्माण' और हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित महाकाव्य है।

अर्वाचीन इतिहास—

ऐतिहासिक प्रमाणसिद्ध महाकाव्य संस्कृत मे ११ शताब्दि तक उपलब्ध नहीं है। इसके जो कारण है उन्हे हम ऐतिहासिक शैली के अन्तर्गत देंगे। मुज-राज का दरबारी कवि पद्मगुप्त का मालवे के सिंधुराज के चरित्र पर आधारित

---

१ लक्षण ग्रथो मे महाकाव्य की कथावस्तु इतिहास, पुराण और कथा से ही उद्भूत होना आवश्यक कही है। 'इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदा-श्रयम्', दंडी १।१५

२, More over, It is the one purana which more than any of others bears the stamp of a unified composition and deserves to be appreciated as a literary production on aceount of its language style and metre

A Histry of Indian Literature—Vol I
Winternitz Calcutta. Pag, 556.

'नवसाहसाकचरित' १८ सर्ग का महाकाव्य है। इसके पश्चात कल्याण के चालुक्य राजा त्रिभुवन वल्ल पर आधारित कवि बिल्हणकृत १८ सर्गों का विक्रमाकदेवचरित, अनहिलवाड़ा के चालुक्य राजा कुमारपाल के चरित पर आधारित हेमचन्द्रकृत २८ सर्गों का २० सर्ग संस्कृत ८ सर्ग प्राकृत कुमारपाल चरित महाकाव्य, पृथ्वीराज और चव्हाणकुलोत्पन्न हमीर के चरित्र पर आधारित न्यायचन्द्रकृत १४ सर्गों का हम्मीर महाकाव्य आदि है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन हमे इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि विदग्ध महाकाव्यो की आधारस्वरूप सामग्री तीन प्रकार की है। (१) काव्य-विषयक, (२) इतिहास-विषयक, (३) पुराण-विषयक।

इतिहास विषयक सामग्री मे प्राचीन और नवीन इतिहास और पुराण-विषयक मे पौराणिक चरित्र और कथा भी सम्मिलित है और इस प्रकार इन तीनो प्रकार की सामग्री का प्रतिनिधित्व करने वाले रामायण, महाभारत और पुराण हैं।

कालिदास के पूर्ववर्ती महाकाव्य (ख)

आर्ष कवि वाल्मीकि और व्यास के पश्चात् संस्कृत के विदग्ध महाकाव्यो का सर्वप्रथम कवि अश्वघोष ही मिलता है जिसकी काव्य रचनाये बुद्धचरित, (अपूर्ण) और सौदरानन्द (सर्ग १८) आज उपलब्ध हैं। इसका तात्पर्य यह नही कि 'आदि काव्य रामायण' से लेकर कालिदास तक की (दो ढाई सहस्र वर्षों की) प्रदीर्घ अवधि मे कोई रचना ही न लिखी गई हो। वैसे तो जैसा कि हमने इसके पूर्व देखा है, वैदिक काल से आज तक काव्य शैली का निरन्तर विकास दिखाई देता है। किन्तु विदग्ध काव्य का स्वतन्त्र रूप हमे ईसवी सन् से अर्थात् अश्वघोष की कृतियो मे देखने को मिलता है। ईसवी सन् के प्रारम्भ तक, संस्कृत की विदग्ध काव्यशैली निखर चुकी थी, उसका स्वरूप निश्चित हो चुका था और उसके लक्षण और आदर्श भी सर्वमान्य हो चुके थे।[१] भरत का नाट्यशास्त्र और अश्वघोष के काव्य इसके ज्वलन्त प्रमाण है। अश्वघोष का बुद्धचरित निश्चित रूप से सिद्ध करता है कि उनके पूर्ववर्ती अनेक महान कवि

---

१. "ईस्वी सन् के आरम्भ के समय निश्चित रूप से संस्कृत काव्यशैली निखर चुकी थी, काव्य सम्बन्धी रूढियाँ बन चुकी थी और कथानक मे भी मोहकगुण, मादकप्रवृत्ति ले आने वाले काव्यगत अभिप्राय प्रतिष्ठित हो चुके थे।"—संस्कृत के महाकाव्यो की परंपरा, आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी 'आलोचना' जुलाई १९५२ पृ० ९.

मनुष्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोरागो और जटिल से जटिल मानसिक ग्रंथियों के प्रकट करने मे पूर्णरूप से समर्थ हो गये थे।[१]

आदि कवि की महत्वपूर्ण आदर्शभूत रचना के बाद जिन कवियो की प्रतिभा ने उस शैली को अधिकाधिक निखारने का सफल प्रयत्न किया, उनका और उनकी रचनाओ का पूर्णरूप से पता हमे नही । वाल्मीकि से कालिदास तक निश्चय ही अनेक कवियों ने इस क्षेत्र मे कार्य किया होगा, परन्तु दुर्भाग्यवश वह कहानी सपूर्ण रूप से विस्मृत हो गई।

महाकाव्य की रचना प्रधानत आर्षकाव्य 'रामायण' की(सरस कल्पनाओ शब्द प्रयोगो, उपमा आदि अलकारो) शैली से प्रभावित होकर होती थी। अत स्वभावत ही कुछ शताब्दियो मे महाकाव्य के रूप शिल्प की एक-सी पद्धति बार बार प्रयुक्त होने से रूढ होती गई। इसकी पुष्टि भामह और दडी के लक्षण ग्रन्थो से हो जाती है।

किंवदन्तियो का कहना है कि पाणिनि ने 'जाम्ववती जय' और 'पाताल विजय' नामक दो काव्य लिखे थे। इसके अतिरिक्त सुभाषित सग्रहो मे कुछ फुटकर पद्य भी मिलते है। विद्वानो का इस विषय मे मतभेद है कि ये कवितायें वैयाकरण पाणिनि की है या अन्य किसी पाणिनि नामक कवि की। किन्तु सस्कृत साहित्य की परपरागत प्रसिद्धि इन दोनो को अभिन्न मानती है[२]। आचार्य बलदेव उपाध्याय अपने सस्कृत साहित्य के इतिहास मे लिखते है 'यह बात बडे महत्व की है कि पाणिनि यदा कदा फुटकर पद्य लिखने वाले साधारण कवि नही थे, प्रत्युत संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम महाकाव्य के लिखने का श्रेय उन्ही को ही प्राप्त है[३]। क्षेमेन्द्र ने पाणिनि के उपजाति छन्द को चमत्कार का सार बतलाया है[४]। इस महाकाव्य का नाम कही तो पाताल

---

१ वही

२ सूक्तिग्रथो मे राजशेखर ने पाणिनि की प्रशसा करते हुए लिखा—
'नम पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह ।
अदौ व्यकरण काव्यमनु जाम्बुवतीजयम् ।।
सदुक्तिकर्णामृत मे अन्य कवियों के साथ दाक्षीपुत्र का भी उल्लेख है। महाकाव्य के अनेक स्थलो पर दाक्षीपुत्र से पाणिनि का ही सकेत मिलता है। "सर्वेसर्वपदादेशा दाक्षी पुत्रस्य पाणिने " महाभाष्य १।१।२० आचार्य बलदेव उपाध्याय-सस्कृत साहित्य का इतिहास मे उद्धृत पृ० १४३, १९५८

३ वही-पृ० १४३

४. 'सुवृत्त तिलक' ३।३०

विजय और कही पर जाम्बवतीजय मिलता है। जाम्बवती को लाने के लिये कृष्ण भगवान को पाताल मे जाकर विजय करनी पडी थी। पाताल विजय 'जाम्बवती विजय' का ही नामान्तर मात्र है। इस काव्य में १८ सर्ग थे। अत प्रबल प्रमाण के अभाव मे वैयाकरण पाणिनि तथा कवि पाणिनि को अभिन्न समझने मे कोई आपत्ति नही होनी चाहिये।

किवदती के अनुसार 'कृष्णचरित' यदि समुद्रगुप्त की कृति मान ली जाय तो उसमे उल्लिखित व्याडि 'बालचरित' नामक एक महाकाव्य के निर्माता माने जा सकते हैं। महाकाव्य के क्षेत्र मे व्याडि का बालचरित महाकाव्य प्रदीप-भूत था [1]। व्याडि के काव्यकार होने की पुष्टि अमरकोष के एक अज्ञातनामा टीकाकार की टीका से भी हो जाती है[2]। इसके अतिरिक्त कृष्णचरित मे ही वार्तिककार ने वररुचि कात्यायन को 'स्वर्गारोहण' नामक काव्य का कर्ता बतलाया है। उस काव्य की प्रशसा मे कहा गया है कि वररुचि ने स्वर्ग को पृथ्वी पर उतार दिया[3]

कुछ ग्रथो मे (१ सुभाषितावलि, २ शार्ङ्धरपद्धति, ३. सदुक्तिकर्णामृत) वररुचिकृत श्लोक मिलते हैं। किन्तु इनके साथ ही दाक्षिपुत्र पाणिनि की भी समस्या उत्पन्न होती है। क्योकि वररुचि नाम के दो विद्वान हो चुके हैं। एक तो पाणिनीय व्याकरण पर वार्तिक लिखनेवाले कात्यायन वररुचि हैं और दूसरे हैं प्राकृतप्रकाशकार प्राकृत का व्याकरण बानाने वाले वररुचि।

कवि वररुचि जिनके पद्य सुभाषित ग्रथो मे उपलब्ध होते हैं इन दोनो से भिन्न है या अभिन्न ? एक ही पाणिनि के दो रूपो के समान (कवि पाणिनि और व्याकरणकार पाणिनि) इनके भी दो रूप मान लने मे कोई आपत्ति नही होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त पतजलि ने भी अपने महाभाष्य मे वररुचि के बनाए हुए किसी काव्यग्रथ (वाररुचकाव्य) का उल्लेख किया है। यह ग्रथ भी आज उपलब्ध नही है। किन्तु राजशेखर द्वारा उल्लिखित काव्यग्रथ 'कण्ठाभरण' ही इसका नाम हो सकता है[4]। पतजलि ने १५० ई० पू०

---

१. समुद्रगुप्तकृत-कृष्णचरित श्लोक १६, १७

२ अमरकोश टीका, राजकीय हस्तलेख पुस्तकालय मद्रास मे सुरक्षित प्रति, देखिये ओरिएन्टल जनरल मद्रास पृ० ३५३, १९३२

३ स्वर्गारोहण कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि।
काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वररुचिः कवि ॥ कृष्णचरित्र

४. यथार्थता कथ नाम्नि माभूद् वररुचेरिह।
व्यधत्त 'कण्ठाभरण,' यः सदारोहणप्रियः ॥''' सूक्तिमुक्तावलि)

अपने महाभाष्य मे दृष्टान्त के ढग पर अनेक श्लोको या श्लोक खंडों को उद्धृत किया है । "वरतनु संप्रवदन्ति कुक्कुटा ", "प्रिया मयूर प्रतिनर्नृतीति प्रथते त्वया पतिमती पृथिवी" इत्यादि उदारण रूप मे उद्धृत श्लोक खड प्रसंगवश महाभाष्य मे आये हैं[1] । इसके अतिरिक्त "लुब् आख्यायिकाभ्यो बहुलम्" वार्तिक की व्याख्या के प्रसग मे वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैमरथी, आदि आख्यायिका ग्रथो के नाम दिये है । उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट हो जाता है कि पतजलि के समय विविध वृत्त तथा अलकार विभूषित काव्यो तथा आख्यायिका ग्रथो का प्राचुर्य था ।

इसके उपरान्त भी काव्य निर्माण कला प्रचलित थी, यह प्राचीन शिलालेखो से विदित हो जाता है । गिरनार के संस्कृत शिलालेख में ई० स० १५० लघुकाय गद्यकाव्यो का आनन्द मिलता है । इस शिलालेख मे प्रयुक्त सामासिक शब्द, और शब्दार्थालकार, रोचकता तथा भावप्रवणता आदि के द्योतक हैं । दूसरा विचारणीयतत्व यह है कि इसमे गद्य-पद्य के गुणबोधक परिभाषिक शब्दो—स्फुट, लघु मधुर चित्र, कान्त, अलकृत उदार—के प्रयोग किसी मान्य आलोचना सिद्धान्त की ओर सकेत करते है ।

यद्यपि ये लेख आलकारिक भाषा मे लिखे गये हैं, तथापि हैं सब गद्य मे कवि कालिदास को जिन काव्यग्रंथो से प्रेरणा मिली उनमे से कुछ कालकवलित हो गये है । सुवर्णाक्षिपुत्रप्रणीत 'बुद्धचरित' से कुमारसभव तक की यात्रा किस मार्ग से हुई है यह बताना आज कठिन है । यह विवाद आज भी चल रहा है कि अश्वघोष कालिदास के पूर्ववर्त्ती हैं या नही । किन्तु म म. वी वि. मिराशी ने अन्तरग और बहिरग प्रमाणो के आधार पर सिद्ध कर दिया है कि अश्वघोष किसी भी आधार पर कालिदास से पश्चातवर्ती नहीं हो सकते । इसके लिये प्रमाण भी दिये जा सकते हैं । १ ईसा की पाचवी शती मे बुद्धचरित का चीनी अनुवाद हो चुका था अत इस समयावधि के पूर्व ही बुद्धचरित अत्यधिक लोकप्रचलित हो चुका था । २. बुद्धचरित के २८ वे सर्ग मे अशोक की सगीति का वर्णन मिलता है । अत अश्वघोष अशोक के पश्चात्भावी थे । ३ अश्वघोष और कालिदास की काव्यशैली की तुलना सिद्ध करती है कि अश्वघोष की काव्यशैली कालिदास की निखरी हुई शैली के लिये भूमिका तैयार करती है । अश्वघोष मे उपलब्ध आर्ष प्रयोग जो कालिदास मे नही के बराबर है) तथा अश्वघोष की काव्यकला के प्राकृतिक सौन्दर्य की अपेक्षा कालिदास की काव्यकला का निखरा हुआ स्निग्ध सौन्दर्य अश्वघोष की प्राग्भाविता सिद्ध करता है ।

---

१. महाभाष्य परिच्छेद ९—१

४ बौद्धपरंपरा के अनुसार अश्वघोष कनिष्क के समकालीन थे। ५ मातृचेट की 'शतपंचाशिका' की शैली अश्वघोष की शैली से प्रभावित ज्ञात होती है। डा० जान्सन के मतानुसार मातृचेट कनिष्क के समकालीन थे सभवत कुछ विद्वान अश्वघोष को कालिदास का ऋणी मानते हैं, उन्हे श्री सुशीलकुमार दे अपने सस्कृत साहित्य के इतिहास मे उत्तर देते हैं कि "कालिदास के पश्चात अश्वघोष की स्थिति मानना, एक प्रकार से पर्याप्त कारणो के अभाव मे वाड्मयीनउत्क्रान्ति मे तुच्छ प्रगति स्वीकार करना है।" संस्कृत साहित्य का इतिहास पेज १२४ एम० के० दे

सौभाग्य से अश्वघोष की रचनाये आज उपलब्ध है। इन रचनाओ का आलोचनात्मक परिचय हम आगे देगे। अश्वघोष के पूर्व तथा पश्चात कालिदास तक के काल मे अनेक सरस काव्य रचना करने वाले कवि हुए होगे किन्तु उनमे से आज एक का भी पूर्ण काव्य उपलब्ध नही है। अत हमने अश्वघोष को ही सस्कृत के विदग्ध महाकाव्यो का प्रथम कवि माना है, पाणिनि को नही।

अश्वघोष के समसामयिक' मातृचेट है। इनके जीवन चरित के विषय मे आज भी बहुत कम ज्ञान है। आपने बुद्धस्तोत्रो का ही निर्माण किया है और इसी कारण बौद्ध जगत् मे 'स्तुतिकार' के नाम से आप प्रसिद्ध है। आपके दो स्तोत्र ग्रथ प्रसिद्ध है। १ चतु शतक, यह चार सौ पद्यो मे निबद्ध स्तुतिकाव्य है। यह ग्रथ भी आज मूल रूप मे उपलब्ध नही है। इसका तिब्बती अनुवाद उपलब्ध है। २. अध्यर्ध शतक-यह डेढ सौ अनुष्टुपो मे निबद्ध स्तुति काव्य है। इसका अनुवाद तिब्बती, चीनी आदि भाषाओ मे उपलब्ध होता है। यह काव्य बौद्ध जगत मे भाषा की सरलता तथा भावो की स्निग्धता के कारण विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इत्सिग ने इस काव्य की प्रशसा मे लिखा है "भिक्षुओं की परिषद मे मातृचेट की दोनो स्तुतियों का सुनना एक सुखद प्रसग, है। उनकी हृदयहारिता स्वर्गीय पुष्प के समान है। और उसमे प्रतिपादित उच्च सिद्धान्त गौरव मे पर्वत के उच्च शिखरो की स्पर्धा करने वाले हैं। भारत मे स्तुति के रचयिता कवि मातृचेट को साहित्य का पिता मानकर उसका अनुसरण करते हैं—इत्सिग का यह कथन तथ्यकथन है, केवल अर्थवाद नही। बौद्ध आचार्यों तथा जैन सूरियो को स्तुति काव्य लिखने की प्रेरणा देने के कारण इन्हे स्तुति काव्य का जनक कहा जाता है।[1]

१. आचार्य बलदेव उपाध्याय—संस्कृत साहित्य का इतिहास, १६५८, पृ० २०२.

अध्यर्ध शतक का एक अनुष्टुप द्रष्टव्य है—मातृचेट तथागत की स्तुति में कह रहे हैं कि हे नाथ ! आपकी करुणा परकल्याण के सम्पादन मे एकान्तत सलग्न है किन्तु (आश्चर्य यह है कि) अपने आश्रयरूपी बुद्धशरीर के प्रति निष्ठुर है। अत आपकी करुणा स्वत करुणा होते हुए भी करुणा-विहीन है। कवि ने इस पद्य मे विरोधाभास उत्पन्न कर हृदय को रस से पूर्णत भर दिया है।

"परार्थैकान्तकल्याणी कामं स्वाश्रयनिष्ठुरा ।
त्वय्येव केवलं नाथ ! करुणाऽकरुणाऽभवत् ।। अध्यर्ध शतक पद्य ६४

'बौद्ध-अवदान भी कालिदास के पूर्ववर्ती है। ये और आर्यशूर की जातकमाला भी संस्कृत काव्य साहित्य के विकास मे एक मंजिल है। इनकी भाषा सरल और भावपूर्ण है। अवश्य ही पूर्ववर्ती होने से इन्होने शैली मे स्निग्धता लाने मे योग दिया है।

कालिदास के पूर्व प्रवाहित काव्यधारा की सरलता, स्निग्धता और अलकारिक प्रासादिकता का ज्ञान, कवि हरिषेण रचित प्रयागस्थ शिलास्तम्भ-प्रशस्ति मे होता है। यह प्रशस्ति चम्पूकाव्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमे समुद्रगुप्त का यशवर्णन, विभिन्न अलकारो का—अनुप्रास, उपमा, श्लेष, रूपक,—परिमित उपयोग सामासिक पदो मे किया गया है।

निम्नलिखित श्लोक से कवि हरिषेण की काव्य प्रतिभा का ज्ञान हो सकता है।

"आर्योहीत्युपगुह्य भावपिशुनैरुत्कर्णितै रोमभिः ।
सभ्येषूच्छ्वसितेषु तुल्यकुलजम्लानाननोद्वीक्षित ।।
स्नेहव्याकुलितेन बाष्पगुरुणा तत्वेक्षिणा चक्षुषा ।
य पित्राभिहितो निरीक्ष्य निखिलांपाह्येवमुर्वीमिति ।।

एक ओर तो राजसिंहासन हमे ही प्राप्त हो इस अभिलाषा से उसके पुत्र बैठे है तथा दूसरी ओर सम्राट् किसी अयोग्य व्यक्ति को राज्य का उत्तराधिकारी न बनावे, इस आशका से भयभीत सभासद निर्णय की प्रतीक्षा मे बैठे है ऐसे प्रसग मे, यही केवल योग्य अधिकारी है ऐसा कहकर रोमांचित तथा गद्गद् चित्त से चन्द्रगुप्त ने समुद्रगुप्त का आलिंगन किया और प्रेमाश्रुपूर्ण तथा तत्वान्वेषी नेत्रों से उसे देखकर कहा कि 'तू सारी पृथ्वी का पालन कर' यह सुनकर अन्य राजकुमारो' के मुख निष्प्रभ हो गये और सभासदो ने सन्तोष की सासली।[1]

---

१. 'कालिदास, अनुवादहिन्दी म. म वा वि मिराशी पृ० १०१

कालिदास के पूर्व अनेक काव्य, नाटक, आख्यायिकाये और पुराणो की अमित सम्पदा विद्यमान थी, जिनसे कालिदास ने प्रेरणा और सामग्री प्राप्त की। इनमें से अनेक का तो, विनीत भाव से यह कहते हुए—"मैं हूँ तो मन्द बुद्धि किन्तु कवि यश का अभिलाषी हूँ। जिस मणि मे पूर्व मे ही छिद्र कर दिया गया है; उसमे डोरा पिरोने मे कुछ भी कठिनाई का अनुभव नही होता, उसी प्रकार पूर्वकवि वर्णित इस (सूर्यवश) मे मेरा प्रवेश होगा,।[1] पूर्वकवि रचित काव्यो की ओर संकेत कर दिया गया है। कुछ का नाटक की भूमिका में नामोल्लेख किया गया है। इस प्रकार अपने काव्य का अन्तरग और बहिरंग पुष्ट करने मे उपयोग किया गया है जिससे उपलब्ध प्राचीन काव्य की कल्पना और उचित साम्य स्पष्ट हो जाता है।

स्पष्टत उल्लिखित पूर्ववर्ती कवि भास, सौमिल्ल और कविपुत्र हैं। तीनो नाटककार थे। जिनमे अन्तिम दो कवियो की कोई कृति उपलब्ध न होने से वे नाममात्र हैं। भास की रचनाएँ (१३ नाटक) उपलब्ध हो चुकी हैं। इन नाटको की कथावस्तु रामायण, महाभारत और पुराण पर आधारित है। अश्वघोष, भास और कालिदास के नाटको मे प्रयुक्त प्राकृत भाषा के रूप का विचार-विमर्श कर विद्वानो ने भास की स्थिति दोनो—अश्वघोष और कालिदास—के मध्य मानी है। अर्थात् ईसवी सन् की तृतीय शताब्दी।

भारतीय इतिहास की खिस्तोत्तर चौथी और पाँचवीं शताब्दी का काल सुवर्ण युग की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। क्योंकि जैसे उत्तरी भारत मे गुप्त सम्राटो के उदार आश्रय मे अन्यान्य कलाओ की अभिवृद्धि के साथ-साथ सस्कृत वाङ्मय मे भी उत्क्रान्ति हुई, वैसे ही दक्षिण मे वाकाटक सम्राटो के उदार आश्रय मे सस्कृत और प्राकृत वाङ्मय की भी। दुर्दैव से कालिदास पूर्व-कालीन विदर्भ देश के संस्कृत काव्य यद्यपि आज उपलब्ध नही है, तथापि जो कुछ सुभाषित संग्रहो मे अवशिष्ट है, वाकाटक युवराज दिवाकर सेन कृत कहे जाते है।[2]

सस्कृत काव्यो की तरह प्राकृत काव्य की अभिवृद्धि भी इस काल मे हो चुकी थी। उल्लेखनीय बात यह है कि स्वत वाकाटक राजाओ ने प्राकृत

१ रघुवश सर्ग १, श्लोक ३, ४

'अथवा कृतवाग्द्वारे वशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभि ।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गति ॥

२ श्रीधरदास का सदुक्तिकर्णामृत. २,३४, ४

काव्य की उत्कृष्ट रचनायें की थीं। द्वितीय प्रवरसेन कृत महाराष्ट्री प्राकृत का सेतुबन्ध, या रावणवहा, (रावण वध) उत्कृष्ट महाकाव्य आज उपलब्ध है। यह कालिदास की भाषा शैली से प्रभावित होने से कालिदासकृत भी कहा जाता है—[1] इसी प्रकार का दूसरा महाकाव्य 'हरिविजय, वाकाटक नृपति सर्वसेनकृत कहा जाता है। इस महाकाव्य का उल्लेख साहित्याचार्यों ने अपने-अपने लक्षण ग्रथो मे यत्र तत्र किया है। किन्तु सर्वसेन के विषय मे कुछ वर्षों पूर्व कुछ भी ज्ञात नही था। सन १९३९ मे वऱ्हाड प्रान्त के अकोला जिले मे वाशीम नामक स्थान पर ताम्रपट प्राप्त हुआ है। जिससे सर्वसेन का नाम सर्व प्रथम ज्ञात होता है। इसके विषय मे म म वा वि. मिराशी ने एपिग्राफिया इडिका मे लेख प्रकाशित कर सर्वसेन के विषय मे जानकारी दी है।

राजा सर्वसेन के विषय मे उल्लेख दडी ने अपनी अवन्तिसुन्दरी कथा मे प्रारम्भिक कविप्रशसात्मक एक श्लोक मे किया है। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित एक ही प्रति प्राप्त हुई है। जिसका अधिकाश भाग कीडो ने नष्ट कर दिया है। सर्वसेन के विषय मे श्लोक इस प्रकार है—

"राज्ञा श्रीसर्वसेनेन.... .
... .विजय हरे ॥"

कवि प्रशसात्मक श्लोको मे सर्वसेन के विषय का श्लोक कवि भास के पश्चात् और कालिदास के पूर्व लिखा होने से राजा सर्वसेन की स्थिति भास के पश्चात् और कालिदास के पूर्व अर्थात् ई० स० ३३०—३५० मानी जाती है।[2] ध्वन्यालोककार के प्रबन्ध काव्य मे ऐतिहासिक वृत्त के रस विरोधी कथाश को छोडकर, अभीष्ट रसोचित काल्पनिक कथा का निर्माण करना चाहिये, यह उपदेश दिया है। ऐसे रसपूर्ण ऐतिहासिक प्रबन्धो का उदाहरण देते हुए सर्वसेनकृत हरिविजय का उल्लेख किया है।[3]

वक्रोक्तिकार कुन्तक ने काव्यशैली के तीन भागो का उल्लेख करते हुये (१) वैचित्र्य, (२) सुकुमार (३) मध्यममार्ग, सुकुमार मार्ग के उदाहरण रूप मे कालिदास और सर्वसेन के काव्यो को बतलाया है। इस प्रकार भोज ने अपने सरस्वतीकठाभरण और शृगारप्रकाश दोनो ग्रथो में हरिविजय

---

१ सशोधनमुक्तावलि सर—१, पृ० १४०, १४१ म म वि वि. मिराशी.

२ संशोधनमुक्तावलि, म म. वि वि मिराशी सर—१, पृ० १४४

३. ध्वन्यालोक ३ उद्योत कारि० १४

से अनेक गाथाओ का उल्लेख किया है[१]। इनके पश्चात अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक की लोचनटीका मे[२], हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासन की टीका मे हरिविजय का यत्र तत्र उल्लेख किया है[३]। इस प्रकार उपर्युक्त जानकारी एव महाभारत[४] के उल्लेखो तथा हरिवंश[५] के एकादश अध्याय मे वर्णित कथा से निम्नलिखित हरिविजय का स्वरूप ज्ञात होता है।

"हरिविजय काव्य मे आदि से अन्त तक एक ही स्कन्धक नामक छन्द की नियोजना की गई थी। उसमे कही कही गलितक छन्द मे वर्णित गाथा प्रक्षिप्त रूप मे थी। उसके प्रत्येक सर्ग की अन्तिम गाथा म उत्साह शब्द ग्रथित था। उसका कथानक—सत्यभामा को प्रसन्न करने के लिये इन्द्र का पराजय कर कृष्ण के द्वारा पारिजात वृक्ष को स्वर्ग से भूमि पर ले आना है। सर्वप्रथम कृष्ण ने सात्यकी को इन्द्र के पास दूत रूप मे भेजा, किन्तु इन्द्र को कृष्ण की माग स्वीकार न होने से, कृष्ण ने उस पर आक्रमण किया। हरिविजय मे, नगरवर्णन' नायकवर्णन, वसन्तऋतुवर्णन, सूर्यास्तवर्णन, आदिवाहनवणन, आदि विषय आये है।

उपर्युक्त हरिविजय महाकाव्य के अतिरिक्त सर्वसेन ने कुछ प्राकृत सुभाषितो की रचना भी की थी। पजाब मे सप्तशती के कुछ भाग पर पीताम्बर की टीका प्रकाशित हुई है। उस टीका से निर्णयसागरप्रति के क्रमाक ५०४ और ५०५ की गाथाये सर्वसेन की थी। यह ज्ञात होता है। भुवनपाल नामक अन्य टीकाकार ने २१७ और २३४ की गाथाओ को सर्वसेन कृत कहा है।[६]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि हरिविजय प्राकृत भापा में होने पर, भी उसका स्वरूप सस्कृत के निदग्ध महाकाव्यो रघुवश,

१ एव सहजसौकुमार्यसुभगानि कालिदाससर्वसेनादीना काव्यानि दृश्यन्ते कारि० ५२ प्रथमोन्मेष, व जी

२ सरस्वतीकठाभरण, निर्णय सागर प्रेस पृ० ६५५

३ हरिविजये कान्तानुनयागत्वेन पारिजातहरणादिनिरूपितमितिहासेष्व दृष्टमपि। ध्वन्यालोक लोचन, ३ उद्योत

४. काव्यानुशासन स० २० छो० पारीख भाग १ पृ० ४५७, ४६१

५. उद्योग पर्व अ १६० श्लोक ४९. द्रोणपर्व, अ ११, श्लोक २२–२२,. स० मु. १०, २४, ६५, ७५

६ सशोधन मुक्तावलि सर १ पृ० १४७-५० म० म०, वि० वि० मिराशी

किरातार्जुनीय शिशुपालवध की तरह ही था। महाकाव्य मे आवश्यक सर्व विषयो का वर्णन उसमे निहित था। इसलिये म. म. वा वि. मिराशी-जी ने विद्यमान सपूर्ण सस्कृत और प्राकृत महाकाव्यों मे यह प्राचीनतम होने से हरिविजयकाव्य को सस्कृत के विदग्ध काव्यो के लिये आदर्शभूत माना है। हरिविजयकाव्य को शैली से प्रभावित होकर स्वभावत संस्कृत के विदग्ध महाकाव्यो के रूपशिल्प पद्धति का विकास हुआ होगा।[1]

उपर्युक्त विवेचन हमे इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि वाल्मीकि और व्यास के पश्चात् प्रथम शताब्दी तक अर्थात् अश्वघोष तक संस्कृत साहित्य मे कोई विदग्ध महाकाव्य आज उपलब्ध नही होता। प्रथम शताब्दी के अश्वघोष कृत दो महाकाव्य ही आज प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध हैं। पाणिनि के काव्य समुद्रगुप्त के कृष्ण चरित मे, व्याडि आदि के नाम से उद्धृत महाकाव्यो के नाम, महाभाष्य मे महाकाव्य की शैली पर प्राप्त होने वाले श्लोक या श्लोक-खण्ड,[2]अलकृत शैली मे लिखे गये शिलालेख और पिङ्गल मे आये विभिन्न छन्दो के नाम, कालिदास के पूर्व सस्कृत काव्य साहित्य की समृद्धि और उसकी निरन्तरता सिद्ध करते है।

म. म. वा वि मिराशी जी द्वारा प्रस्तावित सर्वसेन कृत प्राकृत से अलकृत हरिविजय महाकाव्य आज उपलब्ध नही है। ताम्रपट और लक्षण ग्रन्थो मे उद्धृत उद्धरणो के आधार पर ही, पूर्व चर्चित महाकाव्यो की तरह उसका अस्तित्व सिद्ध होता है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ के अध्ययन से यह विदित होता है कि सस्कृत, पालि और प्राकृत साहित्य की धाराये समानान्तर रूप से ५००ई० तक प्रवाहित रही। संभवत. (आज उपलब्ध न होने से) पालि मे रसात्मक साहित्य का निर्माण ही नही हुआ। पालि केवल धर्म की भाषा समझी गई। इसलिये अश्वघोष ने पाली को छोडकर सस्कृत भाषा का आश्रय लिया। पाँचवी शताब्दी के पूर्व से ही प्राकृत साहित्य भी संस्कृत

१. वही

२. We have, however, invaluable help in appreciating the growth of kâvya in the incidental citation of stanzas clearly taken from poems of the classicāl type
A. B. keith A History of Sanskrit Literature, 1928, page 46.

साहित्य की तरह राजाश्रित हो गया। यहाँ तक कि वाकाटक राजाओ ने प्राकृत मे उत्कृष्ट काव्य रचना की थी। फलत प्राकृत साहित्य ने संस्कृत साहित्य की परंपरागत रूढियो को आत्मसात् कर लिया। प्राकृत मे लिखना एक प्रकार से विशिष्ट बात समझी जाने लगी। इस प्रकार प्राकृत साहित्य मे संस्कृत साहित्य के भावो, विचारो, रूढियो से साहित्य का निर्माण होने लगा। इसका यह तात्पर्य नही कि संस्कृत ने ही प्राकृत को प्रभावित किया, किन्तु दोनो ने एक दूसरे को प्रभावित किया है, यह कहने मे सकोच नही होना चाहिये। प्राकृत काव्य के कवियो ने स्वय राजा होने से या राजाश्रित होने से दरबारी वातावरण तथा अलकृत काव्य शैली को अपनाया। किन्तु दुदैव से अलकृत प्राकृत काव्य शैली का अधिकाश काव्य आज उपलब्ध नही है। इस प्रकार हम सर्वसेन कृत हरिविजय काव्य कालिदासादि कवियो के काव्यो से प्राचीनतम होने से अलकृत काव्य शैली का आदर्श काव्य मानते है। किन्तु प्रथम शताब्दी मे उपलब्ध अश्वघोष के काव्य ही सस्कृत के विदग्ध महाकाव्यों मे प्रथम उपलब्ध महाकाव्य है, जिनमे कुछ ऐसी काव्यरूढियाँ मिलती हैं जिनका प्रयोग कालिदास से लेकर हर्ष तक निरन्तर रूप से मिलता है।

षष्ठ अध्याय

संस्कृत महाकाव्य के प्रेरक तत्त्व

साहित्य और संस्कृति का सम्बन्ध सांख्य के सत्कार्यवाद का समर्थक है। अर्थात् कारणसामग्री के द्वारा कार्य अव्यक्तावस्था से व्यक्तावस्था मे आता है। कारण के अभाव मे कार्य की कल्पना भी नही की जा सकती। इसी प्रकार जिस देश की जैसी संस्कृति होगी, उस देश का वैसा ही साहित्य होगा। भौतिकवाद पर आश्रित संस्कृति का साहित्य कदापि आध्यात्मिक नही हो सकता। और आध्यात्मिकवादगर्भित संस्कृति भौतिकवादानुप्राणित साहित्य को कभी जन्म नही दे सकती। इसीलिये साहित्य से संस्कृति का ज्ञान होता है। प्रारम्भ से ही भारतवर्ष धर्म प्रधान देश रहा है। इस देश का समस्त कार्य और व्यवस्थाएँ—सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि धर्म से ही अनुप्राणित रही है। धर्म ही इनका केन्द्रबिन्दु रहा है। धर्म की व्यापकता के कारण ही यहा पर धार्मिक ग्रंथो की रचना सर्वाधिक हुई है। आर्ष साहित्य (वेद-वेदाग, स्मृतियाँ, महाकाव्य और पुराण) और लोक-साहित्य भी धार्मिक सपदा से पूर्ण है। यही साहित्य के मूल स्रोत हैं। इन्ही मूल स्रोतो से भारतीय संस्कृति की आत्मा सदा झाकती रहती है। अत हम कह सकते है कि संस्कृत साहित्य स्मृत्यनुमोदित वर्णाश्रमधर्म की संस्कृति से अनुप्राणित है। यही वर्णाश्रम धर्म की संस्कृति का प्रतीक है। उसे समझने के लिये स्मृत्यनुमोदित वर्णाश्रम धर्म का आदर्श 'पैटर्न' सामने रखना आवश्यक है।

किन्तु इसके पूर्व हमे 'संस्कृति, कवि और कृति' के अमिट सम्बन्ध को भी देख लेना चाहिये। कवि और युग-संस्कृति दोनो एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। "जिस समय कवि का प्रशिक्षण चलता है, उस समय कवि के देखने तथा उसकी चिन्तन शक्तियाँ, उसकी नैतिक तथा सौन्दर्य सम्बन्धी संवेदनाएँ युग तथा समाज की रुचियो द्वारा निर्धारित होती हैं। युग तथा जाति की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा मे प्रविष्ट होते हुए ही, प्रतिभाशाली शिक्षित बनता है[1]।" और इस सांस्कृतिक तथा युग की रुचियो से अनुप्राणित

---

१ 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डॉ० देवराज, पृ० १९७ प्रकाशन ब्यूरो उ० प्र०

प्रतिभाशाली कवि के हृदयगत विचारो का प्रतिबिम्ब उसकी कृति मे झलके बिना नही रहता। यह तो रही युग-प्रभाव की बात। प्रतिभाशाली कवि युग को कुछ नवीन मान्यताएँ, परम्परा देकर युगप्रवर्तक का रूप धारण करता है। प्रथम वह युगचेतना मे अन्तर्निहित मूल्यो विश्वासो और प्रतीतियो को मुखरित करता है। दूसरे वह अम्लान, सर्जनात्मक प्रतिभा से अपनी युग चेतनाओ, अनुभूतियो, सवेदनाओ के अनुरूप कुछ साहित्यिक परम्पराओ को जन्म देता है। यहाँ प्रतिभाशालीकवि तथा पडितकवि मे भी भेद जान लेना आवश्यक है। प्रतिभाशाली यथार्थ से सीधा सम्पर्क स्थापित करता है। किन्तु पंडित यथार्थ को स्वीकृत मान्यताओ के माध्यम से देखता है। वह दूसरो द्वारा मान्य, स्वीकृत सिद्धान्तो, धारणाओ का अनुसरण करना ही अधिक श्रेयस्कर समझता है। प्रतिभाशाली रूढिवादी नही होता। कालिदास उन प्रतिभाशाली कवियो मे आते है जो युग को नवीन सिद्धान्तो, रूढियो और परम्पराओ को देते है। और पण्डितकवि इन परम्पराओ मे ही फँसे रहते हैं। विद्वान लेखक ने ठीक ही कहा है कि 'वह साहित्य जो सास्कृतिक आवरणो अर्थात् प्रथाओ तथा रूढियो मे ज्यादा फँस जाता है धीरे-धीरे अपनी शक्ति या प्राणवत्ता को खो देता है"[1]। कालिदासोत्तर विदग्ध महाकाव्य की परम्परा के हर्षोत्तर कवि इन्ही रूढियो मे फँसे दृष्टिपथ मे आते हैं।

स्मृत्यनुमोदित वर्णाश्रमपद्धति

आर्यों को आर्येतर जातियो का सामना करना पडा। उनके सामने अनेक समस्याएँ थी उनमे से प्रमुख थी—जातिमिश्रण की समस्या। आर्य जाति की विशुद्धता, सस्कृति एव धर्म का रक्षण करने के लिये वर्णाश्रम धर्म की प्रथा का प्रचलन किया गया। इस व्यवस्था के अनुसार आर्यों ने समाज को चार वर्णों मे विभक्त किया। अन्तिम वर्ग मे अनार्य, विजित, क्रीत मनुष्य सम्मिलित किये गये। किन्तु वर्णव्यवस्था की दृढ़ता होने पर भी चारो वर्ण अपने-अपने कथित धर्म और कर्तव्य के विरुद्ध आचरण करते रहे। इनके उदाहरण गौतम और बोधायन ने दिये हैं। विशेष परिस्थितियो मे ब्राह्मण तथा क्षत्रिय अन्य वर्णों के कर्मों का अनुसरण कर सकता था[2]।

१ वही० पृ० १९३
२. गौतम धर्मसूत्र ७, ६–७ ७, २२–२४, २६, ७–६२
बोधायन—२, २, ७७; २, २, ८०

कालान्तर से अनार्य जातियों के साथ सम्पर्क होने से आर्यों की वर्णसंकर जातियाँ भी चतुर्थ वर्ण में परिगणित की गई। कई सदियों तक अनुलोम, प्रतिलोम विवाह भी होते रहे। निम्नवर्ण की स्त्रियों से विवाह करना निषिद्ध था किन्तु कई भारतीय सम्राटों की ग्रीक पत्नियाँ तक थी।

यह वर्णसंकरप्रथा अर्थात् भारतीय समाज मे बाह्य तत्त्वों का मिश्रण रुका नही। ग्रीक, शक, हूण आदि भारतवर्ष में आने पर तथा आर्य धर्म स्वीकार कर लेने पर, उन्हे आर्यों के समाज में आत्मसात कर लिया गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था दृढतर होती जा रही थी। उसमे अब ईषद् परिवर्तन भी नही हो सकता था[1]। महाभारत मे ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध शील पर आधारित वर्ण-व्यवस्था की आवाज उठ रही थी। संभवत: यह बौद्ध धर्म के प्रचार का प्रभाव था[2]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईसा के कई शताब्दियों पूर्व से ही यहाँ वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था प्रचलित हो चुकी थी। मौर्यों के पश्चात ब्राह्मण धर्म ने फिर से जोर पकडा और यह शुगो, कण्वो और सातवाहन का काल ब्राह्मणों का काल था। इसी शुग काल में अर्थात् २०० ई० पू० मनु ने मनुस्मृति का प्रतिपादन किया। इसने वेद-प्रामाण्य, वर्णाश्रमधर्म, यज-नयाजन, ब्राह्मणधर्म की श्रेष्ठता आदि बातो को पुन स्थापित करने का दृढ प्रयत्न किया और यह उत्तरोत्तर अर्थात् ईसा की ७-८ शताब्दी तक दृढता से बढती ही गई जो हर्ष के उत्तरवर्ती साहित्य में स्पष्ट अंकित है।

ईसापूर्व प्रथम शताब्दी तक अनुलोम प्रतिलोम वर्णसंकर आदि थोडा-बहुत होता रहा। किन्तु एक समय ऐसा आया, विद्वानों के मत में मालूम नहीं क्यों, हमारे मत मे अनुलोम, वर्णसकर की अधिकता से भयभीत होकर तथा जाति की विशुद्धता स्थिर रखने के लिये ही, जब जीवन को अभिनव बनाने वाले बाह्य तत्त्वो को एकदम रोक दिया गया और वह (निर्जीव-सा, नावीन्य तथा गतिशून्य) स्थिर हो गया। Stereotyped पूर्व सकेतानुसार भारतीय समाज को शुग काल से ही एक निश्चित ढाँचे 'पेटर्न' मे ढालने

---

१ महाभारत, अनुशासन ४७, १८
स्मृताश्च वर्णाश्चत्वार पंचमो नाभिगम्यते।
मनु १०,४ चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रोनास्ति तु पंचम·

२. महाभारत, शान्ति, १८९,४-८

का प्रयत्नारम्भ हुआ था। उत्तरकालीन स्मृतिकारो ने वेद के स्वीकृत तत्वो को भी, समाज की एक निश्चित रूपरेखा मे सीमित करने के लिए—निषिद्ध कहकर (कलिवर्ज्य के रूप मे 'अग्निहोत्र' गवालंभ सन्यास, पलपैतृक, देवराच्च सुतोत्पत्ति कलौ पञ्च विवर्जयेत्। निर्णयसिन्धु पूर्व भाग, पृ० २६३, रोक दिया गया। उपनिषदो के पश्चात् सूत्रकाल प्रारम्भ होता है। इस साहित्य मे (श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र) श्रौतसूत्र यज्ञ की विधि - विधान से सम्बन्धित है। गृह्य और धर्मसूत्रो मे मनुष्य के आचार, कर्तव्य, सस्कार आदि से सम्बन्धित चर्चा है। कालान्तर से इन्ही धर्मसूत्रो के आधार पर स्मृति साहित्य का भी उदय हुआ। इन्होने भी धार्मिक एव सामाजिक जीवन का प्रतिपादन किया। यद्यपि सूत्र साहित्य स्मृतियो के पूर्व का है।

प्रमुख धर्मसूत्रो मे गौतम, बोधायन, आपस्तम्ब और वशिष्ठ के धर्मसूत्र प्रमुख है। इनका रचना काल ६०० ई० पू० के बीच मे आता है।

स्मृतिकारो मे प्रमुख एव पथ-प्रदर्शक मनु है। मनु-पुष्यमित्र के २०० ई० पू० समसामयिक थे। मनु के पश्चात् याज्ञवल्क्यस्मृति ३००-४०० ई० आती है। याज्ञवल्क्य स्मृति मे मनु सहित २० स्मृतियो की सूची मिलती है।[1]

उत्तरोत्तर इनकी सख्या बढती गई। धर्मसिन्धु और मयूख मे १०० स्मृतियो की सूची दी गई हैं। पुराणो मे भी धर्मशास्त्र की चर्चा मिलती हैं। १०वी शती से तो स्मृति टीकाओ तथा निबन्धो की वृद्धि होती गई है। इससे इतनी बडी सख्या से स्पष्ट ज्ञात होता है कि सामाजिक जीवन को नियमो मे बाँधने के लिये निरन्तर प्रयत्न चलता रहा है।

वास्तव मे प्राचीन धर्मसूत्रो का किसी न किसी वैदिक शाखा से सम्बन्ध रहता था, किन्तु मनुस्मृति किसी भी वैदिक साखा से सम्बद्ध नही है। यह अपने स्वतन्त्र विचारो का प्रतिपादन करती है, इसलिये इसमे पौराणिक धर्मशास्त्रो से विषमता मिलती है। वस्तुत बौद्धधर्म के प्रभाव एव सम्पर्क से छिन्न-भिन्न आर्य सस्कृति की पुन स्थापना के लिये ही इसका प्रतिपादन किया गया था। वेद काल में जिस स्वतन्त्र जीवन की झलक मिलती है,

---

१ मनु २ अग्नि, ३ विष्णु, ४ हारीत, ५ याज्ञवल्क्य, ६ उशनस्, ७. अगिरस्, ८. यम, ९ आपस्तम्ब, १० सम्वर्त, ११ कात्यायन, १२. बृहस्पति, १३ पाराशर, १४ व्यास, १५ शख, १६ लिखित, १७. दक्ष, १८. गौतम, १९. शातातप, २० वशिष्ठ — याज्ञवल्क्य, स्मृति, उपो. प्रकरण १।४, ५

उसे इसमे एक सीमित रेखा मे बाँधने का प्रयत्न किया गया है। वैदिक काल मे युवा और युवतियो को विवाह करने की जो स्वतन्त्रता थी, वह अब नहीं रही। स्त्रियो की स्वतन्त्रता मनु को स्वीकार न थी। विवाह पर अनेक प्रकार के बंधन लाद दिये गये[१]। यहाँ तक कि किस कुल, किस प्रकार शरीर और स्वास्थ्य की कन्या से विवाह करना चाहिये, कहा है।[२] इस प्रकार से आदर्श कन्या का चित्र अकित किया है। शारीरिक सौन्दर्य के विषय मे कहा है कि सुन्दर अंगवाली, अच्छे नामवाली, हस और गजगामिनी, पतले रोम तथा दाँतो वाली और कोमल शरीर वाली कन्या से विवाह करे।

इस आदर्श कन्या के चित्र का ही उत्तरवर्ती काव्यो मे नव रगों से अकन किया गया है जो कृत्रिम हो गया है। नियोग-नियोग से तात्पर्य यह है कि पुत्र प्राप्ति के लिये सधवा या विधवा अन्य पुरुष के साथ सहवास करे। मनु ने इस विषय पर पर्याप्त चर्चा कर, उसे निंद्य दोषयुक्त कहा है। मनुस्मृति तथा अन्य स्मृतियो मे मतभेद भी मिलता है किन्तु यह अन्तर्भेद तत्कालीन संस्कृति का द्योतक है। इन स्मृतियो ने समाज को विधि निषेध की शृङ्खला से जकड दिया। राजा और प्रजा के लिये स्मृतिप्रोक्त धर्मशास्त्र प्रमाण हो गया। इसमे निर्दिष्ट आदर्शों का अनुसरण करना गौरव समझा गया, किन्तु जैसे-जैसे स्मृतियो ने एक विशेष आदर्श ढाँचे पर अनुसरण करने के लिये आग्रह किया वैसे-वैसे समाज के व्यावहारिक स्वतन्त्र जीवन का ह्रास होने लगा और वह निश्चल हो गया। उसकी समस्त नवीनता, अभिनव चेतनता लुप्त हो गई[३]। परिणामत कवि इसी

---

१ मनु अध्या० ६

२ मनु अध्याय ३—१०, ११

३ It must also be noted that as the number of injunctions increased and as the Smriti-Shāstras demanded a Complete patternisation of the Conduct of all sections of people. freedom of life and behaviour gradually began to disappe, ar······It was an attempt towards a mummification of social life from which all novelty was gone.

P. XXIX Introduction
History of Sanskrit Literoture, VOL. I
S. N. Das Gupta, Calcutta.

सृष्टि का एक जीव होने से वह मनु-सृष्टि को काव्य में अंकित करने के लिये विवश हो गया। उसे स्वतन्त्र रीति से अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाने का अवसर न रहा। यदि कही भी वह अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा का प्रयोग करने का साहस करता तो स्मृति पथानुगामी लोगो की धार्मिक रुचि में वैरस्य उत्पन्न होने का भय था। इस प्रकार उसे कोई नव्वीन्यपूर्ण उप-जीव्य सृष्टि अवशेष नही रही, जिसका वह महाकाव्य मे कोई नवीन चित्र अंकित करता। अम्लान प्रतिभाशाली कालिदास जैसे भावुक तथा सौन्दर्य प्रेमी कवि को भी इन्ही आदर्श, पैटर्न, परिस्थितियों मे ही विचरण करना पडा। उसके काव्य कुमार सम्भव, रघुवश, श्रुति, स्मृति, पुराणोक्त धर्म का काव्यमय रूपान्तर प्रतीत होते हैं। उसके राजा आदर्श सम्राट थे जो स्वयं स्मृतिप्रोक्त पथ का अनुमरण करते थे। उनकी प्रजा मनुप्रोक्त मार्ग को छोडकर अन्य मार्गावलबन करना नही चाहती थी[१]।

कालिदास का पूर्ववर्ती काल इतना स्थिर नही था और न उसे 'सामा-जिक पैटर्न' का ही रूप दिया गया था। वह इसके विपरीत यथार्थवादी था। रामायण, महाभारत, भास तथा शूद्रक आदि के काव्य अधिक यथार्थो-न्मुख है। इसका तो पूर्व सकेत कर चुके है कि ई० पू० २०० से ही समाज एक निश्चित ढाँचे की ओर अग्रसर हो रहा था। कालिदास का समय ऐसे सन्धि काल मे आता है जब भारतीय समाज रुक-रुक कर स्वतन्त्रता की सास ले रहा था। अभी वह पूर्ण स्थिर और आदर्शवादी नही हुआ था किन्तु कृत्रिम जीवन की सृष्टि तो हो ही चुकी थी। अब गान्धर्व विवाह निन्द्य समझा जाने लगा था। इसका सकेत कालिदास को शकुन्तला मे देना पडा। मालवि-काग्निमित्र की प्रणय-कथा तो राजप्रासादो मे प्रचलित बहुपत्नीप्रथा का ही अनुमरण करती है। किन्तु स्वतन्त्र प्रणय प्रेमी कालिदास ने विक्रमोर्वशीय मे ससार के सम्बन्धो की उपेक्षा करने वाली उद्दाम काम (प्रेम) सरिता, उर्वशी की अप्सरावाली कथा के व्याज से प्रवाहित की जिससे पुरुरवा और उर्वशी का प्रणय तथा प्रणयोन्माद का सामान्यत्व स्मृतिविरोधी न दिखाई पडे। रघुवश मे स्मृतिसम्मत पात्रो के चरित्र चित्रण तथा शाकुन्तल मे "क्षत्रपरिग्रहक्षमा" कहकर वर्णाश्रमधर्म-व्यवस्था का समर्थन किया है। स्मृतिप्रोक्त नियमो का पालन करने से जीवन मे स्वतन्त्र प्रणय का अवसर ही न रहा और फलत प्रणय काव्य का क्षेत्र सीमित हो गया। अब स्वतन्त्र प्रणयाकन पौराणिक कहकर ही क्षम्य था। वह पौराणिक कथा के व्याज से

१. Raghuvansa 117

ग्राह्य था। इसीलिये प्राय. कवियों ने स्वच्छन्द भावनाओं को व्यक्त करने के लिये पौराणिक कथाओं का अपने काव्य नाटकों मे ग्रहण किया। जैसा कि उत्तरकालीन कवियों ने इसी भावात्मक स्वच्छन्दता का उपयोग महाकाव्यों मे शारीरिक सौन्दर्य के अङ्कन मे किया है। किन्तु सम्पूर्ण कृत्रिम वातावरण (शैली, भाव तथा समाज) में इसका ठीक-ठीक सन्तुलन न रहा और वह अत्यधिक स्वाभाविक हो गया[1]।

दार्शनिक चिन्तन—

वेदों की जटिलता, ब्राह्मणों के विस्तार और उपनिषदों की गहनता ने सूत्र-साहित्य को जन्म दिया। दार्शनिक काव्य एक प्रकार से ज्ञान का मन्थन-काल है। इसी काल मे अनेक प्रौढ शास्त्र और शास्त्रकारों का प्रादुर्भाव हुआ। दार्शनिकों के भौतिक और आध्यात्मिक जगत, जीव, ईश्वर, मनुष्य और जीवन आदि से सम्बन्धित समस्याओं पर हुए प्रौढ़ चिन्तन ने ही षड्-दर्शनों को जन्म दिया। वास्तव मे, जैसा कि हमने 'महाकाव्य का विकास' मे देखा है कि नागरिक सभ्यता के विकास ने ही सदा विभिन्न साहित्य सम्पदा का सर्जन किया है। एक कालावधि के सामाजिक जीवन की समाप्ति पर नये जीवन के विकास के साथ ही, नवीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये, दूसरे प्रकार के साहित्य का प्रतिपादन किया गया। वन्य जीवन की समाप्ति हुई, नागरिकता का विकास हुआ। प्राचीन यज्ञ विधि-विधान ने आडम्बरपूर्ण यज्ञों का रूप धारण किया। इनका वेदसम्मत रूप का प्रतिपादन ब्राह्मण ग्रंथों ने किया। कालान्तर से, यज्ञों की अंध परम्परा को देख समय तथा सभ्यता के विकास ने, इस अंधपरम्परा के विरुद्ध ज्ञानोदय की आवश्यकता भासित की। इसकी पूर्ति चिन्तनशील मनीषियों ने जीवन तत्वों तथा आत्मा का चिन्तन कर, वह वेद सम्मत है, करते हुए उपनिषदों का प्रतिपादन किया। ऐसी विकसित, प्रौढ ज्ञानावस्था मे—जब आध्यात्मिक तथा भौतिक जीवन प्रौढतर हो गया था, बाह्य जगत और इसका सूक्ष्म, अविनाशी तथा मूलकारण का उपनिषद् प्रतिपादित अखण्ड तत्व के सम्बन्ध का प्रतिपादन होना स्वाभाविक ही था। और इसी तत्व सम्बन्ध के चिन्तन और प्रतिपादन से ही दर्शनों का जन्म हुआ।

सांख्य दर्शन—

इन षड्दर्शनों का बीज ऋग्वेद के अन्तिम मण्डल, अथर्ववेद और यजुर्वेद मे दिखाई देता है। सम्प्रति प्राप्त षड्दर्शनों का स्वरूप, बहुत बाद

१ डॉ० भोलाशंकर व्यास; संस्कृत कविदर्शन पत्र २२, २०१२ विक्रम

का है। इन दर्शनो मे प्रमुख एव प्राचीन कपिल का साख्य दर्शन है। साख्य दर्शन सत्कार्यवाद का समर्थक है। प्राचीन साख्य ईश्वरवाद का समर्थक था, किन्तु पिछला साख्य निरीश्वरवादी है। अलग से ईश्वर की सत्ता साख्यवाद को मान्य नही है। गौतम बुद्ध के सिद्धान्तो पर साख्यदर्शन का अत्यधिक प्रभाव हुआ। दुःख की सत्ता, वैदिक कर्मकाण्ड की गौणता, ईश्वर की सत्ता में अश्रद्धा और जगत की परिणामशीलता आदि तत्व बुद्ध ने इसी दर्शन से ग्रहण किये है।

योग दर्शन—

पतजलि का योग दर्शन भी साख्यवाद के कार्यकारणवाद का समर्थक है। पतजलि ने साख्य तत्वो के अतिरिक्त 'ईश्वर तत्व' भी माना है। इसीलिये इसे साख्य का पूरक और सेश्वरसाख्य कहा जाता है। इस दर्शन की प्रतिष्ठा भारतवर्ष मे बहुत प्राचीन काल से है। योगियो की अनन्त शक्ति और उनकी अद्भुत क्षमता को कौन नही जानता? अद्भुत तत्व, अलौकिक शक्ति, आकाश मे उड़ना सूक्ष्म और दीर्घ काया प्राप्त करना, सैकडो वर्ष बिना अन्न-जल के रहना, पुराणो, नाटको और कथाओ मे प्रभूतमात्रा मे मिलती है। मन की एकाग्रता इसका प्रधान विषय है और इसके द्वारा मुक्ति प्राप्त करना उद्देश्य है।

पूर्व मीमांसा और वेदान्त—

इन दोनो दर्शनो का परिचय प्राप्त करने के पूर्व हमे बौद्ध दर्शन को समझना होगा। ईसा से ६०० वर्ष पूर्व इस दर्शन का सूत्रपात एक धार्मिक क्रान्ति के रूप मे हुआ। इसका दृष्टिकोण वैदिक दर्शनो के विपरीत अनीश्वर-वादी है। दीर्घकाल की यात्रा करने के पश्चात् वैदिक धर्म विकृत, आडम्बर-पूर्ण शिथिल विद्वानो का धर्म हो गया था। ब्राह्मणो का प्रभुत्व सर्वदेशीय हो गया था। जातीय भेदभावो ने समाज मे ईर्षा-द्वेष को जन्म दिया। निम्न जाति के लोग घृणित समझे जाने लगे थे। ऐसी अवस्था मे गौतम बुद्ध ने ब्राह्मण धर्म के विपरीत, विवेक, दया, प्रेम, सरलता और पवित्र जीवन के आधार पर एक विश्वधर्म स्थापित किया। इसी धर्म को बुद्ध के द्वारा स्थापित होने से बौद्ध दर्शन कहते है। बुद्ध ने अपने उपदेश लोक-भाषा पाली मे दिये थे। जो 'त्रिपिटक' मे सगृहीत हैं। महायान धर्म के ग्रन्थ सस्कृत मे लिखे गये। इसके अनुसार चार सम्प्रदाय है—(१) सर्वास्तिवाद, (२) सौत्रान्तिक, (३) विज्ञानवाद, (४) शून्यवाद।

बुद्ध धर्म कर्मवाद को मानता है, कर्म ही मनुष्य के सुख-दुःख के कारण हैं। इसका परमलक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है। यह मृत्यु के पूर्व, जीवन मे सभव है। बुद्ध ने ईश्वर को सृष्टिकर्ता के रूप मे स्वीकार नही किया, इसीलिये यह अनीश्वरवादी कहा जाता है। इसके मत मे आत्मा नित्य नही है। जीवन का प्रवाह शाश्वत है।

इस धर्म के नागार्जुन, असग, वसुबन्धु, दिङ्नाग और धर्मकीर्ति आदि विद्वान प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जब वैदिक धर्म का, साख्य दर्शन तथा बौद्ध दर्शन के प्रभाव से विरोध होने लगा, उपनिषदो का 'सर्वात्मा सिद्धान्त' धूमिल-सा हो गया था, उस समय सभवत इन दोनो दर्शनो का निर्माण हुआ (पूर्व मीमासा और वेदान्त)। पूर्व मीमासाकार जैमिनि ने वेदप्रोक्त यज्ञ विविध विधानो को पुन स्थापित करने के लिये प्रयत्न किया। इस प्रकार दोनो दर्शनो का जन्म जैमिनी की पूर्व मीमासा और बादरायण व्यास की उत्तरमीमासा, धार्मिक विप्लव से वैदिक कर्मकाण्ड और औपनिषदिक सर्वगत आत्मा के सिद्धान्त के प्रचार के लिये हुआ। वास्तव में इन दोनो दर्शनो का लक्ष्य, बौद्ध विज्ञानवाद का खण्डन करने का ही था। ईसा की ३री शती से ही बौद्ध और ब्राह्मण धर्म के विद्वानो मे शास्त्रार्थ होना प्रारम्भ हो गया था। नागार्जुन और वसुबन्धु ने 'लकावतार' और माध्यमिक सूत्र की रचना कर गौतम के न्याय सूत्रो का खडन किया। इसका उत्तर वात्स्यायन ने न्यायभाष्य मे दिया, किन्तु दिङ्नाग ने फिर से खडन कर दिया। 'न्यायवार्तिक' टीका द्वारा उद्योतकराचार्य ने खडन किया। ऐसे ही समय मे ईसा की ७ व ८ शती में भारत के दो प्रबल शक्तियो का प्रादुर्भाव हुआ, उसमे से एक थे कुमारिल भट्ट और दूसरे श्री शकराचार्य। इन अलौकिक प्रतिभाशाली विद्वानो ने वार्तिक और शारीरभाष्य क्रमश लिखकर वैदिक कर्मकाण्ड तथा औपनिषदिक तत्ववाद (अद्वैत) को ठोस तथा प्रौढ चिन्तन से एक बार फिर से स्थापित किया। भट्ट की श्लोकवार्तिक और तन्त्रवार्तिक तथा श्री शकराचार्य का शारीरकभाष्य, इन दो विद्वानो की अलौकिक प्रतिभा के प्रमाण हैं।

बौद्धमत —

क्षणिकवाद तथा चेतनावाद का 'शकर' ने खडन कर श्रुतियो और उपनिषदो की परम्परागत विचारधारा को अपूर्व प्रतिभा के बल से आगे बढाया। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत की महाकाव्य परम्परा साख्य,

योग, मीमासा और वेदान्त आदि दर्शनो से पूर्ण प्रभावित है। न्याय और वैशेषिक दर्शन का प्रभाव भी हर्ष जैसे कवि पर पडा है किन्तु वह नगण्य जैसा ही है। अश्वघोष से कालिदास तक तो साख्य और योगदर्शन की पर्याप्त प्रतिष्ठा हो चुकी थी। यह दोनो के काव्य से स्पष्ट होता है। आगे माघ पर मीमांसा और साख्य दर्शन का प्रभाव है। वैसे तो बौद्ध दर्शन के प्रभाव का सकेत माघ मे मिलता है।[1] शकर के अद्वैतवाद का प्रभाव सर्वदेशीय कहा जा सकता है। उनके दर्शन से समाज, पडितवर्ग तथा राजवर्ग सभी प्रभावित हुए। उनके इस दार्शनिक चिन्तन का प्रभाव भी हर्ष पर पूरा-पूरा देखा जा सकता है।

जैन दर्शन

धार्मिक क्रान्ति को जन्म देने वाले दो धर्म—बौद्ध व जैन है। ये दोनो सनातन-ब्राह्मण धर्म के बहुत ऋणी हैं। इन दोनो धर्मों के अधिकाश सिद्धान्त ब्राह्मण धर्म पर ही आधारित हैं।

जैन धर्म का स्रोत भारतवर्ष मे प्रवाहित प्राचीन अनार्य विचारधारा श्रमण विचारधारा मे ढूढा जा सकता है। इन दोनो धर्मो मे से ब्राह्मण धर्म के तत्वो, आचारतत्व, अहिंसा, दमन सत्य, क्षमा को लेकर ही अपने अपने धर्मों का विस्तार किया है।

जैनी लोग २४ तीर्थंकर मानते हैं, जिनमे प्रथम प्रचारक ऋषभदेव थे। इनमे भी पार्श्वनाथ और महावीर ऐतिहासिक व्यक्ति थे। जैन दर्शन भी बौद्ध दर्शन की तरह वेदप्रामाण्य यज्ञवाद, बहुदेववाद, जातिवाद, और सृष्टिकर्ता के रूप मे ईश्वर को नही मानता। जैनधर्म का चरम लक्ष्य, निर्वाण-प्राप्ति है। कर्मवाद और पुनर्जन्म के सिद्धान्त के समर्थक जैनधर्म ने मोक्ष के तीन साधन—१ सम्यग् दर्शन, २ सम्यग् ज्ञान, ३ सम्यग् चरित्र माने हैं। जैन धर्म के सिद्धान्त अर्धमागधी भाषा मे निबद्ध है।

राजनैतिक चिन्तन

भारत मे दार्शनिक चिन्तन के अतिरिक्त राजनैतिक चिन्तन का भी यथेष्ट मन्थन हुआ है। भारत का महान राजनीतिज्ञ चाणक्य था। वैसे तो महाभारत (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) चारो पुरुषार्थों के विषय मे पर्याप्त विवेचन करता है। वह उन विषयो के ज्ञान का स्रोत रहा है। राजनीति के

---

१ सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्। माघ २, २८

विषय मे भी इसका शान्तिपर्व प्रसिद्ध है। किन्तु चाणक्य का राजनीतिक चिन्तन ही आगे जाकर शुक्रनीति, कामन्दकीय नीतिसार आदि ग्रन्थो का आदर्श रहा। कहने की आवश्यकता नही कि मनुप्रोक्त वर्णाश्रम पद्धति के अनुसार संरक्षित भारतीय साम्राज्यवाद की आधार-शिला भी, उक्त ग्रन्थ ही रहे है। सस्कृत के विदग्ध महाकवियो पर इस तत्व ज्ञान और राजनीतिक चिन्तन के अतिरिक्त विभिन्न सम्प्रदायो और शास्त्रो का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इस प्रभाव को हम काव्यानुशीलन के व्युत्पत्ति विभाग मे यथास्थान प्रदर्शित करेंगे।

राजाश्रित कवि

सस्कृत महाकाव्य की परम्परा का अध्ययन करने से यह पूर्णत स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक कृति के पीछे उसका कृतिकार व्यक्ति रहता है और उस व्यक्ति के पीछे रहती है एक सस्कृति, धार्मिक विश्वास और एक जाति।

सस्कृत महाकाव्यो की पृष्ठभूमि मे स्थित राजसी वातावरण भी उसके विकास का एक कारण माना जा सकता है। वस्तुत सरस्वती का विलास लक्ष्मी के विलास द्वारा ही प्रतिभासित हो सकता है। सस्कृत के मान्य महाकवियो का सम्बन्ध लक्ष्मीपुत्र पृथ्वीपतियो के साथ ही रहा है। कवियो के गुणज्ञ सहृदय ही रहते हैं। महीपालो के आश्रय मे ही कवियो की प्रतिभा अपना चमत्कार प्रदर्शित करती है। राजाओ के दरबार वस्तुत कला तथा कौशल दर्शनशास्त्र, सस्कृत तथा सभ्यता आदि के केन्द्र भारतवर्ष मे प्राचीन समय से आज तक रहे है। महाकाव्यो के नायक पौराणिक देवता की तरह लक्ष्मीपुत्र पृथ्वीपति भी रहे हैं। ऐसी दशा मे सस्कृत महाकाव्य राजसी वातावरण से नितान्त प्रभविष्णु हो गये है। अस्तु, अब हम भारतीय राजकुलो की सरक्षकता मे सस्कृत काव्य-निर्माण पर दृष्टि डालते है। ऐतिहासिको ने मौर्य साम्राज्य की सीमा ३७४-१८० ई० पूर्व तक मानी है। इस अवधि मे सस्कृत साहित्य के विभिन्न आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ। व्याडि, कात्यायन आदि व्याकरणशास्त्र के विद्वान इसी युग के हैं। 'महाभारत' का पुन संस्करण भी इसी युग मे हुआ। सस्कृत साहित्य को अपनी प्रतिभा से प्रभावित करने वाले आचार्य चाणक्य, मौर्य साम्राज्य के ही एक रत्न हैं। ईसवी सन् से लेकर उत्तरकालीन ग्रन्थ याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन, विष्णुशर्मा, विशाखदत्त, दडी, बाण स्मृतिकार गद्यकार, नाटककार और महाकाव्यादि कौटलीय अर्थशास्त्र से ही प्रभावित हैं।

संस्कृत साहित्य के इतिहास में २०० ई० पू० का समय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमे सदेह नही कि अशोक के प्रयत्न से बौद्ध धर्म

संसार का धर्म बन गया। किन्तु इस बौद्ध धर्म के विकास मे भी हिन्दू धर्म अपना विकास कर रहा था। वस्तुत मौर्य-पतन के पश्चात् ही हिन्दुत्व पर बौद्ध धर्म की प्रतिक्रिया दृष्टिगोचर होने लगी। सक्षेप मे २०० वर्ष पूर्व से लेकर ईसा की तृतीय शती तक हिन्दू धर्म का नया विकास हुआ। इस अवधि में भारतवर्ष मे कोई प्रबल राजनैतिक सत्ता कार्य नहीं कर रही थी। भारत के उत्तरी और पश्चिमी भागो मे शुङ्ग, यूनानी, शक और कुशाण अपनी राजसत्ता स्थापित कर रहे थे और आन्ध्र मे सातवाहनो का राज्य था। अन्तिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ की हत्या कर शुग सेनापति पुष्यमित्र सम्राट बन गया। पुष्यमित्र प्रथम सम्राट था जिसने अश्वमेधयज्ञ किया और हिन्दू धर्म का उत्थान किया। किन्तु कनिष्क ने पुन बौद्धधम की विजय-पताका फहरा दी।

वस्तुत 'क्लासिकल' संस्कृत साहित्य का इतिहास ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान के साथ ही जुडा हुआ है और इस उत्थान का प्रमुख कारण सम्राट कनिष्क को मानना चाहिये। उसने अपने प्रभाव से बौद्ध साहित्य को भी संस्कृत रूप देकर दार्शनिक धर्म बना दिया। कनिष्क के काल मे ही 'महायान' की स्थापना के रूप मे बौद्ध और ब्राह्मण परस्पर समझौते की ओर बढ रहे थे। सक्षेप मे बौद्ध धर्म ने जो मौर्यों के काल मे ब्राह्मण धर्म का विरोधी रूप मे था, संस्कृत भाषा को स्वीकार कर ब्राह्मण धर्म का आवरण धारण कर लिया था। ब्राह्मण धर्म के प्रभाव का एक अन्य प्रमाण यह है कि कनिष्क का पौत्र वासुदेव पौराणिक ब्राह्मण धर्मानुयायी हो गया। वह शिव-भक्त था। सातवाहन युग से लेकर कुषाण युग तक काव्य और शास्त्र के विभिन्न रूपो का विकास हुआ। महाकाव्य, नाटक, कथाकाव्य, व्याकरण, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, ज्योतिष, जैन, बौद्ध साहित्य और आयुर्वेदादि कृतियो का निर्माण हुआ। कुछ विद्वानो के अनुसार भास, सातवाहन राजा नारायण काण्व के राज्य काल मे हुआ[१]। अश्वघोष 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरानन्द' महाकाव्य का निर्माता इसी युग मे हुआ।

सातवाहन युग तक साख्य, न्याय, योग और वैशेषिक आदि शास्त्र प्रचलित हो चुके थे। पूर्वमीमासा और उत्तरमीमासा के संस्करण मौर्य से लेकर सातवाहन तक होते रहे। पतञ्जलि इसी युग के हैं। संस्कृत कोशकार अमरसिंह इसी युग मे हुआ। आयुर्वेद के प्रमुख आचार्य चरक और नागार्जुन इसी युग मे हुए है।

१ जयचन्द्रविद्यालंकार; भारतीय इतिहास की रूपरेखा २ पृ०१६७-१६८

सातवाहन के युग मे प्राकृत भाषा ही राजभाषा थी। हाल की गाथा-सप्तशती, इसी काल की रचना है। किन्तु युग-युग मे संस्कृत भाषा की पुन स्थापना हो चुकी थी। वस्तुत सम्राट कनिष्क स्वय गुणज्ञ और गुणग्राहक था उसकी राजधानी पुरुषपुर मे विद्वानो, दार्शनिको और कवियो की जमघट रहती थी। साहित्य और शास्त्र की उन्नति की तरह स्थापत्य कला और मूर्ति कला मे एक नया विकास (गाधारशैली) हुआ किन्तु यह शैली गुप्तकाल मे पूर्णत भारतीय हो गई थी। कनिष्क के पश्चात् गुप्त साम्राज्य का उदय हुआ। गुप्तवश के ६ राजाओ ने ई० स० ३०० से ४६० तक राज्य किया। इस अवधि मे तीन प्रतापी राजा हुए। वे है—समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त (द्वितीय) और कुमारगुप्त। इनके राज्यकाल मे देश ने सर्वतोमुखी सम्पन्नता प्राप्त की। कवियो, दार्शनिको, पडितो और कलाकारो ने राजाश्रय प्राप्त कर अपनी-अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। विशेष उल्लेखनीय घटना हिन्दू धर्म के पुनर्जीवन की है। ब्राह्मण धर्म से ही राजनैतिक और सामाजिक कार्यकलाप अनुशासित हुए। वास्तव मे यह पौराणिक धर्म की पुन स्थापना का युग है। भक्ति प्रधान भागवत धर्म का उदय हुआ। अब विष्णु, शिव, सूर्य, देवी आदि देवताओ की पूजा होने लगी।

जनता का जीवन प्रत्येक रूप मे पौराणिक धर्म की संस्कृति से अनुप्राणित हुआ। वस्तुत गुप्त सम्राट गुणज्ञ और गुणग्राही थे। वे विद्वानो, कवियो के आश्रयदाता, कला के उपासक और स्वय सच्चे अर्थ मे कलाकार थे। समुद्रगुप्त संस्कृत भाषा का ज्ञाता और मर्मज्ञ था। उसकी उत्कृष्ट काव्यकृति के लिये ही उसे कविराज की पदवी थी और इसी सहृदयता ने एक अभिनव सृष्टि के लिये दार्शनिको की मेधा,कवियो की प्रतिभा स्थापित की। कारीगरी,चितेरे की कूची और मूर्तिकार की छेनी को एक साथ अनुप्राणित कर क्रियाशील किया। गुप्त सम्राटो की उदार और समन्वयात्मक भावना ने जैन और बौद्ध दार्शनिको को भी संस्कृत भाषा की ओर आकर्षित किया। वसुबन्धु और दिङ्नाग जैसे विद्वान इसी युग के हैं। वस्तुत गुप्तयुग दर्शनो के भाष्य का युग है। धर्म, दर्शन, विज्ञान, कला और काव्य साहित्य मे उत्क्रान्ति का यही युग है। हरिषेण कालिदास, वत्सभट्टि इस काल के ख्यात नाम कवि हैं। इसी युग मे पुराणो और स्मृतियो की रचना हुई। इनके युग मे विद्या तथा कला के दो केन्द्र थे—(१) उज्जयिनी, (२) पाटलिपुत्र। राजशेखर ने उज्जियिनी को काव्य कला का तथा पाटलिपुत्र को शास्त्र विद्या का केन्द्र

माना है।[1] इस प्रकार यह युग भावपक्ष तथा अभिव्यजनापक्ष के सन्तुलित विकास के लिये प्रसिद्ध है।

गुप्त काल की चर्चा करने के पश्चात् वाकाटक नृपतियो की चर्चा भी आवश्यक है। भारतीय इतिहास की चौथी और पाचवी शती सुवर्णयुग की सज्ञा से अभिहित होती है। क्योंकि देश मे व्यापार वृद्धि होने एव शान्ति होने से स्थापत्य, शिल्पकला, चित्रकला आदि कलाओ की आशातीत उन्नति हुई। सस्कृत और प्राकृत वाङ्मय मे उत्क्रान्ति हुई और इस उत्क्रान्ति का श्रेय गुप्त और वाकाटक नृपतियो को है। गुप्त राजाओ की तरह वाकाटक नृपति भी काव्य रचनाओ के ज्ञाता थे। वाकाटक नृपतियो के आश्रय मे ही विदर्भ मे उत्कृष्ट काव्य कृतियो का निर्माण हुआ और इसीलिये आलकारिको को आगे काव्यशास्त्र मे वैदर्भरीति को उत्कृष्ट गुणो से युक्त होने से एक विशिष्ट रीति माननी पडी। इसके अतिरिक्त प्रवरसेन का प्राकृत महाकाव्य 'सेतुबन्ध' प्रसिद्ध ही है।

इसी समय दूसरे महाकाव्य 'हरिविजय' की रचना वाकाटक नृपति सर्वसेन ने की है। इसका समय म० म० वि० मिराशीजी के ई० स० ३३० से ४५० तक सिद्ध किया है। सक्षेप मे समुद्रगुप्त, प्रवरसेन, हर्ष, मुज व भोज आदि प्रथितयश भारतीय राजाओ मे सर्वसेन का भी स्थान है।

वाकाटक नृपतियो के काल मे वत्सगुल्म नगर विशेष उन्नत था। यह सस्कृत और प्राकृत वाङ्मय तथा कला-कौशल का विशेष उत्कर्ष होने से कामदेव का क्रीडास्थल समझा जाता था[2] गुप्तवंश के पश्चात् हर्षवश के अभ्युदय से लेकर, देवगिरी के यादव वश तक, अर्थात् ६०० से १२०० तक सस्कृत साहित्य का मध्ययुग समझा जा सकता है। यह युग सस्कृत साहित्य के निर्माण के

---

१. श्रूयते चोज्जयिन्या काव्यकारपरीक्षा।
इह कालिदासमेण्ठावत्रामरसूरभारव्य ॥
हरिश्चन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम् ॥
श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकारपरीक्षा—
अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिङ्गलाविह व्याडि.।
वररुचिपतंजलीइह परीक्षिता ख्यातिमुपजग्मु ॥

काव्यमीमासा अध्याय १०

२ तत्रास्ति मनोजन्मनो देवस्य क्रीडावासो विदर्भेषु वत्सगुल्म नाम नगरम् राजशेखर काव्यमीमासा, गायकनवाड प्राच्यग्रंथमाला पृ० १०

लिये परमोत्कर्ष और उन्नति का युग होने पर भी 'ह्रासोन्मुख काल' कहा जा सकता है क्योंकि पूर्वकाल के साहित्यिक समृद्धिजन्य पाण्डित्य ने इसे बिलकुल दबा दिया है। इस युग के काव्य सामन्ती विलासिता के दर्पण बन गये।

अब वर्धन साम्राज्य के उदय के साथ साहित्य और कला का केन्द्र पाटलिपुत्र पालवश, सेनवश न रहकर, कन्नौज हो गया। इस युग के राजवशो मे हर्षवश, गहड़वालवश, कर्कोटवंश, उत्पलवश, परमारवंश, चालुक्यवंश, पल्लववश और यादववश साहित्य निर्माण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। यह युग राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त अस्थिर रहा है। इस अस्थिर काल मे भी विद्याप्रेमी शासको की सहृदयता से साहित्य का निर्माण अपूर्व रहा। साहित्य के सपूर्ण अगों का निर्माण इस युग मे हुआ। महाकाव्य, काव्य, ऐतिहासिक काव्य, गद्यकाव्य, नाटक, चम्पू, सुभाषित, अलकारशास्त्र, व्याकरण, कोश, धर्मशास्त्र राजनीति, संगीत, कामशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, अर्थशास्त्र, बौद्ध. जैनदर्शन आदि सभी विषयो पर गभीर विवेचन हुआ। हर्ष स्वयं एक कुशल शासक होने के साथ-साथ गुणज्ञ, गुणग्राही और उच्चकोटि का कवि था। हर्ष की तीन नाटक कृतियाँ आज प्रसिद्ध हैं। इसके दरबार मे बाणभट्ट, मयूरभट्ट, मातग, दिवाकर आदि प्रसिद्ध कवि थे। हर्ष के पश्चात् कन्नौज का शासक, यशोवर्मन हुआ। इसने भी कवियो को प्रश्रय देकर उत्कृष्ट साहित्य निर्माण में योग दिया है। इसके समकालीन 'गौडवहो' का कवि वाक्पतिराज और संस्कृत का सिद्ध-नाटककार भवभूति था। इसी समय गुजरात मे 'वलभी' केन्द्र का उदय हुआ। भट्टि वलभी के राजाश्रित कवि थे माघ का भी सम्बन्ध वलभी से अवश्य रहा है। जैसा कि ऊपर केन्द्रो के नाम 'राजवश' के रूप मे उल्लिखित किये हैं, सभी केन्द्रो से काव्य और शास्त्र का निर्माण होता रहा है। अर्थात् भारवि के 'किरातार्जुनीय' से लेकर श्री हर्ष के नैषध-चरित तक महाकाव्य वैभव, इसी युग का है। फिर भी प्रसिद्ध दो-एक केन्द्रो से आश्रित कवियो के नाम इस प्रकार हैं। गुजरात नृपतियो की राजधानी पट्टण और बगाल के सेनो की राजधानी लक्ष्मणावती प्रसिद्ध है। हेमचन्द्र आदि गुजरात के और जयदेव आदि बगाल के है। साहित्य क्षेत्र मे मुञ्ज और भोज का नाम प्रसिद्ध है। 'धारा' प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। धनञ्जय, धनिक, पद्मगुप्त आदि विद्वान और कवि राजाश्रित थे।

उपर्युक्त विवेचन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि काव्य-विकास मे राजाश्रय प्रमुख रूप से कारण रहा है। इसमें भी संस्कृत और प्राकृत काव्य के निर्माता कतिपय राजवर्ग रहे हैं।

धर्माश्रित कवि

जैसा कि हमने पीछे कहा है कि कृतिकार के पीछे उसका धार्मिक विश्वास, विशिष्ट संप्रदाय आदि होता है। विदग्ध महाकाव्यो मे कवियो के धर्माश्रय या विशिष्ट संप्रदाय का भी प्रतिबिंब देखने को मिलता है। संस्कृत महाकाव्य की यह भी एक पृष्ठभूमि रही है। इसे अवगत करने से ही हमे उनकी विशेषतायें ज्ञात हो सकती है। क्योकि इनमे कतिपय अपवाद छोडकर, धर्म-प्रचार की प्रवृत्ति अधिक होती है। अश्वघोष, बुद्धघोष, शिवस्वामी बौद्धमतानुयायी थे।

हरिश्चन्द्र, हेमचन्द्र, वाग्भट्ट आदि जैनमतानुयायी है। कालिदास, भारवि, शिवभक्त, माघ, वैष्णव, श्रीहर्ष अद्वैत मताभिमानी हैं।

नागरिक जीवन :—

जैसा कि हमने इसके पूर्व देखा है कि सस्कृत साहित्य राजाओ के आश्रय मे पला है। चाहे वह नाटक रूप मे हो, चाहे महाकाव्य के रूप मे या अन्य किसी विधा के रूप मे, है वह नागरिक जीवन का साहित्य। उनमे उसी जीवन की झाँकी देखने को मिलती है। तत्कालीन आर्थिक सुव्यवस्था और राजनीतिक निश्चिन्तता ने मिलकर जीवन मे विचित्र प्रकार की चमक, एक अद्वितीय विलास और एक अभूतपूर्व जीवन के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर दिया था। अत उसकी (साहित्य) अन्त प्रेरणा और स्वरूप को, कवियो, उनके आश्रयदाताओ और उनके विदग्ध सहृदयो, नागरिको के सम्बन्ध से ही समझा जा सकता है। वस्तुत कवि और सहृदय के मिलन से ही काव्यचर्चा का प्रारम्भ होता है। वात्स्यायन ने नागरिक का अर्थ बताते हुए उसके जीवन का बडा ही रोचक और विशद वर्णन किया है। नागरिक का अर्थ 'जय-मगला' ने 'नागरिको विदग्धजन' बतलाया है। वह सुशिक्षित, सुसस्कृत, गृहस्थ समझा जाता है[1]। यह नागरिक अत्यधिक समृद्ध एव विलासी जीवन व्यतीत करता है। प्राय उसके भवन से लगा हुआ एक तालाब और एक छोटी वाटिका अवश्य होती है। उसका घर विशाल है। जिसमे कामक्रीडार्थ लताकुज तथा शीतगृह होते हैं। उसका घर दो भागो मे विभक्त होता है। उसका अन्तर्भाग स्त्रियो के लिये है। प्रत्येक कार्य के लिये भवन मे पृथक् विभाग होते हैं। उसका शयनकक्ष श्वेत शय्या से सुसज्जित रहता है। शयया के शिरोभाग की ओर काष्ठ वेदिका पर

---

१ 'गृहीतविद्यः प्रतिगृह जयक्रयनिवेशाधिगतै अर्थै अन्वयागतैरुभयैर्वा गार्हस्थ्यमधिगम्य नागरिकवृत्तं चरेत्। कामसूत्र १-४-१ कामसूत्र १, ४,४, १,४,५, १।४,१० १,४,१३-१,४,१६-२६

एक इष्ट देवता की मूर्ति और दूसरी ओर वेदि पर सहवास के आवश्यक उपकरण—जैसे पुष्पमाला, सुगन्धित द्रव्य, चन्दन, कर्पूर' आदि। किन्तु वीणा अवश्य रहती है। पिंजडो मे तोता मैना, चकोर आदि पक्षी कलरव करते रहते हैं। मनोरंजन के अनेक उपकरण सदा विद्यमान रहते हैं। इनमे चित्रकला के उपकरणो की प्रधानता है। वर्तिका, पात्र, रंग आदि यथास्थान रहते है।

नागरिक के उपर्युक्त निवासस्थान का चित्र कालिदास के मेघदूत मे यक्ष के भवन में, माघ के द्वारिका वर्णन (३ सर्ग) मे तथा मृच्छकटिक के चारुदत्त और वसन्तसेना के भवनो के वर्णन मे देखने को मिलता है।

कन्याओ को विविध कलाओ की शिक्षा दी जाती थी। विशेष रूप से उन्हे कामशास्त्र की शिक्षा देने की व्यवस्था की जाती थी। कन्याओं को संगीत, नृत्य, वाद्य, चित्र आदि कलाओ का ज्ञान कराया जाता था कामसूत्र मे नागरिक के दैनदिन चर्या का भी सकेत मिलता है। प्रातःकाल स्नानादि क्रिया से निवृत्त होकर वेष-भूषा, धूप, माला, आदि से सुसज्जित होकर, दर्पण मे मुख देखकर, ताम्बूल आदि लेकर उद्योग के लिये घर से निकलता था। उसके प्रत्येक कार्य का समय नियत था। वह नित्य स्नान करता, हर दूसरे दिन मालिश, हर तीसरे दिन फेन का उपयोग करता, हर चौथे दिन क्षौर कर्म करता तथा प्रति ५वे या १०वे दिन प्रत्यायुष्य कर्म करता था। मध्याह्न मे भोजन करता था। भोजनोत्तर शुकसारिका प्रलाप, ताबूल भक्षण और पश्चात् विश्रान्ति लेता था। प्राय स्त्री-पुरुषो का सपूर्ण समय पूर्वनिश्चित कार्यक्रमानुसार आमोद-प्रमोद मे व्यतीत होता था। सायंकाल सगीत गोष्ठी का आयोजन रहता था। रात्रि मे निवास कक्ष को धूपादि सुगधित द्रव्यो से सुवासित कर शय्या पर अभिसारिकाओ की प्रतीक्षा करता, उनके पास दूतियो को भेजता और उनके आने पर मधुर, मनोहर आलोपो से और मण्डनादि से सन्तुष्ट करता था। उद्यान-गमन, समस्या, क्रीड़ा गोष्ठी, समवाय, आदि प्रमुख आमोद-प्रमोद के साधन थे। मदिरापान का कोई निषेध नहीं था। इस प्रकार नागरिक का जीवन सगीत, साहित्य, चित्रकला, नृत्यकला और प्रकृति निरीक्षण आदि से युक्त था। कवि कालिदास को तथा उत्तरकालीन विदग्ध महाकवियो को कामसूत्र का अच्छा ज्ञान था। कालिदासोत्तरकालीन कवियो का तो वह पथप्रदर्शक बन बैठा है। कामसूत्र से यह स्पष्ट विदित होता है कि नागरिक के लिये वेश्यागमन बुरा नही समझा जाता था। कामसूत्र के ४वे अध्याय के ३४ से ४८ सूत्र तक इसी का सकेत मिलता है। इस कार्य मे उसकी सहायता करनेवाली भिक्षुणियाँ, कलाविदग्धा, मुण्डाएँ, पुंश्चलियाँ कुट्ट-

नियां आदि हैं। वस्तुत. हर्षोत्तर काल मे कन्नोज की केन्द्रीय शक्ति क्षीण होने पर भारत छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त हो गया था। जीवन के प्रति लोगो का दृष्टिकोण ऐहिक और सामन्तीय हो रहा था और भोगवाद अपनी स्थिति स्थिर करने लगा था। इसके पूर्व वात्स्यायन ने, काम को अन्न की तरह शरीरस्थिति के लिये आवश्यक बतलाते हुए जीवन लक्ष्यभूत,'त्रिवर्गों' मे प्रधान स्थान दिया था।[1]

पारदारिक तथा वैशिक कर्म, धर्मव्यवस्था और नैतिकदृष्टया हेय, निन्दनीय होने पर भी कामसूत्र मे पचम और षष्ठ अधिकरण मे विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। परिणामत इस पारदारिक और वैशिक कर्म का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा, यह विदग्ध महाकाव्यो मे भलीभाँति देखा जा सकता है। यद्यपि यह शास्त्रीय बन्धन होने से, नाटको और महाकाव्यो मे स्पष्ट रूप से वर्णित नही होने पाया है, किन्तु अप्रस्तुत विधान के रूप मे खुल्लमखुल्ला होने लगा। माघ, नैषध आदि काव्यो में देखा जा सकता है। इसे हम आगे कहेंगे। आगे चलकर देखने से यह भी ज्ञान होता है कि वात्स्यायनोक्त साम्प्रयोगिक वर्णन को भी कवियो ने अपने कवि कर्म का आदर्श बनाया है। इसका प्रयोग दो रूपो मे दिखाई देता है। वाच्यरूप और व्यग्यरूप मे। कालिदास ने साम्प्रयोगिक वर्णनो को व्यंजनावृत्ति पर आधारित कर काव्य मे वर्णित किया है। इस वर्णनपरम्परा में विकास होता गया है। कालिदास की अपेक्षा माघ ने अपने काव्य मे शृङ्गारिक वर्णन साम्प्रयोगिक कर्म भेदो के अनुसार किया है। इसकी अपेक्षा रत्नाकर ने और रत्नाकर की अपेक्षा मंखक ने और श्रीहर्ष ने सभी को इसमे परास्त कर दिया है। नैषध में ये चित्र अधिक मर्यादातिक्रमण करते दिखाई देते हैं। मुग्धा नायिका से नायक का व्यवहार, दूती का प्रकार, रुष्ट नायिका को वश करने का प्रकार, रति के प्रकार आदि बाते कालिदास ने ही हर्ष तक सम्पूर्ण विदग्ध कवियो ने, कामसूत्र से यथेच्छ ग्रहण की हैं। मधुपान, जलक्रीडा, पुष्पावचय आदि कामोद्दीपन की सामग्री का उपयोग महाकाव्यों मे किया गया है। चाहे बौद्धकथा हो अथवा पौराणिककथा। प्राय पौराणिक देवकथा के वेष मे लौकिक कथा ही कह दी है। आगे के राधा-कृष्ण के काव्य में वर्णित लौकिक केलिकथाओ का प्रारम्भ कालिदासोत्तरकालीन काव्य मे मिल जाता है। कटाक्षक्षेप, चुम्बन, आलिंगन, नखक्षत, दन्तक्षत, सीत्कार बाह्य सुरत, आभ्यन्तर सुरत आदि कामसूत्र के शतश प्रकरण शृङ्गार वर्णन प्रयुक्त हैं। कुमारसम्भव

१. 'शरीरस्थितिहेतुत्वादाहार सधर्माणो हि कामा ४६
फलभूताश्च धर्मार्थयो ४७ कामसूत्र अ, २

से लेकर नैषध तक के संपूर्ण काव्यो मे सुरतक्रीड़ा का वर्णन, उसके प्रकारों का वर्णन वर्णित है। इस प्रवृत्ति का विकास हुआ है। कुमारसंभव ८,२,१९, किरात ९-३४-७४, शिशुपाल १०- ३९-९०, आगे के काव्यो में तो इसके लिये अलग सर्ग की ही योजना की गई है। रत्नाकर के 'हरविजय' मे 'संभोग वर्णन' नाम का एक सर्ग ही है आगे यही परम्परा है। श्री कठचरित्र मे, क्रीडा वर्णन नामक सर्ग है। 'कफ्फिणा भ्युदय' मे १४वाँ सर्ग, धर्मशर्माभ्युदय आदि सभी में है। शृङ्गाररस कुसुमावचय वर्णन से प्रारम्भ होता है। इसी मे क्रमश जल क्रीडा, दिवसावसान, चन्द्रोदय, विरहवर्णन, दूती सकल्प वर्णन, पानगोष्ठी वर्णन, सभोग, वर्णन, तक आ जाता है। जैसे–प्रभात वर्णन करते समय भी कवि-दृष्टि कामिनि के अंगयष्टि पर ही केन्द्रित रहती है। घूम-फिरकर वह वही पहुँच जाती है। अत वर्णनीय बिषय तो पीछे रह जाता है, सर्वत्र क मिनी का ही कार्य-कलाप ग्रथित हो जाता है। सम्पूर्ण प्रत्यूष वर्णन कामिनी का केन्द्रित कर चलता है। स्वतन्त्र वर्णन नही के बराबर है। रत्नाकर ने 'हर विजय' के सर्ग २८ मे प्रत्यूष वर्णन इसी दृष्टिकोण से किया है। कवि को प्रात कालीन बहनेवाली वायु का एव तज्जन्य कपायमान दीपशिखा का वर्णन करना अभीष्ट है। किन्तु उत्प्रेक्षा के चक्कर मे पडकर कामिनी और प्रियतम की छेड़छाड़ मे फंस जाता है[1]। मखक की दृष्टि श्रीकठचारित मे, मंथन करते समय क्षुभित काल-कूट क प्रभाव का वर्णन करते हुए कामिनियो के नेत्रों पर ही जाती है।

स्वर्लोकपक्ष्मलदृशा नयनोत्पलेषु' ५ १४-३५-३६ यहा अन्यो के नेत्रो को दुख देनेवाला भी कहा जा सकता था, किन्तु कवि को अन्यो के (कामिनियो को छोड़कर) अग-प्रत्यग अभीष्ट नही।

कालिदास ने 'अग्निवर्ण' के विलास वर्णन से उत्तम शृगार का चित्र खीचा है, किन्तु अति विलास का पर्यवसान उसकी मृत्यु मे कर शृंगार रस मे करुण या वराग्य के रग की छटा उत्पन्न कर दी है। श्रीहर्ष के नैषध मे प्रधान रस शृङ्गार है। उसने कामसूत्र के 'कन्या विस्रम्भण प्रकरण', को दृष्टिपथ में रख कर ही नैषध के १८ से २० सर्ग की योजना की है। १८वें सर्ग के ३०वें श्लोक मे विपरीत रति और ११४ व ११६ मे समरति सूचित की है। नैषध के ये विपरीत रति के वर्णन आकस्मिक नही हैं। इसके पूर्व 'हर विजय' व श्री-कंठचरित मे भी यही वर्णन देखने मिलते हैं।

---

[1] हरविजय, रत्नाकर-सर्ग २८, १ ८,१७,५८

उपर्युक्त कामसूत्रोक्त प्रकरणो की काव्यो मे नियोजना और नागरिक जीवन कम, कवि दिनचर्या और सहृदय की विमल प्रतिभा द्वारा उत्तरकालीन महाकाव्यो का प्रभावित होना अवश्यभावी था। स्वभावत ही काव्य सृष्टि तिरोहित हो गई। उसका स्थान नरकाव्य को प्राप्त हुआ। अब कवि वर्ग और नागरिक वर्ग प्रकृति से व्यवहित होकर भौतिक चकाचौंध मे जीवन यापन करने लगा, प्रकृति का सपर्क केवल पारस्परिक प्रेमास्वादन के निमित्त ही स्थापित होने लगा और दिनचर्या, नैमित्तिकचर्या तथा वार्षिकचर्या मे सर्वत्र कला का ही प्राधान्य हो गया, ऐसी स्थिति मे प्रकृति के शुद्ध चित्रो के चित्रण की सभावना कहाँ से हो सकती है? काव्य मे शृङ्गार का रसराजत्व प्रतिष्ठित हुआ। वीररस प्रधान महाकाव्यो मे भी कवि प्रबन्ध निर्वाह के लिये शृङ्गाररस नियोजना का मोह सवरण नही कर सके। 'शिशुपालवध' मे कृष्ण की इन्द्रप्रस्थ यात्रा के प्रसग मे केवल रतिक्रीडा के वर्णन करने मे ही महाकाव्य का अधिकाश भाग व्यय कर दिया है। इसी प्रकार, किरातार्जुनीय मे अर्जुन की तपस्या भग करने के लिए गन्धर्व और किन्नरियो का प्रसग, रत्नाकर के हरविजय मे श्रीकठचरित, कफ्फिणाभ्युदय, विक्रमाकदेवचरित आदि मे शृङ्गार प्रसङ्गो की नियोजना की गई है जो अत्यन्त दीर्घ होने से अप्रासगिक प्रतीत होते हैं। कालिदास ने रघुवंश के 'ताटकावध' में माघ आदि कवियो ने युद्ध प्रसग मे भी यत्रतत्र इसका चित्रण किया है। मखक तो, युद्ध मे सचालित बाणो ने वीरो के वक्षस्थल पर अप्सराओ के कुचकुडमलो की अग्रदूतता का परिचय दिया है[1]।

कुमार, रघुवंश, किरातार्जुनीय, माघ और नैषध पचमहाकाव्यो के ९६ सर्गों म ३५ सर्ग शृगार रस से परिपूर्ण है इससे स्पष्ट हो जाता है कि विदग्ध महाकाव्यो मे कामसूत्र का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। महाकाव्य का हेतु चतुर्विध पुरुषार्थ साधन है और काम (यह) तृतीय पुरुषार्थ है, यह कोटिक्रम करते हुए कवियो ने काव्यो मे प्रयुक्त उत्तान शृगार वर्णन का समर्थन किया है।[2]

शृंगार रस की प्रधानता के मनोवैज्ञानिक कारण

कवि, कर्म का प्रधान व्यापार सौन्दर्य का चित्रण करते हुए इसकी भावना

१ 'अपि कटकयुगे धनुष्मतामवटि परस्परमीरितै शरै'।
उरसि विवृतबीप्समप्सर कुचमुकुलप्रणयाग्रदूतता॥ श्लो.
मंखक—श्री कठचरित २३ सर्ग.

२. सस्कृत काव्याचे पन्चप्राण—डा० वाटवे, पृ० ५६, ५७

में मग्न कराकर अपनी पृथक् सत्ता की प्रतीति का विसर्जन कराना है। यही रसास्वाद है। यह सौन्दर्य, रूपसौन्दर्य भी हो सकता है, नादसौन्दर्य भी हो मकता है। किन्तु इन सभी सौन्दर्यों का पर्यवसान अन्त मे स्त्रीसौन्दर्य मे होता है। इम निषय मे चरक ने कहा है—

'इष्टा ह्येकैकशोऽप्यर्था. पर प्रीतिकरा. स्मृता ।
किं पुन स्त्रीशरीरे यं संघातेन व्यवस्थिता ॥
सघातो हीन्द्रियार्थाना स्त्रीषु नान्यत्र विद्यते। चिकि० अ २

'इन्द्रियो का एक-एक भी विषय अभीष्ट और अत्यधिक आनन्ददायक होता है। फिर स्त्री के शरीर के विषय में तो कहना ही क्या? जिसमे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये सभी इन्द्रियो के अर्थ सघातरूप मे निहित होते हैं और आनन्द देते हैं'। इम प्रकार इन्द्रियो के अर्थों की साघातिक स्थिति केवल स्त्री शरीर मे ही होने से,[1] सौन्दर्यपूर्ण स्त्री शरीर के चित्रण मे कवि की रुचि होना स्वाभाविक ही था।

यहा तक प्रत्येक स्थिति मे स्त्रीरूपक की कल्पना भी आनन्दजनक भासित होने लगी। युद्धो मे वीरो के बाणों ने कुचो की स्थिति, जयश्री मे मुग्धा-नायिका की स्थिति, नागरो की रत्नजटित भित्तियो से निकलनेवाले रत्न किरणो ने नायिका के बाहुओं की स्थिति धारण की। कवियो ने प्रकृति पर मानवोचित शृंगारी चेष्टाओ का आरोप बहुत किया है[2]। माघ ने पश्चिम दिशा को गणिका की तरह देखा है। वह अस्त होते निस्तेज सूर्य को इसी तरह घर से निकाल देती है जैसे गणिका धनरहित व्यक्ति को। सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था, नायक को रोकने के लिये ही कमलिनी नायिका ने उसके अन्तिम किरणरूपी अचल को हाथ से पकड लिया। उदित चन्द्र नायक का प्रोष-धियाँ आलिंगन करना चाहने लगी। नायिका के अगो और प्रत्यगो की कल्पना से भी कवि वंचित होना नही चाहते थे[3]। दूसरी बात यह है कि कामसूत्र मे काम को धर्म और अर्थ का फल माना है। धर्म, अर्थ, साधन हैं, तो काम साध्य। अतः काव्य मे भी काम की प्रधानता स्वीकार की गई, तो आश्चर्य नही।

---

१ बहुधागता जगति भूतसृजा कमनीयता समभिहृत्य पुरा ।
उपपादिता विदधता भवती सुरसद्मयानसुमुखी जनता ॥
किरातार्जुनीय ६।४२

२. भट्टि २-३१ किरातार्जुनीय ४, १, २८ शिशुपाल वध ९-१० ११-६५ श्रीकण्ठचरित १०, ५, १०, १५

३. श्रीकंठचरित, सर्ग २२, ४४, २१-९, २५, ३५

तीसरी बात यह है कि ध्वनिकार माधुर्य गुण की परिभाषा करते हुए कहते हैं कि शृंगार ही सबसे अधिक आनन्ददायक मधुर रस है। उस शृंगारमय काव्य के आश्रित ही माधुर्यगुण रहता है। शृंगार ही अन्य रसो की अपेक्षा अधिक प्राह्लादजनक होने से मधुर है।[१] इस कारिका की व्याख्या देते हुए अभिनवगुप्ताचार्य कहते हैं कि शृगार रस की भावना ही ऐसी है, जो देव, तिर्यक्, पशु और मनुष्य प्रत्येक स्थान पर पाई जाती है। जिस प्रकार ज्ञानी, अज्ञानी, स्वस्थ, कोई भी व्यक्ति जैसे ही शर्करा को अपनी जिह्वा पर डालता है वैसे ही उसे मधुरता का अनुभव होने लगता है।[१] उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य की आत्मा शृगाररस से वासित अवश्य होती है। आचार्य भरत ने शृङ्गार रस के स्वरूप का महत्व प्रतिपादित इस प्रकार किया है—"ससार मे जो कुछ भी पवित्र, उज्वल, मेध्य अथवा दर्शनीय हो, सबका अनुमान शृङ्गार रस के द्वारा हो सकता है। जो भी व्यक्ति उज्ज्वल वेश वाला हो वह शृङ्गारमय कहा जाता है।[२]" शारदातनय ने, शृङ्गार शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है 'सर्व भावनाओ मे उत्तम व श्रेष्ठ यह (शृङ्ग मत) भावना है।

भावानामुत्तम यत्तु तच्छृंग श्रेष्ठमुच्यते।
इयन्ति शृङ्ग यस्मात्तु तस्माच्छृगार उच्यते ॥

भा० प्र० २, ७ पृ० ४८

शृङ्गार का स्थायीभाव रति है। मन को अनुकूल भासित होनेवाले पदार्थो के विषय मे सुख सम्वेदनोत्पादक जो इच्छा वही रति है।

'मनोनुकूलेष्वर्थेषु सुखसवेदनात्मिका इच्छा रतिः'। भा प्र २ ११.

आचार्य रुद्रट ने शृङ्गार को आद्य स्थान दिया है। १२ से १४ तक अर्थात् तीन अध्यायो मे शृगार रस का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि शृगार रस द्वारा ही आबालवृद्ध व्याप्त है। वह सबके लिये रमणीय है। इसके अभाव मे

---

१. शृङ्गार एव मधुरः परः प्रह्लादनो रसः
तन्मयं काव्यमाश्रित्य माधुर्यं प्रतितिष्ठति ॥ ध्वन्यालोक ८ उद्योत २
रतौ हि समस्तदेवतिर्यग्नरादिजातिष्वविच्छिन्नेव वासनास्त इति न कश्चित्तत्र तादृग्यो न हृदयसवादमय रतेरपि हि तच्चमत्कारोस्त्येव। अतएव मधुर इत्युक्त मधुरो हि शर्करादिरसो विवेकिनो वा स्वस्थस्यातुरस्य वा झटिति रसनानिपतितस्तावदभिलषणीय एव भवति। लोचन उ० २

२. नाट्यशास्त्र अध्याय ६.

काव्य नीरस होगा।[1] मानस शास्त्र की दृष्टि से भी विशुद्ध शृंगार का आद्यस्थान है। इसके अतिरिक्त शृंगार रस का विरोध किसी पक्ष से नहीं[2] होता अन्य रसों की अपेक्षा संचारियों का बाहुल्य शृंगार रस में ही अधिक रहता है। रस विरोध प्रकरण में ध्वनिकार ने लिखा है कि विरोध परिहार का विचार शृंगार रस में ही अधिक होना चाहिये क्योंकि रति सर्वाधिक सुकुमार मानी जाती है, यह किञ्चित भी विरोध को सहन नहीं कर सकती। निःसन्देह शृंगार रस सभी सांसारिक व्यक्तियों के लिये नियमपूर्वक अनुभव का विषय है। अतः सौन्दर्य की दृष्टि से प्रधानतम है। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि विरोधी रसों में भी शृङ्गार रस का उपादान दूषित नहीं होता। जैसे शिष्यों को विनय की ओर (शिक्षणीय विषय में) उन्मुख करने की दृष्टि से अथवा काव्य की शोभा के लिये उस (शृंगार) के विरोधी शान्त आदि रसों में उस शृङ्गार के अंगों (व्यभिचारी भावादि) का स्पर्श दूषित नहीं होता[3] उदाहरण के लिये—शृङ्गार रस के विरोधी शान्त रस में भी शृंगार रस का पुट लग जाने से काव्य में चमत्कार का आधान हो जाता है।

'त्वां चन्द्रचूड सहसा स्पृशन्ती प्राणेश्वरं गाढवियोगतप्ता।
सा चन्द्रकान्ताकृतिपुत्रिकेव संविद् विलीयापि विलीयते मे'॥[4]

'इसमें चन्द्रचूड शिव को पति और अपनी बुद्धि वृत्ति को चन्द्रकान्त मणि से निर्मित, पुतली के समान सुन्दर अपनी पुत्री तथा शिव को पत्नीरूप माना है। वह बुद्धि वृत्ति तरुणी अपने प्रियतम शिव से दीर्घकाल से वियुक्त होने के कारण अत्यन्त वियोगाग्नि से सन्तप्त है। प्रियतम शिव के ध्यान में किञ्चित् काल के लिये समाहित चित्त होने से चन्द्रचूड शिव का स्पर्श प्राप्त कर वह आनन्दातिरेक से स्वरूपविहीन, पति के आलिंगन में सर्वात्मना विलीन-सी होकर चन्द्रचूड के स्पर्श से द्रावित होकर विलीन हो जाने वाली चन्द्रकान्त पुत्तलिका के समान विलीन हो जाती है"।

यहाँ पर शान्तरस के विभाव, अनुभाव आदि का भी शृङ्गार रस की पद्धति से वर्णन किया गया है। यदि इस वर्णन को शुद्ध शांतरस की शैली से कहा जाता तो यह सहृदयाह्लादक नहीं होता। जैसा कि इस शैली से

---

१. रुद्रट काव्यालंकार १४- ३८
२. रसविमर्श डा० वाटवे पृ० २५३
३. ध्वन्यालोक ३० तृतीय उद्योत्
४. ध्वन्यालोक : काव्यमाला . ३ उद्योत् लोचन.

होता है। किन्तु इस तथ्य का काव्यों में इतना व्यापक रीति से प्रभाव हुआ कि उपदेश या व्याकरण आदि कठिन शास्त्रों को सर्वग्राह्य बनाने के निमित्त इस शैली (शृङ्गार रस के पुट) का उपयोग करते हुए, अन्य काव्यों मे भी चमत्कार का आधान करने के लिये, अप्रासंगिक रूप से विस्तारपूर्वक नियोजन किया गया है। परिणामत ये वर्णन मूल प्रसंग से अलग दिखाई देते हैं। प्रबन्धात्मकता की एकसूत्रता शृखला विच्छिन्न हो जाती है, जैसे रत्नाकर के हरविजय के ५० सर्ग की लम्बी कथा मे। वस्तुत काव्य का कथानक तो बहुत ही स्वल्प है। शृङ्गार रस के वर्णन मे १५ सर्ग व्यय किये हैं। ऐसा ही कफ्फिणाभ्युदय मे, ऐतिहासिक महाकाव्यों मे भी यही स्थिति है। नवसाहसाकचरित तथा विक्रमाकदेवचरित मे, रावणार्जुनीय जैसे व्याकरण के उदाहरण निदर्शनात्मक महाकाव्य मे भी शृङ्गार की नियोजना की गई है।

कामसूत्र मे नैमित्तिक कर्म का उल्लेख किया है जैसे—घटानिबन्धन गोष्ठीसमवाय, समापानक, उद्यानगमन, समस्या नामक क्रीडा। विविध कलाओं का प्रदर्शन करने के लिये मास मे या पक्ष मे किसी निश्चित समय और दिन पर सरस्वती मन्दिर मे नागरिको का समाज एकत्र होता था[1]। इस समाज मे अन्य वर्ग के लोग भी भाग ले सकते थे। इसी विचार से कामसूत्र मे यह कहा है कि उस सभा मे केवल सस्कृत मे ही भाषण नही करना चाहिये और न केवल प्राकृत मे ही। श्रोतृसमाज को देखकर भाषण आदि करने वाला पुरुष ही समाज मे सम्मान, प्रतिष्ठा प्राप्त करता है[2]। नागरिक के सामान्य जीवन क्रम का परिणाम कवि के काव्य पर और उसकी काव्यचर्चा पर भी होता था साहित्यिक समाज मे कीर्त्ति चाहने वाले कवि को किन बातो को देखना आवश्यक है, बतलाया है— 'कवि अपना संस्कार प्रथम करे' मेरा अध्ययन कितना है, किस भाषा पर मेरा अधिकार है, जनता को तथा राजा की रुचि इस समय किस ओर अधिक है। मेरा आश्रयदाता किस प्रकार की गोष्ठी मे अधिक रुचि रखता है, आदि इन सभी बातो का पूर्ण विचार करके किसी भी एक उपर्युक्त एव अनुकूल भाषा मे काव्य की रचना करे।

कवि जीवन—

उपर्युक्त नागरिक के जीवनविषयक दैनिक क्रम का वर्णन[3] सर्वसाधारण के विषय मे हो सकता है। कवियो का जीवन इसको अपेक्षा कहीं अधिक

१ कामसूत्र-अध्याय ४-२६

२ नात्यन्त सस्कृतेनैव नात्यन्त देशभाषया। कथां गोष्ठीषु कथयंल्लोके बहुमतो भवेत् ५० अ० ४, कामसूत्र

३. काव्यमीमासा-अध्याय-१०. (कविचर्या राजचर्या)

उत्कृष्ट और सम्पन्न था। राजशेखर व क्षेमेन्द्र ने इस विषय मे विस्तृत विवेचन किया है। राजशेखर ने—स्वास्थ्य, प्रतिभा, अभ्यास, भक्ति, विद्वतकथा, बहुश्रुतता, स्मृति, दृढता और उत्साह—आदि कवित्व की आठ माताओं का उल्लेख करते हुए, कवियों का निवासस्थान उनके दैनिक जीवन सम्बन्धी कुछ विशिष्ट बातो का उल्लेख जैसे शारीरिक पवित्रता, शारीरिक सौन्दर्यवृद्धि के उपाय, वस्त्राभूषण और व्यवहार आदि किया है[1]।

कवि की दिनचर्या में काव्यगोष्ठी का भी उल्लेख है।

कवि-सम्मेलन —

यह सम्मेलन प्राय राजाओ की अध्यक्षता मे संपन्न होता था। राजशेखर ने कहा है कि राजा स्वय कवि हो और कवि-समाज की स्थापना करे। इस समाज के लिये विशिष्ट प्रकार के भवन बनाये जाते थे। कविसमाज विभिन्न प्रकार के विद्वानो और कवियो का होता था। उस निर्मित सभामण्डप मे राजा काव्यगोष्ठी का आरम्भ कराता था। कवियो की रचनाओ पर आलोचना, परीक्षण किया जाता था। राजशेखर ने ऐसे राजाओ मे वासुदेव, सातवाहन, शूद्रक और साहसाक आदि का उल्लेख किया है। इसका परिणाम यह होता था कि विभिन्न कवियो, कलाकारो, विद्वानो का परस्पर परिचय हो जाता था। विभिन्न विषयो पर विचार स्वय उनका मन्थन होता था। राजसमाज तथा कवि समाज मे सम्मान प्राप्त करने के लिये कवियो का उत्साह बढता था। काव्य परीक्षाओ का उल्लेख हमने इसके पूर्व कर ही दिया है। ऐसे सम्मेलनो मे भाग लेने के लिये नागरिको मे तत्विष योग्यता अपेक्षित होती है। इस योग्यता संपादन के लिये काव्य और शास्त्र का सुष्ठु ज्ञान अपेक्षित होता है। इसके अतिरिक्त सम्मेलन मे यश-कीर्ति प्राप्त करने के लिये भी सरस्वती की उपासना आवश्यक है। दडी ने कहा है—

कीर्ति की कामना रखने वालो को यह आवश्यक है कि वे आलस्य का सर्वथा त्याग करके, सरस्वती की उपासना (शास्त्राध्ययन व काव्यकरणाभ्यास) करे, क्योकि कवित्व का उद्भव अत्यन्त क्षीण हो जाने पर भी, सरस्वती की उपासना सतत करने वालो को रसिक जनगोष्ठी मे व्यवहार करने की क्षमता प्राप्त हो जायगी। कवि न हो काव्यज्ञ होकर तो रहेंगे ही।[2]

---

१. काव्यमीमासा, राजशेखर अध्याय १०

२ तदस्ततन्द्रैरनिशं सरस्वती श्रमादुपास्या खलुकीर्त्तिमीप्सुभि ।
कृशे कवित्वेऽपि जना. कृतश्रमा विदग्धगोष्ठीषु विहर्त्तुमीशते ॥ १०५
दंडीकाव्यादर्श १

उपर्युक्त सम्मेलन में कवि और नागरिकों का स्वरूप चित्रण काल्पनिक आपातत प्रतीत हो सकता है किन्तु राजशेखर ने दी हुई जानकारी दंडी और वामन के ग्रन्थों मे भी देखने को मिलती है। राजशेखरोक्त प्रश्नोत्तर भेदनसदृश प्रहेलिका, प्रकार, दंडी के काव्यादर्श मे दिया गया है और उसका उपयोग क्रीडा-गोष्ठी मे होता है। चित्रयोग के विविध प्रकार दंडी ने काव्यादर्श को तृतीय परिच्छेद मे और रुद्रट ने काव्यालंकार के पंचम अध्याय मे दिये हैं। इन सबका उपयोग काव्यगोष्ठी मे होता था। काव्यगोष्ठी का तात्पर्य नागरिक गोष्ठी या विदग्ध गोष्ठी से ही है। अस्तु नागरिक गोष्ठी काव्य विवेचन का या काव्य प्रसार का महत्त्वपूर्ण स्थान था, यह स्पष्ट हो जाता है।

सहृदय[1]—

काव्यास्वाद का आनन्द लेने वाले विदग्ध नागरिक और कवि को आश्रय देने वाले राजवर्ग के अतिरिक्त, कवि सम्मेलनों या ब्रह्मसभाओं मे सहृदय का भी एक तीसरा वर्ग था जो कवि के काव्य का, एक दृष्टि से परीक्षक और दूसरी दृष्टि से काव्यचर्चा के तत्वों का प्रस्थापक था। कविगोष्ठी मे वह काव्य के गुण-दोषों का विवेचन करते हुए काव्य तत्वों का भी विवेचन करता था और गच्छताकालीन यही काव्य तत्व-विवेचन शास्त्र के रूप मे हमारे सामने परिणत होकर आया। सारस्वतस्य किमपि रहस्यम् के शोध का कार्य सहृदय की अपनी विमल प्रतिभा की सहायता से करता है और इसी प्रयत्न से वह काव्य का निकर्ष भी बना। काव्यानुशीलन के अभ्यास से विशदीभूत मनसुकुर मे वर्णनीय विषय से तन्मयीभूत होने की योग्यता जिनमे उद्भुत हो चुकी है वे विमल प्रतिभाशाली सहृदय ही वस्तुत. काव्यस्वाद के अधिकारी है[2]।

अर्थात एक ओर काव्यकर्त्ता कवि है तो दूसरी ओर तन्मयता से रसास्वाद लेने वाला सहृदय है। इन दोनों के हृदयसंवाद का जनक शब्दार्थमय काव्य होता है। सहृदय को आनन्दानुभव देने वाले शब्दार्थ का स्वरूप स्प-

---

१ क्रीडागोष्ठीविनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्णमन्त्रणे।
परव्यामोहने चापि सोपयोगा प्रहेलिका ॥ ९७ काव्यादर्श ३

२ येषा काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद्विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते हृदयसंवादभाज सहृदया। ध्वन्यालोक लोचन उद्योत १

रूप स्पष्ट करने वाला काव्यशास्त्र कहलाता है। सहृदय जीवनानुभव के दृढ़ स्थिति पर साहित्यशास्त्र निर्माण मे आवश्यक अनेक शास्त्रों का उपयोग करने में संकोच नहीं करता है। संक्षेप मे अनेक शास्त्रों के रसनिष्यन्द से निर्मित जीवन की रम्यमूर्ति ही साहित्य विद्या है।[1] जैसा कि हमने 'व्युत्पत्ति मे बतलाया है कि कवि को विभिन्न शास्त्रो और अनुभव का ज्ञान आवश्यक कहा गया है दूसरी ओर सहृदय भी विदग्ध कोटि मे आने से बहुज्ञ होना आवश्यक है। ऐसी स्थिति मे काव्य मे नैसर्गिकता के स्थान पर कृत्रिमता विदग्धता यदि आ जाती है तो आश्चर्य ही क्या ?

कलात्मक मान्यता—

गत विवेचन के अनुसार यह निश्चित हुआ था कि काव्य के दो भागो मे (शरीरपक्ष और आत्मपक्ष) शरीर या बाह्य पक्ष की अपेक्षा, आत्मपक्ष या रस पक्ष ही अधिक महत्वपूर्ण पक्ष है। वही दिव्यानन्द सृजक है। इस दिव्यानन्द की प्राप्ति वस्तुत शरीरपक्ष और आत्मपक्ष के सम्यक् सन्तुलन पर निर्भर है। निर्बलात्मा शरीर सौष्ठव के अभाव मे दिव्यानन्द की उत्पत्ति का सामर्थ्य नही रखता। कवि के मनोगतो या भावनाओ को सम्यकरीत्या अभिव्यक्त करने मे ही बाह्यपक्ष का सौन्दर्य है। कवि या कलाकार अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिये शब्दो और अर्थों की उचित रचना करता है। अर्थात रीति, अलकार, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि तत्वो की युक्त योजना। इस युक्त योजना द्वारा कवि के हृद्गत भाव सहृदय के हृदय मे सक्रान्त होने पर काव्य के सौन्दर्य की प्रतीति के साथ दिव्यानन्द की प्राप्ति होती है। इस कार्य मे कवि के मनोगत, उपादान, कारण और रीति अलंकार आदि साधनस्वरूप निमित्त कारण कहे जा सकते है। यह भावात्मक उपादान कारण, जैसा होगा, शुद्ध या अशुद्ध वैसा ही भूषण बन सकेगा, चाहे निमित्त कारण कैसा ही हो। जैसा कि ऊपर कहा है कि काव्य की सच्ची सफलता व्यग्य(भाव)तथा अभिव्यञ्जना (कल्पना) के सम्यक् सन्तुलन मे ही है। क्योंकि विभिन्न अलंकारो, रीतियो और व्युत्पत्तिजन्य सौष्ठव के होने पर भी घनरस प्रसर के अभाव मे काव्य महाकाव्य पदवाच्य नहीं हो सकता।[2] महाकवि कालिदास की कला-

---

१ 'पंचमी साहित्यविद्या, सा हि चतसृणामपि विद्यानां निष्यन्द।
राजशेखर काव्यमीमांसा अध्याय २

२. तैस्तैरलंकृतिशतैरवतंसितोऽपि रूढो महत्यपि पदे धृतसौष्ठवोऽपि नून विना घनरसप्रसराभिषेकं काव्याधिराजपदमर्हति न प्रबन्ध ॥ मङ्खक श्री कण्ठचरितम्-२२३

त्मक मान्यता यही है। उसे अभिव्यग्य का खरापन पसन्द है किन्तु अभिव्यञ्जना का सन्तुलित सम्यक् प्रयोग भी। वे वाणी और अर्थ के समरस सम्मिलन मे विश्वास रखते है।[1] कालिदास मे रस और अलकार का अपूर्व सयोग मिलता है जो उत्तरवर्ति कवियो मे दुर्लभ अवश्य है। यह दुर्लभ क्यो है इसे आगे देखते हैं।

कालिदास के समय का कलाशास्त्रीय मत किसी आचार्य मे या उत्तरवर्ति कवियो मे नही मिलता।

कालिदास के पूर्ववर्त्ती व्यास और वाल्मीकि तो ऋषि कोटि मे ही आते है। यहाँ तो भावपक्ष का ही आग्रह है, वर्णनशैली की ओर उतना लक्ष्य नही रहा। यद्यपि वाल्मीकि रामायण मे भी भावो का निरूपण, रसो का समुचित परिपाक, भाषा की प्रासादिकता, छन्दो का प्रवाह और रचना लालित्य आदि सभी अद्वितीय हैं, किन्तु सब मिलाकर कलापक्ष का उतना आग्रह नही जो उत्तरवर्त्ती काव्या मे दिखाई देता है अस्तु भामह का। छठी शती ई०कला शास्त्रीय मत कालिदास से प्रभावित प्रतीत होता है। भामह काव्य की कृत्रिम शैली को अच्छा नही समझता। वह तो प्रसादगुण वाली को ही ओजमिश्रित शैली से अधिक महत्व देता है। किन्तु यह तो निर्विवाद है कि भामह पूर्व देखा है आज कोई काव्य उपलब्ध नही है किन्तु यत्र तत्र उपलब्धि सन्दर्भों से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक से पाँचवी शती ई० पूर्व तक काव्य का भली प्रकार विकास हो चुका था। वाण से तथा अन्य सन्दर्भों से यह ज्ञात होता है कि चतुर्थ और पचम शती काव्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। भामह के लक्षणो से यह भी विदित होता है कि उसके पूर्व भी अलकारशास्त्र के कई आचार्य हो चुके थे। भामह ने अपनी ग्रन्थ से विभिन्न शैलियो का उल्लेख करते हुये कहा है कि असमासान्त, स्त्री और बालको की बोधगम्य तथा माधुर्यगुण युक्त पदावली, काव्यगुण युक्त है। उनके मत मे अग्राव्य काव्य मधुर, प्रसादयुक्त तथा नीति समस्ताथ होना चाहिये। भामह के द्वारा निर्दिष्ट प्रासादिक शैली को उत्तरवर्त्ती कवियो ने नही अपनाया वस्तुत उन्हे वह पसन्द ही नही आयी। उन्हे तो माघ कवि निर्दिष्ट वल्गाविभागकुशल अश्वारोही की तरह काव्य तुरग की अनेक विधियो, मार्गों मे चलाने के लिये प्रशिक्षित कर सक्षम बनाना था। यहाँ हमे उक्त परिवर्तन प्रवृत्ति के संक्षेप मे कारण भी देखने चाहिये।

---

१. वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। रघुवश १।१

छठी शती के पश्चात कवि वर्ग शब्दशास्त्र तथा आयास सिद्ध अलकारो के विभिन्न प्रयोगो मे नेपुण्य दिखाने को रुचि लेने लगा। पाचवी शती से विभिन्न दर्शनो के आचार्यो दिग्नाग, वात्सायन मे शास्त्रार्थ प्रारम्भ हो गये थे, जिन्होने विचारशैली प्रभूत मात्रा मे प्रभावित किया जैसा कि पूर्व देखा है कि राजकीय वातावरण मे प्रधानत काव्य का विकास हुआ है, जहाँ कवियो ने अपनी-अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित कर कवि सम्मेलनो मे तथा राजघरानो मे सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त की। स्वभावत ही शुद्ध काव्य की अपेक्षा कलात्मक काव्य की तथा नैसर्गिक कल्पना की अपेक्षा विदग्धता को अधिक महत्त्वपूर्ण समझा गया।

आचार्य दंडी, मम्मट आदि ने विद्याभ्यास और व्युत्पत्ति को प्रतिभा की अपेक्षा महत्त्व दिया। फलत काव्य कृत्रिमता की ओर झुक गया। उसमें परम्परागत कल्पनाओ, रूढियो और विचारो की ही आवृत्ति होने लगी। अब कवि स्वय को पंडित के रूप मे देखना पसन्द करने लगा। काव्य मे विभिन्न शास्त्र का पांडित्य जो जितना अधिक प्रदर्शित कर सका वह उतना ही सफल महाकवि समझा जाने लगा। कवि कालिदास को शालीनतापूर्ण यह नम्र उक्ति 'जिस प्रकार ऊँचे वृक्ष के फल तोडने के लिये किसी बौने व्यक्ति का ऊपर की ओर हाथ फैलाना हस्यास्पद होना है, उसी प्रकार मुझ मन्द गति का काव्य प्रणयन रूप प्रयास भी उपहासास्पद है। मैं हूं तो मन्दबुद्धि पर कवियो को प्राप्त होने वाली कीर्त्ति का अभिलाषी हूँ,'[1] अब प्राय विस्मृत जसी हो गयी। भट्टि ने अपने काव्य का निर्माण केवल व्याकरण के ज्ञाताओ के लिये ही किया[2]। अत वह केवल व्याख्या से वेध है[3]। कहा भामह का नातिव्याख्यायेम् और कहा भट्टि की उक्त प्रतिज्ञा हरविजय के कर्ता रत्नाकर ने तो अपने काव्य के अध्ययन से अकवि पाठक को तथा कवि को महाकवि बनाने की प्रतिज्ञा की है[4]। और नेषधकार ने तो कतिपय स्थलो मे जानबूझकर स्वयमेव

---

१ रघुवश = १ = ३

२ दीपतुल्य. प्रबन्धो य शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
हस्तादर्श इवान्धाना भवेद् व्याकरणादृते ॥ ३३

३ भट्टिकाव्य् २२ = ७७,७६

४ हरविजयमहाकवे. प्रतिज्ञा शृणुत कृतप्रणयो मम प्रबन्धे।
अपि शिशुरकवि कविप्रभावाद् भवति कविश्च महाकवि' क्रमेण।
हरविजय रत्नाकर प्रशस्ति

ग्रन्थियों को प्रयत्नपूर्वक रखने की प्रतिज्ञा की है[1]। इनके अतिरिक्त भामह ने स्वभावोक्ति की अपेक्षा वक्रोक्ति को काव्य मे आवश्यक बतलाया था और उसे ही समस्त अलकारो का फल माना था[2]।

यहाँ उल्लेख्य यह है कि भामह का आग्रह शब्दालकार पर न होकर अर्थालकार पर था। कालिदास के पश्चात वक्रोक्ति का प्राधान्य काव्य मे बढता गया। काव्य के क्षेत्र श्रृगार रस का राजत्व प्रतिष्ठित होने का एक यह भी कारण था। अब शनै शनै कवि कर्म ध्वनिकार की वैदग्धिय—भंगी भणिति और कुन्तक की वक्रोक्ति की पृष्ठभूमि निर्माण करने की पूर्व तैयारी कर रहा था। इस प्रकार अभिव्यजना पक्ष का महत्व अधिक बढा; अभिव्यक्ति के ढंग पर विशेष बल दिया जाने लगा। एक ही विषयवस्तु भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखी जाने लगी। इसी बीच काश्मीरी कवि भर्तृमण्ठ का उदय हो चुका था। कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी मे (३, २६४, ६६) मातृगुप्त के द्वारा इनके रससिद्धकाव्य हयग्रीव वध (सप्रति अप्राप्य) के विशिष्ट सत्कार की घटना उल्लेख किया है। अस्तु अपने वक्रोक्ति अकुश से अनेक कवि कवियो के मस्तक को हिलवा दिया[3]। गच्छताकालेन वक्रोक्ति काव्य की कलात्मक कसौटी बन गई। आचार्य कुन्तक ने तो वक्रोक्ति का एक भेद स्वीकार कर लिया (वक्रेण प्रसिद्ध प्रस्थान व्यतिरिक्तेक) प्रसिद्ध कथन से भिन्न वर्णन शैली को छोडकर जो काव्य रचना करता है, वह युद्ध भूमि मे कवच का त्याग कर दारू खड्ग से विश्वविजय की कामना करता है समझा जाने लगा[4]। किसी विषयवस्तु को इस प्रकार कहना कि वह सहृदय—हृदय सवेद्य भी हो

---

१. ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया। प्रशस्ति ७ नैषध

२ भामह काव्यालकार =२३६

३ वक्रोक्त्या मेण्ठराजस्य वहन्त्या सृणिरूपताम्।
अविद्धा इव धुन्वन्ति मूर्धानं कविकुजरा ॥

There is a reference to that sense in a verse of Rajshekhar quoted by Jalhana in his Sooktimukntawali

M. Krishnamachariar History of Classical Sans Lit. P. 132

४ वक्रेणेव कलालवेन कुरुतो. काव्यमव्याकुल
मुक्त्वा वर्म विहाय कर्म च समितकालोचित सोखिलं
विश्व दारुमयेन जेतुमसिना सरम्भतो जृम्भते ॥ ४६

मखक श्रीकंठचरितम् सर्ग-२

और वाच्य व्यतिरिक्त नवीन अर्थ की उद्‌भावना के साथ-साथ सहृदय के हृदय मे एक विचित्र तडप उत्पन्न कर सके। यही कवि-व्यापार का प्रधान कर्म समझा जाने लगा। स्वभावत ही इस वक्रव्यापार मे प्रसिद्ध प्रस्थान व्यतिरेकी शैली होने से मूलभाव को प्राप्त जानने की जिज्ञासा क्रमशः वृद्धिगत होती जाती है। यह वैसे ही हुआ जैसे प्रियतम की प्रार्थना पर अंगनाएँ प्रतिकूल वर्ताव करती है।

दूसरी ओर ध्वनिवादियो ने (ध्वनिकार, अभिनवगुप्त और मम्मट) अभिव्यग्य और अभिव्यजना का सन्तुलन स्पष्ट करते हुए, अभिव्यंग्य को ही काव्य का उत्कृष्ट सौन्दर्य उद्‌घोषित किया और वस्तु व्यजना और अलकार व्यजना को काव्य क्षेत्र मे महत्व प्रदान किया। परिणामस्वरूप उत्तरकालीन कवि ध्वनि सप्रदाय के सिद्धान्तो से प्रभावित अवश्य हुए, किन्तु व्युत्पत्ति पाडित्य ने कविमस्तिष्क और हृदय पर अपना साधिकार प्रभाव जमा लिया था ऐसी स्थिति मे कोरा अभिव्यंग्य का रंग फीका पड गया और अभिव्यञ्जन का रग प्रगाढ होता गया। कालिदासोत्तरकालीन कवि यद्यपि ध्वनि सिद्धान्तों से प्रभावित हुए हैं किन्तु उनकी विदग्ध कविता-कामिनी को रसध्वनि की अपेक्षा वस्तुध्वनि और अलकार-ध्वनि विशेष प्रिय होने से अभिव्यंजना को उसने ग्रहण किया। श्रीहर्ष स्वय ध्वनिसिद्धान्तो से प्रभावित होते हुए भी अभिव्यंजना (वस्तु, ध्वनि और अलकार-ध्वनि) की ओर अधिक झुके हुए है। इस अभिव्यञ्जना पक्ष का महत्व व विकास कितना बढा यह हम विदग्ध काव्यो की शैली प्रसग मे देखेंगे किन्तु अभिव्यग्य और अभिव्यजना का सन्तुलनपक्ष केवल आदर्श रूप मे ही रहा, कवियो ने यथार्थ जीवन मे उसे ग्रहण नही किया।

प्रकृतिवर्णन का परंपरावादी दृष्टिकोण

विदग्धमहाकव्यो की काव्य-वस्तु को हम दो भागो मे विभाजित कर सकते हैं। प्रथम प्रकृतिकाव्य और द्वितीय नरकाव्य। इस युग में (विदग्ध महाकाव्यो मे) प्रकृति वर्णन का स्थान नरकाव्य ने ग्रहण कर लिया। अब प्रकृति के विभिन्न रूप सौन्दर्य के स्थान पर स्त्री-सौन्दर्य ने अधिकार कर लिया। कवि कालिदास के कुछ पूर्व से ही दृश्य वर्णन के सम्बन्ध मे कवियो ने दो मार्ग स्वीकृत किये। (१) स्थल वर्णन में तो वस्तु वर्णन की सूक्ष्मता कुछ काल तक पूर्ववत् स्थिर रही, (२) किन्तु ऋतुवर्णन मे स्थलवर्णन

१. रघुवंश ९। २६

वैसी सूक्ष्मता को आवश्यक नही समझा गया। केवल परिगणित बातो का उल्लेख कर भावों के उद्दीपन का वर्णन आवश्यक समझा जाने लगा। अब ऋतुवर्णन प्राय फुटकर वर्णन जैसा होने लगा इसलिये उसमे अनुप्रास और शब्दों के माधुर्य आदि का पर्याप्त ध्यान रखा जाने लगा। कालिदास के रघुवंश का (नवम सर्ग मे) वसन्त ऋतु वर्णन, इस तथ्य का आभास दे सकता है। यहाँ प्रकृति के आलबन रूप की उपेक्षा के कारणो को भी देख लेना आवश्यक है। समाजिक विकास मे ही विदग्ध काव्यों का जन्म होता है, यह हमने पूर्व कहा ही है। ऐसी विकसित अवस्था मे मानवीय सम्पर्क अधिक साधन हो जाता है। अब मानव की मानवी प्रकृति मे ही तल्लीनता पाई जाती है। बाह्य प्रकृति के साथ उनके हृदय का वैसा सामञ्जस्य नही पाया जाता। अत भावो के आलम्बन के लिये मानवीय सम्बन्ध ही अधिक निकट एवं प्रत्यक्ष हो जाते हैं, जैसा कि पूर्व देखा है, सौन्दर्य रति के साथ अधिक सम्बन्धित होने से श्रृङ्गार रस, रसराज की उपाधि ग्रहण कर सका। इसलिये आलंबन रूप मे प्रकृति की उपेक्षा का एक यह भी कारण हो सकता है।

उद्दीपन विभाव

रस निष्पत्ति मे स्थायी भाव के साथ विभाव, अनुभाव और सचारियो की स्वीकृति प्राय सभी आचार्यों ने दी है। रस निष्पत्ति के विषय मे भी, वे इस मत से सहमत हैं। आचार्यों ने विभाव के अन्तर्गत उद्दीपन विभाव का समावेश किया है।

> "विभाव. कथ्यते तत्र रसोत्पादनकारणम्।
> आलम्बनोद्दीपनात्मा स द्विधा परिकीर्त्यते॥"

श्री विद्यानाथ प्रतापरुद्र यशोभूषण, रस प्रकरण पृ० २१२

रसोत्पादन का कारण विभाव कहा जाता है और वह आलबन और उद्दीपन दो रूपो में होता है। कुछ आचार्यों ने चार प्रकार के उद्दीपनों में प्रकृतिरूपों को तटस्थ रूप मे रखा है।

> "उद्दीपनं चतुर्धा स्यादालम्बनसमाश्रयम्।"
> गुणचेष्टालङ्कृतयस्तटस्थाश्चेति भेदत.॥

श्री शिगभूपाल रसार्णवसार पृ० १६२

आलम्बन को आश्रय देने वाला उद्दीपन, चार प्रकार का होता है—(१) गुण, (२) चेष्टा, (३) अलंकृति, (४) तटस्थ, और तटस्थ के अन्तर्गत

प्रकृति के कुछ उपकरणों को परिगणित किया गया है (वही पृ० १८८,८९)[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्यों का प्रकृति के विषय में दृष्टिकोण अत्यन्त सीमित हो गया है। उपर्युक्त दृष्टिकोण रीतिग्रन्थों के अधिक बनने और उनके अधिक प्रचार से क्रमशः बढ़ता ही गया।

आर्षकाव्यों और उत्तरकालीन काव्यों में कालिदास जैसा प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण मिलता है वैसा कालिदासोत्तर काव्यों में नहीं मिलता। अब क्रमशः प्राकृतिक वस्तुव्यापार का सूक्ष्म निरीक्षण कम होता गया। किस ऋतु में क्या-क्या वर्णन करना चाहिये, उसका आधार अब प्रत्यक्ष अनुभव नहीं रहा। 'आप्त' शब्द प्रमाण हो गया। वर्षा के वर्णन में जो कदंब कुटज, इन्द्रवधू, मेघगर्जन, विद्युत आदि का उल्लेख मिलता है, वह इसलिए कि वह भरतमुनि ने निर्दिष्ट कर दिया है।

"कदम्बनिम्बकुटजै शाद्वलै सेन्द्रगोपकै.।
मेघवातै सुखस्पर्शै प्रावृट्कालं प्रदर्शयेत् [2]॥"

वस्तुतः प्रबन्धकाव्य (महाकाव्य) में प्राकृतिक दृश्यों का श्रोता के भाव के आलम्बन रूप में वर्णन नितान्त आवश्यक है। यह तभी संभव है कि उनका चित्र बिम्बरूप में प्रस्तुत हो। उनका पूर्ण स्वरूप पाठक की कल्पना में मूर्तरूप में उपस्थित हो जाय, क्योंकि रति या तल्लीनता उत्पन्न करने के लिए प्रत्यक्षस्वरूप आवश्यक होता है। कालिदास के 'कुमारसम्भव' का हिमालय वर्णन, श्रोता या पाठक के आलंबन रूप में है। किन्तु रीति ग्रन्थों में प्रत्येक ऋतु के वर्ण्य वस्तुओं की सूची दे दी गई और इस प्रकार प्रकृति वर्णन उद्दीपन के साथ रूढ़ीरूप में भी चल पड़ा।[3]

आरोपण—

हमारे यहाँ रस के प्रसंग में बाह्य प्रकृति पर मानवीय भावनाओं तथा क्रिया-कलापों के आरोप के विषय में भी विचार किया गया है। आचार्यों ने

---

१. तटस्याश्चन्द्रिकाधारागृहचन्द्रोदयावपि।
कोकिलालापमाकन्दमन्दमारुतषट्पदाः॥
लतामण्डपभूगेह दीर्घिका जलदारव।
प्रासादगर्भसंगीतक्रीडाद्रिसरिदादय॥

२. भरत-नाट्यशास्त्रम्-काव्यमाला, अध्याय २५, श्लो० ३४

३. राजशेखर-काव्यमीमांसा १४ से १६ तक
अमरसिंह-काव्यकल्पलता—१, ५ साहित्यदर्पण—७, २३ २४

प्रकृति के स्वरूपो पर मानवीय भावनाओ के आरोपो को शुद्ध रस के अन्तर्गत स्वीकार नही किया है। इस प्रकार की स्थितियो को रसाभास भावाभास, के अन्तर्गत परिगणित किया गया है।

रसाभास और भावाभास—

आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन मे उपर्युक्त आरोपों पर विस्तार से विचार किया है।

"निरिन्द्रियेषु तिर्यगादिषु चारोपाद्रसभावाभासौ।[१]"

उनके अनुसार इन्द्रियहीन, जड तथा पशु पक्षियो पर मानवीय भावो के आरोप करने से रसाभास और भावाभास होता है। इसके पश्चात् निरिन्द्रियो तथा तिर्यको मे सभोग और विप्रलम्भ का आरोप मानकर विस्तार से कालिदासादि के काव्यो से उदाहरण प्रस्तुत करते हुए विवेचन किया है। निरिन्द्रियो पर सभोग के आरोपण से संभोगाभास होता है।

"पर्याप्तपुष्पस्तवकस्तनीभ्य स्फुरत्प्रवालोष्ठमनोहराभ्य:।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि॥"

तरु भी अपनी झुकी हुई शाखा रूपी भुजबन्धनो से पर्याप्त पुष्पो के गुच्छो के रूप मे स्तनवाली तथा चचल कोमल पल्लवो रूपी मनोहर ओठवाली लता वधू से आलिंगन करने लगे।

तिर्यको के संभोगाभास का उदाहरण

"मधु द्विरेफ कुसुमैकपात्रे पपौ प्रिया स्वामनुवर्तमान ।
शृ गेण सस्पर्शनिमीलिताक्षी मृगीमकण्डूयत कृष्णसार ॥

भ्रमर अपनी प्रिया का अनुसरण करता हुआ कुसुम के एक ही पात्र मे मकरन्द पान करने लगा। कृष्णसार स्पर्शजन्य सुख से बन्द नेत्रोवाली मृगी को अपनी सीग से खुजाने लगा।

निरिंद्रिय और तिर्यक् सम्बन्धी विप्रलभाभास—

यहाँ सरिता पर वियोगिनी का आरोप किया गया है।

"वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धु ।
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभि शीर्णपर्णे.॥
सौभाग्य ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती ।
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्य ॥

---

१. काव्यानुशासनम्-अध्याय—२, काव्यमाला, पृ० १२०

जिसकी पतली जलधारा वेणी बन गई है। तट के वृक्षों से गिरे हुए पुराने पत्रों से जो पीली हुई है, बीते हुए सौभाग्य को अपनी विरहावस्था से व्यंजित करने वाली वह सरिता जिस प्रकार वह अपनी कृशता का त्याग करे, हे सुन्दर मेघ! वही उपाय करना।

पशु-पक्षी सबन्धी विप्रलम्भ शृगार का आभास—

"आपृष्टासि व्यथयति मनोदुर्बला वासरश्री
रेहयालिंग क्षपय रजनीमेकिका चक्रवाकी॥
नान्यासक्तो न खलु कुपितो नानुरागच्युतो वा
दैवासक्तस्तदिह भवतीमस्वतन्त्रस्त्यजामि॥

निरिन्द्रिय पर आरोपित भावाभास—

"गुरुगर्भभरक्लान्ता स्तनन्त्यो मेघपक्तयः।
अचलाधित्यकोत्सगमिमा समधिशेरते॥"

गुरु-गर्भ के भार से क्लान्त, गर्जन करती हुई ये मेघ पक्तियाँ पर्वत की गोद मे विश्राम करती है।

पशु पर आरोपित भावाभास का उदाहरण—

"त्वत्कटाक्षावलीलीला विलोक्य सहसा प्रिये।
वन प्रयात्यमौ व्रीडाजडदृष्टिर्मृगीजन॥"

हे प्रिये! तुम्हारे चंचल कटाक्षो को देख, लज्जा से स्तम्भित दृष्टि-वाली मृगियो का समूह वन को चला गया। इसी प्रकार चन्द्रमा को नायक रूप मे और निशा को नायिका के रूप मे चित्रित करने से सभोगाभास होता है, कहा है। इस प्रकार का वर्गीकरण श्री शिगभूपाल ने 'रसार्णव' मे किया है। सस्कृत के आचार्यों का इस विषय मे प्राय ऐकमत्य है। शुद्ध रसदृष्टि से रसाभास और भावाभास एक प्रकार से दोषास्पद होने पर भी सभी विदग्ध महाकाव्यो मे इनका पर्याप्त मात्रा मे उल्लेख मिलता है। कवि कालिदास से लेकर श्री हर्ष तक सभी कवियो ने अपनी शृंगाररस प्रियता का परिचय इनके द्वारा दिया है। ऋतु वर्णन मे तो यह एक रूढी रूप मे ही चल पडा। इसके विकास के कारणों की चर्चा हमने स्मृत्यनुमोदित वर्णाश्रम पद्धति मे की है, अत यहाँ उल्लेख्य नहीं है।

कवि शिक्षा

कवि को व्युत्पन्न होने के लिये 'कविशिक्षा, आवश्यक समझी गई है किन्तु इन कविशिक्षा के ग्रथो के निर्माण मे प्रकृति के विषय में आचार्यों के विशिष्ट

दृष्टिबिन्दु के विकास का परिचय मिल जाता है। आचार्य क्षेमेन्द्र राजशेखर, हेमचन्द्र और वाग्भट्ट आदि ने, कविशिक्षा पर पर्याप्त विचार किया है। इन शिक्षा ग्रंथो मे विभिन्न पूर्ववर्ती काव्यो के आधार पर, काव्यविषयक शिक्षाओं के साथ-साथ प्रकृतिचित्रण के सम्बन्ध मे काव्य परम्पराओ का भी उल्लेख किया है। कवि के लिये इन वर्गीकरणो और पूर्वकाल से प्रचलित परम्पराओ से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक समझा गया है। वाग्भट ने काव्यानुशासन मे कवि शिक्षा का तात्पर्य विस्तारपूर्वक बतलाया है।[1]

और राजशेखर ने कवियो के, उत्पादक, परिवर्तक, आच्छादक, सवर्गक, चार भेद कहे हैं और कहा है कि जो चोरी को छिपा सके और जिसकी निन्दा न हो वही प्रशंसनीय है[2]। इसी तथ्य का आनन्दवर्धन ने चतुर्थ उद्योत मे कारिका १५ से १७ तक विवेचन कर, अनुमोदन किया है। इस प्रकार कवि को पूर्ववर्ती कवियो की रचनाओ एवं उनमे उल्लिखित प्रकृति विषयक परम्पराओ से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक कहा है। इस परम्परा को 'कवि समय' कहा गया है। इस कवि समय मे प्रकृतिवर्णन की परम्परा के अतिरिक्त, इन ग्रन्थो मे देश-काल की शिक्षा भी दी गई है अर्थात् किस देश मे किन-किन प्राकृतिक उपकरणो का वर्णन तथा कालविशेष मे किन-किन वस्तुओ का उल्लेख आवश्यक है, कहा गया है[3]। इस विवेचन से काव्य और प्रकृति के सीधे सम्पर्क पर तो विशेष प्रकाश पड़ता किन्तु प्रकृति के आदर्श की रूपरेखा या चित्र अवश्य उपस्थित हो जाता है और साथ ही यह भी विदित हो जाता है कि प्रकृति वर्णन स्वतन्त्र न रहकर केवल शिक्षा द्वारा रूढ कर दिया गया था। राजशेखर ने कविसमय का विशद विवेचन किया है। कवि समय तीन प्रकार का है- (१)स्वर्ग्य, (२) भौम, (३) पातालीय। इन तीनो मे मध्यम भौम— प्रधान है। इसका क्षेत्र भी विस्तृत है। यह भी चार प्रकार का होता है—

---

१. क्वचित्प्रतिबिम्बतया क्वचिदालेख्यप्रख्यतया क्वचित्तुल्यदेहि-तुल्यतया क्वचित्परपुरप्रवेशप्रतिमतया उत्तरोत्तरोत्कर्षेण महाकविकाव्याना छायोपजीवन पादद्वयत्रयोपजीवनम् उक्त्युपजीवन समस्यापूरणपदपरिवृत्ति रर्थशून्याभासादयश्च शिक्षा ॥

अध्याय—१ काव्यानुशासन काव्यमाला . पृ० १२

२. काव्यमीमासा अध्याय ११ (शब्दहरणम्)

३. राजशेखर 'काव्यामीमांसा' १७, १८, अध्याय

(१) जातिरूप, (२) द्रव्यरूप, (३) गुणरूप, (४) क्रियारूप। इनमें प्रत्येक के तीन-तीन भेद होते हैं (१)असत् उल्लेख २ सत्, का अनुल्लेख,(३)नियम। जो पदार्थ शास्त्र या लोक मे देखा या सुना न गया हो। किन्तु काव्य रचना में उसका उल्लेख करना, असत् निबन्धन है। शास्त्र और लोक दोनो मे वर्णित पदार्थ का उल्लेख न करना सत् का अनिबन्धन है, तथा शास्त्र और लोक के नियमो से नियन्त्रित पदार्थ का उल्लेख करना नियम है।

जातिगत अर्थ मे असत् का निबन्धन—जैसे नदियों में कमल की उत्पत्ति, सभी जलाशयो मे 'हस, सभी पर्वतो पर सुवर्ण।

'सतोऽप्य निबन्धनम्—वसन्त में मालती चन्दन के वृक्षो में फल-फूल और अशोक के फलो आदि का वर्णन न करना।

द्रव्यो का असत् निबन्धन—मुष्टिग्राही और सूचीभेद्य अन्धकार कुभोपवाह्य चन्द्रिका,।

द्रव्यस्य सतोऽनिबन्धन—कृष्णपक्ष मे ज्योत्स्ना, शुक्लपक्ष मे अन्धकार आदि का वर्णन न करना।

द्रव्यनियम–मलयाचल मे ही चन्दन की उत्पत्ति और हिमालय मे ही भूर्जपत्रो का होना, वर्णन करना।

प्रकीर्णद्रव्य—कवि समय—क्षीर और क्षार समुद्रो की एकता, सागर और महासागर का अभिन्न प्रयोग।

असतोऽपि क्रियार्थस्य निबन्धनम्—चक्रवाक के जोडे का रात्रि मे वियोग, चकोर का चन्द्रिकापान।

सतोऽपि क्रियार्थस्य निबन्धनम्—दिन मे नील कमल का विकास, शेफाली कुसुम का रात्रि मे झरना।

नियम—कोयल का वसन्त मे ही बोलना, मयूर का वर्षा मे ही बोलना।

असतो गुणस्य निबन्धनम्—यश और हास का शुक्ल वर्ण, अयश और पाप का कृष्ण रूप, क्रोध और अनुराग का रक्त वर्ण।

सतोऽपि गुणस्य निबन्धनम्—कुन्दकली एवं कामिनी के दाँत का लाल वर्ण कमल कली का हरित वर्ण, प्रियंगु पुष्पों का पीत वर्ण।

गुण नियम—माणिक की लालिमा, पुष्पों की शुक्लता, मेघो की श्यामता, इसके अतिरिक्त कृष्ण और नील का, कृष्ण और हरित का, कृष्ण और श्याम का, पीत और रक्त का एव शुक्ल और गौर का समान रूप से वर्णन करना भी कवि समय है।

स्वर्ग कविसमय इस प्रकार है—चन्द्रमा मे खरगोश और हरिण की एकता। काम की मकर पताका। अत्रिनेत्र और समुद्र से चन्द्र की उत्पत्ति, शिव के मस्तक के चन्द्रमा का सदा बाल रूप। काम की मूर्त्तिमत्ता, द्वादश सूर्यों का एकत्व, इसके अतिरिक्त कमला और सम्पत्ति की एकता, माधव नारायण की एकता, पातालीय कवि समय—नाग और सर्प का एकता, दैत्य, दानव, और असुरों की एकता[१]।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सकृत के काव्यशास्त्र के आचार्यों का प्रकृति के विषय मे क्या दृष्टिकोण रहा है। इसके अतिरिक्त महाकाव्यो मे प्रकृति के आलम्बन रूप का अभाव, उसके केवल उद्दीपन रूप के महत्व का प्रतिपादन तथा रूढिवादी परम्परा के कारणो पर पर्याप्त प्रकाश पड जाता है।

काव्यार्थयोनयः—काव्यार्थ के स्त्रोत

गत विवेचन से व्युत्पत्ति की काव्य मे उपादेयता सिद्ध हो जाती है। राजशेखर ने इसके व्यापक क्षेत्र को ध्यान मे रखकर ही व्युत्पत्ति को काव्य की जननी कहा है[२]। इसी व्युत्पत्ति को क्षेमेन्द्र ने 'परिचय' कहा है जिसके ज्ञान के अभाव मे केवल पद्यनिर्माता विदग्धगोष्ठी मे उतना ही अज्ञ प्रतीत होता है, जितना कोई नवागन्तुक किसी बडे नगर की उलझी हुई गली मे[३]। व्युत्पत्ति और प्रतिभा के उत्कृष्ट संयोग से ऐसे सहृदयाल्हादक काव्य की रचना होती है, जो सदा विदग्धजन मण्डित रहता है। वस्तुत काव्य-निर्माण मे कवि का उत्तरदायित्व बडा ही महान् होता है। इस ससार की ऐसी कोई भी वस्तु नही है जिससे कवि अपनी काव्यसृष्टि के लिये उपकरण ग्रहण नही करता हो। भरतमुनि, भामह तथा रुद्रट के अनुसार ससार की समग्र विद्याएँ काव्याग हैं[४]। जैसा कि पूर्व कहा है, कि काव्य का विषय लोक और शास्त्र है। लोक से तात्पर्य स्थावर और जगम पदार्थों के वृत्त से

१. राजशेखर ने 'काव्यमीमासा, १४ से १६ अध्याय तक कवि-समय का वर्णन किया है।

२ "अथात कथयिष्यामो व्युत्पत्ति काव्यमातरम्"। काव्यमीमासा, अध्याय ४ पृ० ३६।

३. "न हि परिचयहीन केवले काव्यकष्टे कुकविरभिनिविष्टः स्पष्ठ शब्दप्रविष्ट। विबुधसदसि पृष्ट क्लिष्टधीर्वेति वक्तु नव इव नगरान्तर्गह्वरे कोप्यधृष्ठ.॥ क्षेमेन्द्र, कविकण्ठाभरण—पचम सन्धि।

४. नाट्यशास्त्र—१।११७ भामह काव्यालंकार ५।४ रुद्रट काव्यालकार १।१

है और शास्त्र से अभिप्राय है व्याकरण, कोष, छन्दशास्त्र, कला, कामशास्त्र तथा दडनीति आदि से[१]। काव्य की अर्थ योजना में इनका अत्यन्त उपयोग होता है, अत आचार्यों ने कुछ प्रधान विभिन्न विद्याओ का उल्लेख कर दिया है। राजशेखर ने काव्यार्थ योनि प्रकरण में (१) श्रति वेदी (२) स्मृति (मनु आदि धर्मशास्त्र), (३) इतिहास, (४) पुराण, (५) प्रमाणविद्या (मीमासा) और छ प्रकार का तर्कशास्त्र), (६) राजसिद्धान्तत्रयी (अर्थशास्त्र, नाटयशास्त्र और कामशास्त्र) (७) लोक, (८) विरचना (अन्यान्य कवियो की रचनाएँ काव्य, नाटक, महाकाव्यादि), (९) प्रकीर्णक (चौसठ कलाओ, आयुर्वेद, ज्योतिष, वृक्षशास्त्र, अश्व, गज, लक्षण आदि)। इनमे राजेश्वर ने चार और मिलाकर सोलह काव्यार्थ के स्रोत कहे हैं। (१) उचित सयोग, (२) योक्तृ सयोग, उत्पाद्य सयोग (४) संयोग विकार[१]। क्षेमेन्द्र ने तर्क, व्याकरण, भरत, चाणक्य, वात्स्यायन, भारत, रामायण, मोक्षोपाय, आत्मज्ञान, धातुवाद, रत्नपरीक्षा वैद्यक, ज्योतिष, धनुर्वेद, गज, तुरग पुरुष-लक्षण, द्यूत, इन्द्रजाल तथा अन्य विविध विषयो के परिचय को कविसाम्राज्य का द्योतक कहा है[२]।

मम्मट ने स्थावर जगमात्मक, लोकवृत्त, छन्द-व्याकरण, अभिधान कोश, कला चतुर्वर्ग, गज, तुरग, खड्गादि लक्षण, काव्य तथा इतिहास आदि की व्युत्पत्ति का काव्यहेतुभूत निपुणता के अन्तर्गत उल्लेख किया है।[३] वाग्भट ने स्थावर जगमरूप लोक मे तथा लक्षण प्रमाण साहित्य छन्दोलकार, श्रुति, स्मृति, पुराणेतिहासागम, नाट्यविधान, कोष। कामार्थ योगादि शास्त्रो मे निपुणता को व्युत्पत्ति कहा है। विभिन्न आचार्यों द्वारा परिगणित विद्यायें लाक्षणिक ही कही जा सकती हैं। वस्तुत काव्य का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, और इस बृहत् विस्तार के कारण ही कवि को ब्रह्म के पर्यायवाची शब्द की उपाधि मिली। कवि के लिये मनुष्य, प्रकृति तथा शास्त्र के समग्र विषयों का ज्ञान अपेक्षित है। और उपर्युक्त परिगणित शास्त्रो–विद्याओ का अनुशीलन, अभ्यास कवित्व की एकमात्र औषधि है।[४] महाकवि मखक के मत मे निसर्ग प्रतिभा से उत्पन्न

१. काव्य मीमासा अध्याय ८।

२. कविकण्ठाभरण पञ्चम सन्धि।

३ काव्यप्रकाश प्रथम उल्लास

४. श्रुतीना सागशास्त्राणामितिहासपुराणयो.।
अर्थग्रन्थ कथाभ्यास कवित्वस्यैकमौषधम्॥
काव्यमीमासा अध्याय ८ पृ ०८६

काव्य सौन्दर्य मे (स्वच्छता) लावण्य व्युत्पत्ति रूपी बाणफलक से ही आता है। जैसे दृढशरीर में कफ, वात, और पित्त, समस्थिति मे रहने पर रोग उत्पन्न नही होता, वैसे ही अशिथिल काव्य कलाशरीर मे शक्ति व्युत्पत्ति, और अभ्यास तीनो समरूप रहने पर, शब्दार्थ सन्दर्भ दोष उत्पन्न नही होता[१]।

उपर्युक्त काव्य की योनियो मे वस्तुत. रामायण, महाभारत, पुराण आदि ही काव्य के उत्पत्तिस्थान के अर्थ मे प्रयुक्त हो सकते हैं। अन्य शेष तो विदग्ध महाकाव्य के शरीर शृंगार-उपकरण के रूप मे ही प्रयुक्त है। उन्हे इस गौण अर्थ मे ही परिगणित करना चाहिये। विदग्ध कवियो ने अपने महाकाव्यो को उपर्युक्त काव्ययोनियो द्वारा विशेष प्रभावशाली या विषय को स्पष्ट करने के हेतु, अलकृत किया है। इनका विचार प्रत्येक काव्य के अध्ययन प्रसंग मे करेंगे।

साहित्य लक्षणग्रंथों का प्रभाव (ग)

हमारे यहाँ लक्षण ग्रन्थो के प्रणयनो का प्रभाव, काव्य शरीर के लिये पथ्यकर नही रहा। काव्य शरीर मे रक्त-रस की अपेक्षा मास, मज्जा की वृद्धि हुई। कवियो की दृष्टि, लक्षणग्रन्थो से, सकुचित हो जाने से निर्दिष्ट क्षेत्र मे ही सचरण करने लगी। कविवर्ग लक्षणग्रन्थोत्तर लक्षणो की पूर्ति कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझने लगे। अब वे काव्य का स्वरूप सुष्ठु रूप से संघटित करने के स्थान पर,बाह्य शरीर की चमक-धमक, उसकी सजावट मे ही उलझने लगे। सहृदय के हृदय का भाव गौण समझा गया। लक्षण ग्रथो मे रसो और भावो की सख्या निश्चित हो जाने से. जो बाते भावो और रसो के निर्दिष्ट शब्दो की सीमान्तर्गत आती दिखाई नही दी, उनके वर्णन से उन्हे कोई प्रयोजन ही न रहा। जैसा कि हमने अभिनवगुप्ताचार्योक्त सहृदय का लक्षण बतलाया है, उससे सिद्ध हो जाता है कि सहृदय पाठक को रस, नायिका, अलकार आदि के लक्षण और उदाहरण जानना आवश्यक हो गया था। ऐसी स्थिति मे कवियो का एक ही पथ में पूर्ण रस निष्पत्ति प्रदर्शित करने का उत्साह बढा। परिणामत कुछ बाते तो कवि ने श्लोक, छन्द मे निहित कर दी और कुछ बाते नायिका, अलं-

१ यत्काव्यरत्नमुपधातुभिवोपनीय शक्त्या निसर्गविवृतोद्गमयार्पित ते।
तच्छातता गमितवानसि वर्धमानव्युत्पत्तिशाणफलकार्पणनैपुणेन ॥
तत्सौष्ठवव्यसनिकाव्यकला शरीर नो जात्ववद्यमयमामयमभ्युपैति।
शक्त्यादयो दधत्ति साम्यगति त्रयोऽपि ते यत्र धातवइवाविकृतप्रतिष्ठा:
१३७-१३८ काव्यमाला श्री कण्ठचरित सर्ग २५-

कार आदि का संकेत प्राप्त कर सहृदय पाठक स्वयं समझने, उनकी पूर्त्ति करने लगे। जैसे किसी छन्द में केवल आलंबन और उद्दीपन विभावों की, किसी छन्द में केवल अनुभावों की और किसी छन्द में व्यभिचारि भावों की स्थिति पर भी उनके असाधारण (लिंग) होने से उनके द्वारा शेष दो का आक्षेप हो जाने पर (विभाव आदि) तीनों के संयोग से रस निष्पत्ति के सिद्धान्त का व्यभिचार नहीं होता कहा गया है।[1]

परिणामस्वरूप उस स्वरूप चित्रण का कार्य हल्का होने से, कवि वर्ग पद-क्रीड़ा में प्रवृत्त हुआ। वर्ण्य वस्तुओं की सूची हो जाने से या उनकी गिनती और वर्गीकरण हो जाने से बाह्य और अभ्यन्तर दोनों सृष्टियों की विविधता का काव्यों में अभाव सा होता चला गया।[2] जिस प्रकार बाह्यप्रकृति के अनेक रूप हैं, उसी प्रकार मनुष्य प्रकृति के भी।

सृष्टि के अनेक रूपों की तरह मनुष्य स्वभाव और चरित्र की भी अनेकरूपता दृग्गोचर होती है। उद्दीपन की कुछ वस्तुओं के गिनाने और नायक-नायिका के धीराधीरा, धीरोदात्त आदि भेद परिगणित करने से अनेकरूपता ओझल हो गई। कवियों ने धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त नायक की चतुष्कोण सीमा में ही मानव प्रकृति की अनेकरूपता सीमित कर दी। क्या इस चतुष्कोण में मिलने वाली मानव प्रकृति की विविधता आ जाती है[3]? वस्तुतः बाह्य सौन्दर्य आन्तरिक सौन्दर्य की तुलना में स्थिर, अपरिवर्तनीय और निर्जीव है। आकाश का रंग बीच-बीच में परिवर्तनशील होने पर भी नीला ही है। सरिता और सागर तरंगाकुल होने पर भी एक समताकार को ही धारण करते हैं। किन्तु मानव प्रकृति क्षण-क्षण में नवीन, अभूतपूर्व और अतर्क्य रूप धारण करती है। उसके हृदय में घृणा भक्ति का, वैर या शत्रुता, दया या प्रेम का और प्रतिहिंसा, कृतज्ञता या करुणा का रूप धारण कर लेती है। महान् कवियों की दृष्टि इसी रहस्यपूर्ण परिवर्तन को देखती और खोलकर रख देती है। किन्तु इस रहस्यपूर्ण परिवर्तन को देखने

---

१. यद्यपि विभावाना, अनुभावाना, औत्सुक्य-क्रीडा-हर्ष-कोप असूया प्रसादाना च-व्यभिचारिणा केवलानामत्र स्थिति, तथाऽप्येतेषाम् साधारणत्वमित्यन्यद्वयाक्षेपकत्वे सति नानैकान्तिकत्वमिति ॥

काव्यमालाप्रकाश चतुर्थ उल्लास का २७-२८, सू० ४३,

२. काव्य कल्पलतावृत्ति अमरचन्द्र यति कृता, प्रस्ताव १ स्तबक ५

३. दशरूपकम् धनंजय, द्वितीयप्रकाश।

के लिए, विविध प्रवृत्तियो की समष्टिरूपा मानव प्रकृति के अन्वीक्षण की आवश्यकता होती है। और यह आवश्यकता, अन्वीक्षण की जिज्ञासा उक्त चार प्रकार के आदर्श पैट या ढाँचे तैयार मिलने पर विदग्ध कवियो को भासित ही नहीं हुई। विदग्ध महाकाव्यो के नायक प्राय पौराणिक देव और धार्मिक नायक हैं और इन दो को छोड़कर अन्य शेष महाकाव्यो के नायक मानव होने पर भी उक्त आदर्श मे रगे हुए होने से केवल निर्जीव नमूने से भासित होते हैं। नायिकाओ के भेद भी शृगार की दृष्टि से किये गये है। सर्वव्यापार व्यापी प्रकृति भेद की दृष्टि से नही है। उदाहरण के लिये, बाल्मीकि निर्मित मन्थरा का रूप नायिका भेद के ग्रन्थो मे नही मिलता। यह वह रूप है जो निम्न वर्ग की अशिक्षिता स्त्रियो के सामान्य द्वेषपूर्ण, कुटिलता और इधर-उधर लगाने की प्रवृत्ति की स्त्रियो का होता है। साराश यह है कि हमारे यहाँ का नायक नायिका भेद चरित्र चित्रण में सहायक न होकर बाधक ही सिद्ध हुए। उक्त आदर्श के अनुसार विदग्ध महाकाव्यो के नायक, नायिकाओ के चरित्र का पूर्ण विकास नही हुआ, जो है भी वह परम्परागत रूढ है।

वस्तुत काव्य की उत्कृष्टता, प्रकृति के व्यापक क्षेत्र के दर्शन पर निर्भर है और यह उत्कृष्टता प्रकृति के एक एक अग के दर्शन और निरीक्षण से प्राप्त होती है। जैसा कि पूर्व कहा गया है कि प्रकृति का क्षेत्र ऋतुओ और स्थानो की वर्ण्यवस्तुओ की सूची तैयार करने से सीमित हो गई। कवियो का गभीर कार्य सुगम होने से प्रकृति का अधिकाश भाग उनकी दृष्टि से ओझल हो गया। परिणामत एक रूढी मार्ग का निर्माण हुआ। उदाहरण के लिये दो एक अलकारो पर विचार करने से स्पष्ट हो जाती है। रूपकातिशयोक्ति में केवल उपमानो का ही कथन होता है। उन उपमानो पर से सहृदय पाठक उपमेयो की कल्पना करता रहता है। यह तभी सभव है जब उपमान नियत हो। एक ही उपमा का पिष्टपेषण होने से ही किसी उपमेय के लिए परम्परागत उपमान का सम्बन्ध निश्चित हो सकता है।

इसी ढग पर रूपक, सागरूपक, समासोक्ति और श्लेष आदि अलकारो की परम्परा चल पड़ी। कवि एक ही छद मे चन्द्रास्त और विष्णु की परिचर्या का कथन करने लगे।[1] एक ही काव्य मे भिन्न-भिन्न कथाओ की योजना होने लगी और इस प्रकार शिष्ट काव्य की एक परम्परा ही हमे मिलती है।

---

१ व्यजन्नगूढमुदरे कमलै सराग पद्माकरापचितिदुर्ललिताग्रपादः ।
जाते प्रभातसमयेऽप्यगजा भुजग, पश्य स्वपित्ययमितो विधुरन्तरब्धे ॥
७ सर्ग १६-श्रीकठ चरितम् काव्यमाला.

सूर्योदयजन्य लालिमा को कवि निशानायिका द्वारा चन्द्ररूपी चषक से पातित मदिरा का रग समझने लगा [1]। सागरूपक द्वारा कवि पात्रो के अनुभावो और सिंह की क्रोधजन्य स्वाभाविक क्रीडा का वर्णन करने लगा।[2] रीतिग्रंथो मे निर्दिष्ट सर्गों की सख्या और वर्ण्यवस्तुओ के वर्णन की पूर्ति महाकाव्यो मे होने लगी। फिर चाहे कथा के प्रसग मे किसी-किसी वस्तु की आवश्यकता हो न हो। इस प्रकार अप्रासगिक वर्णन का भी समावेश काव्यो मे होने लगा। (अप्रासगिक वर्णनो की नियोजना उचित स्थानो पर निर्दिष्ट करेंगे)

नायकस्य कवे श्रोतु समानोऽनुभवस्तत ।

हृदय संवाद—

उत्कृष्ट काव्य मे कवि, पात्र और श्रोता तीनो के हृदय का समन्वय होता है जिससे काव्य का जो प्रकृत लक्ष्य है, भावो के प्रकृत सबन्ध का प्रत्यक्षीकरण जगत के साथ हमारी रागात्मिका वृत्ति का सामजस्य, सिद्ध हो जाता है।

वस्तुत कवि का साधारणीभूत प्रत्यय और सहृदय का काव्याध्ययन से मिलने वाला साधारणीभूत प्रत्यय एकजातीय होता है। यही हृदय सवाद होता है। 'एकत्र दृष्टस्य अन्यत्र तथा दर्शन सवादः'। नाटक या महाकाव्य गत पात्र—नायक वासनासवाद का माध्यम होता है। कवि का अनुभव नायक के द्वारा रसिक के प्रति सकान्त होता है। इसी ओर लक्ष्य करते हुए भट्ट तौत ने कहा है कि कवि, नायक व सहृदय का अनुभव समान रहता है[3]। ऐसे ही काव्य अमर होते हैं, जिनमे सहृदय अपने भावो के आलम्बन प्राप्त करते हैं। जो काव्य न कवि की अनुभूति से सम्बन्ध रखते हैं न श्रोता की, उनमे कोरे कल्पना विलास और बुद्धि वैभव के सहारे भावो के स्वरूप का प्रदर्शन होता है। यदि कवि ने समुद्र की उत्तान लहरो को चन्द्रोदय होने पर आकाश तक पहुँचा दिया, रौद्र रस के लिये, नेत्रो की रक्तता, भ्रूभग, दाँत और ओठो का चबाना, शस्त्रो का उठाना, हाथ पर हाथ रगडना आदि अनुभावो का चित्रण किया, कैलास वर्णन मे अनेक अत्यु

१. वही—१४

२. वही—सर्ग १८ श्लो० ३८, ४० ।

३ 'यदुक्तमस्मदुपाध्यायभट्टतौतेन—नायकस्य कवे श्रोतु समानोऽनुभवस्तत इति। ध्वन्यालोक—उद्योत—१, काव्यामाला, पृ० ३४ लोचन टीका।

क्तियों उपमोत्प्रेक्षाओं को लाकर रख दिया तो बस उनकी प्रशंसा हो गई। कहने की आवश्यकता नहीं कि मनोरंजन की सामग्रियो से पूर्ण विदग्ध महाकाव्य रत्नाकर कृत हरविजय, मखक, श्रीकठचरित—धर्मशर्माभ्युदय, रावणार्जुनीय आदि हैं। ऐसी रचना सहृदयहृदयाल्हादक नही होती। पूर्णरस की निष्पत्ति के लिये तीन हृदयो का समन्वय अत्यावश्यक है। सहृदय के हृदय में भी प्रदर्शित भाव का उदय न हुआ तो साधारणीकरण या हृदय संवाद कैसा!

काव्य में असाधारणतत्व—

जैसा कि हमने इसके पूर्व भामह और कुन्तक की वक्रोक्ति मे देखा है कि काव्य मे इतिवृत्तात्मक कथन की अपेक्षा असाधारण या वक्रोक्ति ही अधिक प्रयोजनीय होती है। वस्तुत प्रसगानुसार साधारण-असाधारण सभी वस्तुओ का वर्णन कवि का कर्तव्य होता है। इस असाधारण की भावना ने कवियो को एकागी बना दिया। अब कवि कर्मक्षेत्र से सहृदयता का अभाव हो गया। पाडित्य ने असाधारण कल्पना और असाधारण बुद्धि को सहारा दिया। परिणामत 'स्वत सभवीवस्तु, की अपेक्षा 'कविप्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु' की ओर कवियो का ध्यान अधिक आकर्षित हुआ। उत्प्रेक्षा के प्रभाव में वस्तु और व्यापार का सूक्ष्म निरीक्षण समाप्त हो गया।

सप्तम अध्याय

संस्कृत के विदग्ध महाकाव्य

हमारे स्वीकृत विषय (संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा—कालिदास से श्री हर्ष तक १२ वी शती) की निर्धारित सीमा के अन्तर्गत उपलब्ध विशाल संस्कृत महाकाव्यो की परम्परा मे कवियो की वैयक्तिक विशेषतायें भिन्न-भिन्न होते हुए भी कई समानताएं भी मिलती हैं। इस समानता को अधिक स्पष्ट करने के लिये ही हमने प्रथमशती अर्थात् कवि अश्वघोष से (श्री हर्ष तक बारह सौ वर्षों की) काव्य प्रवृत्तियो को देखने का प्रयत्न किया है। यहा पुनरुक्ति होने पर भी यदि विषय स्पष्ट हो जाता है तो आपत्तिजनक नही होना चाहिये। जैसा कि हमने काव्य प्रकारो मे कहा है कि काव्य के दो भेद—वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ होते हैं। इनमे से प्रथम भेद तो (वस्तुनिष्ठ) आर्ष काव्य मे आता है और द्वितीय भेद आत्मनिष्ठ विदग्ध महाकाव्यो मे। किन्तु इन व्यक्तिप्रधान काव्यो—विदग्ध काव्यो—मे प्रत्येक कवि की वैयक्तिक विशेषताएं अर्थात् उसकी विशिष्ट प्रकृति और उसकी रुचि आदि भिन्न-भिन्न होते हुए भी कई समानताएं मिलती हैं। इनमे एकसूत्रता या परम्परा ढूढी जा सकती है। इनमे अनेक वर्णनो की परम्परा, एकसूत्रता या विकास देखने को मिलता है। प्रथम शती अर्थात् कवि अश्वघोष से हर्षवर्धन तक (६५० ई० तक) काव्य मे नई-नई प्रवृत्तियो या उद्‌भावनाओ के प्रयोग मे एक निरन्तर विकास हुआ है। इसलिये उपर्युक्त बारह सौ वर्ष के काव्यसाहित्य को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग १ली शती से ६५० ई० तक संस्कृत काव्य का विकास का काल माना जा सकता है किन्तु हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् ही यह विकास रुद्ध हो गया, जैसा कि हमने इसके पूर्व देखा है। इस समय से पाण्डित्य प्रदर्शन की उग्र भावना ने काव्य की नैसर्गिक भावना को दबाकर कृत्रिम रूप मे बदल दिया। इस समय के काव्य सामन्ती विलासिता के आदर्श बन गये। इस परम्परा का यदि प्रथम छोर अश्वघोष है है तो दूसरा श्रीहर्ष। इस परम्परा को बतलाने के पूर्व परम्परा के अर्थ का ज्ञान भी अपेक्षित है। अनेक विद्वानो के मत से काव्य में उसके कर्त्ता कवि की वैयक्तिता की छाप होने से, वह सदा दूसरे काव्य से भिन्न रहेगा। इस स्थिति में परम्परा, एकसूत्रता, या समानता का प्रश्न ही उपस्थित नही होता।

काव्य और परम्परा

भाषा और भाव दोनो का औचित्यपूर्ण सयोग ही काव्य है। दोनो का विकास और प्रसार परम्परा द्वारा होता है, इसमे दो मत नही हो सकते। काव्य मे परम्परा एक अनिवार्य तत्व है। उसमे एक क्रमिक विकास होता है। यह विकास कडी-कडी, बिन्दु-बिन्दु से बनती रेखा से जाना जा सकता है इन दोनो के मिलन से ही एक श्रृङ्खला बनती है। "एक कडी दूसरी कडी से भिन्न है, जैसे एक बिन्दु से दूसरा बिन्दु भिन्न है। जैसे व्यक्तिश पिता-पुत्र भिन्न हैं यद्यपि मानव जाति की श्रृखला एक है। जैसे अनुक्रमिक कडियो, विन्दुओ अथवा पिता-पुत्रवत् वैयक्तिक इकाइयो के अभाव मे अद्यावधि समागत जजीर, रेखा, अथवा मानव जाति की की श्रृखला का बोध नही हो सकता, वैसे ही साहित्यिक परम्परा के अभाव मे ही साहित्य की सम्भावना अनिवार्य है।" कुछ विद्वानो के मत मे परम्परा रूढि का पर्याय है। किन्तु यह मत सर्वथा परम्परा के विपरीत अर्थ का द्योतक है। वस्तुत परम्परा की विकसित होती श्रृखला की कडी जो किसी कारणवश, रुद्ध हो जाती है और विकास की गति मे मार्गावरोध उत्पन्न करती है, वह रूढी है। और यह रूढी त्याज्य है। सारत परम्परा का पर्याय परिवर्तन है, गति है और रूढि का अर्थ है, निश्चलता या अपरिवर्तन। साहित्य ही के पूर्व और पर की कडियो या साहित्यो का ज्ञान, एकसूत्रता या समानता को जन्म देता है। जहा एक ओर यह पूर्व और पर का ज्ञान भाव, भाषा अथवा शब्दो की सर्जना का कारण बनता है वही दूसरी ओर वैयक्तिकता से त्याग कर भी कारण बनता है। पूर्व और पर साहित्य की कडियो के ज्ञान में हमारे सस्कृत काव्यो में वर्णनो या भावो की समानता या एक सूत्रता की जहा एक ओर सर्जना की है वही दूसरी ओर कवियो की वैयक्तिक अभिरुचि प्रकृति और बाह्य वातावरण ने क्रमागत में विकास या परिवर्तन को भी ला रखा है। और यह समानता और एकसूत्रता, क्रमिक विकास तथा परिवर्तन ही परम्परा है। परम्परा शब्द की होती है, वाक्य और स्थितियों की होती है, भावो या वर्णनो की होती है, प्रतीको की होती है। मधुकर का कुसुम के पात्र मे मधु पीना एक परम्परा है जैसे सूर्य का कमलिनी से प्रेम और चन्द्रिमा का रजनी का प्रणयी होना, दूसरी परम्परा है। कमल से मुख, चरण, हस्तादि की उपमा तीसरी, पाथेय लेकर हंसो का मानसरोवर की ओर उड़ जाना सस्कृत की परम्परा है। "ये हस, निश्चय, मानसरोवर को उड़कर नही जाते, फिर भी काव्य व्यजना मे वह परम्परा तो अक्षुण्ण बनी ही

है यहाँ तक की जिस मार्ग से हिमालय की दक्षिणी दीवार भेदकर इनका निकल जाना कहा जाता है, उसका नाम ही 'क्रौचरंध्र' रख दिया गया है। और इस क्रौचरन्ध्र के निर्माता परशुराम ने बाण मारकर हिमालय मे सुराख बना देने की बात स्वत एक पौराणिक और तदनतर काव्य की परम्परा बन गई है। कमल मानसरोवर मे नही होता, यह भौगोलिक सत्य है, और यदि होता भी है तो नितान्त नगण्य, उससे कही सुन्दर और बडे हमारे गावो की गडहियो मे कमल खिलते हैं। परन्तु कालिदास आदि सस्कृत कवियो ने परम्परया मानसरोवर के असाधारण स्वर्ण कमलो का बखान किया है। इन्ही परम्पराओ का, उनके वास्तविक अनस्तित्व के रहने पर भी उल्लेख करके कवि समर्थ हो जाता है और उन्ही की उपेक्षा करके तार्किक कवि टूट जाता है।" राजकुमार या राजा को देखने के लिये लालायित ललनाओ का वर्णन, द्रुतविलम्बित छन्द मे यमकमय ऋतुवर्णन आदि की महाकाव्यो मे परम्परा रही है। इन परम्पराओ का दिग्दर्शन हम प्रत्येक महाकाव्य के आलोचन प्रसंग मे आदान शीर्षक के अन्तर्गत करेंगे। एकसूत्रता या समानता की दृष्टि से उपर्युक्त कालावधि के सभी कवि पौराणिक ब्राह्मण धर्म के प्रतिनिधि है। अन्य धर्मावलम्बी होने पर भी पौराणिक-ब्राह्मण धर्म के प्रति आदर-सम्मान की दृष्टि रखते हैं। अश्वघोष बौद्धधर्मावलम्बी होने पर भी पौराणिक ब्राह्मण धर्म के प्रति आदरभाव रखते है। उनके दोनो काव्यो (बुद्धचरित्र और सौन्दरानन्द) के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अश्वघोष को पौराणिक ब्राह्मण धर्म का अच्छा ज्ञान था। विद्वानो के मत मे बौद्धधर्मावलम्बी होने के पूर्व अश्वघोष जाति से ब्राह्मण थे। यही स्थिति अन्य कवियो की है। 'पद्यचूणामणि' के कर्ता बुद्धघोष कफ्फणाभ्युदय के कर्ता शिवस्वामी ब्राह्मण थे। धर्मशर्माभ्युदय के कर्ता हरिचन्द्र जाति से कायस्थ थे। इन कवियो के काव्यो मे स्थान-स्थान पर साकेतिक पौराणिक आख्यानो, वृत्तो, घटनाओ, उपमाओ तथा दार्शनिक सिद्धान्तो से इन कवियो का ब्राह्मणधर्म-दर्शन के प्रति आदरभाव व गम्भीर ज्ञान प्रकट होता है। बुद्धचरित तथा सौदरनन्द मे पौराणिक उपाख्यानो का संकेत मिलता है। बुद्धचरित के प्रथम सर्ग (४१–४५) ४थं सर्ग (७२–८०) सौन्दरनन्द के सप्तम सर्ग (२६–४५) आदि कफ्फणाभ्युदय के २०वें सर्ग मे २३,२४ गीता के १८–७३ मे हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म में समन्वय

१. "मध्यप्रदेश सन्देश,, २४ सितम्बर १९६० साहित्य और परम्परा पृ० ८–९ डा० भगवत्शरण उपाध्याय

स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। शिवस्वामिन् शैवमतावलम्बी थे। इस काव्य में प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'शिव' शब्द के आने से यह काव्य 'शिवाक' कहा गया है।

धर्मशर्माभ्युदय के सर्ग ३ (२९), ४ मे (३०,४१,४५) ९ मे (१५,१७, १८) १८ मे (३५) पौराणिक आख्यानो का सकेत देखा जा सकता है। इन काव्यो के उपर्युक्त सर्गों मे रामकथा व शिवपार्वती कथा, स्वर्ग, इन्द्र, शिव, कामदेव, आदि देवता और अप्सराएँ आदि की पौराणिक मान्यता के विषय मे संकेत मिलते हैं। जैसा कि हमने पीछे देखा है हमारी उपर्युक्त कालावधि के सम्पूर्ण कवि सामन्तवाद के पोषक और दरबारी कवि है। अश्वघोष प्रथम दरबारी कवि हैं और श्रीहर्ष अन्तिम।

यह हमने पूर्व देख लिया है कि विदग्धमहाकाव्यो का वातावरण, मूल प्रेरणा, उद्देश्य, और शैली आदि तत्व व्यास, वाल्मीकि के होमर के आर्षकाव्यो से बहुत भिन्न है। नवीन शिष्टयुग के प्रभाव से प्रभावित कवियो ने, कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि प्राचीन और नवीन विषय मे समन्वय स्थापित करते हुए अर्थात् प्राचीन आर्षकाव्यो के चित्रो की रूपरेखा को नवीन, चमकीले रग से चित्रित कर वर्तमानकालीन भौतिक युग की रेखा मे स्थापित किया। भौतिक युग की प्रेरणा से प्राचीन तत्वो का स्वकालोचित पुनर्नवनिर्माण ही विदग्ध महाकाव्य है।[1] सास्कृतिक दृष्टि से विदग्ध काव्यो का युग भौतिक समृद्धि-सम्पन्नता या उत्कर्ष का काल माना जा सकता है। वस्तुत जातिविशेष के सास्कृतिक उत्कर्ष का समय वह माना जा सकता है जब वह जातिविशेष विभिन्न कलाओ विद्याओ और विज्ञाताओ के क्षेत्रो में प्रगति के पद पर अग्रसर हो। और प्रगति करने का अवसर मनुष्य को अस्तित्व की आवश्यकताओ की पूर्ति करने की चिन्ताभाव पर निर्भर होता है। सास्कृतिक उन्नति भौतिक अस्तित्व की आवश्यकताओ की पूर्ति करने के पश्चात् ही हो सकती है। अरस्तु ने अपने 'मेटाफिजिक्स,' ग्रथ मे लिखा है कि "गणित सम्बन्धी कलाओ की स्थापना मिश्र, देश मे हुई, क्योकि वहा पुरोहित जाति के लोगो को अवकाश उपलब्ध था"।[2] तात्पर्य यह है कि मिस्र देश की जनता को अपने भौतिक जीवन की आवश्यकताओं

१, डॉ० वाटवे 'सस्कृत काव्याचे पचप्राण,' पृ० ३१

२ मेटाफिजिक्स १,१,९८१ 'भारतीय सस्कृति' डा० देवराज पृ० ७७

की पूर्ति करने मे सदा व्यस्त रहना नही पडता था और संपत्ति के उत्पादन में सदा व्यस्त न रहने से उन्हे अन्याय कलाओ, विद्याओं, दर्शनों आदि में उन्नति करने का यथेष्ट अवसर था। (ठीक यही स्थिति हम अपने विदग्ध महाकवियो के विषय मे भी कह सकते है) । इस निश्चित अवसर पर सस्कृत व्यक्ति के मन बुद्धि केवल जीवन की उपयोगितामूलक समस्याओ से कही दूर सचरण करते हुए व्यक्तित्व के सौन्दर्य एवं चेतना के परिष्कार में उलझते रहते है । उनकी रुचि प्रधानत अब सौन्दर्यबोध नीतिबोध एवं तत्वबोध मे होती है ।

आर्ष और विदग्ध कवियो का दृष्टिकोणः—

उपर्युक्त दृष्टिकोण से आर्षक व्यो—रामायण, महाभारत की ओर देखने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन कवियो का ध्यान सौन्दर्य बोध की अपेक्षा नीति बोध, तत्व बोध ही पर अधिक लगा रहता है। यत्र-तत्र धर्म चर्चा नीति चर्चा का ही बोलबाला रहता है । इन दोनो काव्यो के नायको का जीवन संघर्षमय है । अत महाभारतकार की दृष्टि भी प्राय उवयोगितावाद की सीमा का अतिक्रमण नही करती । महाभारत के पात्रो एव नायको का ध्यान सघर्ष मे उलझा होने से सौन्दर्य बोध एव तज्जन्य आनन्द की ओर नही जाता। उनके नायको का एकमात्र लक्ष्य अपने खोये हुए राज्य को पुन' प्राप्त करने का है । इसलिये महाभारत काव्य-कोटि मे नही आता, वस्तुत काव्य मे सौन्दर्य बोध ही प्रधान रहता है । इसके विपरीत महाभारत मे प्रकृतिसौन्दर्य और *नारीसौन्दर्य गौणतम रूप मे ही रहा है। महाभारत मे अनेक नायिकाओ–द्रौपदी,* सुभद्रा, उत्तरा आदि, का समावेश है । किन्तु व्यास इनके सौन्दर्यचित्रण मे कही भी रमते नही दिखाई देते । महाभारत के नारी पात्रो मे द्रौपदी प्रधान नारी होती हुई भी उसके रूपसौन्दर्य का सक्षिप्त वर्णन किया गया है । वस्तुत महाभारतकार ने कुछ सौन्दर्यमूलक विशेषणो का प्रयोग कर ही (सुश्रेणी, सुमध्यमा, तनुमध्यमा आदि) आगे बढने का प्रयत्न किया है। सक्षेप मे आर्षकाव्य के कवियो की दृष्टि उपयोगितावादी है । जिसका सम्बन्ध व्यक्तिविशेष की मनुष्यता से नही होता जब कि सांस्कृतिक-दृष्टि नायक या नायिका के मानवीय व्यक्तित्व मे केन्द्रित रहती है । विदग्ध महाकाव्यो के नायक प्राय आर्षकाव्यो से ही लिये गये हैं इन नायको के साथ वे ही समस्यायें रहती हैं जो आर्षकाव्य के नायको के साथ थी, किन्तु विदग्ध महाकाव्यो की दृष्टि मे एक विशेष अन्तर दिखाई देता है । ये कवि अपने पात्रो को मानवीयता की दृष्टि से देखते हैं ।

अतः इन पात्रो के जीवन की घटनाये, युद्ध व्यापार आदि जो आर्षकाव्य मे प्रधान थी, अब गौणरूप में वर्णित की गई है। इनका अस्तित्व केवल पात्रो के व्यक्तित्व की विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिये होता हैं। कालिदास के रघुवश में, रघु का, दिग्विजय वर्णन, स्वयंवर से लौटते समय अज का अन्य राजाओ के साथ युद्ध का वर्णन किया गया है किन्तु ये वर्णन अब उनके जीवन की कोई प्रमुख घटना के रूप मे नही दिखाई देता। इन घटनाओ के द्वारा विदग्ध कवि नायक के जीवन की कुछ स्पृहणीत विशेषताओ को सामने लाना चाहता है। ये घटनाए साध्य न होकर साधन बन गई हैं। इसीलिये रघुवश मे युद्ध का कोई विस्तृत वर्णन नही है। कुमारसभव मे जहा तक कालिदास की रचना का अंश माना जाता है कुछ वर्णन का समावेश ही नही है। किरातार्जुनीय मे अर्जुन और किरातवेषधारी शिव का वर्णन होते हुए भी पाण्डवो के जीवन का कोई प्रधान सघर्ष नही है। इसके पश्चात् शिशुपालवध मे भी युद्ध का कोई विस्तृत वर्णन नहीं किया गया है। इसके विपरीत इन विदग्ध महाकाव्यो मे पात्रो के सौन्दर्य वर्णन ही अधिक विस्तार से वर्णित है। इन सौन्दर्य वर्णनो मे नायक-नायिकाओ के सयोग-वियोग, उनके सौन्दर्य के वर्णन तथा विभिन्न ऋतुओ आश्रमो जलविहार आदि के विस्तृत वर्णन हैं।

समर प्रसंग:—

शिक्षा और सभ्यता के विकास के साथ कलाओ का भी विकास होता है।[१] मानवी सस्कृति की प्रारंभिक अवस्था मे मूर्त सग्राम मे ही जनरुचि होती है। वीर काव्य के इस मूर्तसग्राम प्राणतन्तु की क्षीणता या समाप्ति उत्तरकालीन विदग्ध महाकाव्यो मे परिलक्षित होती है। रामायण, महाभारत, इलियड, बेओउल्फ आदि काव्यो मे वर्णित युद्धप्रकार, युयुत्सुवृत्ति देव-दैत्य, पक्ष-पक्ष का या व्यक्ति-व्यक्ति का द्वन्द पूर्ण मूर्त स्वरूप का ही है। सर्वत्र ही राम-लक्ष्मण का राक्षसो से,अर्जुन का कर्ण से,भीम का दुर्योधन से,मूर्त युद्ध ही वर्णित है। इनकी तुलना मे उत्तरकालीन विदग्ध महाकाव्यो—किरातार्जुनीय, शिशुपाल-वध मे काल्पनिक, कृत्रिम, लक्षित होता है। उनमे वह मूर्तिमत्ता व सजीवता नही जो आदि काव्यो मे है। किन्तु बौद्धिक विकास के साथ प्राचीन काल का स्थूल व्यक्तिनिष्ठ और प्रत्यक्ष समर सूक्ष्म तत्त्वनिष्ठ और अमूर्त मे परि-

---

१ The Arts advance with the advance of civilisation
Page 28
English epic and Heroic Poetry — Dixon

णत हो जाता है। यह अमूर्त सग्राम दो प्रकारो में विभक्त किया जा सकता है। (१) प्रथम वह है जिसमे व्यक्ति का और परिस्थितयो का सग्राम होता है। इसमें व्यक्ति अमूर्त परिस्थिति से लडता, झगडता अपने इष्ट फल की प्राप्ति करता है।

२ द्वितीय में एक ही व्यक्ति के मन मे द्विधा उत्पन्न होती है और वह अपने मन के दो विरोधी विचारो-सकल्प विकल्प से लडता, झगडता अन्त में इष्टफल प्राप्त करता है।

उपर्युक्त दोनो प्रकार अश्वघोष के बुद्धचरित, सौन्दरानन्द महाकाव्यों में और कालिदास के कुमारसम्भव, रघुवश, नैषध महाकाव्यो मे लक्षित होते है। भारवि, माघ कवि का लक्ष्य युद्धो मे न होकर जैसा कि ऊपर कहा है, विविध वर्णनो कृत्रिम शब्द योजना मे ही अधिक व्याप्त रहा है।

प्राचीन कथाओ के प्रसंग :—

इन विदग्ध महाकाव्यो मे प्राचीन कथाओ के प्रसंग भी केवल ज्ञानात्मक, नैतिक, धार्मिक चर्चा के उदाहरणार्थ ही उल्लिखित किये गये हैं। रघुवश का दिलीप-सिहसवाद (सर्ग २), रघु का कौत्सप्रसग (सर्ग ५) की योजना केवल उपयुक्ततावाद की अपेक्षा कर्तव्यवाद की श्रेष्ठता बतलाने के लिये तथा सत्कार्य मे व्यय किया हुआ धन किसी न किसी रूप मे देने वाले को मिलता है, इस नैतिक तत्त्व का प्रतिपादन करने के लिये ही है। मोक्षधर्म की उपयुक्तता भारवि ने द्रौपदी, युधिष्ठिर और इन्द्र व अर्जुन के सवादो मे व्यक्त की है।

व्यक्ति को सुन्दर बनाने वाले उपकरण

वाणी सौन्दर्य :—

विदग्ध कवि व्यक्तित्व को सुन्दर बनाने वाले उपकरणो पर (स्वभाव चरित्र) विशेष ध्यान देते हैं। वे भाषा, अलकार, छन्द आदि के प्रयोगों की ओर भी आर्ष कवियो की अपेक्षा अधिक सतर्क दिखाई देते हैं।

व्यक्तित्व को प्रभावशाली एव सुन्दर बनाने वाले उपकरणो मे सुसंस्कृत वाणी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पार्वती की महत्ता बतलाते हुए कालिदास ने कहा है कि 'ज्योति से दीपक, मन्दाकिनी से आकाश' संस्कृत वाणी से विद्वान की तरह पार्वती से हिमालय पवित्र तथा भूषित हुआ।'[1] इस सुसंस्कृत

---

१ 'सस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च।"
कुमारसभव—सर्ग १।२८

वाणी का सौन्दर्य विभिन्न घटको पर निर्भर होता है। उनमें से एक घटक है समुचित स्थानो से शब्दो का उच्चारण। देवताओ की स्तुति के पश्चात् विष्णु ने उन्हे दिये उत्तर का वर्णन कालिदास ने इस प्रकार किया है—पुराण कवि के मुख से निःसृत, समुचित स्थानो से (कण्ठ, तालु, दन्त आदि) यथावत् उच्चारित तथा सस्कार (साधुत्व, प्रयत्न की स्पष्टता आदि) से समन्वित वाणी चरितार्थ हुई[1]।

कवि माघ ने भी शुद्धोच्चारण वाली वाणी के विषय मे कहा है[2]। सुसस्कृत वाणी के सौन्दर्य का दूसरा घटक 'अर्थसम्पत्ति' है। शब्दो का शुद्धोच्चारण होने पर भी, विनिश्चित अर्थसम्पत्ति के अभाव मे, उनका कोई महत्व नही होता। उनके सौन्दर्य को भासित करने के लिये अपेक्षित है वाणी का अर्थपूर्ण होना। इस सौन्दर्य की ओर विदग्ध कवियो ने महाकाव्यो मे अनेक स्थानो पर सकेत किया है। भारवि ने किरातार्जुनीय मे इस बिन्दु की ओर अनेक स्थानो पर सकेत किया है। दुर्योधन के राज्य की व्यवस्था के विषय मे सूचना लेकर जो वनेचर युधिष्ठिर के पास आया, उसकी वाणी मे कई विशेषताए थी। युधिष्ठिर से प्रिय अथवा अप्रिय सूचना सुनाने की आज्ञा प्राप्त कर उसने सरलता और उदारता से विशेष महत्वपूर्ण अर्थयुक्त वाणी मे कहा[3]।

उपर्युक्त वाणी मे समुचित शब्दो का समावेश था, वह अर्थपूर्ण थी और विनिश्चित अर्थ वाली भी थी। दूसरे प्रसग पर भीमसेन को समझाने की इच्छा से, युधिष्ठिर, प्रथम उनके वक्तव्य की प्रशसा करते है। भीमसेन केवल, अपने शरीराकार की तरह मोटी बुद्धिवाले नही है। वे नीतिज्ञ और शास्त्रवेत्ता भी हैं। उनकी वाणी मे स्पष्टता तथा अर्थगाम्भीर्य था। वह पुनरुक्त दोष से भी मुक्त थी। उसमे परस्पर सम्बन्ध निर्वाह का ध्यान रखा गया था। उसमे प्रबल युक्तियो का समावेश होने पर भी नीतिशास्त्र का उल्लंघन नही था।

---

१. पुराणस्य कवेस्तस्य वर्णस्थानसमीरता।
   बभूव कृतसस्कारा चरितार्थैव भारती॥ रघुवश सर्ग १०।३६

२ "स्नपितेवाभवत्तस्य शुद्धवर्णा सरस्वती।" शिशुपालवध सर्ग २।७

३. "स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनी विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे।
   किरातार्जुनीयम् सर्ग १।३

व्यक्तित्व को प्रभावशाली एवं सुन्दर बनाने वाले उपर्युक्त घटकों सुसंस्कृत तथा अर्थपूर्ण वाणी के अतिरिक्त अन्य उपकरण भी हैं, विद्यासम्पन्नता, नैतिक उच्चता एवं साधुता। साधुता से तात्पर्य परकल्याण की भावना से है। विदग्ध महाकाव्यों के नायक दो कोटि के है। (१) देव, (२) मानव। प्रथम कोटि के नायक तो सदा ही आदर्श रहे हैं दूसरी कोटि के नायक भी सुसंस्कृत, विद्यासम्पन्न हैं अत नैतिकउच्चता एवं साधुता से सम्पन्न हैं। कालिदास ने रघुवश मे अपने नायको के प्रतिभाशाली एवं आदर्श व्यक्तित्व को इस प्रकार चित्रित किया है।

रघुवश के वीर राजा जन्म से निषेकादि सस्कारो से शुद्ध, फल की सिद्धि-पर्यन्त कार्य करने वाले, विधिपूवक अग्नि मे आहुति देने वाले, इच्छानुसार याचको का सम्मान करने वाले, अपराध के अनुसार दंड देने वाले, उचित समय पर सावधान या सोकर उठने वाले थे।

वे त्याग के लिए धन एकत्र करते थे, यश के लिये विजय चाहते थे और सन्तान के लिए विवाह। वे बाल्यावस्था मे ही विद्याभ्यास करने वाले, युवावस्था मे भोग की अभिलाषा रखने वाले, बुढापे मे मुनियो की तरह जीविका रखने वाले और अन्त मे योग द्वारा शरीर त्यागते थे।[1] राजा दिलीप, आकार के सदृश बुद्धिवाले, बुद्धि के सदृश शास्त्र का अभ्यास करने वाले, शास्त्र के अनुरूप कर्म प्रारम्भ करने वाले और प्रारम्भ किये हुए कर्म के अनुसार फल प्राप्त करने वाले थे उनमे भीम गुण (प्रताप) और कान्तगुण दोनो ही थे। फलत वे आश्रित वर्ग के लिए वैसे ही आधृष्य और अभिगम्य थे जैसे समुद्र जलजन्तुओ के कारण दूर रहने योग्य और रत्नो के कारण आश्रय लेने लायक होता है। उनकी सेना तो केवल शोभार्थ थी क्योंकि प्रयोजन सिद्धि के उपकरण केवल दो ही थे (१) शास्त्रो मे पैनी बुद्धि, (२) धनुष पर चढ़ी हुई प्रत्यञ्चा।

इस प्रकार सभी विदग्ध महाकवियो ने अपने नायको को विद्यासम्पन्न, नैतिक एव साधु रूप मे चित्रित कर उनके व्यक्तित्व को प्रभावशाली तथा सुन्दर बनाया है।

चमत्कार विधानः—

रामायणकार और महाभारतकार में से महाभारतकार का लक्ष्य कथा के विभिन्न प्रसङ्गो को रोचक या रसात्मक बनाने की ओर नहीं है।

---

१. रघुवंश—सर्ग १। ५, ६, ७, ८

वाल्मीकि इसमे अपवादस्वरूप माने जा सकते हैं। विदग्ध कवि केवल घटनाओ के विवरण मे कोई रुचि नही लेते। इन काव्यो का कथानक अधिक दीर्घ भी नहीं है। उत्तरकालीन काव्यो का कथानक तो अत्यन्त ही छोटा है। अत आर्ष काव्यों की तुलना में इन काव्यो मे नाट्यसन्धियो की योजना होने से कार्यान्विति अधिक है। पूर्वकथानुसार भारवि, माघ, रत्नाकर, आदि के काव्यो का कथानक अत्यन्त छोटा है और उसे ही अपने पण्डित से १८, २०, ५० सर्गों मे वर्णित किया है। इन कवियो का ध्यान सदा चमत्कार (रस चमत्कार,- या शाब्दिक चमत्कार) की ओर रहता है। कोई उक्ति या पंक्ति चमत्कार शून्य नही देना चाहते। राज्य करते हुए राजा दशरथ के दश सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये, इस इतिवृत्त को सूचित करते हुए भी कालिदास उसमे चमत्कार का आधान करना नही भूलते।

> पृथिवी शासतस्तस्य पाकशासनतेजस ।
> किंचिदूनमनूनर्द्धे शरदामयुत ययौ ।। रघुवंश १० । १

'इन्द्र के समान तेजस्वी, राजा दशरथ को पृथ्वी का शासन करते हुए दशसहस्र से कुछ कम वर्ष व्यतीत हो गये।'

अपने वक्तव्य मे चमत्कार लाने के लिये कालिदास ने अनुप्रास की योजना कर दी है। नवम सर्ग मे कालिदास ने ऋतुवर्णन द्रुतविलम्बित छन्द मे किया है और प्रत्येक छन्द के अन्तिम चरण मे यमक, अलकार की नियोजना कर अभिव्यग्य और अभिव्यजना का सुन्दर सन्निवेश कर दिया है। दो युगो की साहित्यिक मनोवृत्तियो मे विकासजन्य भेद देखने के लिए हम आदि काव्य रामायण का अयोध्यानगरीवर्णन, शिशुपालवध के द्वारका-वर्णन के साथ रखते हैं।

'वह महापुरी बारह योजन लम्बी और तीन योजन चौडी थी। वह श्री-सम्पन्न है। उसमे बडी सड़के बनी हुई हैं। उसमे महान राजमार्ग बना हुआ है, उस पर नित्य जलसिञ्चन होता है और खिले हुए पुष्प बिखरे रहते है। वह पुरी बड़े-बड़े फाटको और किवाडो से शोभित है, उन पर बन्दनवार बधे हैं। उसमे पृथक्-पृथक् बाजार हैं। वहाँ सब प्रकार के यन्त्र, अस्त्र-शस्त्र हैं और उसमे सभी कलाओं के शिल्पी निवास करते हैं। वहा स्तुतिपाठ करने वाले सूत और मागध हैं। वह पुरी सुन्दर शोभा से सम्पन्न है। वहाँ ऊँची-ऊँची अट्टालिकाए बनी हुई है। सैकडो शताब्दियो से वह पुरी व्याप्त है। उस पुरी में स्त्रियो की नाटकशालाएँ, उद्यान हैं, आम्र वन हैं। उसके चारों ओर गहरी खाई खुदी है। वह दूसरो के लिये दुर्गम और दुर्जय है। घोडे, हाथी,

गाय, बल, ऊट तथा गदहे आदि उपयोगी पशुओं से भरी हुई है। कर देने वाले सामन्त नरेशो के समुदाय उसे सदा घेरे रहते हैं। वहा नाना देशों के व्यापारी हैं। वहा के प्रासादो का निर्माण नाना प्रकार के रत्नो से हुआ है। (ऐसी अयोध्या को राजा दशरथ ने बसाया[१])।

उपर्युक्त बाल्मीकि का वर्णन स्थूल विवरणात्मक एव सूचीरूप है। इस मे केवल नाना प्रकार की वस्तुओ के नामो की गणना द्वारा अयोध्या पुरी का दृश्य उपस्थित करना चाहा है। कवि का सौन्दर्य विधान एवं रसात्मकता की ओर ध्यान न होने से उसमे चमत्कार की सर्जना भी नही है। इसके विपरीत विदग्ध कवियो ने पुरियो या अन्य वस्तुओ का वर्णन बहुत ही विदग्धतापूर्ण किया है। कवि माघ ने लगभग ३० पद्यो मे द्वारकापुरी का चमत्कार पूर्ण वर्णन किया है। शब्द योजना से वर्ण्यवस्तु का दर्शनीय चित्र उपस्थित हो जाता है।

"समुद्र के बीच मे सुवर्णमय परकोटे की कान्ति से दिशाओ को पिंगलवर्ण करती हुई जल को भेदकर वडवाग्नि की ज्वाला के समान शोभित थी। उस द्वारिकापुरी के बाजारो मे राशियो के रूप मे स्थित स्थिरकान्तिवाले

---

१ "आयता दश चाब्दे च योजनानि महापुरी।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा ॥
राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता।
मुक्तापुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यश.॥
कपाटतोरणवती सुविभक्तान्तरापणाम्।
सर्वयन्त्रायुधवतीमुषिता सर्वशिल्पिभि ॥
सूतमागधसबाधा श्रीमतीमतुलप्रभाम्।
उच्चाट्टालध्वजवती शतघ्नीशतसकुलाम् ॥
वहुनाटकसंघैश्च सयुक्ता सर्वत पुरीम्।
उद्यानाम्रवणोपेता महती सालमेखलाम् ॥
दुर्गगम्भीरपरिखां दुर्गमन्यैर्दुरासदाम्।
वाजिवारणसपूर्णां गोभिरुष्ट्रै खरैस्तथा ॥
सामन्तराजसघैश्च बलिकर्मभिरावृताम्।
नानादेशनिवासैश्च वणिग्भिरुपशोभिताम् ॥
प्रासादैरत्नविकृतै पर्वतैरिव शोभिताम्।
वाल्मीकिरामायण बालकाड सर्ग ५–७, ८, १०, ११, १२, १३, १४, १५

रत्नो को नालियो से आये हुए चचल जलो से चुराता हुआ समुद्र रत्नो की राशिवाला बन गया। वहा की स्त्रिया सौन्दर्य मे अप्सराओ के समकक्ष हैं। इस समानता से किसी भेदकारक गुण को चाहने वाली अप्सराओं से प्रार्थित मनु ने अपनी प्रजाओ को निमेषयुक्त चिह्न वाली कर दिया। जिस द्वारिकापुरी मे रात्रियो मे स्त्रिया स्फुरित होते हुए चन्द्रकिरण को समूहो से छिपी हुई स्फटिक रत्नो के महलो की श्रेणियो पर चढकर आकाशस्थ देवाङ्गनाओ के समान शोभित होती थी। घरो मे कुलाङ्गनाए रतिकाल के समय लज्जा से दीपक को बुझाकर खिडकियो से आयी हुई वैडूर्यमणियो मे प्रतिबिम्बित बिलाव के नेत्रो के समान भयकर चन्द्रकिरणो से भयभीत हो जाती थी[1]।

उपर्युक्त वर्णन को देखने मे यह ज्ञात हो जाता है कि जहा वाल्मीकि-रामायण मे सादगी, इतिवृत्तात्मकता, और वर्ण्यविषयो की सूची मात्र है, वहा दूसरी ओर विदग्धकाव्य शिशुपालवध मे कलात्मकता है। विभिन्न अलकारो के प्रयोग एव भाषा सौष्ठव के चमत्कृति से 'वर्ण्यवस्तु' मे विशेष प्रभावोत्पादकता आ गई है। इसी प्रकार की भिन्नता दूसरे समान विषय वाले स्थलो मे देखी जाती है।

वाल्मीकि और कालिदास के परशुराम

राम-भार्गव प्रसग रामायण मे बालकाण्ड ७४, ७५ सर्ग तथा कालिदासकृतरघुवंश के ११ सर्ग मे वर्णित है। राम के द्वारा शिवधनुष के तोडे जाने का सपूर्ण वृतान्त सुनकर परशुराम राजा दशरथ की सेना के सम्मुख उपस्थित हुए। प्रज्वलित अग्नि के समान भयानक मे प्रतीत होने

---

१. मध्येसमुद्र ककुभ पिशङ्गीर्या कुर्वती काञ्चनवप्रभासा।
तुरङ्गकान्तामुखहव्यवाहज्वालेव भित्वा जलमुल्ललास॥
वणिक्पथे पूगकृतानि यत्र भ्रमागतैरम्बुभिरम्बुराशि।
लोलैरलोलद्युतिभाञ्जिमुषणत् रत्नानि रत्नाकरतामवाप॥
यदगनारूपसरूपताया कञ्चिद्गुण भेदकमिच्छतीभि।
आराधितोऽद्धा मनुरप्सरोभिश्चक्रे प्रजा. स्वा सनिमेषचिह्ना
स्फुरत्तुपाराशुमरीचिजालैर्विनिन्हुता स्फाटिकसौधपङ्क्ती।
आरुह्य नार्य क्षणदासु यस्यानभोगता देव्य इव व्यराजन्॥
रतौ हि या यत्र निशाम्यदीपा ञ्जालागताभ्योऽधिगृह गृहिण्य।
बिभ्युर्बिडालेक्षणभीषणाभ्योवैदूर्यकुड्येषुशशिद्युतिभ्य॥
शिशुपालवध सर्ग ३–३३, ३८, ४२, ४३, ४५

वाले परशुराम को उपस्थित देख वशिष्ठ आदि सभी ब्रह्मर्षि एकत्र हो परस्पर बातें करने लगे 'क्या अपने पिता के वधजन्य अमर्ष के वशीभूत हो ये क्षत्रियो का वध तो नही करेगे' ? ऋषियो ने अर्घ्य से उनकी पूजा की। ऋषियो की दी हुई पूजा को स्वीकार कर, परशुराम श्री रामचन्द्र जी से इस प्रकार बोले।

'दशरथनन्दन श्री राम ! वीर ! सुना जाता है कि तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है। तुम्हारे द्वारा शिवधनुष के तोडे जाने का सारा वृतान्त मैंने सुन लिया है। उस धनुष का तोडना अद्भुत है और अचिन्त्य है उसके टूटने की बात सुनकर मैं एक दूसरा उत्तम धनुष लेकर आया हू। यह है वह जमदग्नि कुमार परशुराम का भयकर और विशाल धनुष। तुम इसे खीचकर इसके ऊपर बाण चढाओ और अपना बल दिखाओ। इस धनुष के चढाने मे भी तुम्हारा बल कैसा है ? यह देखकर मैं तुम्हें ऐसा द्वन्द्व युद्ध प्रदान करूँगा, जो तुम्हारे पराक्रम के लिये स्पृहणीय होगा'[१]।

उपर्युक्त परशुराम का वक्तव्य अत्यन्त स्वाभाविक, सरल एवं सुबोध है। उसमे प्रत्यक्ष भाषण मे प्रयुक्त होनेवाली शब्दावली का प्रयोग है। कही कही पुनरुक्ति अवश्य है। किन्तु उसमे किसी अलकार का प्रयोग नही है। केवल परशुराम के क्रोध का कथन है। विदग्ध कवि कालिदास ने इस प्रसंग का मनन कर परशुराम की भावना से तादात्म्य समरसता स्थापित करते हुए उनके क्रोध को नाट्यात्मक रीति से अभिव्यक्त किया है, उनके उपस्थित होने की पूर्व सूचना भी विदग्धतापूर्ण दी है। वाल्मीकिरामायण मे जिस सूचना को सरल और निरलकृत भाषा मे अभिव्यक्त किया गया है। उसी को कालिदास ने अनेक अलंकारो से सुसज्जित कर, उनके आगमन, स्वभाव तथा

१ "राम दाशरथे वीर वीर्यं ते श्रूयतेऽद्भुतम्।
धनुषो भेदनं चैव निखिलेन मया श्रुतम् ॥ १
तदद्भुतमचिन्त्यं च भेदन धनुषस्तथा।
तच्छ्रुत्वाहमनुप्राप्तो धनुर्गृह्यापर शुभम ॥ २
तदिदं घोरसकाश जामदग्न्य महद्धनु ।
पूरयस्व शरेणैव स्वबल दर्शयस्व च ॥ ३
तदहं ते बल दृष्ट्वा धनुषोऽप्यस्य पूरणे।
द्वन्द्वयुद्ध प्रदास्यामि वीर्यं श्लाघ्यमह तव ॥ ४
वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड सर्ग ७५

क्रोध की भयंकरता और प्रभावोत्पादकता चित्रित की है। रामायण में परशुराम की पूजा के लिए ऋषि व्यस्त हैं। किन्तु रघुवंश मे कालिदास ने राजा दशरथ के द्वारा उनकी पूजा के लिये 'अर्घ्यमर्घ्यमिति' कहलाकर दशरथ के हृदय की आकुलतामिश्रित व्याकुलता तथा 'अर्घ्यमर्घ्यमिति' शब्दों की ओर ध्यान न देते हुए परशुराम का प्रज्वलित अग्नि की लपटों की तरह रामचन्द्र की ओर बढना वर्णित कर, उनके क्रोध की उग्रता भी व्यक्त की है। कालिदास के परशुराम राम से कहते है—क्षत्रिय जाति अपकार करने से मेरी शत्रु है। उसे अनेक बार मारकर शान्त हुआ मैं दण्डा मारने से सुप्त साप के समान तुम्हारे पराक्रम के सुनने से क्रोधित हुआ हूं। अन्य राजाओ से नही झुकाए गये मिथिलेश के धनुष को तुमने तोडा है, उसे सुनकर मेरे वीर्यरूपी सीग को तुमने तोडा है, ऐसा मानता हू, संसार मे अन्त समय मे कहा गया 'राम' यह शब्द मुझे प्राप्त होता था, इस समय तुम्हारे उदयोन्मुख होने पर विपरीत व्यवहार होने वाला वह 'राम' शब्द मुझे लज्जित कर रहा है। पर्वत पर भी अकुण्ठित अस्त्र को धारण करते हुए भी मेरे दो शत्रु समान अपराध वाले हैं। गौ तथा बछडे को हरण करने से कार्तवीर्य और कीर्ति हरण करने के लिए तैयार तुम। क्षत्रियो का अन्त करने वाला भी पराक्रम तुमको बिना जीते मुझको सन्तुष्ट नही करता है। क्योकि अग्नि का यही महत्व है कि वह समुद्र मे भी तृण मे स्थित के समान जले। शिवजी के उस धनुष को विष्णु के बल से हरण किये हुए शक्तिवाला समझो, जिसे तुमने तोड दिया है, क्योकि नदी के वेग से जर्जर जडवाले तीरस्थ वृक्ष को साधारण हवा भी गिरा देती है। यदि चमकती हुई मेरे फरसे की धार से भययुक्त तुम कातर हो तो व्यर्थ मे प्रत्यञ्चा के बार-बार आघात से हुई उगुलियो वाली अभययाचना की अजलि बाँधो अर्थात् हाथ जोडकर तुम मुझसे अभय-याचना करो'[1]

---

१. क्षत्रजातमपकारवैरि मे तन्निहत्य बहुश शममागत ।
सुप्तसर्प इव दण्डघट्टनाद्रोषितोऽस्मि तव विक्रमश्रवात् ॥
मैथिलस्य धनुरन्यपार्थिवैस्त्वं किलानमितपूर्वमक्षणो ।
तन्निशम्य भवता समर्थये वीर्यशृङ्गमिव भग्नमात्मन ॥
अन्यदा जगति राम इत्ययं शब्द उच्चरित एव मामगात् ।
व्रीडमावहति मे स सम्प्रति व्यस्तवृत्तिरुदयोन्मुखे त्वयि ॥
बिभ्रतोऽस्त्रमचलेऽप्यकुण्ठितं द्वौ रिपू मम मतौ समागसौ ।

कालिदास के परशुराम का क्रोध, उसकी प्रचण्डता एवं तज्जन्य भयाकांक्षा से विह्वल राजा दशरथ का चित्र दर्शनीय है। राम के धनुर्भंग पराक्रम को सुनकर परशुराम क्रोधित हुए। इस क्रोध को केवल इतिवृत्तात्मक रूप से कथन न कर विदग्ध कवि कालिदास ने उसे कभी दण्ड घटना से रोषित सर्प के रूप मे और कभी पूर्वकालीन अपमान की स्मृति से उद्दीपन रूप मे देखा है। किन्तु आगे चलकर कुछ विशेषणो का प्रयोग कर 'वीर्यश्रृंगमिव भग्नमात्मन,' धेनुवत्सहरणाच्च हैहयस्त्व च 'कीर्तिमपहर्तु मुद्यत' 'पावकस्य महिमा'··· 'ज्वलति सागरेपि य' 'परशुधारया मम,' परशुराम का क्रोध मूर्तरूप मे उपस्थित कर दिया है। उस मूर्तरूप को उपस्थित करने मे कालिदास को अनेक अलकारो, सामासिकशब्दो एव प्रभावोत्पादक रथोद्धता छन्द का आश्रय लेना पडा है।

इन्द्र-नारद संवादः—

उपर्युक्त प्रसग महाभारतान्तर्गत वनपर्व मे तथा श्रीहर्ष के नैषध में आया है। नारद के इन्द्रलोक मे जाने पर, इन्द्र ने नारद से पूछा। मुने! जो धर्मज्ञ भूपाल अपने प्राणो का मोह छोडकर युद्ध करते हैं। और पीठ न दिखाकर लडते समय किसी शस्त्र के आघात से मृत्यु को प्राप्त होते हैं, उनके लिये हमारा यह स्वर्गलोक अक्षय हो जाता है और मेरी ही तरह उन्हे भी मनोवाञ्छित भोग प्रदान करता है। वे शूरवीर क्षत्रिय कहा है? अपने उन प्रिय अतिथियो को आजकल मै यहा आते नही देख रहा हूँ।"[1]

धेनुवत्सहरणाच्च हैहयस्त्व च कीर्त्तिमपहर्तु मुद्यत. ।।
क्षत्रियान्तकरणोऽपि विक्रमस्तेन मामवति नाजिते त्वयि ।
पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि य. ।।
विद्धि चात्तबलमोजसा हरेरैश्वर धनुरभाजि यत्त्वया ।
खातमूलमनिलो नदीरयै पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम् ।।
तन्मदीयमिदमायुध ज्यया सगमय्य सशर विकृष्यताम् ।
तिष्ठतु प्रधनमेवमप्यहृ तुल्यबाहुतरसा जितस्त्वया ।।
कातरोऽसि यदि वोद्गतार्चिषा तर्जित परशुधारया मम ।
ज्यानिधानकठिनाङ्गुलिर्वृथा बध्यतामभययाचनाञ्जलि ।।
रघुवंश सर्ग ११, श्लोक ७१-७८

१ "नारदस्य वच श्रुत्वा पप्रच्छ बलवृत्रहा ।
धर्मज्ञाः पृथिवीपालास्त्यक्तजीवितयोधिन ।। १७

श्री हर्ष ने इस प्रसग का वर्णन बडी विदग्धता से किया है। नारद से वर्तालाप करते हुए अवसर देखकर इन्द्र ने प्रश्न किया है कि 'हे मुने ! पूर्व राजाओं की तरह वीरो को क्यो अब पैदा नही किया जाता ? भगवन् ! वे अतिथि मुझे अभिशाप के समान छोडकर अब नही आते हैं, अत मै इस लक्ष्मी को निष्प्रयोजन होने से कुछ नही समझता, क्योकि यह अब केवल मेरे पेट भरने के काम मे आती है, इसलिये यह निन्दित है।' कहा आर्षकाव्य का यह केवल इतिवृत्तात्मक वार्तालाप और कहा यह विविध अर्थबोधक विदग्ध वार्तालाप। एक ओर श्रीहर्ष ने श्लेष का प्रयोग कर वश शब्द मे एक नवीन बल उत्पन्न किया है। और दूसरी ओर युद्धभूमि मे शरीर त्याग करने से स्वर्ग की प्राप्ति कहकर, युद्धभूमि मे प्राप्त मृत्यु का महत्व सूचित कर दिया है। 'स्वोदरैक भृतिकार्य कदर्याम्' इन्द्र द्वारा कहलाकर उसकी उदारता का परिचय दिया है। वस्तुत श्रीहर्ष कवि के साथ साथ तार्किक भी थे अत उनकी उक्ति तर्क युक्त रहती है। वाणी की गुरुता के अनुरूप अलकारो व 'स्वागता' छन्द का प्रयोग कर एक नवीन सौन्दर्य का आधान किया है।[१]

वाल्मीकि रामायण मे राम को लेने के लिये जब विश्वामित्र दशरथ के पास आते है तो वे उनका बडी प्रसन्नता एव विनीत भाव से स्वागत करते हैं। दोनो के मिलन का वर्णन वाल्मीकि इस प्रकार करते है।

शस्त्रेण निधन काले ये गच्छन्त्यपराङ्मुखाः।
अय लोकोऽक्षयस्तेषा यथैव मम कामधुक् ॥ १८ ॥
क्वनु ते क्षत्रिया शूरा न हि पश्यामि तानहम्।
आगच्छतो महीपालान् दयितानतिथीन् मम ॥ १९ ॥
वनपर्व—अध्याय ५४

१ "त कथानुकथनप्रसृताया दूरमालपनकौतुकितायां।
भूभृता चिरमनागतिहेतु ज्ञातुमिच्छुरवदच्छतमन्यु ॥
प्रागिव प्रसुवते नृपवशा किं संप्रति न वीरकरीरान्।
ये परप्रहरणै परिणामे विक्षता क्षितितले निपतन्ति ॥
पार्थिव हि निजमाजिषु वीरा दूरमूर्ध्वगमनस्य विरोधि।
गौरवाद्वपुरपास्य भजन्ते मत्कृतामतिथिगौरवऋद्धिम् ॥
साभिशापमिव नातिथयस्ते मां यदद्य भगवन्नुपयन्ति।
तेन न श्रियमिमां बहुमन्ये स्वोदरैकभृतिकार्यकदर्याम् ॥
नैषध सर्ग ५, श्लोक १३—१६

महामुने ! जैसे किसी को अमृत की प्राप्ति होता है, निर्जन प्रदेश में वर्षा होती है, सन्तानहीन को पत्नी के गर्भ से पुत्र प्राप्ति होती है, खोयी हुई निधि मिल जाती है, उसी प्रकार मैं आपके आगमन को मानता हूं। आपके हृदय मे कौन-सी कामना है, जिसको मैं हर्ष से करूँ ? ब्रह्मन् ! मेरा अहोभाग्य है जो आपने यहां आने का कष्ट किया। आज मेरा जन्म सफल और जीवन धन्य हो गया है। पूर्वकाल मे आप राजर्षि थे और अब तपस्या से ब्रह्मर्षि पद प्राप्त किया है। अत आप दोनो ही रूपो मे मेरे पूज्य है। आपके आगमन का जो उद्देश्य हो वह कृपया मुझे बतलायें[1]।

रामायण के उपर्युक्त अंश मे इतिवृत्तात्मक एव निरलकृत रीति से राजा दशरथ ने विश्वामित्र की प्रशंसा और उनके आगमन का उद्देश्य पूछा है। ऐसे ही अवसर का कवि माघ ने शिशुपालवध मे वर्णन किया है। जब नारद स्वर्ग से इन्द्र का सन्देश लेकर कृष्ण के भवन मे उपस्थित हुए, श्रीकृष्ण ने अर्घ्य आदि मे उनकी विधिपूर्वक पूजा की और आसन पर नारद जी को बैठाया। उस समय इन दोनो की शोभा तुषारपर्वत (नारद) और अञ्जनपर्वत (कृष्ण) के समान थी। श्यामवर्ण श्रीकृष्ण भगवान के आगे ऊँचे सिंहासन पर बैठे हुए शुभ्रवर्ण नारदजी सायंकाल ऊँचे उदयाचल पर आरूढ शुभ्रवर्ण चन्द्रमा के समान शोभित हुए। नारदजी के कहने पर श्यामवर्ण श्रीकृष्ण जब सुवर्णासन पर बैठे, तब उस आसन ने जामुन से शोभावान सुमेरुपर्वत की चोटी की शोभा का हरण कर लिया तब उन दोनो के शरीर की शोभा मिश्रित होने से ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ जैसा रात्रि मे वृक्ष के हिलते हुए पत्तो के बीच मे, चन्द्र की किरणे आती हो। सूर्य के समान तेजस्वी नारदजी के सामने हर्ष से विकसित नेत्रद्वय को धारण करते हुए वे श्रीकृष्ण वस्तुत पुण्डरीकाक्ष हो गये। तब श्रीकृष्ण दन्तपंक्तिरूपी चन्द्रमा की किरणो से नारदजी के शरीर को अत्यन्त शुभ्र करते हुए प्रसन्नता से बोले 'आपका दर्शन त्रिकाल मे शरीरधारियो की योग्यता को प्रकट करता है क्योकि वर्तमान काल मे पाप को नष्ट करता है, भविष्य काल मे आने वाले शुभ का कारण है तथा भूतकाल मे पूर्वसंचित पुण्यो का परिणाम है। हे मुने ! आपके इस पापनाशक दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया हू, मै आपके कल्याणकारी वचनो को सुनना चाहता हू अथवा मंगल के विषय मे कौन सन्तुष्ट होता है ? निस्पृह रहते हुए भी आप आने का प्रयोजन व्यक्त करे। यह पूछने की धृष्टता उसी आत्मगौरव के कारण

---

१ वाल्मीकि रामायण—बालकाण्ड सर्ग १८, ५०-५६

हुई है जो हमे आपके आने से प्राप्त हुआ है[१]।

एक अन्य प्रसंग :—

किरातार्जुनीय में युधिष्ठिर के पास स्वयं अभिलषित मनोरथ सिद्धि के सदृश श्री वेदव्यासजी का आगमन हुआ। दुष्कृतो के विनाशक एवं शास्त्रों के निर्माणकर्त्ता व्यासजी आसनासीन होने पर, मुनि के आगमन का कारण जानने की इच्छा से युधिष्ठिर ने मुनि से कहा—"आपकी यह दर्शन सम्पत्ति, बिना पुण्य संचय किये हुए पुरुषो के लिये दुष्प्राप्य है, यह रजोगुण से रहित है और अभिलाषाओ को सफल बनाने मे समर्थ है। यह मेघ निर्मुक्त आकाश की वर्षा की सदृश है। जगत्पूज्य! आपका दर्शन ब्रह्मा के समान विफल नही हो सकता। वह श्री की वृद्धि करता है। पापो का नाश करता है, कल्याण की वर्षा करता है और कीर्त्ति का विस्तार करता है। आपके आगमन के प्रयोजन की वार्ता सर्वथा निर्मूल है, क्योकि जिन्हे किसी तरह की इच्छा नही है उनका हम लोगो के साथ प्रयोजन ही क्या हो सकता है? यह होते हुए भी आपके आगमन प्रयोजन की वार्ता जानने के लिये मेरी इच्छा मुझे प्रेरित करती है[२]।

उपर्युक्त उदाहरणो मे राजा दशरथ, श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर की वाणी मे अतिथियों के प्रति, श्रद्धा, सम्मान और विनय की भावना निहित है। वस्तुतः विनय की भावना व्यक्ति के सस्कृत व्यक्तित्व की द्योतक है। किन्तु राजा दशरथ की वाणी मे तथा श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर की वाणी मे अन्तर है। राजा दशरथ की वाणी विनय की भावना तो द्योतित करती है किन्तु उनके व्यक्तित्व पर विशेष प्रकाश नही डालती। दूसरी ओर विदग्धकवि भारवि और माघ की वाणी विनय प्रदर्शन करते हुए श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिर के सस्कृत व्यक्तित्व को भी प्रकाशित करती है। राजा दशरथ के विनयपूर्ण भाषण मे विश्वामित्र की महत्ता, उनका तेज निखर नही उठता। इसके विपरीत कृष्ण तथा युधिष्ठिर के वक्तव्य अतिथियो के व्यक्तित्व उनके महत्त्व तथा तेज को मूर्तरूप या संवेद्य बनाते हैं। इसके अतिरिक्त, वाल्मीकि की अव्याज मनोहर भाषा के विपरीत इन विदग्ध कवियो की अलंकृत भाषा कृष्ण तथा युधिष्ठिर के मनोगतो को भी स्पष्ट करती है।

---

१ माघ-शिशुपालवध सर्ग १,–१६, १९, २१, २४, २५, २६, २९, ३०

२ किरातार्जुनीयम् सर्ग ३,–५,७,९,

सौन्दर्य दृष्टि—मानव जगत्

उपर्युक्त श्लोकों में अभिव्यक्त मनोभाव विदग्ध कवियों में तथा उनके काव्यों में सर्वत्र ही निहित है। कालिदासोत्तरकालीन कवियों की दृष्टि जीवन की छोटी से छोटी घटना में रमती पाई जाती है। यह प्रवृत्ति भारवि के किरातार्जुनीय में अर्जुन का तपस्या के लिये प्रस्थान, तपस्या, उसमें इन्द्र द्वारा प्रेरित गन्धर्वों तथा अप्सराओं द्वारा विघ्नों का वर्णन ६-७ सर्गों में किया गया है। आगे शिशुपालवध—युधिष्ठिर के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये प्रस्थान करते समय श्रीकृष्ण द्वारा द्वारिकापुरी का निरीक्षण, रैवतकपर्वत पर रुक कर क्रीडा-विहार, अर्थात ऋतुओं का वर्णन, जलक्रीडा, चन्द्रोदय, पानगोष्ठी, सूर्योदय आदि वर्णनों का समावेश ९-१० सर्गों में किया गया है। यही प्रवृत्ति रत्नाकर के हरविजय, कफ्फणाभ्युदय, धर्मशर्माभ्युदय जहां तक कि ऐतिहासिक शैली के विक्रमांकदेवचरित जैसे काव्यों तथा शास्त्रीय शैली के काव्यों में भी रावणार्जुनीय आदि उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः यह क्षमता छोटी से छोटी घटना को विस्तारपूर्वक चित्रित करना कवियों में ही होती है, किन्तु औचित्य के अभाव में इस क्षमता से रसहानि अवश्य होती है।

जैसा कि हमने पूर्व देखा है, सौन्दर्य के प्रधान रूप के दो क्षेत्र हैं—मानव जगत, २ प्रकृति। प्रथम क्षेत्र अर्थात मानवजगत के सौन्दर्य को दो क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है—१ स्त्रीसौन्दर्य, २ पुरुषसौन्दर्य। किन्तु इस मानवजगत में नेत्रों को आकृष्ट करने का विषय तथा उसके द्वारा हृदयाह्लादक विषय मानवशरीर है। इसीलिये अन्यरसों की व्यंजना की अपेक्षा शृंगाररस की व्यञ्जना में ही पुरुषसौन्दर्य तथा स्त्रीसौन्दर्य वर्णन का महत्व है। वस्तुतः विदग्ध कवियों की दृष्टि शरीरसौन्दर्य पर ही अधिक रमी है, उसमें भी स्त्रीशरीर पर। इन काव्यों में नारी के नख-शिख का वर्णन यथेष्ट किया गया। स्त्री—सौन्दर्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—१ स्थूल, २. सूक्ष्म। स्थूल में बाह्य सौन्दर्य तथा सूक्ष्म में आन्तरिक या शीलसौन्दर्य का समावेश होता है। इन दोनों से ही पूर्ण सौन्दर्य की सृष्टि होती है। नारी के स्थूल सौन्दर्य में उसके अंगों, वेषभूषाओं, आभूषणों, अनुलेपनों व चेष्टाओं का वर्णन काव्य में समाविष्ट होता है।

अंगों के वर्णन में, अवयवों की गठन, उनकी स्निग्धता, मृदुलता, पुष्टता, आयु, वर्ण तथा स्वास्थ्य आदि का वर्णन किया जाता है। नारी के शरीर के कुछ स्वाभाविक गुणों (शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य व धैर्य आदि) को 'अनुभाव' के अन्तर्गत रखा जाता है[1]। आभूषणों के वर्णन

---

१ विश्वनाथ साहित्यदर्पण ३।९०

में कालिदासादि कवियो ने, अशोक लोध्र नीप, शिरीष, कर्णिकार, कदम्ब, चंपक, कमल, जूही, बेला, पाटल आदि पुष्पो तथा उनके आभूषण रूपो का यथेष्ट वर्णन किया है। अनुलेपनो के अन्तर्गत सभी महाकाव्यो मे कस्तूरी चन्दन, केसर, पुष्परज, अलक्तक आदि सुवासित द्रव्यों तथा अनुलेपनो का वर्णन किया गया है। शरीर की चेष्टायें (वाणी, मुस्कान, भ्रूविक्षेप, अग-सचालन, पदक्षेप) सौन्दर्य वर्धन में अत्यन्त सहायक होती हैं। हमारे साहित्य में शारीरिक चेष्टाओ का वर्णन अगज अलकार, स्वभाव, हाव, हेला तथा स्वभावज अलकार जिनकी सख्या १८, लीला, विलास, विच्छति आदि के अन्तर्गत किया गया है[1]। हमारे यहा नारी के शारीरिक सौन्दर्य का स्थित्यात्मक वर्णन हो नही किया गया है, उनके व्यक्तित्व के गत्यात्मक सौन्दर्य के भी यथेष्ट चित्र मिलते हैं। इन गत्यात्मक सौन्दर्य चित्रो के अन्तर्गत उनके हाव-भावो, चेष्टाओं का समावेश होता है। ये चेष्टाये देश, काल विशेषकर स्त्रियों के स्वभाव एव चरित्र पर प्रकाश डालती हैं। यहा उल्लेखनीय यह है कि इसका सकेत हमने पीछे भी किया है, आचार्यों ने नायक, पतिनायक के अतिरिक्त अन्य काव्यों के विषय मे बहुत ही कम विचार किया है। यही स्थिति नायिकाओ की है। नायिकाओ की चर्चा तो किसी ने नही की है। परिणामत महाकाव्यो में नायिकाओ का चित्रण नही के बराबर है। यद्यपि विहार, दोलाक्रीडावर्णन, पुष्पावचयवर्णन, पान केलिवर्णन, क्रीडावर्णन आदि मे नारी-पात्रो, उनकी विभिन्न चेष्टाओ की कमी नही है। ८-९ सर्ग तक व्यय किये गये है किन्तु प्रधाननायिका का अभाव-सा ही रहा है। कालिदास और भारवि के पश्चात् यह स्थिति स्पष्ट होती है। अन्त मे श्री हर्ष के नैषध मे दमयन्ती, का नायिका के रूप मे एक चित्र दिखाई देता है।

नारी सौन्दर्यवर्णन की प्रवृत्ति हमें सर्व प्रथम विदग्ध काव्यो मे अश्वघोष के 'बुद्धचरित' तथा 'सौन्दरानन्द काव्यो मे देखने को मिलती है। किन्तु यहा भी इस प्रवृत्ति का उद्देश्य, कालिदास तथा उत्तरकालीन काव्यो की अपेक्षा भिन्न प्रकार का है।

भिन्न उद्देश्य का कारण यह है कि अश्वघोष ने काव्यानन्द रस को साधन माना है कालिदासादि कवियों की तरह साध्य नही। इसलिये अश्वघोष के काव्य 'रतये' के लिये नही है, 'व्युपशान्तये', के लिये है। दोनो काव्यों के नायकों के शारीरिक कुछ चित्र हैं जो उनके शोभन व्यक्तित्व के सबल सूचक हैं। इसके अतिरिक्त यत्र-तत्र स्त्रियो-अप्सराओ के शारीरिक सौन्दर्य के

---

१ वही साहित्यदर्पण ३।८९।९१-९२

भी वर्णन हैं। किन्तु इन वर्णनों का उद्देश्य बुद्ध एवं नन्द की वैराग्य भावना में तीव्रता लाने के लिये है। इसीलिये शान्तरस के प्रवाह मे उनसे नारी जर्जर भाण्ड के समान दूषित एव कुरूप हो गई है। इसके अतिरिक्त ये वर्णन अधिक विस्तृत भी नही हैं। जैसा कि कालिदास के रघुवश में इन्दुमती स्वयंवर-वर्णन, या अन्य काव्यों मे मिलते हैं। फिर भी अश्वघोष का शारीरिक सौन्दर्य-वर्णन आर्षकाव्य रामायण के वर्णनों से अधिक विकसित है, जो विभिन्न छन्दयोजना तथा आयास सिद्ध शब्द प्रयोगों से सिद्ध होता है।

कालिदास के काव्यो मे नारी सौन्दर्य के चित्र मिलते हैं। मेघदूत तथा नाटको के अतिरिक्त महाकाव्यो कुमारसभव, तथा रघुवश मे शारीरिक रूप के अनेक वर्णन मिलते है। कुमार संभव मे कवि ने पार्वती के शारीरिक रूप मे नख शिख का विशद वर्णन किया है। उसकी रसग्राहिणी दृष्टि ने उसके अंग-अंग मे रुचि के साथ रस ग्रहण किया है। "धीरे धीरे पार्वती ने यौवन को प्राप्त किया। नवीन यौवन से लावण्यमय स्तन जघनादिअवयवयुक्त पार्वती का शरीर, कूंची से उज्ज्वलित चित्र के समान या सूर्य किरणो से विकसित कमल के समान शोभायमान हुआ। उसके शरीर की शोभा का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि शकर ने स्वकीय गोद मे पार्वती के सुन्दर नितम्बो को स्वय रक्खा। उसके दोनो स्तन इस प्रकार परस्पर सटे हुए थे कि उन दोनो के मध्य मे बिसतन्तु का जाना भी असम्भव था। उसके स्तनो का काठिन्य इसी से जाना जा सकता है कि वर्षा जब पार्वती के सिर पर गिरती तब उस जल की बूंदे उसके पलको मे कुछ समय तक ठहर कर वहा से अत्युच्च कठिन स्तन पर टपकने से इधर-उधर छिटक जाती थी, फिर नीचे की ओर होते रोमावली के मार्ग से त्रिवली मे घूमती हुई, अन्त मे गम्भीर नाभिप्रदेश मे प्रविष्ट होती थी।

पार्वती के दोनो बाहु शिरीष पुष्प से भी अधिक सुकुमार थे। मन्दपवन से हिलनेवाले नीलकमल की तरह सुन्दर कटाक्ष अवलोकन को पार्वती ने हरिणियो से सीखा था अथवा हरिणियो ने पार्वती से, इस बात का निश्चय नही होता था।[१]

विदग्ध कवियो ने नारी रूप सौन्ददर्य वर्णन का कोई भी अवसर हाथ से जाने नही दिया है। भारतीय संस्कृति मे नारी रूप सौन्दर्य में मातृत्व रूप का भी गौरवपूर्ण स्थान रहा है। प्राचीन भारत मे सन्तान लोक और परलोक दोनो ही मे सुख का कारण समझी जाती थी। इसके अतिरिक्त पुत्र का धार्मिक

१. कुमार संभव-१।३२,३७,४०। ५।२४ ४१, ४६

महत्व भी समझा गया है। उसके अभाव मे पितृ-ऋण से मुक्ति नही हो सकती। पुत्र ही अपने माता-पिता को नरक की प्राप्ति से बचा सकता है, समझा जाता था।[1]

संस्कृत के विदग्ध महाकाव्यो मे प्राय: पुत्र प्राप्ति की समस्या उत्पन्न हुई है। रघुवंश मे राजा दिलीप, रघु, दशरथ, (बुद्धचरित और सौन्दरानन्द, जानकी हरण, धर्मशर्माभ्युदय, विक्रमांकदेव चरित, ने मिनिर्वाण आदि) को यही समस्या उत्पन्न हुई है। अथक प्रयत्नो के पश्चात् राजमहिषी को गर्भ रहता और इसे एक महत्वपूर्ण घटना समझकर, विस्तारपूर्वक उसके शारीरिक परिवर्तनशील सौन्दर्य का रसात्मक वर्णन करने का अवसर कवियो को मिलता रहा है। गर्भ से शरीर भारी हो जाने पर राजा दिलीप की रानी सुदक्षिणा ने आभूषणो को पहनना त्याग दिया, उसका मुख लोध्रपुष्प की तरह पीला पड़ गया। दोहद की दशा मे रानी की अभिलषित वस्तुओ की पूर्ति के लिये उसकी सखियो से दिलीप पूछा करते थे। कुछ दिन व्यतीत होने पर अत्यन्त मोटे और चारो तरफ से श्याम मुख वाले उस सुदक्षिणा के दोनो कुचो ने भौरों से व्याप्त सुन्दर कमल की दो कलियो की शोभा को अपनी शोभा से नीचा कर दिया।[2]

धर्मशर्माभ्युदय में—

राजा महासेन की रानी सुव्रता का शरीर कुछ ही दिनो मे कपूर के लेप लगाये हुए के समान श्वेत हो गया था। स्फटिक मणि के समान कान्तिवाला उस सुव्रता का कपोलफलक कामदेव के दर्पण के समान मालूम पड़ने लगा। उसका मध्यदेश गर्भस्थित एक वली के द्वारा तीन वलियो को नष्ट कर वृद्धि को प्राप्त हो रहा था।[3] विक्रमाकदेव चरित मे-राजा आहवमल्ल देव की रानी गर्भावस्था में पृथ्वी पर धीरे-धीरे चलती और गर्भस्थित बालक में वीर रस प्रधान होने से वीर रस का अनुभव सदा करती थी।[4]

रघुवश अज मे इन्दुमती के विवाह के अवसर पर कालिदास ने कुलवती स्त्रियो की चेष्टाओ, हाव-भावो का रमणीय चित्र खीचा है। ऐसी कुलवती

---

१ मनुस्मृति-अध्याय ६।३६

२ "दिनेषु गच्छत्सु नितान्तपीवर तदीयमानीलमुख स्तनद्वयम्।
तिरश्चकार भ्रमराभिलीनयो सुजातयो पंकजकोशयो श्रियम्॥
रघुवश ३।८

३ धर्मशर्माभ्युदय-सर्ग ६। २,५,७

४ विक्रमाकदेव चरित-सर्ग २.६९-७५

स्त्रियां भी सुन्दर पुरुष को देखकर कुछ क्षणों के लिये आत्मनियंत्रण विस्मृत कर देती हैं। और इस तल्लीनावस्था में उस हृदयाह्लाद को प्रकट करने वाली कुछ चेष्टाएँ करने लगती हैं। सुन्दर पुरुष के दर्शनाभिलाषी स्त्रियों की औत्सुक्य-पूर्ण चेष्टाओं का चित्र कालिदास ने अजइन्दुमती के विवाह-प्रसंग पर खींचा है। यह चित्र मनोवैज्ञानिक आधार पर लिखा होने से उत्तरकालीन कवियों ने अपने-अपने महाकाव्यों में उसे नियोजित किया है[1]। तदनन्तर (वे) अज, कामरूप देश के राजा पर हाथ रखकर, चौक में प्रविष्ट हुए, साथ ही स्त्रियों के मन में भी मानों प्रविष्ट हुए। बहुमूल्य सिंहासन पर बैठे हुए उस कुमार अज ने भोज से लाये हुए रत्नों के सहित मधुपर्कयुक्त अर्घ्य तथा दो वस्त्रों को स्त्रियों के कटाक्षों के साथ ग्रहण किया। बिना इच्छा के भी उन दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा किन्तु पुनः शीघ्र ही लज्जा से आँखों को सकुचित कर लिया व कालिदास ने शिव-पार्वती के विवाह-प्रसंग में भी अनेक सरस चित्र खींचे है जो कवि के मनोविज्ञान एवं सौन्दर्य बोध को स्पष्ट करते हैं। विवाह-प्रसंग में प्रेम ध्रुव की तरह अटल रहेगा इसका संकेत ध्रुवदर्शन से कराया जाता है। 'ध्रुवदर्शन के लिये पति शंकर के द्वारा आज्ञा पाई हुई पार्वती मुख ऊपर करके 'लज्जा' से देखा, ऐसा धीरे से बोली।'[2] इस अवसर पर भारतीय नारी का सांस्कृतिक सौन्दर्य दर्शनीय है। किरातार्जुनीय, में अर्जुन की तपस्या के अवसर पर अप्सराओं तथा गन्धर्व युवतियों की चेष्टाओं का वर्णन है। प्रारम्भ में तो उसकी तपस्या भंग करने के लिये अनेक कृत्रिम चेष्टायें की गईं किन्तु अन्त में अर्जुन के सौन्दर्य से आकृष्ट हो वे कामवश होकर चेष्टायें करने लगीं। 'किसी कामपीड़ित सुरांगना का सन्देश कि 'निष्ठुरता का परित्याग कीजिये', किसी दूती ने आकर अर्जुन के प्रति निवेदन किया अन्य सुरबाला ने जिसका कटिभाग सविलास चल रहा था और जिसका एक हाथ केशपाश के बाँधने में लगा हुआ था, कामदेव के अमोघ बाणरूप कटाक्ष का अर्जुन पर प्रक्षेप किया[3]।

उक्त प्रसंगों में विलासिनी तरुणियों के हाव-भावों का स्पष्ट संकेत है। इनके अतिरिक्त इन हाव-भाव चेष्टाओं के चित्र प्रत्येक महाकाव्यों में-ऋतु-वर्णन, पुष्पावचय, विहार, पानकेलि आदि प्रसंगों में नियोजित है।

१. रघुवंश सर्ग ७।६।१०, १८, २३
विक्रमांकदेवचरितम् सर्ग ६।११-१९ तक. प्रायः सभी काव्यों में मिलता है।

२. कुमारसंभव-सर्ग ८।८५

३. किरातार्जुनीयम्-सर्ग १०।५१,५२,५५,५६

सूक्ष्म सौन्दर्य के अन्तर्गत नारी के शील का (सच्चरित्रता, मर्यादा, लज्जा सेवा, दया त्याग, उदारता, विनम्रता आदि गुण) चित्रण होता है। हमारे विदग्ध काव्य प्राय नायक प्रधान होने से उनमे नायिकाओ के स्वभाव, शील चित्रण का अवसर ही नही आता। रघुवंश मे रघुपत्नी का नाम तक नहीं है। फिर भी कालिदास ने नारीपात्रो के चरित्र के कुछ स्थूल विन्दु निर्दिष्ट किये हैं। सुदक्षिणा ग्रादर्श पतिनिष्ठ पत्नी, सीता का त्याग, संयम, स्वाभिमान वात्सल्य और पतिभक्ति आदि गुणो को कालिदास ने अत्यन्त विदग्धतापूर्ण व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ चित्र देखिये।

रघुवश के १४वें सर्ग मे (६१ ६७ श्लोक) राजा राम के द्वारा परित्यक्ता सीता का चित्र तथा उनका राजा राम को प्रेषित सन्देश कितना भावपूर्ण, गंभीर तथा मर्मस्पर्शी है।

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत् समक्षम्।
मा लोकवादश्रवणादहासीत् श्रुतस्य किं तत् सदृश कुलस्य॥

मेरे कहने से उस राजा को तुम कहना कि प्रत्यक्ष मे अग्नि मे शुद्ध भी मुझको लोक निन्दा के भय से जो तुमने छोड दिया है वह लोक विख्यात तुम्हारे श्रुत अध्ययन या कुल के योग्य है[1]? अपने पति को ऐसे अवसर पर अन्य नाम से या केवल रामनाम से सम्बोधित न कर राजा शब्द के द्वारा अभिहित करना पवित्र चरित्र धर्मपत्नी के परित्याग के अनौचित्य का व्यंग्यपूर्ण अभिव्यजक है। इसके अतिरिक्त ऐसे विषम प्रसग में भी राम के लिये एक भी कुशब्द का प्रयोग न करना तथा अपने ही भाग्य को दोष देना, उसके चरित्र की उदारता का द्योतक है।

कुमारसंभव मे हिमालय की पुत्री पार्वती-तपस्या तथा पतिव्रत का एक अपूर्व प्रतीक है।

किरातार्जुनीय मे द्रौपदी, स्वाभिमानी, तेजस्विनी और स्नेहवृत्ति के रूप मे चित्रित है। शिशुपाल वध मे प्रमुख स्त्रीपात्र का अभाव है। इसके उत्तरवर्ती कुछ काव्यो में रावणार्जुनीय, नैषध को छोड़कर इसी प्रवृत्ति का अनुकरण किया गया है।

पुरुष सौन्दर्य

स्त्रीसौन्दर्य की तरह काव्य मे पुरुषसौन्दर्य का भी महत्व है किन्तु नारी सौन्दर्य की अपेक्षा पुरुषसौन्दर्य का बाह्य रूप इतना आकर्षक नही है जितना

---

१. रघुवंश सर्ग १४।६१-६७

कर्मसौन्दर्य या शीलसौन्दर्य। यह कर्मसौन्दर्य प्राय रणभूमि मे ही अधिक निखरता है। पुरुष के प्रताप, बल व ओज आदि का पर्याप्त महत्त्व है। यद्यपि बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा उसका आन्तरिकसौन्दर्य ही (इन्द्रिय संयम, क्षमा, अहिंसा, कष्टसहिष्णुता, परदुखकातरता, कर्तव्यपरायणता, त्याग आदि गुण) अधिक तेजस्वी और आकर्षक होता है। फिर भी बाह्यसौन्दर्य हमारे काव्यो मे स्थान प्राप्त करता रहा है।

पुरुषशरीर मे अश्वघोष ने अभिरुचि प्रदर्शित की है। किन्तु उनकी यह अभिरुचि उत्तरकालीन विदग्ध काव्यो या कवियो से सर्वथा भिन्न प्रकार की है। अश्वघोष के सौन्दर्य में, रामायण महाभारत के शुद्ध नैसर्गिक इतिवृत्तात्मक, सौन्दर्यबोध की अपेक्षा कुछ कलात्मकता का समावेश हुआ जान पड़ता है। अत्यन्त प्रचलित उपमा रूपक जैसे अलकारो का आश्रय लिया गया है। भगवान बुद्ध ने शरीर की कान्ति, शोभा का वर्णन करते हुए अश्वघोष लिखते हैं "अपने शरीर की जलती प्रभा से उसने भास्कर के समान दीपप्रभा को हर लिया। बहुमूल्य सुवर्णसदृश सुन्दरवर्णवाले बालक ने सब दिशाओ को प्रकाशित किया। इक्ष्वाकुवंशी राजकुमारों के शरीर सुवर्ण-स्तम्भ के समान लम्बे थे। उनकी छाती सिंह की-सी चौड़ी थी, भुजाएँ बड़ी बड़ी थी[१]। यहाँ भी एक-दो उपमाओ के द्वारा शरीर की गठन व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। पुरुष-सौन्दर्य की सीमा को व्यक्त करने के लिये अश्वघोष ने नन्द[२] को कामदेव की तरह और उसकी पत्नी सुन्दरी को रति की तरह कहा है। आगे कालिदास ने पुरुषशरीर मे इसी प्रकार की अभिरुचि दर्शित की है। राजा दिलीप को 'चौड़ी छाती वाले, बैल के कन्धे के समान कन्धे वाले, साल सरीखे ऊँचे, लबी भुजावाले, अपने काम के करने मे समर्थ देह धारण किये हुये, जैसे क्षत्रिया का धम पराक्रम हो वैसा कहा है। शरीर सौन्दर्य में चौड़ी छाती का होना, बैल के कन्धे समान कन्धो का होना, व्यूढोरस्को, वृषस्कन्ध शालप्रांशुर्महाभुज", दीर्घबाहुओ का होना, विशेष आकर्षक समझा गया है। संभवतः इसीलिये अन्य कवियो ने भी शरीरसौन्दर्य के निदर्शनार्थ उक्त प्रकार की उपमाओ को ही ग्रहण किया है। पद्य चूडामणि के कवि बुद्धघोष ने सर्ग १।५२, ५३, ५४ मे किरातार्जुनीयके कर्त्ता भारवि ने सर्ग ६।३२मे जानकीहरण के कर्त्ता कुमारदास ने सर्ग ६।५६ मे तथा रावणार्जुनीय के कर्त्ता भट्टभीम ने

---

१. बुद्धचरित-सर्ग १।१३

२. सौन्दरनन्द-सर्ग १।१९

३. वही-सर्ग ४।८

सर्ग १।२ में उक्त अर्थ को स्पष्ट किया है। यौवनोन्मुख रघु की शरीरश्री का एक चित्र निदर्शन के लिये पर्याप्त होगा। 'रघु ने क्रम से युवावस्था के द्वारा लड़कपन दूर होने पर, बड़े भारी बैल के भाव को प्राप्त किये हुए बछड़े की तरह गजराज के भाव को प्राप्त किये हुए हाथी के बच्चे की तरह गभीर तथा सुन्दर शरीर को प्राप्त किया[१]", कवियो ने अपने काव्यो के पात्रो, नायको की उन शारीरिक विशेषताओ का सकेत किया है जिनका सम्बन्ध प्रणयक्रीडा अथवा उनके पराक्रम से ही 'तदनन्तर शत्रु के अपराधो के स्मरण होने से उत्पन्न क्रोध से कापते हुए रेवती के ओष्ठबिन्दु के चुम्बन से प्रसिद्ध ओष्ठ से बलराम जी बोले—'यहां शत्रु के अपराध स्मरण से कंपित ओष्ठ से उनका वीर होना तथा रेवती के ओष्ठविन्दु के चुम्बन से प्रसिद्ध कहने से उनका विलासी होना सिद्ध होता है[२]। इसी प्रकार अन्य कवियो ने भी व्यक्त किया है जैसे धर्मशर्माभ्युदय मे महासेन राजा के दिखते ही शत्रु अहंकाररहित हो जाते थे, शत्रु सवारिया छोड़ देते थे और स्त्रिया लज्जा खो बैठती थी। विक्रमाकदेव-चरित मे युद्ध यात्राओ मे वीरों में श्रेष्ठ उस विक्रमाकदेव के धनुष तानने पर चोल देश की नारियो के मुख गरम-गरम उच्छ्वास लेने से कुछ सफेद पड जाते थे[४]। 'रावणार्जुनीय' मे यही भाव स्त्रियों के वार्तालाप मे व्यक्त किया है[५]। विदग्ध काव्यो के नायको अथवा पात्रो के शरीर सौन्दर्य अथवा उनके कर्म सौन्दर्य का वर्णन उत्तरकालीन काव्यो मे मूर्त की अपेक्षा अमूर्त भावना या कल्पना के द्वारा प्रत्यक्षीकरण का विशेष प्रयत्न किया गया है।

अनुभाव वर्णन

वीरो के हृदय के भावो का, उनके शारीरिक विकारो का जो क्रोध, विद्वेष भावना से उत्थित होते हैं, विशद वर्णन किया है। 'राजसूय यज्ञ के अवसर पर युधिष्ठिर के द्वारा किये गये श्रीकृष्ण के सम्मान को शिशुपाल ने सहन नही किया, क्योकि अभिमानियो का मन दूसरे की समृद्धि मे मात्सर्य-युक्त होता है[६]। सम्पूर्ण राजमण्डल को भययुक्त करता हुआसा वह शिशुपाल

१. रघुवंश सर्ग १।१३
२. शिशुपाल वध-सर्ग २।१४, १६, २०
३ धर्मशर्माभ्युदय-सर्ग २।२।३, ४, ५
४ विक्रमाकदेवचरित-सर्ग ३।६५, ६७, ६८
५. रावणार्जुनीयम्-सर्ग २।१३-५६
६ शिशुपाल वध–१५।३-१०

चञ्चल मुकुट-मणियो की किरणो वाले तथा तीनों लोको को अधिक कम्पित किये हुए मस्तक को धीरे-धीरे कँपाने लगा।'' वह शिशुपाल जिसने राजसमाज को भयभीत कर दिया था, अत्यधिक बहते हुए पसीने वाले शरीर को उस प्रकार कँपाने लगा जिस प्रकार प्रलय काल मे समुद्र से ऊपर निकले हुए आदिवराह अत्यधिक जलकणो को फेंकने के साथ-साथ शरीर को कँपाये थे। टेढे भ्रूद्वयवाला एवं अधिक भ्रूभग होने से भयकर ललाट वाला इस शिशुपाल का मुख मानो फिर तृतीय नेत्र से युक्त-सा होकर क्रूर हो गया। उसने विशाल पर्वत के चट्टान के समान कठोर अपने जघो पर हाथ पटकते हुए जोर से ताल ठोका, जिसके भयंकर शब्दो को डरे और घबडा कर चंचल हुए लोगो ने सुना[1]। इस प्रकार के शत्रु के कार्यों को सुन उत्तेजित होने से प्रकट होने वाले अनुभावो का वर्णन प्राय सभी उत्तरकालीन महाकाव्यों मे किया गया है। रत्नाकर शिवस्वामिन् व मखक ने इन अनुभाव सौन्दर्य का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। रत्नाकर ने तो सभाक्षोभवर्णनम् नामक स्वतन्त्र सर्ग की ही रचना की है। कवि माघ, रत्नाकर, शिवस्वामिन भट्टभीम व मखक आदि ने योद्धाओ के ये चित्र बडे परिश्रम से खीचे हैं[2]। वस्तुत शत्रु की अनुचित क्रिया या युद्ध की उत्तेजना से भयंकर दिखाई देना या क्रोधजन्यचेष्टाओ का करना, वीरो का शृगार है। महाकवि कालिदास ने अपने नायको रघु, अज का युद्ध प्रसग मे इस प्रकार का चित्रण कही नही किया है।

प्रणयसूचक अनुभावो का वर्णन

कालिदास का मानस शास्त्रीय विवेचन अत्यन्त हृद्य हुआ है। प्रसंग इन्दुमती स्वयंवर का है। इसी प्रसग को लेकर अन्य उत्तरकालीन कवियो ने, हरिचन्द्र ने धर्मशर्माभ्युदय और श्री हर्ष ने नैषध में प्रणयसूचक चेष्टाओ के सौन्दर्य का वर्णन किया है। इन्दुमती के स्वयंवर सभा मे प्रवेश करने पर राजाओ की प्रणय चेष्टाएं प्रारम्भ हुई[3]। कोई राजा दोनो हाथ से नालदडवाले नीलकमल

---

१. वही १५।३,५ ८,१०

२ माघ,शिशुपाल वध सर्ग १५।४८-४९,५१-५२।सर्ग १७।४,१०,१७,२६.३१
रत्नाकर-हरविजय सर्ग ७।१-६४
शिवस्वामिन्-कफ्फिणाभ्युदय सर्ग ३।१-४३
भट्टभीम-रावणार्जुनीयम् सर्ग १३।५१-५६
मखक-श्रीकंठचरितम् सर्ग १८।१।६१

३. रघुवंश ६।१३-१६

को बड़ी तेजी से घुमा रहा था। कोई राजा कन्धे से नीचे खिसकी हुई तथा रत्नजटित भुजबन्ध में फँसी हुई माला को, मुख को थोड़ा तिरछा करता हुआ, यथास्थान रख रहा था कोई अन्य राजा नेत्र को थोड़ा नीचे करके अगुलि को थोड़ा सिकोड़कर पैर से पादपीठ को खुरचने लगा और कोई राजा अपनी बाईं भुजा की टेक देकर अपने मित्र से सविलास वार्तालाप कर रहा था।[1] संस्कृत-साहित्य मे स्वयंवर के प्रसग मे प्रणयसूचक अनुभावो का वर्णन अनेक काव्यो मे आया है। हरिचन्द्र कृत 'धर्मशर्माभ्युदय' मे तथा श्री हर्षकृत नैषध मे इनका मनोरम चित्रण हुआ है।

पुरुषो के आन्तरिक सौन्दर्य के विषय मे इसके पूर्व कहा है, कुछ विशेष गुण दुष्टदमन, आत्मजयी इन्द्रिसंयम, अहिंसा, क्षमा, कष्टसहिष्णुता, कर्तव्यपरायणता परदु.खकातरता व त्याग आदि आते हैं।

उपर्युक्त विशेषतायें प्राय हमारे विदग्ध काव्यो के नायको के चरित्र मे मिल जाती हैं। बिल्हण ने अपने महाकाव्य के नायक विक्रमाकदेव को दयादाक्षिण्यादिगुणो से समन्वित चित्रित किया है।[2] उसने अपने पिता आहवमल्लदेव, के आग्रह करने पर भी राजपाट तृणवत् समझकर अपने बड़े भाई सोमदेव को दे दिया। उसका पृथ्वी पर अवतार पापियो के नाश के लिये ही हुआ था।[3] वह सदा शरणागतो की रक्षा करता, याचको को दान देता था। कालिदास ने रघुवश में राजा रघु के दान, त्याग का मनोरम चित्र अकित किया है। यह प्रसग रघुवश के ५वे सर्ग मे रघु और कौत्स के सवाद का है। वरतन्तु मुनि के शिष्य कौत्स गुरु दक्षिणा देने के लिये रघु से १४ कोटि रूपये माँगने आये है, परन्तु उसके पूर्व ही रघु 'विश्वजित्'[4] नामक यज्ञ सपादन कर चुके थे और उसमे सम्पूर्ण धनदान करने के कारण उनके पास केवल मिट्टी के पात्र शेष रह गये थे। कौत्स मुनि को राजधानी मे आकर जब यह ज्ञात हुआ तो वह राजा को आशीर्वाद देकर जाने लगा कौत्स से विवरण मालूम होने पर रघु ने कुबेर के यहाँ से धन लाकर देने का विचार किया। दूसरे ही दिन आवश्यकता से अधिक खजाने मे धनराशि आ जाती है और रघु सब कौत्स को दे देना चाहते हैं परन्तु कौत्स भी जितना धन गुरुदक्षिणा मे देना है उससे

---

१ ध श अ. १७वा सर्ग-नि मा प्रे. काव्यमाला-११
नैषध. मे प्राय पाँच सर्गों मे वर्णित है।

२. विक्रमाकदेव चरित सर्ग ५।३२

३. वही सर्ग ६।६५

४. रघुवश सर्ग ५-१९,२४,३०,३१

अधिक लेना नहीं चाहते इस सुन्दर विषय में कालिदास की प्रतिभा ने और भी अपूर्व चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।[1]

"जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्य सत्त्वौ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च।

राजा दशरथ के दयार्द्र हृदय का एक चित्र :—

राजा दशरथ एक हरिण को अपने बाण का लक्ष्य बनाना चाहते थे कि उसकी प्राण-रक्षा के लिये उसकी सहचरी स्वयं हरिण के शरीर को ढक कर राजा के सामने खड़ी हो गई। यह देखकर कान तक खेंचे हुए धनुष को उतार लिया—

'लक्ष्यीकृतस्य हरिणस्य हरिप्रभावः प्रेक्ष्य स्थितां सहचरीं व्यवधाय देहम्
आकर्णकृष्टमपि कामितया सधन्वी बाणं कृपामृदुमनाः प्रतिसंजहार ।।
—९।५७ रघु

वस्तुतः विदग्ध कवियों ने पुरुषों के शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य का अंकन हृद्य एवं मनोरम किया है। गुरु वशिष्ठ जी की आज्ञा से नन्दिनी का सेवक राजा दिलीप चरित्र शील में जितना सुन्दर है कौत्स की इच्छापूर्ति करने वाला रघु भी उतना ही प्रशंसार्ह है। रामचन्द्र जी में विविध विरोधी गुणों का समन्वय है। वे प्रजारंजक है, राजा हैं और एक मानव भी हैं। सीता की निन्दा सुनकर राम के हृदय के विदारण की समता अग्नि में तप्त अयोघन द्वारा ताडित लोहे के साथ देकर कवि ने राम के हृदय की कठोरता तथा कोमलता (दोनों परस्पर विरोधी) की मार्मिक अभिव्यक्ति एक साथ की है।[1] रघुवंश में राम का कहीं स्वाभिमानी हृदय व्यक्त होता है तो कहीं मानवता राज-भाव के ऊपर आ जाती है।

शिवस्वामिन् के 'कफ्फिण' ने राजा प्रसेनजित को युद्ध में परास्त किया अन्ततः यह राजा बुद्ध के शरण में गया और उनके धर्मामृत का पान कर, कृतकृत्य हुआ। इसी प्रकार भट्ट भीम के रावणार्जुनीय महाकाव्य में बन्दी रावण को मुक्त करते समय कार्तवीर्य अर्जुन के उदार हृदय का चित्र सामने आता है।

आदर्शोन्मुख यथार्थ सौन्दर्य

विदग्ध कवियों ने प्राचीन कथानक में कल्पना का मिश्रण करते समय प्राचीन काव्यों में वर्णित यथार्थ तथ्य या वस्तुतत्व को आदर्श रूप दिया। रामायण के बालकाण्ड में वर्णित है कि एक दिन विश्वामित्र राजा दशरथ के

---

१. रघुवंश १४।३३,४१,८४

यहाँ आये। राजा दशरथ से विश्वामित्र ने कहा कि मैं संप्रति सिद्धि के लिये यज्ञ मे दीक्षा धारण किये हूँ। उस यज्ञ को भग करने वाले कामरूपी दो राक्षस हैं। एतदर्थ आप अपने बड़े पुत्र राम को मुझे दे दें, जिससे मेरे यज्ञ की रक्षा और निर्विघ्न समाप्ति होगी। यह सुनकर राजा दशरथ अत्यन्त भयभीत तथा दुखी होकर मूर्छित हो गये। पश्चात् चेतन होने पर वे बोले कि मैं अपनी सेना सहित जाकर राक्षसो से युद्ध करूँगा, किन्तु आप राम को न ले जाइये। किन्तु अनेक प्रकार से वसिष्ठजी के द्वारा समझाने पर राजा दशरथ ने विश्वामित्र को राम के ले जाने की स्वीकृति दी[1]। उक्त राजा दशरथ का पुत्र-स्नेह अत्यन्त स्वाभाविक एव यथार्थ है। इसी प्रकार रावण द्वारा सीता का अपहरण होने पर राम को मानवोचित ही दु ख और शोकानुभव हुआ है। रामायण में इस दु ख का सविस्तर वर्णन है [अरण्यकाण्ड ६१-६३] यह राम का दु ख शोक भी यथार्थ ही है किन्तु कालिदास को इस मानवोचित राजा दशरथ के यथार्थ पुत्र-स्नेह मे और राम का स्त्रीमोह मे विमोहित होना इष्ट नहीं था। उसे रघुवश के सर्वगुणसम्पन्न आदर्श राजाओ का चित्र खीचना था और इसलिये उसने अपनी प्रतिज्ञा से राजा दशरथ का पुत्र-स्नेह मे विमोह न दिखाकर केवल आदर्श वाक्य की योजना कर, रघुकुल मे प्राणो की याचना भी व्यर्थ नही होती।[2] औदार्यप्रेरित राजा दशरथ की संमति ही व्यक्त की है।

सीताहरणजन्य राम के शोक को कालिदास ने उल्लिखित न कर उसे १३वे सर्ग मे सस्मरण के रूप मे रखकर अधिक कलात्मक रूप दिया है। इसी प्रकार राम के चरित्र को हीनत्व प्रदान करने वाला 'वालिवध भी कालिदास ने चित्रित नही किया है। केवल 'स हत्वा वालिनं वीरस्तत्पदे चिरकाक्षिते। धातो स्थान इवादेशं सुग्रीवं सन्यवेशयत्॥ रघुवश सर्ग १२।५८ राम ने वलि को मारकर उसके स्थान पर सुग्रीव को रखा है। राजा दशरथ का मृगया करते समय ऋषिकुमार श्रवणवध—प्रसग भी परिवर्तित कर वर्णित किया है। श्रीहर्ष ने महाभारत के वास्तव नल की अपेक्षा अपने नल को अधिक कर्तव्य तत्पर, उदात्त एवं नि स्वार्थी वर्णित किया है। उपर्युक्त निदर्शनो से विदग्ध महाकाव्यो मे चित्रित हृदय के उदात्त तत्व का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

---

१ रामायण बालकाण्ड सर्ग १८-२२

२. अत्यसुप्रणयिना रघो. कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता,-२

रघुवंश सर्ग-११

उपभोग प्रवृत्ति का आश्रय-अर्थात् सौन्दर्य का आधान--

मानवी जीवन की पूर्णता बुद्धि, नीति और उपभोग तीनो प्रवृत्तियों की समग्रता मे है। रामायणकालीन केवल नैतिकता, महाभारतकालीन बौद्धिकता के साथ-साथ भौतिक उपभोगप्रवृत्ति की आवश्यकता समझी गई। इसका तात्पर्य यह नही कि रामायण, महाभारतकाल मे उपभोग प्रवृत्ति नही थी। उस काल में नैसर्गिक उपभोग प्रवृत्ति थी किन्तु उसमे कलात्मकता, रसिकता और सुसंस्कृतता का अभाव था। इसकी पूर्ति विदग्ध महाकाव्यकारो कालिदासादि कवियो ने की। कालिदास ने त्याग और भोग, ऐश्वर्य और वैराग्य, शौर्य और शृंगार तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समन्वय अपने महाकाव्य मे चित्रित किया। आर्ष काव्यो मे व्यास ने सत्य का और वाल्मीकि ने शिव का प्रतिपादन किया था। कालिदास ने सत्य शिव के साथ भौतिक उपभोगप्रवृत्ति अर्थात् सुन्दर का मिश्रण कर महाकाव्य परम्परा मे एक नवीन तत्व का प्रादुर्भाव किया। फलत जीवन के भयंकर पक्षो मे विदग्ध कवियो की रुचि नही रही। इस प्रवृत्ति का सूत्रपात कालिदास के महाकाव्यो मे दृष्टिगत होता है। कालिदास ने युद्ध जैसे भयंकर दृश्यो में भी शृंगारिक सौन्दर्य खोज लिया। राम के द्वारा किये गये ताडकावध को कालिदास ने एक शृंगारिक रूपक में वर्णित किया है।

"राममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा ॥ रघुवंश ११।२०

'जिस प्रकार दु:सह, सुन्दर काम के बाण से ताडित रात्रि मे गमन करने वाली अभिसारिका नायिका गन्धयुक्त चन्दन से चर्चित होकर प्राणनाथ नायक के निवासस्थान को जाती है, उसी प्रकार दुःसह मन को मथन करने वाले राम के बाण से हृदय मे ताडित हुई राक्षसी ताडका गन्धयुक्त रक्तरूप चन्दन से चर्चित होकर यमराजपुरी को चली गई।"

आगे यह प्रवृत्ति, शिशुपाल वध, हरविजय, कप्फिणाभ्युदय, श्री कंठचरित आदि मे बढ़ती गई है।

अभग्नवृत्ता प्रसभादाकृष्टा यौवनोद्धतै।
चक्रन्दुरुच्चकैर्मुष्टिग्राह्यमध्या धनुर्लता ॥ ३५ ॥

शिशुपाल वध सर्ग १९

'नही टूटने वाली एव खीचने से गोलाकार वाली मुट्ठी मे पकड़े गये मध्यभाग वाली एव यौवनावस्था से उन्मत्त योद्धाओं से (डोरी को पकड़कर) खीची गई धनुषरूपी लतायें उस प्रकार उच्चस्वर से टंकार करने लगी, जिस प्रकार अभग्न आचरणवाली, मुट्ठी मे पकड़ने योग्य (पतली) कटिवाली यौवनावस्था

से उन्मत्त कामियो के द्वारा बलात्कार से (स्तनादिकों को पकड़कर) खींची गई रमणियाँ उच्चस्वर से चिल्लाने लगती हैं।"

एक और उदाहरण—श्री कंठचरित में—

"तलवार रूपी नायिका से जिसका शरीर रोमांचित हुआ है, हठपूर्वक शीघ्र ही अपने प्रियतम वीर का गलग्रह किया। गलग्रह करने से नायक वीर का शरीर कामदेव के बाणो से व्याकुल होकर अत्यधिक प्रेम मेमग्न हुआ।

श्री कठचरित–२३।२५ सर्ग २४-१२

प्रकृति वर्णन की तीन शैलियां

यहा शैली से उन रीतियो का तात्पर्य है जिनके द्वारा प्रकृति के विभिन्न रूपों और मनो को गोचर तथा भावगम्य किया जा सकता है। ये रीतिया अपने विशिष्ट उपकरणो शब्दो की विभिन्न शक्तिया, भाषा की अभिव्यंजनाशक्ति और आलकारिक प्रयोग आदि के द्वारा काव्य के प्रकृति के वर्णनो को सहृदय पाठक के मानस मे रूप और भावग्रहण के हेतु प्रस्तुत करती है। सस्कृत साहित्य मे प्रकृति का व्यापक और महत्वपूर्ण स्थान आरम्भ से ही रहा है। कारण यह है कि सस्कृत काव्य का मनुष्य, प्रकृति मे विच्छिन्न होकर अपना अलग व्यक्तित्व नही रखता। मनुष्य और प्रकृति परस्पर सपृक्त है। मनुष्य वस्तुत उसका एक भाग है। फलत कवियो ने विभिन्न प्रकार से अपने काव्यो मे प्रकृति को स्थान दिया है। अत महाकाव्यो की परम्परा मे एक विकास दिखाई देता है। इस विकास क्रम को हम विभिन्न शैलियो के रूप मे देख सकते हैं। प्रारम्भिक महाप्रबन्ध काव्यो मे प्रकृति वर्णन की शैली मे सहज नैसर्गिकता स्वाभाविकता है। मध्यकाल के विदग्ध महाकाव्यो मे उसका स्वरूप कलात्मक सौन्दर्यमयी शैली के रूप मे दिखाई देता है और उत्तरकालीन विदग्ध महाकाव्यो मे वह (शैली) क्रमश आलकारिक तथा ऊहात्मक होती गई। इस प्रकार प्रकृति चित्रण की प्रधान तीन शैलिया हैं—

१ वणनात्मक, २. चित्रात्मक ३ वैचित्र्य शैली।

१ वर्णनात्मक शैली—इसके दो रूप है—१. रेखाचित्र २ सश्लिष्ट चित्र-

रेखाचित्र

इनमे दृश्य या ऋतु की सामान्य विशेषता की रेखाएं होती है। दोनो प्रकार के चित्रो के प्रस्तुत करने के ढग मे अन्तर है। रेखाचित्रो मे व्यापक चयन के आधार पर चित्र की रेखाओ को उभारा जाता है और सक्षिप्त चित्रो मे स्थितियो की सूक्ष्म संश्लिष्ट योजना से चित्र अपनी पूर्णता के साथ उभर आता है। महाप्रबन्ध काव्यो महाभारत, रामायण मे कथा-विस्तार मे प्रकृति

के रेखाचित्रों को अधिक अवसर मिला है किन्तु उत्तरकालीन महाकाव्यो मे कथाविस्तार का आग्रह न होने से उनमे सौन्दर्य के दृष्टि विन्दु से वर्णन-विस्तार का पर्याप्त अवसर मिला है। इन विदग्ध महाकाव्यो मे कलात्मक प्रवृत्ति के फलस्वरूप वर्णनो को चित्रमय बनाने का प्रयत्न किया गया है। रामायण मे विस्तृत संश्लिष्ट प्रकृतिवर्णन की अधिकता होने पर भी, मार्ग आदि के सक्षिप्त और संकेतात्मक वर्णनो के लिये रेखाचित्र शैली का उपयोग किया गया है उत्तरकालीन विदग्ध महाकाव्यो की परंपरा मे यत्र-तत्र वर्णनो को संक्षिप्त और संकेतात्मक प्रस्तुत करने की आवश्यकता होने पर उन्हे कलात्मक रूप मे प्रस्तुत किया गया है। रामायण में रेखाचित्र—राम वनो मे प्रकृति को देखते हुए विचरण कर रहे हैं। वन मे विविध प्रकार के पर्वत-शृगो, वनो तथा रम्य नदियो को देखते हुए जा रहे थे। नदियो के तट पर सारस और चक्रवाक क्रीडा कर रहे थे, सरोवरो मे कमल खिल रहे थे और वे मृगो, मतवाले गैंडो, भैंसो, वराहो और वृक्षो के शत्रुस्वरूप हाथियो के समूहो को देखते जा रहे थे।[1] इस वर्णन मे कवि ने प्रकृति के प्रमुख वस्तुओ के उल्लेख द्वारा एक वातावरण का निर्माण किया है। यह सकेतात्मक प्रकृति के दृश्य वन पथिको के दृष्टिपटल से, उनकी गति के साथ, आगे बढता जाता है इसी प्रकार विदग्ध महाकाव्यो की परम्परा मे भी सकेतात्मक शैली का नियोजन है, किन्तु वह सर्व कलात्मकरूप मे है। कवि कालिदास, दिलीप के नन्दिनी को चराकर (आश्रम) की ओर लौटते समय का सध्याकालीन प्राकृतिक दृश्य सकेतात्मक सक्षिप्त रेखाओ मे इस प्रकार देते है —

स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि ।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानिपश्यन् ।।

राजा दिलीप छोटे छोटे-जल के गड्ढो मे से निकले हुए सूकर के समूहवाले, अपने-अपने निवास के वृक्षो की ओर जाने के लिये उन्मुख मयूरो वाले तथा हरिण जिन पर बैठे हुए हैं ऐसे घासो से हरे प्रदेश अत सर्वत्र ही श्याम ही श्याम वनो को देखते हुए जाने लगे।[2]

यहाँ भी सकेतात्मक शैली मे प्रकृति के प्रमुख वस्तुओ का उल्लेख किया गया है और दिलीप की गति के साथ-साथ वह भी आगे बढता जाता है। किन्तु कालिदास ने चयन और योजना की विशेषताओ से उसमे एक कलात्मक सौन्दर्य

१. रामायण अरण्यकाण्ड सर्ग ११-२-४ श्लोक १८३२.

२ रघुवंश-२।१७

उत्पन्न किया है। यहा आर्ष काव्य की प्राकृतिक रेखाएं एवम् उनकी सादगी अपने पूरे रगो के साथ कलात्मक रूप मे सामने आती है। इसी प्रकार की कलात्मक योजना किरातार्जुनीय मे द्रष्टव्य है।[1]

संश्लिष्ट वर्णन

चित्रण या वर्णन में चित्रित वस्तुओ का ग्रहण दो प्रकार से होता है— १: अर्थग्रहण, २ विम्बग्रहण। प्रथम अर्थग्रहण का उपयोग व्यवहार या शास्त्र क्षेत्र म होता है। किन्तु द्वितीय काव्य में ही जैसे कमल शब्द का उच्चारण करने पर अभिधा शक्ति के द्वारा उसका ग्रहण इस प्रकार हो सकता है कि ललाई लिये हुए श्वेत पखडियो और कुछ झुके हुए नाल आदि के सहित एक पुष्प की प्रतिमा मानस में थोडी देर के लिये प्रतिविबित हो जाय और उसी शक्ति से ग्रहण इस प्रकार भी हो सकता है कि किसी प्रतिमा के प्रतिविम्ब की बिना झलक के केवल अर्थ मात्र ही से काम चल जाय, किन्तु इस संश्लिष्ट चित्र या विंबग्रहण के लिये सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओ के अग प्रत्यंग, वर्ण, आकृति, तथा उसके आसपास की स्थिति का सश्लिष्ट वर्णन अपेक्षित होता है। महाकवियो का लक्ष्य विम्बग्रहण कराने का होता है केवल अर्थ ग्रहण मात्र का नही। किन्तु इस विम्बग्रहण कराने के लिये वर्ण्यवस्तुओ के रूप और आस-पास की परिस्थिति का चित्रण स्पष्ट और स्फुट होना अत्यन्त आवश्यक होता है। और यह तभी सभव है जब कवि के हृदय में प्रकृति के विषय मे प्रगाढ़ अनुराग हो, और तत् जन्य उसकी अन्त सत्ता पर प्रकृति सौन्दर्य का व्यापक और गम्भीर प्रभाव हो।

"वन की भूमि जिसकी हरी-हरी घास ओस गिरने से कुछ-कुछ गीली हो गई है, तरुण धूप पडने से कैसी शोभा दे रही है। अत्यन्त तृषित हाथी अत्यन्त शीतल जल के स्पर्श से अपनी सूड। सिकोड लेता है। पुष्पो के अभाव मे वन समूह कुहरे के अन्धकार मे सोये से ज्ञात होते हैं। नदियाँ जिनका जल कुहरे से ढका हुआ है और जिनमें सारस पक्षियो का ज्ञान केवल उनके शब्द से लगता है, हिम से आर्द्र बालू के तटो से ही जानी जाती है। कमल जिनके पत्ते जीर्ण होकर झर गये हैं जिनकी केसर कणिकाएं टूट—फूट कर बिखर गई हैं, पाले से ध्वस्त होकर नाल मात्र खडे हैं[2]।

---

१. किरात-सर्ग ९-१५

२ अवश्याय-निपातेन किञ्चित्प्रक्लिन्नशाद्वला।
वनाना शोभते भूमिर्निविष्ट तरुणातपा ॥
स्पृशस्तु विपुल शीत मुदक द्विरद. सुखम्।

उपर्युक्त वर्णन कवि के अनुराग एवं सूक्ष्मदृष्टि का परिचायक है। उन्हें इस बात का सदा ध्यान रहता था कि कल्पना के सहारे वर्ण्य चित्र के भीतर एक-एक वस्तु और व्यापार का संश्लिष्टरूप में समावेश करना जितना आवश्यक है उतना अलंकारों के चटकीले रङ्ग का भरना आवश्यक नहीं। इसी रूप मे प्रकृति के सौन्दर्य रूप का ग्रहण कुमारसम्भव के आरम्भ मे हिमालय का वर्णन तथा रघुवश के बीच-बीच मे मिलता है।

"हिमालय के ऊपरी शिखरो पर रहने वाले सिद्ध लोग प्रथम धूप की गर्मी से घबडाकर कुछ समय तक नीचे मध्य शिखर मे रहने वाले मेघों की छाया का सेवन कर मेघ की दृष्टि से अधिक शीत का अनुभव होने पर पुन घाम वाले ऊपर के शिखरो पर चले जाते हैं। जिस हिमालय मे कपोलो की खुजली मिटाने के लिये हाथियो के द्वारा रगडे गये देवदारु वृक्षो के दूध चूने से उत्पन्न सुगन्ध शिखरो को सुगन्धित करता है। गगा के झरने के जल-बिन्दुओ को धारण करने वाला, बार-बार देवदार के वृक्षो को कम्पित करने वाला तथा मयूरो के पखो को उल्लसित करने वाला हिमालय का पवन मृगो को ढूढने वाले किरातो से सेवन किया जाता है[1]।"

उपमा देने में सिद्धहस्त होने पर भी, वस्तु चित्र पर उपमा आदि का अधिक बोझ लादकर कालिदास ने उसे भद्दा नहीं किया। कालिदास ने

अत्यन्ततृषितो वन्य प्रतिसहरते करम् ॥
अवश्यायतमोनद्धा नीहार तमसावृत ।
प्रसुप्ता इव लक्ष्यन्ते विपुष्पा वनराजय ॥
वाष्पसछन्नसलिला रुतविज्ञेयसारसा ।
हिमार्द्रवालुकैस्तीरै सरितो भान्ति साम्प्रतम् ॥
जराजर्जरितै पर्णै. शीर्णकेसरकर्णिकै ।
नालशेषैर्हिमध्वस्तैर्न भान्ति कमलाकरा ॥

रामायण, अरण्य १६ सर्ग २०,२१, २३-२४, २६

१ "आमेखलं सञ्चरता घनाना, छायामध सानुगता निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते, शृगाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥ ५ ॥
कपोलकण्डू करिभिर्विनेतु विघट्टिताना सरलद्रुमाणाम् ।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूत सानूनि गन्ध सुरभीकरोति । ९ ॥
भागीरथीनिर्झरसीकराणा वोढा मुहु कम्पितदेवदारु
यद्वायुरन्विष्टमृगै. किरातै रासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ॥ १५ ॥

कुमारसम्भवः—सर्ग प्रथम ।

केवल परम्परागत वनश्री या पुर की शोभा का ही वर्णन नहीं किया है, उन्होंने उजाड़ खण्डहरों का भी ऐसा वर्णन किया है जिससे करुणा का प्रादुर्भाव हुए बिना नहीं रहता।

"दीर्घकाल से पुताई नहीं कराने से काले पड़े हुए तथा इधर-उधर जमे हुए घास वाले महलों पर, रात्रि के समय मोती की माला के समान वे चन्द्रकिरणें अब प्रतिबिम्बित नहीं होतीं। रात्रि में दीपक के प्रकाश से रहित और दिन में स्त्रियों के मुख की कान्ति से शून्य, जिनमें से धुएँ का निकलना बन्द हो गया है। ऐसे झरोखे मकड़ियों के जालों से ढँक गए हैं।"[1]

उपर्युक्त करुण दृश्य को अतीत स्वरूप के साथ मिलाने से हृदयालोडन हुए बिना नहीं रहता।

महाकाव्य की परम्परा—

संस्कृत की विदग्ध महाकाव्यों की परम्परा के साथ कलात्मकता और आलंकारिकता का विकास हुआ है। जैसा कि हमने पूर्व देखा है, रामायण में स्वाभाविक सौन्दर्य के साथ मश्लिष्ट योजना की प्रवृत्ति भी अधिक है किन्तु यह प्रवृत्ति संस्कृत महाकाव्यों में क्रमशः कम-कम होती गई है। यद्यपि रामायण में भी कलात्मक प्रवृत्ति के निदर्शन हमें मिलते हैं किन्तु है वे स्वाभाविक। सौन्दर्यान्वित वृक्ष पर्वत शिखरों पर उसी प्रकार फूलों की वर्षा कर रहे हैं जैसे वर्षाकाल में नील मेघ उन पर जल की वर्षा करते है। ये मृगों के झुण्ड तीव्र वेग से भागते हुए वैसे ही शोभित हो रहे है, जैसे शरत्कालीन आकाश में वायु से उड़ाये गये बादलों के समूह शोभित होते हैं[2]।

उपर्युक्त उदाहरणों में प्रकृति के एक चित्र को अन्य अप्रस्तुत चित्र से उभारने का प्रयास किया गया है। अप्रस्तुत से प्रस्तुत को उद्भासित करने

---

१. कालान्तरश्यामसुधेषु नक्तमितस्ततो रूढतृणाङ्कुरेषु।
त एव मुक्तागुणशुद्धयोऽपि हर्म्येषु मूर्च्छन्ति न चन्द्रपादाः ॥ १८
रात्रावनाविष्कृतदीपभासः कान्तामुखश्रीवियुता दिवापि।
तिरस्क्रियन्ते कृमितन्तुजालैर्विच्छिन्नधूमप्रसरा गवाक्षाः ॥
रघुवंश सर्ग १६, १८, २०

२. रामायण—अयोध्या का० सर्ग ९३। १०, १२

की यही कला उत्तरकालीन महाकाव्यों में विकसित होती गई है और क्रमशः रूढ़िवादी होकर उक्ति वैचित्र्य के रूप में परिणत हो गई है। कालिदास में तो संश्लिष्ट योजना के दर्शन अवश्य हो जाते हैं। किन्तु आगे नहीं।

जिस उर्वरा कल्पना का उपयोग प्रधानतः पदार्थों का संश्लिष्टरूप संघटित करने, प्राकृतिक व्यापारों को प्रत्यक्ष करने में या उसे पूर्ण करने में होना चाहिए था, उसका उपयोग उत्तरकालीन महाकवियों ने विभिन्न अलंकारों उपमा उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त की उद्‌भावना करने में ही अधिक हुआ है, वस्तुतः ये काव्य आदर्शकल्पनाओं से पूर्ण होने से यथार्थ या स्वभावोक्ति की ओर बहुत ही कम झुके हुए हैं। महाकवि माघ प्रबन्ध रचना में कुशल है। किन्तु उनकी प्रवृत्ति प्रस्तुत वस्तुविन्यास की ओर न होकर अप्रस्तुत अलंकार योजना की ओर अधिक है। उनके प्रकृति चित्र में उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि की भरमार रहती है।

"लालकमलसमूहरूपी सुन्दर हस्ततल तथा पादतलवाली बहुत से भ्रमर रूप कज्जल से युक्त कमल नेत्र वाली, पक्षियों के कलरव रूपी रोदन वाली यह प्रभात वेला सद्योजात बालिका के समान रात्रिरूपी अपनी माता की ओर दौड़ रही है। जिस प्रकार घड़ा खींचते समय स्त्रियाँ कुछ कोलाहल करती है, उसी प्रकार के पक्षियों के कोलाहलपूर्ण दिशारूपी स्त्रियां, दूर तक फैली किरणरूपी रस्सियों से, सूर्यरूपी घड़े को बाँधकर भारी कलश के समान समुद्र के भीतर से खींच कर ऊपर निकाल रही हैं। "बाहर फैली हुई भी सूर्य की किरणों ने भीतर वाले घरों के अन्धकार को जो नष्ट कर दिया वह नियत अर्थात् किसी एक स्थान में स्थित तेज का भी अत्यधिक प्रताप से सम्पूर्ण विपक्षियों को नष्ट करने का प्रसिद्ध स्वभाव ही है"।[1]

---

१ "अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा
बहुलमधुपमाला कज्जलेन्दीवराक्षी
अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती
रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव ॥
विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः
कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाण-
कृतचपलविहङ्गालापकोलाहलाभि
जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः ॥
बहिरपि विलसन्त्यः काममानिन्यिरेय—
दिवसकररुचोऽन्तं ध्वान्तमन्तर्गृहेषु

चित्रात्मक शैली

जैसा कि हमने पीछे देखा है कि काव्य मे अलकारो के प्रयोग की मात्रा में वृद्धि होती गई है, फलत: अप्रस्तुत विधान की प्रधानता काव्य मे प्रकृति चित्रण के लिये बढ गई है। वस्तुत यह अलंकार विधान का सम्पूर्ण प्रपंच काव्यात्मक सौन्दर्य की उद्भावना के लिये ही है। सौन्दर्य विधान की यह एक सीमा है और ऊहात्मक वैचित्र्य की दूसरी सीमा, इसकी विकृति है। इस शैली मे वर्ण्य प्रकृति शब्दो को अधिक चित्रमय बनाने के लिये प्रस्तुत को अप्रस्तुत के द्वारा अधिक आकर्षक बनाने का प्रयत्न किया जाता है। इस सौन्दर्य विधान की प्रवृत्ति का मूल रामायण मे मिलता है जिसको हमने ऊपर देखा है। जहा पर कवि ने सश्लिष्ट वर्णनो मे अकित चित्र को अधिक आकर्षक या रंगमय करने के लिये प्रस्तुत प्रकृति के चित्र को अप्रस्तुत प्रकृति के चित्र या उपमानो द्वारा उद्भासित करने का प्रयत्न किया है। कालिदास ने प्रस्तुत चित्र को अधिक चटकीला या आकर्षक बनाने के लिये प्रकृति से तथा अन्य क्षेत्रो से अप्रस्तुतो को मुक्त हृदय मे ग्रहण किया है। राम सीता को पंचाप्सर नामक सरोवर दिखाते हैं।

"हे मानवति! यह शातकर्णि नामक मुनि का वनो से परिवेष्टित, पञ्चाप्सर नामक क्रीडा सरोवर है जो कि दूर से मेघो के मध्य स्थित कुछ-कुछ दिखलाई देने वाले चन्द्रमण्डित के सदृश प्रतीत होता है।"[1] इसी प्रकार रघुवंश के १३वे सर्ग मे सगम-वर्णन मे अप्रस्तुत अन्य क्षेत्रो से ग्रहण किये हैं, जिनसे चित्र उभर आया है।[2] आकाश मे उडती सारसो की पंक्ति को वन्दनवार की उपमा तथा लताओ की पुष्प वर्षा को पुरकन्याओं द्वारा लावा की वर्षा की उपमा अत्यन्त द्रष्टव्य है।[3] मानवीकारण मे भी कालिदास ने इसी शैली को स्वीकार किया है। जिसमे क्लिष्ट कल्पना के अभाव मे, समुचित उपमानो की योजना से प्रकृति का प्रस्तुत चित्र सजीव हो उठता है।

नियतविषयवृत्तेरप्यनल्पप्रताप-
क्षतसकलविपक्षस्तेजस स स्वभाव ५९

शिशुपालवध सर्ग ११।४०, ४४, ५९

१. रघुवश सर्ग १३—३८
२. वही, सर्ग १३—५४—५७
३. वही सर्ग ४१, सर्ग २-१०

"कुसुमगुच्छक रूपी स्तनों से परिपूर्ण और कम्पित पल्लव रूपी ओष्ठों से मनोहारिणी लता रूपी कामिनियो से वृक्ष रूपी पुरुष फैली हुई शाखा रूपी भुजा के द्वारा आलिंगन को प्राप्त करने लगे।"[१]

उपर्युक्त प्रकृति के इस चित्र मे भी अप्रस्तुत योजना अप्रधान होने से लताओ के पुष्पगुच्छ और किसलय ही अधिक उभर आये है। साथ ही उपमा, मानवी स्पर्श को भी हल्के रूप से अङ्कित कर देती है। कालिदास के परवर्ती बुद्धघोष ने अपने पद्यचूडामणि मे भी अपने पूर्ववर्त्ती कालिदास के प्रभाव को अक्षुण्ण रहने दिया है। यद्यपि उन्हे, कालिदास की अपेक्षा आलंकारिक सौन्दर्य का मोह अधिक है। पयोद के उमड़ते बादलो की कल्पना मे प्रकृति के चित्र की रक्षा करते हुए हल्के रूप से मानवीकरण का स्पर्श किया है[२] कुमारदास ने अपने जानकीहरण मे अप्रस्तुतो के द्वारा प्रकृति के चित्रों को कलात्मक सौन्दर्य कालिदास और बुद्धघोष की समता की है। आपके अप्रस्तुत सरल और चित्रमय हैं।

"हार के समान अपने शुभ्र किरणो को घनीभूत करके बढ़ते हुए स्वच्छ क्षीर समुद्र मे तैरता हुआ सा चन्द्रमा उदयाचल से उदित हो रहा है।[३] इसमे स्वाभाविक कल्पना का सौन्दर्य दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त प्रकृति से भिन्न क्षेत्रो से अप्रस्तुतो को प्रस्तुत करने मे कुमारदास इसी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते है। चपक वृक्षो की नवविकसित कलियो को सहस्र दीपो वाले दीपाधार की उपमा दी है।[४] इसमे प्रकृति सौन्दर्य को अधिक उद्भासित करने के लिये प्रकृति के बाह्य क्षेत्र से उपमा दी गई है। इनके पश्चात् भारवि में कुमारदास के कल्पना सौन्दर्य के साथ-साथ माघ तथा श्री हर्ष का वैचित्र्य भी देखने को मिलता है। भारवि चन्द्रोदय का दृश्य इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं। उदयाचल पर आते हुए चन्द्र की श्वेत किरणो का पुंज नील कमल सदृश नील नभ मे प्रसरण करता हुआ इस प्रकार शोभित हुआ जिस प्रकार नील समुद्र मे गिरता हुआ गंगा का शुभ्र जलप्रवाह शोभित होता है[५]। यहा कवि ने उदीयमान चन्द्र के प्रकाश विस्तार के भाव को समुचित उपमानो की योजना से प्रत्यक्ष कर दिया है और कल्पना मे सहज

१. कुमार सम्भव सर्ग ३।३९
२. पद्य चूड़ामणि–सर्ग ५।८
३. जानकी हरण सर्ग ८।७२
४. वही, सर्ग ३।३
५. किरातार्जुनीय सर्ग ९।१९

सौन्दर्य की सृष्टि भी। आदर्श कल्पना का सौन्दर्य सहज उपमानो की योजना से अधिक निखर उठता है।

"इस इन्द्रनील पर्वत पर वायु प्रबल वेग से चलकर लताओ की परम्परा ससक्ति को दूर कर देता है। अत सुवर्णमयी तटभूमि एकाएक सूर्य भगवान की किरणो से द्विगुणित हो विद्युत की छटा का अनुकरण करती है[1]। यहा बिजली की छटा की उपमा सुवर्ण भूमि की आदर्श कल्पना को मूर्त कर देती है। जैसा कि इसके पूर्व हमने कहा है कि भारवि मे आदर्श कल्पना के साथ साथ चमत्कार की प्रवृत्ति भी मिलती है।"

"यह शुकावलि अपने प्रवाल के टुकडे के समान अरुण वर्ण के चञ्चुओ से पीले रग की धान की फल सयुक्त शिखा धारण करती हुई विकसित शिरीष के पुष्प इन्द्र के धनुष की शोभा का अनुसरण कर रही है।" यहा प्रवाल के समान लाल चञ्चु व पीली धान के रग की सुन्दर कल्पना है किन्तु वैचित्र्य की भावना भी सन्निहित है[2]। यह वैचित्र्य की भावना माघ मे अधिक विकसित हुई और उक्तियो की ओर झुकाव भी। इन ऊहात्मक उक्तियो का आग्रह रत्नाकर, मखक आदि से होते हुए श्री हर्ष मे चरम विकास मे परिणत हो जाता है। वस्तुत इन कवियो के सामने प्रकृति का सहज स्वरूप नही है, वे उसके चित्राकन के लिये यत्र-तत्र सौन्दर्यमयी कल्पनाएँ करते है। जहा-तहा प्रस्तुत को अप्रस्तुत के द्वारा उद्भासित करने के लिये सौन्दर्यान्वित कल्पना का आधार ग्रहण करने का प्रयास करते हैं और इस प्रयास मे वैचित्र्य की प्रधानता आ ही जाती है।

"एक ओर स्फटिक मणि के किनारे की प्रभा से श्वेत जल वाली तथा दूसरी ओर इन्द्रनील मणि की प्रभा से मिश्रित होने से नीले जलवाली नदियाँ इस पर्वत पर यमुना के जल से सुशोभित गगा की शोभा को धारण करती है[3]। यहा गगा के श्वेत जल के लिये स्फटिक मणि के किनारे की तथा यमुना के नीले जल के लिये इन्द्रनील मणि की योजना तथा रंगो का सम्मिश्रण समुचित बन पडा है। पर उक्ति का आग्रह भी कम नही। रत्नाकर कल्पना करत है कि जहाँ हरितमणियो से निर्मित प्रासादो के किरणो से तारागण ऐसे दीखते थे मानो नवीन उत्पन्न घास के अग्रभाग पर

१ सर्ग ५।४६ वगी

२. किरातार्जुनीयम् सर्ग ४।३६

३. शिशुपाल वध—सर्ग ४।२६

ओस की बूंद पड़ी हो[1] । यहा पर भी रग सम्मिश्रण की योजना समुचित होने से चित्र का सौन्दर्य निखर आया है किन्तु कला मे वैचित्र्य है। किन्तु श्री हर्ष सौन्दर्यमूलक अप्रस्तुत योजना मे असफल रहे हैं। सूर्यास्त के समय की कल्पना वे इस प्रकार करते है—'यह सूर्यरूप भिक्षुक दण्ड रूप यष्टि लेकर सब दिशाओं मे भ्रमण करता है। इस तपस्वी ने मानो समुद्र में स्नान करके सायंकाल की सन्ध्या या गगनरूप लाल वस्त्र धारण किया है[2] । इस दृश्य मे वैचित्र्य की ही प्रधानता लक्षित होती है, प्रकृतिचित्र प्रत्यक्ष नही हो पाता।

प्रौढोक्ति सम्भव कल्पना—

उपर्युक्त अंकित चित्रो को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति चित्रो के अंकन मे अप्रस्तुत योजना स्वाभाविक हुई है; उनमे वर्णन को सुन्दर और चित्रमय बनाने की शक्ति निहित है। उत्तरकालीन कवियो मे क्रमश सयोग स्वाभाविक न होकर ऊहात्मक और वैचित्र्यपूर्ण हो गये हैं उनमे एक प्रकार से वर्ण्य चित्र को अंकित करने की शक्ति अपेक्षाकृत कम है। कवियो का ध्यान वर्ण्यचित्र को अधिक स्पष्ट रूप से अंकित करने की अपेक्षा नवीन उपमानो, उनकी विचित्रता की ओर अधिक होता गया है। वस्तुत इसी प्रवृत्ति से वैचित्र्य शैली का विकास हुआ है, चित्रात्मक शैली में (वर्ण्य चित्र मे) सौन्दर्य की प्रवृत्ति की रक्षा करने की ओर ध्यान रहता है और वैचित्र्यशैली मे ऊहात्मकता तथा उक्ति के चमत्कार की ओर ध्यान रहता है। प्रौढोक्ति सभव कल्पना मे, वस्तुस्थिति के सम्बन्ध मे अथवा कारणो के सम्बन्ध मे उत्प्रेक्षा का अधिक प्रयोग होता है।

कालिदास सयोग के आधार पर चित्र को अधिक कलात्मक सौन्दर्य प्रदान करते है। उनकी उत्प्रेक्षाओ मे चमत्कृत सौन्दर्य सर्जन करने की शक्ति है।

"सरोवर के जल मे अस्तोन्मुख सूर्य की छाया फैल गई है, कवि उत्प्रेक्षा करता है मानो वहा सुनहले पुल का निर्माण हो गया है।" अन्यत्र उत्प्रेक्षा करता है।

"हे पीवरोरु! वृक्ष पर स्थित मयूर की गोलगोलसोने के पानी के समान सुनहली चन्द्रिकाओ से युक्त पूंछ से ज्ञात होता है कि मानो वह सायकालीन धूप पी रहा है और इसीलिये दिवस ढल रहा है[3]।"

---

१. हरविजय—१।३०

२. नैषध सर्ग २२।१२

३. कुमार सभव सर्ग ८।३४,३६, ५३ रघुवंश सर्ग ४।१९

उपर्युक्त चित्र मे एक साथ क्रमशः परिवर्तन की भावना और सायंकाल की उदासी की व्यञ्जना है। कहीं-कहीं कालिदास ने अमूर्त सौन्दर्य को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है।

'हंसों की पंक्तियो मे नक्षत्रो मे और कुमुद से युक्त जल मे रघु के यश की सफेदीरूप विभूति मानो फैली हुई थी। इसमे प्रकृति सौन्दर्य के माध्यम से अमूर्तभावसौन्दर्य का अंकन किया गया है। कालिदासोत्तरकालीन कवियो के चित्र में वस्तुस्थिति का सौन्दर्य तो अवश्य है किन्तु वैचित्र्य की मात्रा बढ़ती लक्षित होती है।

बुद्धघोष 'अशोक के पुष्पगुच्छ के समान लाल अस्ताचल को जाते हुए सूर्य के लिये समुद्र मथन के अवसर पर लगी हुई प्रवाल की लता के मण्डल की उपमा देते हैं'[1]। जानकी हरण के कवि जानकीदास चन्द्र प्रकाश की कल्पना इस प्रकार करते हैं "कुमुदो से निकलते हुए भ्रमरों को चन्द्र द्वारा दूर किये हुए आकाश के अंधकार के रूप मे हैं।"[2]

सायंकाल होने पर 'पशुओ के भागने और सूर्य के अस्त होने के दृश्य को सम्मुख रखकर, सूर्य की मृगया की उत्प्रेक्षा करते है।[3] इस चित्र में समय की गति का तो स्पष्ट अङ्कन है किन्तु वैचित्र्य की मात्रा अधिक है। भारवि में अप्रस्तुतो की नवीन कल्पनाओ मे चित्रमयता तो मिल जाती है किन्तु उनमे कालिदास की स्वभाविकता नही मिलती। भारवि अपनी प्रौढोक्ति कल्पना से चित्र को सहज सौन्दर्य प्रदान करने की अपेक्षा वैचित्र्य प्रदान करते हैं। भारवि को स्फटिक और रजत की दीवालो पर सूर्य की किरणे सक्रान्त होने से, तथा इन्द्रनील मणियो की प्रभा पुञ्ज से, मध्यान्ह मे ही चन्द्रिका का भास होता है[4]। यहा स्फटिक और रजत की दीवालो पर, चन्द्र-प्रकाश के भान होने की उचित कल्पना है किन्तु रगो का सयोग सहज ग्राह्य न होने से वैचित्र्योत्पादक है इस प्रकार माघ से उत्तरवर्ती कवियों मे क्रमशः प्रौढोक्तियो के क्षेत्र मे वैचित्र्य की कल्पना बढ़ती जाती है। माघ के अप्रस्तुतो का क्षेत्र आदर्श प्रकृति से विचित्र प्रकृति की ओर अधिक है। वे कवि प्रसि-

१. पद्य चूड़ामणि सर्ग ८।३

२. जानकीहरण

"उल्लसत्सु कुमुदेषु षट्पदा सपतन्ति परितो हिमांशुना।
भिद्यमानतमसो नभस्तलाद्विच्युता इव तमिस्रबिन्दव ॥ सर्ग ८।८२

३. जानकीहरण सर्ग १।६९

४. किरातार्जुनीय सर्ग ५।३१ शिशुपालवध सर्ग ११।४६। सर्ग ६।२४

ढियों पौराणिक कल्पनाओं तथा चमत्कृत उक्तियों से प्रकृति के वर्ण्यचित्र को अंकित करने का प्रयास करते हैं, यह प्रवृत्ति इनके पूर्ववर्ती कवियों में भी है किन्तु उनमे वर्ण्य चित्र से सादृश्य की भावना सदा रक्षित रही है। माघ उदयाचल पर किंचित उठे हुए सूर्य के लिये बन्धूक पुष्पों के गुच्छो की उत्प्रेक्षा करते हैं।" अन्यत्र हाथी दाँत के समान स्वच्छ, घूमते हुए भ्रमररूपी मृगकान्तिवाला तथा सूक्ष्माग्र केतकी के पुष्प को लोगो ने सघन मेघ की गरज से आकाश से गिरे हुए चन्द्रमा के टुकड़े के समान देखा ऐसे स्थानो पर चित्रमयता के सौन्दर्य की अपेक्षा वैचित्र्य का सौन्दर्य ही अधिक निखर उठा है।

श्री हर्ष मे तो वैचित्र्य का भण्डार है। वे कल्पना करते हैं "वह तालाब भ्रमरो से काली मध्यशोभावाले श्वेत कमलो के समूह के छल से चन्द्रमा के अन्धकार के समान कलक व्याप्त घने वृन्द को धारण करता अत्यन्त शोभायमान हुआ।[1]" यहा अप्रस्तुत विधान वस्तुस्थिति से सादृश्य कम रखता है, अतः वैचित्र्य की प्रधानता है।

भावात्मक व्यजना प्रकृति भी मानव जीवन की तरह सचेतन और सप्राण है। अतः कवि प्रकृति के चित्राकन मे मानवी जीवन के आरोप से अनेक भावों की अभिव्यजना करता है। वह जीवन, क्रिया व्यापार तथा भावशीलता का आरोप करता है। यह आरोप की प्रवृत्ति क्रमश. स्थूलता और हाव-भावों को व्यक्त करने की ओर होती गई है।

स्वाभाविक भावशीलता का आरोप

कवि कालिदास ने प्रकृति को अत्यन्त व्यापक सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया है। एक स्थान पर कालिदास ने देखा कि भ्रमर एक ही पुष्प रूपी पात्र मे भ्रमरी का अनुसरण करता हुआ मधु का पान करने लगा और कृष्ण सारमृग के स्पर्शजन्य सुख से आख मूंद कर खड़ी रहनेवाली स्वकीय प्रिया मृगी को अपने सींग से खुजाता हुआ खुशामद करने लगा[2]।" यहाँ कवि ने स्वाभाविक चित्र मे क्रिया व्यापार मात्र से भावों को स्फुट कर दिया है। अन्यत्र आकाश की चचल तारिका मानो नववधू के समान भय से कंपित शशिरूपी पति के पास जा रही है।[3] कप से भय की व्यंजना अंकित की है। बुद्धघोष और जानकीदास प्रकृति मे मानवीय भावनाओं के आरोप की स्वाभाविक शैली में कालिदास के निकट आ जाते हैं। सूर्यास्त का सुन्दर

---

१. सर्ग १-११० नैषध

२. कुमार सभव ३।३६

३. कुमार संभव ८।७३

और भाव व्यंजक चित्र इस प्रकार अङ्कित करते हैं 'अपने किरणजाल को समेट कर कहीं प्रस्थान के लिये प्रस्तुत लाल-लाल यह सूर्य अस्ताचल के शिखर पर स्थित, समुत्सुक होकर क्षणमात्र संसार को देखता है" ।[१]

अन्यत्र प्रस्तुत मे आरोप के लिये स्थूल आधार ग्रहण करता है —

"मृणाल कगन धारण किये हुए सरोजिनी, जिसके नेत्र निद्रा के आलस्य से बन्द हो रहे है, मूर्छा से निश्चेष्ट होती स्त्री के समान शोभित हुई ।[२] उपर्युक्त चित्र मे अनुभावो के द्वारा भावव्यञ्जना है । रत्नाकर स्वाभाविक चित्र को अङ्कित करते हैं । 'उपवन मे लगी कमलिनियो के पास मे (लगे) जलयत्र के मयूर नादजन्य गीतविशेष की ध्वनि को, भवन के हसगण, अपनी ग्रीवा उठाकर, एक पाव पर स्थिर रहकर और पखो को हिलाते हुए सुनते हैं "।[३] प्रस्तुत मे स्थूल आधार को ग्रहण करते हुए कहते हैं "भ्रमर और भ्रमरी चुपचाप सुख से कमलो के वक्षस्थल पर सो गये[४] ।" और अन्यत्र अनुभावो द्वारा भाव व्यञ्जना करते हैं—

"चन्द्र को देखकर कुमुदिनी ने भ्रूलता ऊपर उठाई, जँभाई ली, और अपने पत्ररूपी हाथो को चचल किया[५]" इनके चित्रो मे भावो से मधुक्रीडाओ के आरोप की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है ।

जैसा पूर्व कहा है इस क्षेत्र मे उत्तरकालीन कवियो मे भावव्यंजना का सौन्दर्य दुर्लभ हो जाता है । उनके चित्र स्थूल आरोप और वैचित्र्य के बोझ से दब गये हैं, और वे भावव्यञ्जना नही कर पाते । स्थूल आरोपो की प्रवृत्ति माघ मे ही अधिक लक्षित होने लगती है ।

"विकसित कमल रूपी नेत्र युक्त तालाब जलवाली, अत्यन्त शुभ्र शरीर वाले पक्षियो से स्वर्ग को हँसती हुई तथा कास नामक घासो से दन्तुर मुखवाली शरद् ऋतु को देखा" उक्त चित्र मे वैचित्र्य की प्रधानता से उल्लास के भाव तथा प्रस्तुत प्रकृति के चित्र मे तादात्म्य नही है[६] ।

---

१ सर्ग ८।५६ जानकी हरण

२. जानकीहरण ३।६०

३ आक्रीडतामरसिनी जलयन्त्रमञ्जुनाद क्रमानुगतकेकिकमध्यमश्री. ।

४ उत्कधरस्तिमितपादविधूतपक्षमाकर्ण्यते भवनहसगणेन यस्याम् ॥

रत्नाकर हरविजय १।२८

५. वही ३।२१ ४. वही २०।६५

६. शिशुपालवध सर्ग ६।५४

श्री हर्ष प्रकृति मे मानवीय भावों को घटित करते हुए कहते हैं—"भय से उठते हुए पक्षियो के समूह से अस्थिर हुए सरोवर ने हस पर दयालु होकर तरंगो से चचल हुए कमल रूपी हाथो से राजा को हस के पकड़ने से रोका।"[1] उक्त चित्र घटनास्थिति से अङ्कित होने से अधिक सवेदक बन पड़ा है।

वैचित्र्य शैली—

(इस शैली के पूर्व) चित्रात्मक शैली मे वर्ण्य चित्र को अधिक प्रत्यक्ष सुन्दर बनाने के लिये अप्रस्तुत उपमानो की योजना कवि करता है। चित्रात्मक शैली मे सहज सौन्दर्य की प्रवृत्ति रक्षित है, किन्तु वैचित्र्य शैली मे उक्ति का चमत्कार बढ़ता जाता है। चित्रात्मक शैली मे आदरचयन के साथ-साथ सौन्दर्य का आधार सादृश्य था। पर इस शैली मे क्रमश सादृश्य का आधार छूटता जाता है। उस समय सादृश्य के आधार पर स्थित आदर्श कल्पना मे ही सौन्दर्यबोध था अब वैचित्र्य का अर्थ ऊहात्मक कल्पना और उक्ति के चमत्कार से लिया जाने लगा। इस शैली के प्रयोग हमे कालिदास के काव्यो मे मिल जाते है। रघुवश के १३वें सर्ग मे रामचन्द्रजी सीता के चित्रकूट पर्वत को देख कर कहते है—

"हे सुडौल अगोंवाली! निर्झरो की ध्वनि को निकालने वाले कन्दरारूप मुखो वाला, श्रृंगो के अग्रभाग पर लगा हुआ मेघ रूप वप्रक्रीडा के पक वाला यह चित्रकूट अभिमानी साड के समान मेरी दृष्टि को आनन्दित करता है[2]" उक्त चित्र मे पर्वत को बैल के समान कल्पना करना वैचित्र्य है किन्तु इसमे भी पर्वत के शृगो पर कीचड रूपी मेघो की कल्पना मे वृषभ के रूप के साथ-साथ उसकी उद्दण्ड प्रकृति की अच्छी व्यंजना है। कालिदास वैचित्र्य शैली मे भी सादृश्य का भाव रखते है। चाहे पौराणिक कल्पना हो और चाहे कविसिद्धियाँ हो कालिदास सर्वत्र भावरूप का सन्तुलन रखने का ध्यान रखते हैं। वसन्त ने आम्रमंजरी रूपी नूतन बाणो के तैयार हो जाने पर उस पर आने वाले भ्रमररूपी अक्षरो से मानो कामदेव का नाम लिख दिया[3]। इस प्रकार से सन्तुलन की रक्षा करने से सौन्दर्य की वृद्धि होती है। पद्यचूड़ामणि के कर्ता बुद्धघोष अपनी प्रासादिक शैली मे कवि कालिदास के निकट आ बैठते

---

१. नैषध सर्ग १।१२६

२. 'धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृंगाग्रलग्नाम्बुदवप्रपंक।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि! चक्षु दृप्त ककुद्मानिव चित्रकूटः॥
रघुवंश १३।४७

३. कुमारसंभव सर्ग १।८, सर्ग ३।२७ सर्ग ।८।६२

हैं। नदी मे संक्रान्त क्रीड़ाशैल का वर्णन पौराणिक कल्पना के सहारे इस प्रकार करते हैं।

"तीरस्थित क्रीड़ाशैल जिसके निर्मल जल मे सक्रान्त है ऐसी सरिता मदमत्त ऐरावत से मथित गगा की शोभा को धारण करती है।" उक्त श्लोक में निदर्शना अलंकार के सहारे वैचित्र्य को सहजभाव से अंकित किया है[1]।

किन्तु बाद के कवियो मे अलकारप्रियता बढती गई है परिणामत. चमत्कार की प्रवृत्ति से उक्तिवैचित्र्य ही सामने आता है। कुमारदास, भारवि और अभिनन्द मे स्थित भाव का सौन्दर्य वैचित्र्य शैली मे भी रक्षित है। और माघ, कप्फिणाभ्युदय, रत्नाकर, मखक और श्री हर्ष मे चमत्कार की प्रवृत्ति अधिक होने से स्थिति या भाव के सौन्दर्य की कमी हुई है।

"पवनान्दोलित आम्रमंजरियो से प्रकृत्या स्नेह होने से भ्रमर पुष्पों से आच्छादित अशोक के वन पर पैर नहीं रखता मानो वह प्रज्वलित हो[2]" पूर्ण विकसित पुष्पों से अलंकृत कुन्द लता से अवनद्ध पलाश वसंत में कामदेव के दाह की अग्नि का राशि के समान शोभित हुआ[3]। उपर्युक्त उदाहरणों में उक्तिवैचित्र्य होने पर भी कल्पना का सौन्दर्य सुरक्षित है, दूसरे चित्र मे कविप्रसिद्धि के सहारे भाव व्यंजना का सौन्दर्य निखर उठा है। भारवि ने किरातार्जुनीय के ९वें सर्ग मे कल्पना की है "चन्द्रमा से प्रेरित होकर किरण समूह ने सान्द्र अंधकार को इस प्रकार ढँक लिया जैसे (समुद्र मन्थन के समय) मन्दराचल से मथित क्षीरसागर ने समीपवर्ती जगलो को (अपने स्वच्छ क्षीर झाग से) ढक लिया हो"। इसमे भारवि ने पौराणिक कल्पना में वस्तुस्थिति के सौन्दर्य का अकन किया है[4]।

माघ के अनेक चित्र वैचित्र्यभित्ति पर स्थित हैं–

(रैवतक पर्वत पर) सुवर्णमय तट पर स्थित भ्रमराच्छादित वृक्षों के

---

१. "यत्रापगाः स्वच्छजलान्तरालसक्रान्ततीरस्थितकेलिशैला.।
मदोष्मणा मग्नसुरद्विपाया महेन्द्रसिन्धोः श्रियमाश्रयन्ते ॥
१७ पद्मचूड़ामणि सर्ग-१।

२. समीरणानर्तितमजरीके चूते निसर्गेण निषक्तभावा।
पुष्पावतंसेषु पदं न चक्रुर्दीप्तेष्विवाशोकवनेषु भृंगाः ॥
जानकी हरण सर्ग ३

३. वही सर्ग ३।११

४. किरातार्जुनीय सर्ग ९।२८

लिये धुएँ से ढकी हुई, अग्नि की उपमा दी है। अन्यत्र उत्प्रेक्षा करते हैं मनोहर तथा अनेक वर्णों के रोमवाले घूमते हुए, प्रियकनामक मृग विशेषों से जंगमता को अनेक रत्नमय अवयवों के समान यह रैवतक पर्वत सर्वत्र शोभा दे रहा है। और एक स्थान पर माघ कहते हैं "नये जलकण के समान कोमल मालती के पुष्पो के गुच्छो पर निरन्तर बैठे हुए (पराग से रंजित होने से) वे श्वेत भाव को धारण करने वाले भ्रमर उडते थे मानो नक्षत्र चल रहे हो[1]। उक्ति वैचित्र्य होने पर भी उक्त दोनो स्थानो पर वस्तु और व्यापार का सुन्दर चित्र अंकित किया है।

हरविजय मे रत्नाकर ने मालती कुसुम को कामदेव का मुद्गर कहा है। इसमें अप्रस्तुत का वैचित्र्य है किन्तु वस्तुस्थिति और भावसौन्दर्य तिरोहित हो गया है।[2] अन्यत्र कमलकेसरो से लिप्त भ्रमरो को सिंह का रूप दिया है[3]। उक्ति वैचित्र्य मे वस्तुतिथि का सन्तुलन नहीं रहता। नैषधकार श्री हर्ष चमत्कृत कल्पना करते हैं—"प्रिये! सूर्य रूपी गेरुका गण्डशैल अत्यन्त उन्नत आकाश पर्वत के शिखर से गिर पड़ा। गिरने से उसके टुकडे-टुकडे हो गये। उससे उठी हुई धूल ही सन्ध्या का रङ्ग है जो सायंकाल में चारो तरफ फैलता है[4]।

आरोप की प्रवृत्ति—

चित्रात्मक शैली मे मानवीकरण का उल्लेख किया जा चुका है। उस शैली में यह सौन्दर्य बोध तथा भाव व्यंजना के अन्तर्गत आता है। किन्तु वैचित्र्य शैली मे मानवीकरण सूक्ष्म से स्थूल आरोप की ओर प्रवृत्त होता है। इसमें शरीर के अङ्गो, मधुक्रीडाओ की प्रधानता रहती है। उत्तर-कालीन महाकाव्यो मे अर्थात् कालिदासोत्तरवर्ती काव्यो में इन स्थूल आरोपो की प्रवृत्ति बढ़ती गई है। वस्तुत. मनुष्य और प्रकृति एक दूसरे से सपृक्त है, विशेषत संस्कृत साहित्य मे नारी और प्रकृति परस्पर सपृक्त है। इस

---

१. शिशुपाल वधम्-सर्ग ४।३०, ३२। सर्ग ६।३६

२. स्मृतिभुवो विरहे नवमालती मुकुलमुद्गर एव बधूर्व्यधात्।
स्फुटमपश्चिमघात विमूर्छिता भदरआदरसारसषट्पदा ॥

३. कमलमुकुल पजरोदरेषु प्रतिहतिरोषविधूत केसराणाम्।
प्रतिदिशमुदजृम्भत प्रणादो मधुकरकेसरिणां विनिद्रितानाम् ॥
रत्नाकर हरिविजय-सर्ग ३।५९,सर्ग २८।३८

४. नैषध—सर्ग २२।४

संपृक्तता के कारणों को हमने (पीछे) देखा है। इसके अतिरिक्त प्रकृति का उद्दीपन कार्य नारी के साहचर्य से ही सम्भव है, अत संस्कृत काव्य के कवि या उसके नायक को जहा कही प्रकृति हृदयाह्लादक प्रतीत होती है वहा उसे वह नारी के ही रूप मे दिखाई देती है। यह आरोपप्रवृत्ति बढ़ती गई और चमत्कृत तथा ऊहात्मक प्रयोगो के द्वारा विकृतरूप मे परिणत हो गई। कालिदास की दृष्टि प्राय प्रकृति के मोहक रूप पर नारी भाव का आरोप करती है।

"अभिनयो का अभ्यास करने के लिये तैयार नर्तकी के समान स्थित, मलयाचल की वायु से कम्पित पल्लवो वाली कोरकयुक्त आम्रलता ने मुनियो के भी मन को उन्मत्त कर दिया।[1]" जानकीहरण के कर्त्ता कुमारदास मुंदते हुए कमलो से भ्रमरो के उडने पर कहते है—"उस कमलसरोवर ने अपने कमलनेत्रो से, विकसित कमलो की सुवास से आकर्षित भ्रमरो को नववधू के प्रवाहित अंजन से काले अश्रुबिन्दुओ के समान त्याग दिया"[2]

उपर्युक्त चित्रो मे आरोप के आधार पर कोई विशेष रूप की कल्पना प्रत्यक्ष नही होती केवल हृदय पर वैचित्र्य का सौन्दर्य भासित होता है। भारवि प्रकृति पर क्रीडा विलास का आरोप करते हुए कहते हैं कि "कामिनियो के रूप मे वनराजिया पुष्पो मे हास्य करती हुई और प्रस्फुटित स्वच्छ नीलसरो से देखती हुई अपने पवन से चचल सप्तपलाश के रजरूपी वस्त्रों को सम्हालती है[3]। 'इसके आगे माघ के मानवी आरोपो मे चमत्कार की प्रवृत्ति बढ़ी हुई दिखाई देती है "लटकते हुए नीलकमल रूपी वर्ण भूषणवाली लोध्र पुष्प के पराग से गौरवर्ण कपोलमण्डल के समान स्थिर और नये-नये तृण विशेष से अलंकृत सैकत के समान कान्तिवाले सेवालयुक्त स्वच्छ जल को धारण करते हुए पर्वत को श्रीकृष्ण ने देखा।[4] उक्त चित्र मे चमत्कार की प्रवृत्ति होने पर भी रूप रंग का व्यापक सादृश्य वर्तमान है।

वैचित्र्य मे से सौन्दर्य का भाव हट जाने पर, केवल चमत्कार की स्थिति शेष रह जाती है और प्रत्यक्ष आधार के अभाव मे कथन-शैली पर आधारित वैचित्र्य ऊहात्मक उक्तिवैचित्र्य मे परिणत हो जाता है। अब इन्द्रिय प्रत्यक्ष का काम मस्तिष्क से लेता है। कवि कालिदास के प्रयोगो मे वर्णन

१. रघुवश सर्ग ९ व ३३, ३५, ३७
२ जानकीहरण सर्ग ३।५८
३. किरातार्जुनीयम् सर्ग ४।२८
४. शिशुपालवधम् सर्ग ४।८

चमत्कार है। "सुगन्धित गन्धोवाली पुष्पयुक्त वनराजियों मे सर्वप्रथम कोयलो से कहा गया कि परमित वचन मुग्ध वधुओं की कथाओ के समान सुना गया है और कभी कल्पना करते हैं कि कुमुदो पर घूमने वाले भ्रमरों की गुंजार मानो चाँदनी पीने से उनका कराहना है[१]।

इन चित्रो में भी कालिदास ने सादृश्य के आधार का रक्षण किया है। बुद्धघोष, विचित्रकल्पनाओ मे चमत्कारयुक्त सौन्दर्य की सृष्टि करते है— ऊँचे प्रासादो के स्फटिक खण्डों पर, सूर्य की निकटताजन्य प्रभा की किरणें उसके अश्वो के लिए क्षण भर चामर का काम करती है।"

अन्यत्र नीलमणियो की भूमि पर चन्द्रकिरण संक्रान्त होने से हंस मृणाल खड खाने की स्पृहा से, उसे अपनी चञ्चु से खाने के लिए तत्पर होते हैं[२]। रत्नाकर 'हरविजय मे अंकित चित्र मे वैचित्र्य रूप-रङ्गो की योजना पर आधारित चमत्कार उत्पन्न करते हैं।

"उन प्रासादो पर माणिक्य से निर्मित दरवाजे, सूर्य के घोड़ो के पास में होने से उन घोड़ो के शरीर कान्ति से क्षण भर ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो हरे पत्तो से निर्मित वन्दनवार हो[३]।

"जहा मरकतमणियो के किरणो से नीलवर्ण वाले हस भवन पुष्करिणी तट पर घूमते हुए हृदय को आकर्षित करते है, मानो चिरकाल तक खाई हुई सेवाल के रस से ही वे नीले हो गये थे[४]।

पौराणिक कल्पना का आरोप—

संस्कृत के विदग्ध महाकाव्यों मे पौराणिक कल्पनाओ और उल्लेख को अनेक रूपो मे स्थान दिया गया है। भारवि ने चन्द्रोदय से दूर होने वाले अन्धकार की कल्पना इस प्रकार की है "चन्द्र ने अपनी निर्मल कला से निविड अन्धकार को इस तरह दूर फेंक दिया जिस प्रकार वराहावतार

---

१ रघुवंश सर्ग ९।२४ कुमारसम्भव सर्ग ८।६९,७०

२ पद्य चूड़ामणि—सर्ग १।२०,२५

३ माणिक्यतोरणमद्रविलम्बमानतिग्माशुकुवरितुरंगशरीरभाभि.।
यत्र क्षणं हरितपल्लवनिर्मिताभिराभात्यशून्यमिववन्दनमालिकाभि॰ ॥
रत्नाकर हरविजये—सर्ग १।२२

४ "यत्रारमगर्भक मयूखशिखाप्रकाश श्यामीकृता भवन पुष्करिणी तटेषु।
चेतो हरन्ति परिणामिचिरोपभुक्तशेवालसहतिरसा इव हसयूथा.॥
वही सर्ग १।२९

विष्णु ने अपने सुवर्ण की टाकी के सदृश जरदरंग के दाँत से पृथ्वी मंडल को उठा कर फेंक दिया था ।[1] माघ सहस्रों शिखरों मे फैले हुये तथा छोटी-छोटी पहाड़ियों वाले रैवतकपर्वत की कल्पना विराट पुरुष के रूप मे करते हैं[2] । रत्नाकर पौराणिक कल्पना मे चमत्कार का आधान इस प्रकार करते हैं कि चन्द्रोदय होने पर "चन्द्र किरण से आकाश ऐसा शोभित हुआ जैसे वराह ने प्रलयकाल मे अपने दातो मे उठाते हुए भूमि की शोभा हुई थी"[3] श्री हर्ष तारों से युक्त रात्रि को इस प्रकार देखते हैं—"सायंकाल मे नाचने वाले शिवनृत्य मे टूटी हुई अस्थियो की माला के टुकडो से दिङ्मण्डल को भूषित करते हैं जो अब करोडो तारों के बहाने से शोभायमान है[4]" । उपर्युक्त सभी चित्रो मे पौराणिक कल्पना के सहारे वर्ण्य दृश्य की चमत्कृत योजना की गई है ।

साधारण वस्तुस्थिति के आधार पर कीजानेवाली कल्पना में ऊहात्मकता आ जाती है । जानकीहरण मे वस्तुस्थिति की एक योजना इस प्रकार है—

"गंध से आकृष्ट हुई चम्पक कलियो के अग्रभाग पर सचरण करती हुई भ्रमरावली, दीप शिखा पर स्थित काजल की रेखा से युक्त धूएँ के समूह के समान शोभित है[5] ।" कविमंखक श्रीकण्ठचरित मे तम की कल्पना इस प्रकार करते हैं—"प्राणिमात्रो का अधिपति काल है । वह प्राणिमात्रो की गणना करता है । उसका मसीपात्र सुवर्णमय सूर्य बिम्ब है, जब वह उलटा होकर समुद्र मे (सायकाल) गिरता है, मसीरूपी अन्धकार पृथ्वी पर छा जाता है[6] ।"

श्री हर्ष की चमत्कारपूर्ण वस्तुस्थिति का एक चित्र "दीपक सूर्य ने आकाश मे काजल पाड दिया है । आकाश एक बर्तन के समान है, जो नीचे

---

१. किरातार्जुनीयम्–सर्ग ९।२२

२. शिशुपालवधम्–सर्ग ४।४

३. रत्नाकर-हरविजय—सर्ग २०।५८

४ नैषध–सर्ग २२।८

५ जानकीहरण–सर्ग १।६५, ३।२७

६. "किं नु .कालगणनापतेर्मषीभाण्डमर्यमवपुर्हिरण्यमयम् ।
तत्र यद्विपरिवर्तितानने लिम्पति स्म धरणिं तमोमषी ॥ १९

मखक श्रीकण्ठ चरितम् सर्ग १०।१९

को मुँह करके सूर्य के ऊपर रखा गया था। क्रम से प्रचुरता बढने के कारण भारी हुआ वह काजल ही क्या पृथ्वी पर अन्धकार होकर गिरा है ?[१]।

माघ, रत्नाकर, मंखक आदि के काव्यो में चमत्कृत कल्पनाएं और उक्तियाँ बहुत है। माघ कही तो वैडूर्यमणि से बनी दीवालो पर पड़ी चन्द्र-किरणो को बिल्ली की आँखो जैसी स्त्रियो को डराने वाली कहते हैं, तो कहीं 'जल मे घिरी हुई द्वारिका नगरी को पृथ्वी के विशाल प्रतिबिम्ब के रूप में देखते हैं[२]। किन्तु इन उक्तियो मे काव्य सौन्दर्य नही होता केवल अभिव्यक्ति-कौशल मस्तिष्क को अवश्य ही चालित कर प्रसन्न करता है। "प्रकृति चित्रण मे ऐसी आश्चर्यजनक उक्तियाँ कालिदास के काव्य मे भी मिल जाती हैं। किन्तु वे उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत होने से अधिक दूर की सूझ नही प्रतीत होती 'परागकण से व्याप्त होने से अत्यन्त पिंजरित श्रेष्ठ अर्जुन वृक्ष की मञ्जरी शरीर को भी जलाकर क्रोध से शिवजी के द्वारा खण्डित कामदेव की प्रत्यञ्चा के समान शोभती थी"[३]। कवि मखक समुद्र शोभा का चित्रण करते हुए कहते है, "समुद्र मे अनर्गल वीचियो तथा तरगो का (ज्वारभाटो का) चक्र चलने पर मीन, मकर आदि अनेक जलजन्तु घबडाकर आकाश मे (उदयाचल तथा अस्ताचल पर भी) छा गये, अत मौहूर्तिकों की दृष्टि, राशि सचार का निश्चय करने मे समर्थ न हुई, क्योंकि मीन-मकरादि राशिया भी जलजन्तु के आकार की ही है "वडवानल अग्नि समुद्र मे रहती है समुद्र की ऊँची ऊँची उठती हुई लहरियो के कारण वड़वाग्नि की शिखाएँ भी बहुत दूर तक गई जिससे पूर्णचन्द्र पिघल गया और उससे अमृत के प्रवाह बहने शुरू हुए, उन प्रवाहो से आपूर्ण होने के कारण लवणार्णव भी शीघ्र क्षीर-समुद्र हो गया है[४]।

उपर्युक्त यही वैचित्र्य का प्रयोग प्रकृति मे आरोपित मानवीय मधुक्रीडाओ के ऊहात्मक चित्रो मे मिलता है। और यह परम्परा उत्तरकालीन काव्यो मे पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। यहाँ तक कि प्रकृतिचित्रण नायिका की क्रीडाओ उसके कार्यकलापो से प्रारम्भ होता है। "उद्यान मे परिपक्व पत्रों रूपी कचुकी को खोलकर, मुकुल समूह रूपी रोमावली को हर्षित कर तथा भ्रमर रूपी केश

---

१ नैषध सर्ग २२।३१ श्री हर्ष तार्किक थे, अत उनकी प्रत्येक कल्पना मे तर्क निहित रहता है फिर चाहे वह हृदय की अपेक्षा बुद्धि को ही सन्तुष्ट क्यो न करे।

२ शिशुपाल वध—सर्ग ३।४५,३४

३ रघुवंश सर्ग १६।५१ कुमारसंभव सर्ग ८।५४

४ मखक—श्रीकठचरित–सर्ग १२।१९,४५

समूह को चंचल करता हुआ वसन्त लताओं के साथ विहार करने लगा।[1] भारवि चन्द्रप्रकाशस्नाता रजनी में नववधू की कल्पना करते हैं— "चन्द्रोदय हो जाने पर भी जब तक अन्धकार दूर नहीं हो पाया था तब तक निशा को लोगों ने एक नवविवाहिता वधू की तरह जिसके मुख का घूँघट हट गया हो तथा वह लज्जा के भार से दबी जाती हो, सतृष्ण दृष्टि से देखा[2]। रत्नाकर चन्द्रोदय का वर्णन करते हुए कल्पना करते हैं—"अमृतस्राव करने वाले प्रिय चन्द्रमा ने रात्रिरूपी नायिका का जिसका कि नील वसन गिर गया था (उसका) आलिंगन करने पर बहुत दूर तक मृणालखंड की तरह निर्मल फैले हुए चन्द्रकिरण दिशा रूपी सखियों के मुख पर पड़े (नायक नायिका का ऐसा संयोग देखकर) मानों वे सखियाँ हँसती हुई पीछे हट गईं[3]।

उपर्युक्त उक्तियों में उद्दीपन सम्बन्धी व्यञ्जना प्रकृति में निहित होने से कल्पना वैचित्र्य अस्वभाविक नहीं प्रतीत होता। किन्तु माघ में उक्ति वैचित्र्य का आग्रह अधिक दिखाई देता है। "सूर्य नये कुकुम के समान लाल मेघों वाली (पयोधरों) अपनी किरणों से सम्बद्ध मनोहर आकाश वाली (सुन्दर वस्त्र वाली) पश्चिम दिशा के अत्यन्त निकट होकर, अत्यन्त लाल हो गया"। (अनुरक्त) निश्चय ही समासोक्ति का आग्रहविशेष है[4]।

उक्ति वैचित्र्यमात्र

कुमारदास वसतकालीन तेज धूप की प्रखरता के प्रभाव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

"वसंत की प्रखर धूप से म्लान हुई विद्रुम आभा वली वृक्षों की पवन से आन्दोलित हुई कोपलें अति श्रम के कारण निकली हुई जिह्वा, के समान चमकती हैं।"[5]

---

१ "उन्मोचयन् परिणतच्छदकचुलीका
मुद्भावयन् मुकुलजालकरोमहर्षम्।
उल्लोलयन् भ्रमरकेशभरं लताना
उद्यानभूषु विजहार वसन्तकाल ॥" पद्यचूडामणि सर्ग ६

२. किरातार्जुनीयम्–सर्ग ९।२४

३. हरविजय सर्ग २०।४७

४ शिशुपालवध सर्ग ९।७

५. जानकीहरण-सर्ग ३।१२
"वसन्तदीप्तातपखेदिताना महीरुहा वात्रचलाः प्रबालाः
जिव्हा यथा विद्रुमभगताम्रा निष्कासिता रेजुरतिश्रमेण १२

भारवि ने वस्तुस्थिति के वैचित्र्य के विषय में इस प्रकार कल्पना की है "राका रमणी ने कामदेव का अभिषेक करने के लिये जिसकी किरणें ही जल राशि हैं और जिसका चिह्न कमल के समान है, इसे चन्द्रमा को रजत कलश के समान उठा लिया[१]।

माघ की उक्तियों मे वैचित्र्य की मात्रा अधिक है अत ऊहात्मकता का समावेश है। माघ दिशाओ को कही मेघरहित स्फुरती हुई लता के तुल्य तलवार वालो तथा कही पर मेघयुक्त अतएव एरावत के चर्मरूपी वस्त्रवाली देखते हैं[२]। मसक—काल की विजय इस वैचित्र्यपूर्ण उक्ति मे व्यक्त करते हैं। अस्त होते सूर्य के विषय मे "काल ने सूर्य को नीचे गिराया, इसकी प्रशंसा, उद्घोषणा करने के लिये समुद्र ने अस्त होने वाले सूर्यरूपी तावे के नगाड़े को लहरी रूपी दडे से बजाया[३]। यह प्रवृत्ति आगे जाकर अत्यधिक श्लेषात्मक होने से केवल शब्दाडम्बर की द्योतक हुई है। शिवस्वामी भ्रमरगुञ्जार की कल्पना इस प्रकार करते हैं—"निन्दादि से मोहित मानस वाला प्रथम यह भ्रमर (मद्य पान करने वाला) नियम से स्थिर चित्त वाला पान्थ विलासिनियो को (प्रोषितभर्तृकाओ) अभिचार करने के लिये ही मानों किसी मन्त्र का जप कर रहा है"[४]।

श्री हर्ष, माघ और शिवस्वामी के भी आगे जाते हैं कुशकिसलयो की नोको पर स्थित निर्मल जलकणों ने जो रात्रिरूपी हथिनी के वदन से निकलते हुए जल की फुआर के समान ओस की बूदो के बार-बार गिरने से घने हो गये थे, सौन्दर्य मे, मणिकार के द्वारा लोहे की पिनो के अंकुर के समान, अग्रभाग मे कुशलतापूर्वक लगाये गये मुक्ताफलों का अपमान किया। दूसरा उक्तिवैचित्र्य यह है 'आकाश तारा रूप अखण्डित तंडुलों से सूर्य की किरणो को अर्घ देता है, जो अन्धकार रूप दूर्वा पल्लवो की श्रेणी से मिश्रित है तथा आकाश की श्वेत आभा के रूप में जो कि आटे से अतिथि सत्कार कर रहा है।'[५] इन कलात्मक उक्ति वैचित्र्य की मात्रा माघ से अधिक ही होती गई है जो कल्पना भावो और रसो की सामग्री, उनके उपकरणो

---

१. किरातार्जुनीय = सर्ग ९।३०

२. शिशुपालवध ६।५१ सर्ग ९।३०

३. श्रीकंठचरित 'शंसितु विजयीतामनेहसो न्यस्यता लहरिकोणमब्धिना निर्ममेऽभ्युपनन्ममरीचिमद्बिम्बताम्रपटहावघट्टनम् ॥ सर्ग १०।१३

४. कप्फिणाभ्युदय—सर्ग ८।७

५ नैषध सर्ग, १९।६, १४

को जुटाने मे सदा व्यस्त रहती थी वह उत्तरकालीन संस्कृत के विदग्ध महाकाव्यो मे बाजीगर का तमाशा करने लगी। इस तमाशे के कारण की खोज करने से राजसभाओ का दृश्य, जिसमे अपना गौरव होने के लिये कवि टेढी मेढ़ी समस्याएँ दरबार के अन्य कवियों या दरबार मे प्रवेश प्राप्त करने के इच्छुक कवियो को पूर्ति करने के हेतु देते थे सामने आ जाता है। कवि उपमा, उत्प्रेक्षा आदि की अद्भुत-अद्भुत उक्तियो द्वारा उनकी पूर्ति करने लगे। ये उक्तियाँ जितनी ही ऊहात्मक, बेसिर पैर की होती उतनी अधिक प्रशंसा प्राप्त होती। मंखक कवि जब अपना श्रीकंठचरित महाकाव्य काश्मीर के राजा की सभा मे ले गये तब वहाँ कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र के दूत सुहल ने उन्हे यह समस्या दी—

"एतद्वभ्रुकचानुकारिकिरण राजद्रुहोऽह्न शिर-
श्छेदाभं वियत प्रतीचि निपतत्यब्धौ रवेर्मण्डलम् ॥"

'निवले के बालो के सदृश पोली किरणो को प्रकट करता हुआ सूर्य का यह बिंब, चन्द्रमा का द्रोह करने वाले दिन के कटे हुए सिर के समान, आकाश से पश्चिम समुद्र मे गिरता है।' इसकी पूर्ति मंखक ने इस प्रकार की—

"एषापि द्युरमा प्रियानुगमन प्रोद्दामकाष्ठोत्थिते।
सन्ध्याग्नौ विरचय्य तारकमिषाज्जातास्थिशेषस्थिति ॥"

दिशाओं मे उत्पन्न सध्यारूपी प्रचण्ड अग्नि मे अपने प्रियतम का अनुगमन करके आकाश की श्री भी तारो के बहाने अस्थिशेष हो गई। कहाँ आर्ष कवि की कल्पना और कहाँ संस्कृत के विदग्ध कवियो की तारे और हड्डियों की कल्पना[१]।

इस प्रकार उपर्युक्त शैलियो मे वर्णित संस्कृत महाकाव्यो के प्रकृति-चित्रण का अध्ययन करने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि काव्य की परम्परा किस प्रकार स्वाभाविकता से आदर्श की ओर और फिर आदर्श से रूढि की ओर बढ़ती गई।

किन्तु आदर्श से रूढि की ओर जाने मे महाकाव्यो मे स्वतन्त्र प्रकृति वर्णन की परम्परा भी परिलक्षित होती है। जिनका कथानक के प्रसग से नही के बराबर सम्बन्ध रहा है। वैचित्र्यशैली मे इस मुक्त परम्परा का प्राधिक्य रहा है। उत्तरकालीन महाकाव्यो मे शास्त्रीय ग्रन्थो मे निर्दिष्ट प्रकृति के विभिन्न रूपो के वर्णन यत्र तत्र निरपेक्ष रूप से नियोजित हैं इनका

१ श्री कंठचरितम् सर्ग २५ १०३—१०५
काव्यमाला ३. नि०. प्रे

कथा से कोई सामजस्य न होने से, कथा की गति मे बाधा अवश्य उपस्थित हुई है, इस विषय मे हम पीछे चर्चा कर चुके हैं। मुक्त परम्परा का विशेष कारण वर्णन प्रियता ही है और यह मुक्त परम्परा प्रवृत्ति केवल प्रकृति चित्रण मे ही उद्भुत नही हुई बल्कि अन्य वर्णनों के अवसर पर भी। जैसे कालिदास का स्वयवर वर्णन कथाप्रवाह को गति देता है किन्तु नैषध का स्वयंवर वर्णन मुक्तक राजा के स्तुति पाठकों का रूप लेकर सामने आता है। हो सकता है, कि श्रीहर्ष ने राजा की स्तुति मे समय समय पर राजसभा मे सुनाने के लिये पद्य लिखे होंगे जो नैषध के १२वें सर्ग के बाद मे जोड़ दिये हैं। इस प्रवृत्ति का प्रारम्भिक रूप माघ मे लक्षित होता है। जो बाद मे रत्नाकर के हरविजय, मखक के श्रीकंठचरित मे और श्रीहर्ष के नैषध मे पूर्णरूप मे विकसित होता है।

लोक मंगल के साधक काव्य

इस परिवर्तनशील ससार मे न तो सदा और सर्वत्र लहलहाता वसन्त-विकास रहता है न सुख-समृद्धिपूर्ण हास-विलास। समय ही प्राणियो को सबल-निर्बल करता है। वर्षा के पश्चात् शरद् मे अपनी मधुरता के कारण मे वीतरागियो को चचल करने वाले मयूरो के शब्द कर्कश, और हसो के कर्कश शब्द मधुर हो जाते हैं।[1] समय की प्रबलता से शत्रुओ के बढ़ जाने पर बलवान भी असमर्थ हो जाता है, क्योकि माघमास मे मन्द किरणो वाला सूर्य बढे हुये हिम को नष्ट नही करता।[2] शिशिर के आतंक से म्लान और खिन्न वनस्थली के बीच से ही क्रमश आनन्द की अरुण आभा को फैलाने वाली वसन्त श्री का उदय होता है। इसी न्याय से लोक की पीड़ा, बाधा, अन्याय, अत्याचार के मध्य में दबी हुई आनन्द ज्योति भीषण शक्ति मे परिणत होकर आगे बढ़ती हुई लोक मंगल और लोक रञ्जन के रूप मे अपना प्रकाश करती है। वस्तुत विरुद्धो का सामञ्जस्य ही कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है। लोक मे फैली दुःख की छाया हटाने के लिये ब्रह्म की आनन्द-कला जो शक्ति का रूप धारण करती है, उसकी भीषणता मे भी अपूर्व मधुरता उसकी करालता में भी मृदुता और प्रचण्डता में भी आर्द्रता परिलक्षित होती है। इस लोक में सौन्दर्य का उद्घाटन असौन्दर्य को हटाकर होता है। आदिकवि वाल्मीकि तथा व्यास ने अधर्म और अमंगल के पराभव से धर्म और मंगल का सौन्दर्य ही तो अपने रामायण और जयकाव्य में

---

१. शिशुपालवध—सर्ग ६।४४

२. वही ६३ सर्ग ६

प्रकट किया है। महाकवि हमारे सामने असौन्दर्य, अमगल, अत्याचार, क्लेश इत्यादि भी रखता है, रोष हाहाकार और ध्वस का दृश्य भी लाता है, पर सारे भाव, सारे रूप और सारे व्यापार भीतर-भीतर आनन्द कला के विकास में ही योग देते पाये जाते हैं।

जिस व्यवस्था से लोक में मगल का विधान होता है उसे धर्म कहते हैं अधर्म की वृत्ति को हटाने मे धर्म की तत्परता, आनन्दकला के विकास की ओर बढती हुई गति है। इस गति में भी सुन्दरता है और इसकी सफलता में भी।[1]

उपर्युक्त कथन के अनुसार सस्कृत के विदग्ध महाकाव्यो के कथानको का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि सभी कथानको मे दैत्यो, असुरो और दुष्टो के क्लेश, अत्याचार रोष, हाहाकार व ध्वस आदि कार्यों से 'त्राहि त्राहि' करने वाले देवगण परमपिता सर्वशक्तिमान ब्रह्मा, विष्णु और महेश के शरण जाकर अपनी दयनीय दशा का उल्लेख करते हैं। फलत एक-दो काव्यो के कथानको को छोडकर, सभी कथानको के नायको का अवतार दैत्यो, असुरो और दुष्टो का नाश करने, अमगल, अशुभ, अधर्म, अन्याय, अत्याचार और बाधा को दूर करने के हेतु ही होता है।

अश्वघोष ने इस तथ्य को अपने 'बुद्धचरित' में बुद्ध भगवान के शब्दो में इस प्रकार कहलाया है। इस संसार के दु ख-क्लेश आदि को देखने के पश्चात् बुद्ध भगवान् ने निश्चय किया 'जरा मरण का विनाश करने की इच्छा से वन में रहने का अपना निश्चय याद रखते हुए उसने नगर मे प्रवेश किया। बुद्ध भगवान् ने अपने पिता राजा से कहा 'मोक्ष के हेतु मैं पारिव्राजक होना चाहता हूँ।' कण्ठक को सदेश देते हुये कहा 'जन्म और मृत्यु का क्षय करके या तो वह शीघ्र ही आवेगा या प्रयत्नहीन और असफल होकर मृत्यु को प्राप्त होगा।[2]" जन्म होने पर उसने घोषणा की कि जगत के हित के लिये ज्ञानअर्जन करने के लिये मैं जन्मा हूँ, ससार मे मेरी यह अन्तिम उत्पत्ति है।[3] ब्राह्मणो ने उनके विषय मे कहा—वह दु ख मे डूबे जगत् का उद्धार करेगा।[4]

---

१ काव्य में लोक मगल की साधनावस्था, चिन्तामणि पृ० २१२–२१७ रामचन्द्र शुक्ल

२. बुद्धचरित—सर्ग ५–२३, २८ सर्ग ६–५२

३. वही सर्ग १–१५

४. वही सर्ग १–३३

कुमारसम्भव में देवो ने ब्रह्मा जी से तारकासुर के विनाशक तथा अमंगल कर्मों का उल्लेख सर्ग २ मे ३१ से ५१ तक श्लोको में किया है और अन्त मे प्रार्थना की है कि "हेप्रभो जसे मुमुक्षु जन संसार के नाश होने के लिये निवृत्ति धर्म की इच्छा करते हैं, उसी तरह विपत्ति मे पडे हुए हम सब भी तारकासुर के नाश के लिये देवसेना का अभिनायक उत्पन्न करना चाहते हैं[१] ।" यह सुनकर ब्रह्मा जी ने देवों से योग्य सेनापति के लिये शंकर के पुत्र की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने के लिये कहा है[२] ।

रघुवश मे—देववर्ग रावण से पीड़ित होने पर, विष्णु भगवान के पास गया[३] । उनकी स्तुति तथा कष्ट निवेदन करने के पश्चात् विष्णु ने कहा "मैं दशरथ का पुत्र होकर उस रावण के मस्तकरूप कमलसमूह को तीक्ष्ण बाणो से युद्धभूमि के बलियोग्य करूंगा[४] । अन्य काव्यो किरात, शिशुपालवध, हरविजय, श्रीकंठचरित, रावणार्जुनीय धर्मशर्माभ्युदय, रामचरित आदि मे लोकपीडा निवारणार्थ ही उपर्युक्त काव्या के नायको का अवतार हुआ है ।

ऐतिहासिक शैली के काव्य मे भी इसी रीति को अपनाया गया है। विक्रमांकदेवचरित मे इन्द्र ब्रह्मा जी के पास जाकर निवेदन करता है कि हे नाथ ब्रह्मा जी के गुप्तचर ने पृथ्वी पर होनेवाले ऐसे उपद्रवो की मुझे सूचना दी है कि जिनसे देवताओ का यज्ञो मे मिलने वाले भागो का उपभोग केवल स्मरण करने का ही विषय हो जायगा, ऐसा मैं अनुमान करता हू ।[५] इसके पश्चात् ब्रह्मा जी के चुल्लू मे से एक वीर पुरुष उत्पन्न हुआ और उस वीर ने ब्रह्मा की आज्ञा से दैत्यो के नाश करने का बीड़ा उठाया[६] । इस प्रकार कवियो ने प्रथम अमगल और अधर्म की भयानक छाया और अत्याचार तथा क्लेश की करालता दिखाने के पश्चात् सर्वशक्तिमान के रोषजन्य हाहाकार और ध्वस को दिखाते हुए धर्म और मंगल का सौन्दर्य भी चित्रित किया है ।

---

१. कुमारसंभव—सर्ग २—५१ चौ० प्रकाशन
२. वही सर्ग २,६१
३. रघुवश—सर्ग १०।५
४. वही सर्ग १०।४४
५ विक्रमांकदेवचरित—सर्ग १।४४,४५
६. वही सर्ग १।५५,४६

फलत अधर्म पर धर्म की, अन्याय पर न्याय की और अमंगल पर मंगल की असत्य पर सत्य की विजय सदा होती है। इस आदर्श सिद्धान्त का चित्रण करने के हेतु ही संस्कृत के अधिकाश विदग्ध महाकाव्य बढती श्रृगारिक प्रवृत्ति मे भी (कालिदास से श्रीहर्ष तक) वीररसप्रधान है।

युग चेतना

संस्कृत के विदग्ध महाकाव्यो मे युग चेतना, राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक (सास्कृतिक) स्थिति की सच्ची ध्वनि मिलती है। वीरयुग की कल्पना मे परिवर्तन हुआ। वीरयुग मे वैयक्तिक गुणो का ही महत्व था। राम, सीता, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, आदि पात्र वैयक्तिक गुणो को ही अभिव्यक्त करते है। वाल्मीकि ने दुर्लभ गुणो से युक्त, राम को बनलाया है।[२] कालिदास ने रघुवश मे, वाल्मीकि के दशरथ राम सीता, लक्ष्मण आदि पात्रो की वैयक्तिकता को आदर्शरूप मे चित्रित कर अपने युग की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति उनके द्वारा ध्वनित करने का मार्ग अपनाया। इसीप्रकार भारवि, माघ, शिवस्वामिन्, श्रीहर्ष आदि ने अपने महाकाव्य के इतिवृत्त यद्यपि महाभारत, पुराण से लिये हैं, फिर भी उनके द्वारा तत्कालीन राजनैतिक धार्मिक और सामाजिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है।

सभी विदग्ध महाकाव्यो की रचना सामन्त युग मे हुई है। इन काव्यो की रचना विकसनशील आर्ष काव्यो की तरह मौलिक परम्परा मे न होकर, विशिष्ट कवियो द्वारा विशिष्ट वातावरण मे (नागरिक समाज के बीच, दरबारी वातावरण म या धार्मिक सम्प्रदायो मे) सोद्देश हुई है। ये सभी काव्य प्रयत्नसाध्य अलकृत हैं। इनमे विभिन्न शास्त्रो का आश्रय लेकर बहुश्रुतता व्यक्त की है। इसलिये ये काव्य हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क को ही अधिक सन्तुष्ट करते हैं[१]।

---

२ बालकाण्ड (रामायण) सर्ग १—६-७

१ While in the old epic poetry form is subordinated to matter It is of primary inportance in the kavyas the matter becoming more and more merely a means for the display of tricks of style The later the author of a kavya the more he seeks to win admiration of his audience by the cleverness of his conceits and the ingenuity of his diction, appealing always to the head rather than The heart.

Page 325 A A. Macdonell–London 1913

इन सभी विदग्ध महाकाव्यो पर सामन्तीयुग का प्रभाव है जो प्रधान देव के पास देवो के प्रार्थना करने के लिये पहुँचने पर उनके वार्तालाप तथा वहाँ के वातावरण से स्पष्ट ज्ञात होता है। यह सामन्तयुगीन व्यावहारिक सभ्यता का प्रभाव कालिदासादि के प्रारम्भिक काव्यो को छोडकर उत्तर-कालीन काव्यो मे अधिक स्पष्ट है राजदरबार मे प्रथम तो प्रजाजनो का प्रवेश ही दुष्कर होता है, येन केन प्रकारेण प्रवेश होने पर, वहा के सेवको द्वारा तिरस्कृत होना पडता है, राजा की दृष्टि पडने पर या उसे सेवक द्वारा प्रजाजनो के आगमन की सूचना मिलने पर कुशल प्रश्न पूछा जाता है, आदि बातो का व्योरेवार चित्रण रत्नाकर के हरविजय तथा मखक के श्रीकठ-चरित मे देखने को मिलता है[1]। इसके अतिरिक्त प्रधान देवो के प्रार्थियो को पूछे जानेवाले प्रश्न भी भावो मे एक से ही रहते है। कुमारसभव मे ब्रह्मा जी को देवो के द्वारा प्रार्थना की जाने पर ब्रह्मा जी ने सभी देवो का स्वागत किया और उन्हे प्रश्न किया "किन्तु कुहरा के गिरने से नक्षत्र जैसे मन्दकान्ति हो जाते हैं, ऐसे ही आप लोगो के मुख पहिले के ऐसी स्वाभाविक कान्ति को नही धारण करते है, इसका क्या कारण है? किरणो के नष्ट हो जाने से पूर्ववत् रत्नो की कान्ति जिसकी नही झलकती है, ऐसा दिखाई पडने वाला इन्द्र का वज्र हतश्री क्यो मालूम होता है? और श्री वरुणदेव के हाथ मे शत्रुओ का नाश करने वाला यह पाश शत्रु गरुड से पराजित सर्प के समान दीन मालूम होता है।"[2]

मंखक के श्रीकठचरित मे भी देवो की प्रार्थना के पश्चात् शकर देवो से प्रश्न करते हैं "देवो के मुखो की मलिन कान्ति से उनके कष्टो का ज्ञान होता है। प्रतिदिन अस्ताचल पर रहनेवाली सूर्य किरणो की कान्ति की तरह जो वरुण दु:सह तेज धारण करता था वही वरुण बाष्पयुक्त आँखो वाला हो गया है। उसकी शक्ति बाष्पयुक्त नेत्रो मे ही रह गई है।[3] इस

१ श्रीकठचरित--सर्ग १७ श्लोक १४,१५,१७

"घनसौरभानुगतभृगसंहतीरूपदीकृता विविधपुष्पमञ्जरी
दधत करे क्षितिनिविष्टजानवो विनिवेदिता सविनयेन नन्दिना
प्रणिपत्य चैनमथ काञ्चनावनिस्खलितोपलन्मधुपभुक्त शेखरा
अविदूरदेश निहितानि भेजिरे तदनुज्ञया मणिशिलासनानि ते।
हरविजय—सर्ग ६ श्लोक २,३

२ कुमारसभव सर्ग २।१९,२०,२१

३ श्रीकंठचरित—सर्ग १७।३५,४३

प्रकार प्रत्येक देव की शक्ति का परिचय देते हुए, वर्तमान म्लान कान्ति के विषय में आश्चर्य प्रकट किया गया है।

ईशस्तुति का स्वरूप

संस्कृत के कुछ विदग्ध महाकाव्यों में ईशस्तुति का स्वरूप एक सा होते हुए भी पूर्व की अपेक्षा उत्तरवर्ती काव्यों में अधिक कलात्मक होता गया। यहां कुछ महाकाव्य कहने का तात्पर्य यह है कि जिन महाकाव्यों का विषय कथावस्तु, रामायण, महाभारत, धार्मिक चरित से गृहीत है। जैसे कुमारसंभव, रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, जानकीहरण हरविजय, कप्फिणाभ्युदय, श्रीकंठचरित, रावणार्जुनीय, नेमिनिर्वाण और धर्मशर्माभ्युदय आदि। इन ईशस्तुति की भी कुछ विशेषताएँ हैं। (१ जिस देव की स्तुति की गई उसी की प्रधानता स्वीकार कर, अन्यों) को (देवों को) गौण बतलाया गया है। जैसे कुमारसंभव में भगवान ब्रह्मदेव की स्तुति की गई है। इसमें इन्हीं की प्रधानता है—"हे भगवान! सृष्टि के पहिले एक रूप धारण करने वाले, अनन्तर सृष्टि की प्रवृत्तिकाल में क्रम से सत्व, रज, तम गुणों को अधिष्ठित कर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिमूर्ति रूप उपाधि को धारण करनेवाले आपको अनेक प्रणाम, हे प्रजापते! आप अग्निष्वात्तादि पितरों के भी पिता हैं, इन्द्रादि देवों के भी देव हैं, मायाशबल पर पुरुष से भी परे हैं, और जगत् की सृष्टि करने वाले मरीच्यादि प्रजापतियों के भी सृष्टिकर्त्ता हैं।"[1] रघुवंश में विष्णु की स्तुति की गई है, इसमें विष्णु को प्रधान स्वीकार किया गया है—"पहले संसार की सृष्टि करनेवाले, उसके बाद संसार का पालन करते हुए फिर संसार का संहार करने वाले इस प्रकार तीन प्रकारों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश अपने को विभक्त करने वाले तुमको नमस्कार है। सांख्यमीमांसा, द्वैत वेदान्तादि शास्त्रों से अनेक प्रकार से भिन्न भी सिद्धि के कारणभूत राज मार्ग (उपाय) समुद्र में गंगा के प्रवाहों के समान तुममें ही प्रवेश करते हैं"।[2] शिशुपालवध में नारद श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं।

योगियों के भी साक्षात्करणीय आप ही हैं, अतएव इससे बड़ा कौन कार्य है? बढ़ा हुआ अनुराग ही जिसमें बाधक है तथा लोगों से अनभ्यस्त होने से अत्यन्त दुर्गम मोक्ष मार्ग को पाये हुए मनस्वी के पुनरावृत्ति रहित आप ही प्राप्तव्य स्थान हैं।[3]

---

१ कुमारसम्भव—सर्ग २।४, १४

२ रघुवंश सर्ग १०।१६,२७

३. शिशुपालवध—सर्ग १।३१,३२,३३

धर्मशर्माभ्युदय में इन्द्र श्रीजिनेन्द्र की इस प्रकार स्तुति करने लगे। "हे वरद् निर्मल ज्ञान के धारक मुनि भी आपकी स्तुति नही कर सकते हैं यही कारण है कि हम लोगो की वाणी अनल्प आनन्दसमूह के बहाने कुठित-सी होकर कठरूप कन्दरा के भीतर ही मानो ठिठक जाती है।" हे! जिन यदि आपके वचनों का आस्वादन कर लिया तो अमृत व्यर्थ है, यदि आपसे प्रार्थना कर ली तो कल्पवृक्ष की क्या आवश्यकता ? यदि आपका ज्ञान ससार को अन्धकार हीन करता है। तो सूर्य और चन्द्रमा से क्या लाभ है[1] ?

हरविजय साख्याचार्य चूलिक, के अनुसार हे शकर—आप ही प्रकृति से पृथक् हैं, अविकृत हैं, वस्तुगत धर्मों को आपने प्रतिषिद्ध कर दिया है, आप ही साख्योक्त २५ वे तत्त्व पुरुष हैं, वस्तुगत धर्म आप नित्य होने से प्रतिषिद्ध हो जाते हैं। अर्थात् अनित्य पदार्थों की उत्पत्ति होती है, फिर वे अस्तित्व मे आते है, उनमे परिवर्तन होता है, वृद्धि होती है, क्षय होता है और नाश होता है। ये छ धर्म नश्वर प्रति पदार्थ मे होते हैं। आप नित्य होने से आपमे नही हो सकते[2]।"

श्री कठचरित मे साख्य, न्याय, बौद्ध, चार्वाक, जैन, अद्वैत आदि दर्शनो के द्वारा श्री शकर को प्रधान माना गया है[3]।

प्रतीक मार्ग की स्थापना

व्यास, वाल्मीकि, होमर आदि कवियो ने अपने विकसनशील काव्यो मे विशिष्ट पात्रो के विशिष्ट व्यवहार या अनुभव से सार्वत्रिक और सर्वसामान्य मानवी जीवन दर्शन व्यक्त किया है। व्यास जी ने द्रौपदी और भीम द्वारा तेजस्विता और धर्म के द्वारा क्षमा आदि तत्वो का जीवन मे क्या महत्व है, बतलाया है, वाल्मीकि ने राम के चरित्र से मानवी जीवन की सारस्वरूपा कर्तव्य परायणता और सीता के द्वारा तितिक्षावृत्ति सूचित की है। इस प्रतीक मार्ग का विकास विदग्ध महाकवियो ने अपने कालानुरूप किया। कुमारसंभव मे पार्वती परमेश्वर की एकता, तपस्या का प्रतीक है। किरातार्जुनीय मे अर्जुन प्रवृत्तिमार्ग और क्षात्र तेज का प्रतीक है। शिशुपालवध मे शिशुपाल आसुरीवृत्ति का तथा कृष्ण के द्वारा १०० अपराधों का क्षमा करना तथा क्षमा का जीवन मे महत्व घोषित किया है अश्वघोष के दोनो काव्यो मे (बुद्धचरित और सौन्दरानन्द मे) बुद्ध जी का राजप्रासाद त्यागकर तपस्या के लिये जाना

१ धर्मशर्माभ्युदय—सर्ग ८।४५,५५

२ हरविजय सर्ग ६।

३ श्रीकठचरित-सर्ग १७-२०, २३, २४, २६, २७, २८

और आत्मज्ञान प्राप्त करना। नन्द का बाद मे बौद्ध धर्म स्वीकार करना आदि आत्मा की उस अवस्था का प्रतीक है जो सांसारिक माया मे सुप्त रहती है और किसी महत्वपूर्ण घटना के फलस्वरूप जागृत होकर अपने स्वरूप को पहचानती है। इसी प्रकार शिवस्वामिन के कप्फिणाभ्युदय मे भी कवि ने उपयुक्त तथ्य को, (युद्ध के पश्चात बुद्ध जी के उपदेशामृत का पानकर आत्मज्ञान होने के फलस्वरूप बुद्धभिक्षु होने के लिये तैयार होना) एक प्रतीकात्मक शैली के द्वारा व्यक्त किया है। जैन कवियो ने सांसारिक उपभोगो को पृष्ठभूमि मे रखकर, नायक का संसार से विरक्त होना, अपने अनेक जन्मो की कथाओ के द्वारा, उपभोगो की नश्वरता प्रतीकात्मक शैली म व्यक्त की है।

अलौकिक तत्व

संस्कृत के विदग्ध महाकाव्यो मे यह तत्व परंपरागत है। इस तत्व की पुष्कलता ने आर्ष काव्यो (रामायण-महाभारत) मे प्रभविष्णुता की वृद्धि करने मे योग दिया है। इस तत्व के प्रयोग के निम्न कारण है।

वैदिक आर्यों के विश्वास के अनुसार मानव जगत देवताओ का उद्भव प्राकृतिक शक्तियो मे चेतना का आरोप करने से हुआ है। वे उत्तरकालीन ब्रह्म की भांति अतीन्द्रिय और अशरीरी नही है। उत्तरकालीन इन्द्र, वरुण आदि देवताओ के महत्व मे अन्तर पड़ने पर भी यह विश्वास बना रहा कि मनुष्यो के अतिरिक्त कुछ चेतना शक्तियाँ हैं जो मनुष्य पर क्रोध व अनुग्रह के फलस्वरूप उसे दुःख-सुख दे सकती हैं। इसी विश्वास ने भारतीय साहित्य को भी प्रभूत मात्रा मे प्रभावित किया है। फलतः प्राचीन व संस्कृत के विदग्ध महाकाव्यो मे अलौकिक और अतिप्राकृतिक तत्व पाये जाते हैं। आगे जाकर तो इन तत्वो के प्रदर्शन से धर्म मे रत करने के लिये सहायता मिलने लगी।[1] जैसा कि पूर्व कहा है, भारतीय आचार्यों ने इस तत्व के विषय में कम विचार किया है। आचार्य विश्वनाथ ने तो केवल इतना ही कहा है कि महाकाव्य में देवता नायक हो सकते हैं। और उसमे मुनि और स्वर्ग का भी वर्णन होना चाहिये। प्रथम देवता तो अलौकिक होते ही हैं, मुनि भी अलौकिक शक्ति-संपन्न होते हैं, स्वर्ग की कल्पना भी अलौकिक ही है। आचार्य रुद्रट और आनन्दवर्धन के मतो का पीछे उल्लेख किया जा चुका है।

---

१ "अथ भाजनीकृतमवेक्ष्य मनुजपतिमृद्धिसंपदा।
पर जनमपि च तत्प्रवण निजगाद धर्मविनय विनायक" ॥
सौन्दरानन्द ३।२६

संस्कृत के विदग्ध महाकाव्यो के कथानक प्राचीन आर्षकाव्यों रामायण-महाभारत, पुराणो धार्मिकग्रन्थो और इतिहास से ही लिये गये हैं। फलत: इन विदग्ध महाकाव्यो के नायक भी वे ही प्राचीन और अतिप्राकृतिक तत्वो से समन्वित हैं। इन काव्यो में नायक के चरित्र को ऊचा उठाने के लिये इन तत्वो की नियोजना पुष्पवृष्टि, आकाशवाणी, देवगणो का मर्त्यलोक मे उनकी सहायता के लिये उतरना, की गई है।

इन तत्वो की नियोजना से महाकाव्यो में असम्भाव्यता या असत्यता नही आनी चाहिये। आर्षकाव्यो में युगानुरूप पारलौकिक तत्व मिलते हैं किन्तु आज का वैज्ञानिक युग उस पर विश्वास नही करता।

उपर्युक्त विवेचन हमे इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि विदग्ध महाकाव्य मे आर्ष काव्य के स्थूल प्रसगो की अपेक्षा जिस प्रकार उसके सूक्ष्म तत्व को अधिक महत्व दिया गया उसी प्रकार कथा की अपेक्षा कथन कौशल चातुर्य की प्रतिष्टा बढी। अब वस्तु की अपेक्षा उसकी ऊपरी सजावट की ओर ध्यान दिया जावेगा। या यो कहिये कि सजावट की अपेक्षा सजावट करने की कला का प्राधान्य हुआ, उसके उपकरणो की माग बढी। परिष्कृत भाषा, यत्नसाध्य शब्दार्थालकार, आयासप्रयुक्त विविध वृत्तो नाट्यात्मक वस्तु सगठन विविध रसों भावो की योजना ध्वनि वक्रोक्ति, मुक्त स्वरूप, प्रकृति वर्णन, वातावरण, निर्मिति और अर्थान्तरन्यास सदृश सुभाषित रत्नादि उपकरणो से निर्मित रमणीय महाकाव्यो का निर्माण होने लगा। उत्तरकालीन महाकाव्यो मे तो पाडित्य प्रदर्शन ही एक मात्र लक्ष्य बन गया। पात्रो के संवादो मे, उपमा, उत्प्रेक्षादि अलकारो के द्वारा विविध शास्त्रज्ञान की अभिव्यक्ति होने लगी। "आर्ष काव्य और विदग्ध महाकाव्यो में एक विशेष अन्तर अनुभव होने लगा जैसे गणराज्य से साम्राज्य में स्थूल से सूक्ष्म में, अपरिष्कृत से परिष्कृत मे, युद्ध से शान्ति में, व्यक्ति से समाज मे और एक सस्कृति अन्य उच्चतर सस्कृत मे पदार्पण करते समय होता है।"[1]

उपर्युक्त दोनो काव्यो की भिन्नता का कारण है प्रसंगो, घटनाओ में कवियो का सान्निध्य।

प्रसंगों की पुनर्निर्मिति

वीर काव्य के कवि स्वकालीन घटनाओ और प्रसंगों के निकट थे। हमारे यहां के तो व्यास, वाल्मीकि अतीतकालीन घटनाओ प्रसगो मे ही व्याप्त थे।

---

१. "सस्कृत काव्याचे पचप्राण डा० के० ना० वाटवे पृ० ४५-४६

भारतीय परंपरा के अनुसार तो व्यास और वाल्मीकि महाभारत और राम के समय थे। दोनों ने वर्णित घटनाओ को स्वयं देखा था और जैसा देखा, प्रत्यक्ष रूप से काव्य में वर्णित किया। किन्तु विदग्ध कवियो को यह अवसर प्राप्त नहीं था उन्हे तो अतीतकालीन घटनाओ, प्रसंगो को दूर से ही देखना और मानस चक्षुओं के सम्मुख कल्पना के बल से खींचना पडा। इसलिये इन विदग्ध कवियो को आर्ष कवियो की अपेक्षा उन-उन प्रसगो, घटनाओ का स्वरूप उनका हेतु और उनका अर्थ समझने का पर्याप्त अवसर था। परिणामतः विदग्ध कवियो के हृदयतल में मानसदृष्ट्या कल्पित प्रसगो के विविध रूप, प्रकार, व नव रंग उद्भूत हुए। इसीलिये आर्ष कवियो के मानस दृश्य सरल, स्वाभाविक, सहजस्फूर्त एवं बिना आयास के और प्रसग प्रेरित होते है। व्याध के बाण से विधे हुए क्रौंच के लिये आक्रोश करनेवाली क्रौंची का करुण स्वर सुनते ही वाल्मीकि के हृदय से उद्भुत करुणधारा लौकिक श्लोक के रूप मे ही प्रकट हुई।[1] इससे अधिक सहज स्फूर्तता का उदाहरण कहा मिल सकता है। उन्ही प्राचीन घटनाओं पर आश्रित कथानक को वर्णन करने वाले उत्तरकालीन कवियो को प्रयत्न से उन प्रसगो को कलात्मक रूप देकर उद्भावित करना पडा और इस प्रसग की पुनर्निर्मिति मे ही मानसदृष्ट्या कल्पित उस तरल प्रसंग पर, उसके व्यक्तित्व, उसकी भावना, विचार, पाण्डित्य, हेतु और उसकी कलात्मक योजना की छाप पडना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार विदग्ध कवियों ने एकरगी प्रसगो को विविध नव रगो से चित्रित किया।[2]।

---

१ 'क्रौंचद्वन्द्ववियोगोत्थ शोक श्लोकत्वमागत ॥ ध्वन्यालोक १।५

२ When the poet is himself a part of that which he describes as one fancies it was with Homer or the homeridace of at least inclosest sympathy with its essential elements not separated from it by any critical superiority how clear and bright the picture, whereas in such a work as Virgil consummate art as it is, one perceives that the field of the author's personal experience is altogether remote from the shadowy hand to which he guides us and that he is imagination to revive far off forgotten things merely to project a credible and pleasgnt fiction.

English Epic and Heroic poetry, Dixon, Page 14.

शास्त्रीय महाकाव्य

यहा शास्त्रीय महाकाव्यो से तात्पर्य उन महाकाव्यो से है, जो लक्षण ग्रन्थो के निर्दिष्ट नियमो की कसौटी पर ठीक-ठीक उतरते हैं, उन्हे शास्त्रीय महाकाव्य कहा जाता है। ये शास्त्रीय महाकाव्य भी तीन भागो मे विभक्त होते हैं —

१. रसप्रधान, २ लक्षण बद्ध, ३. शास्त्र काव्य या यमक काव्य या श्लेष काव्य।

रसप्रधान—किसी महाकाव्य की रसात्मकता उसकी कथा या इतिवृत्त मे निहित अधिकाधिक मर्मस्पर्शी स्थलो पर निर्भर होती है। उसकी गति इस ढंग से होनी चाहिये कि मार्ग मे जीवन की विभिन्न दशाएँ आती जायँ, जिनमे सहृदय के हृदय मे भिन्न-भिन्न भावो का स्फुरण होता चला जाय, और जिनका सामान्य अनुभव मनुष्य स्वभावतः कर सके,जैसा कि हमने इसके पूर्व, काव्य के प्रकार के अन्तर्गत कहा है, कि कुछ महाकाव्य व्यक्तिप्रधान और कुछ घटना प्रधान होते हैं। इन दोनो प्रकारो मे भी रससिद्ध महाकाव्य के कवि की दृष्टि इन्ही घटनाओ पर जाती है, जो रसपूर्ण होती है। महाकाव्य की यह रसात्मकता, कथा की आधिकारिक और प्रासगिक कथाओ के सम्बन्ध निर्वाह पर अवलम्बित रहती है। सम्पूर्णघटनाएँ महाकाव्य के कार्य की साधनस्वरूपा होती हैं। यहा यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इन रससिद्ध महाकाव्यो मे भावपूर्ण परिस्थिति का चित्रण करने के लिये घटनावली का 'विराम' रूप कुछ वर्णन दृश्य होते हैं। जिनसे सारे माकाव्य मे रसात्मकता आती है। इसके अतिरिक्त केवल पाडित्य प्रदर्शन के लिये, अपनी बहुज्ञता व्यक्त करने के लिये, कवि असबद्ध या अप्रासगिक वर्णन की नियोजना इन काव्यों मे नहीं करते। इस विभाग के अन्तर्गत अश्वघोष और कालिदास के काव्य आते हैं। इन दो कवियो के काव्यों मे आचार्यो द्वारा निर्दिष्ट लक्षणो, नियमों की पूर्ति नही मिलती है। वस्तुत. इनके पूर्व काव्यशास्त्र के ग्रन्थो का निर्माण ही नही हो पाया था। रामायण की शैली का अनुसरण करनेवाले अश्वघोष और कालिदास, जैसा कि हमने काव्य के प्रेरक तत्त्वों मे बताया है, उन प्रतिभाशाली कवियो मे आते हैं जो पडित कवियों से प्रकृति से भिन्न होने के कारण, दूसरो द्वारा मान्य-स्वीकृत सिद्धान्तो या धारणाओं के अनुकरण के लिये अपने काव्य मे अभिव्यग्य और अभिव्यञ्जना के सन्तुलन को खोना नही चाहते। वस्तुत इनके काव्य मे अम्लान प्रतिभालोक में पाडित्य या बहुज्ञता अधिक समरस हो जाने से, ऊपरी ढग से लिपी हुई नहीं है। इस प्रकार भामहोक्त काव्य सम्बन्धी परिभाषा इनके काव्यों पर पूर्णतः (ठीक-

ठीक) लागू होती है। यहा परिभाषा का पुन उल्लेख करना अप्रासंगिक होगा. केवल इतना ही पर्याप्त है कि इनके काव्यो मे अव्याज मनोहारिता, कथा प्रवाह, प्रासंगिक वर्णनो की नियोजना, भाषा की प्रासादिकता, महत्तर उद्देश्य और महान् चरित्रों का चित्रण है।

अश्वघोष यद्यपि,, बौद्धभिक्षु होने के साथ साथ दार्शनिक और महान पंडित भी थे किन्तु उनके दोनो काव्यों (बुद्धचरित और सौन्दरानन्द) मे कविरूप की ही प्रधानता रही है। यद्यपि बुद्धचरित ने सौन्दरानन्द की अपेक्षा धर्मप्रचारक, दार्शनिक रूप अधिक प्रखर भासित होता है। वस्तुत दोनों काव्यो का लक्ष्य एक ही है 'व्युपशान्तये' शान्ति प्रदान करने के लिते, न कि आनन्द देने के लिये न रतये।' अश्वघोष ने अन्यमनस्क श्रोताओं को आकृष्ट करने के लिये काव्य शैली का सहारा लिया है। मोक्ष धर्म को सरस बनाने के लिये अन्यान्य वर्णनों की नियोजना की है। जैसे कि, कटु-ओषधि को पीवे लायक बनाने के लिए उसमे मधु मिलाया जाता है। फिर भी बुद्धचरित का कवि विद्वतज्जनो की तुष्टि के लिये बौद्धिक प्रमाणो और शास्त्रो का सबल लेकर आगे बढता है, जबकि सौन्दरानन्द का कवि दार्शनिक गूढ तत्वों को लौकिक जीवन से गृहीत तत्वों के द्वारा मनोहर शैली मे प्रस्तुत करता है। किन्तु इतना तो निश्चित है कि, अश्वघोष आदि काव्य रामायण की शैली से अत्यधिक प्रभावित है। कवि कालिदास जैसी परिष्कृत और परिस्फुट शैली न होने पर भी, उनकी शैली में रामायण का अव्याज मनोहारि सौन्दर्य विद्यमान है। रामायण जैसे अनेक छन्दो का प्रयोग करते हुए भी अनुष्टुप्, छन्द पर ही अधिक बल दिया है। दोनो के वर्णन प्रसग भी औचित्यपूर्ण स्वाभाविक और सन्तुलित है। दोनो काव्यों मे कथाप्रवाह, दार्शनिक स्थलों के अरितिक्त, अक्षुण्ण दिखाई देता है। दोनो काव्यों मे अलकृति, रामायण की अलंकृति से भिन्न नही हैं। अप्रासगिक वर्णनो का मोह न होने से अश्वघोष का काव्य अभिव्यंग्य और अभिव्यञ्जना मे सन्तुलन स्थिर रख सका है। अश्वघोष के स्थान पर यदि कालिदासोत्तर कालीन अन्य कोई कवि होता तो कुछ प्रसगो के विस्तार का (शृंगार वर्णन विरह वर्णन) मोह छोड़ नही सकता। अश्वघोष के पश्चात् सस्कृत मे काव्य के सरस माध्यम से शास्त्रो का प्रतिपादन करने वाले अन्य कवि भीं हुए हैं। भट्टि–रावणार्जुनीय का भौमक–किन्तु उनमे वह सरसता और प्रवाह नहीं दिखाई देता, जो अश्वघोष के काव्यो मे उपलब्ध है। उन काव्यो मे सरसता लाने का प्रयत्न होने पर भी वहां व्याकरण के नियमो के प्रदर्शन की रुचि, विभिन्न अलकारो, छन्दो का प्रदर्शन और

भाषा के श्लेषजन्य काठिन्य से सहृदय की मति कुण्ठित हो जाती है। जैसा कि पूर्व कहा गया है अश्वघोष ने जीवन के मोहक पक्षों की अनित्यता स्पष्ट करने के लिये पृष्ठभूमि के रूप मे शृंगार का निबन्धन किया है। शान्त रसप्रधान दोनो काव्य होने पर भी वीर और करुण रस की नियोजना भी सुन्दर हुई है। उल्लेखनीय यह है कि अश्वघोष ने शान्त रस की पुष्टि के लिये शृङ्गार रस को दबाना ठीक नही समझा है। फिर भी अश्वघोष अपनी कृति का लक्ष्य 'व्युपशान्तये न रतये,' भूले नही हैं। इसके विपरीत कालिदास मे दोनो पक्षो (राग और विराग, आकर्षण और विकर्षण, मोह और, त्याग) का सन्तुलन समुचित रूप मे विद्यमान है। यह सन्तुलन, यह विरोधी पक्षो का समुचित समन्वय अन्यत्र उत्तरकालीन कवियो मे दुर्लभ है। शरीर और आत्मा, अभिव्यग्य और अभिव्यजना, रस और अलकार आदि के मधुरसमन्वय के कारण सस्कृत महाकाव्य की परम्परा मे कवि कालिदास अद्वितीय है। कवि की भावुकता इसमे होती है कि वह प्रत्येक मानवस्थिति मे अपने को डालकर उसके अनुरूप भाव का अनुभव करे। मानवप्रकृति के जितने अधिक रूपो के साथ कालिदास के हृदय का रागात्मक सामजस्य हम देखते है उतना अधिक सस्कृत महाकाव्य के और किसी कवि के हृदय का नही। जीवन के विविध रूपो का उद्घाटन करने का सफल प्रयत्न कालिदास ने किया है। आर्ष काव्यो के विपरीत कालिदास के महाकाव्यो मे अन्विति, अवान्तर कथाओ की कमी, घटनाप्रवाह और नाटकीय विकास-क्रम दिखाई देता है। विशेषत रघुवश मे प्रदीर्घ कालफलक पर दिलीप से अग्निवर्ण तक के जीवन की प्रमुख भावपूर्ण घटनाओ के चित्रो के अंकन मे सहजप्रवाह और अन्विति दिखाई देती है। ये भावपूर्ण चित्र एक के पश्चात् एक आते चले जाते हैं और सहृदय पाठक उनमे आनन्द ग्रहण करता है। रघुवश की कथावस्तु का प्रवाह अक्षुण्ण रूप से आगे बढ़ता जाता है, मार्ग मे अनेक सरस स्थल मिलते है जो कथावस्तु को गति देते हैं। संक्षेप में वर्ण्य विषय, चरित्रचित्रण, भावपूर्ण घटनाए तथा दार्शनिकसकेत, सब मिलकर, एकसूत्रता स्थिर रखने मे अधिक सहायक होते हैं। कालिदास ने अपने महाकाव्यो मे, जिस आदर्श पौराणिक कथानको को अपनाया है, जिन आदर्श चरित्रो की अवतारणा की है और जिस उदात्त शैली की उद्भावना की है, वह अभूतपूर्व होने के साथ सस्कृत महाकाव्य की परम्परा में अद्वितीय है।

ऐसे प्रतिभाशाली कवि (जैसा कि पूर्व कहा है) रूढि मार्ग का अनुसरण नही करते। वे प्रकृति से ही निरकुश होते हैं। अत. एक नवीन अभूतपूर्व रूढि का, मार्ग का वे निर्माण करते हैं, जिसे आचार्यों को अपने ग्रन्थों मे एक नियम

के रूप में स्वीकार करना पड़ता है। रघुवंश में रघुवंश के इतिहास को काव्य का विषय बना दिया है। परिणामत आचार्य विश्वनाथ को यह नियम बनाना पड़ा कि महाकाव्य के नायक एक वंश के अनेक राजा भी हो सकते हैं।

इस प्रकार अश्वघोष और कालिदास के महाकाव्य रसप्रधान लक्षणमुक्त महाकाव्य हैं। संभवत उनके समय तक किसी लक्षण ग्रन्थ का निर्माण नहीं हो पाया हो (क्योंकि आज उपलब्ध नही है) किन्तु, जैसा कि पूर्व कहा है, काव्य सम्बन्धी रूढ़ियो का निर्माण विशेषत प्राकृत के अलकृत महाकाव्यों का निर्माण हो चुकने से, हो चुका था। यह तो सर्वथा स्पष्ट है कि इन दोनो महाकाव्यो ने रूढ़ियो के पालन के लिये या लक्षणो की पूर्ति के लिये अपने महाकाव्यो की रचना नही की, बल्कि महाकाव्यो की रचना कर कुछ नवीन रूढ़ियो को जन्म देकर चिरायु अवश्य बना दिया। वस्तुत इन कवियों का लक्ष्य प्रतिपाद्य विषय की ओर अधिक रहा है। अभिव्यजना या लक्षणनिर्वाह की ओर नही। इसलिये इन्हे लक्षणमुक्त या रससिद्ध महाकवि कहा जा सकता है।

लक्षणमुक्त परम्परा का निर्वाह सातवी शती के कुमारदासकृत 'जानकीहरण' और नवी शती के गौड कवि अभिनन्द कृत रामचरित मे परिलक्षित होता है। यद्यपि ये दोनो कवि अलकृत युग मे अर्थात् भारवि के पश्चात् हैं फिर भी इन्होने अलकृत मार्ग, भारवि कवि निर्मित को न अपना कर वाल्मीकि और कालिदास जैसे कवि के द्वारा परिचालित मार्ग का अनुसरण किया है। जानकीहरण पर तो कालिदास का इतना प्रभाव है कि जनश्रुति के अनुसार कालिदास कुमारदास के मित्र समझे गये हैं। रामचरित पर वाल्मीकि रामायण का प्रभाव है। दोनो महाकाव्य सरसता और स्वाभाविकता से परिपूर्ण हैं।

लक्षणप्रधान महाकाव्य

रस प्रधान महाकाव्यो मे हमने कालिदास की शैली की विशेषता, को दिखाया है, कालिदास के पश्चात् उसकी रस परम्परा को उत्तरकालीन कवियो ने स्वीकार नही किया। उसके उत्तराधिकारियो ने काव्य के प्रथम पक्ष (अभिव्यग्य कथावस्तु का निर्वाह) की अपेक्षा द्वितीय पक्ष अभिव्यञ्जना या लक्षण) को ही महत्व दिया। अब महाकाव्य के लिये अपेक्षित जीवन का सर्वांगीण चित्र लुप्त हो गया। परिणामत. अभिव्यंग्य कथावस्तु की अवहेलना होने से कोरा महाकाव्य का ककाल उसकी रूपरेखा और उसे सजाने का कलापक्ष केवल पाडित्य ही दिखाई देने लगा। यह कोई आकस्मिक

परिवर्तन नही था। प्रथम तो कालिदास से भारवि तक हमे कोई संस्कृत का महाकाव्य नही मिलता। दोनो कवियो तक आने के लिये एक शृंखला स्वरूप वत्स भट्टि वाला मन्दसौर का शिलालेख ही बीच मे है। जैसा कि हमने इसके पूर्व कहा है, कि साहित्य पर युगचेतना का पर्याप्त प्रभाव रहता है और इस चेतना के फलस्वरूप साहित्य की शैली मे उसकी कलात्मक मान्यता मे, परिवर्तन दृग्गोचर होना है। गुप्त और वाकाटक साम्राज्यो की सर्वांगीण उन्नति ने साहित्यिक वातावरण मे आमूल परिवर्तन कर दिया। वाकाटक नृपतियो के राज्यकाल मे ही प्राकृत भाषा और उसके साहित्य का उत्कर्ष प्रारम्भ हो चुका था। फलत, अब संस्कृत भाषा और उसके साहित्य का लक्ष्य जनसाधारणवर्ग न रहकर विदग्ध समाज था। राजनीतिक दृष्टि से गुप्त साम्राज्य के पश्चात् भारतवर्ष टुकडो मे विभक्त हो गया था। कन्नौज के हर्षवर्धन और चालुक्य पुलकेशी ने साम्राज्य की स्थापना की थी किन्तु वे साम्राज्य चिरस्थायी न हो सके थे। सामन्तो तथा पण्डितो ने शास्त्रार्थों अर्थालंकारो, शब्दालंकारो, प्रहेलिकादिकाव्यो मे आनन्द लेना प्रारम्भ किया। इसी समय एक ओर दिङ्नाग तथा धर्मकीर्त्ति जैसे बौद्ध पण्डितो का और वात्स्यायन तथा उद्योतकर जैसे ब्राह्मण नैयायिको का उदय हुआ, तो दूसरी ओर, अलंकार और कथासाहित्य के आचार्य सुबन्धु, दंडी और बाण ने वासवदत्ता, दशकुमारचरित्र और कादम्बरी जैसे क्रमश उत्कृष्ट ग्रंथ लिखकर अलकृति को सीमा पर पहुचा दिया और इसका चरमोत्कर्ष श्री हर्ष के नैषध मे (१२ वी शती) मे दिखाई पडा। फलत अश्वघोष और कालिदास की सरलता, सरसता और अव्याज मनोहारिता के स्थान पर विदग्धता और आयास सिद्ध आलंकारिता ने स्थान ग्रहण किया। अब राजाओ और सामन्तो के दरबारो को ऐसे ही विदग्ध विद्वान सुशोभित करते थे। इस प्रकार इस युग के साहित्यिक तथा पाण्डित्य-मय वातावरण और सहृदय की विदग्धता ने कवियो को एक नई प्रेरणा दी। फलत पूर्वागत रसमयी शैली के स्थान पर एक नवीन 'विचित्र मार्ग, चल पडा जिसमे विषय की अपेक्षा उसकी अभिव्यञ्जना, वर्णन प्रकार में सरसता के स्थान पर पांडित्य, वैदग्ध्य पर अधिक लक्ष्य रहा और काव्य की सजावट के लिये, जैसा कि पूर्व कहा है, वात्स्यायन के कामसूत्र तथा अन्य शास्त्रो का उपयोग होने लगा। इस प्रकार इस विचित्र मार्ग की दो विशेषताए हैं।

(१) विषय सम्बन्धी (२) भाषा सम्बन्धी

विषय सम्बन्धी विशेषता मे विषय का विस्तार सीमित, संकुचित हो गया। अब कालिदास जैसा विस्तृत कथानक अनावश्यक समझा जाने लगा।

वहा तो कालिदास के रघुवंश मे दिलीप से अग्निवर्ण तक का १९ सर्गों में कथा-विस्तार और वहा किरातार्जुनीय के १८ सर्गों मे केवल इन्द्र तथा शिव की प्रसन्नता के लिये अर्जुन की तपस्या और शिव को युद्ध से प्रसन्न कर अस्त्र प्राप्त करने की स्वल्प कथा। छोटे से कथानक को वर्णनो, पर्वत, नदी, सध्या, प्रात, ऋतु जलक्रीडा, सुरत आदि से सजाकर विस्तृत कर दिया है। तात्पर्य यह है कि भारवि के पूर्व काव्य का विषय या उसकी कथावस्तु विस्तृत रहती थी किन्तु भारवि से उत्तरोत्तर विषयवस्तु का सकोच होता गया और इस कमी की पूर्ति करते हुए प्रकृति वर्णन विभिन्न शास्त्रों मे पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना, वाग्वैदग्ध्य और कल्पना चातुर्य से काव्य को आक्रान्त सा कर दिया जाने लगा। 'विचित्र मार्ग' की दूसरी विशेषता भाषा तथा शैली सम्बन्धी है। आदि कवि वाल्मीकि, अश्वघोष और कालिदास की भाषा मे कुछ अन्तर होते हुए भी वह सीधी, सरल और प्रवाहपूर्ण है। उसमे प्रासादिकता सर्वत्र विद्यमान है। दूरारूढ कल्पना और आयास सिद्ध अलकारो (चित्रकाव्य गोमुत्र, कमल आदि का प्रदर्शन)—का सर्वत्र अभाव है। परिणामत इन काव्यो मे स्वाभाविकता से सौष्ठव और बढ गया है किन्तु भारवि ने विचित्र शैली को जन्म दिया जिसमे चित्रकाव्य का प्रदर्शन होने से वह, स्वाभाविकता के स्थान पर कृत्रिम और अलकृत हो गई।

जैसा कि ऊपर हमने देखा है कि 'किरातार्जुनीय मे महाकाव्य की विषयवस्तु और रूपशिल्प वर्णन शैली का सन्तुलन बिगडा और वह आगे उत्तरोत्तर बिगडता ही गया। माघ ने शिशुपालवध महाकाव्य मे भारवि का अनुकरण करते हुए उससे भी आगे जाने का प्रयास किया है। इस अलकृत शैली की उद्भावना और उसकी वृद्धि मे भारवि और माघ का नाम क्रमश सश्लिष्ट रहेगा। इस प्रयास के फलस्वरूप माघ के शिशुपालवध महाकाव्य में कथावस्तु सकुचित है और उसके कलेवर की वृद्धि अप्रासगिक और विस्तृत वर्णनो से की गई है। वस्तुत माघ का ध्यान इतिवृत्त की ओर है ही नही, फलत महाकाव्य मे अपेक्षित इतिवृत्तनिर्वाहकता का सर्वथा अभाव हो गया है। मूलकथा मे चतुर्थ सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक का अनपेक्षित विस्तृत वर्णन बलात् ठूस दिया गया है परिणामत मूलकथा प्रथम, द्वितीय और चतुर्दश से विंशति सर्ग तक मिलती है। जो यत्र तत्र अप्रासगिक और गौण वर्णनो से दब जाने से, हाँपती हुई आगे बढ़ती है।

इस प्रकार बाद के महाकवियो को असन्तुलित विषयवस्तु और वर्णन शैली ही प्राप्त हुई। इस असन्तुलन का उत्कृष्ट निदर्शन रत्नाकर के हरविजय में मिलता है। इस महाकाव्य मे ५० सर्ग हैं जिनमे कठिनाई से मूल कथा १५

सर्ग के आगे नही जाती। जलक्रीडा, सन्ध्या, चन्द्रोदय, समुद्रोल्लास, प्रसाधन, विरह, पानगोष्ठी आदि के वर्णन मे १५ सर्ग खर्च किये गये हैं और उनमे भी नीतिकथन, चण्डीस्तोत्र आदि के विस्तार से व्याप्त है। इसी आदर्श पर अन्य महाकाव्य मिलते है। धर्फिणाभ्युदय श्रीकण्ठचरित धर्मशर्माभ्युदय, नैषध आदि महाकाव्यो मे असतुलित और अप्रासगिक वर्णन की यह प्रवृत्ति मिलती है। वस्तुत बात यह है कि उपर्युक्त उत्तरकालीन महाकाव्यो के कवि महाकाव्य की कथावस्तु को मध्य मे ही छोडकर लक्षणग्रन्थोमे निर्दिष्ट वर्ण्यविषयो की ओर मुडजाते है फलत कवि लगातार चार पाच सर्गों तक चन्द्रोदय, वन विहार, जलक्रीडा, पानगोष्ठी, वसन्त, शरद् ऋतुओं का वर्णन करते चले जाते हैं। इन वर्णनो मे भी कुछ वर्णनो के क्रमकी रूढि हो गई है अर्थात् एक कार्य होने के पश्चात् दूसरा पूर्व निश्चित कार्य होना ही चाहिये जैसे कुसुमावचय वर्णन प्रारम्भ हुआ, इस कार्य मे सखिया, नायक, नायिकाएं श्रान्त क्लान्त हो जाती है, अत जलक्रीडा करना आवश्यक होने से जलक्रीडा वर्णन आरम्भ हो जाता है। जलक्रीड भी दीर्घकाल तक होती रहने से सूर्यास्त वर्णन कर कवि क्रमप्राप्त चन्द्रोदय वर्णन कर देता है, चन्द्रोदय वर्णन लक्षणग्रंथ की निर्दिष्ट रीति से अर्थात उद्दीपन रूप मे किया जाता है, इस चन्द्रोदय वर्णन मे समुद्रोल्लास वर्णन उद्दीपन रूप मे ही किया जाता है। वात्स्यायन कामसूत्र की निर्दिष्ट रीति के अनुसार प्रसाधनवर्णन, दूतीसंकल्पवर्णन विरहवर्णन, पानगोष्ठीवर्णन इसके पश्चात् क्रमप्राप्त सभोगवर्णन, किया जाता है। तात्पर्य यह है कि कवि लक्षण ग्रन्थो मे निर्दिष्ट रीति का अनुसरण कर उपर्युक्त वर्णनो की नियोजना करके ही अपनी मूल कथा का स्मरण करता है और फिर से बहुत पीछे छूटी हुई कथा को गति देने मे प्रयत्नशील होता है। इस दशा को हमने ऊपर शिशुपालवध मे देखा ही है। महाकाव्यो का यह रूप वैसे ही है जैसे शास्त्रीय सगीत मे सगीताचार्य दीर्घकाल तक स्वरालाप ही करता रहता है, और समाप्तिपूर्व कुछ क्षणो मे ही चीज राग गाकर समाप्त कर देता है। यहा भी अर्थ गौण हो गया और स्वरालाप ही प्रधान होता चला गया है। इसी क्रम को हम लक्षणबद्ध शास्त्रीय महाकाव्यो मे देखते हैं।

यहा भी कथावस्तु सकुचित होती गई है। अलकृत वस्तुव्यापारवर्णन, प्रधान होता गया है। किरातार्जुनीय' और शिशुपालवध' तक तो अर्थगांभीर्य भी बना हुआ है, यद्यपि वह यमक, श्लेष, और चित्रकाव्य के कठोर आवरण मे नारिकेल की गरी के समान स्थित है। किन्तु कठोरावरण मे स्थित अर्थगांभीर्य तो परवर्ती महाकाव्य में, नैषध को छोड़कर लुप्त हो गया है। न उनमें

अर्थगाम्भीर्य है न कथाप्रवाह है और न पांडित्यप्रदर्शन ही। केवल अलंकारों की चमक दमक से व्याप्त है। इन महाकाव्यो मे युगप्रवृत्ति के अनुसार अनेक शास्त्रो की योजना की गई है। व्याकरण, राजनीति, कामशास्त्र, नाट्यशास्त्र, दर्शन आदि का प्रखर पांडित्य ही सर्वत्र व्याप्त है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारवि से उत्तरवर्ती महाकाव्य लक्षणग्रन्थो मे निर्दिष्ट मार्ग के अनुयायी होने से, (रीतिबद्ध) लक्षणबद्ध और गतानुगतिक वर्णनो से (महाकाव्यो के) शरीर का निर्माण किया गया है।

शास्त्र, यमक तथा श्लेष काव्य

लक्षणबद्ध [रीतिबद्ध] काव्यो में अन्यान्य शास्त्रो की व्युत्पत्ति प्रदर्शन की भावना तथा शिक्षा देने के प्रयोजन की पूर्ति के हेतु ने किसी विशिष्ट शास्त्र मे अपना स्वतन्त्र रूप देखना चाहा और फलस्वरूप शास्त्रकाव्य और यमक तथा श्लेष काव्य का उद्भव हुआ। जैसा कि ऊपर कहा है कि शास्त्र सुनने मे कटु, बोलने मे कठिन, और समझने मे मुश्किल आदि अनेक दोषो से दुष्ट और अध्ययन के समय मे ही अत्यन्त दुःखदायी होता है।[1] अत इस दोष को आल्हादजनक काव्य के द्वारा दूर करते हुए व्याकरण शास्त्र के पद प्रयोगों की यथार्थ रूप से शिक्षा देने के लिये ही निर्मित काव्यो की सज्ञा शास्त्रकाव्य है। ऐसे काव्यो की सर्वप्रथम उपलब्धि छठी शती का रावणवध या भट्टि काव्य है। इसमे कवि ने रामकथा के वर्णन के साथ साथ व्याकरण और अलकार के प्रयोग भी प्रदर्शित किये है। कवि भट्टि ने इस काव्य के २२ सर्गो को चार काण्डो मे विभक्त किया है। यह काव्य अपनी सुबोध शैली के कारण अत्यन्त लोकप्रिय और सफल सिद्ध हुआ। परिणामत जावा और बाली तक मे इसका प्रचार हुआ और अनेक टीकाएं लिखी गई इसकी सफलता से प्रेरित होकर आगे अनेक काव्य लिखे गये। काश्मीर के भट्ट भीम ने कार्तवीर्य-अर्जुन और रावण के युद्ध की कथा के साथ साथ २७ सर्गों मे 'अष्टाध्यायी' के क्रम से पदो का निदर्शन करते हुए, रावणार्जुनीय महाकाव्य की रचना की। क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक मे शास्त्रकाव्य के उदाहरण मे भट्टिकाव्य के साथ इस काव्य का भी उल्लेख किया है।[2] इसी परम्परा को आगे बढाने मे अनेक काव्यो ने सहायता दी है। इनमे दो काव्य प्रसिद्ध हैं प्रथम है—हलायुध का कविरहस्य, यह संस्कृत धातुओ के नानार्थ तथा समानाक्षर होते हुए भी भिन्नार्थ का उत्कृष्ट काव्य निदर्शन है। दूसरा काव्य वासुदेव विरचित 'वासुदेव विजय'

---

१ वक्रोक्तिजीवितम्—कुन्तक १ उन्मेष कारिका ५

२ क्षेमेन्द्र—सुवृत्ततिलक ३।४

है। श्रीकृष्ण की स्तुति में पाणिनि के सूत्रों के दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए ३ सर्गों का यह एक अपूर्ण काव्य है। इसकी पूर्ति नारायण कवि ने तीन सर्गों में धातुकाव्य लिखकर की है।

इसी परंपरा का अन्य प्रसिद्ध महाकाव्य हेमचन्द्रकृत कुमारपालचरित है। यह ऐतिहासिक होने के साथ-साथ शास्त्रकाव्य भी है। इस काव्य में चालुक्य-वंश और कुमारपाल के जीवन वृत्त २८ सर्गों में वर्णन किया गया है। जिनमें प्रथम बीस सर्गों में तो हैमव्याकरण के नियमों के अनुसार संस्कृत व्यकारण के रूपों तथा अन्तिम आठ सर्गों में प्राकृतिक तथा अपभ्रंश भाषा के व्याकरण के रूपों का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार यह काव्य उभय भाषाओं के व्याकरण ज्ञान के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इन शास्त्रीय महाकाव्यों 'भट्टि और रावणार्जुनीय' और कुमार-पालचरित में शास्त्रीय महाकाव्यों की तरह या लक्षणबद्ध की तरह काव्य-रूढ़ियों, का भी पालन किया गया है। इन रूढ़ियों को हम आगे प्रदर्शित करेंगे।

विचित्र मार्ग के अन्तर्गत अलंकृत शैली के शास्त्रीय रूप के अतिरिक्त बहु-अर्थक काव्यरूप भी, अर्थात् यमक तथा श्लेषकाव्य हैं, जिनमें एक ही महाकाव्य में दो या दो से अधिक कथानकों को विविध अलंकारों के सहारे इस प्रकार ग्रथित कर दिया गया है कि जिससे एक से अधिक कथा वर्णित करने के पांडित्यप्रदर्शन के साथ साथ पाठक भी चमत्कृत हो उठे। यह कार्य कितना परिश्रमजन्य है जिसे कविराज के शब्दों में ही कहा जा सकता है।

एक श्लिष्ट पद भी कहने में अत्यधिक परिश्रम पड़ता है। तो फिर एक ही कथा में दो कथाओं की अभिव्यक्ति करने में कितना महान परिश्रम होगा[1] वस्तुतः चमत्कार और पांडित्यप्रदर्शन करना ही इन काव्यों का लक्ष्य है। जैसा कि हमने लक्षण ग्रन्थों के प्रभाव में देखा है कि संस्कृत आलंकारिकों ने यमक तथा श्लेष के अनेक भेदोपभेदों का वर्णन कर काव्य को चमत्कृत और सुसज्जित करने की प्रचुर सामग्री एकत्र कर दी थी। फलतः कवियों का ध्यान इसी दिमागी कसरत की ओर गया। दंडी ने यमक के अनेक प्रकारों का वर्णन काव्यादर्श में किया है और इसी युग के कवि भट्टि ने अपने काव्य में बीस श्लोक यमक के दिये हैं। रसदोष की परिभाषा के अनुसार इन अलंकारों का

---

१. 'पदमेकमपि श्लिष्टं वक्तुं भूयान्परिश्रमः।
कथाद्वयैक्यनिर्वोढुं किं धरापतितोऽधिकम्॥ राघवपाण्डवीयम्–१।३९

प्रयोग काव्य मे उचित नही है क्योंकि अत्यधिक यमक और श्लेष के प्रयोग से काव्य के मूलभूत रस के उन्मीलन मे व्याघात हो जाता है। एक ही महाकाव्य मे दो कथाओ को वर्णित करने वाले महाकाव्यो मे धनजय का 'पार्वती-रुक्मिणीय' हरिदत्त सूरि का 'राघवनैषधीय', कविराज सूरि का 'राघव-पाण्डवीय' आदि प्रमुख हैं। तीन अर्थवाले महाकाव्यो में चूडामणि दीक्षित का 'राघव-यादव-पाण्डवीय' और चिदम्बरसुमति का 'राघवपाण्ड-वयादवीय' है। उपर्युक्त सभी महाकाव्यो मे वस्तुत एक सच्चे महाकाव्य की विशेषताएँ तो नही मिलती। बहुअर्थक काव्य मे श्लेष का आश्रय गृहीत होने से काव्य का वह नैसर्गिक गुण तिरोहित हो जाता है।

बहु अर्थक काव्य शैली का विकट रूप हमे जैन काव्यो में देखने को मिलता है। जैसे मेघविजयगणि कृत 'सप्तसधान' महाकाव्य और सोमप्रभाचार्य कृत 'शतार्थ-काव्य' है। इनमे, प्रथम मे प्रत्येक श्लोक के सात अर्थ अर्थात वृषभनाथ, शान्तिनाथ पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, महावीर स्वामी, कृष्ण और बलदेव और दूसरे मे सौ अर्थ निकलते है। प्रत्येक श्लोक के सौ अर्थ निकलने के कारण सोम-प्रभाचार्य शतार्थिक नाम से भी प्रसिद्ध है। ह्रासोन्मुख सामन्तयुग के होने से ये भव्यपाण्डित्यप्रदर्शन तथा कालिदास का चरमोत्कर्ष द्योतित करते हैं। टीका के प्रारम्भ मे लेखक ने पाच श्लोक लिखे हैं जिनमे अभीष्ट सौ अर्थों की सूची दी है।[1]

मिश्र-शैली के महाकाव्य

सस्कृत साहित्य मे प्रधानतः शास्त्रीय शैली के ही महाकाव्य लिखे गये हैं, पर कुछ ऐसे भी महाकाव्य मिलते हैं, जिनमे एकाधिक शैलियो का सम्मिश्रण दिखाई देता है, जैसे किसी किसी महाकाव्य मे शास्त्रीय और ऐतिहासिक शैली का मिश्रण है, तो किसी मे शास्त्रीय और पौराणिक शैली का। वस्तुत हमारे यहां के आलकारिको ने इस प्रकार का कोई शैली—विभाजन नही किया है, फिर भी हमने काव्य की मिश्र शैलियो मे प्राप्त प्रधान शैली के आधार पर ही उस काव्य की शैली का निर्धारण करने का प्रयत्न किया है।

ऐतिहासिक शैली के काव्य

ऐतिहासिक काव्य में विषय के कुछ कहने के पूर्व इतिहास और काव्य का क्षेत्र एवं उनका दृष्टिकोण समझ लेना आवश्यक है। कवि और इतिहासकार मे भेद बतलाते हुए अरस्तू ने कहा है, कि कवि के कर्तव्य कर्म मे संभाव्यता

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, म. कृष्णामाचार्यर, पूना पृष्ठ १९२-१९३

के लिये अधिक अवकाश रहता है, इसके विपरीत इतिहास में इसके लिये कोई स्थान नही। इतिहास की घटनाओं में कोई अन्विति नही होती, वे परस्पर असबद्ध एवं परिणाम मे भी भिन्न भिन्न हो सकती हैं, किन्तु कवि अन्वितियुक्त परस्पर सम्बद्ध घटनाओ को ही ग्रहण करता है, जो परिणाम मे एक होती है। गद्य पद्य के माध्यम भेद से भी इतिहास और काव्य मे कोई अन्तर नही आता। हेरोदोतस की कृति का पद्यानुवाद करने पर भी वह इतिहास का ही एक भेद कहलायगा। वास्तविक भेद तो यह है कि इतिहासकार वर्णन करता है जो घटित हो चुका है। और वर्णन कवि करता है जो हो सकता है। परिणामत काव्य मे दर्शनतत्त्व अधिक होता है और उसका स्वरूप इतिहास की अपेक्षा भव्यतर होना है क्योंकि काव्य मे सामान्य (सार्वभौम) की अभिव्यक्ति होती है, जब कि इतिहास मे किसी विशेष की।[1]—

भारतीय दृष्टिकोण

आधुनिक (पाश्चात्य) इतिहास की कल्पना और प्राचीन भारतीय इतिहास की कल्पना मे अन्तर है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार इतिहास और पुराण मे कोई अन्तर नही माना जाता। दोनों को पंचम वेद बतलाया है।[2]

कौटिल्य ने इतिहास के अन्तर्गत पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र एव अर्थशास्त्र को भी माना है। परिणामत भारतीय इतिहासकार कई रूपो मे, उपदेशक, सुधारक गल्पकार व्यवस्थापक के रूप मे सामने आता है (कौटिल्य अर्थ १-५)।

हमारे यहाँ घटना वैचित्र्य का आग्रह नही होता। आदर्श दृष्टिकोण होने से जीवन सुधार से जहा तक उसका सम्बन्ध होता है वही तक उसकी उपादेयता समझी गई है। वैसे तो हमारे यहाँ महाकाव्य की कथा को इतिहास से उद्भूत और सत् पर आश्रित, होना कहा गया है।[3] किन्तु भारतीय आचार्यों का अन्तिम लक्ष्य रम ही रहा है। इसीलिये भामह ने केवल तथ्य कथन को अकाव्य कहा है, और आनन्दवर्धन ने इतिवृत्त वर्णन को अकाव्योचित माना है। इसके विपरीत हमारे यहा केवल अभूत वस्तु के सृजन को भी महत्व नहीं दिया गया। इसलिये आचार्यों ने एक मध्यम मार्ग स्वीकृत किया और वह

---

१. अरस्तू का काव्यशास्त्र—सम्पादक डा० नगेन्द्र पृष्ठ २५, २६

२ "ऋग्वेदंभगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणम् इतिहास पुराणं पञ्चमं वेदानावेदम्—छान्दोग्य७-१।

३. इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्। दण्डी-काव्यादर्श, १।१५

यह है, कि जिससे कवि रसात्मक रूपो का उन्मेष करने वाली प्रतिभा के द्वारा लौकिक पदार्थों के मार्मिक रूपो का ही उद्घाटन करता है। इसी अर्थ मे कवि प्रजापति है। और यही अभिनवगुप्त का व्यजना व्यापार है, यही भट्टतौत का दर्शन और वर्णन का समन्वय है, यही भट्टनायक का भावन व्यापार है, यही कुन्तक का अतिशय का आधान है और यही महिम भट्ट के द्वारा विशिष्ट रूप का उद्घाटन है।[1] और इसी अर्थ मे राजशेखर ने रामायण को इतिहास के अन्तर्गत रखा है।[2] हमारे यहा ऐतिहासिक महाकाव्यो से तात्पर्य केवल उस महाकाव्य के कथानक और घटना क्रम से है जो इतिहास से लिया गया हो और जिसमे रसौचित्य की दृष्टि से अलकृत शैली मे विविध वर्णन, काव्य-रूढियो का निर्वाह और पात्रो की मनोदशा का रागात्मक चित्रण किया गया हो। परिणामत इतिहास और कल्पना मे अतिरंजना का मिश्रण होने से इनमे इतिहास अशत ही सुरक्षित रहता है और इसीलिये इन काव्यो को शुद्ध ऐतिहासिक भी नही कहा जा सकता। वस्तुत पुनर्जन्म और कर्मफल मे विश्वास इन दो तत्वो के कारण ही इस देश मे वैयक्तिक कृतित्व का कोई महत्व नही समझा गया और फलत शुद्ध इतिहास लिखने की प्रवृत्ति भी नही हुई।

वैसे शिलालेखो, ताम्रपात्रो राजमुद्राओ, महाभारत रामायण एव पुराणो मे प्राप्त वशवृक्षो तथा ऐतिहासिक घटनाओ मे इतिहास काव्य का पूर्व-रूप दृग्गोचर होता है। राजतरगिणी के लेखक कल्हण ने इतिहास लेखक के आदर्श को एक स्थान पर अकित करते हुए लिखा है कि वही गुणवान पुरुष प्रशंसा का पात्र होता है जिसकी वाणी अतीत कालीन अर्थ तथा घटना के वर्णन करने मे दृढ रहती है और वह न किसी का पक्षपात करती है और न

१ दर्शनात् वर्णनाच्चाथ रूढा लोके कविश्रुति

हेमचन्द्र—काव्यानुशासन, पृ० ३१६

केवल सत्तामात्रेण परिस्फुरता चैषा कोऽप्यतिशयः पुनराधीयते।

कुन्तक व० जी. ३।२ वृत्ति.।

विशिष्टमस्य यद्रूप तत्प्रत्यक्षस्य गोचरम्।

स एव सत्कविगिरा गोचर प्रतिभा भुवाम ।। व्यक्तिविवेक २।१६

२. परिक्रिया पुराकल्प; इतिहास गतिर्द्विधा।

स्यादेकनायका पूर्वा, द्वितीया बहुनायका ।।

राजशेखर—काव्यमीमासा अध्याय, २

किसी के साथ द्वेष ही रखती है[1]। बाण के हर्षचरित ग्रन्थ मे राजा हर्ष के इतिहास प्रख्यात जीवन का वर्णन साहित्यिक शैली मे किया गया है। यहा पर कवि ने उसे अलकृत करने और सजाने का यथेष्ट प्रयत्न किया है और इस प्रयत्न मे ऐतिहासिक तथ्य दबने से धूमिल से हो गये है। डा० दासगुप्ता के मत मे उक्त ग्रथ मे हर्ष का जीवनचरित ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कोई महत्वपूर्ण नही है[2]। इस प्रकार हम देखते हैं कि आठवी और नवी शताब्दी से ही इस देश मे कवियो ने अपने आश्रयदाता की कीर्त्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये, उनके जीवनचरित को कथानक के रूप मे ग्रहण कर काव्य-रचना प्रारम्भ की इन समसामयिक या पौराणिक और निजधरी व्यक्तियो के जीवन-चरित पर लिखे जाने वाले प्रशस्ति या चरित काव्यो मे राजाओ की वशपरपरा नायक के कार्य और अन्य ऐतिहासिक घटना क्रम को अतिशयोक्ति पूर्ण कल्पना मिश्रित उपकथाओ के मिश्रण के साथ अलकृत शैली मे अंकित किया गया है। इन कवियो का प्रधान लक्ष्य काव्य निर्माण का ही रहा है, किन्तु ऐतिहासिक घटना का भी अकन करने की इच्छा होने से वे लक्ष्य भ्रष्ट हुये और परिणामत कही कही तो न (सत् काव्य) उच्चकोटि के काव्य का निर्माण हुआ और न शुद्ध ऐतिहासिक घटना का अकन।

यद्यपि आगे के कुछ कवियो ने ऐतिहासिक घटना के अकन की ओर ध्यान अधिक दिया है और प्राचीन इतिहास पर कसने से, उनका वर्णन कही कही

---

१. 'श्लाध्य स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता। भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती १।७ कल्हण—राजतरंगिणी।

२ The Harsa–Carita is no less imaginative but the author takes his own sovereign as his hero and weaves the story out of some actual events of his picture, but its importance as an historical document should not be overrated The sum total of the story lavishly embellished as it is, no more than an incident in Harsa's Career, and it can not be said that the picture is either full or satisfactory from the historical point of view. Many points... are left. Obscure, and the gorgeously descriptive and ornamental style leaves little room for the poor thread of actual history.

History of Sanskrit Lit. Classical period Vol 1 P 227–228

यथार्थ सत्य भी निश्चित हुआ है। तथापि उनका यह प्रयत्न शुद्ध साहित्यिक कोटि में ही आता है, इतिहास कोटि मे नही वह महाकाव्य की एक शाखा के रूप में ही परिगणित किया जायगा[१]। इस लिये जैसा कि डा० दासगुप्त ने अपने सस्कृत साहित्य के इतिहास मे लिखा है कि इन काव्यो को ऐतिहासिक कहने से केवल यही तात्पर्य होता है कि इनका कथानक ऐतिहासिक आधार पर मिलता जुलता है काल्पनिक या उत्पादित नही[२] इसलिये ऐसे काव्यो को हम ऐतिहासिक न कहकर ऐतिहासिक शैली के कहेगे। सारत इस शैली के महाकाव्यो की प्रधान विशेषताए निम्न प्रकार की होती हैं (१) जैसा कि पूर्व कहा है, इन काव्यों की कथावस्तु तो ऐतिहासिक होती है किन्तु काव्यात्मकता के मिश्रण तथा कवि की दृष्टि ऐतिहासिक न होने के कारण इनमे अतिशयोक्तिपूर्ण और काल्पनिक घटनाओ के वेष्टन मे ऐतिहासिक तथ्यो और वश-परपरा

---

१. As it has never been the Indian way to make a clearly defined distinction between myth, legend and history, historiography in India was never more than a branch of epic poetry. A History of Indian Lit Vol. II Dr Winternitz, Page 208.

२. In making an estimate of these works, therefore, it should be borne in mind that they are, in conception and execution, deliberately meant to be elegant poetical works rather than sober historical or human documents:– '...The qualification 'historical' therefore serves no useful purpose except indicating imperfectly that these kavyas have an historical, instead of a legnedary or invented theme but the historical theme is treated as if it is no better nor worse than a legendary or invented one.'

Dr S K De, page 348–349, History of Sanskrit Lit.

The Hindus do not pay much attention to the histoical order of things, they are very careless in relating the chronological succession of things, and when they are pressed for information and are at a loss not knowing what to say, they invariably take to taletelling.

Sachan, Alberunis' India, Vol II Page 10.

का एक विचित्र मिश्रण दिखाई देता है। परिणामत हम उन्हे न उत्कृष्ट कोटि के काव्यो में ही रख सकते हैं और न सच्चे इतिहास कोटि मे।[१]

(२) बूलर के मत मे इन काव्यो मे कल्पित घटनाओ और अनैतिहासिक तथ्यो की अधिकता होने पर भी उनमे प्रधान घटनाएँ और चरित ऐतिहासिक होते है[२]।

(३) इन काव्यो के प्रारम्भ मे नायक के कुल की उत्पत्ति-कथा और पूर्वजो की वशावली काल्पनिक या पौराणिक शैली मे वर्णित होती है।

(४) इन महाकाव्यो मे कवियो ने अपना तथा पूर्वजो का परिचय भी वर्णित किया है। शास्त्रीय महाकाव्य मे इस प्रवृत्ति का अभाव है। किसी महाकाव्य मे तो सामयिक परिस्थितियो तथा देश-दशा का चित्र भी मिलता है।

(५) इन काव्यो मे कवियो ने काव्यात्मकता तथा कल्पना का आश्रय ग्रहण करने से घटनाओं की तिथि तथा उनके बीच के समय की निश्चित अवधि-सीमा कम या गलत वर्णित है।

(६) इनमे नायक के जन्म, प्रेम, विवाह राज्यप्राप्ति और युद्ध विजय आदि के विस्तृत वर्णन मिलते है।

(७) इन कवियो का इन काव्यो मे अपने नायको के प्रति विशेष दृष्टिकोण होने से, नायकों का चरित अच्छा (आदर्श पूर्ण) और प्रतिनायको का बुरा चित्रित किया गया है। इस प्रकार के दृष्टिकोण से नायको की यथार्थ वैयक्तिक विशेषताए प्रकट न हो सकी है।

---

१. But while the geneology beyond one or two generations is often amiably invented and exaggerated and glorification takes the place of sober statement of facts, the laudatory accounts are generally composed by poets of modest power. The result is neither good poetry nor good history.

Hist. of Sans. Lit by Dr Das Gup, Pag 346

२ The importance of charitas like Shriharshacharita and Vikramankadevacharita lies chiefly therein that however much a vitiated taste and a false conception of the duties of historiographer royal may lead their authors stray the main facts may be accepted as historical.

Vikramankdevacharitam. Intorduction, by George, Buhlar, Bombay, 1915, Page 3

इन ऐतिहासिक शैली के महाकाव्यो मे कवि परिमल या पद्मगुप्त द्वारा लिखित सिंधुराज का चरित्र अर्थात नवसाहसांकचरित प्रथम महाकाव्य मिलता है जो सन १००५ मे लिखा गया। किन्तु इसमे पौराणिक शैली के मिश्रण से तथा तत्कालीन विश्वसनीय उत्कीर्ण लेखो के अभाव मे डा० बूलर को उसमे निहित ऐतिहासिक भाग का निश्चय करना कठिन प्रतीत हुआ[१]। और इसी आधार पर सभवत डा० शभूनाथ सिह ने लिखा—

"इस ग्रन्थ मे नायक के नाम के अतिरिक्त ऐतिहासिक तथ्य एक भी नही है और न वह ऐतिहासिक शैली मे ही लिखा गया है।[२]

किन्तु म० म० वा० वि० मिराशी जी ने शिलालेख व ताम्रपट के आधार पर नवसाहसाकचरित मे वर्णित कथानक ऐतिहासिक है निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया है।[३] ऐतिहासिक शैली का दूसरा महाकाव्य ११ वी शती का उत्तरार्ध बिल्हणकृत विक्रमाकदेवचरित है। इसमे कवि के आश्रयदाता कल्याण के चालुक्य राजा त्रिभुवनमल्ल (विक्रमादित्य षष्ठ) के जीवन वृत्त के वर्णन है। इस काव्य मे शास्त्रीय महाकाव्य की शैली व ऐतिहासिक तथा पौराणिक शैली का सुन्दर मिश्रण होने पर भी, उपर्युक्त ऐतिहासिक शैली की विशेषताए उपलब्ध होती है। १२ वी शती मे लिखी गई कल्हण की राजतरंगिणी प्रधानतया ऐतिहासिक शैली का महाकाव्य होते हुए भी एक मिश्र शैलियो का सुन्दर उदाहरण है। इसमे अनुष्टुभ् के अतिरिक्त अन्य छन्द भी मिलते है और उपमा, उत्प्रेक्षा जैसे अलकार भी। कल्हण एक सच्चे ऐतिहासिक के कर्तव्य से परिचित होने पर भी अपने कवि रूप को ग्रथ मे ओझल नही कर सके। अपने ग्रन्थ मे पूर्व विद्वानो की त्रुटियो की पुनरावृत्ति रोकने तथा इसके द्वारा एक सच्चे इतिहास का रूप उसे देने के लिए कल्हण ने पूर्व रचित ग्रन्थो-क्षेमेन्द्र की नृपावली, नीलमुनि के नीलमतपुराण का

---

१. The story from the personal history of Sindhuraja which represents the true object of Padmagupta's work is unfortunately surrounded with so thick a mythological covering that is impossible, without the help of accounts containing only sober facts, to give particular details with certainty'

Ind. Ant. Vol—XL. Page 172.

२ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० १४५ डा. शभूनाथ सिह

३. सशोधन मुक्तावलि सर दूसरा वा० वि० मिराशी, पृ० १३८

अध्ययन किया ।[1] किन्तु इसमें हजारों वर्षों का इतिहास सम्मिलित होने से अलंकृत महाकाव्योचित कथा की अन्विति और उसमें उपेक्षित घटनाओं के चुनाव का अभाव है। इसके अतिरिक्त पौराणिक शैली के मिश्रण अलौकिक शक्तियों के कार्यों मे विश्वास से इस ग्रंथ को शुद्ध ऐतिहासिक घटनाओं से समन्वित नही कहा जा सकता। फिर भी लेखक ने समसामयिक तथा निकट की घटनाओं को एक ऐतिहासिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है। डा० दे प्रभृति विद्वान इसे इतिहास की अपेक्षा काव्य मानने के पक्ष में है।[2] इस प्रकार इस ग्रन्थ में ऐतिहासिक और पौराणिक शैलियों का मिश्रण होने पर भी ऐतिहासिक शैली की प्रमुखता के कारण इसे ऐतिहासिक शैली का महाकाव्य माना जा सकता है।

काव्यरूप मे यह उसी प्रकार अनेक नायकों से युक्त है जैसे रघुवंश, किन्तु रघुवंश की तरह उच्च कोटि का नही। ऐतिहासिक शैली के काव्य मे सन्ध्याकर नन्दी का रामचरित महत्वपूर्ण है। इस काव्य मे भगवान रामचन्द्र तथा पालवंशी नरेश रामपाल का एक साथ वर्णन श्लेष द्वारा किया गया है। इस काव्य के द्वारा बंगाल का मध्ययुगीन इतिहास जाना जा सकता है किन्तु कवि के श्लेष मार्ग ने ऐतिहासिक तत्व तथा काव्य आनन्द को एक साथ समाप्त सा कर दिया है। बारहवी सदी का अन्य द्व्यर्थक काव्य हेमचंन्द्र कृत कुमारपालचरित है. इसमे कुमारपाल का जीवनवृत्त दिया गया है। इस काव्य का साहित्यिक मूल्य तो कम है किन्तु गुजरात के इतिहास का विवरण मिलता है जो महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त गुजरात के इतिहास से सम्बन्धित दो महाकाव्य मिलते हैं। इनमे गुजरात के राजा वीरधवल तथा वीसल देव के मंत्री वस्तुपाल और तेजपाल के सम्बन्ध मे अरिसिंह ने 'सुकृति सकीर्तन' और बालचन्द्र सूरि ने वसन्तविलास नामक महाकाव्यो की रचना की। 'सुकृतसकीर्तन', महाकाव्य मे ११ सर्ग हैं जिनमे धार्मिक कृत्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है। वसन्तविलास इसी विषय पर है। इनमें महाकाव्य में अपेक्षित वस्तु व्यापार वर्णन की रूढियों का तो वर्णन है किन्तु उपदेशात्मकता और इतिवृत्तात्मकता ने काव्यत्व को समाप्त कर दिया है।

पृथ्वीराज विजयः—

इस काव्य का कश्मीरी कवि जयानक है। इसके दो सस्करण प्रकाशित

१ 'केनाप्यनवधानेन कवि-कर्मणिसत्यपि।
अशोऽपि नास्ति निर्दोष क्षेमेन्द्रस्य नृपावली।
कल्हण—राजतरंगिणा, १।१३

२. सस्कृत साहित्य का इतिहास, डा० एस० एन० दासगुप्ता, अ० ६०,

हो चुके हैं। प्रथम में ८ सर्ग प्रकाशित हुए है और द्वितीय में १२ सर्ग तक। किन्तु दोनो अपूर्ण हैं। जयानक भी बिल्हण की तरह राजाश्रय के लिये घूमते घूमते पृथ्वीराज के दरबार मे आया था। इसमे सन् ११९१ के पृथ्वीराजविजय का वर्णन है। इस पर जोनराज की टीका है। यद्यपि कवि पृथ्वीराज का समकालीन होने के कारण काव्य मे ऐतिहासिक तथ्य पर्याप्त है, तथापि अन्य काव्यो की तरह इसमे भी इतिहास और कल्पना का मिश्रण पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। जैसे, चाहमान कुल के आदिपुरुष वासुदेव की विद्याधरो के साथ हुई भेंट का वर्णन। पृथ्वीराज और उनके भाई हरिराज का क्रमशः राम-लक्ष्मण के अवताररूप मे वर्णन। कलचुरि नृपतिसाहसिक की कथा। (सर्ग ६)

पौराणिक शैली के महाकाव्य

उपर्युक्त ऐतिहासिक शैली के महाकाव्यो की तरह पौराणिक शैली के महाकाव्य भी संस्कृत साहित्य मे स्वतन्त्र पौराणिक नीति के या शुद्ध पौराणिक शैली के नही मिलते। वस्तुत १० वी शती के उत्तरार्ध मे एक ऐसी लहर साहित्य समाज मे विभिन्न कारणो से अनुप्राणित होकर प्रवाहित हुई जो १६-१७ शती तक अपने जीवन से साहित्य सम्पदा (सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश) को विकसित करती रही। इसके बीज स्रोत तो ई०पू० १ शती के भी पूर्व के हैं जब महाभारत को बौद्ध प्रभाव के फलस्वरूप अन्यान्य सप्रदायो का समन्वयात्मक रूप दिया जा रहा था। इसका विवेचन हमने महाभारत के विवेचन के अवसर पर किया है। संस्कृत केविदग्ध महाकाव्यो मे पौराणिक शैली के मिश्रण के कारण इस प्रकार हैं—ह्रासोन्मुख सामन्त युग तक अर्थात् १० वी शती के उत्तरार्ध मे, सस्कृत भाषा के पाठको का विस्तार सकुचित होता गया और उसके पाठक सहृदय ने एक विद्वान का रूप धारण कर लिया। इसका विवेचन (सहृदय का अर्थ) हमने पूर्व किया है। गत पृष्ठो में हमने बताया है कि स्मृतिप्रोक्त वर्णाश्रम धर्म के संकीर्ण प्रभाव के फलस्वरूप कवियो ने स्वच्छन्द मनोभावो को व्यक्त करने के लिये धार्मिक पौराणिक कथा आख्यायिकाओ का आश्रय लिया। आश्रयदाता राजाओ या साधुओ के चरित्र के व्याज से विशिष्ट धर्म का प्रचार कर समाज मे प्रतिष्ठा प्राप्त करना कवियो का लक्ष्य बन गया। जैसा कि हमने इसके पूर्व देखा है कि चौथी शती के आस पास प्राकृत और अपभ्रश भाषा मे अच्छी रचनाए होने लगी थी[1] व इसके

१ 'इडो आर्यन ऐण्ड हिन्दी, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, कलकत्ता, पृ० ९९ अपभ्रश भाषा और साहित्य,

प्रो० हीरालाल जैन, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५०, अक ३-४ पृ० १०६

अतिरिक्त हिन्दू पुराणों के राम, लक्ष्मण, कृष्ण, बलदेव जैसे महापुरुषों तथा अन्य कथाओं का ग्रहण कर जैन कवियों ने कुछ परिवर्तित रूप में जैन महाभारत और रामायण की स्वतंत्र रचना की। इन ग्रन्थों का प्रभाव भी संस्कृत महाकाव्यों पर पड़ा। संस्कृत विदग्ध महाकाव्य के उपजीव्य रामायण, महाभारत पुराण आदि हैं यह पीछे बताया है और आलंकारियों ने भी महाकाव्य का कथानक इतिहास पुराण से उद्भूत होना आवश्यक माना है। पीछे हमने महाकाव्य का उद्भव और विकास की चर्चा में देखा है कि महाकाव्य पुराण के ही परिष्कृत, अलंकृत और अन्वितियुक्त विदग्ध रूप है।

वाल्मीकि रामायण की शैली का प्रभाव पूर्णरूप से १ शती के प्राकृत महाकवि विमलसूरि के 'पउम चरिय' में देखा जा सकता है। इसी प्रकार स्वयंभू का हरिवंश पुराण महाभारत के हरिवंश का ही जैन रूपान्तर है। इस प्रकार जैन कवियों ने भी संस्कृत विदग्ध महाकाव्यों की तरह हिन्दू पुराणों के रूपान्तरित जैन रामायण महाभारत की शैली पर महाकाव्य की रचना प्रारम्भ की।

पौराणिक शैली से तात्पर्य

पौराणिक शैली के महाकाव्यों में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, और वंशानुचरित इन पाँच विषयों में से एकाधिक का ग्रहण किया जाता है[१]। पौराणिक या धार्मिक आख्यान अलौकिक अतिप्राकृत तत्वों के मिश्रण से वर्णित होते है। ये महाकाव्य धार्मिक उपदेश देने या किसी मत विशेष का प्रचार करने के उद्देश्य से लिखे गये हैं। इनमें संवादरूप में कथा के भीतर कथा की शृंखला होती है। महाकाव्य के 'पेटर्न' पर कथावर्णन का उद्देश्य होने से इनमें शास्त्रीय महाकाव्य के लक्षण भी मिलते हैं। किन्तु पौराणिक घटना वैविध्य के कारण इनमें शास्त्रीय महाकाव्य के कथानक संगठन अन्विति का अभाव होता है। संक्षेप में पुराणों की शिथिलता, सरलता, अलौकिक तथा चमत्कारपूर्ण वृत्तों की अतिशयता होती है। साथ ही काव्यात्मकता की कमी भी। वस्तुतः कवियों के विविध उद्देश्यों के कारण इनमें शास्त्रीय महाकाव्यों के लक्षणों की पूर्णता भी नहीं होती और न पूर्ण रीति से पुराणों की (बीच-बीच में शास्त्रीय महाकाव्य के लक्षणों की पूर्ति करने की इच्छा होने से) इस प्रकार इनमें शास्त्रीय और पौराणिक महाकाव्यों के लक्षणों का विचित्र समन्वय होता है। वस्तुतः यह समन्वय चरित काव्यों की विशेषता है। जैन कवियों द्वारा लिखित काव्य में प्रायः शैलियों का मिश्रण मिलता है।

---

१. राजशेखर—काव्यमीमांसा अध्याय २

संस्कृत साहित्य मे पौराणिक शैली के महाकाव्य विशेषत १०वी शती के पश्चात् ही उपलब्ध होता है । इसके पूर्व ८, ९ शती में जिनसे तथा गुणभद्र-कृत क्रमश आदिपुराण और उत्तरपुराण उपलब्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त जटासिंह नन्दि का वराङ्गचरित मिलता है जिसमे ३१ सर्गों मे वराग की जैन पौराणिक कथा वर्णित है । इनके पश्चात् ११वी शती मे कश्मीर के अपर व्यास-दास क्षेमेन्द्र के तीन ग्रन्थ मिलते है—

(१) रामायण मजरी (२) भारत मजरी (३) दशावतार चरित ।

उपर्युक्त तीनो ग्रन्थो मे क्षेमेन्द्र ने प्रसादपूर्ण और अनलंकृत भाषा-शैली में, रामायण-महाभारत और पुराणाश्रित दस अवतारो की कथा वर्णित की है । १२वी शती मे आचार्य हेमचन्द्र ने 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित' नामक ग्रन्थ की रचना की । लेखक ने इसे महाकाव्य कहा है। किन्तु यह तो महाभारत की शैली पर सस्कृत मे श्लोक बद्ध जैन पुराण है । यह ग्रन्थ दस पर्वों मे है । इसमे जैन धर्म के ६३ व्यक्तियो का जीवन चरित (२४ तीर्थंकरो, १२ चक्रवर्तियो, ९ वासुदेवो, ९ बलदेवो और ९ प्रतिवासुदेवो) सस्कृत मे श्लोकबद्ध-रूप मे वर्णित हैं । अन्त मे परिशिष्टपर्वन या स्थविरावलीचरित पौराणिक शैली का एक स्वतन्त्र महाकाव्य है । इस ग्रन्थ मे पौराणिक शैली के साथ महाकाव्य मे अपेक्षित काव्यात्मकता तथा अन्य वर्णन जैसे ऋतुवर्णन, प्रेम-व्यापार वर्णन भी नियोजित है । इस ग्रन्थ मे पौराणिकप्रवृत्ति (उपदेशात्मकता, अवान्तर कथाए लोकतत्त्वसवाद तथा नायको के अनेक जन्मो की कथाए)–की उपलब्धि के कारण, इसे पौराणिक शैली का महाकाव्य माना जाता है । हर मन जाकोबी के मत मे इस ग्रन्थ की रचना, ब्राह्मणो के रामायण महाभारत के समान जैन महाकाव्य के रूप मे की गई है ।[१] १२वी शती मे ही मालाधरीन देवप्रभसूरी ने महाभारत के १८ पर्वों को केवल १८ सर्गों मे पाण्डवचरित[२] नाम से वर्णित किया है । महाभारत का ही रूपान्तर होने से यह भी पौराणिक शैली के अन्तर्गत आता है । इनके अतिरिक्त ११वी

---

१ Hemchandra, on the other hand, writing in Sanskrit in kavya Style and fluent verses, has produced an epical poem of great length (some 37,000 verses) intended as it were, for the Jain substitute for the great epics of Brahmans' Sthaviravalicharita–Introduction–by Herman Jacobi, Calcutta, 1932 (Second Edition) P. 24.

२ Ed.–Sivadatta and K P. Parab, N S P. Bombay, 1911.

शती मे हरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय और १२वी शती मे वाग्भट का नेमि-निर्वाण काव्य मिलते हैं[1]। जैन कवियो मे हरिश्चन्द्र का नाम अधिक उल्लेखनीय है इसमे १५वे तीर्थंकर धर्मनाथ के जीवन चरित्र २१ सर्ग मे वर्णित है। वाग्भट ने १५ सर्ग मे द्वितीय तीर्थंकर के जीवन चरित का वर्णन किया है। इन दोनो काव्यो मे शास्त्रीय और पौराणिक शैली का सुन्दर सम्मिश्रण है। वासुदेव का 'युधिष्ठिर विजय' महाकाव्य मिलता है। इनके समय के विषय मे विद्वानो का ऐकमत्य नही है। इसमे कवि ने सर्ग के स्थान पर प्राकृत मे प्रचलित ८ आश्वासो में भारतीय युद्ध का यमकमय सक्षिप्त वर्णन किया है। १३वी शती मे अमरचन्द्र सूरि का बालभारत वेंकटनाथन का 'यादवाभ्युदय' और जयद्रथ का 'हरचरितचिन्तामणि' महाकाव्य आते हैं। अस्तु—

यहा विशेष उल्लेखनीय यह है कि उपर्युक्त ऐतिहासिक और पौराणिक शैलियो के चरित महाकाव्यो मे कथात्मक शैली के महाकाव्यो की भी कुछ विशेषताए मिश्रित है। कारण यह है कि ('जैसे हमने इसके पूर्व प्राकृत अपभ्रशसाहित्य की प्राचीनता, उसकी समृद्धि और उसका सस्कृत साहित्य पर प्रभाव देखा है) आठवी नवी शती के आसपास सस्कृत महाकाव्यो मे कथात्मक शैली का प्रचलन हुआ और फलत कुछ रूढ़ियाँ भी स्थिर हो गई जो नैषध जैसे कुछ चरितकाव्यो को छोडकर प्राय सभी मे देखी जा सकती है। आचार्य दडीप्रणीत महाकाव्य के प्रारम्भिक लक्षणो के अतिरिक्त इनमे गुरुवन्दना, अनेक देवताओ की स्तुति, पूर्ववर्ती कवियो की प्रशसा, साधुसज्जनो की प्रशसा, दुर्जन निन्दा, ग्रन्थ के सम्बन्ध मे निवेदन, साथ ही अपने विषय मे विनम्रोक्ति नायक की नगरीवर्णन, साथ ही नागरिको का वर्णन नायक के वश का वर्णन आदि बाते विस्तारपूर्वक मिलती है जो पूर्ववर्ती शास्त्रीय शैली के महाकाव्यो मे उपलब्ध नही होती। आचार्य रुद्रट ने कथासम्बन्धी लक्षण इस प्रकार दिया है —

"श्लोके महाकथायामिष्टान्देवान्गुरून्नमस्कृत्य।
सक्षेपेण निज कुलमभिदध्यात्स्व च कर्तृतया ।। १६-२०

और रुद्रट ने ही महाकाव्य को उत्पाद्य और अनुत्पाद्य दो प्रकार का मानते हुए, उत्पाद्य महाकाव्य के लक्षण मे इस प्रकार कहा है —

"तत्रोत्पाद्यं पूर्वं सन्नगरीवर्णन महाकाव्ये।
कुर्वीत तदनु तस्या नायकवशप्रशसा च ।। काव्यालकार १६-७

उपर्युक्त लक्षणो को देखने से यह सिद्ध हो जाता है कि आठवीं नवीशती तक महाकाव्य मे कथा सम्बन्धी अनेक रूढ़ियों ने अपना स्थायित्व प्राप्त कर

१. Ed.—Jaina Dharma-Prasaraka Sabha, Bhavnagar 1906-13.

लिया था। उक्त प्रभाव से शास्त्रीय शैली के महाकाव्यो में प्रचलित पाण्डित्य-प्रदर्शनजन्य दुरुहता के स्थान पर सरलता का आगमन भी होने लगा था। किन्तु इनमे प्राप्त अलौकिक और अति प्राकृतिक शक्तियो के आधार पर, प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य में अधिकता से प्राप्त रोमाचक शैली के महाकाव्यो की तरह, संस्कृत विदग्ध महाकाव्यो को भी (कालिदास से श्री हर्ष तक) रोमांचक शैली का मानना उपयुक्त प्रतीत नही होता।

क्योकि ये तत्व (देवता गन्धर्वों का मानव के सहायक रूप या विरोध मे होना मुनि का शाप वरदान, मत्ताज को पराम्त करना, समूची सेना को क्षणमात्र मे विमोहित करना, आकाश मे उड जाना, तिरोहित हो जाना, पशुओ का भी मानवी भाषा में बोलना, शाप मुक्ति से दिव्य शरीर धारण करना, शकुन-अपशकुन आदि)–सस्कृत के सभी विदग्ध महाकाव्यो मे यत्र-तत्र मिलते हैं। वस्तुत जैसे पूर्व कहा है। इन तत्वो का भारतीय सस्कृति धर्म परम्परा से निकट सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त इन सभी संस्कृत महाकाव्यो के कथानको का आधार वेही आर्यकाव्य (रामायण महाभारत जिनमें लोक तत्वो की कमी नही) पुराण धार्मिक कथा, इतिहास आदि है।

दूसरे–इन रोमाचक शैली के महाकाव्यो मे काल्पनिक असभवनीय और असत्य की मात्रा अधिक होती है। इनमे लौकिक कथा आख्यायिकाओ की तरह जादू टोना, मन्त्र तन्त्र, शकुन, शाप, वरदान, आदि का प्राधान्य होता है। इनमे काल्पनिक प्रेम का भी यथेष्ट समावेश होता है। आदि उपर्युक्त लक्षण इन काव्यो मे होते हैं। इनके आधार पर हम अपने ऐतिहासिक, पौराणिक काव्यो को यदि देखते हैं तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि हमारे सस्कृत के विदग्ध महाकाव्यो मे, ताम्र या प्रस्तर लेख के आधार पर सिद्ध, ऐतिहासिकता 'संभवनीयता, नियमबद्धता और सत्यता ही प्राप्त होती है। हमारे संस्कृत साहित्य मे प्राप्त सुबन्धु की वासवदत्ता और बाण की कादबरी आदि रोमाचक महाकाव्य की प्रवृत्ति की द्योतक है। किन्तु रोमाचक संस्कृत महाकाव्य नही है, कहा जा सकता है।

डा० शम्भूनाथसिंह ने पद्मगुप्त के नवसाहसाक चरित को प्रथम परिष्कृत और अलकृत शैली का रोमाचक महाकाव्य माना है।[1] जो युक्त युक्ति प्रतीत नही होता, क्योकि शिलालेखो के आधार पर, उसकी ऐतिहासिकता और घटनाओ की संभवनीयता सिद्ध हो चुकी है।

---

१ डा० शंभूनाथसिंह–हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय पृ० १६१.

अध्याय अष्टम

संस्कृत के महाकाव्यो का परिशीलन

बुद्धचरित (अ)[1]

कवि परिचय—

बुद्ध चरित के कवि अश्वघोष साकेतक थे, (अयोध्या के निवासी) तथा उनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। आप महाकवि होने के अतिरिक्त, आर्य भदन्त, महापण्डित, महावादिन् आदि विरुदो से अलकृत थे।[2] अश्वघोष कनिष्क के समसामयिक होने से प्रथम दरबारी कवि थे। उनके इस काल मे विषय मे हमने पीछे प्रमाण दिये हैं। अनुश्रुति तथा उनके काव्यो के अन्तरग प्रमाणो के आधार पर कहा जा सकता है कि वे जन्म से ब्राह्मण, वैदिक साहित्य और रामायण महाभारत के विद्वान तथा पौराणिक ब्राह्मण धर्म के प्रति सहिष्णु थे[3]। महायान सप्रदाय के प्रवर्तक के विषय मे विद्वानो का ऐकमत्य नही है, किन्तु इतना तो सत्य है कि अश्वघोष का महायान संप्रदाय के विकास मे महत्वपूर्ण योग रहा है।

ग्रन्थ

अश्वघोष के दार्शनिक व्यक्तित्व के फलस्वरूप कई बौद्ध दार्शनिक ग्रन्थ उनके नाम से प्रसिद्ध हो गये जिनके कृतित्व के विषय मे विद्वानो का ऐकमत्य

---

१ Ed. E B Cowell, Oxford 1893 Containing four additional Cantos by Amrtanada. a Nepalese pandit of the 19th Century also trs. into English by Cowell in S. B E. Vol. 49 into German by C Cappeller, Jena 1922 into Italian by C Formichi Bari 1912 Reedited more critically and translated into English by E.H. Johnston in 2 Vols Calcutta. 1936 with Commentary and translation into English Cantos 1–V Poona 1911.

Ed –Appa Shastri Rashivadekar Cantos 1–V, Poona 1911

Ed. सूर्यनारायण चौधरी भाग १,२ सस्कृतभवन विहार।

२ 'आर्यसुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतस्य भिक्षोराचार्यभदन्ताश्वघोषस्य महाकवेर्वादिन कृतिरियम्। सौन्दरानन्द की पुष्पिका तथा बिब्लौथिकाइंडिका संस्करण १९३९ पृ० १२६

३. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, सुशील कु०डे पृ०७८ १९४७ कलकत्ता

नही है। किन्तु उनकी साहित्यिक रचनाओ की प्रामाणिकता के विषय मे विद्वानो मे कोई विवाद नही है। यह तो निर्विवाद है कि 'बुद्धचरित, सौन्दरानन्द' तथा 'शारिपुत्रप्रकरण,' तीनो अश्वघोष की कृतियाँ है। इनमे प्रथम दो महाकाव्य हैं तथा अन्तिम प्रकरण कोटि का नाटक हैं।

बुद्धचरित—

यह एक सस्कृत का विदग्ध महाकाव्य है। इसमे बुद्ध के जीवन, उपदेश तथा सिद्धान्तो का काव्य के ब्याज से वर्णन हैं। इसके सस्कृत मे केवल १७ सर्ग है जिनमे अन्तिम चार सर्ग १९वी शती के आरम्भ मे अमृतानन्द द्वारा जोड़े गये हैं। इस काव्य का चीनी भाषा मे अनुवाद धर्मरक्ष, धर्मक्षेत्र, या धर्मरक्ष नामक किसी भारतीय विद्वान ने (४१४–२१ ई०) किया जिसमे २८ सर्ग हैं और कथा भी बुद्ध के निर्वाण तक चली गई है। सातवी, आठवी शती मे किये गये तिब्बती अनुवाद मे भी इस काव्य के २८ सर्ग हैं। म० म० हरप्रसाद शास्त्री द्वारा प्राप्त ग्रन्थ १४वे सर्ग के अन्त तक ही है। इसमे भी प्रथम सर्ग पूर्ण नही है। इस काव्य की कथा बुद्ध जन्म से प्रारम्भ होती है। (१ सर्ग) और अन्त पुरविहार (२ सर्ग) सवेग उत्पत्ति (३ सर्ग) स्त्री निवारण (४ सर्ग) अभिनिष्क्रमण (५ सर्ग) छन्दक विसर्जन (६ सर्ग) तपोवन प्रवेश (७ सर्ग) अन्त पुरविलाप (८ सर्ग) कुमार अन्वेषण (९ सर्ग) बिम्बसार का आगमन (१० सर्ग) काम निन्दा (११ सर्ग) आराडदर्शन (१२ सर्ग) मार को पराजय (१३ सर्ग) आदि का क्रमश वर्णन करता हुआ कवि बुद्धत्वप्राप्ति (१४ वा सर्ग) तक हमे पहुँचा देता है। उपर्युक्त सर्गों के अतिरिक्त काव्य कथा अश डा० जान्स्टन के आंग्ल अनुवाद से प्राप्त होता है, जिसमे बुद्ध के शिष्यो, उपदेशो, सिद्धान्तो तथा अस्थि विभाजन से उत्पन्न कलह का वर्णन और अशोक के काल और प्रथम सगति का चित्र है। इस प्रकार अश्वघोष ने बुद्ध के सघर्षमय जीवन का सजीव चित्र अकित करने का प्रयत्न किया है।

काव्य की दृष्टि से बुद्ध चरित के कुछ तो सर्ग प्रथम, पचम, अष्टम तथा त्रयोदश सर्ग के मारविजय का कुछ अंश सुन्दर है और शेष सर्ग धार्मिक विचारो और दार्शनिक तत्वो से अक्रान्त होने से, बुद्धचरित धार्मिक तथा नीतिवादी बन गया है।

सौन्दरानन्द

यह अश्वघोष का दूसरा महाकाव्य है, इसमे १८ सर्ग है। नेपाल नरेश के पुस्तकालय में इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ हैं जिनके आधार पर म० म०

हरप्रसाद शास्त्री ने इसका प्रकाशन विब्लिओथेकाइडिका मे कराया है। बुद्ध चरित मे जिन घटनाओ का उल्लेख संक्षिप्त रूप मे है या नही है, उन्ही का इस काव्य मे विस्तारपूर्वक वर्णन होने से यह बुद्धचरित का पूरक काव्य है। सौन्दरनन्द मे बुद्ध के विमातृज भाई नन्द और उसकी स्त्री सुन्दरी की ही कथा प्रधान है। नन्द, सुन्दरी मे उसी तरह आसक्त है जैसे चक्रवाक चक्रवाकी मे[२]।

नन्द तथा सुन्दरी के इस यौवन सुलभ प्रेम की आधार शिला लेकर प्रेम तथा धर्म के विषम संघर्ष मे नन्द की प्रव्रज्या का वर्णन कवि को अभीष्ट है। इस अद्भुत काव्य मे बुद्ध चरित की धार्मिक और दार्शनिक तत्वो की रूक्षता, स्निग्धता तथा सौन्दर्य मे परिणत हो जाने से, यह बुद्ध चरित की अपेक्षा एक प्रौढ हाथ की रचना दिखाई देती है। इसीलिये विद्वान बुद्धचरित को कवि की प्राथमिक रचना मानते है। प्रथम तीन सर्गों मे कवि ने शाक्यो की वंशपरम्परा, सिद्धार्थ नन्द जन्म, सिद्धार्थ के अभिनिष्क्रमण, उन्हें बुद्धत्व की प्राप्ति और कपिलवस्तु मे आने का गत्यात्मकरीति से सुन्दर वर्णन है। चतुर्थ सर्ग मे कामासक्त नन्द और सुन्दरी का विवाह-वर्णन जब नन्द आनन्द कर रहा था बुद्ध ने भिक्षा के लिये उसके प्रासाद मे प्रवेश किया। उस घर मे युवती स्त्रियां स्वामी की क्रीड़ा के अनुरूप सुन्दर कार्य करने मे संलग्न थी। उसी समय किसी दासी ने नन्द को सूचना दी कि बुद्ध भिक्षा के लिये उसके द्वार पर आये थे पर भिक्षा न मिलने से चले गये। यह सुनकर नन्द दुखी होता है और क्षमा याचनार्थ बुद्ध के पास जाना चाहता है। जाने के लिये वह सुन्दरी से आज्ञा मांगता है, सुन्दरी उसे इस शर्त पर छोडती है कि उसके विशेषक' के सूखने के पूर्व ही वह लौट आये। पंचम सर्ग मे नन्द बुद्ध के पीछे-पीछे जाता है और एकान्त पाकर मार्ग मे बुद्ध को प्रणाम करता है। बुद्ध अनुग्रह करने के लिये उसके हाथ मे भिक्षा पात्र रख देते हैं वे उसे ले जाकर धर्मदीक्षित कर भिक्षु बना देते हैं। अनिच्छुक नन्द के मस्तक की केश-शोभा को अलग कर दिया जाता है। बाल घुटाने के समय वह आंसू गिराता है। षष्ठ सर्ग मे सुन्दरी के विलाप का वर्णन। सप्तम सर्ग में सुन्दरी के लिये विह्वल नन्द का विलाप। अष्टमसर्ग मे नन्द को किसी भिक्षुक

---

१ Ed. by Harprasad Sastri-Bibli Ind. (Calcutta) Ed. E H Jhonston with notes and readings

२ सौन्दरानन्द ४।२ सचक्रवाकयेव हि चक्रवाकस्तथा समेतप्रियया प्रियार्हः।

का उपदेश और यह शिक्षा-उपदेश नवम सर्ग तक चलता है। दशम सर्ग मे नन्द की स्थिति का ज्ञान बुद्ध को होता है, बुद्ध नन्द को बुलाते है और उसे अपने हाथ मे लेकर योग विद्या से आकाश मे उड जाते हैं। बुद्ध हिमालय की तटी मे एक वृक्ष पर बैठी कानी बन्दरी को दिखाते हुये नन्द को पूछते हैं 'क्या सुन्दरी इससे अधिक सुन्दर है' नन्द 'हा' उत्तर देता है। इसके पश्चात् बुद्ध उसे स्वर्ग की अप्सराए दिखाते है जिसके सौन्दर्य से अभीभूत होकर नन्द सुन्दरी को भूल जाता है और उन्हें प्राप्त करने के लिये इच्छा करता है। बुद्ध उसे बताते है कि उन्हे तपस्या से प्राप्त किया जा सकता है। एकादश और द्वादश सर्ग मे कोई भिक्षु स्थायी स्वर्ग की प्राप्ति के प्रति इच्छा को छोडने के लिये उपदेश देते हुये कहता है—'अप्सराओ को प्राप्त करने के लिये धर्माचरण कर रहे हो' यह सुनकर नन्द लज्जित होता है। नन्द वीतरागी होकर बुद्ध के पास जाता है। त्रयोदश सर्ग से षोडश सर्ग तक बुद्ध का उपदेश तथा आर्य सत्य का वर्णन है। सप्तदश तथा अष्टादश सर्ग मे अमृत की (परम शान्ति) प्राप्ति के लिये नन्द की तपस्या, मारविजय तथा विगत मोह स्थिति का वर्णन है।[1] अन्त मे कवि ने काव्य की रचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा है—'मोक्षधर्म की व्याख्या से गर्भित यह कृति शान्ति प्रदान करने के लिये है, न कि आनन्द देने के लिये'। अन्यमनस्क श्रोताओ को आकृष्ट करने के लिये यह रचना काव्य शैली मे रची गई है। इस कृति मे मोक्ष धर्म के अतिरिक्त मेरे द्वारा जो कुछ कहा गया है, केवल काव्य-धर्म के अनुसार सरस बनाने के लिये, जैसे कि तिक्त औषधि को पीने के लिये उसमें मधु मिलाया जाता है[2]

काव्यो में अश्वघोष का व्यक्तित्व

विषय-प्रधान काव्य मे कथा प्रवाह रहने से यद्यपि आपातत कवि का व्यक्तित्व लुप्त-सा होता है, किन्तु उनकी तरलता वही विद्यमान रहती है। उपर्युक्त दोनो काव्यो का अध्ययन करने से, अश्वघोष का व्यक्तित्व, उसकी कलात्मकरुचि और मान्यताओ का ज्ञान सहजरीत्या हो जाता है। अनुश्रुति है कि अश्वघोष बौद्ध-धर्म स्वीकार करने के पूर्व जन्म से ब्राह्मण थे और इसकी स्पष्ट झलक, बुद्ध चरित तथा सौन्दरानन्द—दोनो काव्यो मे स्थान-स्थान पर प्रयुक्त पौराणिक आख्यानो, वृत्तो, घटनाओ तथा दार्शनिक सिद्धान्तो से मिलती है। अश्वघोष बौद्ध-दर्शन से प्रभावित है। इन दार्शनिक

१. सौन्दरानन्द—१८।६१,
२ वही ६३, ६४

सिद्धान्तों को कवि ने सरल और घरेलू दृष्टान्तों द्वारा सुबोध शैली में समझाया है।[1]

कलात्मक मान्यता—

अश्वघोष की कलात्मक मान्यता उत्तरकालीन कवियो की मान्यता से भिन्न प्रकार की है। अश्वघोष कालिदास जैसे रस–काव्यानन्द–को साध्य न मानकर साधनरूप मे स्वीकार करते हैं। अत वे रसवादी नही और भारवि तथा माघ जैसे अलकृति रुचिकर न होने से, चमत्कारवादी भी नही। वे तो, जैसा पूर्व स्पष्ट हो चुका है, उपदेश या प्रचारवादी हैं, और अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये उन्होने काव्य-धर्म को स्वीकार किया है। उनके काव्य का लक्ष्य 'रतये न होकर, 'व्युपशान्तये' होने से 'मोक्ष प्राप्ति' है। यहा उल्लेखनीय है कि इस लक्ष्य से उनके काव्य कोरे नीतिग्रन्थ भी नही है। किन्तु बौद्धभिक्षुजन्य दृष्टिकोण होने से कालिदास की तरह अश्वघोष की सौन्दर्य दृष्टि आकर्षक न हो सकी।

आदान : अश्वघोष के काव्यों की कथाओ का आधार तथा पूर्ववर्ती काव्य ग्रन्थो का प्रभाव

अश्वघोष ने बुद्धचरित की कथा ललितविस्तर पर आधारित की है। सौन्दरानन्द की कथा का आधार 'पालि' साहित्य मे मिलता है। उदान और जातक मे तथा धम्मपद के श्लोक १३-१४ की अट्ठकथा मे नन्द की कथा उपलब्ध होती है। किन्तु पालि की नन्द कथा से सौन्दरानन्द की कथा मे अन्तर है। बौद्धग्रन्थो मे बुद्ध के द्वारा नन्द को प्रदर्शित बदरी बिना नाक व बिना कान की है, किन्तु अश्वघोष उसे कानी वर्णित करते है।

जैसा हमने इसके पूर्व उल्लेख किया है, अश्वघोष के पूर्व संस्कृत साहित्य की विशाल परम्परा, आदिकवि के रामायण और व्यास मुनि के महाभारत के रूप मे विद्यमान थी। इन आर्षग्रन्थो के अतिरिक्त लौकिक संस्कृत काव्य परम्परा अवश्य रही होगी। अश्वघोष रामायण से विशेष प्रभावित रहे है। उसने रामायण की विविध कल्पनाओ, शब्द प्रयोगो तथा उपमा आदि अलकारो से अपने काव्यो को यथेष्ट अलंकृत किया है। सिद्धार्थ के न लौटने पर नगरवासियो का रोना, रामचन्द्र के रिक्त रथ के लौटने के अवसर का स्मरण कराता है[2] बुद्ध चरित मे रामायण के दृश्यो से तुलना करते हुये कवि ने कहा है —

---

१ सौन्दरानन्द–१६, ११–१२, २८, २९

२, बुद्धचरित–सर्ग ८।८

"राजा अज के बुद्धिमान पुत्र, इन्द्र के मित्र नराधिप दशरथ से मुझे ईर्ष्या है जो पुत्र के वन जाने पर स्वर्ग चले गये, व्यर्थ आंसू बहाते हुये दीन होकर जीवित नहीं रहे।" "तब रथ छोड़कर मन्त्री के साथ पुरोहित उस राजकुमार के समीप गये, जैसे वन मे स्थित राम के समीप वामदेव के साथ दर्शनाभिलाषी मुनि वशिष्ठ गये थे।"[1] इसी प्रकार अरण्य से अपने पति के कष्टों से होने वाले सीता के शोक के अनुकरण पर सिद्धार्थ के कष्टमय जीवन के लिये यशोधरा के विलाप का वर्णन किया गया है। बुद्धचरित मे अन्त पुर मे सोती हुई स्त्रियो के वीभत्स दृश्य का वर्णन रावण के अन्त पुर के चित्रण पर आधारित है[2]।

इसके अतिरिक्त अश्वघोष के दोनो काव्य उनके पाण्डित्य तथा उपनिषद्-ब्राह्मणग्रन्थो के अध्ययन को स्पष्ट करते ही हैं।

कवि ने वशिष्ठ के लिये वैदिक अभिदान औरवशेय का (बु० च० ९-९ तथा प्रोक्षण तथा अभ्युदय शब्दो का प्रयोग (बु० च० १२।३०) किया है—बुद्ध चरित के आराड का गौतम को उपदेश महाभारत के साख्य सिद्धान्तो की शिक्षा से सादृश्य रखता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् १।२ का भाव सौन्दरानन्द के १६।१७ से तथा छान्दोग्य उपनिषद ६।८।२ का भाव सौन्दरानन्द के ११।५९ से सादृश्य रखता है। अश्वघोष भगवद्गीता से भली-प्रकार से अभिज्ञ थे। गीता का प्रभाव सौन्दरानन्द के कर्मयोग १७।१९ अभ्यास-योग। १६।२० इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य (१३।३०) आदि स्थानो पर देखा जा सकता है। सौन्दरानन्द के १४वे सर्ग का अधिकाश गीता के इन दो श्लोको की ही विस्तृत व्याख्या ज्ञात होती है[3]। अश्वघोष की काव्य प्रतिभा तथा उनके काव्यो का सौन्दर्य—आदि काव्य रामायण तथा अन्य ग्रन्थो के अध्ययन से यह तो निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि अश्वघोष रामायण से अत्यधिक प्रभावित रहे है। अश्वघोष ने रामायण की अव्याज मनोहर सरल शैली को ही अपनाया है। रामायण की तरह अनेक छन्दो का प्रयोग करते हुये भी अनुष्टुप् छन्द का ही प्रयोग अधिक किया है जो कालिदास के दोनो काव्यो मे अश्वघोष के काव्यो की अपेक्षा अनुपात मे कम है।

अश्वघोष के दोनों काव्यो मे दार्शनिक स्थलो को छोड़कर कथाप्रवाह तथा वर्ण्यविषय, सहजरूप मे विद्यमान रहता है। उत्तरवर्ती भारवि, माघ,

---

१. बुद्धचरित–सर्ग ८।७९, ९।९

२. वही सर्ग ५ अभिनिष्क्रमण

रत्नाकर और शिवस्वामी की तरह अश्वघोष कथा प्रवाह मे शृंगारीवर्णनो या चित्रमयता के द्वारा रुकावट नही डालता, किन्तु कालिदास के वस्तुविधान की तरह, अश्वघोष के वस्तुमविधान मे स्वाभाविकता, प्रवाहशीलता, सरमता तथा प्रभावोत्पादकता भी नही मिलती।

अश्वघोष के दोनो काव्यो मे रस—

अश्वघोष प्रधानत शान्त रस के कवि है और इसका सकेत उन्होने सौन्दरानन्द की पुष्पिका मे कर भी दिया है। विरोधी रूप मे या उसकी भूमिका के रूप मे अन्य रसो, वीर, करुण तथा शृगार की भी योजना की है। शान्तरस के विभाव के रूप मे अश्वघोष ने ससार की दुखमयता, नश्वरता तथा स्त्रीसौन्दर्य की बीभत्सता का वर्णन जो बुद्धचरित और सौन्दरानन्द मे किया है, सद्य प्रभावात्मक होने से विशेष रूप से द्रष्टव्य है। घर जाने के लिये तड़फते हुये नन्द को देख कोई भिक्षु नारी का बीभत्स रूप इस प्रकार सामने रखता है।

'यदि तुम्हारी वह सुन्दरी मलरूपी कीचड़ से युक्त और वस्त्र रहित हो जाये और उसके नख, दाँत व रोम स्वाभाविक अवस्था मे हो जाय तो निश्चय ही वह आज तुम्हे सुन्दर नही लगेगी। कौन जीर्ण, शीर्ण पात्र के समान झरती हुई अपवित्र स्त्री का स्पर्श करेगा, यदि वह केवल मक्षिका के पख के समान सूक्ष्म त्वचा से आवृत न हो'[1]।

बुद्धचरित के ३, ४ तथा ५ सर्ग मे तथा सौन्दरानन्द के ४ तथा १०वें सर्ग मे शृंगार रस का सरस वर्णन मिलता है। किन्तु अश्वघोष का मन बौद्ध धर्म मे प्रभावित होने से काव्य के नायक की तरह इनमे नही रमता। प्रथम अश्वघोष नारीसौन्दर्य को बौद्ध भिक्षु की दृष्टि से नही देखते, अपने इष्ट प्रभाव की भूमिका बना लेने के पश्चात्, शान्तरस के प्रभाव मे उसी नारी सौन्दर्य को अनित्य, नश्वर, क्षणिक जानकर, जर्जर—भाण्ड के समान दूषित, कलुषित एव बीभत्स समझते हैं।[2] किन्तु यह कहना 'फिर भी शान्त रस के लिये शृगार की सरसता को सर्वथा न कुचल देना' भिक्षु अश्वघोष की सबसे बडी ईमानदारी है,[3]" अश्वघोष के सौन्दरानन्द मे व्यक्त वचनो पर परदा डालना है। अश्वघोष के अनुसार राग का नाश करने के लिये, अधिक राग

१ सौन्दरनन्द ८।५१, ५२

२. वही सर्ग ६।२६

३. सस्कृत कविदर्शन डा० भोलाशंकर व्यास पृ० ६१

उत्पन्न करने की आवश्यकता है। जितना ही अधिक चटकीला रंग होगा उतना ही विराग शीघ्र होगा। इसलिये इनके शृंगारिक चित्रो मे कालिदास के समान सरसता के साथ-साथ कुत्सित ऐन्द्रियता भी नही है यह कहना भी मुझे नही रुचता। क्योकि बिना शृगार को कुचले विराग हो ही नही सकता। यहा शृंगार रस के दो एक उदाहरण प्रस्तुत करना पर्याप्त होगा, कुमार को आकृष्ट करने के लिये स्त्रिया विलास युक्त चेष्टाएं करने लगी। मद से अवनत कुछ स्त्रियो ने अपने कठिन पीन, दृढ और सुन्दर स्तनो से स्पर्श किया। मुखरसुवर्णकटिभूषणो से महीन कपडो से ढँके अपने नितम्बो को दिखाती हुई कोई इधर-उधर घूमने लगी[1]। दूसरी युवती पणव को, जिसकी सुन्दर डोरी गले से गिर गई है सविलास सम्भोग के अन्त मे थके प्रियतम के समान दोनो जाँघो के बीच दबाकर सोई।[2] अन्य चित्र सौन्दरानन्द मे भी देखे जा सकते हैं।[3] विभावपक्ष मे अश्वघोष ने नारी का शारीरिक और गत्यात्मक सौन्दर्य का वर्णन कई स्थलो पर किया है। बुद्धचरित के ४थे सर्ग और सौन्दरानन्द के १०वें सर्ग में अप्सराओ तथा किन्नरियो के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

करुण रस के कुछ स्थल हमने इसके पूर्व निर्दिष्ट किये हैं। अश्वघोष ने चातुर्दिक वातावरण के द्वारा करुणरस की मार्मिकता को और भी बढा दिया है। कपोत-पालिका रूपी भुजाएं फैलाये हुए ये प्रासादपंक्तिया, जो प्रसक्त कपोतो से लम्बी सास ले रही हैं अत पुरिकाओ के साथ मानो अत्यधिक रो रही है[4]।

वीर रस का समावेश अश्वघोष ने बडे ही कलात्मक रूप से किया है। जैसा हमने समरप्रसग के अवसर पर देखा है, मूर्त और अमूर्त का समर प्रसंग मूर्तसमर प्रसग की अपेक्षा कहीं अधिक कलात्मक तथा महत्वपूर्ण होता है। अश्वघोष ने दोनों काव्यो में मार-जय प्रसग रूपक के द्वारा चित्रित

---

१ बुद्धचरित सर्ग ४।२५, २९, ३५

२ 'पणव युवतिभुजासदेशादवविस्त्रसितचारुपाशमन्या।
सविलास रतान्ततान्मूर्वोविवरे कान्तमिवाभिनीयशिश्ये।
बु० च० ५।५६

३. ४।१।१९। सौ० नन्द

४. बुद्धचरित ८।३७ सौ० न० ६।३०

किया है। सिद्धार्थ तथा नन्द मार की सेना को बोधिअङ्गरूपी तेज शस्त्र लेकर (स्मृति धर्म वीर्य, प्रीति, प्रश्न, समाधि, उपेक्षा) जीतते हैं[1]।

प्रकृति सौन्दर्य

बौद्धभिक्षु अश्वघोष संस्कृत के उपलब्ध विदग्ध महाकाव्यों के प्रारम्भिक कवि हैं। उनमे धार्मिक स्वर प्रधान होने से उनका मन प्रकृतिसौन्दर्य मे भी नही रमता, सम्भवत: उनके मत में यह भी एक विकृति का कारण हो फिर भी मूल रूप से सभी परपराओ का प्रत्यक्ष रूप इसके काव्यों मे ढूढा जा सकता है। प्रकृति को उपस्थित करने का जो क्रम उत्तरवर्ती महा-काव्यो मे मिलता है, अर्थात् घटनाओ प्रसंगो के अनुरूप प्रकृति वर्णनका न होना अश्वघोष के काव्यो मे नही मिलता। अश्वघोष ने प्रकृति को वाल्मीकि की दृष्टि से देखने का प्रयत्न नही किया है। हाँ, वे प्रकृति के उद्दीपन रूप से भलीभाँति परिचित है। सौन्दरानन्द मे सप्तम सर्ग का प्रकृति वर्णन वियोगी नन्द के लिये उद्दीपन रूप मे ही वर्णित है। बुद्धचरित के चौथे सर्ग मे भी प्रकृति का यही रूप मिलता है। अश्वघोष ने सौन्दरानन्द के दसवे सर्ग के आरम्भ मे हिमालयवर्णन किया है किन्तु वह भी प्रकृति के चित्र का बिम्ब उपस्थित करने मे असमर्थ होने से एक नीरस तथा शुष्क हो गया है। जैसा ऊपर कहा है, कि मानव जीवन तथा क्रीडाओ के आरोप द्वारा उद्दी-पन का प्रभाव उत्पन्न करने वाले चित्र भी अश्वघोष मे मिल जाते है।

आम की शाखा से आलिगित होता तिलक वृक्ष ऐसा दिखाई देता है जैसे श्वेतवस्त्रधारी पुरुष पीत अग रागवाली स्त्री से आलिंगित हो रहा है। सरोवर की कल्पना प्रमदा के रूप मे करते है।

"तीर पर उत्पन्न होने वाले सिन्दुवारो से आच्छादित दीर्घिका ऐसी दिखाई देती है, जैसे श्वेतवस्त्र से आवृत कोई प्रमदा सो रही हो।" इस प्रकार मानव के सुख-दुःख से सुखी तथा दुःखी तथा उसके लिये उद्दीपन की सामग्री प्रस्तुत करने वाली प्रकृति के चित्र इसके काव्यो मे मिल जाते हैं। इन चित्रो मे कालिदास की प्रकृति के चित्रो का मूल विद्यमान है। प्रकृति और मानव-जीवन के सहज सम्बन्ध को द्योतित करने वाली प्रकृति के चित्र अलौकिक रूप वातावरण निर्माण के रूप अश्वघोष के ही काव्यो मे मिलना

---

१ तत स बोध्यग शितात्तशस्त्र सम्यक् प्रधानोत्तम–वाहनस्थ मार्गांग मातंगवता बलेन शनै शनै क्लेश चमं जगाहे। सौ न० १७।२४

ब० च० सर्ग १३, सौ० न० सर्ग–१७।

प्रारम्भ होते हैं। प्रकृति का अलौकिक रूप में होना, अश्वघोष ने बुद्धचरित के प्रथम सर्ग मे बुद्ध के जन्म पर तथा शाक्यमुनि तथा मार के युद्ध के पूर्व वर्णित किया है[१] उसी प्रकार कवि इस सम्बन्ध मे अनुरूप प्रकृति के द्वारा चारित्रिक सकेत तथा भविष्योन्मुखी घटनाओ को भी प्रस्तुत करते हैं।

उपर्युक्त अश्वघोष की कलात्मक मान्यता को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अश्वघोष प्रतिपाद्य विषय वस्तु की ओर जितने सजग है उतने उसे सजाने, आकर्षक बनाने की ओर नही। मूलतः वे अभिव्यग्य की ओर अधिक ध्यान देते हैं। अभिव्यजनाप्रणाली छन्द, अलंकार आदि की ओर कम। और इस प्रकृति का उन्होने एक स्थान पर स्पष्टीकरण भी कर दिया है। उनके काव्य लोकसमुदाय के लिये है किसी वर्ग विशेष के लिये नही। और इसलिए उनकी शैली अव्याजमनोहर रूप लेकर आती है यत्नसिद्ध होकर नही। यही कारण है कि उनके अलकार या छन्द स्वयमेव ही प्रयुक्त होते चले जाते है। फिर भी उनके काव्यो मे साधर्म्य मलक अलकार उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा व्यतिरेक, अप्रस्तुतप्रशसा, और इसके अतिरिक्त शब्दालंकार अनुप्रास तथा यमक भी मिल जाते है। यहा एकाध उदाहरण पर्याप्त होगा।

"बुद्ध की भक्ति ने नन्द को आगे की ओर खीचकर फिर पत्नी के प्रेम ने, उसे पीछे की ओर किन्तु अनिश्चय के कारण वह न आगे ही गया और न खडा ही रहा। जैसे तरगो पर चलनेवाला राजहंस न आगे ही बढता है और न स्थिर ही रहता है[२]"।

सुन्दर किन्तु स्वाभाविक उपमा के द्वारा सहज गत्या कवि ने नन्द के हृदय का संघर्ष अंकित कर दिया है। अश्वघोष के काव्यो में (कालिदास का प्रिय) अर्थान्तर अलकार का प्रयोग बहुत ही कम हुआ हैं। किन्तु यमक के अनेक प्रकार सौन्दरानन्द मे देखने मिलते हैं और श्लेष का तो नाममात्र को भी नही। जैसे सौन्दरानन्द मे १।५६ के दूसरे पाद मे 'कर' तथा चतुर्थ पाद मे 'पुर' की आवृत्ति हुई है। ९।४६ तथा १०।५६—५७ के प्रत्येक पाद

१. बुद्धचरित १—१९, २१, २२
वही १३।२८,२९

२ सौन्दरानन्द ७।३

३ सौन्दरानन्द ४।१४, ४।४ बु० च० ८।३७, सौन्द० ९।१३ वही ८।१५ २१ सौ० १०।११, ९।१३ और ४।४२

मे यमक है। १।३ मे संपूर्ण पाद की आवृत्ति हुई है और कहीं-कहीं तो संपूर्ण श्लोक ही दुहराया गया है। (१६।२८–२९)

अश्वघोष की भाषा में प्रासादिकता पूर्ण रूप से पाई जाती है। प्रथम तो अनेक श्लोको मे समास है ही नही यदि है तो छोटे-छोटे और चार या पाँच शब्दो से अधिक लम्बे समास नही मिलते। अश्वघोष ने साधारणत व्याकरण के नियमो का पालन किया है; फिर भी उनकी भाषा मे कुछ प्रयोग ऐसे उपलब्ध होते है जो उत्तरवर्ती साहित्य मे देखने नही आते जैसे सौन्द वर्ष २।५३ प्रकोष्ठ। ६।५७ नपुसकलिंग तथा मित्र (१७।५६) पुल्लिग है।

उनकी शैली वैदर्भीरीति और प्रसादगुण से समन्वित होने से कालिदास के निकट है। अश्वघोष ने निम्नलिखित छन्दो का प्रयोग किया है—

सुवदना, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित, प्रहर्षिणी, रुचिरा, उद्गता, सुन्दरी, मालिनी, वसन्ततिलका, वशस्थ, उपजाति, पुष्पिताग्रा, अनुष्टुप्। इनमें दो एक छन्द ऐसे है जिनका प्रयोग कालिदास ने नही किया है। सुवदना २ उद्गता (सौन्द० ३ सर्ग) सर्ग के अन्त मे प्रभावात्मकता लाने के लिये अश्वघोष रुचिरा या प्रहर्षिणी का प्रयोग करते हैं।

संस्कृत महाकाव्यो मे अश्वघोष की परम्परा

संस्कृत महाकाव्यो मे अश्वघोष का स्थान कई कारणो से अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिनका सकेत हमने पूर्व कर दिया है। अश्वघोष के काव्यो, (बुद्धचरित, सौन्दरानन्द) का अध्ययन करने से हमे कुछ काव्य रूढियो तथा काव्यवर्णनो तथा प्रवृत्तियो का मूल मिलता है। जिनका प्रयोग कालिदास से श्री हर्ष तक किया गया है।

आर्षकाव्य के पश्चात् सर्वप्रथम उपलब्ध संस्कृतकाव्य, जिनमे उत्तरकालीन महाकाव्यो की विदग्धता का प्रारम्भिक रूप मिलता है। अश्वघोष के ही काव्य है। शब्दचमत्कृति के उदाहरण हमे अश्वघोष के काव्यो मे मिलना प्रारम्भ हो जाते हैं। उनके अन्तर्गत यमक अनुप्रास अलंकारो का प्रयोग, व्याकरण विषयक उपमा आदि है[१]। प्रकृतिचित्रण मे भी हमे उत्तरकालीन काव्यो मे प्राप्त प्रकृति का उद्दीपन तथा अलौकिक रूप नही मिलता है। उत्तरकालीन काव्यो मे रस काव्यानन्द को साध्यरूप मे न मानकर साधन रूप में स्वीकार दर्शन या शास्त्र की शिक्षा देने का भी काव्य का लक्ष्य या एक रूप रहा है, जो यहीं से प्रारम्भ होता है। अश्वघोष मे ही

१. सौन्दरानन्द १२।९

सर्वप्रथम बुद्धचरित के तृतीय सर्ग में वनविहार के लिये जाते राजकुमार को देखने के लिये लालायित प्रमदाओ का वर्णन मिलता है जो रघुवंश, कुमार-सम्भव, शिशुपालवध, जानकीहरण, रावणार्जुनीय व नैषध आदि में मिलता है। दूसरी रूढि-वृक्षो के द्वारा वस्त्राभरणों को देना जो शाकुन्तल में देखने मिलती है[1]। ये दोनो रूढ़िया तथा अन्य परम्पराएँ मूल रूप से अश्वघोष की न भी हो, किन्तु हमे सर्वप्रथम इनके ही काव्यो में देखने मिलती है। यद्यपि हमारे प्रबन्ध की विषय सीमा में (कालिदास से श्रीहर्ष तक) अश्वघोष नही आते, कालिदास की साहित्यिक पृष्ठभूमि के रूप मे स्थित अश्वघोष का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक होने से प्रस्तुत किया है।

कुमार-संभव : कवि परिचय

बहुमुखी प्रतिभाशाली महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ट कवि है। यह महाकाव्य निर्माता, नाटककार और गीतिकाव्य कर्ता था। उसके प्रमुख ग्रन्थ ये है —(क) महाकाव्य—कुमारसभव, रघुवश। (ख) नाटक—मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञानशाकुन्तल, (ग) गीतिकाव्य-ऋतुसंहार, मेघदूत।

जीवन तथा तिथि—

कालिदास के जीवन तथा तिथि के विषय मे विद्वानो का ऐकमत्य नही है। इसका प्रमुख कारण यह है कालिदास ने स्वयं अपने विषय मे कुछ नही लिखा। किवदन्तिया उन्हे, मूर्ख बताती है और काली के प्रसाद द्वारा वे किस प्रकार जगत् प्रसिद्ध महान् कवि बने इसका सकेत भी कर देती हैं। कुछ विद्वान उन्हे कश्मीरी, मानते है, कुछ बगाली और कुछ मालव निवासी। अन्तिम मत से ही मै सहमत हू। उनकी तिथि के विषय मे भी तीन मत है। (१) इसके अनुसार उन्हे छठी शती का माना जाता है। (२) इसके अनुसार

१ वही १०।२३

(1) Ed —A. F Stenzler, with Latin trs. (1–VII) London (1838), Ed. T. G. Shastri with Comm of Arunagini and Narayana (I–VIII) Trivandrum Skt. Ser. 1913–14 Cantos VIII–XVII. First published in Pandit old series Also Ed –N. B. Parvanikar K. P Parab and W L. Pansikar, with Commentary of Mallinatha (I-VIII) and Sitarama (IX–XVII) N. S. P. 5th Ed –Bombay Eng Trs. R T S Griffith, 2nd London 18/9 It has been translated into many other Languages, and edited many times in India.

ई० पू० प्रथम शती मे उन्हे माना जाता है और (३) तीसरा मत कालिदास को गुप्त काल में रखने का पक्षपाती है। चन्द्रगुप्त ने ई० स० ३८० से ४१३ तक राज्य किया। इसलिये कालिदास का समय चौथी शती के अन्त में या पांचवी शती के प्रारम्भ मे होना चाहिये। हमने उनके काव्यो कुमार संभव व रघुवंश के अध्ययन के अनुसार अन्तिम मत को ही स्वीकार किया है जिसका संकेत पूर्व किया जा चुका है।

कुमारसंभव उपर्युक्त कवि के दो महाकाव्यो मे से एक है। इसकी रचना भी प्रथमेतर महाकाव्य (रघुवश) से पहले की है। सप्रति उपलब्ध कुमार-संभव की प्रतियों मे १७ सर्ग हैं जिनमे कुछ विद्वानो के अनुसार कालिदास का मूलकाव्य तो प्रथम सर्गसे अष्टम सर्ग तक ही था तथा शेष नौ सर्ग किसी अन्य कवि के द्वारा जोड दिये गये है। सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की संजीविनी टीका भी प्रथम ८ सर्गों पर ही मिलती है किंवदन्ती के अनुसार अष्टम सर्ग के शिव-पार्वती के सभोग-वर्णन के कारण कवि को कुष्ठ हो गया था तथा काव्य अधूरा ही रह गया।

कथा भाग

एक समय ब्रह्मा के वरदान से उद्धत तारकासुर नामक दैत्य चौदह भुवनों का नाश करने के लिये धूमकेतु के समान उत्पन्न हुआ। उससे त्रस्त होकर देवो ने उसके नाश के लिये देवसेना का अधिनायक उत्पन्न करना चाहा। देवो ने ब्रह्माजी के आदेशानुसार शिव और पार्वती का विवाह करा दिया। दोनों के सयोग से कुमार कार्तिकेय का जन्म हुआ (सभव)और केवल छह दिनों में कुमार ने देवो की सेना का सेनापतित्वकर तारक का वध करने मे प्रकट किये महिमातिशय के अपूर्व पराक्रम का वर्णन जिसमें है, वह कुमारसभव काव्य[1]। सर्गानुसार कथा इस प्रकार है—हिमालय वर्णन से प्रथम सर्ग प्रारम्भ होता है। आगे पार्वतीजन्म और उसके शैशव तथा यौवन का मनोरम वर्णन है। एकबार नारद ने भविष्य-वाणी की कि पार्वती का विवाह शिव के साथ होगा इसलिये युवती होने पर भी हिमालय ने उसके विवाह का प्रयत्न नही किया।

उस समय भगवान शकर हिमालय पर तप कर रहे थे। उनकी सेवा के लिये हिमालय ने अपनी पुत्री पार्वती को आज्ञा दी(सर्ग १)। इसी समय तार-कासुर के क्लेशो से त्रस्त होकर त्राहि-त्राहि करते देवतालोग ब्रह्मा जी के

१ (कुमारस्य = स्कन्दस्य) सम्भव· उत्पत्तिर्महिमातिशयश्च यत्र तत्

शरण में गये । देवताओ की स्तुति से प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने देवताओ से कहा 'अपने हाथ से लगाया विषवृक्ष भी अपने हाथ से काटना जिस प्रकार अनुचित है उसी प्रकार हमारे वरदान से ही बढा हुआ तारकासुर का नाश हमसे ही नष्ट होने योग्य नही है'[1] ।

आप लोग यत्न कर शकर-पार्वती का विवाह कराइए । उनसे उत्पन्न पुत्र तारकासुर को मारकर आप लोगो को भयमुक्त करेगा (सर्ग २) इन्द्रने अपनी सभा में कामदेव को बुलाया और समाधिस्थ शकर के हृदय मे पार्वती के प्रति कामवासना उत्पन्न करने का कार्यभार सौपा । कामदेव अपनी पत्नी रति तथा मित्र वसत को लेकर हिमालय पर गया । परिणामत अकाल ही वसत का प्रादुर्भाव हुआ । द्वार पर बैठे नन्दी की आख बचाकर ध्यानस्थ बैठे हुये शंकर के लतागृह में मदन ने प्रवेश किया । कालान्तर से समाधि टूटने पर शंकर की अनुमति से नन्दी ने पार्वती को भीतर आने की आज्ञा दी पार्वती ने शंकर के चरणों मे पुष्पाजलि अर्पण की और मन्दाकिनी नदी मे उत्पन्न हुए कमलों के शुष्क बीजो की माला शिवजी को अर्पण करने के लिये अग्रसर की । माला स्वीकार करते समय अच्छा अवसर पाकर मदन ने अपने धनुष पर सम्मोहन नामक बाण चढ़ाया । फलत शिवजी की चित्तवृत्ति क्षणभर के लिये दोलायमान हो उठी, किन्तु उन्होने उस चचल वृत्ति को स्थिर कर, चित्त को अपने वश मे किया और वे चित्तविक्षोभ के कारण का शोध करने लगे । आसमन्तात दृष्टि उठाने पर कामदेव को धनुष पर बाण चढाये सम्मुख देखा ।

बस फिर क्या था अत्यन्त क्रोध मे आकर भृकुटी को टेढी किये हुए शंकर के ललाटस्थ तृतीय नेत्र से जाज्वल्यमान आग की लपट बाहर निकली और प्रभो क्रोध को रोकिये' 'क्रोध को रोकिये' यह देवताओ की आवाज आकाश मे फैलती है तब तक आग ने मदन को भस्मसात् कर दिया(सर्ग ३)अपने पति का इस प्रकार अन्त देख, रति मूर्छित हो गई और विलाप करने लगी मदन का मित्र वसन्त भी वहा आया और दुःख के कारण रति देह त्याग करना ही चाहती थी । इतने मे आकाश वाणी हुई 'हे सुन्दरि' ! तुम्हे प्रियसंयोग अवश्य प्राप्त होगा । शिव-पार्वती के विवाह के अवसर पर मदन पुनर्जीवित होगा । तब तक तू अपने शरीर की रक्षा कर(सर्ग ४)। मदन का अन्त देख पार्वती ने शिवप्राप्ति के लिये उग्र तपस्या आरम्भ की । उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर शकर ब्रह्मचारी बटु के वेष मे पार्वती के पास आये । पार्वती ने श्रद्धा के साथ

१. कुमारसभव २।५५

ब्रह्मचारी का स्वागत किया । ब्रह्मचारी ने उनसे प्रश्न किया कि सब प्रकार के अनुकूल साधनो के होने पर भी इस नवीन वय मे (यौवनकाल मे) तपस्या करने का क्या प्रयोजन है ? पार्वती की सखी के द्वारा तपस्या का प्रयोजन (शिवप्राप्ति) ज्ञात होने पर ब्रह्मचारीजी ने शकर की यथेष्ट निन्दा की। शिव की निन्दा सुनकर पार्वती क्रोधित हुई और उनकी बातो का तर्क पूर्ण खडन कर, शिवजी को वरण करने का अटल निश्चय सूचित किया। शिव-निन्दा सुनकर क्रोधित हुई पार्वती ने जब उस वाचाल बटु के ओष्ठ पुन. स्फुरित देखे, तो पार्वती वहा से जाने लगी। उसी समय शकर ने भी ब्रह्मचारी के वेष को तजकर (शंकर-स्वरूप से) मुस्कराते हुये पार्वती को पकडकर बोले 'आज से मैं तुम्हारे तप से क्रीत दास हूं'। (सर्ग—५) इसके पश्चात् शिवजी ने अरुन्धतीसहित सप्तर्षियो को भेजकर पार्वती की सगाई मागी। इसके उत्तर मे हिमालय ने पत्नी से विचार-विमर्श कर शंकर का यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया। (सर्ग—६) शुभमुहूर्त मे पार्वती के साथ शंकर का पाणिग्रहण सस्कार हुआ। इस मागलिक अवसर पर पार्वती की वेषभूषा का उनकी सखियों से किये हुए परिहास पूर्ण विनोद का विवाह के लिये प्रस्थान करते समय शिवजी के परिवार का उनके नगर प्रवेश के समय नागरिक स्त्रियो की उत्सुकता पूर्ण त्वरा का तथा विवाहोत्सव का विस्तारपूर्वक और अत्यन्त रमणीय वर्णन सहृदय कवि ने किया है (सर्ग ७) विवाह के पश्चात् शकर ने पार्वती के साथ विविध भोग विलासो मे सैकडो ऋतुए व्यतीत की। (सर्ग ८) पुत्रोत्पत्ति में विलम्ब देखकर इन्द्रादि देवताओ ने अग्नि को कबूतर बनाकर शिवपार्वती के विलासस्थल पर भेजा। यह देखकर शिवजी को क्रोध आया किन्तु पारावत अग्नि ने उन्हे वस्तुस्थिति का पूरा ज्ञान कराया तब वे प्रसन्न हुए और उन्होने अपना वीर्य अग्नि मे स्थापित किया। अग्नि को यह सहन न हुआ और उसने इन्द्र के कथनानुसार स्वर्ग की गगा मे उसे डाल दिया (सर्ग ९) यही स्थिति गगा की हुई। गगा को भी वह सह्य न होने से, उसने वहा स्नानार्थ आई हुई छ कृत्तिकाओ के शरीर में उसे डाल दिया, फलत उनको गर्भ रह गया किन्तु उस गर्भ का भार षट्कृत्तिकाए भी सहन न कर सकी। अत उन्होने उसे वेतस वन मे डाल दिया। (सर्ग १०) इसी समय शंकर-पार्वती विमान मे बैठे हुये उसी मार्ग से जारहे थे। उनकी दृष्टि उस बालक पर पडी, वे उसे अपने वीर्य से उत्पन्न समझकर घर उठा ले आए। वह केवल छह दिन की अवधि मे बडा होकर सम्पूर्ण शस्त्र तथा शास्त्रो में पारगत हो गया (सर्ग ११) इन्द्रादिदेवताओ की प्रार्थना

करने पर शंकर ने उसे देवसेना का सेनापति बनाकर स्वर्ग भेज दिया। (सर्ग १२) स्कन्द को आगे कर देवो ने तारकासुर पर चढ़ाई कर दी। (सर्ग १३) तारकासुर ने भी लड़ाई की तैयारी की और अशुभ शकुनो के होने पर भी कुमारस्कन्द के साथ उसने युद्ध किया। परन्तु उस भयकर युद्ध मे कुमार के बाण से तारकासुर मारा गया। कुमार पर पुष्पवृष्टि हुई और इन्द्र निश्चिन्त हो गया। (सर्ग १४–१७) १७ सर्गात्मक कुमारसंभव एक पूर्ण काव्य है।

जैसा कि पूर्व देखा है। कुमारसंभव के प्रथम ८ सर्गों पर ही प्राचीन टीकाकार मल्लीनाथ ने टीका लिखी है और लक्षण ग्रन्थों मे प्रथम ८ सर्गों के श्लोक ही उदाहरण रूप मे उद्धृत किये गये हैं। इसके अतिरिक्त ९ सर्ग से १७ सर्ग तक की भाषा-भाव, विचार और शैली प्रथम ८ सर्गों से भिन्न प्रकार की होने से अन्य कवि की कृति को सिद्ध करती है। प्रथम भाग के सर्गों की अपेक्षा द्वितीय भाग के सर्गों की श्लोक सख्या कम है। २–उपमा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारो का निर्वाह भी उस चातुर्य से नही किया गया है जैसा कि कालिदास के अन्य ग्रन्थो मे दिखाई देता है। उक्त चातुर्य का अभाव 'यतिभग', 'अशुद्ध प्रयोग' तथा 'नीरस रचना' मे स्पष्ट दिखाई देता है।[1]

अत कुछ विद्वानो का यह मत है कि अष्टसर्गात्मक कुमारसम्भव की रचना ही कालिदास को अपेक्षित थी और ८ सर्गों का ही कुमारसभव पूर्ण काव्य है। अपने कथन की पुष्टि मे यह तर्क उपस्थित करते है कि गर्भाधान ही कवि को इष्ट है कुमारजन्म नही[2]। किन्तु इस मत से हम सहमत नही हो सकते क्योंकि कुमार संभव के द्वितीय सर्ग मे ही कालिदास ने देवो की प्रार्थना मे कहलाया है–तारकासुर के नाश के लिये देवसेना का अधिनायक उत्पन्न कराना चाहते हैं'। (२।५१) उक्त वचन मे कुमारोत्पत्ति तथा उससे तारकासुर का नाश प्रार्थित है। देवो

---

१. कुमारसभव

यतिभंग १०,४। अशुद्धप्रयोग—(१२, ३६) (१०,१२) (१३,२१) नीरस रचनाए (१२, ५४)।

२ स प्रियामुखरस दिवानिश हर्षवृद्धिजनन सिषेविषुः

दर्शनप्रणयिनामदृश्यतामाजगाम विजयानिवेदनात्। कुमार ८।९०

मनुस्मृति—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।

गर्भादेकादशेराज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विश ॥ २।३६

अर्थात् उमा मे नील लोहित रेत की स्थापना ही कुमारसंभव का फलागम है, फलत यह पूर्ण काव्य है, अधूरा नही।

की प्रार्थना के उत्तर मे ब्रह्मदेव ने कहा, उस शंकर का पुत्र आप लोगो का सेनापति बनकर अपने उत्कृष्ट पराक्रम से, तारकासुर के बलपूर्वक हरण की हुई देवागनाओ के उलझे हुए केश-पाशो को सुलझावेगा अर्थात् वह तारकासुर का वध करेगा। (२।६१) और इस अभीप्सित कथन की पुनरावृत्ति, कुमार-सम्भव के ८ वे सर्ग के पश्चात् कथा की पूर्ति करने वाले कवि ने कु० १२,५२ मे की है। अत तारकनाश की अपेक्षा पूर्णकर, कथा क्रियैक्य की योजना करने के लिये कुमार सम्भव १७वे सर्ग के अन्त मे ही समाप्त होना चाहिये। चाहे कालिदास ने, शृङ्गार के नग्न वर्णन से क्रुद्ध पार्वती ने शाप देने के फल-स्वरूप काव्य को अपूर्ण छोड दिया हो कथानक की पूर्ति की दृष्टि से ९ से १७ सर्ग तक की कथा आवश्यक है[1]।

कुमारसम्भव की कथा का मूलाधार

कुमार सम्भव के कथानक का आधार आर्षकाव्य रामायण और महा-भारतान्तर्गत आयी कथाएँ हैं। कथानको को अम्लान प्रतिभाशाली कालिदास ने अपनी विदग्धता से परख कर एवं सहृदयता के रस से सिञ्चित कर एक मनोरम कथानक मे परिणत कर दिया है। महाभारत के अनुशासन पर्व में अध्याय १३०-३७ कार्तिकेय के जन्म की कथा है। रामायण के बालकाण्ड मे (सर्ग ३६-३७) भी यही कथा है। किन्तु यह कथा अत्यन्त सरल, विसंगत, एवं प्राकृत अवस्था मे है। इसी प्रकार बालकाण्ड मे मदनदहन की कथा आयी है। इस प्रकार उपर्युक्त आधार (सर्ग २३) कालिदास को अवश्य ही ज्ञात रहा होगा।

रघुवंश

रघुवश कालिदास का दूसरा एव सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है। रघुवश कुमार-सम्भव की अपेक्षा परिपक्व प्रतिभा का परिचायक है। इसका विस्तार १९ सर्गों तक है। जिनमे २९ राजाओं का वर्णन है, इस काव्य में कोई समग्र इतिवृत्तात्मक कथा नही है। यह तो कई राजचरित्रों की एक मनोरम चित्र-शाला है, जिसमे दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक कई चरित्र सामने आते हैं इन चित्रों मे से कुछ ही चित्रो मे कवि का मन अत्यधिक रमा है और कुछ

---

१. ध्वन्यालोक आचार्य आनन्दवर्धन ने शंकर-पार्वती के नग्न शृङ्गार को अनुचित कहा है। ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत कारिका ६।

ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत कारिका १४।

"यत्त्वेवंविधे विषये महाकवीनामप्यसमीक्ष्यकारिता लक्ष्ये दृश्यते स दोष एव।"

चित्रो को तो चलते ढग से अङ्कित कर आगे बढा दिया है। निखिल काव्य मे कालिदास की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा ने रघु और राम के चित्र को विशेष प्रज्ञा-रंग से उन्मीलित करने का प्रयत्न किया है। रघुनामक राजा विशेष प्रतापी और दानशील हुआ था और उसके वशीय राजाओ का इस काव्य में वर्णन होने से, इस काव्य का नाम रघुवंश है[1]। रघु और राम के चित्रो के पश्चात् तपस्यारत दिलीप का प्रौढ एव गम्भीर चरित्र और अज का कोमल रूप अधिक आकर्षक बन पडा है। राजा दशरथ और कुश के चित्र कुछ समय के लिये पाठको का मन स्थिर रखते हैं। इसके पश्चात् कई राजाओ के चित्र छाया रूप मे हमारे सामने आते है और द्रुतगति से दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। अन्त मे अग्निवर्ण का करुणचित्र सामने आकर रुक जाता है। यही पर काव्य समाप्त होता है।

रघुवश की राजवशावली की सूक्ष्म स्वभाव रेखा हमने इसके पूर्व अकित की है। सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि कालिदास के ये चित्र आदर्श सम्राट् के रूप मे अकित हैं, जिनमे स्वकालीन गुप्त सम्राटो तथा वैभव-शालीसमाज का रूप निहित है। कालिदास के ये चित्र आदर्श रूप मे होने से निर्दोष अवश्य हैं किन्तु हैं इसी मानवी ससार के, अलौकिक या दूसरे लोक के नहीं।

रघुवंश : रघुवंश की सर्गानुसार कथा[2]

प्रथम सर्ग प्रस्तावना स्वरूप का है। नमन, विनय, प्रदर्शन के पश्चात् रघुवशीय राजाओ का मार्मिक शब्दो मे चरित्र-चित्रण है[3]। उसमे राजा

---

१ राजा दिलीप ने अपने पुत्र का नाम 'रघु' इसलिये रखा—

श्रुतस्य यायादयमन्तमर्भकस्तथा परेषा युधि चेति पार्थिव ।
अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थविच्चकार नाम्ना रघुमात्मसम्भवम् ।।

रघु० सर्ग ३, श्लो० २१

२ Ed A. F Stenzler, with a Latin Trs, London 1832 Ed. with the comm of Mallinath by S P. pandit, Bombay. Skt Ser 3 vols 1869–74 and by G. R Nandargikar with english trs 3rd revised ed. Bombay 1897 often edited and translated in parts or as a whole Its popularity is attested by the fact that about forty commentaries on this poem are Known.

३. अथाभ्यर्च्य विधातारप्रयतौ पुत्रकाम्यया
तौ दपतीवसिष्ठस्यगुरोर्जग्मतुराश्रमम् ।। रघुवश सर्ग १ श्लोक ३५

दिलीप कोई सन्तान न होने से वसिष्ठ जी के यहाँ जाता है। मार्ग मे प्राप्त प्रकृतिवर्णन, वसिष्ठ आश्रम उसमे राजा का स्वागत वसिष्ठ ने कहा हुआ सन्तान न होने का कारण और राजा दिलीप को सपत्नीक नन्दिनी की सेवा के लिये कही हुई आज्ञा का वर्णन है। दूसरे सर्ग मे नन्दिनी ने राजादिलीप की ली हुई परीक्षा का वर्णन है। इस सर्ग के काव्यमय प्रसगवर्णन दिलीप-सिंह संवाद, परीक्षा और नन्दिनीप्रसाद आदि हैं। तीसरे सर्ग मे गर्भवती-वर्णन, रघु का जन्म, बाल्य, दिग्विजयप्रयाण, इन्द्र के साथ रघु का युद्ध व इन्द्र का वरदान आदि का वर्णन है। चौथे सर्ग मे रघु का दिग्विजय-वर्णन और इस दिग्विजय मे प्राप्त धन का विश्वजित् नामक यज्ञ मे लगाने का वर्णन है। पाचवे सर्ग मे रघु की वीरता के दूसरे रूप दानवीरता का वर्णन है। अज का जन्म, स्वयवर के लिये अज का प्रस्थान, गन्धर्व की हस्तियोनि से मुक्तता तथा समोहन अस्त्र की प्राप्ति का वर्णन है। छठे सर्ग मे स्वय-वर वर्णन, सातवे सर्ग मे पौरस्त्रियो के अज को त्वरा तथा उत्सुकता पूर्ण देखने का वर्णन, अज और इन्दुमती का विवाह। और मार्ग मे अज का अन्य राजाओ के साथ युद्ध। आठवे सर्ग मे अज का इन्दुमती के साथ उपवन मे विहार, इन्दुमती की नारद की माला से मृत्यु, अज का विलाप, वसिष्ठ का अज के लिये उपदेश, नवे सर्ग मे दशरथ की मृगया एव मुनि का शाप, दसवें सर्ग मे अनुष्टुप् छन्द मे रामजन्म तक का वर्णन। ग्यारवे सर्ग में ताटकावध, शिवधनुर्भंग और विवाह वर्णन है। १२वे सर्ग मे रामवनवास, सीताहरण, रावणवध, व सीताशुद्धि। १३वे सर्ग मे विमान द्वारा अयोध्या मे आते समय राम ने सीता को बतलाये हुए पूर्व परिचित स्थलो का वर्णन। १४वें सर्ग मे सीता-त्याग, लक्ष्मण का सीता को वन मे छोड आना, सीता का राम को सन्देश। १५वे सर्ग मे शबूकवध, राममभा मे रामचरित गायन, भूमि मे सीता का अदृश्य होना। १६वें सर्ग मे राम के पश्चात् अयोध्या की दशा कुश का पुन अयोध्या मे आना और कुश को कुमुद्वती की प्राप्ति। १७वें सर्ग मे अतिथि का राजसिंहासन पर बैठना और राजनीति के अनुसार उसके व्यवहार का वर्णन है। १८वें सर्ग मे २१ राजाओ का वर्णन है। जिनमे से २० राजाओ का वर्णन करने में कवि ने प्रत्येक के लिये १ या २ श्लोको से काम लिया है। अन्तिम सर्ग १९ में अग्निवर्ण के चरित्र का वर्णन है। इस काव्य का १९वें सर्ग मे आकस्मिक अन्त देख कुछ विद्वान् अधिक सर्गों की कल्पना करते हैं। हो सकता है कि यह काव्य भी कुमार संभव की तरह अपूर्ण ही रह गया हो क्योंकि विष्णुपुराण मे अग्निवर्ण के पश्चात् और भी आठ राजाओ का वर्णन मिलता है।

रघुवंशीय राजचरित्रों का आधार

रघुवंश की प्रस्तावना स्वरूप प्रथम सर्ग मे कालिदास ने अथवा कृतवाग्द्वारे वंशे स्मिन् पूर्वसुरभि कहकर (अपने) पूर्व रचित ग्रन्थो की ओर संकेत अवश्य कर दिया है। रघुवंश मे राम कथा मुख्य होने से स्वभावतः ही कवि ने वाल्मीकि रामायण का आधार ग्रहण किया है। नवम सर्ग से १५ सर्ग तक कालिदास ने वाल्मीकि रामायण का सहारा लिया है किन्तु वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त किन अन्य ग्रन्थो का सहारा लिया है, यह अभी तक ठीक-ठीक ज्ञात नही हुआ है। पुराणों मे भी रघुवशीय राजाओं की नामावली दी गई है, किन्तु इस नामावली से रघुवश मे दी हुई नामावली के क्रम मे बहुत अन्तर हैं। जैसे रघुवश मे दिलीप और रघु के बीच किसी राजा का नाम नही आता, जबकि वाल्मीकिरामायण मे दो, वायुपुराण मे १९, और विष्णुपुराण मे १८ राजाओ के नाम आते हैं। इन ग्रन्थों मे रघुवशीय राजाओं के नामनिर्देश के अतिरिक्त कोई विशेष सूचना नही दी है। ऐसी स्थिति मे राजाओं के चरित्र पर प्रकाश डालना ही अपने सामने अन्य ग्रन्थो के अस्तित्व की सूचना देना है। भास के 'प्रतिमा' नाटक मे दिलीप से लेकर दशरथ तक का क्रम रघुवंश के अनुसार ही मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि इन दोनो कवियो ने समान ग्रन्थो का आश्रय लिया है।

महाकाव्य की दृष्टि से दोनो ही काव्य भव्योदात्त हैं, किन्तु एक की भव्योदात्तता दूसरे की भव्योदात्तता से कुछ भिन्न प्रकार की है। कुमार-सम्भव महाकाव्य का कथानक १७ सर्गों मे तथा ११ सौ श्लोको मे ग्रथित है, जबकि रघुवंश राज-चरित्रों का वर्णन १९ सर्गों मे तथा १५६९ श्लोको मे है। किन्तु कुमार-सम्भव का कथानक एक समग्र, आदि, मध्य और अन्त से समन्वित रूप मे सामने आता है। जब कि रघुवश में एक ही कुल के विभिन्न राजाओं के चरित्रो का गुणानुवाद एक समन्वित तथा एकसूत्र मे ग्रथित करने का सफल प्रयास है। उसमे भिन्नता मे भी एक सूत्रता ढूंढी जा सकती है। कथानक के अनुरूप कुमारसम्भव का विषय भी भव्य और महान हैं। त्रैलोक्य को अपनी निरकुश सत्ता से त्रासित करनेवाले अनियन्त्रित तथा अन्यायी 'तारकासुर' की आसुरी सत्ता के विनाश का चित्रण ही इस काव्य का प्रधान विषय है। "वस्तुतः इस काव्य के विषय की महानता रामायण-महाभारत पूर्वकालीन दो परस्पर सस्कृति के मानव वंशो के मिश्रण मे निहित है। शंकर प्राकृत, अविकसित और महापराक्रमी जाति तथा वंश की देवता हैं।

शिव-पार्वती का विवाह शंकर-संस्कृत तथा आर्य-संस्कृति के ऐक्य का द्योतक है। कवि ने इस ऐक्य का समर्थन अनेक स्थानों पर किया है। इस प्रकार कुमारसम्भव की घटना दैवी और आसुरी शक्तियों के संघर्ष से जन्य है। अत उसमें स्थल और काल की दृष्टि से पार्थिवता कम है। उसमे प्राय: अतिमानुष शक्ति का व्यवहार अधिक होने से अद्भुतता का सर्जन अनायास ही हुआ है। इसके विपरीत रघुवंश की भव्योदात्तता मानवीय अंश में दैवी अंश के मिश्रण से उत्पन्न हुई है। एक में स्वर्ग पृथ्वी की ओर आया है, तो दूसरे मे पृथ्वी ही अपने आदर्शों के स्वर्गीय वातावरण उत्पन्न करने मे सफल हुई है। रघुवंश की घटना तथा विषय, स्थल, काल तथा राजवंश के वर्णन से मर्यादित है। वर्ण्यव्यक्ति मूलत. मानवी होने से वातावरण यथार्थ स्तर का है।

वस्तुत कालिदास ने अपने काव्यो मे सर्वत्र असम्भावित या काल्पनिक पात्रों का या घटनाओ का चित्रण सम्भावित या यथार्थ भूमि पर कर, संभावना पक्ष की रक्षा की है। उनके पात्र देव या काल्पनिक होने पर भी, काल्पनिक प्रतीत नही होते। इसमे वे पूर्ण सफल हुए हैं। कुमार-सम्भव के देव मानवी विचारो की अभिव्यक्ति करते हैं[२], तो रघु के वर्ण्यपात्र स्वर्गीय या आदर्श उदात्तता से आक्रान्त है। स्वर्ग, पृथ्वी, मानुष, अमानुष, व अतिमानुष, इतिहास, पुराण, सत्य और अद्भुत का एक असाधारण रसायन तैयार करते हुए कालिदास ने पार्वती के प्रणय को दैवी रूप न देकर शुद्ध मानवी रूप दिया है। यही मानवीरूप सहृदय-पाठक के साधारणीकरण का कारण बनता है।

कालिदास के महाकाव्य (संस्कृत के अन्य महाकाव्यो की अपेक्षा, जिनमे केवल बाह्य लक्षणों की पूर्तिकर, महाकाव्यों की श्रेणी मे स्थान

---

१. संस्कृत काव्याचे पंचप्राण डॉ० के० ना० वाटवे।

पृ० ३२-३३ और ८८

१. "कुमारसम्भव का कोई पात्र मनुष्य नही है। जो प्रधान नायक हैं, वे स्वय परमेश्वर हैं। नायिका परमेश्वरी है। ... इसी प्रकार मनोवृत्तियों को लेकर कवि ने नायक-नायिका बनाकर लोगों की प्रीति के लिए लौकिक देवताओं के नाम से उनका परिचय दिया है। ... इसका कारण यही है कि कालिदास ने देव-चरित्र को मनुष्य-चरित्र के साँचे मे ढालकर उसमे अमित माधुर्य भर दिया है।"

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय-प्रकृत और अतिप्रकृत, बंकिम ग्रन्थावली,

पृ० ५६-५७।

प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया है) उन उच्च कोटि के महाकाव्यों की श्रेणी मे आते हैं, जिनमे महान् विषय महदुद्देश्य और गुरुत्व जैसे आवश्यक और शाश्वत लक्षणों की पूर्ति अम्लान-प्रतिभा के द्वारा की गई है। इसका प्रधान कारण है उनका प्रतिभाशाली व्यक्तित्व।

वस्तुत: कालिदास के व्यक्तित्त्व का निर्माण तात्कालिक युग की मान्यताओ और भारतीय सस्कृति के अवयवभूत सिद्धान्तो द्वारा हुआ है। उसके काव्यो मे तात्कालिक युग की चेतना का प्रतिबिम्ब सस्कृत के अन्य महाकवियो के काव्यो की अपेक्षा अधिक तरलित हुआ है। उसे इस प्रकार देखा जा सकता है —

(१) महान् त्याग की परम्परा—

इसपर कुछ विचार करने के पूर्व कालिदास की पृष्ठभूमि मे स्थित स्मृति-प्रोक्त वर्णाश्रम धर्म एव पौराणिक धर्म, पद्धति तथा गुप्त सम्राटो एव नागरिको के उज्ज्वल जीवनक्रम को ध्यान मे रखना आवश्यक है। डॉ आटवे जी के शब्दो मे—दोनो ही काव्यो मे आर्यों की त्याग प्रधान संस्कृति की निदर्शक, त्याग की अक्षुण्ण परम्परा विद्यमान है। तारकासुर के विनाशार्थ द्यावापृथ्वी की ऐक्य भावना की वेदीपर महान त्याग यज्ञ प्रारम्भ हुआ। इस यज्ञ मे सभी होताओ—शकर, पार्वती, मदन, रति, अग्नि, भागीरथी और कृत्तिका—को अपने-अपने स्वार्थ की आहुति देनी पडी। शिरीषपुष्प से भी अधिक कोमलागी पार्वती जैसी राज्यकन्या को अपनी शारीरिक सुख की कोमल कल्पनाओ का तपस्या मे त्याग करना पडा। शकर जैसे निवृत्तिमार्गी योगी को लोक रक्षणार्थ गृहस्थाश्रम का सार्वजनिक प्रवृत्तिमार्ग स्वीकार करना पडा। लैगिक-क्रीडा के द्वारा स्त्री-पुरुष का प्रेम प्रतिपादित करने वाले कामदेव को भस्म होना पडा। अग्नि को कुष्ठ, भागिरथी को दाह की ज्वाला तथा कृत्तिकाओ को लोकापवाद की भय-यातनाएं भोगनी पडी। इस स्वार्थ त्याग जैसे भव्य और महान विषय का वर्णन कालिदास ने इस महाकाव्य मे किया है।

राजधर्म मे त्याग का महत्त्व बतलाने के लिये कालिदास ने रघुवंशी अनेक राजाओ को त्यागी वर्णित किया है। दिलीप ने क्षात्र धर्म की रक्षा के लिये अपने शरीर का, रघु ने यज्ञ के लिये सर्वस्व का, (त्याग) अज ने अपनी पत्नी के लिये स्वप्राण का, दशरथ ने अपने औदार्य की रक्षा के लिये स्वपुत्रों का, रामचन्द्र ने प्रजानुरंजन के लिये सीता का और कुश ने इन्द्र की सहायता के लिये अपने प्राणो का त्याग किया। रघुवश के दूसरे

सर्ग मे सिंह–दिलीप संवाद एक नाटकीय सवाद रूप मे त्याग की ही पार्श्व भूमि पर स्थित है। जिसमे उपयुक्ततावादी सिंह पर ध्येयवादी दिलीप की विजय दिखाई गई है। इसी प्रकार रघुवश के पाचवे सर्ग मे नैतिक महत्त्व को इस प्रकार उद्घोषित किया गया है।"

"न्याय से धन का उपार्जन करना, बढाना, रक्षा करना तथा उसे सत्पात्रो को देना आदि चार प्रकार के राजाओ के व्यवहार मे स्थित रहने वाली राजा की भूमि अभिलषित वस्तुओ को पैदा करने वाली यदि हो, तो क्या आश्चर्य ?"–[१]

दोनो ही महाकाव्यो मे श्रुति-स्मृति, पुराणेतिहासोक्त सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते हुए तत्कालीन आर्य सस्कृति का महान् आदर्श कालिदास ने सामने रखा है। दिलीप से अतिथि तक सभी राजाओ के चरित्र-वर्णन मे आर्यसस्कृति को अभिव्यक्त करनेवाले उपकरण विद्यमान हैं।

जैसे —तीन ऋण (देव, पितृ, आचार्य ८।३०) आर्यों के गर्भाधान से स्मशानान्त स्मार्त सस्कार, (३।२८-३५, ८।२६) चारपुरुषार्थ, श्रौतयज्ञ, साख्य, योग, वेदान्तदर्शन, वर्णाश्रम–व्यवस्था, अन्य विद्या व कला, तपश्चरण, मुनिवृत्ति, तपोवन, भक्ति, वैराग्य, व भोग आदि के उल्लेखो ने रघुवश मे काव्यमय रूप धारणकर तत्कालीन आर्य-सस्कृति को कालिदास ने मुखरित किया है।

१ 'कालिदास के ये दोनो काव्य हेतु की दृष्टि से ध्येयवादी, वातावरण की दृष्टि से अद्भुतरम्य और मानवी स्वभाव-चित्रण की दृष्टि से यथार्थ वादी है।'

इन दोनो काव्यो मे नगर के समृद्ध विलासी[२] जीवन का चित्र जितना अच्छी तरह से प्रतिबिंबित हुआ है, उतना ही सुन्दर ग्रामीण चित्रो का भी। किन्तु ग्रामीण चित्र द्रुतगति से आकर चले जाते हैं। वस्तुत कालिदास प्रकृति से नागरिक जीवन के कवि है। साथ ही मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से पाठक के हृदय को परखने वाले। वे उत्तर कालीन कवियो की तरह अनुचित वर्णनो का विस्तार भी नही चाहते। इसलिये (रघुवश मे) वसिष्ठ-आश्रम को जाते हुए दिलीप के मार्ग मे हाथो मे मक्खन लिये ग्राम वृद्ध तथा ऊख के खेत की रक्षा करती शालिगोपिकाओ का चित्र द्रुतगति से आकर आगे बढ़ जाता है। कवि का मन जहा अयोध्या के राजमार्ग पर अधेरी रातमे अभिसरण करती कामि-

---

१. रघुवश–सर्ग ५। श्लोक–३३

२. सस्कृत काव्याचे पचप्राण डा० वाटवे पृ०—१००-१०१.

नियों तथा नागरिक जीवन की अत्यधिक समृद्ध एवं विलास पूर्ण चित्र दिखाने में विशेष रमता है। वहा उजडी हुई अयोध्या के लुप्त नागरिक समृद्ध जीवन के प्रति करुणाभाव मे भी।[१]

वस्तुवर्णन—कुमारसंभव के वस्तुवर्णन मे, हिमालयवर्णन, (सर्ग-१) वसंत ऋतुवर्णन, (सर्ग ३) शिव-पार्वती विवाहवर्णन (सर्ग ७) शिव-पार्वती-विवाह के पश्चात् रति क्रीडा के प्रसङ्ग में सन्ध्या, रजनी, चन्द्रिका आदि का वर्णन, और रूप-सौन्दर्यवर्णन मे पार्वती रूपवर्णन, (प्रथमसर्ग) आदि मार्मिक स्थल है।

इसी प्रकार रघुवंश के वस्तुवर्णन मे, महाकाव्य के लिये आवश्यक वर्ण्य वस्तुओ का वर्णन कर, कवि ने एकही वंश के अनेक राजाओ के वर्णनो मे एक-सूत्रता लाने का सफल प्रयत्न किया है। जैसे—कुमारोत्पत्ति, नगरवर्णन, पर्वतवर्णन, समुद्रवर्णन ऋतुवर्णन, मधुपानवर्णन, विवाह, युद्धवर्णन, सुरत-क्रीडावर्णन, और जलक्रीडावर्णन।

जैसे-हिमालय पर चलने वाले वायु के विषय मे कवि कहता है।—

"गङ्गाजी के झरने के जल सीकरो को वहन करनेवाला, अपनी गति से देवदारुवृक्षो को कँपानेवाला और मयूरो के पखो को उल्लसित करनेवाला हिमालय का वायु मृगों को ढूढनेवाले किरातो से सेवित किया जाता है[२]।" आगे हिमालय के ऊंचाई के विषय मे कवि कहता है—"सप्तर्षियो द्वारा तोडे जाकर, शेष बचे हुए हिमालय के ऊपर के तालाव मे उगे हुए कमल, नीचे घूमते हुए सूर्य के ऊपर उठनेवाले किरणों से खिलते है[३]।" यहाँ उल्लेख्य है कि हिमालयवर्णन कल्पनाजन्य होने से कही-कही कृत्रिमसा हो गया है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत काव्य मे 'हिमालय' एक महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में चित्रित किया गया है, ऐसी स्थिति में उसके केवल बाह्य-रूप या स्थावर रूप का चित्रण काल्पनिक दिखाई देता है।

पात्र-स्वभाव वर्णन—

पार्वती के रूप-वर्णन प्रसंग मे, शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह उत्तरोत्तर बढ़नेवाली (पार्वती की) अवस्थाविशेष द्वारा होनेवाले स्वभावगत परिवर्तनो को मनोवैज्ञानिक रीत्या प्रस्तुत करते हुए कवि ने पार्वती को विभिन्न आठ रूपों—(१-बालापार्वती अर्थात् क्रीडाशीला, २-उपवर पार्वती अर्थात् विवा-

---

१ रघुवंश १४।३०, १६।१३

२. कुमार सभवम्—सर्ग-१-१५

३. वही सर्ग-१-१६

होत्सुका लज्जाशीला, ३–विरहिणीपार्वती–अर्थात् रूपगर्विता, ४ भग्नप्रेम पार्वती, ५ तपस्विनी पार्वती अर्थात् दृढनिश्चया, त्यागी और कष्ट–सहिष्णु आदि रूप उसके शिव के साथ हुए सवाद मे दिखाई देते हैं। साथ ही उसका वाक्चातुर्य, उसकी विद्वत्ता और उसके प्रौढ विचार प्रत्येक वाक्य से स्पष्ट होते हैं। ६ विवाहवेषभूषिता पार्वती, अर्थात् हरसङ्गमोत्सुका ७ विलासिनी पार्वती, अर्थात्—मुग्धा, मध्या, और प्रगल्भा के रूप मे, साथ ही मानिनी के रूप मे। ८—माता-पार्वती और वीर-माता पार्वती–मे देखने का प्रयत्न किया है।

उल्लेख्य है कि स्त्रीपात्र का इतना विस्तृत प्रकृतिचित्रण कालिदास के पश्चात् अन्य कवियो ने (नैषधकार को छोडकर) नही किया है। रघुवंश नायक प्रधान काव्य होने से स्वभावत ही स्त्रीपात्रो की प्रकृतिचित्रण विशिष्ट गुणावबोधक बिन्दुओ मे ही किया गया है। यहाँ तक कि 'रघुवश' मे रघुपत्नी का नामोल्लेख भी नही हैं। 'सीता' भी हमारे सामने कुछ विशेष रूपो मे ही आती है।

पुरुषपात्रो मे—परस्पर विरोधी गुणोवाले शिवजी हैं। वे सदा योग मे लीन रहने वाले योगीराज के रूप मे सामने आते हैं। वे जितने उग्र व कठोर स्वभाव के हैं, उतने ही कोमल और उदार भी। राग और विराग उनके हृदय का प्राकृतिक गुण है। रघुवश के सभी राजाओ का एक विशेष स्वभाव होने पर भी अपने व्यक्तित्व से एक दूसरे से भिन्न दिखाई देते हैं। जैसे धीरगभीर दिलीप, उदार रघु, कोमल अज, वचनबद्ध दशरथ, सत्यनिष्ठराम और कामुक अग्निवर्ण। कुमारसभव मे कालैक्य, 'स्थानैक्य' की अपेक्षा क्रियैक्य साधना की सफलता की दृष्टि से रघुवश मे निराश होना पडेगा। कुमार संभव की कथा स्वय पूर्ण विकसनशील तथा निश्चित आदि और अन्त से समन्वित एक सुन्दर कथा है। काल ऐक्य की ओर कवि का ध्यान उतना नही दिखाई देता। (१) पार्वती के जन्म से मदन दहन तक का समय सभवत. १८ वर्ष का होगा। इसके पश्चात् पार्वती के द्वारा लगाये वृक्षो को फल आये। इस कथन से पार्वती की तपस्या का काल भी दीर्घ था, ज्ञात होता है। आगे शंकर-पार्वती विलास मे एक सौ ऋतु समाप्त हुये। इसके पश्चात् का काल बहुत ही अल्प है, केवल छः दिन की अवधि से कुमार तारक का वध करता है। सर्ग १५।३४ स्थल की दृष्टि से हिमालय प्रदेश ब्रह्मलोक 'स्वर्ग व तारकासुर से हुए युद्ध की समर भूमि में इस महाकाव्य में कार्तिकेय धीरोदात्त नायक हैं। महाकाव्य मे आवश्यक वर्ण्य विषयों का वर्णन है। (वस्तुवर्णन देखें) इसके विपरीत रघुवंश में अनेक नायक हैं। अतः उसमें क्रियैक्य का अभाव है।

आदान: पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव—

हम इसके पूर्व काव्य मे उपजीव्य और उपजीवक-भाव के विषय मे विचार कर चुके हैं। राजशेखर के कथनानुसार यहा अब इतना ही कहना ठीक होगा 'सर्वोपि परेभ्य एव व्युत्पद्यते' प्रत्येक कवि काव्य रचना की प्रारम्भिक अवस्था मे अपने पूर्वकालीन काव्य ग्रन्थो का आधार लेकर चलता है और बाद मे ज्ञात या अज्ञात रूप से उसकी अपनी कृति रचना मे उनका प्रभाव अवश्य ही दिखाई पडता है।

साथ ही यहा यह उल्लेख है कि अपने काव्य मे किसी पूर्ववर्ती कवि द्वारा वर्णित किसी भाव विशेष को या विषय-शैली को अपनाने मात्र से ही हम उस कवि को या उसकी कृति को उत्कृष्ट कवि की कोटि से या उत्कृष्ट काव्य की कोटि से हटा नही सकते। उसकी उत्कृष्टता, वर्णित स्थल, भाव की मार्मिकता पर निर्भर है। यदि उस कवि के भावुक हृदय ने पूर्ववर्णित भाव-विशेष की मार्मिकता को वस्तुतः पहचाना है, तथा उसके काव्य मे उसकी सफल अभिव्यञ्जना हुई है तो निश्चय से कवि की कृति अभिनव एव उत्कृष्ट है। अत इस प्रकार से उपजीव्य-उपजीवक भावको को हम अवर नही कह सकते इसके पूर्व हम कालिदास के पूर्वकालीन कवियो के ग्रन्थो का सिंहावलोकन कर चुके है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने अपने पूर्ववर्ती कवियो के विषय मे दो स्थानो पर उल्लेख किया है। (१) रघुवश मे (२) मालविकाग्निमित्र नाटक की भूमिका मे। आज कालिदास के पूर्व कालीन श्रव्य काव्य[१] रामायण और बुद्धचरित्र तथा सौन्दरानन्द, दृश्य काव्यो मे केवल भास के नाटक आदि को छोड़कर कोई अन्य ग्रन्थ नही मिलते। वर्तमान उपलब्ध काव्यो मे सबसे प्राचीन काव्य रामायण है जिसकी कल्पनाओ, शब्दप्रयोगो उपमा आदि अलंकारो से कालिदासादि उत्तरकालीन कवियो ने अपने काव्यों को अलंकृत किया है। कुमारसभव और रघुवशकाव्य पर रामायण के प्रभाव को हम पीछे देख चुके है फिर भी एकाद उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है।

विश्वामित्र के साथ राम लक्ष्मण यज्ञ की रक्षा के लिये जब अयोध्या से निकले तब वाल्मीकि जी कहते हैं उस समय धूलरहित सुखदायिनी

---

१. अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेस्मिन् पूर्वसूरिभि ।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गति ।। रघु १—४

२ भाससौमिल्लककविपुत्रादीना प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियाया कथ बहुमान । मालविकाग्निमित्र नाटक की भूमिका

वायु चलने लगी। कमलनयन श्री राम को विश्वामित्र के साथ जाते देख देवताओ ने आकाश से वहा फूलों की बडी भारी वर्षा की। देव-दुन्दुभिया बजने लगी। महात्मा श्री राम की यात्रा के समय शखों व नगाडों की ध्वनि होने लगी" [1] इसी भाव को कालिदास ने रघुवश मे इस प्रकार व्यक्त किया है।

"दिशायें प्रसन्न हुई, सुखदायिनी वायु चलने लगी, अग्नि अपनी ज्वालाओ को दक्षिण दिशा की ओर कर हविर्भाग स्वीकार करने लगा इस प्रकार शुभ सूचक चिह्न होने लगे, स्वभाविक ही है—ऐसे पुरुषो का जन्म लोक-कल्याण के लिये ही होता है [2]।"

रामायण के पश्चात् विदग्ध महाकाव्यो मे अश्वघोष के दो काव्य हैं जिनका कालिदास ने अच्छा अध्ययन किया होगा। फलत कालिदास की रचना पर अश्वघोष के प्रभावजन्य समता स्पष्ट दिखाई देती है। विद्वानो ने अश्वघोष और कालिदास की रचनाओ मे प्रसग समता तथा शब्दार्थोक्ति समता, जिसमे अलकार सादृश्य भी आता है, ढूढ निकाली हैं।

जैसे—प्रसंग समता—

अश्वघोष कृत सौन्दरानन्द मे—नन्द के चले जाने पर सुन्दरी का विलाप सर्ग छ मे है। कालिदास के कुमार सम्भव मे मदन-दहन पर रति-विलाप सर्ग ४ मे समान है।

२ सौन्दरानन्द के सर्ग ७ मे नन्दविलाप तथा रघुवश मे अजविलाप सर्ग ८।

३ बुद्धचरित मे—गौतम को देखने नगर की स्त्रियां जमा हो गई। विवाहार्थ जब शिव ने ओषधिप्रस्थ नगर मे सर्ग ७ तथा रघुवंश सर्ग ७ मे स्वयंवर के बाद कुण्डिनपुर मे अज ने प्रवेश किया तब उन्हे देखने नगर की स्त्रिया एकत्र हो गई थी।

कल्पना साम्य के साथ-साथ कही-कहीं उक्ति साम्य भी मिलता है।

१:—अश्वघोष

त गौरव बुद्धगतं चकर्ष भार्यानुराग पुनराचकर्ष।
सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ तरस्तरंगेष्विव राजहस ॥

सौ० न० ४।४२

---

१ वा० रा० बाल २२, ४–५

२. दिश प्रसेदुर्मरुतो ववु. सुखाः प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे। बभूव सर्वं शुभशसि तत्क्षण भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥ रघु ३, १४

कालिदास

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसांगयष्टिर्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती ।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धु: शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ।।
कुमार ५।८५

इनके अतिरिक्त अन्य उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते है—

अश्वघोष बुद्धचरित, १०, ४ कालिदास रघु २।४७ अश्वघोष बुद्ध १।४१ कालिदास रघु ३।१४ अलंकार सादृश्य भी यत्र-तत्र मिलता है—बुद्ध ३, १९ कुमार ७।६२ रघु ७।११.

बभूव स हि संवेग श्रेयसस्तस्य वृद्धये ।
धातोरधिरिवाख्याते पठितोऽक्षरचिन्तकैः —सौन्दरानन्द १२।९

इस प्रकार की व्याकरण विषयक उपमा तथा अपाणिनीय प्रयोगो का अनुकरण कालिदास ने रघुवश मे किया है ।[1]

रस और भाव की अभिव्यक्ति—

काव्यानन्दका प्रधान रूप भावानुभूति या रसानुभूति है किन्तु इसके विपरीत चमत्कारवादी कवियो के लिये विदग्धतापूर्ण चमत्कारजन्यआनन्द ही काव्यानन्द है । कुमार सभव मे वीर रस प्रधान है और उत्साह प्रधान भाव, किन्तु भय, जुगुप्सा, विस्मय,निर्वेद आदि भावो की भी यथा स्थान मनोरम व्यञ्जना हुई है । महाकाव्यो मे प्रधान रस के अतिरिक्त अन्य रसो को भी गौण रूप में रखने का नियम है ।[2] वस्तुत जीवनमें सदा एक ही रस या भाव नही रहता कभी हास परिहास है तो कभी शोक, कभी उत्साह और वात्सल्य की धारा से गति मिलती है तो कभी निर्वेद से अवरोध भी । जीवन के इन विभिन्न रूपो में जो आनन्द है वह सदा एक से या स्थिर जीवन मे कहा ? अत काव्य में अनेक रसो की उपलब्धि समीचीन ही प्रतीत होती है । कुमार सभव में सर्ग १४ से १७ तक वीर रस है । कार्तिकेय का रणोत्साह उसका स्वर्ग की ओर प्रयाण स्वर्ग की दशा देख उसे आया हुआ क्रोध, कुमार का सैनापत्याभिषेक, देव असुरो की सेना की हलचल युद्ध तारक और कार्तिकेय का भाषण व अन्त में तारकवध । उपर्युक्त समस्त प्रसग वीर रसात्मक है। बीच-बीच में भयानक और वीभत्स उसे उद्दीप्त करने का कार्य करते है । सर्ग १५, १३-२२ अरिष्ट सूचक अपशकुन व भयकर युद्ध सर्ग १६ व सर्ग १६–२४ । शृङ्गार

१. ४, ३ । ९, ६१। १५, ९ रघुवंश कुमार २।१७
२. अगानि सर्वेऽपि रसाः सा० द. ६।३१७.

रस—इस महाकाव्य का दूसरा गौण रस श्रृंगार रस है इस दृष्टि से मदन का शंकर के तपोवन में प्रवेश, निखिल वन की मदनविद्ध स्थिति, पार्वती का आगमन और क्षणमात्र के लिये शंकर का मोहित होना।

शंकर पार्वती मिलन (सर्ग ५ अन्त) शंकर पार्वती विवाह और उनके विलास (सर्ग ७–८)—कालिदास के शृङ्गार चित्र अत्यधिक सरस हैं। कुमारसम्भव का अष्टम सर्ग का शिव पार्वतीसंभोगवर्णन यद्यपि भारतीय आचार्यों द्वारा कटु दृष्टि से देखा गया है किन्तु संस्कृत साहित्य को है वह एक अपूर्व देन। कालिदास के इस शृंगार क्षेत्र मे मानव प्रकृति तथा अचेतन प्रकृति का चेतन रूप सम्मिलित है। शृंगार के आलम्बन रूप मे कुमारसभव के १,३,७, सर्ग का पार्वती रूप वर्णन अप्रतिम है। हिमालय के वर्णन में अद्भुत, रति के विलाप व देवो के दुर्दशा वर्णन मे करुण। अजविलाप व रतिविलाप के करुण वर्णन मार्मिक होते हुए भी उतने प्रभावोत्पादक नही हैं जितना रघुवंश के १४वें सर्ग का राम की करुण अवस्था का वर्णन। शिवनिन्दा मे हास्यरस की स्वल्प छटा विद्यमान है। शंकर के तपोवन व उनकी समाधि स्थिति के वर्णन मे शान्तरस (सर्ग ३, ४४–५१) है। रघुवंश के आदर्श तथा उदात्त वातावरण मे शृङ्गार सयमित रूप मे सामने आता है। केवल अग्निवर्ण के चरित्र मे उसका मर्यादातिरेक होना वैराग्य का कारण बन जाता है। इस काव्य मे भी वीर, करुण, भक्ति शान्त, शृङ्गार, वात्सल्य, भयानक रस आदि की *मनोरम व्यञ्जना हुई है। जैसे रघु व इन्द्र का द्वन्द्व*-युद्ध सर्ग ३, रघु का दिग्विजय सर्ग ४, अज और अन्य राजपुत्रो का युद्ध सर्ग ७ राम और परशुराम का प्रसग सर्ग ११, राम रावण युद्ध सर्ग १२, आदि स्थानो पर वीर रस की व्यञ्जना हुई है। दिलीप का निस्सन्तान होना सर्ग १, अज विलाप सर्ग ८, सीतात्याग सर्ग १४, और सीता का पृथ्वी के गर्भ मे अन्तर्धान होना सर्ग १५, राम निर्वाण सर्ग १४, आदि स्थानो पर करुण रस की व्यञ्जना है। रघु का बाल्यकाल, सर्ग ३, कुशलव की बाल्यावस्था सर्ग १५, सुदर्शन का बाल्यकाल १८ आदि स्थानो पर वात्सल्य रस की मनोरम छटा है। वसिष्ठ के आश्रम वर्णन मे शान्तरस, रघु के वानप्रस्थाश्रमवर्णन मे भी यही छटा विद्यमान है। सर्ग ८ विष्णुस्तुति, सर्ग १० मे भक्ति रस। कुमार० सर्ग ३ के ७१ मे रौद्र रस की व्यञ्जना हैं। सुदक्षिणा की गर्भावस्था सर्ग ३, इन्दुमति का स्वयवर वर्णन। ६ सर्ग वसन्तऋतु वर्णन, सर्ग ९ आदि में शृङ्गार रस की व्यञ्जना है। दशरथ के अपशकुन मे भयानक रस की छटा, सर्ग ११ अग्निवर्ण के विषयोपभोग मे शृंङ्गार किन्तु अनौचित्य की दृष्टि से तथा भयानक परिणाम होने से रसाभास प्रतीत होता है। नन्दिनी

द्वारा दिलीप की परीक्षा २ सर्ग, रघु के कोष में सुवर्णवृष्टि सर्ग ५ आदि स्थानों पर अद्भुत रस की व्यञ्जना हुई है।

व्युत्पत्ति

व्युत्पत्ति के विषय में हम इसके पूर्व चर्चा कर चुके हैं। कालिदास का अध्ययन गम्भीर था, उनके काव्यो मे दर्शन, शास्त्र, राजनीति, अर्थ, नाटय, काम, ज्योतिष शास्त्र आदि का सकेत मिलता है। श्रुति, स्मृति, पुराण, दर्शन व शास्त्रों के ज्ञान से कालिदास ने अपने दोनो महाकाव्यों को अलंकृत किया है किन्तु प्रकृति से रसवादी होने से उनके इस गम्भीर ज्ञान ने भारवि, माघ, रत्नाकर आदि कवियो की तरह उनकी कलात्मकता मे किसी प्रकार विघ्न उपस्थित नही किया। जैसे—उपमा, उत्प्रेक्षा मे श्रुति का उल्लेख मिलता है। श्रुति के अर्थानुरोध से जिस प्रकार स्मृति चलती है, वैसे ही नन्दिनी के पीछे सुदक्षिणा गई। रघु २।२, ४।१ २।४—१५ ब्रह्मस्तुति कुमार मे और विष्णुस्तुति रघुवंश मे १०, १६—३७ इन स्तुतियो मे सांख्य का प्रभाव है मनुस्मृति का ९।३२२, सिद्धान्त रघुवश के ८।४ से मिलता है। राजनीतिक सकेतो मे शक्तित्रय, षड्गुण आदि पारिभाषिक शब्द भी मिलते है। रघु ३।१३ व ८-१९।२१

कौटिल्य—अर्थशास्त्र—१, १६, रघुवश ३।१२

कौटिल्य अर्थशास्त्र ७,८ रघुवश ८।२६

कुमारसंभव के शिव वर्णन मे तथा रघुवंश के अष्टम सर्ग मे रघु की की योगसाधना के वर्णन मे योगसाधना का सकेत मिलता है। (कुमार ३,४५ ५० रघु ८।१९—२४) ज्योतिष आयुर्वेद, तथा धनुर्वेद के ज्ञान का सकेत 'जामित्र' उच्च सस्थ (कुमार ७–१ रघु ३, १३) आदि सज्ञाओ से उनका ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान स्पष्ट होता है। तारकासुर को धुमकेतु (कुमार २, ३२) कहा है। रघु के १, २८ मे आयुर्वेद का संकेत मिलता है। अस्तु सगीत कला का भी ज्ञान अग्निवर्ण के वर्णन में मिलता है। कामसूत्र के सिद्धान्तो का परिचय कुमारसभव के शिवपार्वती के सभोगवर्णन मे तथा रधुवंश के अग्निवर्ण के वर्णन मे मिलता है।

काव्य सौन्दर्य

संस्कृत साहित्य मे कालिदास 'उपमा, के लिये विशेष प्रसिद्ध हैं। उपमा अलकार की सिद्धि ने उन्हें दीप-शिखा की उपाधि से विभूषित किया है। उन्होंने अपनी उपमाओ को विविध स्रोतो से ग्रहण किया है। (१) सृष्टि-पदार्थीय। (२) शास्त्रीय (३) आध्यात्मिक (४) व्यावहारिक।

उपर्युक्त उपमा के विविध क्षेत्र के अतिरिक्त उनकी उपमा मे मनोवैज्ञानिक रमणीयता यथार्थता, औचित्य तथा पूर्णता के तत्व भी निहित हैं। यहां उनकी उपमा में मनोवैज्ञानिक सकेत का उदाहरण देना उचित होगा।

जब ब्रह्मचारी की बातो से क्रोधितहो पार्वती वहां से जाने के लिये तैयार होती है तो शकर अपना रूप धारण कर उसे वहीं रोक लेते हैं उनको प्रत्यक्ष देख कोमलागी पार्वती काँपने लगती है, वहा से जाने के लिये उठाया हुआ पैर उठा ही रह जाता है। उसकी स्थिति मार्ग मे पर्वत के द्वारा रोकी हुई क्षुब्ध नदी की तरह हो जाती है। जो न आगे बढ पाती है और न ठहर पाती है[१]। उपमा के अतिरिक्त कालिदास के अन्य प्रिय अलकार वस्तूत्प्रेक्षा, समासोक्ति, तथा रूपक है। इनके अतिरिक्त कालिदास के महाकाव्यो मे अन्य अलकारो का भी प्रयोग हुआ है जिनमे अपह्नुति, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, दृष्टान्त,तुल्ययोगिता, अर्थान्तरन्यास, मालोपमा आदि प्रसिद्ध हैं[२]।उत्तरकालीन काव्यो मे प्राप्त चित्रकाव्य का शब्दालकार की बाह्य तड़क भड़क इन काव्यो मे नही मिलती। रघुवश के केवल नवमसर्ग मे यमक अलकार का प्रयोग दिखाई देता है[३]। कालिदास की शैली कोमल तथा प्रसादगुण युक्त है। वे वैदर्भी रीति के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनकी भाषा व्यजनाप्रधान है। इसका सरल उदाहरण सीता के सन्देश मे मिलता है। 'वाच्यस्त्वया मद्वचनात्सराजा' 'यहाँ राम के लिये प्रयुक्त राजा शब्द तथा उसके साथ स का प्रयोग राम के राजा रूप को ही अधिक सूचित करता है। पतिरूप को नही। अर्थात् राम केवल राजा ही हैं अत· वे अपने पतिरूप कर्तव्य को भूल चुके हैं भाव को व्यजित करता है[४]। आचार्यों ने तपस्या करती पार्वती के रूप चित्रण को ध्वनिकाव्य का उत्कृष्ट उदाहरण माना है[५]।

---

१ त वीक्ष्य वेपथुमती सरसांगयष्टिर्निक्षेपणाय पदमद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धु शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।
कुमार० ५।८५

२ कुमार० (१) ३,२५,२८ रघु० १३,३३,६३। (२) रघु० १२,२। (३) रघु० ४,४। (४) रघु० ४,४९। (५) रघु० ५, १३। (६) २,१५। (७) कुमार० २, ४०। (८) कुमार० १, २८।

३. यमवतामवता च धुरिस्थित. (९, १) 'रणरेणवो रुरुधिरे रुधिरेण सुरद्विषाम् (६, २३), (९, २८, ३१)

४. रघुवंश सर्ग १४।६१

५ कुमार० ५।२४

काव्य में छन्दोयोजना का विशेष महत्व है। विभिन्न रसो की व्यञ्जना के लिए भिन्न-भिन्न छन्द उपयुक्त सिद्ध होते हैं। काव्य में छन्दोयोजना के विषय मे हम इसके पूर्व विचार कर चुके हैं। रसवादी कवि कालिदास ने छन्दोयोजना मे विशेष सतर्कता दिखाई है। कुमारसभव मे निम्नलिखित छन्दो का प्रयोग किया गया है। (१) उपजाति, (२) मालिनी, (३) वसन्ततिलका, (४) अनुष्टुप्, (५) पुष्पिताग्रा, (६) वंशस्थ, (७) रथोद्धता, (८) शार्दूल विक्रीडित, (९) हरिणी, (१०) वैतालीय, (११) मन्दाक्रान्ता। रघुवंश में (१) अनुष्टुप्, (२) प्रहर्षिणी, (३) उपजाति, (४) मालिनी, (५) वशस्थ, (६) हरिणी, (७) वसन्ततिलका, (८) पुष्पिताग्रा, (९) वैतालीय, (१०) तोटक, (११) मन्दाक्रान्ता, (१२) द्रुतविलबित, (१३) शालिनी, (१४) औपच्छान्दसिक, (१५) रथोद्धता, (१६) स्वागता, (१७) मत्तमयूर, (१८) नाराच, (१९) प्रहर्षिणी।

कुमार सम्भव मे प्राय सर्गान्त मे छन्द परिवर्तन कर दिया गया है, किन्तु यह छन्द परिवर्तन केवल अन्त मे एक नवीन छन्द से ही नही हुआ है, कही-कही अन्त मे दो-दो छन्द नवीन प्रयुक्त हुए हैं जैसे—कुमारसम्भव के तीसरे सर्ग मे १ से ७४ तक उपजाति है ७५ वे श्लोक मे वसन्ततिलका और ७६ वे श्लोक मे मालिनी छन्द है। किन्तु रघुवश मे कुमारसम्भव की अपेक्षा अधिक छन्दोवैविध्य है। रघुवश के नवम सर्ग मे विभिन्न छन्दो का प्रयोग हुआ है। इसमे ५४वे श्लोक तक द्रुतविलंबित छन्द है, इसके आगे नये-नये छन्दो के प्रयोग मे कवि ने नैपुण्य दिखाया है।

कालिदास के काव्यो मे निश्चित प्रसगो मे निश्चित छन्दोका उपयोग किया गया है जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कालिदास कुछ विशेष छन्दो को कुछ विशेष भावो या रसो के उपयुक्त समझते थे जिसे इस प्रकार रखा जा सकता है—

१—छन्द	विषय भाव या रस—
उपजाति	वंशवर्णन, तपस्या तथा नायक-नायिका का सौन्दर्य।
२—अनुष्टुप्	लंबी कथा को संक्षिप्त करने तथा उपदेश देने में
३—वशस्थ	वीरता के प्रकरण मे चाहे युद्ध हो या युद्ध की तैयारी हो रही हो।
४—वैतालीय	करुण रस मे।
५—द्रुतविलम्बित	समृद्धि के वर्णन मे।

६—रथोद्धता	जिस कर्म का परिणाम खेद के रूप मे परिणत हो चाहे वह खेद रतिजनित हो, दुष्कर्मजनित हो,या पश्चात्तापजनित हो। अतएव कामक्रीडा, आखेट, आदि का वर्णन इसी छन्द मे है।
७—मन्दाक्रान्ता	प्रवास, विपत्ति, तथा वर्षा के वर्णन मे।
८—मालिनी	सफलता के साथ पूर्ण होने वाले सर्गके अन्त में।
९—प्रहर्षिणी	हर्ष के साथ पूर्ण होने वाले सर्गके अन्त मे। यदि मध्य मे भी कही इसका प्रयोग हो तो वहा भी दु ख की धारा मे हर्ष या हर्ष की धारा मे हर्षातिरेक वर्णित है।
१०—हरिणी	नायक का अभ्युत्थान हो या सौभाग्य का वर्णन हो।
११—वसन्ततिलका	कार्य की सफलता पर। ऋतुवर्णन मे भी पुरुषो की सफलता या ऋतु की सफलता तभी सिद्ध हो सकी है जब उसका उपभोक्ता उन वस्तुओ का उपभोग कर रहा हो।

इसी प्रकार, सफलता के लिए प्रस्थान या प्राप्ति में अन्वर्थनाम पुष्पिताग्रा, निराशा के साथ निवृत्ति में तोटक, कृतकृत्यता मे शालिनी तथा वीरता-प्रदर्शन में औपच्छान्दसिक, क्रीडा के वर्णन मे (चाहे कामक्रीडा हो चाहे अन्य क्रीडा हो) रथोद्धता, संयोग से स्वय प्राप्त विपत्ति या सपत्ति में स्वागता घबराहट में मत्तमयूर प्रपञ्चों के परित्याग में नाराच, तथा वीरता आदि के वर्णन मे शार्दूलविक्रीडित, का प्रयोग किया गया है।[1]

कालिदास का प्रभावः—

इसके पूर्व हम कालिदास की कलात्मक मान्यतापर विचार कर चुके हैं, और साथ ही यह भी देख चुके हैं कि कालिदास की सन्तुलित शैली (अभि-व्यंग्य और अभिव्यञ्जन) उत्तरकालीन कवियो को स्वीकृत न होने से, उनके काव्यचमत्कार तथा अलकृति के भार से आक्रान्त हो गये हैं। इसके अतिरिक्त शृङ्गाररस का अनौचित्य पूर्ण सान्द्र चित्रण होने लगा, यहां तक कि कवियो ने रति-केलि वर्णन के प्रसग में वीर्यस्खलन तथा स्त्रीयोनि के

---

१ कालिदास ग्रन्थावली, तीसरा खण्ड पृ० १००-१०५

आकार प्रकार के चित्रण से होने वाले रसाभास की ओर ध्यान भी नहीं दिया।[1]

किन्तु संस्कृत महाकाव्य के इस परवर्ती विकास के बीज कालिदास के महाकाव्यो मे ही विद्यमान हैं। गर्हित चित्रकाव्यो का प्रणयन भी कालिदास के समय से ही चला होगा यदि 'घटखर्पर 'काव्य की रचना कालिदास की समसामयिक हो तो, रघुवंश के नवमसर्ग का 'यमक' प्रयोग इस प्रवृत्ति की ओर संकेत कर सकता है। एक ही सर्ग मे छन्दोवैविध्य (सर्ग ९) तथा शास्त्रीय उपमाओ का प्रयोग,उत्तरकालीन कवियो के लिये प्रेरणा का कारण बन गया। उत्तरकालीन महाकाव्यो मे प्राप्त विविध शास्त्रज्ञानजन्य पाण्डित्य की आधारशिला कालिदास का गम्भीर दर्शन व शास्त्रज्ञान ही है। उत्तरकालीन काव्यो मे प्राप्त प्रकृति की वैचित्र्यपूर्ण शैली के बीज, हम कालिदास के काव्यो मे, इसके पूर्व देख चुके है। शृगार का जो अनौचित्यपूर्ण सान्द्र चित्रण परवर्ति काव्यो मे उपलब्ध होता है उसका प्रेरणाकेन्द्र कुमारसभव के शिव-पार्वती के उन्मुक्त संभोग चित्रण तथा रघुवंश के १९ वें सर्ग में अग्निवर्ण के विलासपूर्ण वर्णन मे देखा जा सकता है। अर्थात् सुरतसग्राम, रत्यन्तचित्र, मदिरापान, सखियो का प्रश्न विनोद, नखक्षत, दन्तक्षत आदि सामग्री कुमारसंभव व रघुवश मे ही उपलब्ध हो जाती है।[2] इसके अतिरिक्त सौतो, खण्डिताओ, मानिनियो, विप्रलब्धाओ, उत्कंठिताओ आदि नायिकाओ का महावर लगाने, झूला झूलने आदि विहारो का, विपरीत रति, दूतियो एवं वसत आदि का विधान कामसूत्र मे होने पर भी कालिदास जैसे कुशल निर्देशक से प्राप्त कर, काव्य में प्रयोग करने की मुक्तता प्राप्त की।[3]

पार्वती के रूप वर्णन मे नख-शिख चित्रण के सूत्र निहित हैं। उत्तरकालीन काव्यो मे जो वैचित्र्यपूर्ण कल्पना विलास मिलता है उसके बीज कालिदासीय काव्यो मे विद्यमान है जो इस प्रकार है—हस, तारे, कुमुद आदि देखकर लगता है कि ये रघु के यश हैं। शिव ने पार्वती की आखो में लगाने के लिये अपने तीसरे नेत्र से काजल पार लिया। शिवजी के पुत्र षडानन अपना हाथ शिवजी

---

१ नैषध-सर्ग २०।८१,९६ दमयन्ती की योनि पीपल के पत्ते की आकृति की बतलायी है।

२. कुमार सर्ग ८ श्लोक १ से ११ तक, वही सर्ग ८ श्लोक ८९ तक।

३, रघु सर्ग १९ श्लोक १६ से ४५ तक।

के शिर पर बहती हुई गंगा मे डाल देते हैं और जब ठंड लगती है तब उनके तीसरे नेत्र से उसे सेंक लेते हैं[1]।

इनके अतिरिक्त कालिदास के काव्यो मे ऐसे कितने ही प्रसंग चित्रित हुए हैं, जो काव्य साहित्य में रूढियो का रूप धारण कर चुके है और जो उत्तर-कालीन महाकाव्यो का मार्गप्रदर्शन करती रही है। जैसे–कुमारसभव तथा रघुवश मे क्रमश. शंकर तथा अज के दर्शन हेतु लालायित पुरसुन्दरियो का वर्णन और रघुवश के पचम सर्ग का प्रभातवर्णन, परवर्त्ती कवियो के लिये काव्यरूढिरूप बन गया। यद्यपि पुरसुन्दरियो का ऐसा वर्णन अश्वघोष के बुद्धचरित मे मिलता है किन्तु वह नीतिवादी मनोवृत्ति से पूर्ण होने से सरसता पूर्ण नही है अत इस रूढि की स्थापना का श्रेय कालिदास को ही मिलना चाहिये। षष्ठ सर्ग का स्वयवर वर्णन, अशोक बकुल, आदि के वर्णन मे दोहद का उल्लेख सर्वप्रथम कालिदास मे ही मिलता है। द्रुतविलम्बित छन्द मे यमक-मय ऋतुवर्णन। द्रुतविलंवित के चतुर्थचरण मे कालिदास ने यमक का बड़ा ही सरसविन्यास कर वसन्त शोभा का वर्णन रघुवश के नवम सर्ग मे किया है। उत्तरकालीन काव्यो मे इस रूढि को अपना लिया गया किन्तु विन्यास-चातुर्य के अभाव मे रसवत्ता ही समाप्त हो गई इनके अतिरिक्त रघुवश के १६ वें सर्ग मे सुन्दरियो का जलविहार वर्णन है, जो परवर्त्ती काव्यो के जलक्रीड़ा का प्रेरणास्रोत हुआ है।

पद्य[2]चूडामणिः—कविपरिचयः—

बुद्धघोष जन्म से ब्राह्मण था। परन्तु बाद में बौद्ध धर्मानुयायी हो गया था। बुद्धघोष ने दश सर्गों का एक महाकव्य 'पद्यचूडामणि' लिखा है, जिसमें बुद्ध

---

१ रघु-४।१९ कुमार ९।२६, ११।४७

२ Ed M Rangacharya and S Kuppusvamisastri Madras 1921 on Buddha ghosa, see B. C Law, Life and work of Buddh ghosa (Calcutta) Foulkes IA, XIX, 105–122 and S Kuppuswami Sastri Introduction to Padyacudamani T. Foulkes (boc cit) gives a summary of the dates assigned to Buddha ghose and it is stated that living in the extreme improbable date they from 386–557 A D. and group themselves about the reign of king Mahanama of Ceylon.

S. Kuppuswami Sastri says that the consesus of opinion is in favour of assigning the poet to the latter part of the fifth century A. D.

के जन्म, विवाह और उनके जीवन की अन्य घटनाओं का वर्णन है। यह कथा 'ललितविस्तार' तथा अश्वघोष कृत 'बुद्धचरित' की कथा से कुछ अंशों में भिन्न है। बौद्ध धर्म के अनुसार ३८७ ई०में बुद्ध के त्रिपिटक का पाली अनुवाद लाने के लिये कवि को लका भेजा गया था, बुद्धघोष ने अनेक बौद्धग्रन्थों की प्रतिलिपि की है तथा बहुतों का अनुवाद भी किया है। 'पद्य चूडामणि' पर अश्वघोष और कालिदास का प्रभाव पर्याप्तमात्रा मे है। इस काव्य की भाषा इसमे प्राप्त अलंकारो के उदाहरण, जो बाद के लक्षण ग्रन्थो में मिलते हैं, इस कवि को कालिदास के पश्चात्भावी सिद्ध करते हैं[१]। अतः इसका समय ३८६ से ५५७ तक अनिश्चित है।

कथानक —शाक्य वंशीय राजा शुद्धोदन कपिलवस्तु मे राज्य करता था। उसकी रानी का नाम माया देवी था। सन्तानप्राप्ति के लिये उसने तपस्या की। उसी समय देवो के आग्रह पर प्रभुतुसित ने संसार मे ज्ञानोदय के लिये माया देवी के गर्भ मे प्रवेश किया। सिद्धार्थ का जन्म हुआ। जन्मोत्सवो के पश्चात् उसके खेल तथा उसकी शिक्षा की व्यवस्था की गई। युवा होने पर उसके विवाह का निश्चय किया गया, उसका विवाह 'कोलीय देश' के राजा की कन्या के साथ किया गया। विवाह के पश्चात् राजपुत्र अपनी स्त्री के साथ नगर में वापिस आया। राजा ने विभिन्न ऋतुओ मे राजपुत्र के आनन्द तथा सुख के लिये विशेष व्यवस्था की। शरद्ऋतु मे राजपुत्र ने धनुर्विद्या का अभ्यास कर केवल सातदिनों मे उसमे निपुणता प्राप्त की।

एक दिन वसन्तऋतु मे, जब वह उपवन बिहार के लिये जारहा था, देवो की पूर्वव्यवस्था के अनुसार उसने एक वृद्ध पुरुष, रोगी तथा मनुष्य शवको देखा, इन दृश्यों को देख उसने अपने सारथी से इनके विषय मे पूछा। सारथी से उपर्युक्त अवश्यंभावी अवस्थाओ को जानकर वह घर वापिस आगया। रास्ते मे उसे तपस्वी मिले जिन्होने मानव रोग-दुख से मुक्ति का मार्ग जान लिया था, वह पुन उपवन में गया और वहीं सपूर्ण दिवस व्यतीत किया। वह घर वापिस आया, जहाँ उत्सव किये गये। अकस्मात् उसने राजकीय भवन त्यागने

१ The peculiarity in the diction of this poem shows that the work was composed at a time later than Kalidasa...Almost all the Alankaras defined in later works are represented by illustrations in this poem

The preface of Padyacudamani. Madras 1921

का निश्चय किया । ३० योजन की यात्रा कर अनावामा नदी पारकर राज-कीय सेवकों को बिदा कर तपस्वी वेष धारण किया । उसने कठिन तपस्या की और विंवसार नगर मे भिक्षा वृत्ति से जीवनयापन करना प्रारम्भ किया । मोक्षप्राप्ति मे असफल होने से उसे प्राप्त करने के साधन पर विचार किया । रात्रि में उसने पाच स्वप्न देखे और प्रात उनका अर्थ संकेत जानकर, निर्वाण प्राप्ति के साधन पर विचार किया और वृक्ष के नीचे बैठकर, एक स्त्री से 'पायस प्राप्त किया । बाद मे नैरञ्जना नदी' पर जाकर भोजन लिया । साल के सान्द्रिवन मे दिवस व्यतीत कर, वह बोधिवृक्ष के पास जाकर सायंकाल उसी के नीचे अलौकिक रूप से प्राप्त आसन पर बैठा । देवो ने उसकी प्रशंसा की, मन्मथ ने इस वार्ता को जानकर उसपर विजय प्राप्त करने का निश्चय किया । मन्मथ की सेना ने सर्वप्रथम आक्रमण किया, किन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई । बाद में मन्मथ ने स्वयं आक्रमण किया किन्तु वह भी प्रत्यावर्तित हुआ । अन्तिम उपाय की दृष्टि से मन्मथ ने अपनी स्त्रियो को भेजा । जिन्होंने बुद्ध के सम्मुख सुन्दर नृत्य किये और उसे आकर्षित करने और उस पर वर्चस्व (अधि-कार) प्राप्त करने का यथेष्ट प्रयत्न किया किन्तु प्रयत्नो की वन्ध्यता जानकर वे भी प्रत्यावर्तित हुईं और इस प्रकार उन्हे मोक्ष पर अधिकार प्राप्त हुआ । यही उनका अविनाशी पद था, वे सर्वज्ञ हुए ।

कथानक का आधार

पद्मचूडामणि' मे गौतम बुद्ध के जीवन चरित का वर्णन 'त्रिपिटक', 'ललित विस्तार' तथा अश्वघोष कृत बुद्धचरित पर आधारित है । जैसा इसके पूर्व कहा है, कवि ने अश्वघोष के बुद्धचरित तथा ललितविस्तार से गौतम बुद्ध का जीवन चरित कुछ भिन्न प्रकार से वर्णित किया है और इस भिन्नता में जीवन चरित को पूर्ण बनाने वाली कुछ जीवन की आवश्यक श्रृंखलाए छूट गई है ।

भिन्नता-उपर्युक्त दोनो ग्रन्थो मे बुद्ध जन्म के पश्चात् वृद्ध 'महर्षि असित राजा शुद्धोदन से मिलने आते हैं और बालक बुद्ध को देखते ही भविष्यवाणी करते हैं कि यह जीवन की आरम्भिक अवस्था में ही गृह (जीवन) त्याग मुनिवृत्ति स्वीकार करेगा [1]किन्तु इस तथ्य का 'पद्मचूडामणि' मे कोई उल्लेख न होने से, राजा शुद्धोदन को अपने पुत्र के विवाह की चिन्ता, तथा उसके लिये भोग विलास की व्यवस्था का कोई महत्व ही नही रहता । अपने पुत्र को सांसारिक चिन्ताओ तथा विरक्तिजनक दृश्यो से उसे दूर रखने की राजा

१. बुद्धचरित सर्ग १

की चिन्ता का भी इसमे कोई उल्लेख नही है। इन सूचनाओ के अभाव मे उपर्युक्त दृश्यो के देखने से बुद्ध के मस्तिष्क पर क्या प्रभाव हुआ कुछ ज्ञात नही होता। बिना पूर्व संकतो के या उसके विचारो के सिद्धार्थ का अकस्मात् राजप्रासाद का त्याग कर बन मे जाना कुछ अटपटा सा लगता है। अन्य स्थानो पर, सिद्धार्थ का उपवन मे जाना चार बार वर्णित है, और तीन दृश्यों को तीन यात्राओ मे अलग अलग वर्णित कर सन्यासी का दृश्य चौथी यात्रा मे वर्णित किया जाता है[1] किन्तु पद्यचूड़ामणि मे देवताओ ने वृद्ध, रोगी तथा निष्प्राण व्यक्ति को क्रमश एक ही बार मे दिखा दिया है। और इन तीन दृश्यो के पश्चात् ही चौथा सन्यासी का दृश्य सामने आ जाता है[2]। किन्तु पद्य 'चूड़ामणि' में पायस ग्रहण 'नैरञ्जना' नदी पर पहुँचने के पूर्व ही करा दिया है, किन्तु बुद्धचरित में, नदी में स्नान करने के पश्चात् गोपराज की पुत्री नन्दबाला मुनि को पायस ग्रहण कराती है[3]। बुद्धचरित मे प्रभु तुसित 'जगद्व्यसनक्षय' के लिये माया देवी के गर्भ में प्रवेश करते है, किन्तु 'पद्यचूडामणि' मे देवो की प्रार्थना होने पर, वे प्रवेश करते हैं[4]।

आदान

बुद्धघोष को निश्चित रूप से अश्वघोष तथा कालिदास का दाय प्राप्त हुआ था। कालिदास की कविता का प्रभाव बुद्धघोष के कई वर्णनो पर स्पष्टत दिखाई देता है। 'पद्यचूड़ामणि के चतुर्थ सर्ग पर (५५ से ८३ तक श्लोक बुद्धचरित के ३ रे (तथा, १३ से २४ तक श्लोक), रघुवश के ७ वें (४ से १५ तक श्लोक) सर्ग का प्रभाव है।

रघुवंश के ७ वें सर्ग के ५ वे श्लोक मे इन्दुमती तथा अज को देखने के लिये तैयार नागरिक सुन्दरियां अन्यान्य कार्यों को छोड़कर सुनहले झरोखोवाले महलो मे एकत्र हुईं, उनकी इस प्रकार चेष्टाए श्लोक ६-१० मे हुई। बुद्धचरित के ३ रे सर्ग मे १३ श्लोक मे 'कुमार जारहा है' यह समाचार नौकरो से सुनकर स्त्रिया गुरुजना से आज्ञा पाकर, उसे देखने की इच्छा से प्रासाद तल

---

१ बुद्धचरित सर्ग ३ तथा सर्ग ५
२ पद्यचूडामणि सर्ग ६-३५ से ३९
३. बुद्धिचरित सर्ग १२ (१०८ से ११२)
४ बुद्धचरित सर्ग १ श्लोक १९-२०
संपा.—सर्ग १ से ५ श्री अप्पाशास्त्री राशिवडेकर
५. पद्य चूड़ामणि सर्ग २-५३

पर गईं। और १४ से १७ तक श्लोकों मे उनकी उत्सुकता का वर्णन है, १८ से २२ तक श्लोकों मे उन स्त्रियो के सौन्दर्य का वर्णन तथा २३ से २४ तक श्लोको मे राजपुत्र के सौन्दर्य के विषय मे, अपने विचार प्रकट करती हैं।

पद्मचूड़ामणि ४ थें सर्ग के ५५ वे श्लोक में र्‌वंश के सर्ग ७ के ५ वें श्लोक का साराश है, रघुवंश मे निम्नलिखित चेष्टाए हुई—'खिड़की के रास्ते पर शीघ्रता से जाती हुई किसी स्त्री ने ढीला होने से गिरी हुई पुष्पमाला वाले और हाथ से पकड़े हुए केशसमूह को नही बाधा[1]।' 'दूसरी स्त्री दाहिनी आख में अञ्जन लगाकर बायी आख मे बिना अञ्जन लगाये ही सलाई लिये हुए झरोखे के पास पहुच गई[2]।"

शीघ्रता मे उठी हुई किसी स्त्री की आधी गुथी हुई तथा शीघ्र चलने से पग पग पर गिरती हुई करधनी का अंगूठे से बाधा हुआ केवल धागा ही बच गया[3]। यही भाव बुद्धचरित के ३ रे सर्ग के १३—२४ श्लोको मे है। उपर्युक्त भाव, पद्मचुडामणि मे ५६, ५७ और ६१ के श्लोको मे है।

रघुवश और पद्मचूडामणि मे शब्द साम्य और भावसाम्य मिलता है—

रघुवंश मे—'ससत्वमादाय नदीमुखाम्भ समीलयन्तो विवृताननत्वात्'।

अमी शिरोभिस्तिमय सरन्ध्रैरूर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवहान्॥ सर्ग १३।१०

पद्मचूड़ामणि—चकाशिरे चन्द्रमस समुत्था समुद्रगूढस्य मयूखमाला।

पीत्वा प्रवाह तिमिभि सरन्ध्रै शिरोभिरुर्ध्वं प्रहिता इवाप.॥ ८।२७

इसी प्रकार अन्य स्थानो पर कल्पनासाम्य मिलता है।

१. रघुवश १४।१२ का पद्मचूड़ामणि में ५।८

२. रघुवश १३।५६ का पद्मचूडामणि में १।२१

३ कुमारसभव १।४९ का पद्मचूडामणि मे ४।८०

रघुवश का ११ वा तथा पद्मचूड़ामणि का ६३ वा श्लोक एक ही भाव व्यक्त करते हैं अर्थात् राजपुत्र को देखने एकत्र हुई स्त्रियो के समूह की सब-

---

१ तथाहि काचित्करपल्लवेन, कल्हारमालामवलम्बमाना।
स्वयंवरीतुकिल राजधानी सोपानमार्गं त्वरया जगाम॥
५६ सर्ग ४ पद्मचूड़ा.

२ नेत्रस्य तद्दर्शननिश्चलस्य माभूदिदं रोधकतीवमत्वा।
अपास्य कालाञ्जनमायताक्षी, वातायन सत्वरमाप काचित्॥
५७ पद्मचूडा.

३. पतिव्रताया. परदर्शनाय, यात्रा न युक्तेति निरुन्धतीव
नितम्बबिम्बाद्रशना गलन्ती कस्याश्चिदंघ्रि कलयांचकार ६१ पद्मचूड़ा.

नता, रघुवंश के १२ वें श्लोक मे स्त्रियो की एकाग्रता का वर्णन है। इसी भाव को पद्यचूडामणि के ६५ से ६८ तक और बाद में ७७ तक विस्तारपूर्वक चित्रित किया है। रघुवंश के १३ से १५ तक श्लोको,, बुद्धचरित के २३, २४ श्लोको का भाव पद्यचूडामणि के ७८ से ८२ तक श्लोको में पूर्ण विदग्धता से वर्णित है। यहा तक कि रघुवश, बुद्धचरित और पद्यचूडामणि में वर्ण्यविषयों की वर्णन समानता मिलती है। उसे इस प्रकार रखा जा सकता है.—

नगर वर्णनम्	पद्यचूडामणौ	१,	४	—	३०
		२,	२	—	७
		९,	३६	—	४१
	बुद्धचरिते	१,	२	—	८
पर्वतवर्णनम्	पद्यचूडामणौ	९,	४६	—	५०
ऋतुवर्णन	रघुवंशे	९,	२४	—	४७
	पद्यचूडामणौ	५,	३	—	३४
			३७	—	४५
		६,	२	—	३३
जलक्रीडावर्णनम्	रघुवशे	१६,	५४	—	७०
	पद्यचूडामणौ	७,	३२	—	५५
सूर्यास्तमयवर्णनम्	पद्यचूडामणौ	८,	१	—	१५
अंधकारवर्णनम्	पद्यचूडामणौ	८,	१६	—	२०
चन्द्रोदयवर्णनम्	पद्यचूडामणौ	८,	२६	—	४६
नदीवर्णनम्	रघुवशे	१३,	५२	—	६३
	पद्यचूडामणौ	९,	१४	—	१७
स्तुतिप्रकार.	पद्यचूडामणौ	२,	३३	—	४८
	रघुवशे	१०,	१६	—	३२
गर्भवर्णनम्	पद्यचूडामणौ	३,	१	—	८
	बुद्धचरिते	१,	२१	—	
	रघुवशे	३,	१	—	८
बालावतारश्च	बुद्धचरिते	१,	४१	—	५१
वर्णनम्	पद्यचूडामणौ	३,	२	—	२६
	रघुवंशे	३,	१४		

बुद्धघोष की कलात्मक मान्यता अश्वघोष जैसी न होकर उत्तरकालीन कवियो की तरह चमत्कारप्रियता है। पद्यचूडामणि का लक्ष्य भी 'रतये' न

होकर व्युपशान्तये अर्थात् मोक्षप्राप्ति है और इस लक्ष्य की पूर्ति कवि ने बुद्ध के चरित्र कथन के द्वारा की है।[१]

पद्य चूड़ामणि का नायक देवों की प्रार्थना पर—

विद्वेषतापमखिलं जगता विनेतु शक्तिस्त्वमेव शरणागत पुण्यराशे।
धाराधरं तरलविद्युतमन्तरेण दावानल शमयितु भुवि क क्षमेत ॥ २।४५

इस पृथ्वी पर बोध करने के हेतु शुद्धोदन के पुत्र रूप मे आते है—

शुद्धोदनस्य सुततामहमेत्य सत्य सम्बोधनं त्रिजगता नियत करिष्ये।
अगोर्धनैरसुमिरप्यहमेतदेव सप्रार्थ्य पुण्यनिचय कृतवान् पुरेति ॥ २।५३

और उपर्युक्त काव्य नायक का उद्देश्य होने से कवि ने महाकाव्य के आवश्यक रूढ नियमो की पूर्ति करते हुए अनावश्यक जैसे अर्णव, मधुपान, मन्त्र, दूत, रतोत्सव, आदि—वर्णनो का त्याग कर दिया है। फिर भी पूर्ववर्ती काव्यवर्णनो के प्रभाव को अपने काव्य मे स्पष्ट करना (प्रतिबिम्बित करना) नही भूले। परिणामत कथानक की गति मे अश्वघोष अवश्य उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त मुल इतिवृत्त मे परिवर्तन करते समय आवश्यक कडियो का त्याग कर दिया गया है जिससे इतिवृत्त शिथिल हो गया है।

रसाभिव्यक्ति—

'पद्यचूडामणि' प्रधानत शान्तरस का काव्य है। इसके अतिरिक्त अन्य रसो की अग रूप मे नियोजना की गई है।

शृंगाररस

प्रथम सर्ग मे नगरीवर्णनान्तर्गत विलासिनियो के विलास वर्णन, मायादेवी का नखशिख वर्णन, मायादेवी के गर्भ लक्षणवर्णन, ऋतुवर्णन, चन्द्रोदय वर्णन, तथा कुमार दर्शनौत्सुक्य आदि। किन्तु ये सभी उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत हैं। कवि ने प्रकृतिवर्णन में अपनी शृगार वर्णनप्रियता की पूर्ति करने का प्रयत्न किया है, जिसने रसाभास का रूप धारण कर लिया है। जैसे—

'उस तरुण भ्रमर ने सभोग से खिन्न अपनी कान्ता को अशोक लता के पुष्पो के गुच्छो का आसव अपने मुख से लाकर पिलाया"[२]

वीररस

काम आक्रमण वर्णन। इस रस की अभिव्यक्ति कवि ने रसोचित सामासिक भाषा एव ओजपूर्ण शैली द्वारा की है। इनमें केवल दो-दो सामासिक पदो से निर्मित श्लोक है जैसे सर्ग १० श्लोक ५, ६, ९।

---

१. पद्यचूडामणि—मगलाचरण—१-३ श्लोक

२. पद्यचूडामणि—६।१९

वैतण्डमण्डलविडम्बितचण्डवायुवेगावखण्डितकुलाचलगण्डशैलम् ।
संवर्तसागरसमुद्गतभंगतुगत्वंगत्तुरगमतरंगितसर्वदिक्कम् ॥ १०।५

भावार्थ—"प्रचण्ड वायु की तरह वेग से दौडते हुए, हाथियो के समुदाय ने कुलाचल के बड़े-बडे पत्थरो को तोड दिया और प्रलयकालीन सागर में उत्पन्न उत्ताल तरंगो की तरह चलने वाले घोडो ने दिशाओं को मानो तरंगित कर दिया।"

इनके अतिरिक्त अन्य भावो की भी छटा है। देवकृत स्तुति तथा स्तोत्र वर्णन (सर्ग २ तथा ९) मे भक्तिभाव, कुमार जननोत्सव मे वात्सल्य भाव (सर्ग ३)।

काव्यसौन्दर्य—

जैसा कि हमने पूर्व कहा है कि पद्मचूडामणि मे उत्तरकालीन काव्यो मे प्राप्त विदग्धता का पूर्वरूप मिलने लगता है। कवि ने विभिन्न अलकारो तथा छन्दों से अपने काव्य को अलकृत करने का प्रयत्न किया है। जैसे अलंकृति व विदग्धता का एक उदाहरण समासोक्ति अलकार में—"मेघ जल से प्रथमस्नाता, शरद्कालीन मेघरूपी उत्तरीय वस्त्रो से आच्छादित एव चन्द्रकिरण रूपी चन्दन से लिप्त दिशाओ ने तारकाओ का हार धारण किया।[१] इस काव्य मे उपमा, रूपक, श्लेष, विरोधाभास, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, सहोक्ति, हेतूत्प्रेक्षा, व्यतिरेक,[२] समासोक्ति आदि अलंकार मिलते हैं।

छन्द —१ इन्द्रवज्रा, २ मालिनी, ३ वसन्ततिलका, ४ वियोगिनी, ५ उपजाति, ६ शालिनी, ७ मन्दाक्रान्ता, ८ शार्दूलविक्रीडित, ९ अनुष्टुप्।

इनके अतिरिक्त कवि ने सर्ग ६ मे छन्दपरिवर्तनप्रियता का भी सकेत किया है। श्लोक १९ मे उपजाति, २८ मे वैतालीय, ३१ मे रथोद्धता। भाषा की दृष्टि मे पद्मचूडामणि कवि कालिदास की प्रसादपूर्ण भाषा का अनुकरण करता है। शैली इसकी वैदर्भी है।

---

१ कृताभिषेका प्रथमं घनाम्बुभिधृतोत्तरीया. शरदभ्रसंचयैः।
विलिप्तगात्र्य' शशिरश्मिचन्दनैर्दिशो दधुस्तारकहारकामा ॥
पद्मचूडामणि ५।४७

२. (१) मिश्र रूप में मिलता है, (२) ९।४३, (३) १।१७, (४) ७।३४, (५) ८।१५।३।५, (६) ९।२३, (७) ३।४८, (८) ६।३।

किरातार्जुनीयम्[1] : कवि परिचय—

कालिदास की तरह भारवि का जीवन वृत्त तथा समय अनिश्चित है। भारवि का उल्लेख 'ऐहोल' शिलालेख में मिलता है जो ६३४ ई० मे उत्कीर्ण हुआ था। किंवदन्तियो के आधार पर सम्भवत भारवि दाक्षिणात्य थे और चालुक्यवंशी नरेश विष्णुवर्धन के सभा-पण्डित थे। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि भारवि ५५० ई० से ६०० ई० के बीच रहे होंगे, क्योंकि भारवि कालिदास से प्रभावित हैं और माघ भारवि से भी।

काव्यग्रन्थ—

भारवि का एकमात्र ग्रन्थ 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य है। इसमे कवि ने व्यासजी के उपदेशानुसार पाशुपतास्त्रप्राप्ति के लिये की गई अर्जुन की तपस्या एव किरातवेषधारी भगवान् शकर के साथ हुए अर्जुन का युद्ध १८ सर्गों मे वर्णित किया है। कवि ने काव्यारम्भ 'श्री' शब्दयुक्त मगलाचरण से किया है और साथ ही प्रत्येक सर्गान्त श्लोक मे लक्ष्मी शब्द का प्रयोग भी। यहाँ उल्लेख्य है कि किसी विशेष शब्द का प्रयोग (काव्य के प्रारम्भ या अन्त मे) कवि भारवि से ही प्रारम्भ होता है, जिसे उत्तरवर्ती कवियो ने प्राय अपनाया है।

भारवि सभापण्डित होने से स्वभावत ही राजनीति के अच्छे जानकार थे।

किरातार्जुनीय का कथानक—

द्यूत क्रीडा में हारने के पश्चात् युधिष्ठिर अपने अनुजो के साथ द्वैतवन में रहने लगे, किन्तु यहा भी वे दुर्योधन की ओर से चिन्तित हैं। अत वे दुर्योधन की प्रजापालन सम्बन्धी नीति को जानने के लिये एक वनेचर-दूत को नियुक्त करते है[2]। ब्रह्मचारी बना हुआ वह वनेचर-दूत लौटकर दुर्योधन के शासन की पूर्ण जानकारी युधिष्ठिर को देता है और साथ ही यह सकेत करता है कि दुर्योधन द्यूत मे जीती हुई पृथ्वी को नीति से भी जीत लेने के प्रयत्न में है[3]। अभीष्ट जानकारी देने के पश्चात् वह चला जाता है।

---

१. Ed N. B. Godabole and K. P. Parab, with the Comm. of mallinath. N. S. P. Bombay 1885 (6 th ed. 1907) various other eds

२. १।१ किरातार्जुनीयम्

३. दुरोदरच्छद्मजितां समीहते नयेन जेतुं जगतीं सुयोधन. १।७ वही

द्रौपदी युधिष्ठिर को उनके पूर्व भुक्त—ऐश्वर्य एवं पराक्रम का स्मरण कराती है[१] साथ ही शत्रुओं के प्रति असामयिक उदासीन एवं क्षमाशील रहने से होने वाली अनुजो की दयनीय दशा की ओर ध्यान आकर्षित करती हुई युधिष्ठिर को उत्तेजित करती है[२] तथा उसकी शान्तिपूर्ण–नीति की भर्त्सना करती है।

द्वितीय सर्ग—द्रौपदी के विचारो का समर्थन करते हुए भीम कहते हैं कि हे प्रजानाथ आप के अनुजो की पराक्रमशाली भुजाए फिर कब सफल होगी ? उनके पराक्रम को कौन सह सकता है ?[३] किन्तु युधिष्ठिर भी उनके उत्तेजित वचनो को सयुक्तिक नीतिमय उपदेशो से शान्त कर देते हैं।[४] इसी सर्ग मे भगवान व्यास का आगमन होता है।

तृतीयसर्ग—युधिष्ठिर के व्यासजी से आगमन का कारण पूछने पर, व्यासजी ने पाण्डवो के विजय लाभ का ध्यान रखते हुए उत्तर दिया—'पराक्रम से ही आपको पृथ्वी पर अधिकार करना होगा। आप के शत्रु आप से अधिक बलशाली हैं। अत शत्रु से बढने के लिये आपको उपाय करना आवश्यक है। जिस मन्त्र विद्या से अर्जुन तपस्या करके पाशुपतास्त्र-प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे और भीष्म प्रभृति वीरो का नाश करने मे समर्थ होंगे। वह मन्त्र-विद्या प्रदान करने के लिये मै आज उपस्थित हुआ हूँ। बाद मे अर्जुन को उक्त मन्त्र विद्या प्रदान कर, दिव्यास्त्र प्राप्ति के लिये इन्द्र की तपस्या करने के लिये कहते है, साथ ही मार्ग–निर्देशन करने के लिए एक यक्ष को आदेश देकर अन्तर्हित हो जाते। व्यास के भेजे यक्ष के साथ अर्जुन तपस्या करने के हेतु इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचता है। यक्ष अर्जुन को तप तथा तप में होने वाले विघ्नो के बारे में कहता है और आशीर्वाद देकर चला जाता है। वनेचरो के मुख से अर्जुन की कठोर तपस्या का वृत्तान्त सुनकर इन्द्र भयभीत होता है और उसके तप में विघ्न डालने के लिये अप्सराओ को भेजता है। परन्तु जितेन्द्रिय अर्जुन के प्रति उन अप्सराओ के सभी प्रयत्न विफल हो जाते हैं। अर्जुन के तपानुष्ठान देखने के लिये मुनिवेश धारण कर इन्द्र उपस्थित होता है। अनेक युक्ति-प्रयुक्ति

---

१ १।३४, १।३५, ३६, ३८, ३९, ४०,

२ १।४२, 'विहाय शान्ति नृप ! धामतत्पुन प्रसीद संधेहि वधायविद्विषाम्। १।४४, १।४५ वही

३ २।१७, २३ वही।

४. २।२७, २८, ३० वही।

से समझाने पर भी अर्जुन के तपोनुष्ठान न छोडने पर, प्रसन्नता से इन्द्ररूप में प्रकट होकर अर्जुन को शिव की तपस्या करने का उपदेश देता है। अर्जुन पुनः तपस्या प्रारम्भ करता है। एक मायावी दैत्य अर्जुन को मारने के लिये वराहरूप धारण करता है। इस तथ्य को जानकर शंकर अर्जुन की रक्षा करने के हेतु किरात का मायावी रूप धारण करते है। भगवान शकर वराह को लक्ष्य कर बाण चलाते है और अर्जुन भी उसी समय बाण चलाता है। परिणामतः दोनो के बाणो के लगने से वह सूकर कटे वृक्ष की तरह गिर कर पंचत्व को प्राप्त होता है। बाद मे अर्जुन अपने बाण को लेना चाहता है और इसपर किरात तथा अर्जुन का वाद-विवाद चलता है। यह विवाद पचदश-सर्ग मे युद्ध का रूप धारण करता है युद्ध मे प्रथम शिव और अर्जुन अस्त्र-शस्त्रो से युद्ध करते है पश्चात् दोनो बाहुयुद्ध पर तैयार होते हैं। अजुन की वीरता तथा एक निष्ठतासे शकर प्रकट होते हैं और फलत. अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति होती है। 'जाओ शत्रुओ पर विजय प्राप्त करो' इस प्रकार शंकर के द्वारा आशीर्वाद प्राप्तकर, अर्जुन जो उनके चरण कमलो मे नत था, देवताओ द्वारा प्रशंसित होते हुए, उसने महान् विजयलक्ष्मी के साथ अपने घर पहुँचकर ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को प्रणाम किया। [1]यही काव्य समाप्त होता है।

कथानक का आधार—

भारवि ने अपने काव्य के कथानक का आधार महाभारतान्तर्गत वनपर्व के २७ से ४० तक १४ अध्यायो की कथा को बनाया है। इनमे भी प्रथम दस अध्याय २७ से ३६ तक धर्म, भीम, व द्रौपदी की चर्चाओ से व्याप्त है।[2] इसके पश्चात् कथासूत्र का आरम्भ होता है और ४० वे अध्याय मे समाप्त हो जाता है। भीम और युधिष्ठिर की चर्चा प्रसग मे ही व्यास जी का आगमन होता है। उनके उपदेश के अनुसार अर्जुन शास्त्रास्त्र-प्राप्ति के लिए इद्रकील-पर्वत जाता है। वहा इन्द्र ब्राह्मणरूप मे आकर शिव की आराधना करने के लिये अर्जुन से कहता है। तपस्या फलीभूत होने पर, अर्जुन और शकर का युद्ध होता है। शकर अर्जुन की तपस्या तथा पराक्रम से प्रसन्न होकर दिव्यास्त्र प्रदान करते हैं। यही पर कथानक समाप्त हो जाता है। उपर्युक्त आर्षकाव्य (महाभारत) का कथानक अत्यन्त सरल है। किन्तु भारवि के कवि ने अपनी कल्पना व पाण्डित्य से नाटकीय संवादो, रमणीय एव कलापूर्ण

१. १८।४८ किरातार्जुनीयम्।

२. बम्बई प्रकाशन २७-४० महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर प्रकाशन, २७-४० वही।

वर्णनों से ४ या ५ सर्ग की कथा-सामग्री को विस्तारपूर्वक १८ सर्गों मे फैलाया है। यहातक की कथा की गति अवरुद्ध हो जाती है और ७ सर्गों के पश्चात् कवि पुन छूटे हुए इतिवृत्त के सूत्र को पकडने मे समर्थ होता है। यद्यपि ये प्रसग अर्थात्, शरद्तु वर्णन, (सर्ग ४), हिमालयवर्णन, (सर्ग ५), इन्द्रकील पर्वतपर अर्जुन की तपस्या मे विघ्न डालने के लिये इन्द्रप्रेषित अप्सराओ के गमन का वर्णन (सर्ग ६), गन्धर्वों और अप्सराओ के क्रीडादि का वर्णन (सर्ग ७,८), सायंकाल आदि का वर्णन (सर्ग ९) अर्जुन को आकर्षित करने के लिये अप्सराओ का आगमन आदि (सर्ग १०), कथोद्भूत दिखाई न देकर, लक्षणग्रथोक्त नियमो की पूर्ति करने के लिये ऊपर से लादे हुए प्रतीत होते हैं। तथापि इनके नियोजनोद्देश्य के विषय मे आगे विचार किया जायगा।

किरातार्जुनीय महाकाव्य मे तात्कालिक सामाजिक विचारधारा का प्रतिबिम्ब

महाकवि का हृदय स्वकालिक वातावरण मे समरस हो जाने से उसके हृदयोद्भूत काव्य मे तात्कालिक सामाजिक विचारधारा के सकेत अनायास ही प्राप्त हो जाते है। चाहे काव्य का विषय--इतिवृत्त कविसमय से प्राचीन ही क्यो न हो ? । अन्यथा सहृदय-पाठक का हृदय आनन्दानुभव नही कर सकता। कवि स्वकालिक वातावरण मे जितना ही अधिक मग्न होगा उतना ही अधिक आनन्द पाठक प्राप्त कर सकेगा। और इसी साधारणीकृत भावनाओ पर काव्य की सफलता निर्भर होती है।

भारवि के काव्य मे तात्कालिक समाज का चित्र स्पष्ट रूप मे देखा जा सकता है। छठी शती की राजनैतिक अशान्ति हम इसके पूर्व देख चुके है भारवि का काल उस काल विशेष का संकेत करता है, जब छोटे छोटे राजा परस्पर युद्ध करते, उनके राज्यो को दुर्नीति से अपहृत करने की प्रतीक्षा मे रहते या उन्हे 'करद' करते थे। भारवि का काव्य जैसी राजनैतिकदशा का चित्र उपस्थित करने मे समर्थ है, वैसे ही लोकसामान्य के विचार प्रस्तुत करने मे भी समर्थ है। 'किरातार्जुनीय महाकाव्य से भारवि के समय की लोक सामान्य की दशा का सकेत मिलना असभव है।" कहना युक्ति-युक्त प्रतीत नही होता।[१] क्योकि काव्य मे स्पष्टरूप मे बिंबित लोकसामान्य के विचारो पर ही प्रस्तुत काव्य का हेतु स्पष्ट होना है।

निवृत्तिमार्गीय विचारधारा पूर्वमहाभारतकालसे ही इस देश मे बल पकडती जारही थी। यह ससार हेय है, जो विद्वान है, वे मुक्तिप्राप्ति के लिये

१. 'सस्कृत कविदर्शन' डा० भोलाशकर व्यास पत्र १२३

सतत प्रयत्नशील रहते हैं। भोग विलासादि दुष्प्राप्य हैं। भोगी—पुरुष विपत्ति से छुटकारा कभी नही पा सकते। लक्ष्मी की तरह शरीरी भी स्थायी नही हैं। युद्धविषयक उद्योग से पराङ्मुख होना श्रेयस्कर है। शत्रु को जीतने की ही प्रबल इच्छा हो तो अजेय इन्द्रियो पर अधिकार करना ठीक है। दु खत्रय (१–आधिभौतिक, २–आधिदैविक, ३–आध्यात्मिक) के विघातार्थ अल्पावस्था मे ही तप का आरभ करना श्रेयस्कर समझा जाने लगा था भगवद्-गीतोक्त साख्य सन्यासमार्गी या परिणामत वीर पराक्रमी पुरुष सत्य, अहिंसा, क्षमा, दया आदि का आश्रय लेकर 'क्लीबता की बातें करने लगे थे। दु खवादी बौद्ध सुख-साधनो को दु खजनक बताते हुए निवृत्तिमार्ग का असामयिक प्रचार कर रहे थे। दु खत्रय से प्रताडित मानव निवृत्तिमार्ग या सन्यासमार्ग के द्वारा जीवन यापन करना चाहने लगा था। वैदिक आर्यों की प्रवृत्तिपरक, आनन्दमय एव उत्साह पूर्ण विचारधारा तथा समाजव्यवस्था मे निराशा ने अपना स्थान प्राप्त कर लिया था। अत डॉ० वाटवे के अनुसार–ऐसी स्थिति मे तात्कालिक पुरुष की मोक्ष विचार-धारा के अन्तर्गत रहने वाली और जीवन सग्राम से दूर रहने की प्रवृत्ति, अर्थात् पलायन वृत्ति तथा राष्ट्र की क्लीबता को दूर करते हुए प्राचीन चतुर्विध पुरुषार्थवादी समाज को भ्रमपूर्ण बोधित मोक्ष की सीमा मर्यादा को स्पष्ट करना भारवि के किरातार्जुनीय महाकाव्य का हेतु मानना हम अधिक समीचीन समझते है।

मूल कथानक में सोद्देश्य परिवर्तन—

मूलकथानक मे भारवि ने कुछ नये प्रसङ्गो की नियोजना कर अपने महा-काव्य का हेतु अधिक स्पष्ट कर दिया है। द्वैतवनवासी पाण्डवो के सम्मुख वस्तुत दो प्रश्न थे—प्रथम—धूर्त कौरवो का नाश कपट या धूर्तता से करना चाहिये या द्वितीय—न्याय, क्षमा, दया का मार्गानुसरण करते हुए दयनीय जीवन यापन करना चाहिये।

उपर्युक्त दोनो प्रश्नो का उत्तर महाभारतीय व्यास के आगमन से नही मिलता वे इस विषय मे एकान्तत मौन हैं। वे तो केवल कहते है कि "मेरी दी हुई इस 'प्रतिस्मृति' नामक विद्या को ग्रहण करो। इस विद्या को तुमसे (युधिष्ठिर) पाकर अर्जुन दिव्यास्त्रो की प्राप्ति के लिए इन्द्र और शकर को प्रसन्न कर अपना कार्य सिद्ध करेंगे।" पश्चात् अर्जुन की प्रशसा करते हुए 'इस वनसे किसी दूसरे वन मे जाने के लिये कहकर, गुप्त हो जाते हैं।[1] जब कि भारवि के व्यास का उपदेश द्रौपदी व भीम के तेजस्वी विचारो पर प्रकाश

१. महाभारत वनपर्व, अध्याय ३६।३०-३५

डालते हुए उनका अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन करते हैं और साथ ही शान्तिप्रिय युधिष्ठर के मोक्षकारक विचारो का स्पष्ट खण्डन भी कर देते है। उनका उपदेश इस प्रकार है।

१--'क्या आप लोग धृतराष्ट्र के पुत्रो मे से नही है? २--क्या आप लोगो ने गुणो से सुयोधन को नही जीता है? जिसने आपलोगो को व्यर्थ निर्वासित किया है, वे धृतराष्ट्र विषयाभिलाष के कारण अविवेकी बने हुए है। वे सन्देहग्रस्त विषयो का निर्णय करने के लिये कर्ण प्रभृति दुर्मन्त्रियो का आश्रय लेते हैं। आपने विपत्ति के समय भी गुणो के प्रति स्थायी एव प्रशसनीय प्रेम प्रदर्शित किया है। अत पराक्रम का आश्रय लेकर ही आपको पृथ्वीपर अधिकार प्राप्त करना होगा। आपका शत्रु बल और शस्त्र मे आपसे बढा चढा है। अत शत्रु से बढने के लिये उपाय कहना होगा, क्योंकि युद्धक्षेत्र मे विजयलक्ष्मी प्रकर्षाधीन रहती है।'[1]

उल्लेख्य है कि भारवि ने उपर्युक्त प्रश्नो का निर्णयात्मक उत्तर देने के लिये ही व्यास का आगमन तृतीय सर्ग मे कराया है।

इसके पश्चात् किरात के ११ वे सर्ग में ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र और अर्जुन का संवाद है। यह प्रसग महाभारत मे, अध्याय-३७ श्लोक ४२ से ५९[2]—अत्यधिक सरल इवं अनलकृत है। इसमे[3] भी ब्राह्मण वेषधारी इद्रने निवृत्ति-मार्गीय विचारो को सामने रखते हुए अर्जुन से कहा है-'तात! यह धनुष यही फेक दो। अब तुम--'प्राप्तोऽसि परमा गतिम्' उत्तम गति को प्राप्त हो चुके हो, परन्तु यहा भी अर्जुन ने प्रवृत्तिपरक विचारो का अनुमोदन करते हुए कहा "सुख और ऐश्वर्य की अपेक्षा मे शत्रुओ का प्रतिकार करना चाहता हु।' इस प्रसग को भारवि ने पूर्व पक्ष के रूप मे ब्राह्मण के सुख की दुःखरूपता, अर्थ काम का निष्फलत्व, मोक्ष की महानता व ससार की असारता आदि वचनो मे वैदिक सन्यास मार्ग की निवृत्ति तथा बौद्धो का दु खवाद प्रतिपादित कर, उत्तरपक्ष में अर्जुन के द्वारा प्रवृत्तिमार्ग तथा क्षत्रियो की तेजस्विता का समर्थन कराते हुए ब्राह्मण के पूर्वपक्ष का सयुक्तिक खण्डन कर दिया है। किन्तु पूर्वपक्ष का खण्डन व उत्तरपक्ष के मण्डन मे भारवि को एक समस्त सर्ग व्यय करना पडा है। इसके पश्चात् भारवि की सोद्देश्य अन्य योजनाए हैं,

---

१. किरातार्जुनीयम्-सर्ग-३।११ से १७

२. महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर प्रकाशन,

३. किरातार्जुनीयम्-सर्ग-११।१०-३६।११।३८-८०

अर्जुन की तपस्या मे विघ्न उत्पन्न करने के लिये इन्द्र द्वारा प्रेषित अप्सराप्रसंग। जैसा कि इसके पूर्व बताया है कि इन प्रसगो से भारवि ने एक ओर महाकाव्य के लिये आवश्यक लक्षणो की पूर्त्ति की है और दूसरी ओर अर्जुन के शत्रुओं के प्रति क्रोधभाव उन्हे पराजित करने की तीव्रता का सकेत करा दिया है। वस्तुत शत्रुओ के प्रति क्रोध उद्दीप्त होने पर, वीर पुरुषो के मन मे सुख की लिप्सा स्थान नही पाती।[1]

क्षत्रियो की स्वाभिमानी वृत्ति का संकेत करने के लिये भारवि ने नये एक प्रसंग की योजना की है, और वह है मायावी दानव-वध के पश्चात् किरात-दूत और अर्जुन का सवाद। (सर्ग-१३ व १४) किरात वेषधारी शकर और अर्जुन के बीच हुए युद्ध के पश्चात् शकर की प्रसन्नता से तपस्या की अपेक्षा बल, पराक्रम की आवश्यकता द्योतित की गई है।[2]

उपर्युक्त नवीन योजनाओ के अतिरिक्त भारवि ने कुछ अन्य नवीन योजनाओ से किरात के कथानक को अलकृत किया है। यक्ष और किरात–दूत की कल्पना भारवि की अपनी है। 'सूकर को देखकर दुर्योधन के हितैच्छु की कल्पना करना। (कि–१३।१०) अर्जुनकृत शिवस्तुति और अस्त्रप्राप्ति के पश्चात् महाभारतोक्त के अनुसार अर्जुन का स्वर्ग न जाकर सीधे अपने आश्रम की ओर लौट आना और ज्येष्ठ भ्राता के चरणो मे नत होना, आदि शिवपुराणोक्त अध्याय-३।३७–४२ के आधार पर है[3]।

आदान

यद्यपि किरातार्जुनीय कालिदासीय काव्यों की शैली से भिन्न विचित्र शैली का प्रवर्तक है तथापि उसमे कालिदास के काव्यो की कल्पना का प्रभाव मिलता है, जैसे शरद्वर्णन, तपोवनवर्णन, सूर्योदयास्तवर्णन आदि। इनके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण, महाभारत पद्मचूड़ामणि आदि ग्रन्थोक्त कल्पना की साम्यता मिलती है।

कुमारसम्भव

बटुवेषधारी शंकर ने पार्वती से कहा—"तुम तरुणी हो, तरुणोचित मुक्ताकलापादि आभूषण ही तुम्हें पहिनना चाहिये। किन्तु इन सबको छोड़कर बुढापे मे पहिनने योग्य तरुवल्कल को तुमने क्यो स्वीकार किया, प्रारम्भिक

१. किरातार्जुनीयम्-१०।६२
२. वही १८।१४
३. किरातार्जुनीयम्—१८।४८

रात्रि की शोभा चन्द्र और नक्षत्र से ही बढ़ती है प्रभात समय के बालारुण से नहीं"।

किरात मे, ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र को अर्जुन उत्तर देते है—

'हे तात ! यद्यपि आप का यह वचन कल्याणकारक है तथापि मैं इसका पात्र नहीं हूँ क्योंकि नक्षत्रराशि से सुशोभित आकाश दिन मे नही होता (वह रात्रि मे ही शोभित होता है)'[1]

कुमारसम्भव —पार्वती के रूप सौन्दर्य के विषय में कालिदास कहते हैं— सकलजगत् का निर्माण करने वाले ब्रह्मदेव ने एक ही स्थान मे सकल सौन्दर्य को देखने की इच्छा से खोज-खोज कर चन्द्र, कमल, तिलकुसुम आदि प्रसिद्ध सुन्दर वस्तुओं का मुख, नयन, नासिका आदि अवयवो मे यथायोग्य निवेश करके पार्वती की रचना की थी"।

किरात में:—

इन्द्र ने अमरांगनाओ को कहा—"जब ब्रह्मदेव आप लोगो का निर्माण करने के लिये उद्यत हुए तब उन्होने संसार भर की कमनीयता जो इधर उधर बिखरी हुई, कही चन्द्रमा में थी, कही कमलो मे थी अथवा ऐसी ही बहुत सी जगह थी, उसे पहले एकत्र करके आप लोगो की रचना की है यही कारण है कि जनता स्वर्गलोक की प्राप्ति के लिये लालायित रहती है[2]।

रघुवंश—

आसपास के वृक्ष पक्षियो के कलरव द्वारा राजादिलीप का जयजयकार कर रहे थे। पौर कन्याओ की लाजावर्षा की तरह, लताओ ने पुष्पो की राजा पर वृष्टि की।

किरात—

जयध्वनि की तरह भ्रमरगुञ्जार गुञ्जित वृक्षो ने जिनके शिखाग्र वायु से कम्पित हो रहे थे प्रशस्त वन्दी जनो की तरह अर्जुन को पुष्पवर्षा से आहृत किया[3]। अन्य अनेक समानस्थल रघुवश व किरात शाकुन्तल तथा किरात मे मिलते हैं।

---

१. "किमित्यपास्याऽऽभरणानियौवने, धृत त्वया वार्धकशोभिवल्कलम्
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते। कुमार० ५।४४
"श्रेयसोऽप्यस्य ते तात वचसो नास्ति भाजनम्।
नभसः स्फुटतारस्य रात्रेरिव विपर्ययः ॥ ११।४४ किरात

२ कुमारसम्भव १।४९, किरात ६।४२

३. रघुवंश २।९, १० किरात ६।२

बुद्धघोषकृत पद्यचूड़ामणि का कल्पनासादृश्य किरात में मिलता है[१]। महाभारत व किरात मे कथासाम्य को छोड़ भावसाम्य भी मिलता है।[२]

रस और भावाभिव्यक्ति

आलोच्य महाकाव्य का नायक धीरोदात्त अर्जुन तथा वीर रस अंगी है। अर्जुन की तपस्या मे विघ्नस्वरूप अप्सराविहारादि श्रृंगार इसी मुख्य रस का अग है। जैसा कि पूर्व मे देखा है महाकव्य की रूढि[३] की पूर्ति करने के लिये इस महाकाव्य मे १८ सर्ग हैं तथा षड्ऋतुओ, सूर्योदय, सूर्यास्त, पर्वत नदी, जलक्रीडा, सुरत आदि का वर्णन है। इस प्रकार भारवि वीर तथा श्रृगार के कवि हैं। आरम्भ में द्वितीय सर्ग में भीमकी उक्तियाँ[४] वीर रसोचित है। वह अपने बाहुबल से राज्य चाहता है। वह यह कभी नहीं चाहता कि उन्हे दुर्योधन की कृपा से राज्य मिल जाय उसके विचार मे जैसे मृगेन्द्र अपने मारे हुए मदस्रावी दन्तियो के द्वारा अपना आहारसम्पादन करता है, वैसे ही महान व्यक्ति ससार को अपने प्रताप तथा वीरता से अभिभूत करता हुआ किसी अन्य की सहायता से अपने अभ्युदय की अभिलाषा नही करता। वीर रस की दृष्टि से (१५, १६, १७ तथा १८ सर्ग चार सर्ग इस काव्य मे है।

अर्जुन की वीरता का एक चित्र

अर्जुन वेग से बाणो रूपी नदी के सम्मुख उसी तरह आया जैसे मगर वेग से गगा की जल धारा को चीरकर जल सतह से ऊपर उठ आता है और उसने त्रिनेत्र शिव के सुवर्ण की चट्टान के सदृश दृढ और विस्तीर्ण वक्ष स्थल पर भुजाओ से प्रहार किया[५]।

इस काव्य के आठवें, नवें तथा दसवें सर्ग मे शृगार रस के कई चित्र हैं अप्सराओ का वनविहार, पुष्पावचय, जलक्रीड़ा तथा रतिकेलि आदि जैसा

---

१ रघुवंश १३।३५ किरात ७।१०, रघुवश १३।५० किरात ६।३४, रघुवश २।३८, किरात १३।६७ रघुवश १३।५६ किरात ९।२९

२ शाकुन्तल प्रथम अंक १।२३ किरात १३।६ वही प्रथम अक १।२० किरात ७।५

३ पद्मचूड़ामणि ५।१० किरात ७।२० महाभारत वनपर्व अध्याय ३६।७ किरात २।३०

४. किरात २।१८

५. किरात १७।६३

कि इसके पूर्व संकेत कर दिया है कि उत्तरकालीन काव्यो के वर्णन मुक्तक प्रकार के हैं उनका प्रभाव समग्ररूप मे नही होता। प्रस्तुत काव्य के तीनो सर्गों के शृङ्गारिक चित्र मुक्तक शृङ्गार वर्णनो की तरह दिखाई देते हैं। इनमे नायिका भेदो के मुग्धा, खण्डिता, प्रगल्भा आदि अवस्था के चित्रो पर मुक्तत्व की छाप दिखाई देती है। जैसे :—

प्रगल्भानायिका:[1]—कोई अन्य नायिका अपने प्रिय के वार्तालाप में सन्मनस्क होकर एक टक देखने लगी और उसकी ओर मुख किये हुए खडी रही। उसकी नीवी खिसक गई। वह उसे सम्हालना भूल गई। पुष्पो की तरह पल्लव के सदृश उसका हाथ ठीक नही पड रहा था, यह भी उसे नही मालूम हो सका। (किरात ८।१५)

शृङ्गार का एक चित्र

"जलक्रीडा के समय एक अप्सरा ने अपने प्रिय पर जल उछालना चाहा और ज्यो ही उसने अञ्जलि से जल उठाया, उसके प्रिय गन्धर्व ने हँसकर उसका हाथ पकड़ लिया। करस्पर्श से उस नायिका का मन कामासक्त हो गया, उसका नीवीबन्धन ढीला हो गया किन्तु जल से सिमटी हुई उसकी करधनी ने उसके वस्त्र को रोक लिया जैसे एक सखी अपनी सखी की लाज रखने के लिये करती है। (किरात ८-५१)

इस प्रकार कई चित्र मिलते हैं जो वासनारस से लिप्त होने से शृंगार रस के कवि कालिदास से सर्वथा भिन्न प्रकार के दिखाई देते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य रसो की स्थिति भी है १ सर्ग ६ मे ३४ से ४०, करुणरस, १८ वें सर्ग मे अर्जुन कृत स्तुति मे भक्तिभाव, २२ से ४४ भयानक रस की छटा, सर्ग १२ श्लोक ४५ से ५१ तक कृतिवर्णन के चित्र और उन्हे चित्रित करने का दृष्टिकोण हमने इसके पूर्व दिखा दिया है।

अप्सरा विहार वर्णन, सूर्यास्तवर्णन, रात्रिवर्णन, प्रभातवर्णन शृङ्गाररस के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते हैं। (किरात सर्ग–९) आलम्बन रूप में प्रकृति के चित्र किरात के चतुर्थ तथा पचम सर्ग में मिलते हैं।

व्युत्पत्ति

भारवि ने अपने काव्य को विभिन्न शास्त्रो और दर्शनो के ज्ञान से अलंकृत किया है अर्जुनकृत शिवस्तुति में (सर्ग १८, श्लोक–२२–४२) प्रस्थान-त्रयी मे से अनेक कल्पनाएं हैं।[2] दुर्योधन की राजनीति (१,९–२२),

---

१. किरात ८।१४।१९

२. गीता-ब्रह्मसूत्र, उपनिषद्

भीम, और युधिष्ठिर, तथा राजकाज चर्चा (सर्ग–२) उपयुक्त स्थानो में राजनीतिज्ञ कामन्दोक्त वचनो का सादृश्य मिलता है। (२, १०, ११, १२, आदि) सर्वत्र राजनीति का आधार 'स्मृति' है। कामशास्त्र के अनुसार नायिकाभेद और रतिकेलि वर्णन है। उदाहरणार्थ वात्स्यायनोक्त संभोग-वर्णन, (सर्ग ९)

"बाह्यमाभ्यन्तरं चेति द्विविधं रतमुच्यते।
तत्राद्य चुम्बनाश्लेषनखदन्त-क्षतादिकम्।
द्वितीयं सुरतं साक्षान्नानाकरणकल्पितम्॥" इति।[1]

किरात सर्ग–९, श्लोक ४७, ४८, ४९, आभ्यन्तररति, ५० दर्शनशास्त्र का उल्लेख इसके पूर्व कर चुके हैं। व्याकरण ज्ञान का स्थान स्थान पर प्रदर्शन मिलता है। (१३।१९) पौराणिक कल्पनाएं—(१३।५७,६२)

प्रकृति (पात्र-स्वभाव) चित्रण—

प्रस्तुत काव्य के नायक अर्जुन हैं, जो धीरोदात्त कोटि मे आते हैं। तृतीय सर्ग के मध्य मे, अनीति से प्राप्त करनेवाले दुर्योधन की राज्य-सुख-समृद्धि पर एव युधिष्ठिर प्रभृति वीरो की शान्ति, और क्षमा से उत्पन्न दयनीय दशा पर प्रकाश डालने वाले द्रौपदी,भीम के तेजस्वी भाषणो की प्रखर भूमिका पर, नाट्यात्मक रीति से अर्जुन का प्रवेश होता है। प्रथम तीन सर्गों तक अर्जुन की मौनावस्था, उसके संयम, पराक्रम तथा कार्यसिद्धि के लिये आवश्यक गुणो-कर्तव्य निष्ठा, लगनशीलतादि—को मुखरित करती है। इन्द्र-अर्जुनसंवाद और किरात-दूत-अर्जुनसंवाद मे उसका वाक्चातुर्य, तथा किरात-अर्जुन युद्ध मे उसका पराक्रम, धैर्य, साहस और भक्ति आदि गुण प्रकट हुए हैं।

अन्य पात्रो में युधिष्ठिर क्षमा-शान्ति की मूर्ति के रूप में और भीम एक वीर सैनिक के रूप में ही सामने आते हैं। स्त्री पात्रो में—परम सहृदया द्रौपदी का क्षत्रियोचित—स्वाभिमान, वाक्-चातुर्य और राजनीति में वैदुष्यादि गुण ही अधिक प्रकट हुए हैं।

यहा उल्लेख्य है कि भारवि के पश्चात्, स्त्री पात्रों के प्रकृतिचित्रण में, कवियों ने रुचि नहीं ली, यहा तक की 'शिशुपालवध' काव्य में स्त्रीपात्र नहीं है। अन्त में केवल 'नैषध' काव्य मे ही दमयन्ती का विस्तृत चित्र मिलता है।

१, किरातार्जुनीय टीका-मल्लिनाथी चौखम्बा पृ० १९३. रतिरहस्ये—स्रस्तता वपुषि मीलनं दृशोर्मूर्च्छनाच रतिलाभलक्षणम्। श्लेषयेत्स्वजघनं मुहुर्मुहुः सीत्करोति गतलज्जिताकुला॥" वही पृ० १९५

काव्यसौन्दर्य

कालिदास से भारवि के बीच १५० वर्ष के समय की अवधि मानी जा-सकती है। भारवि की भाषा.शैली एव काव्यसौन्दर्य की ओर कवि का दृष्टिकोण, उक्त अवधि में हुई काव्यसाहित्य में प्रगति का संकेत कर सकती है। इन दोनों कवियो के बीच बुद्धघोष का 'पद्यचूडामणि' तथा वत्सभट्टि वाला मन्दसोर का शिलालेख, काव्यकला के विकास की एक आवश्यक कडी है, जो १५० वर्ष के बीच हुए विकास की गति का एव भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष की ओर जाने की एक मंजिल का संकेत कर सकती है।

भारवि, जैसा पूर्व संकेत कर चुके है, कलापक्ष का समर्थक है। किन्तु इसके साथ यह ध्यान मे रखना परमावश्यक है कि वह शिशुपालवध के कवि की तरह न शब्द और अर्थ दोनो की गंभीरता[1] पर ही बल देता है और न नैषधकार की प्रौढोक्ति, पदलालित्य, और परिरम्भ[2] क्रीड़ा पर ही। उसके काव्य किरातार्जुनीय मे उपर्युक्त विशेषताओ का सद्भाव होते हुए भी अर्थगाम्भीर्य ही अधिक प्रखर हो उठा है। उनका कलाविषयक सिद्धान्त यह ज्ञात होता है कि काव्य के पदप्रयोग मे, स्पष्टता का अभाव, अर्थगाम्भीर्य वाणी के अर्थ मे पौनरुक्त्य न हो और अर्थ सामर्थ्य को कुचल न दिया जाय। किरात २।२७

भारवि ने अपने काव्य को विभिन्न अलकारो से अलकृत करने का यथेष्ट प्रयत्न किया है। उनके वर्णन (ऋतु, जलक्रीड़ादि) सर्वत्र हृदयग्राही हुये है। उनके प्राकृतिक वर्णनो मे प्रयुक्त अलकार और अप्रस्तुत विधान के सौंदर्य पर रीझ कर ही पंडितो ने भारवि को 'आतपत्र भारवि' की उपाधि दी थी। स्थल कमल के वन से कमलो का पराग हवा से आकाश मे छा गया है। हवा-उसे आकाश मे चारो ओर फैलाकर मण्डलाकार बना देती है। और वह मण्डलाकार परागसघात ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे सुवर्णसूत्र निर्मित छत्र की शोभा को धारण कर रहा हो। उक्त निदर्शना भारवि की मौलिक कल्पना है। उसकी तरल कल्पना का निदर्शन किरात और अर्जुन के भयकर वाणो से हुई वराह की मृत्यु के वर्णन मे मिलता है। मृत्यु के पूर्व वराह की मानसिक और शारीरिक स्थिति का ऐसा स्पष्ट और सूक्ष्म चित्र क्वचित् ही देखने मिलता है[3]। किन्तु वर्णनप्रियता का कही

---

१. माघ—२।८६

२. नैषध-१४।९१

३. किरात १३-३०-३१

अतिरेक होने पर रसविघातक होता है। प्रथम सर्ग के आरम्भ में दुर्योधन की निन्दा दीर्घ होने से खटकती है। अर्थालंकारों के विशेषतः साधर्म्यमूलक अलंकारो के प्रयोग उचित स्थानों पर किये गये हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, निदर्शना और उनके अतिरिक्त यमक, श्लेष तथा प्रहेलिकादि चित्रकाव्यो का भी प्रयोग किया गया है। पचमसर्ग में यमक के अनेक प्रकार के योग किये हैं[1]। माघ की तरह भारवि ने शुद्ध श्लेष का प्रयोग नही किया है। १५ वें सर्ग मे कवि ने चित्रकाव्य का निदर्शन युद्धवर्णन के व्याज से प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ एकाक्षरपाद (५) निरोष्ठ्य (६) गोमूत्रिकाबध (१२) सर्वतोभद्र (२५) यद्यपि उक्त अलंकारप्रकार तत्कालीन विद्वानों की अभिरुचि के द्योतक है किन्तु है सब मस्तिष्क की कसरत। जैसे भारवि ने एक अक्षर वाला एक श्लोक लिखा है जिसमे 'न' के सिवाय अन्य वर्ण है ही नही।'

"ननोनन्नुनु नो नुन्नो नोनानानाननानानु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्ने नो नाने नानुन्ननुन्ननुत् १५।१४

हे नानानना –अनेक विषमुखधारी उन्ननुन्न –नीच विचार का, नान-पुरुष नही है, नुन्नोन, ना अना-पुरुषसेभिन्न कोई देवता है, ननुन्नेन-जिसका स्वामी विद्ध न हो, वह नुन्न.(यद्यपि) विद्ध किया गया है, अनुन्न (तथापि) अविद्ध की तरह है, नुन्ननुन्ननुत्-अत्यन्त व्यथा से आक्रान्त को व्यथितकारी पुरुष अनेनान निर्दोषी नही होता किन्तु दोषी होता है ऐसा यह पुरुष नही है।

हे विविध मुखवालो यह क्षुद्र विचार का पुरुष नही है यह न्यूनता को समूल नष्ट करने वाले पुरुष से अतिरिक्त कोई देवता है। विदित होता है कि इसका स्वामी भी है यह बाणो से आहत है तथापि अनाहत की तरह प्रतीत होता है। अत्यन्त व्यथा से आक्रान्त पुरुष को व्यथित करना दोषावह होता है। इस दोष से भी यह पुरुष मुक्त है[2]।

इन त्रिकाव्यो का प्रभाव उत्तर कालीन काव्यो पर यथेष्ट पड़ा, यहा तक कि संस्कृत भाषा को छोड़कर हिन्दी के कवियो केशव, सेनापति जैसे रीति कालीन कवियो) पर भी देखा जा सकता है।

इस प्रकार के काव्य को देख, मल्लिनाथ ने इसे 'नारिकेलपाक' कहा है[3]।

१. श्लोक ५, ७, ९, ११, १३, २०, २३ आदि सर्ग ५

२. किरात १५-१४ चौखम्बा प्रकाशन।

३. नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद्विभज्यते।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्यरसिका यथेप्सितम्।
किरात–घंटापथ व्याख्या।

भारवि के काव्य में कालिदास और बुद्धघोष की अपेक्षा पाण्डित्यप्रदर्शन की भावना अधिक दिखाई देती है। भारवि अपने राजनैतिक ज्ञान की तरह स्थान स्थान पर व्याकरण ज्ञान का प्रदर्शन करते हैं।

अर्थगांभीर्य

उपर्युक्त पांडित्य प्रदर्शन की भावना से काव्य मे काठिन्य अवश्य आ गया है किन्तु अर्थगौरवान्वित ओजपूर्ण भाषाशैली के प्रवर्तक रूप मे भारवि का नाम संस्कृत महाकाव्य की परम्परा में सदा स्मरणीय रहेगा। अर्थगौरव से तात्पर्य है थोड़े शब्दों मे प्रभूत अर्थ व्यक्त करने का गुण। इसी गुण को भारवि ने भीम की वाणी मे स्पष्ट किया है। भारवि का सासारिक, व्यावहारिक तथा शास्त्रीय अनुभव उच्चकोटि का होने से उनके हृदय-तल से निकले विचारो में तत्वज्ञान की गभीरता स्वयमेव निहित रहती है और वे औचित्यपूर्ण सीमित शब्दो द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। वक्ता के मूल विचारो या भावो के अनुसार उसकी शब्द योजना निर्मित होती है।

यह सिद्धान्त भारवि को स्वीकृत है जिसकी पुष्टि उन्होने भीम तथा इन्द्र के वचनो मे की है[1]। वे जानते हैं कि हितकारक वचन मनोहर नही होते। गुण से कोई आदर का पात्र बनता है केवल दैहिक विस्तार से नही। इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त उनकी उक्तियो मे भरे पडे हैं। भारवि के मत मे भावानुरूप भाषा होती है और अभिव्यक्ति की शैली के अनुरूप वक्ता का व्यक्तित्व होता है। भारवि[१] के प्रत्येक पात्र की भाषाशैली उसके व्यक्तित्व को स्पष्ट करती है। वक्ता कोई भी हो अर्थात् चाहे वह गुह्यक (सर्ग १) हो या किरात वेषधारी शंकर का दूत हो (सर्ग १३) या सत्य तथा शान्ति का मार्ग अनुसरण करने वाले धर्मराज हो। यदि द्रौपदी के तीखे वचनो मे धर्मराज को व्यंग्य सुनाने की क्षमता है तो भीम की ओजस्वी वाणी मे उसकी वीरता तथा घमण्ड की स्पष्ट अभिव्यक्ति, एव युधिष्ठिर की वाणी उसके शान्त स्वभाव तथा विरक्त भाव का सकेत करती है।

युधिष्ठिर की कायरता तथा उसकी शान्तिप्रियता की ओर संकेत करती द्रौपदी कहती है। (युधिष्ठिर के सिवाय) इस पृथ्वी पर कौन ऐसा राजा है जो अनुकूल सहायक सामग्रियों के रहते हुए तथा जिसको क्षत्रिय होने का गर्व है, सन्धि आदि तथा सौन्दर्य आदि राजोचित गुणो से युक्त, वशपर-म्परा से रक्षित राज्यश्री को अपनी मनोरमा प्रियतमा की भांति (देखते

---

१. किरात २, २८।११, ४१

हुये) अपहृत होने देगा। इस उक्ति के द्वारा द्रौपदी ने सम्पूर्ण सूत का चित्र युधिष्ठिर के द्वारा उसे जुए के दांव पर लगाने तथा दुःशासन के द्वारा उसके अपमान की घटना की व्यञ्जना कराकर युधिष्ठिर के सम्मुख उपस्थित कर एक तीखा व्यंग्य सुना दिया है[1]। उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट हो जाता है कि भारवि मे कालिदास का प्रसाद गुण सर्वत्र नही मिलता। यद्यपि उनकी भाषा मे उत्तरकालीन भाषा में प्राप्त सामासिकता नही मिलती फिर भी कालिदास की शुद्ध वैदर्भी के दर्शन यहा नही होते, जिस प्रासादिकता से कालिदास रसपेशलभाव पाठक के हृदय मे पहुचाते हैं, उस प्रासादिकता के अभाव में भारवि नारिकेल-भाव पाठक के हृदय की वस्तु प्रथम नही बना पाते। इसका सकेत मल्लिनाथ ने कर दिया है। इतना तो निश्चित है कि कालिदास की भाषा-शैली ने भारवि के यहा आकर पूर्वरूप परिवर्तित कर दिया है। इसलिये भारवि की भाषा कोमल भावो की अपेक्षा उग्र तेजस्वी भावो को व्यक्त करने मे अधिक समर्थ है।

भारवि ने अपनी भाषा का आदर्श इस प्रकार व्यक्त किया है।

पुण्यशाली व्यक्तियो की सरस्वती सदा गभीर पदों से युक्त होती है। उसके स्फुट वर्ण होते हैं और कानो को प्रसन्न करते हैं। वह शत्रुओ के हृदय को भी प्रसन्न करती है[2]। भारवि की भाषाशैली का सक्षेप मे यही रहस्य है।

किरातार्जुनीय मे विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। भारवि[3] वंशस्थ छन्द के प्रयोग मे कुशल है इसका सकेत क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक मे किया है। इसके अतिरिक्त उपजाति, वैतालीय (२ सर्ग) द्रुतविलंबित, प्रमिताक्षरा, प्रहर्षिणी (६ सर्ग), स्वागता (९ सर्ग), उद्गता(१२ सर्ग), पुष्पिताग्रा(१० सर्ग) उपर्युक्त छन्दों के अतिरिक्त औपच्छन्दसिक, अपरवक्त्र, जलोद्धतगति, चन्द्रिका, मत्तमयूर आदि अप्रसिद्ध छन्दो का भी प्रयोग किया है।

रावणवध (भट्टिकाव्य) कवि परिचयः—

प्राचीन परम्परा के अनुसार महाकवि भट्टि ने अपने जीवनचरित के विषय मे कही अधिक लिखा नहीं है। भट्टिकाव्य के अन्तिम पद्य से उनके

---

१. किरात सर्ग १,३१ चौखम्बा प्रकाशन
गुणानुरक्तामनुरक्तसाधन कुलाभिमानी कुलजो नराधिप।
परस्त्वदन्य क इवापहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिवश्रियम्।

२. किरात १४।३
विविक्तवर्णाभरणासुखश्रुति. प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणा प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती। १४-३,४ आदि

३. सुवृत्ततिलक काव्यमाला श्लोक ३१ तृतीयोविन्यासः

जीवन तथा समय का स्वल्प संकेत मिलता है । वे बताते हैं मैंने भट्टिकाव्य (रावणवध) का निर्माण राजा श्रीधरसेन की राजधानी वलभी मे किया । राजा श्रीधरसेन प्रजाओ का कल्याण करने वाले हैं अत उनकी कीर्ति का विस्तार हो[१] । उक्त पद्य मे भट्टिकाव्य का निर्माण-काल तथा उनके आश्रय-दाता श्रीधरसेन का सकेत अवश्य मिलता है किन्तु शिलालेखो से ज्ञात होता है कि श्रीधरसेन नामक चार राजा हो चुके हैं अत भट्टि के श्रीधरसेन कौन थे, कहना कठिन है । प्रथम श्रीधरसेन का काल ५०० ई० के आस पास है और अन्तिम राजा का ६५० के लगभग । श्रीधरसेन द्वितीय के शिलालेख के अनुसार किसी भट्टि नामक विद्वान को कुछ भूमिदान देने का उल्लेख है यद्यपि रावणवध के कवि भट्टि और उक्त शिलालेखोक्त भट्टि को अभिन्न सिद्ध करने वाला कोई पुष्ट प्रमाण तो उपलब्ध नही हुआ है, फिर भी दोनों को नामसा-म्यता के आधार पर एक ही मान लिया जाय तो कोई आपत्ति नही दिखाई देती । इसे स्वीकार कर लेने पर भट्टि का समय सातवी शती का प्रथम चरण सिद्ध होता है । (६१० ई०-६१५) इस प्रकार भट्टि श्रीधरसेन के सभापण्डित होने के अतिरिक्त उनके जीवनवृत्त का कुछ पता नही चलता ।

ग्रन्थ:—

भट्टि कवि के ग्रन्थ का नाम रावणवध है किन्तु सस्कृत साहित्य क्षेत्र मे यह ग्रथ उन्ही के नाम पर भट्टिकाव्य कहलाता है । जो उसकी सफलता का चिह्न माना जा सकता है । कविने रामचन्द्र के जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की रामायण कथा को इस काव्य का इतिवृत्त बनाया है जो २२ सर्गों मे समाप्त होता है ।

उक्त सर्गों को कवि ने चार काण्डो में विभक्त किया है । जिनमे प्रथम 'प्रकीर्ण काड' (१ से ५ तक सर्ग) के नाम से प्रसिद्ध है । इस काड मे राम जन्म से लेकर सीताहरण तक की कथा आजाती है ।

---

१. Ed. Govinda Sankar Bapat, with Comm. of gaymangala N. S. P Bombay 1887 Ed, K. P. Trivedi, with comm. of Mallinath, in Bomb. Skt ser. 2 vols. 1898, Ed. J N. Tarkaratna, with comm of Jayamangala and Bharata Mallika. 2 vols Calcutta 1871–73

काव्यमिद विहितं मया वलभ्या श्रीधरसेननरेन्द्रपालितायाम् ।
कीर्तिरतो भवतान्नृपस्य तस्य क्षेमकर. क्षिति पो यत. प्रजानाम् ॥
भट्टिकाव्य २२-३५

व्याकरण की दृष्टि से प्रथम चार सर्गों मे कोई विशेष बात सामने नहीं आती किन्तु कवित्व की दृष्टि से प्रथम चार सर्ग ही महत्त्वपूर्ण दिखाई देते हैं। पंचम सर्ग मे प्राय: पद्य प्रकीर्ण कोटि के हैं केवल दो स्थलो पर क्रमश 'ट' प्रत्यय (टाधिकार ९७-१००) तथा आमधिकार (१०४-१०७ के प्रयोगों की योजना है।

२ अधिकार कांड

इस काड में षष्ठसे लेकर नवम सर्ग तक का भाग आता है। इन सर्गों में भी कई पद्य प्रकीर्ण हैं। किन्तु अधिकतर पद्यो मे व्याकरण के नियमो की दृष्टि से दुहादिद्विकर्मकधातु (६, ८ १०) 'तान्छीलिककृदधिकार' (७, २८-३३) भावे कर्तरिप्रयोग (७,६८-७७), आत्मने पदाधिकार(८,७०-८४) अनभिहितेऽधिकार (९, ९५-१३१) आदि पर कवि का विशेष ध्यान रहा है।

३ प्रसन्न कांड

इस काड के अन्तर्गत चार सर्ग १०, ११, १२, १३ आते हैं। इनमे व्याकरण की अपेक्षा कवि ने अलकार शास्त्र पर ध्यान केन्द्रित किया है। इसलिये इस काण्ड का नाम प्रसन्न काण्ड रखा गया है। दशम सर्ग मे शब्दालकार तथा अर्थालकार के अनेको भेदोपभेदो का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त शेष सर्गों मे अर्थात् १२, १२ मे क्रमश माधुर्य और भाविक तथा १३ सर्ग मे भाषासम नामक श्लेषभेद आदि काव्योपागो का वर्णन है।

४ तिङन्तकांड

इस काड के अन्तर्गत १४ से २२ तक सर्गो का समावेश किया गया है। इसमे सस्कृत व्याकरण के नौ लकारो, अर्थात काल तथा अर्थ को बतलाने वाले क्रियापदो के रूपो। लिङ्, लुट्, लङ्, लट्, लिङ्, लोट्, लृङ्, लुट्) का क्रमश एक-एक सर्ग मे एक एक लकार का प्रयोग है। इस प्रकार कवि ने व्याकरण के अनेक प्रयोगो पर व्यावहारिक दृष्टिपात किया है।

कथादृष्टया

प्रथम सर्ग मे रामजन्म, द्वितीय मे राम का सीता के साथ विवाह, तृतीय से पञ्चमान्त तक रामप्रवास, सीताहरण सुग्रीवाभिषेक, षष्ठ मे सीताशोध सप्तम मे अशोकवनविनाश, अष्टम मे मारुतिबन्धन, नवम मे सीता जी को अंगुलीयकार्पण, दशम मे लकाप्रभातवर्णन, एकादश मे विभीषण का राम की ओर आगमन, द्वादश मे सेतुबन्धन, त्रयोदश मे शरबन्ध, चतुर्दश मे कुम्भकर्ण वध, पंचदश में रावणविलाप षोडश मे रावणवध, सप्तदश में विभीषणविलाप अष्टादश मे बिभीषण अभिषेक, नवदश मे सीतादोषचर्चा विंशति मे सीता-

संशुद्धि, एकविंशति मे और द्वाविंशति मे अयोध्या में पुनरागमन आदि का वर्णन है।

काव्य का उद्देश्य—

पूर्व चर्चित काव्यो से भट्टिकाव्य का लक्ष्य भिन्न है। इस काव्य का लक्ष्य मनोरंजन या आनन्द के साथ साथ व्याकरण की शिक्षा देना है। इस उद्देश्य को लेकर चलना भट्टि का कोई नया प्रयास नहीं है। इसके पूर्व कवि अश्वघोष तथा बुद्धघोष ने भी इसको साधन बनाकर बौद्ध धर्म का प्रचार या शिक्षा दी थी। उसी क्रम को स्वीकार कर भट्टि ने (रस को साधन रूप मे स्वीकार कर व्याकरण की शिक्षा देना चाहा हैं। उक्त उद्देश्य को स्वीकार करने मे भट्टि का यह हेतु हो सकता है जैसा पूर्व कहा है प्राकृत भाषाओं का साहित्य वाकाटक राजाओं के काल से ही समृद्ध होने लग गया था। इसकी पुष्टि सेतुबन्ध महाकाव्य से हो जाती है और भट्टि स्वय इस काव्य से प्रभावित रहे हैं, प्राकृत भाषा और उसके साहित्य की समृद्धि के कारण संस्कृत व्याकरण विशेषत. साहित्य जनसाधारण के लिये कठिन होता जा रहा था किन्तु संस्कृत साहित्य मे गति प्राप्त करने के लिये व्याकरण का ज्ञान होना परमावश्यक था, इस बात को भट्टि ने खूब समझ लिया था। सुकुमारमति छात्रो के लिये रूक्ष विषयो को सरल तथा सरस बनाने के लिये इस मार्ग को अपनाया जाता रहा है। यह आयुर्वेद, ज्योतिष आदि शास्त्रो के ग्रन्थो को देखने से ज्ञात हो जाता है। काव्य का लक्ष्य परिवर्तित हो जाने से तथा रस निष्पत्ति के उपकरणभूत काव्य के इतिवृत्त पर कवि का विशेष ध्यान न होने से उसके घटनाचक्र मे कवि के औत्सुक्य का अभाव खटकता है। विशेष उल्लेख्य यह है कि उत्तरकालीन काव्यो के कथानको की अपेक्षा भट्टिकाव्य के कथानक का फलक विस्तृत है साथ ही उसके जैसे लम्बे तथा कथा की गति मे अवरोध उत्पन्न करने वाले वर्णन भी नहीं है। और इसीलिये उसके कुछ सर्ग बहुत छोटे है। उदाहरण के लिये प्रथम एकविंशति तथा द्वाविंशति सर्ग से क्रमशः २७,३० तथा ३५ पद्य हैं।

काव्यसौन्दर्य—

भट्टिकाव्य एक व्याकरण का अच्छा ग्रन्थ होने के साथ साथ काव्य-सौन्दर्य से मण्डित भी है। कवि ने महाकाव्य के आवश्यक नियमो की पूर्ति करने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिये दशम सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक, चार सर्ग की सृष्टि काव्य की विशेषताओ को प्रदर्शित करने के लिये है। दशम सर्ग मे शब्दार्थालंकार की सुन्दर योजना है। यमकालंकार के भिन्न-भिन्न उदाहरण इस सर्ग मे उपलब्ध होते हैं।

एकादश सर्ग का प्रभातवर्णन तथा द्वितीय सर्ग का वनवर्णन व्याकरण की रूक्षता दूर करने के लिये पर्याप्त है।

रस की दृष्टि से इस काव्य का अंगी वीररस है और श्रृंगार अंगरूप में किन्तु कवि का लक्ष्य काव्य की ओर न होने से भावपक्ष के चित्रण में, जैसे युद्धवर्णन मे भाषा श्रुतिकटु रसोचित होने पर भी उसे सफलता नहीं मिली है।

उदाहरण के लिये "दृढबाहु और मुष्टि से युक्त लक्ष्मण जी ने आकाश की ओर देखकर दक्षिण जंघा को संकुचित और वाम जघा को कुछ झुकाकर तीक्ष्ण बाण को तेजी से (धनुष के साथ) खींचते हुये उन राक्षसों को मारा[1]। अंगीरस वीर की तरह अंगरस श्रृंगार में भी कवि को कम सफलता मिली है। एकादश सर्ग के अन्तर्गत प्रभातवर्णन मे श्रृंगार रस की नियोजना की गई है किन्तु इसमे भी कुछ विशेषशब्दो की योजना करने से रसोद्रेक नहीं हो सका है। उदाहरण के लिये—"सामनीति का प्रयोग करते हुए किसी नायक (प्रिय) के द्वारा प्राच्छुरित करदिये जाने पर (नखक्षत) कोई नायिका रोमांचित हो गई, परिणामत: उसके हृदय का क्रोध शान्त हो जाने से वह नायिका चञ्चल हो उठी और नायक ने उसे हठपूर्वक वश में कर लिया है[2]।

द्वितीय सर्ग के प्रकृति वर्णन मे कुछ स्थल अवश्य ही भट्टि के सूक्ष्म निरीक्षण तथा उसकी सहृदयता की पुष्टि कर सकते हैं। दो एक उदाहरण पर्याप्त होगे।

"राम दही मथती हुई गोपियो के उस नृत्य को देखकर प्रसन्न हुए जिसमें अग के दोनों पार्श्व इधर उधर संचालित होते थे, उनका अंग सुन्दर दिखाई पड रहा था। उनके सुन्दर नितम्ब इधर उधर हिलने से रमणीय लग रहे थे तथा उनके नृत्य मे मन्द एवं गम्भीर गतिवाला दही मथने का शब्द ताल दे रहा था[3]।

इसी प्रकृति के अन्य भी कुछ स्थल हैं जैसे—सूर्योदय का वर्णन (११,२०) एकावली अलंकार का सुन्दर उदाहरण शरत्कालीन सुषमा का चित्र उप-

---

१ "अधिज्यचापः स्थिरबाहुमुष्टिरुदञ्चिताक्षोऽञ्चितदक्षिणोरुः।
ताम् लक्ष्मणः सन्नतवामजंघो जघान शुद्धेषुरमन्दकर्षी ॥ भट्टिकाव्य २–११

२ भट्टिकाव्य सर्ग ११,१४

३. विवृत्तपार्श्वं रुचिरागहारं समुद्वहच्चारुनितम्बरम्यम्।
आमन्द्रमन्थध्वनिदत्तताल गोपांगनानृत्यमनन्दयत्तम् ॥ २,१६

स्थित करता है। उदाहरण के लिये दूसरा चित्र—कवि प्रातःकाल का रमणीय चित्र खींचता है। नदी किनारे स्थित पेड़ के पत्तों से ओस की बूंदें गिर रही हैं पेड़ पर बैठे हुए पक्षी कलरव कर रहे हैं इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है, मानो प्रिय चन्द्रमा के चले जाने से कुमुदिनी को दु.खी देखकर नदी किनारे का पेड रो रहा है[१]। किसी में नायक-नायिका का आरोप भी दिखाई देता है[२]। किन्तु इन पद्यो में प्रयुक्त अप्रस्तुत विधान रूढ से ही दिखाई देते हैं।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से भट्टि ने अपने काव्य को अलंकृत करने का प्रयत्न किया है। इस काव्य के द्वादश सर्ग मे प्रयुक्त विभीषण की उक्तियाँ भट्टि के राजनीति ज्ञान का परिचय देती हैं। इसके अतिरिक्त व्याकरण का तो ग्रथ ही निर्मित किया है।

"राम ने प्रत्येक लता के पास जाकर फूलों को तोड़ा, नदी में जाकर आचमन किया और सुन्दर पत्थर पर बैठ कर विश्राम भी किया"। उक्त पद्य में लतानुपात नद्यवस्कन्द तथा शिलोपवेशं के प्रयोग विशेषतः व्याकरण के नियमो के प्रदर्शन के लिये किये गये है। इन प्रयोगो के द्वारा कवि यह बतलाना चाहता है विश् पद (पत्) स्कन्द आदि धातुओ से वीप्सार्थ मे णमुल् प्रत्यय होता है[३]।

पूर्ववर्ती काव्यों के प्रभावो मे दो काव्यो के नाम, विशेषत प्रस्तुत किये जा सकते हैं १. किरात, जिसकी शृंगारी प्रवृत्ति का प्रभाव एकादश सर्ग के प्रभातवर्णन पर देखा जा सकता है। २. सेतुबन्ध महाकाव्य जिसका प्रभाव भट्टि के त्रयोदश सर्ग पर मिलता है। इस सर्ग पर सेतुबन्ध के समुद्र वर्णन की कल्पनाओ का प्रभाव है। शैली की दृष्टि से इस सर्ग मे समासात पदावली दिखाई देती है। और इसमे भट्टि ने एक साथ सस्कृत और प्राकृत का भाषासम प्रयोग किया है।

छन्द की दृष्टि से भट्टि ने सेतुबन्ध मे 'स्कन्धक' छन्द का प्रयोग किया है। डा० कीथ ने भट्टि के तेरहवें सर्ग की आर्या का गीति नामक छन्द माना है

---

१. निशातुषारैर्नयनाम्बुकल्पैः पत्रान्तपर्यागलदच्छबिन्दुः।
उपारुरोदेव नदत्पतङ्गकुमुद्वतीं तीरतरुर्दिनादौ॥ (२, ४) भट्टि

२. भट्टि २, ६

३ इन रूपो में पाणिनि के ३, ४।५६ तथा ८।१।५६ के सूत्रों की ओर संकेत किया गया है।

किन्तु यहाँ गीति छन्द नहीं है प्राकृत का 'स्कन्धक' है।[1] एक से व्याकरण-सम्मत रूपो को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति ने भट्टिकाव्य की शैली के प्रभाव में रुकावट अवरोध अवश्य उत्पन्न कर दिया है। प्रासादिकता के अभाव में दीप तुल्य प्रबन्धोऽयं के द्वारा स्पष्ट कर दिया है जिसका सकेत हमने पूर्व कर दिया है। छन्द की दृष्टि से भट्टि में अधिक लम्बे छन्दों का प्रयोग कम पाया जाता है। उसका प्रधान छन्द लम्बे श्लोकों में हैं जिनका प्रयोग ४-९ तथा १४-२२ व्याकरण सम्बन्धी सर्गों मे किया गया है। अन्य स्थलों पर जैसे प्रकीर्ण सर्गों में उपजाति, रुचिरा, मालिनी, आदि छन्दों का प्रयोग मिलता है। १० वें सर्ग मे पुष्पिताग्रा का प्रयोग है। इनके अतिरिक्ति अन्य छन्द भी प्रयुक्त हैं प्रहर्षिणी, औपच्छन्दसिक, वंशस्थ, वैतालीय, नन्दन, अश्वललित, पृथ्वी, रुचिरा, नकुर्टक, तोटक, द्रुतविलंबित, प्रमिताक्षरा, प्रहरणकलिका, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित और स्रग्धरा है।

अलकारो में भ्रान्तिमान् संकर, उपमा, संसृष्टि उत्प्रेक्षा, संदेह, अर्थान्तर-न्यास, विषम, श्लेष, समासोक्ति, यथासंख्य, निदर्शना, रूपक आदि।

जानकी हरण

कविपरिचय—कवि कुमारदास ने 'जानकीहरण' महाकाव्य का प्रणयन किया है। यह ग्रन्थ मूलरूप मे नष्ट हो जाने से, आज भी पूर्णरूप मे अप्रकाशित है[2]। कवि सिंघल निवासी होने पर भी उसकी कीर्त्ति का परिचय सूक्ति संग्रहो तथा अन्य ग्रन्थो मे उद्धृत श्लोकों द्वारा मिलता रहा है।[3] कवि के वैयक्तिक जीवन तथा उनके काल का यथार्थ निर्णय नही हो सका। राजशेखर की काव्यमीमांसा के अनुसार ये जन्मान्ध थे[4]। इतना तो

---

१. सस्कृत सा० का इतिहास पृ० १४५
डा० कीथ हिन्दी . मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन,
अनुवादक डा० मंगलदेव शास्त्री।

२. पं० हरिदास शास्त्री के द्वारा प्रकाशित मूलमात्र १५ सर्ग के २२ श्लोक तक (कलकत्ता) श्री नन्दरंगीकर द्वारा संपादित प्रथम १० सर्ग बम्बई १९०७। मद्रास गवर्नमेण्ट लाइब्रेरी। हस्तलिखित प्रति नं० २९३५

३. राजशेखर ने इसकी प्रशंसा मे यह पद्य लिखा है।
'जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कवि : कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमौ॥

४. काव्यामीमांसा पटना प्रकाशन पं० केदारनाथ पृ० २७

निश्चित है कि कुमारदास कवि, कालिदास से पूर्ण प्रभावित रहे हैं। जिसका परिचय काव्य की भाषा-शैली से मिल जाता है। श्रीनन्दरंगीकर ने जानकी-हरण की भूमिका मे कवि का काल ८वीं शती के अन्तिम और नवीं सदी के पूर्वार्द्ध में माना है। किन्तु कुमारदास की भाषा-शैली एवं पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना उसे कवि माघ के पूर्ववर्ती सिद्ध करती है।

काव्य—

इस काव्य में २५ सर्ग बताये जाते हैं[१]। इसके मूलग्रन्थ के परिमाण के विषय मे मतभेद है। इस महाकाव्य की एक हस्तलिखित प्रति २० सर्गों की है।

आधार—

कवि ने रामायण के छ काण्डों की कथा का आधार लेकर विदग्धता-पूर्ण रीति से काव्य का निर्माण किया है।

सर्गानुसार कथा—

प्रथम सर्ग मे—अयोध्यानगरी और उसकी समृद्धि, राजा दशरथ, उसका पराक्रम, यवन और तुरकीश राजाओं पर उसकी विजय, उसकी महारानियो का वर्णन, दशरथ की मृगया और श्रवण की मृत्यु।

दूसरे सर्ग में-बृहस्पति आदि देव शेषशायी विष्णु के पास सहायता मागते समय रावण के चरित्र का वर्णन करते हैं। विष्णु, राम अवतार के रूप मे देवो की सहायता देने का वचन देते है।

तीसरे सर्ग मे—बसंत वर्णन, राजा दशरथ की अपनी रानियो के साथ जलकेलि तथा सन्ध्या का काव्यमय रमणीय वर्णन। रात्रि तथा प्रभात का वर्णन।

चतुर्थ सर्ग मे—दशरथ पुत्रकामेष्टि यज्ञ करते हैं। पुत्र जन्म। विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिये श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मण को ले जाते है। ताड़कावध और रामचन्द्र को दैवी अस्त्र का दान।

पञ्चम सर्ग मे—विश्वामित्र के आश्रम मे रामचन्द्र का प्रवेश, और वहां के जीवन का सौन्दर्य वर्णन। मारीच और सुबाहु से युद्ध और सुबाहु का वध।

१. Reconstructed and edited (with the Sinhalese Sanna) Cantos 1–XX and one verse of XXV by Dharmarama Sthavira in Sinhalese Character, Colombo 1891, History of Sanskrit Lit. S. K. De. 1947 Page 185.

षष्ठ सर्ग में—विश्वामित्र राम लक्ष्मण को जनकपुर ले जाते हैं। मार्ग में गौतमपत्नी अहिल्या का उद्धार, 'मारुतस्' के जन्म स्थान पर विश्वामित्र सहित राम लक्ष्मण का गमन, मिथिला नगरी का वर्णन, राजा जनक से राम लक्ष्मण की भेंट। रामचन्द्र को महान् धनुष का दर्शन।

सप्तम सर्ग में—राम और सीता का पूर्वानुराग वर्णन, राम के मुख से जानकी के सौन्दर्य का वर्णन, राम और सीता का प्रेम वर्णन और विवाह।

अष्टम सर्ग में—राम और सीता का केलिवर्णन, सूर्यास्त, चन्द्रोदय और रात्रि का काव्यमय वर्णन, मधुपान।

नवम सर्ग मे—चारो भाई अयोध्या लौटते हैं। मार्ग मे परशुराम और राम की भेंट। राजा कैकेय अपने पुत्र युधाजित को भरत और शत्रुघ्न को लेने के लिये भेजते हैं।

दशम सर्ग में—राजा दशरथ राजनीति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते समय एक लंबा भाषण देते हैं। राम का राज्याभिषेक। राम का वन गमन। विराध वध, शूर्पणखा वृतान्त, खर-दूषण वध और सर्ग समाप्ति के पूर्व सीताहरण हो जाता है।

एकादश सर्ग मे-राम तथा हनुमान की मित्रता, बालिवध और वर्षाऋतु वर्णन।

द्वादश सर्ग मे—शरत् काल मे भी सुग्रीव के अन्वेषण कार्य में न लगने पर लक्ष्मण की फटकार। सुग्रीव का आगमन तथा पर्वत वर्णन।

त्रयोदश सर्ग मे—वानरीसेना एकत्र होती है।

चतुर्दश सर्ग मे—समुद्र पर सेतु निर्माण व सेना का समुद्र पार जाने का चमत्कारी वर्णन।

पंचदश सर्ग में—अंगद का रामदूत के रूप मे रावण की सभा मे गमन।

षोडश सर्ग मे—राक्षसो की केलियो का वर्णन।

सप्तदश से विंशति सर्ग तक— संग्राम का वर्णन और अन्त में राम की विजय। यही पर काव्य समाप्त हो जाता है।

उपर्युक्त काव्य के इतिवृत्त पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है जैसा कि पूर्व में कहा है। प्रस्तुत काव्य का आधार वाल्मीकि रामायण की कथा है किन्तु कथानक की दृष्टिकोण से कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं मिलता। इन विदग्ध काव्यो की विशेषता यह है कि इनमें वाल्मीकि की रचना की अपेक्षा शृङ्गार को अधिक स्थान दिया गया है। प्रथम यह शृंगार वर्णन राक्षसों तक ही सीमित था। देखिये-सेतुबन्ध सर्ग १०। भट्टिकाव्य सर्ग ११। इस कृति में विकासपरिवर्तन करते हुए कुमारदास ने कुमारसंभव

के अनुकरण पर राम तथा सीता का संभोग वर्णन भी किया है जो अश्लीलता की सीमा तक पहुंच गया है सर्ग ८ श्लोक २६ ।[1] और जो आनन्दवर्धन के अनुसार अनुचित है, यह हमने पूर्व कहा है ।

मूल कथानक में अहिल्या के शिला बन जाने के अतिरिक्त कोई अन्य परिवर्तन कवि ने नहीं किया है, इसके अतिरिक्त अन्य भाइयों के विवाह का भी निर्देश किया है । (सर्ग ९ श्लोक १ व १०) प्रस्तुत काव्य की प्रधान विशेषता यह है कि संम्पूर्ण काव्य मे श्रृङ्गारात्मक वर्णनों को पर्याप्त स्थान दिया गया है ।

जैसे—१ : दशरथ और उनकी पत्नियों का विहार—जलकेलि वर्णन, समस्त सर्ग ३ ।

२ : राम सीता के पूर्वानुराग का वर्णन सर्ग ७, १, ३४

३ : मिथिला में विवाह के पश्चात् राम और सीता का संभोग वर्णन जिसमे कुमारसम्भव के समस्त अष्टम सर्ग का प्रभाव है ।

४ . सेतुबन्ध के अनुकरण पर राक्षसो की युद्ध के पूर्व केलिका वर्णन समस्त सर्ग १६ ।

उपर्युक्त विशेषताओ के अतिरिक्त महाकाव्यो नियमो के अनुसार युद्ध, प्रासाद, ऋतु आदि का वर्णन स्थान-स्थान पर विस्तारपूर्वक किया गया है । इस विस्तार से काव्य के इतिवृत्त मे शिथिलता अवश्य ही भासित होती है ।

शिशुपालवध (स)

कविपरिचय —कवि माघ ने अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह के आश्रयदाता का वर्णन (कविवश परिचय मे) किया है । जिससे ज्ञात होता है कि कवि माघ का जन्म (परम्परानुसार) एक प्रतिष्ठित व धनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था किन्तु इनके समय के विषय मे विद्वानो का मतभेद रहा है । एक वर्ग इन्हे ७वी शती के उत्तरार्ध में निश्चित करता है और दूसरा आठवीं शती के मध्यभाग मे । किन्तु उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर (१—आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक के आलोक मे कई पद्य उद्धृत है । ३।५३ व ५।२६ । डा० कीलहार्न को प्राप्त शिलालेख के आधार पर) माघ का समय ७ वी शती का उत्तरार्द्ध निश्चित किया गया है । निश्चितरूप से भारवि की तरह माघ भी दरबारी कवि थे ।

---

१. ज्ञातमन्मथरसा मधातुरे कामिनी क्षिपति नीविबन्धनम् ।
या जहार करयुग्ममंशुकादंजलिं किल भयेन कुर्वती ॥ २६,२८.२९,३१,३२

काव्य.—कवि माघ ने शिशुपालवध नामक महाकाव्य की रचना की है, जिसमें महाभारतीय कथा—कृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदि नरेश शिशुपाल का वध २० सर्गों में वर्णित है[1]।

सर्गानुसार कथा—प्रथम सर्ग का आरम्भ देवर्षि नारद के आगमन से होता है। जो आकाश मार्ग से नीचे उतरते आ रहे हैं, उन्हे दूर से देखने वालो की विविध आशंकाओं का वर्णन, नारद जी का वर्णन, श्रीकृष्ण के द्वारा उनके अतिथ्य का वर्णन, आगमन का कारण व कृष्ण की स्तुतिपूर्वक शिशुपाल के पूर्व जन्मो का औद्धत्य कहते हुए उसके वध के लिये इन्द्रसन्देश कहना, सन्देश की स्वीकृति व नारद जी का प्रस्थान वर्णन है।

द्वितीय सर्ग—श्रीकृष्ण, बलराम तथा उद्धव के साथ मन्त्रणागृह में उपस्थित होते हैं श्रीकृष्ण अपनी समस्या प्रस्तुत करते हैं। १:—शिशुपाल का वध करना आवश्यक है। २—इसी समय युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उपस्थित होने के लिये निमन्त्रण भी मिला है। श्रीकृष्ण अपना मत कहते हैं बलराम जी का वर्णन व उनका मत, उद्धव जी अपना मत देते हैं।

तृतीय सर्ग—हस्तिनापुर जाने के लिये श्रीकृष्ण की सेना का वर्णन। सहगामिनी रमणियों का वर्णन, श्रीकृष्ण का दिव्यास्त्रधारण तथा प्रस्थान करने का वर्णन, दर्शनार्थी पुरवासियो का वर्णन, द्वारकापुरी का वर्णन व समुद्र वर्णन।

चतुर्थ सर्ग—सेना रैवतक पर्वत पर पहुंचती है, रैवतक पर्वत का अलंकृत वर्णन।

पंचम सर्ग—सेना के रैवतक पर्वत पर पड़ाव डालने का वर्णन, तथा गज, अश्व, बैल, ऊंट आदि का वर्णन।

षष्ठ सर्ग—यमक अलकार के साथ छः ऋतुओ का वर्णन (१—वसन्त, २—ग्रीष्म ३—वर्षा, ४—शरद्, ५—हेमन्त, ६—शिशिर) छः ऋतुओं के वर्णन के पश्चात् पुनः संक्षेप में वसन्त आदि छः ऋतुओं का वर्णन।

१.Ed. Atmaram Sastri Vetal and J. S. hosing with Comm. Vallabhadeva and Mallinatha, Kashi Skt. Ser. No. 69, 1929 Ed. Durgaprasad and Sivdatta. N. S. P. Bombay 1888, 9th ed. 1927 with comm by E. Hultzsch, Leipzig 1929, and in extarcts, by C. Cappellar (Balamagha) Stuttagart 1915 with Text in Roman Characters.

नोट—एक बार छः ऋतुओं के वर्णन के पश्चात् पुनः उनके वर्णन करने की प्रवृत्ति माघ से ही प्रारम्भ होती है जो क्रमशः रत्नाकर कृत हरविजय, शिवस्वामिन् कृत "कप्फिणाभ्युदय" आदि में मिलती है।

सप्तमसर्ग—उक्त ऋतुओ के एक साथ आने से यादवांगनाओं में कामवृद्धि उनका नायक के साथ वन विहार, उपवन शोभा, पुष्पचय तथा विविध विलासों आदि का वर्णन और अन्त में जलक्रीड़ा करने की इच्छा होने का वर्णन।

अष्टम सर्ग—जलक्रीडा वर्णन।

नवम सर्ग—यह सूर्यास्त से आरम्भ होता है। सन्ध्या, अन्धकार व चन्द्रोदय वर्णन, दूती कर्म का वर्णन, कामातुर यादवागनाओ के प्रसाधन का वर्णन, नायक, नायिकाओं का परस्परसन्देश तथा मधुपान मे प्रवृत्त होने का वर्णन।

दशमसर्ग–यादव तथा उनकी रमणियो के मधुपान का वर्णन, सुरत वर्णन, सुरतावसान का वर्णन और प्रभात होने का संकेत।

एकादश सर्ग—श्रीकृष्ण जी के प्रबोधनार्थ वैतालिककृत प्रभात वर्णन।

द्वादश सर्ग—सेनाप्रयाण वर्णन, यमुना का वर्णन तथा उसे पार करने का वर्णन।

त्रयोदश सर्ग—श्रीकृष्ण को सम्मानपूर्वक लेने के लिये पाडवो का यमुना किनारे आगमन। श्रीकृष्ण को देखने के लिये उत्सुक इन्द्रप्रस्थ पुररमणियो का हृदयग्राही वर्णन। यज्ञसभा का वर्णन।

चतुर्दश सर्ग—यज्ञ का वर्णन, इसके पूर्वार्द्ध मे कवि ने अपने समस्त ज्ञान, दर्शन,मीमासा और कर्मकाण्ड का परिचय दिया है। भीष्मपितामह की आज्ञानुसार श्रीकृष्ण की अग्रपूजा की जाती है।

पञ्चदश सर्ग–श्रीकृष्ण की प्रथम पूजा से रुष्ट शिशुपाल कृष्ण, भीष्म तथा युधिष्ठिर को उपालम्भ देता है। दोनों पक्षीय राजाओ के क्रोधानुभव, युद्धार्थ सेनासन्नद्ध करने का वर्णन।

षोडश सर्ग—शिशुपाल के भेजे हुए दूत का श्रीकृष्ण के यहां आकर द्वयर्थक (स्तुति,निन्दा) सन्देश कथन का वर्णन। दूत को उचित उत्तर सात्यकि देता है।

सप्तदश सर्ग—दूत का वचन सुनकर श्रीकृष्णपक्षीय राजाओं के क्षोभ का वर्णन तथा युद्धार्थ सेनाप्रयाण का वर्णन।

अष्टादश सर्ग—उभय पक्ष के सेनाओ का घनघोर युद्ध वर्णन।

एकोनविंश सर्ग—श्रीकृष्णपक्षीय प्रमुख वीरों का युद्ध वर्णन। इसमें चित्र काव्य का आश्रय लेकर चित्र का वर्णन है।

विंश सर्ग—शिशुपाल व श्रीकृष्ण का युद्ध वर्णन। दोनो के अस्त्रों का वर्णन व शिशुपाल के जीवन के साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

उपर्युक्त कथा एवं वर्णनो को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि माघ प्रबन्ध-काव्य के इतिवृत्त निर्वाहकता में सफल नही कहे जा सकते इनके पूर्व के कवियो में भारवि और कुमारदास जैसी थोडी बहुत इतिवृत्त निर्वाहकता भी माघ में नहीं पाई जाती। माघ मे इतिवृत्त और प्रासंगिक वर्णनों का किंचिन्मात्र सन्तुलन नहीं मिलता। वस्तुतः मूल कथावस्तु में ४थे सर्ग से १३ सर्ग तक का वर्णन अनपेक्षित रूप से विस्तृत कर दिया गया है। परिणामत. वीररसपूर्ण इतिवृत्त में अप्रासांगिक शृङ्गार लीलाओं का छः सर्गों में विस्तार है। जो मुक्तक की तरह प्रतीत होता है।

शिशुपालवध की कथावस्तु का आधार

माघ ने अपने महाकाव्य शिशुपालवध की कथावस्तु को महाभारत, श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणो के आधार पर ही प्रस्तुत किया है। काव्य की प्रधान घटनाका मुख्य आधार महाभारतान्तर्गत सभापर्व की कथा अध्याय ३३ से ४५ श्लोक १—३० ही है, जिसमें राजसूय यज्ञ की प्रचंड तैयारी श्रीकृष्ण की आज्ञा से युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ की दीक्षा लेना तथा राजाओं ब्राह्मणो एवं सगे-सम्बन्धियो को बुलाने के लिये निमन्त्रण भेजना। यज्ञ मे सब देशो के राजाओ, कौरवो तथा यादवो का आगमन और उन सबके भोजन-विश्राम आदि की व्यवस्था। राजसूय यज्ञ का वर्णन, भीष्मजी की आज्ञा से श्रीकृष्ण की अग्रपूजा, शिशुपाल के आक्षेपपूर्ण वचन। भीष्म और शिशुपाल का वाक्कलह और अन्त मे शिशुपाल का श्रीकृष्ण के द्वारा वध आदि का वर्णन है।

उपर्युक्त कथा शिशुपालवध काव्य के १४ से २० सर्ग मे आती है और प्रथम १ से १३ सर्ग तक की कथा पुराण (भागवत व विष्णु) के आधार पर है। हमने पीछे प्रस्तुत काव्य की १ से १३ सर्ग तक को कथा देखी है जो महाभारत में नहीं है। यही कथाप्रसंग भागवत महापुराण में (दशम-स्कन्ध उत्तरार्ध अ· ७०-७३, वर्णित है जिसमे शिशुपाल के स्थान पर जरासंध का उल्लेख है। प्रसंग इस प्रकार है। जरासंध ने राजाओं को कारागृह मे डाल दिया, एक समय उन राजाओं का एक दूत श्रीकृष्ण के यहां आकर उनकी स्थिति श्रीकृष्ण से कहता है, उसी समय नारद धर्मराज

के राजसूय यज्ञ का निमन्त्रण श्रीकृष्ण को देते हैं। अतः श्रीकृष्ण के आगे दो समस्यायें आती हैं। १—जरासन्ध का वध १—राजसूय यज्ञ मे उपस्थित होना।

अतः श्रीकृष्ण केवल उद्धव से इस विषय में परामर्श लेते हैं और यज्ञ-गमन में ही दोनों कार्यों की सिद्धि सम्भव है। यह उद्धव से सुनकर श्रीकृष्ण यज्ञ में उपस्थित होने के लिये ससैन्य निकलते हैं और वन-उपवन और नदियों को पार कर हस्तिनापुर में पहुंचते हैं। वहां पहुंचने पर ही जरासंध के वध का निश्चय होता है और उसके वध के पश्चात् यज्ञ आरम्भ होता है और श्रीकृष्ण सभा मे ही शिशुपाल का वध करते हैं। इस प्रकार माघ के काव्य तथा भागवत की कथा मे अधिकांश साम्य है।

माघ ने विष्णु के अवतारो का उल्लेख करते समय भीष्म स्तुति मे अन्य अवतारों के वर्णन मे दत्तात्रेय का स्पष्ट उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त माघ ने भागवत के अनुसार ही वराहावतार से आरम्भ किया है। भागवत कथा के अतिरिक्त माघ ने अन्य पुराणो के अंशों को भी सम्मिलित किया है जैसे प्रस्तुत काव्य के प्रथम सर्ग में शिशुपाल के दो पूर्व जन्मो का उल्लेख किया गया है। अर्थात् हिरण्यकशिपु और दूसरा रावण। जो विष्णु-पुराण के आधार पर वर्णित है (विष्नु अंश ४ अध्याय १४-१५)

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत काव्य के प्रथम सर्ग के ४६ श्लोक का व ९ वें सर्ग के १४ श्लोक का भाव क्रमशः अग्निपुराण व भविष्यपुराण मे मिलते हैं।

आदान

आलोच्य काव्य को कुमारसंभव, रघुवंश, किरातार्जुनीय, भट्टि, जानकी-हरण आदि का निश्चित रूप से दाय प्राप्त हुआ था। इन काव्यो के दायो का किंचित् मात्र दिग्दर्शन करने का प्रयत्न करते हैं। शिशुपालवध के एकादश और त्रयोदश सर्ग पर कालिदास की वर्णन-शैली का प्रभाव है। कालिदास के प्रभात वर्णन तथा माघ के प्रभात वर्णन मे केवल विस्तार तथा विदग्धता का ही अन्तर है। रघुवंश का प्रभातवर्णन (सर्ग ५) केवल दस पद्यों मे मार्मिक रूप से वर्णित है। किन्तु माघ का प्रभात वर्णन ६७ पद्यो के लम्बे सर्ग मे वर्णित है। रघुवश मे घोड़े जागकर सामने पड़ी हुई सैन्धव शिला को मुख की भाप से मलिन बनाते हैं तो शिशुपालवध मे अर्धनेत्रोन्मीलित घोड़ा थोड़ी-थोड़ी निद्रा का अनुभव करता हुआ, नथना हिलाता हुआ चंचल ओठों से सामने पड़े घास को खाने की इच्छा करता है। ऐसा ही दूसरा स्वाभाविक

चित्र हाथियों के दोनों ओर करवट बदलकर सोने का है[1]। माघ के त्रयोदश सर्ग की पुरसुन्दरियो का वर्णन (३१:४८) का कालिदास के कुमारसंभव व रघुवंश के सप्तम सर्ग में शिव तथा अज को देखने के लिये उत्सुक सुन्दरियो के वर्णन से प्रभावित है। हमने पीछे भी संकेत किया है कि यह कालिदास का वर्णन उत्तरकालीन काव्यो मे प्राय. मिलता है। उदाहरण के लिये एक दो प्रसग प्रस्तुत करते हैं। प्रथम प्रसंग है—कालिदास की सुन्दरी अलते से पैर को खींचकर अज को देखने के लिये चल पड़ती है. परिणामतः उसके पैर के झरोखे तक के फर्श पर चिह्न हो गये हैं। माघ की सुन्दरी भी यावक से रंगे एक पैर को हटाकर कृष्ण को देखने के लिये दौड़ पड़ती है, उसके पद चिह्न जमीन पर दिखाई दे रहे हैं[2] दूसरा प्रसंग है कालिदास की पुरसुन्दरी की नीवी जाने की त्वरा से छूट गई है और वह कंकण की मणि प्रभा से नाभिप्रदेश को द्योतित करती हुई, अपने हाथ से उसे रोककर खड़ी रहती है। दूसरी ओर, माघ की पुरसुन्दरी कंकण के नीलम की प्रभा से सूक्ष्म रोमराजि को और सघन करती हुई हाथ से गलित वस्त्र को रोक कर खड़ी रहती है[3]।

दोनो वर्णन एक-सा चित्र उपस्थित करते हैं किन्तु जहां कालिदास का चित्र सरस है वहीं माघ का चित्र विलासमय झाकी प्रस्तुत करता है। इनके अतिरिक्त कालिदास के अन्य चित्रो को भी माघ ने यथेष्ट देखा था। जैसे—कुमारसम्भव में तारकासुरकृत देवो की दैन्यावस्था को शिशुपालवध में रावणकृत देवो की दयनीय स्थिति मे देखा जा सकता है[4]। शिशुपाल की सेना को होने वाले अपशकुनो की छाया रघुवंश मे दशरथ को होने वाले अपशकुनो में देखी जा सकती है[5]। रघुवश मे सायंकाल का चित्र, शिशुपाल-

---

१. रघुवंश ५।७२ शिशुपालवध ११।७
रघुवंश ५।७३ शिशुपालवध ११।११

२. प्रसाधिकालंबितमग्रपादमाक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव ।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकांका पदवी ततान ।। रघुवंश ७।७

३. व्यतनोदपास्य चरणम्प्रसाधिका करपल्लवाद्रसवशेन काचन ।
द्रुतयावकैकपदचित्रितावनिं पदवीं गतेव गिरिजा हराघंताम् ।।
माघ १३,३३

रघु—७९ व माघ १३।४४

१. कुमारसम्भव २, श्लोक ३१–५० शिशु० १ श्लोक ५१–६६

२. रघुवंश ११, श्लोक ५८–६१ शिशु० १५, श्लोक ८१–९६

में सायंकालिक चित्र से साम्यता रखता है[१]। रघुवंश की खण्डिता का भाव शिशुपालवध में देखने मिलता है[२]। रघुवंश के ९वें सर्ग मे प्रयुक्त द्रुतविलम्बित छन्द के चतुर्थ चरण में यमक का प्रयोग है, माघ ने ६ ठे सर्ग मे इसी छन्द के प्रयोग में यमक का प्रयोग किया है।

भारवि—

माघ भारवि से सर्वाधिक प्रभावित हैं। कथावस्तु, उसकी सजावट, सर्गों के विभाजन और वर्ण्य विषयों के चयन मे माघ भारवि के पदानुयायी बन गये हैं। वस्तुत माघ के काव्य का इत्तिवृत्त भारवि से भी अधिक छोटा है फिर भी माघ की कलाप्रियता ने उसे २० सर्गों मे चित्रित किया है। सर्व-प्रथम समानता है—दोनो के काव्य 'श्री' शब्द से आरम्भ होते हैं[३] भारवि के काव्य का प्रत्येक सर्ग 'लक्ष्मी' शब्द से समाप्त होता है, तो माघ के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य मे 'श्री' शब्द का प्रयोग किया गया है। वर्णन क्रम साम्य भी मिलता है। किरात के प्रथम सर्ग में 'वनेचर' युधिष्ठिर के पास आता है तो माघ में नारद कृष्ण के पास आते हैं।

नारद और कृष्ण की बातचीत मे किरात के युधिष्ठिर और व्यास की बातचीत व शिष्टता का सकेत मिलता है। किरात मे द्वितीय सर्ग मे भीम और युधिष्ठिर का राजनैतिक वाद-विवाद होता है तो माघ के दूसरे सर्ग में बलराम, कृष्ण व उद्धव के बीच राजनैतिक बातचीत होती है। इनके अतिरिक्त माघ के चतुर्थ सर्ग का रैवतक वर्णन षष्ठ सर्ग का ऋतुवर्णन, तथा ७ से १० तक का वनविहारादि वर्णन, भारवि के चतुर्थ से नवम सर्ग तक के वर्णन में देखे जा सकते है[४]। माघ के १६वें सर्ग का वाद-विवाद किरात के १३ व १४ सर्ग से प्रभावित है और माघ के १९ वें सर्ग का युद्ध-

---

१. रघुवंश ५, श्लोक ७१, शिशु० ११ श्लोक २५

२. रघुवंश ५ श्लोक ६७ शिशु० ११ श्लोक ३१–३५

३ 'श्रियः कुरूणामधिपस्य पालिनी प्रजासु वृत्तिं यमयुंक्त वेदितुम्।'
किरात १, १

'श्रियः पति श्रीमति शासितु जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।' माघ१.१

४. भारवि–सम्पेदे श्रमसलिलोद्गमो विभूषणं रम्याणा विकृतिरपि श्रियं तनोति, सर्ग ७ श्लोक ५

माघ—रुरुदिषा वदनाम्बुरुहश्रियः सुतनु सत्यमलंकरणाय ते॥
सर्ग ६ श्लोक १७

वर्णन चित्रकाव्य किरात के १५ वें सर्ग से प्रभावित है। कहीं-कहीं भारवि का माघ के काव्य में भावसाम्य भी मिलता है[1]।

जैसा इसके पूर्व कहा है माघ, भट्टि और कुमारदास से भी प्रभावित हैं। वस्तुत. व्याकरण के विषय में माघ को भट्टि और कुमारदास से प्रेरणा मिली है[2]। इसके अतिरिक्त भट्ट का भावसाम्य भी माघ मे मिलता है[3]। कुमारदास के अष्टम सर्ग के संभोग वर्णन से शिशुपाल का दशम सर्ग भलीभाति परिचित है। इसके अतिरिक्त प्रकृति पर मानवोचित शृंगारी चेष्टाओं का आरोप करने की प्रवृत्ति कालिदास की अपेक्षा भारवि और कुमारदास से ही माघ को प्राप्त हुई है इनके उदाहरण हमने स्वतन्त्र रूप से पीछे दिये हैं।

प्रस्तुत काव्य का प्रेरक हेतु

उपर्युक्त कवियों के वर्णनों तथा भाव साम्यो को देखकर आलोच्य काव्य का प्रेरक हेतु स्पष्ट हो जाता है। पूर्व कवियो का अनुकरण कर, एवं उन्ही विषयो का, उनकी अपेक्षा अधिक विस्तार करते हुए अपनी विद्वत्ता विदग्धता का परिचय मात्र देना है। जैसा पूर्व देखा है, कि माघ भारवि से सर्वाधिक प्रभावित हैं, परिणामत प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु भारवि के किरातार्जुनीय की ही प्रतिमूर्ति निश्चितरूप से कही जा सकती हैं। भागवत कथा का आधार लेकर माघ ने (प्रथम से १३ तक) भारवि का अनुकरण करने मे सफलता प्राप्त की है जैसे पुष्पावचय, जलक्रीडा, पानगोष्ठी, सुरत, खलनायक, राजनैतिक चर्चा, प्रयाणवर्णन आदि। भागवत के आधार पर ही चित्रित है। कवि ने स्वय विष्णुभक्त होने तथा प्रस्तुत काव्य के नायक कृष्ण के चरित्र को अधिक उन्नत करने के हेतु से ही भागवतोक्त जरासंध के स्थान पर शिशुपाल का उल्लेख किया है और इस चरित्र को अधिक उन्नत करने मे माघ ने विष्णुपुराण की सहायता ली है। इसके अतिरिक्त शिशुपाल से त्रस्त इन्द्र का सामान्यदूत कथन के स्थान पर ब्रह्मर्षि नारद के द्वारा उसके वध सन्देश, अग्रपूजा के समय सहदेव के स्थान पर भीष्म के द्वारा श्रीकृष्ण की

---

१. भारवि ४, श्लोक ३३ माघ ६ श्लोक ४९ और १३ श्लोक ४३

२. सामान्यभूते लुङ्, यङ्लुगन्त क्रियापद तथा अन्य पाणिनिसंमत प्रयोग माघ ने भट्टि से प्राप्त किये हैं। इसके अतिरिक्त क्रियासमभिहारे लोट् का प्रयोग माघ ने काव्य मे किया है। माघ १.१४ (पर्यपूजत्) १,१५ (अभिन्यवीविशत्) १,१६ (अचूचुरत् पर्यपूपुजत् ३,७० (पारेजल) ३,३३ (मध्येसमुद्रं) और १,५१

३. भट्टि १२ श्लोक ५९ शिशु–१ श्लोक ४७

अग्रपूजा का आग्रह आदि का उल्लेख कर माघ ने सहेतुक परिवर्तन कर दिया है[१]।

उत्तरकालीन कवियों ने परानुकरण तथा उनसे अधिक अपना पांण्डित्य प्रदर्शन करना ही अपने काव्य का प्रेरक हेतु सम्मुख रखा है जो आगे के कवियों के आधान शीर्षक से स्पष्ट होगा।

रसभावाभिव्यक्ति

माघ के काव्य शिशुपालवध का अंगी रस वीर है और शृङ्गार इसका अंग किन्तु इस अंग (गौण) रस ने अंगी रस को अपने विस्तार से आक्रान्त-सा कर दिया है। इनके साथ ही अन्य रसों की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। रौद्र रस और उसके अनुभावों का चित्र उत्तरकालीन काव्यों में तो रुढ-सा हो गया है। इनके अतिरिक्त युद्ध भूमि में भयंकर, बीभत्स और अन्त में अद्‌भुत रस की छटा है।

प्रस्तुत काव्य में वीर रस की सफल व्यञ्जना हुई है जो आगे के चरित काव्यों-विक्रमांकदेवचरित, नवसाहसांकचरित में वीर रसात्मक रूढियों के बीज का संकेत करती है। इसे प्रस्तुत वर्णन में उदाहरण रूप में प्रस्तुत करेंगे। ऐसे वीर रस का एक उदाहरण —

"इस प्रकार निरन्तर एक दूसरे की ओर तेजी से बढ़ती हुई, राजसमूह की सेनाओं का बड़े-बडे तरंगों वाली श्रीकृष्ण की सेनाओं के साथ (अत्यन्त कोलाहल) ऐसा दोलायुद्ध होने लगा जैसा निरन्तर वेगपूर्वक आगे बढती हुई नदियों का गम्भीर तरंगो वाले समुद्र के प्रभाव से टक्कर होने पर तुमुल ध्वनि का संधान पाया जाता है[२]।

प्रस्तुत काव्य के अष्टादश सर्ग में चरित काव्यों के युद्धवातावरण के मूल स्रोत का संकेत मिलता है। जैसे सेनाप्रयाण, युद्ध में तलवारों का चमकना, हाथियों का चिंघाडना, योद्धाओं का द्वन्द्व युद्ध, कबन्धों का नृत्य, वीरों के लिये देवांगनाओं की प्रतीक्षा, भयंकर रक्तस्राव व मृतवीरों के शरीर के लिये पशु-पक्षियों का एकत्र होना आदि। इसके अतिरिक्त युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व

---

१. यह परिवर्तन दंडीप्रोक्त प्रतिनायक नियमों की पूर्ति के लिये है। इसे इसके पूर्व देखा है।

२. आयान्तीनामविरतरयं राजकानीकिनीना—
मित्थं सैन्यैः सममलघुभिः श्रीपतेरूर्मिमद्भिः।
आसीदोघैर्मुहुरिव महद्वारिधेरापगाना
दोलायुद्धं कृतगुरुतरध्वानमौद्धत्यभाजाम्॥ १८।८०

रौद्र रस की व्यञ्जना में वीरों के अनुभाववर्णनों के चित्र भी सुन्दर एवं प्रभावोत्पादक बन पड़े हैं। (सर्ग १५ यद्यपि उपर्युक्त चित्रों का दर्शन युद्ध वातावरण आदि) हमें रावणार्जुनीय काव्य में भी मिल जाता है।

माघ का दूसरा अंग रूप रस शृङ्गार है जिसमें कवि ने अपनी अधिक रुचि व्यक्त की है। परिणामत प्रस्तुत काव्य के शृङ्गारिक चित्रों में सरसता की अपेक्षा वासना की गन्ध आने से अश्लीलता ही अधिक दिखाई देती है[1]। कवि ने सातवें सर्ग में नायिका भेद के अनुसार वर्णन किया है[2]। वस्तुतः शिशुपालवध मे आलम्बन विभाव की हावादि उद्दीपन सामग्री के सुन्दर चित्र मिलते हैं किन्तु शृङ्गार के संचारियो के चित्र उतने सफल नहीं हैं जितने कालिदास के काव्यो मे मिलते हैं।

व्युत्पत्ति

माघ का व्यक्तित्व पूर्व कवियो से भिन्न प्रकार का है। उनके व्यक्तित्व मे कवि और विदग्ध पाण्डित्य का एक अपूर्व समन्वय मिलता है। और इसी समन्वय का असन्तुलित रूप आगे रत्नाकर के हरविजय मे पाते हैं। रत्नाकर मे पाडित्य की गन्ध अधिक आती है।

---

१. शिशुपाल वध—१ श्लोक ७४, २ श्लोक १६–१७, ४४, ३ श्लोक ५५ ४ श्लोक २९, ६ ५–२३, १० श्लोक ४७,६६ व ११ श्लोक ५, २९

२. खडिता ७।११ स्वाधीनपतिका ७।१३, १५ कलहान्तरिता ७।१४ मुग्धा ७।४९ विरहोत्कण्ठिता ९।५४ आदि

शास्त्रो का उल्लेख व्याकरण सर्ग २, श्लोक ९५, ११२ सर्ग १४ श्लोक ६६ सर्ग १९ श्लो१ ७५

राजनीति, सर्ग २ श्लोक २६, २८, २९, ३०, ३६, ३७, ५४, ५५, ५६, ५७, ७६, ८१–८२, ८८, ९२, ९३, १११, ११२, ११३ आदि

अलंकारशास्त्र.—सर्ग २, श्लोक ८३, ८६, कामशास्त्र सर्ग २ श्लोक ४४, सर्ग ४ श्लोक २९, सर्ग ६ श्लोक ७७, सर्ग ७ श्लोक १५, २०, सांख्ययोग : सर्ग १४ श्लोक १९, सर्ग १ श्लोक ३३, बौद्धदर्शन : सर्ग २ श्लोक २८।७, सर्ग १४ श्लोक २०, २२, २३

पुराण : सर्ग ५ श्लोक ६६, सर्ग १३ श्लोक ११, सर्ग १ श्लोक ४९, ५०, संगीत : सर्ग १ श्लोक १०, सर्ग ११ श्लोक १, अश्वविद्या सर्ग ५ श्लोक १० ५६, ६०

हस्तिविद्या:—सर्ग ५ श्लोक ३६, ४८, ४९ सर्ग १२, श्लोक ५

वस्तुतः शिशुपालवध को अनेक शास्त्रों और दर्शनों से अलंकृत किया गया है। जैसे व्याकरण, राजनीति, अलंकारशास्त्र, कामशास्त्र, सांख्य योग, बौद्ध-दर्शन, वेद, पुराण, संगीत, अश्वविद्या, हस्तिविद्या, आदि इस प्रकार उपर्युक्त विविध प्रकार के ज्ञान के फलस्वरूप विद्वानो ने माघ को "माघे सन्ति त्रयो-गुणाः," कहकर उसकी प्रशसा की है। किन्तु इतना अवश्य है कि उपर्युक्त विविध ज्ञानगरिमा से, इस प्रवाह में मन्थरता आती है और इसीलिये राज-शेखर ने ऐसे कवि को शास्त्र कवि के कोटि मे रखना उपयुक्त समझा है।[1]

वस्तुवर्णन—

जैसा पूर्व कहा है शिशुपालवध मे वस्तु वर्णन के विस्तार से ही स्वल्प कथा को दीर्घ बना दिया गया है। वस्तु वर्णन मे कवि ने द्वारकापुरी का वर्णन (सर्ग ३, ३३–६९) समुद्र का वर्णन (सर्ग ३, ७०–८२) रैवतक पर्वत का वर्णन (सर्ग ४१–१७, १८–६८) सेनाप्रमाण वर्णन (सर्ग ५, १–१३) गज, अश्व, बैल, ऊंट आदि का वर्णन (सर्ग ५, ३० से ६९) ऋतुवर्णन (सर्ग ६) सूर्यास्त, चन्द्रोदय और प्रभात वर्णन आदि उपर्युक्त वर्णनो मे कई सरस चित्र मिल सकते हैं। जैसे प्रभात वर्णन अपनी स्वाभा-विकता से एक मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करता है। रैवतक के वर्णन मे उद्भावित एक नवीन कल्पना ने कवि को 'घण्टा' माघ के नाम से साहित्य ससार मे प्रसिद्ध कर दिया है।

दो एक पद्यों को उद्धृत करना पर्याप्त होगा।

"एक पहरेदार ने अपना पहरा पूरा कर लिया। अब वह सोना चाहता है। अत वह दूसरे साथी पहरेदार को जिसकी वारी है, जागो, उठो, ऐसा उच्चस्वर से बार-बार कह कर गा रहा है, किन्तु नीद से अस्पष्ट अक्षरो को एवं अर्थरहित वचन को कहता हुआ भी वह मनुष्य (दूसरा पहरेदार) अच्छी तरह जानता नही[2]। उपर्युक्त चित्र मे (काव्य मे) स्वभावोक्ति रमणीयता सक्रान्त कर दी है। एक अन्य चित्र सूर्योदय का जिसमे कवि हृदय का स्पष्ट परिचय मिलता है।

"चारो ओर फैली हुई बड़ी-बडी रस्सियो के समान किरण से चंचल पक्षियो के कलरव रूप कोलाहल को करती हुई दिशाएं एक बड़े घड़े के

---

१. शास्त्रकविः काव्ये रससम्पदविच्छिनत्ति।

राजशेखर काव्यमीमासा अध्याय ५

२. प्रहरकमपनीय स्वं विनिद्रासतोच्चैः प्रतिपदमुपहूत. केनचिज्जागृहीति। मुहुराविशदवर्णनिद्रया शून्य शून्या दददपि गिरमन्तर्बुध्यते नो मनुष्यः ११।४

समान इस सूर्य को समुद्र के पानी के भीतर से बाहर खींच रही है।" 'जल में डूबे घड़े को जल से निकालने के समय होने वाले कोलाहल को चिड़ियों के चुहचुहाने के द्वारा व्यक्त कर, कवि ने प्रातःकाल का एक चित्र खींच दिया है'।

युद्धवर्णन

जैसा कि पूर्व कहा है शिशुपालवध का युद्ध वर्णन चरितकाव्यों का विशेषताओ से युक्त है। जैसे युद्ध होने के पूर्व शत्रुपक्ष के यहां उनकी पराजय के सूचक चिह्नो अपशकुनों का होना, सैनिकों का युद्ध के लिये प्रस्थान करते समय अपनी प्रेयसियों से मिलना, आक्रमण की तैयारी, युद्धप्रयाण युद्धास्त्र, हाथी, घोड़ा योद्धाओं तथा सैनिको का यथास्थान निर्धारण, मारकाट, कबन्धनृत्य, तुमुल युद्ध से धूलि का उड़ना, योगिनि, काली, भूतप्रेत आदि का मुण्डधारण, देवताओं द्वारा युद्ध देखना, पुष्पवर्षा, अप्सराओं द्वारा वीरो को मृत्यूपरान्त वरण करना, युद्धभूमि से घायलो को उठाना, घायलो की देखभाल, सन्ध्या को युद्ध बन्द करना, युद्धभूमि मे पशु पक्षियो का आना आदि बातों के उल्लेखो मे से अधिकांश का वर्णन मिलता है। इसी परम्परा को आगे के चरित काव्यो 'रावणार्जुनीय' 'नवसाहसाक', चरित 'विक्रमाकदेवचरित', श्रीकण्ठचरित आदि मे देखा जा सकता है।

प्रकृति (पात्रस्वभाव) वर्णन—

प्रस्तुत काव्य में श्रीकृष्ण धर्म, भीष्म, शिशुपाल, उद्धव, व बलराम आदि पात्र है। जिनमे नायक श्रीकृष्ण और प्रतिनायक शिशुपाल हैं। उन पात्रो मे से कवि ने श्रीकृष्ण के रूप तथा सहिष्णुचरित्र का वर्णन नारद की तथा भीष्म आदि की स्तुति मे करने का प्रयत्न किया है। प्रतिनायक के चरित्र का विकास उसी के क्रोध पूर्ण वचनो में व्यक्त होता है। फिर भी कवि का ध्यान पात्रो या नायक के चरित्र का विकास करने की ओर न होकर वर्णनों की ओर ही रहा है, यहा तक कि सम्पूर्ण काव्य मे प्रमुख स्त्री पात्र एक भी नही है और नैषध को छोडकर यही परम्परा उत्तरकालीन काव्यों में रही है।

माघ कलावादी कवि हैं। वे कल्पनासृष्टि के धनी हैं तथा अभिव्यंग्य और अभिव्यञ्जना दोनो के सौन्दर्य की ओर ध्यान देने के पक्षपाती हैं[2]। माघ की अन्त.प्रकृति कवित्व से सम्पन्न होने पर भी वह रूढ़ियो की दासताओं

१. माघ ११, ४४

२. शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते। २,८६। माघ

में ही जकड़ी रही है। शिशुपाल वध में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, सहोक्ति, समासोक्ति, तुल्ययोगिता, काव्यलिंग, विरोध आदि अनेक अर्थालंकारों के प्रयोग मिलते हैं। शब्दालंकारो में अनुप्रास, यमक चित्रकाव्यो मे समुद्र (१९, ११८) चक्रबन्ध (१९ १२०) मुरजबन्ध (१९, २९) अर्धभ्रमक (१९, ७२), गोमूत्रिकाबन्ध (१९, ४६), सर्वतोभद्र (१९, २७), इनके अतिरिक्त श्लेष के प्रयोग भी खूब मिलते हैं, एकाक्षरपाद, द्वयक्षर, एकाक्षर और अर्थत्रयवाची पद्य भी १९ वें सर्ग में मिलते हैं।

छन्द की दृष्टि से माघ पूर्ववर्त्ती कवियों में आगे रहते हैं। कालिदास के खास छन्द ६ हैं भारवि के ११-१२ और माघ के १६ शिशुपाल वध के चतुर्थसर्ग में अनेकों छन्दों का प्रयोग देखने में आता है। माघ का प्रधान कौशल ४थे सर्ग मे प्रकट होता है जिसमे उन्होने २२ छन्दो का प्रयोग किया है।

भाषा शैली की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य मे कालिदास की भाषा शैली के दर्शन नही होते। समासान्तपदविन्यास ने गंभीरता तथा उदात्तता का सृजन किया है। इस पदविन्यास में गौड़ी की विकटबन्धता होने से प्रासादिकता का अभाव हो गया है। इसके अतिरिक्त कुलकों का प्रयोग बढ गया है। प्रस्तुत काव्य में नये-नये शब्दों का प्रयोग मिलने से विद्वानो की यह उक्ति 'नवसर्ग गते माघे नवशब्दो न विद्यते' सार्थक प्रतीत होती है। विचित्र व्याकरण सम्मत पदो का प्रयोग उनके अगाध पाण्डित्य का द्योतक है[1]।

आदान

कुमारदास ने कालिदास के दोनों महाकाव्यो के आदर्श पर अपने 'जानकी हरण', काव्य की रचना की है। किन्तु कुछ बातों में तो जानकीहरण के अलंकृत

१. कवि की कल्पना शक्ति का ज्ञान पूर्व चर्चित उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है। अन्य उदाहरण के लिये प्रस्तुत काव्य का नवम सर्ग, जिसमे कविने १३ श्लोको में केवल सूर्यास्त का वर्णन किया है। कविका नये-नये शब्दोंपर असाधारण प्रभुत्व है। जैसे-'सूर्य' के लिये जहा—'भानु' 'सवितृ।' दिनकर:' 'रवि:' 'मित्र.' जैसे परिचित शब्दो का प्रयोग किया गया है, वही, दिनभर्तु.', 'उष्णरुचि' 'पतङ्ग.' 'रुचिभर्तु.' 'अनुषारकरः' 'अंशुमत्' तिग्मरश्मि.' 'अशीत-रुचि:' 'अतुहिनरश्मि.' आदि जैसे अपरिचित शब्दो का भी प्रभूत मात्रा में प्रयोग किया गया है।

इसके अतिरिक्त—व्याकरण के कुछ क्रियारूप भी देखने को मिलते हैं, जैसे—'संव्यया व्यगमि' (१/७)'वातु. सुतेन भुवस्तले चरणौ न्यधायिषाताम्' (१/६) 'पर्यपूपुजत्' (१/८) 'अभिन्यवीविशत्' (१/७) 'विमरांबभूवे' (१/३)।

वर्णन कालिदास के स्वाभाविक वर्णनो की अपेक्षा अधिक विदग्ध प्रतीत होते हैं। यहां हम कालिदास के भावो वर्णनों के साध्य्य पर निर्मित कुछ उदाहरण देखने का प्रयत्न करते हैं।

प्रस्तुत काव्य का द्वितीय सर्ग कुमारसंभव के द्वितीय सर्ग से विषय तथा शैली के विषय मे पूर्ण रूप से साद्दश्य रखता है। रघुवंश का मृगया वर्णन प्रस्तुत काव्य के मृगयावर्णन से साम्यता रखता है, जैसे—एक-चित्र- राजा दशरथ मृगया में, निशान बनाये गये हरिण के शरीर को व्यवहित करके (मेरे पति को प्रथम बाण न लगकर मुझे ही लगे, इस भावना से राजा दशरथ तथा प्रिय पति मृग के मध्य में) खडी हुई हरिणी को देखकर कान तक खेंचे हुए धनुष को भी स्वयं कामी होने के कारण दयार्द्र चित्त होकर ढीला कर दिया[1] यही चित्र प्रस्तुत काव्य के मृगयावर्णन मे देखने को मिलता है[2]।

'हरिणों के जोड़े को देखकर जिसने एक दूसरे के मुख मे पल्लव ग्रास दिया था, प्रिया का अनुनय करने मे चाटुकुशल राजा दशरथ की 'घाताभिरति' दूर हुई।"

विवाहोपरान्त परशुराम के आने के पूर्व प्रकृति मे दृष्टिगत भयसूचक चिन्ह रघुवंश और प्रस्तुत काव्य मे साम्य रखते हैं[3]। कुमारसंभव तथा रघुवंश के सप्तम सर्ग में महादेव तथा अज को देखने के लिये काक्षायित पुरसुन्दरियों का वर्णन प्रस्तुत काव्य के नवम सर्ग मे श्रीराम को देखने के लिये आयी सुन्दरियो के वर्णन में साम्यता है। जैसे[4] —रघुवंश में अत्यन्त कौतुहल वाली उन स्त्रियो के मदिरा पान से गन्धयुक्त तथा चञ्चल नेत्ररूप भ्रमरवाले मुखो से व्याप्त अवकाश वाले झरोखे कमलो से अलंकृत के समान हो गये।" जानकीहरण मे 'स्त्रियो के चंचल नेत्र युक्त कमलरूपी मुखो से व्याप्त झरोखो की कतार नील कमलो से परिपूर्ण सरोजिनी की तरह दिखाई देती थी।, कुमार संभव-वर वधू के प्रथम समागम के वर्णन का साद्दश्य सर्ग ८ जानकीहरण के अष्टम सर्ग में पाया जाता है। कुमार संभव मे इस वर्णन के लिये रथोद्धता छन्द का प्रयोग किया गया है। यही छन्द जानकीहरण के अष्टम सर्ग मे पाया जाता है।

---

१. रघुवंश सर्ग ९ श्लोक ५७

२. जानकीहरण सर्ग १ श्लोक ५७

३. रघुवंश सर्ग ११ श्लोक ५८-६२। जानकीहरण सर्ग ९, श्लो० २४-२५

४. रघुवंश सर्ग ७ श्लो० ११ जानकीहरण सर्ग ८ श्लोक ५३.

शाकुन्तल

विवाहोपरान्त जनक का सीता को, उपदेश, शाकुन्तल में कण्व के द्वारा शकुन्तला को दिये हुए उपदेश से साम्य रखता है[१]।

जानकीहरण के ८ वें सर्ग में चित्रित चन्द्रोदय के दो चित्र रघुवंश के १३ वें सर्ग में चित्रित गंगायमुना के संगमवर्णन से सादृश्य रखते हैं[२]।

कहीं-कहीं तो जानकीहरण मे किञ्चित परिवर्तन के साथ रघुवंश में प्रयुक्त शब्दावली ही दिखाई देती है। जैसे—

रघुवंश मे अथ प्रजानामधिप. प्रभाते–२-१ श्लोक जानकीहरण 'प्रभु. प्रजानामथ स प्रभाते सर्गे' १-७० श्लोक रघुवंश मे सर्ग २ श्लोक ३३ मे राजा की 'मनुवंश केतुम्' शब्द का प्रयोग किया गया है। जानकीहरण मे भी राजा के लिये इसी शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है। सर्ग १ श्लोक ५५ व ७४

भारवि का प्रभाव भी कहीं-कहीं दिखाई देता है, जैसे—किरातार्जुनीय के १०। ३६ के साथ जानकीहरण के ३। ९ व १। ४ के साथ ९। २१ क्रमश· भावसाम्य है।

रसाभिव्यक्ति-प्रस्तुत काव्य के नाम से वर्ण्यविषय केवल जानकी का हरण प्रतीत होता है। परन्तु इसमे पूरी रामकथा का समावेश किया गया है। अत. इस काव्य का अगी रस वीर है और अंगरूप मे अन्य रसो की भी नियोजना की गई है। अंगरूप मे 'श्रृगार' रस है। नायक धीरोदात्त राम हैं।

वीर रस की अभिव्यक्ति राजा दशरथ के यवनराज और तुर्किश राजाओ की विजय में रामचन्द्र के ताटकावध, राक्षस, सुबाहु आदि के वध मे तथा राम और रावण के युद्ध में हुई है। वीररस के अन्य अगो दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर और दयावीर में से युद्धवीर का रूप तो विस्तार पूर्वक चित्रित है। दयावीर का चित्र राजा दशरथ के मृगयावर्णन में मिलता है (सर्ग १ श्लोक ५७) अन्योका चित्रण नहीं हुआ है। श्रृगार रस-राजा दशरथ और उसकी स्त्रियो के केलिवर्णन राम और सीता के संभोग वर्णन तथा राक्षसो की कमनीय केलियों के वर्णन मे मिल जाता है।

सीता का सप्तम सर्ग मे नखशिख वर्णन। वसन्त ऋतुवर्णनादि सर्ग ३ उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते हैं। करुण रस की व्यञ्जना श्रवण के तथा उसके मा बाप के विलाप मे है। (सर्ग १) वात्सल्य-अपनी सन्तान या उसी

१. जानकीहरण सर्ग ९ श्लोक ४-९ शाकुन्तल अंक ४ श्लोक १९-२०
२. जानकीहरण सर्ग ८ श्लोक ७ व ८१ रघुवंश सर्ग १३ श्लोक ५६

श्रेणी के अन्य प्रिय सम्बन्धी से रहने वाला स्नेहवात्सल्य के नाम से अभिहित होता है। प्रस्तुत काव्य के चतुर्थ सर्ग ८: १३ में तथा नवम सर्ग में श्लोक ४·९ जनक का सीता को उपदेश, वात्सल्य के अन्तर्गत ही आता है। देव विषयक भक्ति भी रतिभाव ही है। प्रस्तुत काव्य के द्वितीय सर्ग में देवों का विष्णु के पास जाना और उद्धार के लिये उनकी स्तुति करना आदि में, रति भाव ही है। ऐसे रति भावों को आचार्यों ने भाव के अन्तर्गत रखा है।

व्युत्पत्ति

कुमारदास ने जानकीहरण काव्य को विभिन्न शास्त्रों के ज्ञान से अलंकृत किया है। जैसे विष्णु स्तुति में वेदान्त, राजा दशरथ का राजनीति उपदेश, सर्ग १०

केलिवर्णनों मे वात्स्यायन—कामशास्त्र, पौराणिक कल्पनाएं व्याकरण-शास्त्र, दर्शन, ज्योतिष शास्त्र सर्ग ७ श्लोक ३६, ४१

काव्य सौन्दर्य

कुमारदास ने अपने काव्य का सौन्दर्य, कालिदास की स्वाभाविक प्रतिभा की अपेक्षा, विदग्धता से चित्रित करने का प्रयत्न किया है।

एक वात्सल्यभाव का चित्र

कवि राम के बाल स्वभाव का सूक्ष्मांकन करते हुए कहता है कि प्रासाद की स्त्रियां पूछती थी कि राम कहां चला गया, (यह जानकर) वह बालक अपने हाथो की अंगुली से अपने मुख को ढक लेता तथा छिपने की चेष्टा करता[1]।

रानी के सौदर्य निर्माण की समस्या के विषय में कवि ने एक प्रश्न उपस्थित किया है 'विद्वानों को भी उसके निर्माण के विषय में तर्क वितर्क होता था' विधाता ने उसकी वे दोनो जंघाएं कैसे बनाई (क्योंकि) देखने पर तो वह काम देव के बाणों के प्रहारों से त्रस्त होता और आंख बन्द कर लेने पर बनाना ही संभव नहीं, तब बनाया कैसे[2] ?

यद्यपि कवि को अपनी विदग्धता प्रदर्शन मे विभिन्न अलंकारों व छन्दों का सहारा लेना पड़ा है। कुमारदास ने कालिदास के काव्यों में अप्रयुक्त श्लेष और

---

१. न स राम इह क्व यात इत्यनुयुक्तो वनिताभिरग्रतः ।
निजहस्तपुटावृताननो विदधेऽलीक निलीनमर्भक. । जानकीहरण ४।८

२. जानकीहरण १।२९

पर्याय, यमक और चित्र अलंकारों[1] का प्रयोग जानकीहरण मे यथेष्ट मिलता है। अनुप्रास तो कवि का प्रिय अलंकार है। इनके अतिरिक्त उपमा, अर्थान्तरन्यास, रूपक, उत्प्रेक्षा और आक्षेप अलंकार भी मिलते हैं। जानकीहरण मे वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है।[2] भाषा प्रसादगुण विशिष्टा है जिसमें संगीतात्मकता का गुण विशेष है। कुमारदास ने इस काव्य में व्याकरण का अच्छा प्रयोग किया है जिससे वे व्याकरण के सूक्ष्म अध्येता थे, ज्ञात होता है।[3]

इतना होने पर भी प्रस्तुत काव्य में कुछ दोष हैं—जैसे 'खलु' और 'इव' का प्रयोग पद्य की पंक्ति के आरम्भ मे नही होना चाहिये। जिसे वर्धमान ने अपने गणरत्नमहोदधि मे अमरसिंह ने अपनी अलंकार सूत्र वृत्ति में (१,५) और वामन ने भी अनुपयुक्त कहा है।

"खलु प्रजहति मुहुर्विरचिर्लिविष्टरं, १३ सर्ग श्लोक ३९

"इव चिन्ता दरिद्रस्य स्थूललक्ष नरेश्वरम्। सर्ग १० श्लोक ७२

"महेन्द्रकल्पस्य, जैसे मे दूरान्वय दोष आजाता है।

सर्ग १ श्लोक २७ वही १-श्लोक १२

छन्द—जानकीहरण पर कालिदास के काव्यों का प्रभाव होने से भारवि जैसे विभिन्न छन्दो का प्रयोग नही है।

श्लोक छन्द (२,६ तथा १० सर्ग) द्रुतविलंबित (११ सर्ग प्रमिताक्षरा १३ उपजाति (१,३ और ७) वंशस्थ (५,९,१२ और ३ के ६४-७६ तक) वैतालीय (४) रथोद्धता (८) इनके अतिरिक्त शार्दूलविक्रीडित शिखरिणी, स्रग्धरा, पुष्पिताग्रा, (१६) प्रहर्षिणी वसन्ततिलका अवितथ, मन्दाक्रान्ता, और मालिनी।

हरविजय

कविपरिचय-काश्मीरी कवि रत्नाकर के पिता का नाम 'अमृतभानु' था[4]।

---

१. सर्ग ११ व १४ जानकीहरण

२. डा० नन्दरगीरकर के मत मे (कुमारदास पृ० २४) जानकीहरण में गौडी रीति का प्रयोग किया गया है।

३. सर्ग १-५५,६८, सर्ग ३-५५,७३ सर्ग ४, २७-६२ आदि मे निदर्शन है।

४. Ed. Durgaprasad and K. P. Parab with comm. of of Alaka S. P. Bombay 1890

श्रीदुर्गदत्तनिजवंशहिमाद्रिसानु गंगाह्रदाश्रयसुतामृतभानुसूनुः।
रत्नाकरो ललितबन्धमिदं व्यधत्त चन्द्रार्धचूलचरिताश्रयचारु काव्यम्।

१ ग्रन्थकर्तुः प्रशस्तिः

आप (रत्नाकर) बालबृहस्पति की उपाधिधारण करने वाले काश्मीर नरेश चिप्पट जयापीड (८३२-४४) के सभापण्डित थे। कल्हण के अनुसार, अवन्ति वर्मा के राज्यकाल मे (८५५-८८४) इनकी प्रसिद्धि का उल्लेख मिलता है[1]। अतः रत्नाकर का समय नवमशतक का प्रथमार्द्ध माना जा सकता है। रत्नाकर शिवभक्त थे। माघ ने अपनी वैष्णवभक्ति को, अपने काव्य को, भगवान कृष्ण के चरित्र कीर्तन के कारण सुन्दर [2]कह कर व्यक्त किया है, तो रत्नाकर ने अपने काव्य को 'चन्द्रार्धचूल चरिताश्रय-चारु [3]लिखकर अपने शैवत्व को प्रकट किया है।

काव्यग्रंथ-रत्नाकर ने 'हरविजय' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया। जिसमे ५० सर्ग और ४३२१ श्लोक है। हरविजय का संस्कृत विदग्ध महाकाव्यो की परम्परा मे आकार और प्रकार गुण की दृष्टि से (पूर्व अर्थात् कालिदासोत्तर महाकाव्यो की अपेक्षा पर) महत्वपूर्ण स्थान है जैसे माघ ने किरातार्जुनीय महाकाव्य को दृष्टिपथ मे रखकर उसकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठत्व प्राप्त करने के लिये शिशुपालवध महाकाव्य की रचना की, वसे ही रत्नाकर ने तत्कालीन विद्वन्मण्डित शिशुपालवध को दृष्टि में रखकर उसकी अपेक्षा परिमाण और गुण मे अद्वितीयता का परिचय देने के लिये ही हरविजय महाकाव्य का प्रणयन् किया। कवि रत्नाकर की अपने काव्य के विषय मे यह गर्वोक्ति कि उनकी ललित मधुर, सालंकार, प्रसाद-मनोहर, विकट यमक तथा श्लेष से मण्डित, चित्र मार्ग मे अद्वितीय वाणी को सुनकर वाचस्पति के हृदय मे भी शंका उत्पन्न हो जाती है[4]।

कवि ने अपने काव्य प्रभाव की प्रशंसा करते हुए प्रतिज्ञा की है कि, इस काव्य के सेवन से अकवि सहृदय कवि तथा महाकावि क्रमशः होता है।[5]

---

१. मुक्ताकण. शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथा रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः॥
राजतरंगिणीपंचमस्तरंग ३५

२. लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु। माघ कविवंशवर्णन ५

३. रत्नाकर, हरविजय कविप्रशस्ति-१

४. ललितमधुराः सालकाराः प्रसादमनोरमा
विकटयमकश्लेषोद्गारप्रबन्धनिरर्गलाः।
असदृशगतीश्चित्रे मार्गे ममोद्गिरतो गिरो
न खलु नृपते चेतो वाचस्पतेरपि शंकते॥ हरविजय प्रशस्ति।

५. हरविजयमहाकवे प्रतिज्ञा शृणुताकृतप्रणयो मम प्रबन्धे।
अपि शिशुरकविः कविप्रभावात् भवति कविश्च महाकविः क्रमेण॥
हरविजय-प्रशस्ति काव्य ७

किन्तु इतना तो सुनिश्चित है कि प्रस्तुत काव्य पाण्डित्य से इतना आक्रान्त है कि उसमें निहित काव्य की रसवाहिनी का हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क से शोध करना पड़ता है।

काव्य का कथानकः—

जैसा कि हमने पूर्व कहा है, कि इन काव्यो का कथानक उत्तरोत्तर स्वल्प होता गया है। किरातार्जुनीय की अपेक्षा शिशुपाल वध का और शिशुपाल वध की अपेक्षा हरविजय का कथानक अत्यन्त स्वल्पतर हो गया है। (जिसे हम सर्गानुसार कथानक में देखेंगे) प्रस्तुत काव्य का कथानक है-'शंकर के द्वारा अन्धक-असुर का वध'। किन्तु कवि ने इस स्वल्प कथानक को, महाकाव्य रूढि नियमों की पूर्ति करने वाले वर्ण्यविषयो से अलंकृत, परिष्कृत तथा मासल बनाकर पूर्ण पचास सर्ग मे समाप्त किया है। इन वर्ण्य विषयों को वस्तुवर्णन में यथास्थान देखेंगे।

सर्गानुसार कथानकः—

प्रथम से छ सर्ग तक शिवनगरी और उसकी समृद्धि, शंकर का ताण्डव-नृत्य, ऋतुवर्णन, शिवराजधानी, मन्दरपर्वत, पर्वतर्तुवर्णन और संक्षेप मे अन्धकासुर के जन्म की कथा, ऋतुओ का मूर्तरूप धारणकर, शैवमतानुसार अन्धकासुर से अपनी रक्षा के लिये शंकरस्तुति, आदि का वर्णन है। सप्तम एवं अष्टम सर्ग मे अन्धकासुर द्वारा पीडित तथा विजित देवों की दुर्दशा सुनकर शिवसभा मे वीरभद्र, कालमुसलादिगणो का क्रोधवर्णन तथा कालमुसलदण्ड वर्णन। ९ से १६ सर्गों में कालमुसल की नीति का अनुसरण कर अन्धकासुर पर आक्रमण करने का विधान, और अन्त मे कालमुसल को दूत के रूप मे अन्धकासुर के पास भेजने का परिषद का निर्णय। सर्ग १७ से २९ तक महाकाव्य के रूढनियमों की पूर्ति करने-कुसुमावचय, जलक्रीडा, दिवसावसान वर्णन, चन्द्रोदय, समुद्रोल्लास, प्रसाधनवर्णन, विरह, दूतीसकल्प पानगोष्ठी, संभोग प्रत्युष और भगवत्प्रबोधन वर्णन की योजना की गई है।

जिनमे प्राकृतिक सौन्दर्य और मानवीय सौन्दर्य वर्णन निहित है। ३० से ३८ तक कालमुसल की स्वर्ग यात्रा अन्धकासुर से भेंट, देवसन्देश कथन और उन दोनों का उत्तर-प्रत्युत्तर वर्णन ३९ से ५० तक सैन्य सम्भार प्रस्थान पूर्वक युद्ध वर्णन है।

उपर्युक्त सर्गों मे विभाजित इतिवृत्त के असन्तुलन पर कुछ विचार व्यक्त करने के पूर्व, हमें कवि के काव्य कला विषयक विचारों को देख लेना

आवश्यक प्रतीत होता है। कवि रत्नाकर का व्यक्तित्व कवि और पाण्डित्य का एक असन्तुलित समन्वय है। अपनी विद्वत्ता एवं पाण्डित्य प्रदर्शन में रत्नाकर निश्चित रूप से भारवि और माघ से कहीं अधिक दिखाई देते हैं। विविध दर्शन और शास्त्रों की शाखाओ के पाण्डित्य से मण्डित काव्य इसका स्पष्ट निदर्शन है। सच पूछा जाय तो माघ भी रत्नाकर के सामने निस्तेज दिखाई देते हैं। वस्तुत. रत्नाकर कलावादी कवि हैं। वे शब्द तथा अर्थ दोनो के सौन्दर्य पर ध्यान देते हैं। उनकी अन्त —प्रकृति कवित्व सम्पन्न है। किन्तु रत्नाकर का कवि रूढ़ियो का दास होने एवं कलाविषयक उसका यह सिद्धान्त होने से 'कलाकार' को संपूर्ण साध्य है, असाध्य कुछ नहीं'[१]। उनके भावपक्ष की मौलिकता एव सरसता पाण्डित्य तथा रूढ़ियों की दासता के बोझ से कुचल जाती है। रत्नाकर श्लेष, यमक और चित्रकाव्य जैसी श्रमजन्य कृत्रिम कलाबाजियो मे माघ से ज्येष्ठ है। फिर भी उनके सच्चे कविहृदय का परिचय मुझे स्वभावोक्तियों में मयूर, ताम्रचूड, अश्व आदि के चित्रों मे जितना मिलता है उतना विदग्ध प्रौढोक्तियो में नही।

प्रबन्ध काव्य की इतिवृत्त,-निर्वाहिकता मे रत्नाकर पूर्णरूप से असफल रहे है। वस्तुत कवि का ध्यान इतिवृत्त की ओर है ही नही इस विषय में रत्नाकर माघ से बढ़कर हैं कम नही। हरविजय में कथा के कलेवर तथा प्रासंगिक वर्णनो का सन्तुलन रंचमात्र भी नहीं है। मूल कथानक के नायक के जन्म का परिचय कवि छठे सर्ग के अन्त में आकर (श्लोक १८८ में) संक्षेप मे देता है। तीसरे सर्ग के ऋतुवर्णन मे (श्लोक ३४) क्षणमात्र नायक-नायिका के नामोल्लेख से ही कवि सन्तोष कर लेता है। कथानक के प्रासंगिक वर्णन, नायक से असंबद्ध होने से, नायक में क्रियाशीलता का अभाव सूचित करते हैं। हरविजय के वीर रस पूर्ण इतिवृत्त में अप्रासंगिक शृंगार लीलाओं का १५ सर्ग मे विस्तार से वर्णन किया गया है।

दूसरी बात यह है कि इन असंबद्ध विस्तृत वर्णनों की प्रकृति मुक्त सी है। छठे सर्ग मे ३ कम, दो सौ श्लोकों में भगवान की पांडित्यपूर्ण स्तुति की गई है जिसमे कवि ने विभिन्न दर्शन-शास्त्रो का ज्ञान व्यक्त करने का प्रयत्न किया है और इस प्रयत्न की पुनरावृत्ति ४७ वें सर्ग की 'चण्डिकास्तुति' में

---

१. "साध्यं न तज्जगति यन्न कलावतोऽस्ति,
चन्द्रः करैः सकलदिङ्मुखकर्णपूरैः।
विष्यण्णवारिविसरा. परितो निनाय
तच्चन्द्रकान्तदृषदोऽपि तदार्द्रभावम् ॥ ७२ हरविजय सर्ग २०।

दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु का विस्तृत वर्णन करने की प्रवृत्ति ने इतिवृत्त की गति कुंठित कर दी है।

कथावस्तु का आधार

प्रस्तुत काव्य के अल्पकथानक एवं उसे पुष्ट करने के लिये अन्य वर्णनों का आधार शिव, लिंग पद्म और स्कन्द पुराण है।

प्रस्तुत काव्य के छठे सर्ग मे श्लोक १८८ से १९२ तक अन्धकासुर के जन्म की कथा है। जो शिवपुराण की कथा से (धर्मसंहिता ४ अ) साम्य रखती है। 'एक समय एकान्त मे महादेव जी बैठे हुए थे। पार्वती ने पीछे से आकर विनोद में शंकर के नेत्र बन्द कर दिये। अकस्मात् दृष्टि बन्द होने से, शंकर-पुराण पुरुष से एक पुरुष उत्पन्न हुआ। वह गाढ अन्धकार के समान अन्धा था। अतः उसका नाम अन्धक रखा। हिरण्याक्ष उसी समय पुत्र प्राप्ति के लिये तप कर रहा था। शंकर ने उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर प्रसाद रूप मे उसे (अन्धक को) पुत्र रूप मे दिया। पश्चात् अन्धक ने तपस्या की और ब्रह्म देव ने प्रसन्न होकर उसे दृष्टि दी। उपर्युक्त कथा को किञ्चित् परिवर्तन के साथ अर्थात् हरविजय मे अन्धक को केवल पुराण पुरुष शंकर से उत्पन्न कहा है जब कि शिवपुराण मे पार्वती के करो से और लिंग पुराण मे पार्वती के स्वेद विन्दुओ से उसकी उत्पत्ति वर्णित की है[1]। इसके पश्चात् वह देवों को त्रस्त करने लगा। युद्ध वर्णन मे कवि ने स्कन्द पुराण का आश्रय लेकर प्रस्तुत काव्य के युद्धवर्णन मे पुराण की अपेक्षा भिन्न प्रकार से वर्णित किया है।

स्कन्द और पद्मपुराण में शंकर और अन्धकासुर के युद्ध के कारण भिन्न बताये हैं। जब कि प्रस्तुत काव्य मे केवल देव-पीडा को दूर करने के लिये

---

१. चक्रे ततो नेत्रनिमीलनन्तु सा पार्वती नर्म्मयुतं सलीलम्।
प्रवालहेमाब्जधृतप्रभाभ्यां, कराम्बुजाभ्यां निमिमील नेत्रे ॥ ५
शिवपुराण धर्मसंहिता, ४ र्थ अ०
हरस्य नेत्रेषु निमीलितेषु, क्षणेन जात. सुमहान्धकार।
तत्स्पर्शयोगाच्च महेश्वरस्य, कराच्च तस्या स्खलितं मदम्बु ॥ ६
पचानन तर्करत्नसंपादितम् १८ १२ कलकत्ता
हरविजय सर्ग ६-श्लोक १८८, १८९
शिवपुराण ७, १०,१५, ९४ धर्मसंहिता ४र्थ अध्याय
हरविजय सर्ग ६-श्लोक १९० सु १९२, लिंग पुराण १, ९४

शंकर का अन्धक से युद्ध होता है। यहां भी कवि ने महाकाव्यों के युद्ध वर्णन की परम्परा के अनुसार श्लोक-१७ मे अन्धकासुर के रथ की ध्वजा पर गृध्र बैठाकर अपशकुन सूचित किया है। आगे ८१ मे शंकर की मुखाग्नि से उसके रथ आदि का भस्म होना, ८२ में अंधक का आकाश में उड़ जाना आदि का वर्णन किया है। इसके आगे स्कन्द पुराण-वर्णन की साम्यता प्रस्तुत काव्य के वर्णन से मिलती है। दोनो मे अन्धक के रक्त बिन्दुओं से अनेक अन्धको की उत्पत्ति व चामुण्डा द्वारा उनके विनाश का वर्णन किया गया है। और अन्त मे कवि ने कल्पना से शंकर की कोपाग्नि से अंधक को भस्म करा दिया है[1]। मृत्यु के पश्चात् अन्धकासुर की आत्मज्योति शंकर में विलीन हो जाती है। पुराणपरम्परा के अनुसार शंकर के प्रसाद द्वारा सेना का पुनर्जीवित होना और पुष्पवृष्टि सहित मगल वाद्य-गान आदि का वर्णन किया गया है।

आदान

प्रस्तुत काव्य शिशुपालवध के वर्ण्य विषयो, भावों तथा भाषा और शैली से पूर्णतः प्रभावित है। इसके अतिरिक्त इस काव्य पर रघुवंश, किरातार्जुनीय आदि काव्यो का प्रभाव भी देखा जा सकता है। यहाँ संक्षेप मे कुछ उदाहरण देना पर्याप्त होंगे।

रघुवंश-इस काव्य के नवम सर्ग का 'द्रुतविलंबित छन्द' मे यमकमय ऋतुवर्णन माघ-शिशुपालवध के छठे सर्ग के ऋतुवर्णन मे होता हुआ 'हरविजय' के ऋतुवर्णन (सर्ग तृतीय) मे भी देखने को मिलता है।[2]

---

१. स्कन्दपुराण ५, ३, ४५

तद्वक्ष स्फुरितकृशानुशूलकोटिं झाकारावबधिरीकृतान्तरिक्षम्।
सस्यन्देरुधिरमकारियेन संध्याताम्राशुच्छुरितमिवाभ्रचक्रवालम्॥
तद्वक्ष कटकादसृक्छिन्नपतितं सान्द्रं कपालोदरे,
पीत्वातत्परिणामपाटलमिवात्मा वपुर्बिभ्रती।
चामुण्डांगुलिकोटिभागमिलनात्तद्वीर्यबीजांकुरा-
नच्छिन्नाखिलसततीन्सरभसं चक्रे प्रतिच्छन्दकान्॥ ८८

हरविजय सर्ग ५०–,८४,८८,८९,९२,९३

२. "स्मरमदीदिपदूर्ध्वविलोचनं पुररिपोरिव यच्छिखिपिंगलम्।
स्फुटदशोकमुदीक्ष्य तदुत्सुका न कमिता कमितारमलं वधूः॥"

हरविजय सर्ग २०, ३४

रघुवंश के त्रयोदश सर्ग के ५६ वे श्लोक का पूर्वार्ध हरिविजय में २० वें सर्ग के ५६ वें ही श्लोक के भाव से साम्यता रखता है। जैसे-संगमवर्णन करते हुए कालिदास कहते हैं कि वह संगम ऐसा प्रतीत होता था कि मानो—"कहीं छाया में छिपे अंधकारों से चितकबरी बनाई हुई चन्द्रिकासी" हो।

हरविजय में चन्द्रिका का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि-'वायु से पलाशपत्र कंपित होने के कारण, उनके (पत्रो के) छिद्रो से प्रविष्ट चन्द्र-किरणों के द्वारा भूमि, मृग के शबलित वर्ण के चर्म सदृश शोभित हुई।[1] 'पूर्व-'मेघदूत' की यह कल्पना "है मेघ, हंस पक्षियों के मानसरोवर मे गमन करने के द्वार से, जो द्वार श्री परशुराम ने पहाड़ फोड़कर बनाया था। उसके भीतर प्रवेश करते समय ऐसे लगोगे जैसे बलिवन्धन के समय उठा हुआ विष्णु का सावला चरण।" यहां हरविजय मे चन्द्रकिरणो का वर्णन करते कवि उक्त कल्पना का स्मरण कराता है। "रात्रि रूपी राम के बाण से दिवस रूपी क्रौञ्च पर्वत में छिद्र होने से उसमें से होकर चन्द्रकिरणरूपी हंसपक्ति जाने लगी।[2]

बुद्धघोषकृत 'पद्मचूड़ामणि' के नगरीवर्णन मे विलासिनियो का यह चित्र,—

"आकाश को स्पर्श करने वाले प्रासादो पर रहनेवाली विलासिनियों के रति जनित क्लम, मन्दाकिनी की तरगों को स्पर्श करने वाले मन्द एव सुगन्धी वायु द्वारा दूर किये जाते हैं।[3] रत्नाकर के 'हरविजय' से साम्य रखता है।

---

१. क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभि छायाविलीनै शबलीकृतेव ।।
रघुवंश सर्ग १३, ५६

भाति स्म मारुतविधूतपलाशरन्ध्रलब्ध प्रवेशशिशिरांशुमरीचिधाराम् ।
छाया विनेशुषिरवौदधतो तरूणा, सवीतचित्रमृगचर्मपटेव भूमिः ।।
२०, ५६ हरविजय

२. प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्यतांस्तान्विशेषान्,
हंसद्वारंभृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ।
तेनोदीची दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी
श्याम पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णो ।। पूर्वमेघ ५७
प्रत्यग्रपक्षघटनेन निशावताररामेषुणा सपदि वासरक्रौञ्चकुञ्जे ।
निर्दारिते स्फुटमयुक्छदनच्छदाच्छानिर्गच्छतिस्मं शशिदीधिति—
हंसपंक्ति. ।। २१ हरविजय सर्ग २०

३. पद्मचूड़ामणि सर्ग २१, १

"जहां अंगनाओं के रतिजनित क्लान्ति को, माणिक्यों से निर्मित प्रासाद के गवाक्षों से प्रविष्ट सुरसरिता के तरंगों से स्पृष्ट होने से शिशिर वायु दूर करता है[1]।

किरातार्जुनीय में चन्द्रोदय का वर्णन करते समय यह उत्प्रेक्षा-"चन्द्रदेव ने अपनी स्वच्छ प्रवाल सदृश कला से निविड़ अन्धकार को इस तरह दूर किया जिस तरह शूकरावतार विष्णु ने सुवर्ण के सदृश दांत से पृथ्वी को उठाया था"। हरविजय में यही उत्प्रेक्षा इस प्रकार मिलती है। चन्द्रकिरणो से आकाश ऐसा शोभित हुआ, जैसे प्रलयकाल में वराह के दातो से उठाई जाती भूमि की शोभा हुई थी[2]। किरातार्जुनीय मे भीम की धर्मराज के लिये यह उक्ति—

"बड़े लोगो का वह स्वभाव है जिसके कारण किसी के अभ्युदय को वे सहन नही कर सकते"।

हरविजय में इस उक्ति से साम्य रखती है। सूर्योदय का वर्णन करते समय कवि उत्प्रेक्षा करता है। तेजस्वी अपने सम्मुख क्षणभर भी किसी की स्थिति सहन नहीं करते[3]। माघ-शिशुपालवध महाकाव्य तो हरविजय का अनुकरणीय रहने से सर्वाधिक प्रभाव देखने मिलता है। जैसे-राजनीतिक सिद्धान्तो के वर्णन भगवत्स्तुति, ऋतुवर्णन, पर्वत, मन्दरवर्णन, कुसुमावचय, जलक्रीडा, दिवसावसान, चन्द्रोदय, समुद्रवर्णन, पानगोष्ठी, संभोगवर्णन, प्रत्यूषवर्णन, सेनाप्रयाण, वर्णनादि उपयुंक्त वर्णनो मे से कुछ साम्यता के उदाहरण देना पर्याप्त होगे।

इसके पूर्व ऋतुवर्णन की छन्द-साम्यता बता चुके है। शिशुपालवध से प्रवर्तित ऋतुवर्णन, जैसे प्रथम षड्ऋतुवर्णन होने के पश्चात् संक्षेप में पुनः

---

१. हरविजय सर्ग १ श्लोक ११

२ लेखयाविमलविद्रुमभासा संततं तिमिरमिन्दुरुदासे।
दंष्ट्रया कनकटंकपिशगया मण्डल भुव इवादिवराह.॥ ९

किरातार्जुनीये-२२

प्रेंखत्कठोरशतपत्रपलाशमूलपाण्डुक्षपाकरमरीचिविलिक्षिताशोः।
उत्सम्मनाकुलजगत्क्षयकालकोलदंष्ट्राप्रकाशधवलक्षितिविभ्रमाभृत्।

२०, ५८ हरविजय

३. "प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया॥"

२,२१ किरातार्जुनीये

"क्षणमपि सहते नहिप्रगल्भां क्वचिदहितस्य पुरः स्थितिं महस्वी॥"

हरविजय २८, ९६

सभी ऋतुओं का वर्णन हरविजय के पंचम सर्ग के अन्त में किया गया है। यह प्रथा माघ से ही प्रारम्भ हुई है। कवि माघ ने शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए एक चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है "आश्विनमास में धान की रखवाली करने वाली गोपवधुओं ने उनके द्वारा उच्चस्वर से गाये गये मधुर गीत को सुनते, फलतः धान खाने की इच्छा न करने वाले मृग समूहों को नहीं भगाया"।

हरविजय में इसी चित्र को इस प्रकार चित्रित किया गया है—"शुकों को दूर करने के लिये स्पष्ट तालियों की ध्वनि से धान की रक्षा करने वाली वधुओं के गीतरव ने प्रचुर धान्य खाने की इच्छा करने वाले मृगो के मन को आकर्षित कर लिया।"[1] उपर्युक्त साम्यता के अतिरिक्त अन्य भाव-सादृश्यों को निम्न श्लोकों में देखा जा सकता है। जैसे शिशुपालवध के छठे सर्ग के ६४ और ६६ श्लोको का साहश्य हरविजय के तृतीय सर्ग के ८४ और ८७ श्लोकों में मिलता है। हरविजय के द्वादश और त्रयोदश सर्ग शिशुपाल वध के द्वितीय सर्ग से प्रभावित हैं। दोनो काव्यो में राजनीति का विवेचन है। जैसे द्वादश राजाओं का कथन, षड्गुणो का विवेचन प्रभु, मन्त्र और उत्साह शक्तित्रय का कथन किया गया है। जैसे शिशुपाल वध मे कहा है "ऊंचे तथा लंबी जडवाले वृक्ष मे बडे एवं हाथ से तोड़ने योग्य फल लगते हैं, इसी प्रकार श्रेष्ठ तथा मन्त्रशक्ति, उत्साह होने से कर से बढ़ने वाला राजा का तेजोविशेष होता है।"

हरविजय मे उपर्युक्त भाव को इस प्रकार कहा है—
उपायों से युक्त वृक्षो की तरह नीति से राजाओं को फल मिलता है[2]।

---

१. "विगतसस्य जिघत्समघट्टयत्कल मगोपवधूर्नमृगव्रजम्।
श्रुततदीरितकोमलगीतकध्वनिमिषेऽनिमिषेक्षणमग्रत:॥

शिशुपालवध, सर्ग ६, ४९

प्रकट ताललयं शुकवारणे कलमगोपवधूनवगीतकम्।
मृगगणस्यमन.श्रृतमाक्षिपत्प्रचुरसस्यरसस्यजिघत्सत.॥

हरविजय सर्ग ३, ७८

२. करप्रचेयामुत्तु ंग.प्रभुशक्तिं प्रथीयसीम्।
प्रज्ञावलबृहन्मूल: फलत्युत्साहपादप:॥ २.८९ शिशुपालवध
उपायधुन्यास्तरव: शितावित्रक्रियाविशेषा व्यभिचारिण: फले।
त एव नूनं नियमेन भूभृतां फलन्ति कल्पद्रुमवन्नयाश्रया:॥

हरविजय सर्ग १२, ३७

मन्त्र के विषय में शिशुपाल वध में कहा गया है—"जिस प्रकार कातर योद्धा संपूर्ण अंगों के कवचादि से सुरक्षित रहने पर भी शत्रु के भेदन करने के भय से बहुत काल तक नहीं ठहरता उसी प्रकार सहायादि संपूर्ण अंगों से सुरक्षित भी मंत्र शत्रु के भय से अधिक समय तक नहीं ठहरता।"

हरविजय में उपर्युक्त भाव को इस प्रकार कहा है—"भली प्रकार से चिकित्सा करने पर भी शंका करनेपर वह मर जाता है[1]।" दोनों काव्यों में कुसुमावचय के अवसर पर नायिकाओं के विभिन्न चेष्टा सौन्दर्य का वर्णन है[2] दोनों में काम शास्त्र के अनुसार मधुपान, दूती कर्म व संभोग वर्णन है। शिशुपालवध में 'समुच्चयेऽन्यतरस्याम्। ३।४।३ सूत्र के उदाहरण रूप में केवल एक श्लोक का प्रयोग मिलता है। जबकि हरविजय में उक्त व्याकरण के सूत्र का प्रयोग-उदाहरण रूप में पाच श्लोकों को एक कुलक की योजना की गई है[3]। जिसके अनुसार अनेक क्रियाओं का समुच्चय दिखाने के लिये लोट् विकल्प से होता है। हरविजय का युद्ध वर्णन चित्रकाव्य की दृष्टि से माघ के १९ वें सर्ग के युद्धवर्णन (चित्र काव्य) से प्रभावित हुआ है। इतना होते हुए भी हर विजय के इस सर्ग का विस्तार व विषयवस्तु को प्रस्तुत करने का ढंग समान होते हुये भी निराला है।

रस भावाभिव्यक्ति

इस काव्य का अंगी रस वीर है और अंग रूप मे शृंगार। शृंगार रस का क्षेत्र पर्याप्त से अधिक विस्तृत हो गया है। यहां तक कि कामसूत्र के अनुसार एक-एक कर्म के लिये स्वतन्त्र सर्ग की योजना की गई है जैसे दूती संकल्प वर्णन (२५) संभोग वर्णन (२७) इनके अतिरिक्त रौद्ररस एवं

---

१ मन्त्रो योध इवाधीर सर्वांगैः संवृतैरपि।
चिर न सहते स्थातु परेभ्यो भेदशकया। २.२९ शिशुपाल वध
उत्प्रेक्ष्य नूनमभयेपि भयं निसर्गभीरुनितान्तमुपगच्छति विह्वलत्वम्।
पंचत्वमेतिनितरां सुचिकित्सितोऽपि शंकाविषव्यतिकरेण विमूर्छितः सन्
१३ २९ हरविजय. और भी हरविजय, १३.२० शिशुपाल वध २.२६

२. शिशुपाल वध ७.३७ हरविजय १७.८०
वही ७.५७ वही १७.८७

३.'पुरी मवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामरांगनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली यइत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिव.॥
शिशुपालवध १.५१

हरविजय सर्ग २० (८१ से ८५ तक)

उसके अनुभावों का वर्णन जैसे-सभाक्षोभवर्णन (७) भक्तिभाव। भगवत्स्तुति तथा चण्डिस्तोत्र मे शंकर की परिषद् में देवो के कष्ट कथन में करुण रस की छटा है। सर्ग १६ वें के ६८ से ७७ श्लोकों मे (वस) विष्णु का करुण चित्र खींचा गया है।

प्रकृति वर्णन मे रसाभास के कई उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। प्रकृति वर्णन का हमने स्वतन्त्र रूप से पीछे उल्लेख किया है अतः यहां कुछ कहना अनपेक्षित है।

वस्तु वर्णनः-

काव्य के आकार के अनुरूप ही वस्तुवर्णन विस्तृत रूप से किया गया है जैसे इनमें ऋतुवर्णन, पुरारिपुरीवर्णन, पर्वत, समुद्र, सन्ध्या चन्द्रोदय और प्रत्यूष वर्णनादि हैं।

प्रकृति (पात्र स्वभाव) चित्रणः-

प्रस्तुत काव्य के नायक भगवान शंकर हैं जो धीरोदात्त कोटि से स्वभावतः ही आते हैं और प्रतिनायक के रूप मे अन्धकारसुर का वर्णन किया गया है। प्रमुख स्त्री पात्र के रूप मे पार्वती है किन्तु परिचय के अतिरिक्त उनके विषय मे प्रस्तुत काव्य मे कुछ नहीं मिलता। नायक स्वभावत देव होने से उदात्त स्वभाव, रिपुनाशक तथा लोकरक्षक के रूप में ही वे सामने आते हैं। अन्य पात्र देव तथा उनके पुराण प्रसिद्ध गण हैं।

काव्य सौन्दर्य (व्युत्पत्ति)

जैसा कि पूर्व कहा है, हरविजय महाकाव्य को कविरत्नाकर ने विभिन्न दर्शन तथा शास्त्रो से मण्डित किया है[1] जैसे १ व्याकरण, २ राजनीति

१. (१) सर्ग ३, श्लोक ५३, सर्ग २०, श्लोक ८१, ८५ सर्ग ४७ श्लोक ८१ (२) १२, सर्ग-श्लोक २६,२७, ३०. ३१,३८, ७३ सर्ग १३ सर्ग १६ श्लोक ७९ (३) सर्ग ६, श्लोक १५-१८ (४)सर्ग ६, श्लोक २१ (५)सर्ग ६ श्लोक (९७) सर्ग ४७ श्लोक ५२,५३ (६) सर्ग ४७ श्लोक ४९, ५१ (७) सर्ग ६ श्लोक १०९ से ११७ तक (८) सर्ग १७ श्लोक ५१ (९) सर्ग १ श्लोक ३६ सर्ग-१७ श्लोक ४४ सर्ग २० श्लोक २३,५८ (१०) नाट्यशास्त्र सर्ग १ श्लोक ४६ सर्ग २ सर्ग ६ श्लोक १८० सर्ग ११ श्लोक ३३ सर्ग १७ श्लोक २९, ३५, ७९, ८९, ९६, १०२, १०६१०८ सर्ग २८ श्लोक २२

काव्यशास्त्र, सर्ग १२, श्लोक ३२

सगीत (११) सर्ग १ श्लोक २८ सर्ग १७ श्लोक ७६, ८१, ८२, १०८ कामशास्त्र (१२) सर्ग १७, २५, २६ और २७ व (१३) सर्ग ६ श्लोक १३८. अलंकार-शास्त्र के अन्तर्गत नाट्यशास्त्र व काव्यशास्त्र का उल्लेख है।

३ सांख्ययोग ४, ५ बौद्धदर्शन, ६ जैनदर्शन, ७ पाशुपतशास्त्र, ८ वेद, ९ पुराण १० अलकारशास्त्र, ११ संगीत, १२ कामशास्त्र, १३ धातुवाद। हरविजय की कलात्मक सजावट, कल्पना तथा शब्दभंडार माघ से बढ़कर है।

हरविजय मे अनेक अलंकारो का प्रयोग किया गया है।

उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, समासोक्ति अर्थान्तरन्यास, श्लेष, अपन्हुति, असंगति, विरोधाभास, यमक, पादयमक और महायमक तद्‌गुण, व्यतिरेक, व्याजस्तुति, विभावना, अनुप्रास आदि।

उपर्युक्त अलंकारों तथा शब्दालंकारों के अतिरिक्त हरविजय में चित्र काव्य की भी योजना है जैसे सर्ग ४३ और ४८ में एकाक्षरवाद द्व्यक्षर, समुद्‌ग, काञ्ची, गोमूत्रिका, मुरज, जालबन्ध, सामंजसबन्धी, गूढार्थश्लोक, सर्वतोभद्र, खड्गबन्ध, शक्तिबन्ध, मुसलबन्ध अतालव्य, तृणीबन्ध, शरबन्ध गूढकर्तृक., अपशब्दाभास, निरनेष्ठ्य, आवलिबन्ध आदि की नियोजना की गई है। इसके अतिरिक्त अर्थत्रयवाची श्लोक (सर्ग ४३·२९२) मिलता है।

हरविजय के यमक का उदाहरण मम्मट ने काव्यप्रकाश में उद्धृत किया है[1] किन्तु जैसा इसके पूर्व कहा है कि हरविजय में स्वभावोक्ति के कुछ चित्र उत्कृष्ट हैं जैसे यहा दो एक उदाहरण पर्याप्त होगे।

प्रात काल का वर्णन करते हुए रत्नाकर सुप्तोत्थित मयूर का चित्र सामने रखता है।

मयूर ने गिरने के भय से अपने शरीर के पूर्व भाग को कुछ झुकाकर तथा दृढतापूर्वक पैर को स्थिर करते हुए पखों को हिलाया और विरहातुर स्त्रियों को अपने उच्च स्वर से पीड़ा पहुंचाते हुए, निवास यष्टिका के कोण से नीचे उतरा, यहां मयूर का शरीर के पूर्व भाग को कुछ झुकाना तथा पैर जमाकर पखों को हिलाना आदि क्रियायें अत्यन्त स्वाभाविक हैं।

एक अन्य चित्रः—

'प्रत्यूष काल होने पर, ताम्रचूड ने अपने चरणो को फैलाया और अपनी कंधरा को नीचे-ऊंचे करते हुए अनुनासिक मनोरम शब्दों में वह निरन्तर

---

१. "मधुपराजिपराजितमानिनोः जनमनःसुमनः सुरभिश्रियम्।
अमृतवारितवारिजविप्लवं स्फुटितताम्रतताम्रवणं जगत्॥"
हरविजय ३,२ काव्यप्रकाश ९ उल्लास में उद्धृत ३६८

बोलता रहा, यहां भी 'स्फुरित नतोन्नत कंठकधराग्र' सूक्ष्म निरीक्षण का द्योतक है[१]।

छन्दो के प्रयोग में रत्नाकर माघ से भी अधिक कलावादी है। हरविजय में प्रयुक्त वसन्ततिलका छन्द की क्षेमेन्द्र ने प्रशंसा की है[२]। हरविजय मे अनेकों (२७) छन्दों का प्रयोग किया गया है[३]। हरविजय मे वीर रस की योजना में ओजगुण का प्रयोग किया गया है। किन्तु जहाँ वीर रस के अतिरिक्त अन्य विषयों के वर्णन मे जैसे नगरी वर्णन, कुसुमावचय, चन्द्रोदय, मधुपान, संभोग आदि वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है जिसमे माधुर्यगुण की योजना की गई है युद्धवर्णन मे वीर रसोपयोगी सामासिक भाषा एव कठोरवर्णों की योजना के कारण गौडी रीति का प्रयोग किया गया है। हरविजय शैली एव पदविन्यास मे शिशुपालवध काव्य से प्रभावित हुआ है। हरविजय के पदविन्यास मे गौड़ी की विकट बन्धता मे गम्भीरता का सृजन अवश्य कर दिया है। किन्तु इसके अतिरिक्त बीच-बीच मे अन्य भाषाओ के प्रयोग भाषा षट्क-समावेश (सर्ग ४ श्लोक ३५) पिशाचभाषा समावेश, प्रतिलोम विलोम पाद के प्रयोग (सर्ग ५ श्लोक २८) और युगलको तथा बड़े-बड़े कुलकों की नियोजना ने काव्य की गति को रुद्ध करते हुए काठिन्य दोष का सृजन कर दिया है।

---

१. आपातभीतिनमितोन्नमितार्धदेहबद्धस्थिरक्रमविधूतपतत्रपंक्तिः।
उच्चै क्वणन्नवततार निवासयष्टिकोटे शिखी विधुरयन्विरहातुरा स्त्रीः ॥
हरविजय २८. १११

"अविरमदनुनासिकाभिरामस्फुटतरतारविरावकूणिताङ्घ्रि।
अविरतं विरुराव ताम्रचूड स्फुरितनतोन्नतकंठकंधराग्र ॥"

वही २८,४९ और भी सर्ग १७ श्लोक २१ सर्ग २८ श्लोक ३९,४०,४१.

२. वसन्ततिलकारूढा वाग्वल्ली गाढसंगिनी।
रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्याननकानने ॥ ३२ क्षेमेन्द्र सुवृत्ततिलकम्

३. सत्ताईस छन्दो का प्रयोग किया गया है।

१–पुष्पिताग्रा, २–उपजाति, ३–वसन्ततिलका, ४–वंशस्थ, ५–कालभारिणी, ६–प्रहर्षिणी, ७–मालिनी, ८–स्रग्धरा, ९–रुचिरा, १०–शालिनी, ११–अनुष्टुभ्, १२–मत्तमयूर, १३–रथोद्धता, १४–शार्दूलविक्रीडित, १५–प्रमिताक्षरा, १६–मंजुभाषिणी, १७–रुचिरा, १८–द्रुतविलम्बित, १९–सुन्दरी, २०–इन्द्रवज्रा, २१–प्रमाणिका, २२–पृथ्वी, २३–वैश्वदेवी, २४–मन्दाक्रान्ता, २५–मन्दाकिनी, २६–प्रबोधिता, २७–हरिणी।

कप्फिणाभ्युदय[1] : कवि परिचय—

कवि ने काव्य की प्रशस्ति[2] में अपने नाम का 'श्री शिवस्वामिन'–'शिवस्वामिन्' के रूप मे उल्लेख किया है। कवि शिवस्वामी ने कप्फिणाभ्युदय नामक महाकाव्य का प्रणयन किया, जिसके प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में शिवशब्द के आने से यह काव्य 'शिवांक' कहा गया है। इनके पिता का नाम भट्टारक स्वामी था। ये स्वयं शैवमतावलम्बी थे, किन्तु चन्द्रमित्र नामक बौद्धाचार्य की प्रेरणा से कवि ने बौद्ध साहित्य मे प्रसिद्ध एक अवदान को अलंकृत महाकाव्य के रूप मे परिणत किया। इन्होंने अपने काव्य को शिव के चरणों मे समर्पित किया है। जिससे शैव मतानुयायी की पुष्टि होती है। प्रशस्ति के चतुर्थ पद्य में कवि ने अपनी कृति को अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करने के लिये, दीपक और विरोधियों की वाणी को कीलित करने का एक प्रबल साधन कहा है[3]। राजतरंगिणी के अनुसार इनका उदय काश्मीर के प्रसिद्ध नरेश अवन्तिवर्मा के (८५८–८८५ ई०) राज्यकाल में हुआ था[4]। कवि ने स्वयं को बहुत कथाओं का ज्ञाता, चित्रकाव्य का उपदेष्टा, यमक कवि तथा मृदु एवं रसस्यन्दिनी वाणी का गायक कहा है। शिवस्वामी ने रघुकार, मेण्ठ तथा दण्डी को अपना उपजीव्य माना है[5]। पूर्वोक्त कथनानुसार कवि-आनन्दवर्धन, मुक्तक और रत्नाकर के समसामयिक था। अत: इनका समय नवम शती का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है।

सर्गानुसार काव्य कथा (इतिवृत्त)—

दक्षिण देश के राजा कप्फिण ने श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित को युद्ध में परास्त किया। प्रसेनजित ने भगवान बुद्ध का ध्यान किया। परिणामत. बुद्ध ने प्रकट होकर कप्फिण को पराजित कर दिया। अन्त में कप्फिण बुद्ध के शरण गया और उनके धर्मामृत का पान कर कृतकृत्य हुआ। इसी स्वल्प कथानक को कवि ने बीस सर्गों में विदग्धतापूर्ण शैली में वर्णित किया है।

---

1. Ed. Gaurishankar, Punjab Univ. Orient Publication Series, Lahore 1937. The first notable account of the work was given by Seshagir Sastri in his report of Sanskrit and Tamil MSS. N. 2 Madras 1899.

२. कप्फिणाभ्युदय प्रशस्ति २०, ४३-४४

३. वही २०–४६

४. राजतरंगिणी—कल्हण ५।३४ (पण्डित पुस्तकालय काशी)

५. वही २०।४७ कप्फिणाभ्युदय।

प्रथम सर्ग—विन्ध्य पर्वत पर स्थित लीलावती नगरी का एवम् उसके स्वामी राजा कप्फिण का वर्णन।

द्वितीय सर्ग—एक चर, जो उत्तर मे भेजा गया था, वापिस आता है, और कोसलदेश के राजा प्रसेनजित की कीर्ति एव उनके गुणो के विषय में कहता है। राजा प्रसेनजित एवं उसकी राजधानी श्रावस्ती का वर्णन।

तृतीय सर्ग—चर से प्रसेनजित की वार्ता सुनकर राजसभा में बैठे हुये सरदार जिनकी संख्या ४१ है, क्रोधित होते हैं। रौद्र रस के अनुभावो का वर्णन।

चतुर्थ सर्ग—क्रोधपूर्ण वातावरण मे राजनीति मे दक्षता बताते हुये सुबाहु अपने उग्र भाषण में शत्रु पर तत्काल आक्रमण करने के लिये कहता है।

पञ्चम सर्ग—अन्य सभासद राजा भीष्मक सुबाहु के भाषण का समर्थन करते हुए, युद्धपूर्व शत्रु के यहा चर को भेजने के लिये प्रस्ताव रखता है। राजा कप्फिण इस प्रस्ताव को स्वीकृत करता है। दर्शक दूत के रूप में भेजा जाता है। विद्याधर राजा कप्फिण को मलयपर्वत पर आने के लिये आग्रह करता है, राजा उसके आग्रह को स्वीकार कर रानियो, अन्य सदस्यो एवं सेना के साथ चलता है।

षष्ठ सर्ग—राजा कप्फिण मलयपर्वत का निरीक्षण करता है। विचित्र-बाहु पर्वत के सौन्दर्य का वर्णन करता है।

सप्तम सर्ग—सेना का पड़ाव एवं विद्याधरो की सहायता से उनकी व्यवस्था का वर्णन।

अष्टम सर्ग—षड्ऋतुओ का वर्णन अर्थात् प्रत्येक ऋतु का वर्णन और अन्त मे सामान्य रूप से पुन सभी ऋतुओ का एक साथ सक्षिप्त वर्णन।

नवम सर्ग—कुसुमावचय वर्णन।

दशम सर्ग—जलक्रीड़ा वर्णन।

एकादश सर्ग—सूर्यास्त वर्णन।

द्वादश सर्ग—चन्द्रोदय वर्णन।

त्रयोदश सर्ग—मदिरापान वर्णन।

चतुर्दश सर्ग—कामसूत्रानुसार शृङ्गारिक क्रीडा।

पंचदश सर्ग—प्रभातवर्णन स्तुतिपाठकों के गीतों से राजा जगता है और पुनः अपनी राजधानी वापिस आता है।

षोडश सर्ग—(यहा से पुन· पञ्चम सर्ग से छूटा कथानक आगे चलता है) दर्शक जो चर के रूप में प्रसेनजीत के यहा भेजा गया था, श्रावस्ति पहुँचता

है। श्रावस्ति का वर्णन, दर्शक प्रसेनजीत को राजा कफ्फिण का सन्देश सुनाता है। उत्तर में प्रसेनजीत युद्ध की घोषणा करता है। दर्शक वापस जाता है और प्रसेनजीत का सन्देश सुनकर युद्ध की तैयारियां होती हैं।

सप्तदश सर्ग—कफ्फिण क्रोधित होता है। सेनाप्रयाण और भयंकर युद्ध का आरम्भ।

अष्टादश सर्ग—भयंकर युद्ध मे प्रसेनजीत की सेना भागती है। राजा प्रसेनजीत स्वयं को नि.सहाय समझकर सहायता के लिये बुद्ध की प्रार्थना करता है। बुद्ध प्रकट होते हैं और अपनी अलौकिक शक्ति से कफ्फिण को जीतते हैं और राजा कफ्फिणण बुद्ध के शरण जाता है।

नवदश सर्ग—राजा कफ्फिण प्राकृत भाषा में बुद्ध की स्तुति करता है।

विंशति सर्ग—राजा कफ्फिण को बुद्ध का उपदेश। राजा बुद्ध भिक्षु बनने की इच्छा प्रकट करता है। किन्तु बुद्ध उसे संसार न त्यागने के लिये कहते हैं और निस्वार्थ भावनाओं से राज्य की सेवा के लिये उपदेश करते हैं। बुद्ध तिरोभूत होते हैं और राजा कफ्फिण अपनी राजधानी वापिस आता है। अन्त मे कवि स्वय प्रशस्ति के रूप मे अपना परिचय देता है।

काव्य कथानक का आधार

कफ्फिण या महाकफ्फिण की कथा अवदानशतक, अंगुत्तर निकाय की टीका, मनोरथपुरनि और धम्मपद की टीका में उपलब्ध होती है। प्रस्तुत महाकाव्य "कफ्फिणाभ्युदय" अवदान शतक पर किंचित् परिवर्तनों के साथ आधारित है। यहा अवदानशतक की कथा देना ठीक न होगा, जहा मूल कथानक में कवि ने परिवर्तन किया है उसका उल्लेख करते हैं।

जैसा हमने इसके पूर्व देखा है कि प्रथम सर्ग से १५ सर्ग तक का इतिवृत्त केवल विदग्ध महाकाव्य के रूढी नियमों की पूर्ति करने के लिये है। फलतः ६ से १५ तक के वर्णनों द्वारा मूल कथानक की गति अवरुद्ध हो गई है। १६ वें सर्ग से, कवि ५ वें सर्ग के अन्त में छूटे इतिवृत्त को पुनः ग्रहण कर अग्रसर होता है। युद्ध में पराजित प्रसेनजीत की प्रार्थना पर बुद्ध प्रकट होते हैं और अलौकिक शक्ति से राजा कफ्फिण की विचारधारा को परिवर्तित कर देते हैं। अब राजा बुद्ध धर्म में स्वयं को दीक्षित करने के लिये बुद्ध से प्रार्थना करता है, बुद्ध उसे अस्वीकार कर कर्तव्यों का पालन करने के लिये उपदेश करते हैं। यहा मनुप्रोक्त वैदिक संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव ज्ञात होता है। बौद्ध आदर्श के स्थान पर गृहस्थ जीवन का महत्व उद्घोषित किया गया है, जिसमें गृहस्थ अनासक्त भावना से अपने कर्तव्य पालन में ही मोक्ष

प्राप्त करता है। अवदानशतक में उल्लिखित राजा कफ्फिण को रानी 'अनोजा' का प्रस्तुत काव्य मे कोई उल्लेख नहीं है। कवि ने कफ्फिण के अतिरिक्त अनेक पात्रों का उल्लेख किया है। कवि ने कफ्फिण के अतिरिक्त अनेक पात्रों का उल्लेख किया है। राजा कफ्फिण बुद्ध का समकालीन था। श्रावस्ति का राजा प्रसेनजीत भी ऐतिहासिक पात्र है। उपर्युक्त इन दो पात्रों के अतिरिक्त अन्य सभासदों के नाम न अवदानशतक में मिलते हैं और न किसी पालीग्रंथ में। महाभारत और पुराण में अवश्य इनका उल्लेख है।

प्रस्तुत काव्य के २० वें सर्ग की अवदानशतक के साथ तुलना करने पर तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि कवि ने अवदानशतक के गद्य में प्राप्त शब्दो तक का अपने पद्यों में उपयोग किया है। निम्नांकित शब्द दोनों स्थानों पर समान रूप से मिलते हैं अविद्या सस्कार (१५), हेतुमाला (१६, १७), उत्तान (१८) छिन्नप्लोतिक (१८), नडागार (१९), योगायालं-अप्रमादायालं (२०), सौक्लेषिलक्य (२०), पौनर्भविष्यति (२०), शास्तुः-शासने (२०), स्थाम (१५), पारिपूरि (२०), षाडायतन्यं (१५)।

उपर्युक्त काव्य के कथानक को देखने से संस्कृत साहित्य मे तथा काश्मीर के साहित्यिक इतिहास में उसके महत्व का ज्ञान हो जाता है।

प्रथम यह काश्मीर में हुए काव्य के विकास स्तर को एव समसामयिक काव्यों पर रत्नाकर के प्रभाव को स्पष्ट कर देता है। द्वितीय तत्कालीन धार्मिक इतिहास को इसका महत्वपूर्ण दान यह है कि (प्रस्तुत काव्य का) मूल कथानक अन्य पौराणिक महाकाव्यो की तरह न पौराणिक है और न ऐतिहासिक काव्यो की तरह, (नवसाहसाकचरित, विक्रमाकदेवचरित,) एतिहासिक ही। इसके विपरीत बौद्ध कथाओ में तथा पाली साहित्य में प्रसिद्ध बौद्ध कथा राजा कफ्फिण से सम्बद्ध है।

बौद्ध परम्परा के अनुसार राजा कफ्फिण को बुद्ध के द्वादश शिष्य मंडल में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इस प्राचीन कथा को महाकाव्य के रूप मे परिणत करते समय कवि स्वकालीन धार्मिक विचारधारा के प्रवाह को सक्रान्त करने मे पूर्ण सफल हुआ है। यद्यपि कवि ने काव्य की प्रशस्ति में बौद्धाचार्य चन्द्रमित्र को काव्य रचना का प्रेरक हेतु स्वीकार किया है, फिर भी हिन्दूसंस्कृति के महत्वपूर्ण (आश्रम) गृहस्थाश्रम को ही काव्य मे उच्च स्थान देकर तत्कालीन वैष्णव तथा शैव धर्म मे अन्तर्भूत बौद्ध धर्म की स्थिति को सूचित कर दिया है।

इस समय कृष्ण और बुद्ध के उपदेश एक दूसरे में अन्तर्भूत हो रहे थे और जिसकी पूर्णाभिव्यक्ति क्षेमेन्द्र के दशावतार चरित्र में मिलती है। दो-एक उदाहरण यहां पर्याप्त होंगे।

प्रस्तुत काव्य के २० वें सर्ग के १७ वें श्लोक में बुद्ध हेतुमाला पर उपदेश देते हुये सांसारिक वस्तुओं से अनासक्तिजन्य (रखने से प्राप्त) मोक्ष-पर बल देते हैं। 'रागत्यागान्मुक्तिरहाय कार्या' (सर्ग २०, २२) यहां कवि अवदानशतक का अनुसरण करते हुए बौद्ध और हिन्दू विचारधारा के समन्वय का प्रयत्न करता है। राजा बुद्ध के उपदेश को सुनकर कहता है—

दाक्षिणात्य राजा ने जिसने मानसिक शान्ति प्राप्त कर ली थी और मुक्ति के लिये उत्सुक था कहा—"इस उपदेश ने मेरी आखों को खोल दिया है मैं निद्रा से जागृत हो चुका हूँ। हे स्वामी! आप के उपदेशों के द्वारा शंका-संदेहों रूपी समुद्र मे डूबा हुआ मैं ऊपर आकर रक्षित हो चुका हूँ"।

उपर्युक्त शब्दों की तुलना हम भगवद्गीता मे कहे अर्जुन के शब्दों से करते हैं तो पूर्ण साम्यता दिखाई देती है।

"मोह नष्ट हो चुका है, हे अच्युत! आप के कृपा प्रसाद से मैंने स्मृति (स्मरणशक्ति) प्राप्त कर ली है। मैं दृढ हूं और मेरे सम्पूर्ण सन्देह नष्ट हो चुके है। मैं आप की आज्ञा पालन करूंगा"।[१] राजा बौद्धभिक्षुक बनने की इच्छा प्रकट करता है, किन्तु बुद्ध कहते हैं कि हे पुत्र! यह सत्य है, असत्य से सत्य को अलग करने की विवेक शक्ति को प्राप्त करने वाले मनुष्य की तरह तुम बौद्ध भिक्षु के जीवन के लिये, योग्य हो, किन्तु इसे प्राप्त करने के पूर्व तुम्हे कुछ काल तक प्रतीक्षा करनी होगी[२]।

उपर्युक्त पद्य में मनुप्रोक्त चारों आश्रम पद्धति की ध्वनि मिलती है। बुद्ध राजा को भिक्षु बनाना नहीं चाहते किन्तु कुछ काल तक प्रतीक्षा करने के लिये उसे कहते हैं। बुद्ध तो उसे 'त्रिरत्नों' के लिये राज्य करने का उपदेश करते हैं। निम्नांकित पद्य में कवि ने गीता का अनासक्तियोग का समर्थन किया है।[३] इस प्रकार सांसारिक विभीषिकाओं से उत्पीडित मानव की

१ नष्टो मोह स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देह: करिष्ये वचन तव॥ गीता १८।७३

२. कफिफणाभ्युदय २०—३०

३. मा भोगेभ्यो भंगुरेभ्य प्रकृत्या मा प्राणेभ्यो माश्रिये मा यशोभ्य-
श्राद्ध: शुद्ध. श्रद्धया धाधि साधो पृथ्वी पृथ्वीरन्न रत्नत्रयाय। २०-१२
धर्मे श्रद्धा सम्मति. सत्यसारे दाने दाढ्यं सम्प्रधानं दयायाम्।
क्षान्तौ क्षोद: प्रेम पुण्ये दमे दृग् येषां मुक्तास्ते गृहस्थाश्रमेऽपि।
२०—१८ वही

असामयिक विरक्ति, पलायनवृत्ति या संन्यासवृत्ति के विरुद्ध गृहस्थाश्रम में भी अनासक्ति योग के द्वारा कवि ने मोक्ष प्राप्ति का सन्देश ध्वनित किया है। यही प्रस्तुत काव्य का आन्तरिक प्रेरणाहेतु और सन्देश है।

आदान

कफ्फिणाभ्युदय महाकाव्य पर पूववर्ती काव्यों का विशेषत. किराता-र्जुनीय, रावणवध, शिशुपालवध और हरविजय आदि का प्रभाव लक्षित होता है। वैसे तो, जैसा कवि शिवस्वामी ने स्वयं कहा है, कालिदास के काव्यों का प्रभाव भी प्रस्तुत काव्य पर दिखाई देता है। प्रस्तुत काव्य का आरम्भ ही 'हरविजय' के अनुसार होता है। किरातार्जुनीय के अनुकरण पर दूत पात्र का समावेश किया गया है। उपर्युक्त सभी काव्यों में पर्वतवर्णन समान रूप से उपलब्ध होता है। किरातार्जुनीय के यक्ष का और शिशुपाल-वध के दारुक का कार्य प्रस्तुत काव्य में विद्याधर ने किया है। छन्द की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य के षष्ठ सर्ग मे शिशुपालवध मे प्रयुक्त छन्दो का अनुकरण किया गया है। माघ के चतुर्थ सर्ग में आरम्भ के १८ पद्यों में उपजाति छन्द है और इनके आगे भिन्न-भिन्न छन्दो के तीसरे चरण में यमक है। प्रस्तुत काव्य में षष्ठ सर्ग के आरम्भ के १२ पद्य उपजाति मे और इनके आगे प्रत्येक छन्द के द्वितीय पाद में यमक की योजना है। प्रस्तुत काव्य का नव-दश सर्ग जो संस्कृत और प्राकृत मिश्रभाषा मे है, भट्टि के १३ वें सर्ग के अनुकरण पर है। कालिदास के अनुकरण पर कवि ने ऋतुओं का वर्णन सर्ग (९) द्रुत-विलम्बित छन्द में यमक की योजना के साथ किया है[1]। भारवि ने लक्ष्मी शब्द का, माघ ने श्री का, रत्नाकर ने रत्न का और शिवस्वामी ने शिव का प्रयोग प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में किया है। इसी प्रकार उपर्युक्त काव्यों में (भट्टि, शिशुपालवध, हरविजय) और प्रस्तुत काव्य मे काव्य के अन्त में 'प्रशस्ति' की नियोजना की गई है। हरविजय और कफ्फिणाभ्युदय को देखने से दोनो के सर्गों के विषय क्रम की भी साम्यता दिखाई देती है।

हरविजय	कफ्फिणाभ्युदय
१: शिवाभ्यर्थना ज्योत्स्नावती नगरी व उसके स्वामी का वर्णन	१. बुद्धाभ्यर्थना लीलावती नगरी तथा उसके स्वामी का वर्णन

---

१. रघुवंश नवम सर्ग, कफ्फिणाभ्युदय सर्ग ८

हरविजय	कपिफणाभ्युदय
७ शिव की सभा मे अन्धकासुर द्वारा पराजित देवो की दुर्दशा सुनकर वीरभद्र,कालमुसल आदि गणोके क्रोध का वर्णन।	२ राजसभा में कफ्फिण के प्रति प्रसेनजित् की प्रतिकूलता दूत द्वारा सुनकर सुबाहु, दर्शक आदि गणों के क्रोध का वर्णन।
९-१६ कालमुसल की नीति का अनुसरण कर अन्धकासुर पर आक्रमण करनेका विधान और अन्त में कालमुसल को दूत के रूप मे अन्धकासुर के पास भेजने का निर्णय।	४-५ सुबाहु के कथन के अनुसार विना अधिक समय नष्ट किये प्रसेनजित् पर आक्रमण का विचार और अन्त में दर्शक को दूत रूप में प्रसेनजित् के पास भेजने का निर्णय।
३०-३८ कालमुसल की स्वर्गयात्रा। अन्धकासुर से भेंट। देवो को सन्देश कथन और उनका उत्तर-प्रत्युत्तरवर्णन।	१६ दर्शक की श्रावस्ती यात्रा। प्रसेनजित् से भेंट। सन्देश कथन। उनका उत्तर-प्रत्युत्तर कथन। दर्शक का क्रोध में प्रत्यावर्तन।
३९-५० सैन्यसंभारप्रस्थानपूर्वक युद्ध वर्णन।	१७-१८ युद्ध वर्णन।

भावसाम्यम्	कफ्फिणाभ्युदयम् महा काव्य में		हरविजयम् महाकाव्यम्	
नगरीवर्णने	शय्यालयेषु ···	१, १४	शय्यागृह···	१, १६
सभाक्षोभवर्णने	तत्रत्यश्चकित···	३, १९	रोषारुणी ··	७, ११
		३, २८		९, ६३
नरेन्द्रवर्णने	उल्लास्यकाल···	१, २४	अभ्येयुषा···	१६, ३९
			फूत्कारपावक···	१६, ७४
चन्द्रोदय वर्णने	श्यामा ··	१२, १५	ध्वस्तान्धकार··	२०, ४७
प्रसाधन वर्णने	मृगीदृशा···	१२. ३६	आह्लादहेतु···	२३, ४६
प्रभातवर्णने	प्राची प्रासो···	१५, १८	उदय शिखरि···	२८, ८०
वनविहारवर्णने	स्विधानया···	९, १६	बिभ्राणे···	१७, ५२
			शिशुपालवधम्	
निर्झरवर्णने	प्रग्भारदीर्घ···	३, ५५	प्राग्भागत ···	४, ४९
प्रदोषवर्णने	दिव इव ···	११, ३०	व्यसरन्नु···	९, १९
चन्द्रोदयवर्णने	कृतोपकारे···	१२, १८	रजनीमवाप्य···	६, ३६
सलिलक्रीडावर्णने	मुखपतित···	१०, १४	आघ्राय···	८, १०
कुसुमावचयवर्णने	तनुस्विषो···	९, ३५	अवजितमधुना···	७, ६०

रसभावाभिव्यक्ति

कप्फिणाभ्युदय का अंगी रस शान्त है, जिसका स्थायी भाव निर्वेद है[1]। जो तत्वज्ञान आदि से समुद्भूत होता है। राजा कप्फिण बुद्ध के उपदेश सुन कर मानसिक शान्ति प्राप्त करते हैं। उनकी आखें खुलने से वे मोह आदि से मुक्त होते है[2]।

अंग रूप में रौद्र, वीर और शृंगार रस हैं। यद्यपि प्रस्तुत काव्य मे वीर और शृङ्गार का व्यापक क्षेत्र है, किन्तु अन्त मे राजा को बुद्ध 'अनासक्ति योग,' का उपदेश उत्साह भाव को शान्त में परिणत कर देता है रौद्ररस और उसके अनुभावो का वर्णन परम्परागत होने पर भी उनकी सफल व्यञ्जना हुई है। वीर रस की व्यञ्जना चरित काव्यों के अनुरूप हुई है। प्रथम पांच सर्गों में ओजगुण के आश्रय में रौद्र रस की सफल व्यञ्जना हुई है। ६वें सर्ग से १५ सर्ग तक प्रकृति वर्ण, सौन्दर्य वर्णन मे श्रृंगार रस की व्यंजना हुई है। १६-१८ तक युद्ध वर्णन मे वीर रस की व्यञ्जना है। और अन्तिम सर्गों में भक्तिभाव और शान्त रस की व्यञ्जना हुई है। जिनमें माधुर्य, कान्ति और प्रसाद गुण की ओर नियोजना है।

भाषा और छन्द की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य मे कुल ४३ विभिन्न छन्दो का प्रयोग किया गया है। इस विषय मे प्रस्तुत काव्य सर्ग षष्ठ मे ३७, छन्दो का प्रयोग करता है, जब कि किरातार्जुनीय और शिशुपालवध काव्य ५ वे और चतुर्थ सर्ग मे क्रमश १६ और २२ छन्दों का प्रयोग करते हैं। प्रस्तुत काव्य के क्रमश. ६ से १५ तक सर्गों मे जिनमे मूलकथानक से दूर महाकाव्य के अपेक्षित वर्णन हैं। वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है। युद्ध वर्णन में, कठोर भावो को व्यक्त करनेवाले दीर्घ समास तथा कर्कश शब्दों की अभिव्यक्ति के लिये 'गौडी रीति' का प्रयोग किया गया है। सर्ग १८ मे, चित्र-काव्य मे जिनमे कविकाव्यनामगर्भचक्रम्, (सर्ग १८ श्लोक १४७) गोमूत्रिकाबन्ध (सर्ग १८ श्लोक ४८, ६७, ८८) पद्मबन्ध. (सर्ग १८ श्लोक ७४) मुरजबन्धः (सर्ग १८।५९) मुरज० सर्ग १८।६१, काञ्चीबन्धः (सर्ग १८, १२६) महायमकम् १३१ अर्द्धभ्रमकः (सर्ग १८ श्लोक ८७) सर्वतोभद्रः (सर्ग १८ ८५) आदि का प्रयोग मिलता है।

रावणार्जुनीय

भट्टि के पश्चात् 'रावणवध' को ही आदर्श मानकर काश्मीरी कवि श्री भट्टभीम ने रावणार्जुनीय नामक महाकाव्य का प्रणयन किया। कवि भूम या

१. निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः। काव्यप्रकाश ४ उल्लास ४७

२. कप्फिणाभ्युदय सर्ग २० श्लोक २३,२४

भौमक नाम से प्रसिद्ध है। कवि वल्लभी का निवासी था। यह नगर कश्मीर में वराह के पास 'उड' नामक गांव है इनका समय भी अनिश्चित है, फिर भी भट्टि के पश्चात् अर्थात् ७ वीं शती के उत्तरार्ध से १० वी शती के बीच माना जा सकता है। कार्तवीयार्जुन और रावण दोनो के युद्ध वर्णन के मिष से वैदिक सूत्रो को छोड़कर अष्टाध्यायी के सभी विधि सूत्रों के अष्टाध्यायी पाठ क्रम के अनुसार ही उदाहरणों को दिखाते हुये कवि ने २७ सर्गों में कार्तवीर्य अर्जुन के चरित का वर्णन किया है। यह युद्ध कथा वर्णनात्मकत्व से काव्य और सूत्रोदाहरणात्मकत्व से शास्त्र भी है। प्रस्तुत काव्य के कई सर्गों के श्लोक लुप्त तथा खण्डित हो गये हैं।

काव्य का कथानक—

एक समय रावण घूमते-घूमते माहिष्मती नगरी मे गया। वहां उसने अर्जुन से युद्ध करने की इच्छा व्यक्त की। किन्तु नगरी में अर्जुन न होने से वह विन्ध्याचल घूमता हुआ नर्मदा नदी पर आया और उसमे स्नान कर शकर की पूजा की। उसी समय अर्जुन अपनी सहस्र बाहुओं से नदी के जल को रुद्ध कर रानियो के साथ विहार कर रहा था। नदी का जल रुद्ध होने से वह प्रतिकूल दिशा मे बहने लगा। परिणामत तट पर एकत्र पूजा सामग्री बह गई। नदी की प्रतिकूल गति का कारण अर्जुन को जानकर रावण क्रुद्ध हुआ और उसने अर्जुन से युद्ध किया। युद्ध में अर्जुन ने रावण को बांध लिया किन्तु मुनि पुलस्त्य के आग्रह पर अर्जुन ने रावण को मुक्त कर दिया।

उपर्युक्त स्वल्प कथानक को २७ सर्गों मे इस प्रकार विभाजित कर पुष्ट किया है—

प्रथम सर्ग—कार्तवीर्यार्जुन के चरित्र एवं शरदृऋतु का वर्णन।

द्वितीय सर्ग—राजा की यात्रा, उसे देखने अंगनाओं की त्वरा, उनके भाषण में राजा के सौन्दर्य एवं गुणों के विषय में कथन और सेनाप्रयाण।

तृतीय सर्ग—मृगयावर्णन।

Ed. Kavyamala 68 Pandit Sivadatta, K. P. Parab N S. P. Bombay. it is also cited under the name Vysa or Vyasakavya. see K. C. Chatterjee in I H Q 1931 P. 628 and Zachariae, Z. I. I. 9, 1932-P 10 FF.

१. काव्य की पुष्पिका 'श्री शारदादेशान्तर्वर्तिवल्लभीस्थाननिवासिनो भूमभट्ट स्येतिशुभम् वल्लभीस्थानं उड् इति ग्रामो वराहमूलोपकंठस्थितः"।

चतुर्थ सर्ग—स्त्रियो का शारीरिक सौन्दर्य, नर्मदा के तटवर्त्ती प्रकृति सौन्दर्य और जलविहार।

पञ्चम सर्ग—सूर्यास्त के समय प्रकृति सौन्दर्य और तमोवर्णन।

षष्ठ सर्ग—चन्द्रिका वर्णन, अभिसार के लिये प्रवृत्त नायक नायिकाओं की चेष्टाओ का वर्णन, दूतिकथन, दूतिप्रेषण, मद्यपान और प्रभातवर्णन।

सप्तम सर्ग—राजा का नर्मदा नदी की ओर गमन और रावण का अपनी सेना सहित अर्जुन की ओर गमन।

अष्टम सर्ग—माहिष्मती नगरी का वर्णन, विन्ध्याचल वर्णन और नर्मदा नदी का वर्णन।

नवम सर्ग—नर्मदा नदी के माहात्म्य तथा रावण के सुखोपभोग एवं विलास का उपकरण का वर्णन।

दशम सर्ग—रावण के चरित्र का वर्णन, नर्मदा मे स्नान एवं शिवस्तुति, नदी का उलटा प्रवाह देख उसका कारण जानने के लिये शुकप्रेषण।

एकादश सर्ग—शुक के द्वारा सहस्रार्जुन को नदी में विहार करते एवं अपनी बाहुओं से जल को रुद्ध करते देखा जाना एव शुक के द्वारा रावण को नदी के उलटे प्रवाह के कारण का कथन।

द्वादश सर्ग—रावण शुक वार्तालाप, युद्ध के पूर्व अर्जुन की स्थिति तथा उसकी चेष्टाओं का ज्ञान करने के लिये शुक का प्रस्थान, शुक के द्वारा आकाश मार्ग से मुनियो को देखते तथा विद्याधरो का संगीत सुनते चलना और राजा की सेना मे उसका आगमन, द्वारपाल के द्वारा (उसे देख) आने का कारण पूछा जाना, शत्रु पर विजय प्राप्त करने के हेतु 'क्या करना चाहिये' आदि का राजनीतिक निपुणता का कथन। शुक का राजा की सभा मे प्रवेश, आसन पर बैठने के पश्चात् दूत के आगमन का कारण पूछा जाना, रावण की प्रशंसा और वंशपरिचय देते हुये शुक के द्वारा अपने आगमन की सूचना देना। शुक ने कहा 'रावण की आज्ञा पालन करने पर अनेक प्रकार के सुखोपभोगों की प्राप्ति होगी अन्यथा पूर्णिमा को सम्पूर्ण शत्रुवर्ग को वह नष्ट कर देगा"। नदी से शीघ्र जाने के लिये अर्जुन को शुक का कथन "आपने नदी के जल को रोक कर शिव पूजा भग की है। आप अपने कल्याण के लिये उससे सख्य कर लो।" अर्जुन के द्वारा शुक को रावण के लिये अपना सन्देश देने के हेतु ठहराना।

त्रयोदश सर्ग—अर्जुन और शुक वार्तालाप। अर्जुन द्वारा रावण की निन्दा यह सुनकर अर्जुन के प्रति शुक का कथन 'रावण की उपासना करना तो देव भी ठीक समझते हैं।" "अन्त में अर्जुन द्वारा रावण

के लिये सन्देश कथन "मैं शीघ्र ही आपकी इच्छा के अनुसार आपसे सख्य या युद्ध करूंगा।"

"यदि रणमथ सख्यं यद्द्वयं वाञ्छितं ते।
मनसि तदहमेकं प्राप्य शीघ्रं करोमि॥" ९६ श्लोक सर्ग १३

चतुर्दश सर्ग—रावण का दूत जाने पर अर्जुन द्वारा वीरो की सभा में रावण के चरित्रों के दोषों को बतलाया जाना और अपना मत कहना। "सामादि तीन उपायों मे से जो दण्ड का प्रयोग करता है, उसकी कीर्ति शेष रहती है। जो शक्ति सम्पन्न राजा दूसरों की बड़ाई सहन नही करता वही राजा है। भूमि उसी की पत्नी कहलाती है। (श्लोक १२। १३)

युद्ध घोषणाः—वीरो के भावी विरह से पीडित स्त्रियो का युद्ध नगाड़े की ध्वनि सुनकर वैसे ही पीडित होना जैसे ओस गिरकर कमलिनियां हो जाती हैं। इस सर्ग में युद्ध मे जाते समय वीरो की पत्नियो के हृदयों के विचार, सन्देह, शका, पीडा आदि द्वारा दोलायमान हृदय को व्यक्त किया गया है। इस प्रकार सेनाप्रयाण, उससे उत्थित धूलि प्रक्षेप, व युद्ध भूमि मे पहुंचने तक का वर्णन है।

पंचदश सर्ग—कार्तवीर्यार्जुन के पराक्रम को सुनकर रावण की पत्नी मन्दोदरी के मुख की कान्ति का म्लान और क्षीण होना जैसे कृष्णपक्ष में चन्द्रिका मन्दोदरी का रावण को युद्ध न करने के लिये विभिन्न प्रकार से समझाना, किन्तु रावण के न सुनने पर आकाश मार्ग से बिजली की तरह पुलस्त्य ऋषि के पास जाना। रावण की सेना का प्रयाण।

षोडश सर्ग—रावण और अर्जुन की सेना का युद्ध वर्णन। युद्धवर्णन परंपरागत रूढि के अनुसार है।[1]

सप्तदश सर्ग—अन्धकार वर्णन। सैनिको का अपने-अपने शिविरो में जाना, सैनिको की मृत्युसंख्याविवेचन, सैनिकगणो का अपने-अपने शिविरो में अपनी प्रेयसियो के साथ सुन्दर शैय्या पर बैठकर मधुपान करना। चन्द्रोदय वर्णन, दूति कथन, खण्डिता नायिका का उदित चन्द्र के विषय में उद्गार। संभोग वर्णन (श्लोक ४८, ४९) नायिका मानविमोचन वर्णन मन्दोदरी विरह वर्णन।

अष्टादश सर्ग—प्रभात वर्णन और वीरो का युद्ध के लिये गमन। सेना समाप्त होने पर राजा अर्जुन का और रावण का युद्ध के लिये प्रस्थान।

---

१. युद्धे तु वर्मबलवीररजांसितुर्यविश्वासनादशरमण्डपरक्तनद्यः।
छिन्नातपत्ररथचामरकेतुकुम्भीमुक्तासुरीवृतभटामरपुष्पवर्षा:॥
अमरचन्द्रयति काव्यकल्पलावृत्तिः ७४

अर्जुन और रावण का युद्धः– यह १९, २० और २१ सर्ग तक चलता है

द्वाविंश सर्ग—में मुनिपुलस्त्य का अर्जुन के यहां आगमन –

त्रयोविंश सर्गः—में अर्जुन द्वारा सहायक राजाओं की अपने अपने देशो में जाने के लिये विदाई। और सेना द्वारा रावण को बांधकर लाया जाना।

चतुर्विंश सर्ग–राजा का दर्शन करने के लिये ललनाओं की त्वरा का वर्णन। राजा के सौन्दर्य को देख स्त्रियों का परस्पर वार्तालाप।

पंचविंश सर्गः– मुनिपुलस्त्य का राजा अर्जुन के द्वारा सम्मान।

षड्विंश सर्ग–मुनिपुलस्त्य और अर्जुन का वार्तालाप। राजा अर्जुन की मुनिके द्वारा प्रशंसा (२–१३ श्लोक) रावण की निन्दा, उसकी स्त्रियों के दुःख का वर्णन।

सप्तविंशः सर्ग.– प्रथम खंड (१ ४९ तक) श्लोक हैं। राजा ने रावण का मानसम्मान व भेंट आदि की। रावण को लंका मे जाने की आज्ञा दी। वाद्यध्वनि के साथ पुष्पक विमान से रावण मुनि के साथ लंका गया। बीच में व अन्त में श्लोक खंडित हैं।

इतिवृत्त का आधार और परिवर्तन

कवि ने काव्यरीत्या शास्त्र की शिक्षा देने के हेतु वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड मे प्राप्त रावणार्जुन युद्ध प्रसंग को (सर्ग ३१ से ३३) काव्य का आधार बनाया है। यह सर्ग अत्यन्त स्वाभाविक एवं अनलंकृत है। किन्तु कवि ने दंडीप्रोक्त महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षणो की पूर्ति करते हुये काव्य का प्रणयन किया है। उक्त सर्गानुसार कथा वर्णन से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि मूल कथानक अत्यन्त अल्प होने पर भी नगरी वर्णन, कथोपकथन, नीति कथन, श्रृंगार वर्णन, सेनाप्रयाण वर्णन. रीतिबद्ध (लक्षणबद्ध) चन्द्रोदय, प्रकृतिवर्णन व युद्धवर्णन आदि से, उसे दीर्घ बना दिया गया है। परिणामत. किरातार्जुनीय, माघ आदि की तरह कथा मन्थरगति से और कहीं-कही पीछे छूटे इतिवृत्त के सूत्र को फिर से ग्रहण करती आगे बढ़ती है। मूल कथा में उक्त वृद्धि से जो रामायण में नहीं है, परिवर्तन हो गया है। जैसे रामायण में रावण की पत्नी मन्दोदरी की कही चर्चा भी नही है। कवि ने इस कमी को मन्दोदरी के चरित्र वर्णन से पूर्ण किया है। रामायण में रावण के हारने एवं उसके पकड़े जाने का वृत्त मुनि पुलस्त्य देवों के द्वारा सुनते हैं, किन्तु इसमें यह वृत्त मुनिपुलस्त्य को देवी मन्दोदरी के द्वारा कहलाकर कवि ने अधिक प्रभावोत्पादकता एवं काव्यात्मकता का सर्जन किया है। इसके अतिरिक्त विदग्ध काव्यों मे प्रायः अप्रयुक्त स्त्रीपात्र

की योजना करना आपकी विशेषता है । व्याकरण के सूत्रों के उदाहरण एवं शिक्षा देने का आलोच्य काव्य का यदि लक्ष्य न होता, तो अवश्य ही यह काव्य किरातार्जुनीय, शिशुपालवध के कोटि का होता ।

आदान

कवि ने यद्यपि भट्टि को आदर्श मानकर ही काव्य का प्रणयन किया है । फिर भी पूर्ववर्त्ती काव्यों का प्रभाव इस पर यथेष्ट पड़ा है । ।

सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण के एक श्लोक का भावसाम्य दिखाते हैं । नर्मदा किनारे रावण अपने मन्त्रियो से कहता है कि "मुझे यहा बैठा जानकर ही सूर्य चन्द्रमा के समान शीतल हो गये हैं ।"

आलोच्य काव्य मे भी रावण जब नर्मदा नदी में स्नानार्थ जाता है तो उसके शरीर की कान्ति से सूर्य भी 'निशाकर' बन गया ।[1] भागवत के द्वितीय स्कन्ध २ अध्याय के पाचवें श्लोक का भावार्थ इस काव्य के सर्ग २३ के ४६ पद्य मे पाया जाता है । 'वन मे वृक्षो से फल गिर रहे थे, लोगो ने उन्हे लेकर यथेच्छ खाये । सुख से जीविका चल रही थी, तो परिश्रम की क्या आवश्यकता[2] ।

रघुवश.—जब राजा दिलीप नन्दिनी को वन में चराते घूम रहे थे, आस-पास के वृक्ष मानो पक्षियो के कलरव द्वारा राजा की जय जयकार कर रहे थे, और उन लताओ से गिरने वाले पुष्प मानो पौर कन्याओं की लाजाएं थी । उक्त भाव को प्रस्तुत काव्य के २३ वें सर्ग के ४२-४३ और ५३ वें श्लोक मे पाते हैं ।[3] रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघु की दिग्विजय यात्रा का भावसाम्य इस काव्य के २३ वें सर्ग के सेनाप्रयाण वर्णन मे मिलता है ।

---

१ वाल्मीकि रामायण "मामासीनं विदित्वैव चन्द्रायति दिवाकर." काण्ड ७, सर्ग ३१, २८ श्लोक

करप्रतानेन दिवाकरो वा दिवं स राजा सरितं जगाहे ।
प्रभाकरेणास्य शरीरधाम्ना विभाकरोऽकारि निशाकरो वा ॥

सर्ग १० श्लोक ८

२. "वने फलानि न्यपतन्द्रुमेभ्य: सुखं समादाय यथेच्छमादत् ।
एवं सुखोपार्जन वर्तनोऽपि क्लेशाय सेवा कुरुते हि लोकः ॥"

रावणार्जुनीय सर्ग २३७४६

भागवते द्वितीय स्कंधे । द्वितीये अध्याये । श्लोक ५

३. रघुवंश सर्ग २, ९-१०

कुमारसम्भवः-पार्वती की सेवा शंकर के स्वीकार करने पर कालिदास की यह उक्ति "विकार का हेतु रहने पर भी जिनके हृदय में विकार उत्पन्न नहीं होता, वे ही धीर कहलाते हैं"। प्रस्तुत काव्य में जब सैनिक अपनी-अपनी पत्नियों से विदा लेकर युद्ध के लिये जा रहे थे कवि की यह उक्ति–

"विकार का कारण रहने पर भी, विकार न हो, यह महानता का सूचक है"[1] कालिदास के काव्यों (कुमारसंभव व रघुवंश) में प्राप्त सर्ग ७ महादेव और अज को देखने के लिये लालायित पुरसुन्दरियों का वर्णन, प्रस्तुत काव्य के २४ वें सर्ग में, जब अर्जुन रावण की पराजय कर, नगर आ रहा था साम्य देखने को मिलता है।[2]

शाकुन्तल—में जब शकुन्तला अपने पति के घर जा रही थी लता, वृक्ष, हिरण, आदि की देखभाल करने के लिये उसने कण्व व अपनी सखियो से कहा था। प्रस्तुत काव्य में पुलस्त्य जब रावण को अर्जुन से मुक्त कराने के लिये जाते हैं, अपने शिष्यों को आश्रम के वृक्ष, पशु, पक्षियो की देखभाल करने के लिये कहते हैं[3]।

किरातः—सर्ग २ मे भीम की यह उक्ति 'बड़े लोगो का यह स्वभाव है कि जिस कारण किसी के अभ्युदय को वे सहन नहीं कर सकते।" (श्लोक २१) प्रस्तुत काव्य मे कार्तवीर्य अपने वीरो से कहता है। जो शक्तिसम्पन्न राजा दूसरो की बड़ाई सहन नहीं करता, वही राजा है। भूमि उसकी पत्नी कहलाती है।[4] इसके अतिरिक्त प्रस्तुत काव्य के शरद् ऋतुवर्णन तथा शृङ्गार वर्णन में किरातार्जुनीय काव्य के शरद् ऋतुवर्णन तथा शृगार वर्णन की प्रवृत्तियो का प्रभाव देखा जा सकता है।

रस भावाभिव्यक्ति

प्रस्तुत काव्य में अगी रस वीर है और इस रस का अच्छा चित्रण हुआ वीर चार प्रकार के माने गये हैं—दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर तथा दयावीर।

वीरता के ये चारों रूप सहस्रार्जुन मे दिखाये गये हैं, किन्तु युद्धवीर और दयावीर की अपेक्षा प्रथम दो रूपो का सांगोपाग चित्रण नहीं किया गया है। दानवीर, और धर्मवीर रूपो का उल्लेख कवि ने प्रथम सर्ग के आरम्भ मे

१. कुमारसम्भव १।५९ रावणार्जुनीयम् सर्ग १४।३८
२. रावणार्जुनीय सर्ग २४,–१७, १८–३०
३. शाकुन्तल अंक–४। रावणार्जुनीयम् सर्ग २३ श्लोक ८३-८५
४. रावणार्जुनीय सर्ग १४ श्लोक १३

ही कर दिया है "जिसने अनेक यज्ञ किये थे"[1] और "जो दानी था"[2] उस पराक्रमी अर्जुन का स्मरण करने से ही शत्रुभय नष्ट हो जाता था और आज भी होता है, इसका प्रमाण, अनुभव है। सहस्रार्जुन की युद्धवीरता का चित्रण विस्तार से किया गया है। रावण जैसे पराक्रमी वीर को भी जिसने रस्सी मे बाँधकर अपने यहाँ रखा[3]। दयावीर का प्रसग, रावण को मुक्त करने के लिये मुनि पुलस्त्य की प्रार्थना मे आता है और अर्जुन मुनि पुलस्त्य के आग्रह पर रावण को मुक्त कर देता है।[4] गौण रस, अंगरूप में वर्णित है, शृंगार, रौद्र, भयानक, साथ ही वात्सल्यभाव, पातिव्रत्य धर्म और भक्तिभाव रौद्र रस की व्यञ्जना छ श्लोको मे की गई है। जब रावण के मन्त्री शुक ने अर्जुन की सभा मे रावण की प्रशंसा कर उससे सख्य करने के लिये कहा। अर्जुन के वीर यह सुनकर क्रोधित हो उठे।[5] शृङ्गार रस की व्यञ्जना, स्त्रियो के शरीर सौन्दर्य वर्णन में, अभिसार, मद्यपान और सभोग वर्णन मे विस्तारपूर्वक हुई है।[6]

वियोग की छटा भी व्यञ्जित है। मन्दोदरी के कहने पर भी रावण रुकता नहीं और वह युद्ध के लिये प्रस्थान करता है[7]।

पातिव्रत्य—

प्रस्तुत काव्य मे पातिव्रत्य की व्यञ्जना हुई है। पातिव्रत्य भी प्रेम ही है। उसमे प्रिय के प्रति रति के साथ अन्य भाव भी–क्षेम भाव रहता है। जो प्रिय को अनिष्टाशकाओ से सदा सावधान करने मे पाया जाता है। रावण ने अर्जुन के साथ युद्ध करने का विचार करने पर मन्दोदरी ने रावण के क्षेम के लिये अनेक प्रकार से उसे समझाया। "अपनी सहस्र बाहुओ से नदी के जल को पीछे लौटानेवाले के साथ तुम्हारी क्या बराबरी है ? जब तुमने इन्द्र

---

१. "चिचीषतो यज्ञशतेषु वेदी (स) तुष्टुषुरिन्द्रोऽपि बभूव यस्य।
क्षिभित्सत शत्रुबलं न शक्ति बुभुत्सुरामीत्समरेषु कश्चित्॥ सर्ग १, १०

२. "तर्षित्वा याचकवर्गमभ्युपेत योवर्षन्मेघ इवाकृतास्त तृष्णम्।
यस्येन्द्र सोमपिपासया तृषित्वा यज्ञेषु प्रत्यहमापतत्सदैव॥ सर्ग २५

३. सर्ग २० श्लोक १०-११

४ मर्ग २७ श्लोक ७०

५ सर्ग १३ श्लोक ५१ से ५७ तक

६. सर्ग ४ से ६ तक और सर्ग १७

७. सर्ग १८ श्लोक ६८ से ७९ तक

को भी जीत लिया है, जब सभी ऋतु तुम्हारी सेवा करते हैं, तब अर्जुन से युद्ध कर क्या लाभ होगा।[1] अपने प्रासाद मे सुखोपभोग करो, व्यर्थ मे उस बलि अर्जुन के साथ युद्ध मत करो क्योकि वर्षाकाल मे गर्जन करते मेघ पर क्रोधित व्याघ्र पर कौन नहीं हसता[2] ?

वात्सल्य भाव—

मुनि पुलस्त्य के आश्रम मे रहने वाले पशु जीवो के प्रति उनके भावों मे तथा रावण की मुक्ति के लिये अर्जुन से उनके आग्रह मे व्यञ्जना मिलती है।[3]

भक्ति भाव—रावण ने दशम सर्ग मे महादेव से स्तुति की है। इस स्तुति में भक्ति भाव की व्यञ्जना है।[4]

वस्तु वर्णन—

प्रस्तुत काव्य मे वस्तु वर्णन से ही व्याकरण जैसे रूक्षशास्त्र की शिक्षा मे सरसता का सर्जन किया गया है।[5]

१ नगरी वर्णन, २ विन्ध्याचल वर्णन, ३ नर्मदानदी वर्णन, ४ पुरुष सौन्दर्य (बाह्य और आन्तरिक), ५ स्त्रीसौन्दर्य (बाह्य और आन्तरिक इन दोनो मे अर्जुन और मन्दोदरी व नागर ललनाओ का सौन्दर्य वर्णन निहित है), ६ चन्द्रोदय, ७ मृगया, ८ ऋतुवर्णन (शरद् ऋतु), ९ सेना-प्रयाण, १० युद्ध वर्णन आदि।

रावण ने माहिष्मती नगरी को इस प्रकार देखा—जहा नागरिक सत्य-भाषी, निर्लोभी, धनदानी और निर्भय थे। स्त्री समुदाय भी अनुशासित था। ब्राह्मण यज्ञ करने वाले थे। वह स्वर्ग-सी नगरी अर्जुन के द्वारा रक्षित एवं शरणागत की मित्र की तरह थी। जहा की वापियां निर्मल थी, परकोटे से वेष्टित नगरी मे वाद्य बजते थे और वातायनो से निकलने वाले धूप के धूम्र

१ रावणार्जुनीय सर्ग १५ श्लोक ७, १२

२. सर्ग १५ श्लोक १०, ११

३ सर्ग ३२, श्लोक ८०–८३ तक और सर्ग २६-२७

४ सर्ग १०, श्लोक २३ से ४८ तक

५. १–नगरी वर्णन सर्ग ८, २–विन्ध्याचल वर्णन, सर्ग ८, ३–नर्मदा नदी वर्णन, सर्ग ९, ४–पुरुष सौन्दर्य, सर्ग १, २५, ५–स्त्रीसौन्दर्य, सर्ग ४ और १५, ६–चन्द्रोदय, सर्ग ६, ७–मृगया वर्णन सर्ग-३, ८–ऋतुवर्णन सर्ग-१, ९–सेनाप्रयाण सर्ग–१४, १०–युद्धवर्णन, सर्ग १५ से २०

से दिशाएं सुवासित थी और जहां प्रवाल, शंख और सुवर्ण आदि की राशियां थी[1]।

सेनाप्रयाण वर्णन

सेनाप्रयाण वर्णन परम्परागत रीत्या किया गया है[2] एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

"तेजी से चलनेवाली सेना के घोडों के खुरों से पिष्ट धूलि ने रवि को छिपा दिया[3]।

व्युत्पत्ति—

प्रस्तुत काव्य, वेद, शास्त्र, पुराण, आदि से अलंकृत है। उदाहरण के लिये—वात्स्यायन कामसूत्र। (सर्ग ६ में) इसके अनुसार अभिसार वर्णन। दूती कथन, मद्यपान, दूतिप्रेषण व सभोग वर्णन किया गया है।

ज्योतिष —ज्योतिष मे पुष्यनक्षत्र पर यात्रा शुभ कही है। अर्जुन ने पुष्य नक्षत्र पर युद्ध के लिये प्रस्थान किया[4]।

वेद (यज्ञ)—अर्जुन ने विजय के लिये माहेन्द्र हवन किया[5]।

पुराण—भागवत पुराण से भाव ग्रहण किया गया है जो आवान मे बताया गया है।

धर्मशास्त्र—मनुस्मृति मे राजा, अग्नि, वायु, सूर्य, सोम, धर्मराज, कुबेर, वरुण और महेन्द्र का समयानुसार रूपधारण करता है।[6] प्रस्तुत काव्य मे पुलस्त्य मुनि अर्जुन को कहते हैं अग्नि और सोम दोनो की कान्ति तुम्हारे मे है। शत्रु के लिये अग्नि और मित्रो के लिये सोम का व्यवहार करते हो।

---

१. सर्ग ८, श्लो० २ से ३, ४, ६, ११, १३, और १६ "वातायनोत्थागुरुधूमचक्रैरभ्रायमाणैः सुरभीकृताशा।" १३

२. भेरि निस्वान भूकम्पबलधूलय । ७५
करभोक्षध्वजच्छत्रवणिक् शकटवेसरा. ।
अमरचन्द्रयतिकृता काव्यकल्पलता वृत्ति—स्तबक ५

३ सर्ग १४, श्लोक ५१ से ५४ तक ५७ रावणार्जुनीय सर्ग १४

४. सर्ग १४।४६

५ सर्ग १४।४७

६. मनुस्मृति अध्याय ७ श्लोक ४ और ७
अग्नीषोमच्छायया त्वं परीतस्यापल्हादौ शत्रुमित्रेषु कुर्वन् ।
रावणार्जुनीय २६।३७

व्याकरण:—व्याकरण शास्त्र का ज्ञान देना, इस काव्य का लक्ष्य ही है। इस लक्ष्य की पूर्ति प्रथम सूत्ररूप मे व्याकरण के नियम का उल्लेख करते और तत्पश्चात् उस नियम की पूर्ति करते हुए उदाहरण प्रस्तुत करने के द्वारा की गई है। ये उदाहरण ही काव्य का इतिवृत्त है।
जैसे—दो उदाहरण पर्याप्त होगे—

"वयसि प्रथमे" ॥ २० ॥ "द्विगो." ॥ २१ ॥

प्रथम वयोवाचक शब्द से स्त्रीलिङ्ग मे ङीप–ई. प्रत्यय होता है। उक्त नियम को घटाकर बतलाने के लिये उदाहरण प्रस्तुत किया–

"वरं कुमारी वरमेति कीर्तिर्यं पचराजीमपिहन्त्युपेताम्"

यहा कुमार से स्त्रीलिग मे ङीप्–ई–प्रत्यय होकर कुमारी बना। इसी प्रकार आगे बताया है—

द्विगु समास से स्त्रीलिग मे ङीप् प्रत्यय होता है। इसे बतलाने के लिये श्लोक के द्वितीय पाद मे कहा गया है।

"पंचराजी, 'पंचाना राज्ञा समूह.। पंचराज शब्द से ङीप्–ई प्रत्यय हुआ है। श्लोक के तृतीय पाद मे इसी का अन्य उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

'लक्षरथ' शब्द से ङीप् स्त्रीलिग मे प्रत्यय होकर लक्षरथी बना है[1]। "कर्तृ-कर्मणो कृति"। ६५।

कृदन्त के योग मे कर्ता या कर्म में षष्ठि होती है।

उक्त सूत्रार्थ को उदाहरण रूप मे प्रस्तुत करते हुये कहा है—

'सुखस्य दाता विपदामपासक स यत्र कान्त सखि तत्र याम्यहम्।
ममेह नैवासिक यास्ति कारणं कयाचिदूचेऽबलया सखीजन [2]॥

यहा दा धातु से कर्तरि अर्थ मे तृच् प्रत्यय हुआ है। यहा कर्म अनुक्त होने से षष्ठी हुई है।

विपदामपासक विपत्तियो को हटाने वाला—

अप अस्–ण्वुल् (अक्) कर्तरि अर्थ मे हुआ है। उक्त सूत्र से यहा विपदाम् मे षष्ठी हुई है।

---

१. रावणार्जुनीय सर्ग १४ श्लोक ८
"वरं कुमारी वरमेति कीर्तिर्यं पंचराजीमपि हन्त्युपेताम्।
किमुच्यता लक्षरथी समेतं तं राक्षसेशं पुनरभ्युपेतम्" ॥ १४।८
२. वही सर्ग ६ श्लोक ७४

राजनीति—शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये किन उपायों की सहायता लेनी चाहिये इसका दिग्दर्शन रावण और शुक के भाषण में कराया गया है।

एक उदाहरण पर्याप्त होगा—रावण ने शुक से कहा—"दिन मे उसके (अर्जुन) पास कौन होता है और रात्रि मे (उसका) शरीर रक्षक कौन रहता है ? शत्रु सेवक की संपूर्ण चेष्टाओं का ज्ञान होने पर उसे अनायास ठगा जा सकता है"।[1]

आगे 'सामादि, उपायों मे से कीर्ति प्राप्त करने के लिये दंड का प्रयोग करना चाहिये' कहा है[2]।

काव्यशास्त्र—प्रस्तुत काव्य मे काव्यशास्त्रोक्त नियमों की पूर्ति करने का प्रयास किया गया है और उस प्रयास मे कामसूत्रो का अनुसरण करना स्वाभाविक ही था। आचार्य दंडी के अनुसार महाकाव्य के नायक का उत्कर्ष बतलाने के लिये प्रतिनायक के चरित्र का, उसके पराक्रम का और उसके उत्कर्ष का वर्णन करना नितान्त आवश्यक है[3]। यह हमने पीछे देख लिया है। रावणार्जुनीय महाकाव्य मे प्रतिनायक रावण के गुणों का, उसके पराक्रम का वर्णन कर नायक कार्तवीर्यार्जुन के चरित्र का उत्कर्ष बतलाया गया है। उदाहरण के लिये युद्ध मे रावण के लिये कहा गया है "जिसने अनायास ही देवों पर विजय प्राप्त की थी, वह पराक्रमी रावण कार्तवीर्यअर्जुन के सम्मुख मन्द पड़ गया"[4]।

भाषा शैली की दृष्टि से रावणार्जुनीय महाकाव्य, भट्टि काव्य की अपेक्षा अधिक सुबोध और सरस है। व्याकरण शास्त्र की शिक्षा देना इस काव्य का क्षेत्र होने पर भी उसकी रूक्षता दूर करने के लिये, विभिन्न छन्दो, अलंकारो का प्रयोग किया गया है। प्रधान रूप से लोकोक्तियो का प्रयोग सर्वत्र किया गया है, जिसमे शास्त्रीय शैली एव पौराणिक शैली के तत्व भी मिलते हैं 'पौराणिक शैली' की प्रधान विशेषता का अलौकिक वर्णन स्थान-स्थान पर

१."कस्योपशायोऽहनि तस्य रात्रौ पर्यायतः कश्च शरीररक्षः।
ज्ञेयं द्विषद्भृत्यजनस्य सर्वं विज्ञातचेष्टः सुखवञ्चनीयः॥ सर्ग १२-१५

२. रावणार्जुनीय सर्ग १४।१२

३. सर्ग १० श्लोक १ से १२ सर्ग १३ श्लोक ४७ सर्ग १५ श्लोक १२

४. सुखं विजिग्ये दिवि योऽमराणां स कार्तवीर्ये स्खलितो दशास्य·।
वही सर्ग २० श्लोक ६

किया गया है। युद्ध वर्णन में इस अलौकिकता का बाहुल्य है। शास्त्रीय शैली की विशेषता वस्तुवर्णन में कह दी गई है।

नवसाहसांकचरित[1]

कवि परिचय—कवि पद्मगुप्त का अपरनाम परिमल है, कवि ने कहीं भी अपना परिचय नहीं दिया है। केवल काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'श्री मृगांकदत्तसूनोः परिमलापरनाम्न· पद्मगुप्तस्य' यह लिखा मिलने से इनके पिता का मृगांकदत्त नाम ज्ञात होता है। कवि गुणग्राही तथा सरस्वती के उपासक राजा मुञ्ज के और इनकी मृत्यु के पश्चात् राजा के छोटे भ्राता सिन्धुराज के सभा कवि थे[2]। इस प्रकार यह काव्यग्रन्थ १००५ ई० के लगभग लिखा गया।

काव्य—

कवि पद्मगुप्त ने १८ सर्गों मे (१५२५ पद्य) नवसाहसांकचरित महाकाव्य की रचना की है। जिसमे धारा के प्रसिद्ध नरेश भोजराज के पिता सिन्धुराज (नवसाहसांक) का विवाह शशिप्रभा नामक राजकन्या के साथ वर्णित है। प्रस्तुत काव्य की तंजोर प्रति मे कवि का दूसरा नाम कालिदास होना पाया जाता है[3], जो कालिदास के सफल अनुकरण का द्योतक कहा जा सकता है।

काव्य का कथानक—

परमार नरेश सिन्धुराज, विन्ध्यपर्वत पर मृगया करते समय अपने नामांकित बाण से शशिप्रभा के मृग को विद्ध करता है। उस बाण पर राजा का नाम पढकर शशिप्रभा राजा के नाम से परिचित होती है। राजा उस मृग के पीछे-पीछे घूमते हुए एक सरोवर पर आता है, और एक हंस को, जो अपनी चञ्चु मे शशिप्रभा के नाम से अंकित कंठहार लेकर, उड रहा था, देखता है। शशिप्रभा अपनी सेविका को उस हार के शोध के लिये भेजती

---

१ सम्पादक वामन इस्लामपुरकर, बाम्बे, संस्कृत सीरीज १८९५

२. "दिव यियासुर्मम वाचि मुद्राम् अदत्त यो वाक्पतिराजदेव.।
तस्यानुजन्मा कविबान्धवस्य भिनत्ति ताम् सम्प्रति सिन्धुराजः ॥
नवसाहसांकचरित १।८

३ 'T'.omits मृगाकगुप्तसूनो. reads परिमलापरनाम्नि महाकवे. श्रीकालिदासस्य कृतौ साहसांकचरिते। बम्बई, इस्लामपुरकर की प्रति से उद्धृत।

है। उसकी राजा से भेंट होने पर उसके द्वारा शशिप्रभा का परिचय होता है और आगे शशिप्रभा को देखकर राजा उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होता है।

नर्मदा नदी के द्वारा राजा को ज्ञात होता है कि जो असुर नृपति वज्राकुश के उद्यान से सुवर्ण कमलो को नागराजा शंखपाल को लाकर देगा, उसी वीर के साथ शशिप्रभा का विवाह होगा[1]। नर्मदा नदी के द्वारा ही राजा को नर्मदा नदी के तट पर स्थित वज्राकुश की राजधानी रत्नावली तथा मार्ग मे स्थित वकुमुनि के आश्रम का परिचय मिलता है। सिन्धुराज, रत्नचूड़ नामक नागयुवक, जो मुनि के शापवश शुक हो गया था[2], मुक्त करता है और उसी के द्वारा अपना सन्देश शशिप्रभा को भेजता है। तत्पश्चात् सिन्धुराज रत्नावली पर आक्रमण करता है। मार्ग मे वकुमुनि का आश्रम लगता है, जहा पर विद्याधर नृपति शिखंडकेतु के पुत्र को, जो मर्कटयोनि में था, मुक्त करता है[3]। शशिखंड अपनी सेना के साथ सिन्धुराज की सहायता करता है। युद्ध मे सिन्धुराज द्वारा वज्राकुश का वध होता है। उसके उपवन से सुवर्ण कमलो को लेकर नागराज को अर्पण करता है। परिणामतः शशिप्रभा के साथ उसका विवाह होता है। उस प्रसग पर शखपाल स्फटिक निर्मित शिवलिङ्ग सिन्धुराज को अर्पण करता है। तत्पश्चात् सिन्धुराज प्रथम उज्जैन और बाद मे धारा नगरी मे जाकर शिवलिंग की स्थापना करता है।

उपर्युक्त कथा अन्य महाकाव्यो की कथा से कही अधिक बडी है। किन्तु कथा एव उसमे निहित वर्णनो को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि कवि पद्मगुप्त प्रबन्ध काव्य की इतिवृत्त निर्वाहकता मे कवि कालिदास की तरह सफल नहीं कहे जा सकते। इसमे भी इतिवृत्त और प्रासंगिक वर्णनो का सन्तुलन रखने मे ध्यान कम दिया गया है। प्रथम सर्ग, द्वितीय सर्ग, षष्ठ सर्ग, सप्तम सर्ग, द्वादश सर्ग और पञ्चदश सर्ग आदि की नियोजना ने इतिवृत्त की गति मे बाधा उपस्थित की है।

जैसे प्रथम और द्वितीय सर्ग अनपेक्षित रूप से कुछ विस्तृत हो गये हैं। वीररस पूर्ण इतिवृत्त मे अप्रासगिक श्रृंगार लीलाओ का विस्तार कुछ खटकता है। साथ ही नायक की इष्ट प्राप्ति के लिये अपेक्षित गतिशीलता एवं क्रियाशीलता मे मथरता आ जाती है।

---

१. नवसाहसाक-चरितम् सर्ग ९, ४३, ४४
२. वही सर्ग १०, श्लोक ४६, ४८
३. वही सर्ग ११, श्लोक २८, २९

ऐतिहासिक आधार—

प्रस्तुत काव्य में, अद्‌भुत वातावरण की सृष्टि ने उसमें निहित ऐतिहासिकता को आक्रान्त-सा कर दिया है। जैसे—राजा का पातालगमन, नर्मदा नदी द्वारा स्त्री रूप में (मानवीकरण), राजा का स्वागत, रत्नचूड़ और शशिखंड का क्रमशः शुक और कपि योनि में से मुक्त होना और आकाशवाणी (सर्ग ८)। इसके अतिरिक्त नर्मदा प्रवेश करने पर, सिंह, गज, सरित आदि का प्रकट होना और लुप्त होना, और आकाशारोहण आदि के वर्णनो ने काव्य में अलौकिकता की सृष्टि की है और इसीलिये विद्वानो ने इसे रोमाचक महाकाव्य माना है, इसकी विवेचना हम पूर्व कर चुके हैं किन्तु इस काव्य की ऐतिहासिकता प्राय सिद्ध हो चुकी है[1]। जैसे—प्रस्तुत काव्य के १२ वें सर्ग में सिन्धुराज के पूर्ववर्ती समस्त परमारवशी राजाओ का काल-क्रम से वर्णन है, जिसकी सत्यता शिलालेखों में प्रमाणित हो चुकी है। इसके अतिरिक्त डा० बुल्हर ने प्रस्तुत काव्य के 'नागराज' को 'सर्पराज' न मानकर हिन्दुस्तान के नागवशी राजा माना है।

आदान—

पूर्ववर्त्ती कवियो मे कालिदास के काव्यो का जितना सफल अनुकरण इस काव्य मे दृष्टिगोचर होता है उतना अन्य काव्यो मे नही। परिणामत काव्य और इतिहास का समन्वित रूप प्रस्तुत काव्य में दिखाई देता है। साम्यता के कुछ उदाहरण पर्याप्त होगे। रघुवश मे राजा दिलीप के सिर के बाल वनलताओं मे उलझ जाते है, इसी भाव को नवसाहसाक चरित के तृतीय सर्ग में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—कन्दरा मे लगी लताओ ने राजा का कचग्रह कर लिया[2]। प्रस्तुत काव्य का गगावर्णन रघुवश के १३ वे सर्ग के संगम वर्णन की स्मृति दिलाता है।

प्रस्तुत काव्य मे कवि गंगा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है—"गंगा के तटवर्त्ती तमालपक्ति की छाया श्वेत जल मे पड़ने से वह (गगा) ऐसी दिखाई देती है मानो, हरिहरेश्वर की मूर्त्ति हो।"

---

१. संशोधन मुक्तावलि, सर दूसरा पत्र १३८ म० म० वा० वि० मिराशी

२. 'लताप्रतानोद्‌ग्रथितैः स केशैरधिज्यधन्वा विचचार दावम्'। रघु० २-८

"चतुरकृत कचग्रहः स गच्छन् वनलतया परिहासलोलयेव।"

नवसाहसांकचरितम्-सर्ग ३ श्लोक ४

इसी भाव को रघुवंश में इस प्रकार कहा गया है, "कहीं पर कृष्ण सर्प-भूषण भूषित और भस्म लगी शंकर की मूर्ति जैसी गंगा शोभित हो रही है[1]।" इसके अतिरिक्त प्रस्तुत काव्य के १४ वें सर्ग का विमान मे बैठकर आकाशा-रोहण और प्रकृति का निरीक्षण करना आदि रघुवंश के १३ वें सर्ग के वर्णन से साम्य रखता है। यहां भी विमान मे बैठे श्रीरामचन्द्रजी सीता को वन प्रकृति आदि के चित्र दिखाते चलते हैं।

प्रस्तुत काव्य के अष्टादश सर्ग मे, सिन्धुराज को देखने पुरस्त्रियों की त्वरा का वर्णन, कुमारसम्भव और रघुवंश के सप्तम सर्ग में महादेव तथा अज को देखने के लिये लालायित पुरसुन्दरियों के वर्णन से साम्य रखता है। प्रस्तुत काव्य के इस वर्णन मे पुरसुन्दरियो के हाव-भावो के सौन्दर्यों का पर-म्परागत वर्णन है।

प्रस्तुत काव्य मे मेघदूत के अनुकरण पर, शुक को दूत बनाया गया है। जिसके द्वारा नायक शशिप्रभा को अपना सन्देश भेजता है। मेघदूत के सन्देश का भावसाम्य, प्रस्तुत काव्य मे मिलता है। मेघदूत मे यक्ष मेघ के द्वारा अपनी प्रिया को निम्नलिखित सन्देश भेजता है। 'जब विष्णु शेषशैया का त्याग कर उठेंगे तब मेरे शाप का अन्त होगा, अत. शेष बचे हुये चार मास आख मीचकर बिता देना।" उक्त पद्य के इस अश का 'शेष बचे हुये चार मास आख मीचकर बिता देना।' भावसाम्य प्रस्तुत काव्य के दशम सर्ग के ६९ वें श्लोक मे मिलता है। " हे कमलनयने! थोड़ा-सा अल्पकाल किसी भी प्रकार नेत्र बन्द कर बिता लो, मैं शीघ्र ही सुवर्ण कमल लेकर आ रहा हूँ।" उक्त पद्य मे प्रयुक्त "कथञ्चन कालमल्पम् नयने निमील्य।" शब्द, मेघ-

---

१. तटोद्गतप्रांशुतमालराजिच्छायाघनश्यामलितार्धभागा।
मूर्त्तिस्तुषाराचलतुल्यकान्ति उमापति-श्रीधरयोरिवैका॥
नवसाह० सर्ग १४

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव, भस्मांगरागा तनुरीश्वरस्य।
रघुवंश १३ श्लोक ५७

२ शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ,
शेषान्मासान गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा। मेघदूत उत्तर ४७
ब्रूमः क्रियन्तेय कथञ्चन कालमल्पम् अत्राब्जपत्रनयने नयने निमील्य।
हेमाम्बुजं तरुणि तत्तरसाऽपहृत्य देवद्विषोऽयमहमागता यत्यवेहि॥
१०।६९ नवसाहसांकचरितम्

दूत के इन शब्दों से 'शेषान्मसान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।" कहीं अधिक विवशता एवं हृदय विह्वलता के द्योतक है।

बाण की कादम्बरी के श्लोक का भाव "जिसके घर में सम्पूर्ण वाङ्मय का अभ्यास किये हुए, पिंजड़ों मे स्थित सारिकाओं और शुकों के द्वारा टोके जाते हुये, अतएव पद-पद पर शंकित ब्रह्मचारी यजुर्वेद और सामवेद का गान करते थे। प्रस्तुत काव्य के एकादश सर्ग मे इस भाव का साम्य है। "शुक, सारिका के साथ सामगायन के शंकित स्वर पर, कलह करता है[1]।" इसके अतिरिक्त प्रस्तुत काव्य पर कादम्बरी जैसी कथा—आख्यात्मक ग्रन्थों का प्रभाव भी लक्षित होता है, जो इस काव्य के प्राचीन कविवर्णन, कवि की शालीन उक्तियों तथा प्रतिज्ञा आदि मे देखा जा सकता है। उपर्युक्त तत्कालीन कथा-आख्यायिकाओ के प्रभाव को इस प्रकार भी देख सकते हैं। प्रस्तुत काव्य की प्रेमपद्धति, भारतीय प्रेम-पद्धति से पूर्णत. मेल नही खाती। प्रस्तुत काव्य मे साहस दृढता और वीरता आदि का निदर्शन केवल प्रेमोन्माद के रूप मे ही दिखाई देता है, लोक कर्तव्य के रूप में नहीं। आदि कवि ने प्रेम को लोक व्यवहार से कहीं असंपृक्त नहीं दिखाया है। रावणवध केवल प्रेमी के प्रयत्न के फलस्वरूप में नही दिखाई देता है, लोकरक्षण व पृथ्वी का भार हल्का करने के रूप मे दिखाई देता है। इस काव्य के अनन्तर एकांतिक प्रेम कहानी का निदर्शन हमें नैषधीय चरित जैसे महाकाव्य मे मिलता है। इसके स्त्रोत्र के विषय मे हमने पौराणिक शैली के महाकाव्यो के विवेचनान्तर्गत विचार कर लिया है।

रसभावाभिव्यक्ति—

'नवसाहसाक चरित' काव्य का अगी रस वीर है और शृंगार इस का अंग, किन्तु इस अग ने पूर्व काव्यो की परम्परानुसार, अगी को, पर्याप्त रूप से आक्रान्त करने का प्रयत्न किया है। शृङ्गार अपने दोनो अगो से (सयोग और वियोग) उपस्थित है। इस काव्य मे शृगार का वियोगपक्ष प्रथम आया है और सम्भोग पक्ष का अवसर आने पर काव्य समाप्त हो जाता है।

---

१. जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयै. ससारिकै पंजरवर्तिभि शुकै।
निगृह्यमाणा बटव पदे पदे यजूषि सामानि च यस्य शंकिता॥
बाण-कादम्बरी कथामुख श्लोक १२

"अनया साम गायन्त्या स्वरसशयवानयम्।
इत करोति कलहं शुक सारिकया समम्॥
नवसाहसाक सर्ग ११ श्लोक २१

प्रस्तुत काव्य का प्रारम्भ सिन्धुराज शशिप्रभा के पूर्वराग या प्रेम से होता है। संस्कृत साहित्य के समस्त प्रेमाख्यानो वाले काव्यों में वर्णित प्रेम कुछ निश्चित प्रकारों मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम प्रकार में आदि-कवि द्वारा वर्णित राम सीता का प्रेम आता है, जो विवाहोपरान्त अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे प्रारम्भ होता है और जीवन की विकट परिस्थितियों में निखर कर सामने आता है। परिणामत. इसमे विलासिता और कामुकता के कालुष्य के स्थान पर, सात्विक प्रेम के सुख की शुद्धता और निर्मलता ही मिलती है।

दूसरे प्रकार मे गान्धर्व विवाह के प्रसंग आते हैं जिनमें नायक-नायिका अकस्मात् मिल जाते हैं। दोनो मे वासनाजन्य नयनानुराग उत्पन्न होता है। फिर जिस तेजी से प्राप्ति के लिये विकलता आती है, विवाहोपरान्त उतनी ही तेजी से वह समाप्त हो जाती है।

तीसरे प्रकार मे, अन्त.पुर मे पनपने वाला भोग-विलास का वह चित्र आता है जो कर्पूरमञ्जरी, प्रियदर्शिका और रत्नावली आदि मे देखने को मिलता है।

चौथे प्रकार मे वह प्रेम आता है जो गुणश्रवण, चित्रदर्शन, स्वप्नदर्शन आदि के माध्यम से उत्पन्न होता है। फिर प्राप्ति के लिये प्रयत्न होता है। ऊषा-अनिरुद्ध का प्रेम इसी के अन्तर्गत आता है।

प्रस्तुत काव्य मे चौथे प्रकार का प्रेम वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में, नायक राजा 'पाटला' को दूर से आतो देखता है। उसे देख राजा विविध प्रकार से उसके गतिशील रूप सौन्दर्य का वर्णन कर अपने हृदय की द्वन्द्वावस्था द्योतित करता है।

पाचवे सर्ग में 'पाटला' के द्वारा शशिप्रभा के रूपसौन्दर्य का वर्णन किया गया है। यही गुण श्रवण से राजा के हृदय मे पूर्वानुराग उत्पन्न होता है।

६ ठे सर्ग मे 'माल्यवती' द्वारा राजा के पूर्व चरित्र का वर्णन व उसके चित्र का अकन किया जाता है। इसी सर्ग मे नायिका का विरहवर्णन है। चित्रदर्शन द्वारा उत्पन्न पूर्वराग की ओर सकेत कर दिया गया है।

७ वें सर्ग में राजा शशिप्रभा को देखता है। शशिप्रभा की सखियो की विनोदपूर्ण उक्तियां उद्दीपन के अन्तर्गत आती है, इसी मे शशिप्रभा के रूप-सौन्दर्य हाव-भाव-चेष्टाओ का हृदयग्राही वर्णन किया गया है[1]।

---

१. सर्ग ७, श्लोक ३६-४३ तक व ८०

सप्तम सर्ग का नायक-नायिका का मिलन व परस्परावलोकन संयोग-वर्णन के अन्तर्गत आता है। दशम सर्ग में राजा शशिप्रभा को शुक के द्वारा सन्देश भेजता है। द्वादश सर्ग में, राजा शशिप्रभा को स्वप्न में देखता है। षोडश सर्ग मे, शशिप्रभा राजा को सखि के द्वारा अपनी विरहजन्य करुण दशा की सूचना देती है। षोडशसर्ग के ४६ वें श्लोक मे शशिप्रभा राजा को शीघ्र आने के लिये आग्रह करती है। और ४८ वें श्लोक में राजा ने अपनी दशा को सूचित कर तुल्यानुराग सूचित किया है।

यहाँ उल्लेख्य यह है कि विरह की व्याकुलता और असह्य वेदना स्त्रियों के हिस्से मे ही अधिक दिखाई गई है। प्रेम की वेग की मात्रा जितनी स्त्रियो में दिखाई जाती है, उतनी पुरुषों मे नही। वस्तुत स्त्रियों की शृङ्गार चेष्टाओ और उनके हाव-भावो के वर्णन करने मे कवियो को जो हृदयाल्हाद होता है वह पुरुषो की दशा वर्णन करने मे नही। प्रस्तुत काव्य के श्रृंगार मे मानसिक पक्ष प्रधान है, शारीरिक गौण है। नायक-नायिका के चुम्बन, आलिंगन के वर्णन मे कवि ने रुचि प्रदर्शित नही की है। केवल मन के उल्लास और वेदना का कथन अधिक किया है। प्रयत्न नायक की ओर से है और मार्ग मे आने वाली कठिनता के द्वारा कवि ने नायक के प्रेम की मात्रा व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत काव्य मे नायक नायिका का, तुल्यानुराग व्यक्त किया है। राजा शशिप्रभा को देखने के पश्चात् नर्मदा नदी के द्वारा प्रदर्शित मार्ग से जाता तथा अनेक कठिनाइयो को झेलता, प्रतिज्ञा की पूर्त्ति कर, शशिप्रभा को विवाह रूप मे प्राप्त करता है। उधर शशिप्रभा भी राजा की वियोगाग्नि मे जलती हुई न प्रवालशय्या पर और न इन्दुमणि से निर्मित पर्यंक पर शान्ति प्राप्त करती है[1]। जो शान्ति उसे राजा के प्रेम की कथा से और उनके गुणानुवाद से मिलती है वह हरिचन्दन के लेप से नहीं[2]। वह मुग्धा तो, दीप की दग्ध-शिखा की दशा को प्राप्त हुई है, जो स्मरानिल के स्पर्श से ही इधर-उधर कंपित होती है[3]।

---

१ नेयं प्रवालशय्याया नापि प्रालेयवेश्मनि।
न चेन्दुमणिपर्यंके सखी निर्वृतिमेति न ॥ सर्ग १६ श्लोक २९

२. धृतया हृदि वालेयं वितीर्णहरिचन्दने।
निर्वाणमेति भवत कथया न जलार्द्रया ॥ १६।३४

३. एषा शिखेव दीपस्य मुग्धा दग्धदशाश्रया।
स्मरानिलपरामर्शादितश्चेतश्च वेपते ॥ १६।३७ नवसाहसांकचरितम्।

अन्त में नायक को कहा गया है कि आप हेमपंकज लेकर शीघ्र आएं, जबतक शशिप्रभा जीवित है [1]।

शृङ्गार के अतिरिक्त अन्य रसों की ओर कवि का ध्यान नहीं गया है। अष्टादशसर्ग की हाटकेश्वर स्तुति (१६–२३) में भक्तिभाव की छटा दिखाई देती है।

वस्तुवर्णन—

प्रस्तुत काव्य में वस्तुवर्णन की ओर कवि का कुछ स्वतन्त्र दृष्टिकोण रहा है, जो काव्यपरम्परा से कुछ भिन्न प्रकार का दिखाई देता है। १—उज्जयिनी वर्णन (सर्ग–१, श्लोक १७-५७), २—मृगयावर्णन (सर्ग २), ३—नायिकारूप वर्णन (सर्ग ७), ४—आश्रमवर्णन (सर्ग १०, श्लोक १६-३०), ५—अर्बुदाचलवर्णन (सर्ग ११–श्लोक ४९, ६३), वनवर्णन (सर्ग १४, श्लोक २७-७८)। इसी के अन्तर्गत पुष्पावचयवर्णन सम्मिलित है। पुष्पावचय भी पृथ्वी पर न होकर विमान मे बैठे-बैठे हुआ है।

६–गगावर्णन (सर्ग १४, श्लोक ७९-८५), ७–जलक्रीडा वर्णन(सर्ग १५) इसी मे चन्द्रोदय, सुरत-क्रीडा वर्णन है। इसके अतिरिक्त परमार वंश वर्णन (सर्ग ११, श्लोक ७१-९०) किया गया है। उल्लेख्य यह है कि इस काव्य मे कही भी ऋतुवर्णन स्वतन्त्र रूप से नही मिलता। यहा दो एक उदाहरण पर्याप्त होंगे।

उज्जयिनी वर्णन—

कवि नगरजीवन से परिचित ज्ञात होते हैं। पुरीवर्णन में उन्हीं परम्परागत वर्ण्यविषयो या सौन्दर्य निर्माण के साधनो को एकत्र किया गया है। पुरीवर्णन में, सुधा के समान श्वेत भवन [2], मोतियो की माला से सजे हुए विलासिनियों के केलिभवन [3]। नीलमणिनिर्मित राजप्रासाद, [4] कालागुरु कषायित-क्रीडावापी [5], जलपूर्ण परिखा [6] गगनचुम्बी भवनो की उन्नत पताकाएं

---

१. तावदागच्छ वेगेन गृहीत्वा हेमपंकजम्।
अनंगविधुता यावदियं श्वसिति न सखी ४६
नवसाहसाकचरितम्। सर्ग १६-

२. सान्द्रसुधोज्ज्वलगृहाणि सर्ग १-२०

३ प्रालम्बिमुक्ताफलजालकानि।
विलासिनीविभ्रममन्दिराणि······१–२१

४.······नीलाश्मवेश्म···१–२४

५, कपोलकालागुरुपत्रवल्लीकल्मावमम्भो गृहदीर्घिकासु १–४०

६. '' परिखा'''१, १८, १।२४

पद्मराग मणियों से रचितगृहप्रांगण[१], विलासिनियों के भवनों से निकलनेवाले अगुरु धूप के धुएं आदि का वर्णन है[२]। प्रकृति वर्णन की प्रवृत्ति उद्दीपन की है। और वह भी सम्भोग श्रृङ्गार की कवि ने प्रकृति पर मानवोचित श्रृंगारी चेष्टाओं का आरोप बहुत किया है। दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे।

सूर्यास्त की व्यञ्जना करते हुए कवि कहता है (सर्ग १२) कमलिनियों ने अरविन्दरूप हाथो से धृत आतपरूपी वस्त्र को रवि अपने वलित—ऊष्ण हाथों से अपर दिग्वधू के लिये खीच रहा है[३]। आगे अन्धकार की व्यापकता सूचित करते हुये कवि उत्प्रेक्षा करता है—"कमल मे स्थित भ्रमरो की अस्फुट बात-चीत सुनने के लिये ही मानो कमल के पत्रो की सन्धियो मे अन्धकार स्थित है। और कहीं चन्द्रकला को पूर्वदिशा के मुख पर नखक्षत के रूप मे देखा गया है।"

पात्रस्वभाव-चित्रण—

जैसा कि इसके पूर्व अन्य काव्यचर्चा पर, हमने देखा है, कवियो का ध्यान स्वभाव-चित्रण की ओर नही रहा है। मानव प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का प्रमाण प्रस्तुत काव्य में नही मिलता। नायक सिन्धुराज और नायिका शशिप्रभा को हम प्रेमी के रूप में ही देखते हैं। वे अपनी व्यक्तिगत विशेषता का परिचय नही देते। नायक मे कष्टसहिष्णुता, धीरता तथा साहस आदि दीखते हैं, वे सब व्यक्तिगत लक्षण न होकर एक सच्चे आदर्श प्रेमी के लक्षण हैं। लक्षण ग्रन्थकारो के मत के अनुसार नायक के चरित्र मे आदर्श की प्रधानता होने के कारण वह धीरोदात्त नायक है। व्यक्तिगत स्वभाव के विषय मे कवि ने कहा है 'शोभा, प्रताप, यश क्षमा, त्याग, विलास, विनय और गौरव में जिसकी समता न रन्तिदेव कर सकता है और न राजा पृथु और न युधिष्ठिर ही[४]। नायिका शशिप्रभा के स्वभाव का विकास नहीं हुआ है। वह केवल एक प्रेमिका के रूप में चित्रित की गई है।

---

१ यस्या गृहप्रागणपद्मरागरश्मिच्छटापाटलमन्तरिक्षम् १।३६

२ विलासिनीना विलासवेश्मागरुधूपधूमैः १।५३

३. 'अरविन्दकरेण लोहित कमलिन्याधृतमातपांशुकम्।
इदमुष्णकरेण कृष्यते वलितेनापरदिग्वधूम्प्रति ॥
सर्ग १२।२२, ४५, ४९ नवसा० चरि०

४. 'श्रियि पतापे यशसि क्षमायां त्यागे विलासे विनये महिम्नि।
किमन्यदारोहति यस्य साम्यं न रन्तिदेवो न पृथुर्न पार्थः ॥
नवसाह० रि० १।८८

काव्य सौन्दर्य—

कलात्मक दृष्टिकोण में, पद्मगुप्त ने कालिदास की कलाविषयक मान्यताएं स्वीकार की है। प्रस्तुत काव्य में एक स्थान पर कवि ने कहा है कि 'कालिदास की सरस्वती अत्यन्त उज्जवल, प्रसन्न तथा हृदयंगम अलंकारों से सर्वथा विभूषित हैं"[1] इस उक्ति मे कवि ने (पद्मगुप्त)—अपने काव्य गुणो का संकेत कर दिया है। कवि ने प्राय अभिव्यंग्य और अभिव्यंजना की ओर ध्यान रखने का प्रयत्न किया है। पद्मगुप्त की अन्त प्रकृति कवित्व संपन्न होने के कारण इतिहास की नीरसता काव्य मे आने नही पाई है। अभी हमने काव्य गुणो से सम्पन्न सर्गों को देखा ही है, जिनसे उसका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है इस काव्यगुण सम्पन्नता ने ही मम्मट जैसे प्रखर प्रतिभाशाली आचार्य को काव्यप्रकाश मे अलकारो के उदाहरणों के लिये आकर्षित किया है। प्रस्तुत काव्य मे १ उपमा, २ रूपक, ३ उत्प्रेक्षा, ४ समासोक्ति, ५ अनुप्रास, ६ विषम, ७ पर्याय, ८ एकावली ,९ उदात्त, १० परिसख्या, ११ व्यतिरेक, १२ अवगुण, १३ असंगति, १४ श्लेष। आदि अलकार मिलते हैं[2]। यहां दो तीन अलंकारो के उदाहरण पर्याप्त होंगे। यथा विषम अलंकार मम्मट ने विषम, अलंकार के चार प्रकार कहे हैं। इनमें चौथे प्रकार मे, जहां कार्य की क्रिया का कारण की क्रिया से विरुद्ध वर्णन हो वहा विषम अलंकार होता है। (काव्य प्र० उल्लास–१० कारि० १९४)।

"कहा तो शिरीष कुसुम से भी अधिक सुकुमार शरीरवाली यह आयतलोचना सुन्दरी ? और कहा तुषानल से भी अधिक दु सह यह मदनानल (कामज्वर)[3]।

---

१. प्रसादहृद्यालकारैस्तेन मूर्तिरभूष्यत।
अत्युज्ज्वलै कवीन्द्रेण कालिदासेन वागिव॥ सर्ग २-९३

२. उपमा-सर्ग २ श्लो० ५८, ६३ सर्ग ८ श्लोक ४, सर्ग ११ श्लो २६, ५८ सर्ग १४ श्लो० ३१ (२) सर्ग १५ श्लो० ४९ (३) उत्प्रेक्षा सर्ग ८ श्लो० २६ सर्ग १४ श्लो० ३३ (४) समासोक्ति सर्ग १२ श्लो० २२, २६, ५७ सर्ग १४ श्लो० ३५ ५।

(६) विषम सर्ग १ श्लो० ६२, सर्ग १६ श्लो० २८, (७) पर्याय सर्ग ६ श्लो० ६० (८) एकावली सर्ग १ श्लो० ९१ (९) उदात्त सर्ग १ श्लो० ২७ (१०) परिसंख्या सर्ग १ श्लो० ४६ (११) व्यतिरेक सर्ग १ श्लो० २६ (१२) तदगुण सर्ग ११ श्लोक २ (१३) असंगति सर्ग १४ श्लोक ५३ (१४) श्लेष सर्ग ११–१७, ३६ सर्ग १५ श्लोक १८

३ शिरीषादपि मृद्वंगी क्वेयमायतलोचना।
अयं क्व च कुकूलाग्निकर्कशो मदनानलः॥ नवसाहसांक चरितम् १६।२८
विषम अलंकार १९४ कारिका काव्यप्रकाश, दशम उल्लास।

"जहां एक वस्तु का क्रम से अनेक वस्तुओं से सम्बन्ध प्रतिपादित हो अथवा किया जाय 'वहां पर्यायअलंकार होता है'[1]।

"अरी कृशांगी ! प्रथम तो यह राग (लाली और प्रेम) तुम्हारे बिंबाधर मे ही दिखाई देता रहा है और अब तो हे मृगनयी ! इसे तुम्हारे हृदय में स्पष्ट देखा जा सकता है"।

यहा एक ही रागरूप वस्तु की क्रम से ओठ और हृदय मे स्थिति प्रतिपादित की गई है।

प्रस्तुत काव्य की भाषा एव शैली कालिदास की भाषा शैली की अनुसरण करती है। प्रस्तुत काव्य मे वैदर्भीरीति ही सर्वत्र मिलती है। शैली कोमल तथा प्रसाद गुण युक्त है। अन्य काव्यो की अपेक्षा सन्दानितक और कुलक आदि का प्रयोग बहुत कम हुआ है। उल्लेख्य यह है कि प्रस्तुत काव्य का इतिवृत्त पात्रो के कथोपकथन भाषण के द्वारा आगे बढता है। जिससे काव्य में नाटकीयता का समावेश हुआ है। इसके अतिरिक्त भावो के अनुसार छन्दो एवं अलंकारों के औचित्यपूर्ण प्रयोग ने काव्य मे चारुता का समावेश कर दिया है।

छन्द की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य में विशेष छन्दो वैविध्य नही है। प्रत्येक सर्ग मे प्रमुख छन्द इस प्रकार हैं—

प्रथम सर्ग मे उपजाति, इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा (२) द्वितीय सर्ग में पुष्पिताग्रा, मन्दाक्रान्ता, और अनुष्टुप, (३) तृतीय सर्ग मे स्रग्धरा, (४) सर्ग में वंशस्थ और कालधारिणी। (५) पंचम सर्ग में, शिखारणी और मालिनी (६) षष्ठ सर्ग में, प्रहर्षिणी, (७) सप्तम सर्ग में, हरिणी (८) अष्टमसर्ग मे, रथोद्धत्ता (९) नवम सर्ग में, इन्द्रवज्रा व उपजाति हैं (१०) दशम सर्ग में, मजुभाषिणी और शार्दूलविक्रीडित। (११) एकादश सर्ग में, (१२) द्वादश वें सर्ग मे वियोगिनी (१३) त्रयोदश सर्ग मे नाराच और (१५) पंचदश सर्ग में उद्‌गता और छन्द परिवर्तन मे वसन्ततिलक छन्द का प्रयोग किया गया है। कुल बीस छन्दों का प्रयोग किया गया है।

व्युत्पत्ति

प्रस्तुत काव्य को विभिन्न दर्शन शास्त्र के ज्ञान से अलकृत करने का प्रयत्न नही किया गया है।

---

१. एक क्रमेणानेकस्मिन् पर्यायः ,काव्य प्रकाश दशम उल्लास
"बिम्बोष्ठ एव रागस्ते तन्वि पूर्वमदृश्यत।
अधुना हृदयेऽप्येष मृगशावाक्षि ! लक्ष्यते ॥ नवसाहसाक चरित ६,६०

विक्रमांक देवचरित

कवि परिचय—कवि बिल्हण ने काव्य के अन्तिम सर्ग (१८) में अपने जीवन चरित के विषय मे विस्तारपूर्वक लिखा है। उसके प्रपितामह का नाम मुक्तिकलश था। पितामह का राजकलश तथा पिता का ज्येष्ठकलश[2] उनकी माता का नाम नागदेवी था[3] बिल्हण के ज्येष्ठ भ्राता का नाम इष्टराम और कनिष्ठ भ्राता का आनन्द था[4]। आश्रयदाता की खोज में कवि बिल्हण कश्मीर से निकले और मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, काशी आदि अनेक स्थानो से होते हुए, वे दक्षिण भारत के कल्याण नगर चालुक्य वंशीय प्रसिद्ध नृपति विक्रमादित्य षष्ठ (१०७६ ई०–११२७ ई०) के दरबार मे पहुंचे। राजा ने कवि का खूब स्वागत किया। इनके धारा में पहुँचने से पूर्व ही राजा भोज का स्वर्गवास हो चुका था। कवि को देखकर धारा ने खेद प्रकट किया[5]।

काव्यग्रन्थ

कवि ने चालुक्यवंशीय विक्रमादित्य तथा उनके वंश का १८ सर्गों में वर्णन किया है। कवि ने अपने काव्य की उत्कृष्टता के विषय मे संकेत किया है। यद्यपि कुशल महाकवियो के वैदर्भीरीति के असंख्य काव्य भले ही विद्यमान हो, तथापि ध्वनि, अलकार आदि के समावेश से उत्पन्न होने वाली विचित्रता के रहस्य को समझ कर मोहित होनेवाले सहृदय विद्वद्गण, इस विक्रमाक देव चरित नामक काव्य पर विशेष प्रेम या श्रद्धा रखेंगे"। "अन्यत्र कहा है कि रसध्वनि के मार्ग का अवलम्बन करने वाले विद्वान् कवि लोग मेरे काव्य को समझें और अन्य शुक की तरह केवल पाठ करें"[6]।

---

1. E. D G Buhler, Bombay sanskrit Series 1875. 2 Ed. Dr. Mangal deva shastri, Sarasvati bhavana texts series No. 82, 1945

२ विक्रमाकदेव चरित सर्ग १८ श्लोक ७५,७७, ७९

३. वही श्लोक ८०

४ वही श्लोक ८४-८५

५. भोजः क्ष्माभृत्स खलु न खलैस्तस्य साम्यं नरेन्द्रै
स्तत्प्रत्यक्षं किमिति भवता नागत हा हतास्मि।
यस्य, द्वारोड्डुमरशिखरक्रोडपारावताना
नादव्याजादिति सकरुणं व्याजहारेव धारा॥ वही ९६

६. वही सर्ग प्रथम श्लोक १३ व २२

कवि का अपने काव्य विषयक उपर्युक्त मत काव्य की उत्कृष्टता का द्योतक है।

काव्य का कथानक—(विषय)

प्रथम सर्ग—मंगलाचरण, कवि और काव्य की प्रशंसा, आहवमल्ल और उसके पूर्वजों का वर्णन।

द्वितीय सर्ग—चालुक्यों की राजधानी कल्याण का वर्णन।

सन्तान के लिये आहवमल्ल की तपस्या, शंकर का वरप्रदान और सोमदेव का जन्म।

तृतीय सर्ग—विक्रमांक देव का जन्म, उसके बालचरित का वर्णन।

जयसिंह का जन्म और सोमदेव को युवराज पद की प्राप्ति।

चतुर्थ सर्ग—विक्रमांक कृत दिग्विजय, आहवमल्ल की मृत्यु, सोमदेव का राजा होना, विक्रमांक का कल्याण को लौटना, सोमदेव का अन्याय और असच्चरित, अपने छोटे भाई जयसिंह के साथ विक्रमांक का कल्याण त्याग और सोमदेव की सेना का विक्रमांक द्वारा पराजय।

पंचम सर्ग—विक्रमांक का द्रविड, केरल, चोल, आदि देशों को जाना, उनसे कर लेना, द्रविड नरेश की कन्या के साथ तुंगभद्रा के तट पर उसका विवाह।

षष्ठ सर्ग—चोल नरेश की मृत्यु, वेंगि के राजा राजिग की चोल देश पर चढाई। युद्ध मे चोल नरेश के पुत्र की मृत्यु, सोमदेव और वेंगि महीप की विक्रमांक के प्रतिकूल सलाह, विक्रम का उन दोनो के साथ युद्ध, विक्रमांक की विजय, सोमदेव का पकडा जाना, जयसिंह को वनवास प्रदेश की प्राप्ति और विक्रम का कल्याण गमन।

सप्तम सर्ग—वसन्त वर्णन, दोला वर्णन आदि।

अष्टम सर्ग—करहाट नरेश की कन्या चन्द्रलेखा का रूप वर्णन।

नवमसर्ग—चन्द्रलेखा के चिन्तन मे विक्रम की वियोगावस्था, करहाट नरेश के पास दूतप्रेषण, स्वयंवर मे सम्मिलित होना, स्वयंवरा कन्या का वर्णन, उपस्थित राजाओं का वर्णन, और चन्द्रलेखा का विक्रम को माला पहनाना।

दशमसर्ग—वनविहार, जलविहार, और पुष्पावचय।

एकादश सर्ग—सन्ध्या, चन्द्रोदय, चन्द्रोपालम्भ और प्रभात आदि का वर्णन।

द्वादशसर्ग—ग्रीष्म में विक्रम का करहाट से कल्याण को लौटना, नगर-नारियों की चेष्टाओं का वर्णन और ग्रीष्मऋतु के अनुकूल वर्णन।

त्रयोदश सर्ग में वर्षा वर्णन

चतुर्दश सर्ग—शरद्—ऋतु वर्णन, जयसिंह को दूत द्वारा विक्रम का सदुपदेश, जयसिंह का न मानना, दोनों ओर से युद्ध की तैयारी, और सेनाप्रयाण।

पंचदश सर्ग—जयसिंह और विक्रम का युद्ध, जयसिंह का पराजय, युद्ध से पलायन और पकड़ा जाना।

षोडश सर्ग—हेमन्त, शिशिर और मृगया का वर्णन।

सप्तदश सर्ग—विक्रम का दान धर्म, प्रजापालन, तड़ाग, नगर, और मन्दिर आदि का निर्माण, सन्तानोत्पत्ति, चोल नरेश से युद्ध, विक्रम की जीत, कुछ काल तक काञ्ची में रहना और कल्याण गमन।

अष्टादश सर्ग—काश्मीरवर्णन, वहा के राजाओं—अनन्त कलश और हर्ष आदि का वर्णन, कवि के पूर्वजो का तथा स्वयं अपना चरित्र, देश पर्यटन आदि का वर्णन।

उपर्युक्त विषयानुक्रमणिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि कवि ने महाकाव्य के लिये आवश्यक वर्णन प्रसंगो से छोटे से इतिवृत्त को पल्लवित कर यथेष्ट पुष्ट कर दिया है। वस्तुतः काव्यागो के वर्णनो के अभाव मे प्रस्तुत काव्य मे वर्णित विक्रम का चरित अधिक से अधिक ८ सर्गों में समाप्त हो जाता है, किन्तु इस इतिवृत्त के पल्लवीकरण से प्रबन्धात्मकता में पूर्वकाव्यों के अनुसार, बाधा अवश्य उपस्थित हो गई है। यहा तक कि, चतुर्दशसर्ग मे, जब विक्रम जयसिंह की शत्रुता का विचार विमर्श करके युद्धस्थगित करने का प्रयत्न कर रहा था, बाच मे ही अप्रासगिक रूप मे शरद्वर्णन प्रारम्भ होता है जो सर्वथा असामयिक होने से अनुचित है।

ऐतिहासिक आधार

जैसा कि ऊपर कहा है, प्रस्तुत काव्य में कवि ने काव्य के नायक विक्रमांक के वंश का वर्णन करते हुए उसके पिता आहवमल्ल के विषय में संक्षिप्त वर्णन कर नायक के जन्म, उसकी राज्यप्राप्ति और उसके युद्ध आदि मुख्य मुख्य बातों का उल्लेख किया है जो सर्वथा सर डबलू इलियट द्वारा प्रकाशित शिलालेख और दानपात्रों से साम्य रखता है। प्रस्तुत काव्य में वर्णित राजाओं के नाम आदि तो शिलालेखों से मिलते हैं किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ का कर्ता एक कवि होने से तथा ग्रन्थ एक काव्य होने से स्वभावतः ही उसमें इतिहास से भिन्न काव्यत्व ही अधिक मिलता है, क्योंकि कवि का लक्ष्य नायक का आदर्श-

चरित्र चित्रण करना तथा प्रतिनायकों का दुश्चरित वर्णन करना है। जैसे शिलालेखों के अनुसार तैलप ने मालवा के राजा मुञ्ज को पकड़कर उसका वध कर दिया, परन्तु मुञ्ज के अनन्तर वहां के राजा भोज ने उसका बदला तैलप से लिया अर्थात् उसे उसने युद्ध मे मार डाला। कवि विल्हण ने तैलप का मालवा पर चढ़ाई करना नही लिखा और न उसके मारे जाने की सूचना ही दी[१]।

आदान

प्रस्तुत काव्य अपने पूर्ववर्ती रघुवंश महाकाव्य से विशेष प्रभावित है। वस्तुतः कालिदास के भावो तथा वाक्य विन्यास से भी साम्य मिलता है। रघुवंश के षष्ठ सर्ग मे वर्णित स्वयवर वर्णन का अनुकरण हमे विक्रमांकदेव चरित के नवम सर्ग के चन्द्रलेखा के स्वयंवर वर्णन मे मिलता है। जैसे रघुवश के स्वयंवर मे इन्दुमती के साथ उसकी प्रतिहारी सुनन्दा का आना और वहा उपस्थित राजाओ का परिचय देना। विक्रमाकदेव चरित के स्वयवर मे चन्द्रलेखा के साथ उसकी प्रतिहारी का स्वयंवर मे आना और उपस्थित राजाओ का परिचय देना वर्णित है।

रघुवंश के स्वयंवर वर्णन मे—स्वयंवर मे इन्दुमती के आने पर उसे पाने की इच्छा रखनेवाले राजाओ के मनोभाव, उनकी अनेक प्रकार की चेष्टाओं द्वारा वर्णित है। प्रस्तुत काव्य मे भी इसी का अनुसरण किया गया है। जैसे रघुवश मे "वृक्षो के प्रवालो की (पत्तो की) शोभा के समान राजाओं ने अनेक प्रकार की शृंगार चेष्टाएं प्रदर्शित की।" विक्रमाकदेव चरित–"वहा उपस्थित राजाओ ने विचित्र विचित्र प्रकार की चेष्टाएं की[२]।

रघुवंश में "हरिचन्दन का अंगराग लगाये हुए और कन्धों से हार को लम्बा लटकाये हुए, यह पाण्ड्य देश का राजा है":

---

१. Life P 8. H P. O. P 89 D. H. N. I. PP. 857–58
विक्रमाकदेव चरित महाकाव्य की भूमिका से उद्धृत सपादित डा० मंगलदेव शास्त्री पृ० ११

२. "प्रवालशोभा इव पादपाना, शृंगार चेष्टा विविधा बभूवुः।
रघुवश सर्ग ६ श्लोक १२

"तत्रागतानां पृथिवीपतीना—मासन्विचित्राणि विचेष्टितानि ।।
विक्रमांक० सर्ग ९ श्लोक ७५

विक्रमाकदेव चरित में—चन्दन के लेप से शुभ्रवर्णवाला उन्नत देहधारी यह पाण्ड्य नरेश है[1]।

रघुवंश, 'नीतिपूर्वक दूर से लाई हुई लक्ष्मी जैसे प्रतिकूल भाग्यवाले से चली जाती है, वैसे ही इन्दुमती उस सुनन्दा के द्वारा बहुत लुभाने पर भी उस राजा के पास से चली गई।"

विक्रमाकदेव चरित—भाग्यहीन से जिस प्रकार लक्ष्मी दूर हट जाती है उसी प्रकार सद्गुणी होने पर भी उस राजा से वह कन्या दूर हो गई।"[2]

रघुवंश में, "सदा भिन्न भिन्न स्थानों में रहनेवाली लक्ष्मी और सरस्वती दोनों ने इस राजा में अपने रहने के लिये एकही स्थान निश्चित किया है।"

विक्रमांकदेव चरित—"इस नरेश के सौभाग्य की कहा तक मैं प्रशंसा करूँ इसमें लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का एक ही निवासस्थान है"[3]।

राजा के पुरप्रवेश करने पर, पुरसुन्दरियों की राजा को देखने के लिये औत्सुक्यपूर्ण त्वरा, एव उसे देख, कामप्रेरित अनेक चेष्टाओ का वर्णन कालिदास का ही अनुसरण करता है। विक्रमाकदेव चरित में इस प्रकार का वर्णन दो बार किया गया है। एक है षष्ठ सर्ग में विक्रमांकदेव के काञ्चीनगरी में पहुचने पर, (श्लोक ११ से १९ तक) नौ श्लोकों में तथा द्वादश सर्ग मे पुन. विक्रमाकदेव के कल्याण को लौटते समय (श्लोक २ से ३३ तक) ३२ श्लोको में किया गया है।

रघुवश में "इन्दुमती तथा अज को देखने के लिये नागरिक सुन्दरियों की अन्यान्य कार्यो को छोडकर चेष्टाएं हुई"।

---

१. "पाड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्तांगरागो हरिचन्दनेन।
रघुवंश सर्ग ६ श्लोक ६०
श्रीखंडचर्चापरिपाडुरोऽय पाण्ड्यः प्रकामोन्नतचारुदेहः।
विक्रमाकदेवचरित सर्ग ९ श्लो० ११९

२ "तस्मादपावर्तत दूरकृष्टा।
नीत्येव लक्ष्मी. प्रतिकूलदैवात्। रघुवंश सर्ग ६ श्लोक ५८
"तत्रापि साभूद गुणभाजनेऽपि
"पराङ्मुखी श्रीरिव भाग्यहीने। विक्रमा० सर्ग ९ श्लोक १२१

३. निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थ-
मस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च। रघुवंश सर्ग ६ श्लोक २९
'वदामि सौभाग्यगुणं किमस्य
यत्र स्थिते श्रीश्च सरस्वती च। विक्रमांक सर्ग ९ श्लोक १३७

विक्रमांकदेव चरित—'विक्रमांक के पुर प्रवेश के समय हाव भावादि में कुशल स्त्रियो की कामप्रेरित अनेक चेष्टाएँ हुईं"[1]। मृगयावर्णन में भी कालिदास का अनुकरण किया गया है।

रघुवंश—"घोड़े के पास से भी मनोहर पूछ वाले मयूर पर उस राजा ने (दशरथ) बाण नही चलाया (क्योकि) चित्र विचित्र मालाओ से व्याप्त तथा रति में बन्धन खुले हुए प्रिया के केश समूह का उसे स्मरण आ गया। विक्रमांकदेव चरित—

"बहुत निकट आई हुई गर्भिणी हरिणियों पर बाणो को तरकस से खींच करके भी उसने नही छोड़ा, क्योकि सगर्भा कामिनियो की विलास चेष्टाओ का उस उसय उसे स्मरण हुआ[2]।"

इनके अतिरिक्त कालिदास के अन्य भी स्थल देखे जा सकते है[3]। किरातार्जुनीय "बड़े लोगो का यह स्वभाव है जिसके कारण किसी के अभ्युदय को वे सहन नही कर सकते"।

विक्रमांकदेव चरित— "उन्नतात्मा वह राजपुत्र, बालक होते हुए भी तेजस्वियों के अभ्युदय को नहीं सहन कर सकता था[4]।

---

१. बभूवुरित्थं पुरसुन्दरीणा
त्यक्तान्यकार्याणि विचेष्टितानि। रघुवंश सर्ग ७ श्लोक ५
आसन्विलासव्रतदीक्षितानां।
स्मरोपदिष्टानि विचेष्टितानि। विक्रमा० सर्ग १२ श्लोक २

२. "अपि तुरगसमीपादुत्पतन्तंमयूर
न स रुचिरकलापं बाणलक्ष्यीचकार।
सपदि गतमनस्कश्चित्रमाल्यानुकीर्णे
रतिविगलितबन्धे केशपाशे प्रियायाः। रघुवंश सर्ग ९ श्लोक ६७
अपि शरधिविकृष्टप्रच्छिदे कंकपत्रे-
र्निकटमपि न रोहिद्गर्भिणी चक्रवालम्।
स्मरणसरणिमागाद्गर्भभारालसानां
विलसितमबलानां यद्बलाद्भूमिभर्तुः। विक्रमांक सर्ग १६ श्लोक ४५

३. मेघदूत पूर्व मेघ ५७ विक्रमांकदेव सर्ग १ श्लोक ७७

४. प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया।
किरात सर्ग २ श्लोक २१
तेजस्विनामुन्नतिमुन्नतात्मा सेहे न बालोऽपि नरेन्द्रसूनुः विक्रमांक ३–३

रस भावाभिव्यक्ति

प्रस्तुत काव्य का अंगी रस वीर है, जो कवि ने काव्य के मंगलाचरण में ही द्योतित कर दिया है[1]। वीर चार प्रकार के माने गये हैं। (१) दानवीर (२) धर्मवीर (३) युद्धवीर (४) दयावीर। वीरता के ये चारों रूप विक्रमांकदेव में दिखाये गये हैं।

उसके दानवीर और धर्मवीर का रूप सप्तमसर्ग में, समस्त शत्रुओं को परास्त करने के पश्चात् उसके राज्य शासन में दिखाई देता है। उसके राज्य में पवित्र शान्ति ही दिखलाई देने लगी। दुर्भिक्ष और अकाल, मृत्यु का भय जाता रहा। दान में वह कर्ण से भी बढ़ गया[1]। अनेक धर्मशालाओं का निर्माण किया।

युद्धवीर का रूप युद्ध मे और दयावीरता का उसके शत्रुओं—जयकेशि, आलुपेन्द्र, द्रविड और लंकाधीश, ज्येष्ठभाई सोमेश्वर को क्षमा करने में दिखाई देता है।

वीर रस का एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

"विक्रमांकदेव की सेना अहंकार से सम्मुख दौड पड़ी हुई सोमदेव और राजिग की सेनाओ के साथ, ऐसी भिड़ गई जैसे समुद्र का जल सामने से बहकर आते हुए दो विशाल नदो के जलो से मिल जाता है[2]। अङ्ग रूप में शृङ्गार रस है जिसने काव्य मे पर्याप्त स्थान ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त तृतीय सर्ग में वात्सल्य भाव, युद्ध वर्णन में वीभत्स रस की व्यञ्जना और पचम सर्ग मे राजा आहवमल्लदेव की मृत्यु में करुणरस की व्यञ्जना है। प्रस्तुत काव्य में शृङ्गार का विप्रलम्भ पक्ष प्रथम आया है, सम्भोग बाद में विप्रलम्भ चार या पाच प्रकार का माना गया है[3]। जिसका हेतु, पूर्वराग अथवा अभिलाष, मान अथवा ईर्ष्या, प्रवास, करुणा तथा शाप होता है।

---

१. विक्रमांक० १।१ (५) १७.११

२. विक्रमांक वही सर्ग ६ श्लोक ६९
अपरस्तु अभिलाष—विरहेर्ष्या प्रवास-शाप-हेतुक इति-
पंचविध.। काव्यप्रकाश चतुर्थ उल्लास।

३. केचित्तु पूर्वानुराग मानाख्य प्रवास करुणात्मना।
विप्रलम्भविधानोऽयं शृंगार: स्याच्चतुर्विध: ॥
विक्रमांक देव सर्ग ९ श्लोक ६
वही ८

प्रस्तुत काव्य का वियोग अभिलाष अथवा पूर्वराग के रूप का है। यहां उल्लेखनीय यह है कि भारतीय प्रेम पद्धति के विपरीत नायक का नायिका में अनुराग, प्रथम दिखाया गया है। यद्यपि बाद में नायिका का नायक में अनुराग दिखाकर सन्तुलित करने का प्रयत्न किया गया है। यहां पूर्वानुराग इस प्रकार दिखाया गया है—करहाट के राजा की कन्या चन्द्रलेखा के अभूतपूर्व सौन्दर्य का वर्णन विक्रम के कान तक पहुँचा। उसने यह भी सुना कि पार्वती की आज्ञा से वह स्वयंवर करना चाहती है। (नखशिखान्त) कन्या का सौन्दर्य सुनकर विक्रम उसके प्रति आकृष्ट हुआ। अतः उसने एक दूत करहाट भेजा यह जानने के लिये कि चन्द्रलेखा उसे मिल सकती है, या नहीं। उस दूत के लौटने तक विक्रम को असह्य वेदनाएं हुईं। परिणामतः चालुक्य कुलप्रदीप का मुख पीला पड गया[1]। त्रैलोक्य की चिन्ता हरण करने में समर्थ होने पर भी, वह चिन्ता से आन्दोलित हुआ[2] और उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग दुर्बल हो गये[3]।

दूत शीघ्र ही लौटा और उसने समाचार दिया। उसने कहा देव! वह राजकन्या आप के सद्गुणो पर मोहित है। वह जीवलोक को 'त्वन्मय पश्यति'[4] वह भी मनोभव से कृशागी हो चुकी है। उसके पिता का भी आप में अनुराग है[5]। वस्तुत पूर्वराग पूर्णरति नही है। अत इसमें पीला पड़ जाना और पूर्ण वियोगी बन जाना अस्वाभाविक ज्ञात होता है। 'नवसाहसाक चरित' में कम से कम प्रेयसी का दर्शन प्रथम करा दिया गया है, जिससे स्वाभाविकता बनी रहती है, किन्तु प्रस्तुत काव्य में केवल चन्द्रलेखा के नखशिख सौन्दर्य वर्णन को सुनकर एक दम उसके प्रति इतना आकर्षित होना, एक प्रकार से लोभ व्यक्त होता है। इस प्रकार विक्रमाकदेव का चन्द्रलेखा के प्रति अनुराग और चन्द्रलेखा का राजा के प्रति अनुराग कृत्रिम दिखाई देता है। यद्यपि राजा की वियोगजन्य पीडा से उसके अनुराग की मात्रा ही व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है, तथापि इसमें मानसिक

---

१. वही ९।६

२. वही ९।८

३. वही ९।९

४. 'देव तवदाकर्णनमात्रेण सा त्वन्मयं पश्यति जीवलोकम्।
विक्रमांकदेव ९।२८

५. पिता तदीयस्त्वयि सान्द्रराग. किं प्रार्थनाभंगभयान्न वक्ति।
वही ९।३७

पक्ष ही प्रधान है, शारीरिक पक्ष कम। इस प्रकार का वर्णन कथा, आख्या-यिकाओ में वर्णित प्रेमपद्धति के आधार पर ही है।

वस्तुवर्णन—वस्तुवर्णन में चालुक्यों की राजधानी कल्याण नगरी का वर्णन (सर्ग २) विक्रमांक देव की माता के गर्भावस्था के वर्णन (सर्ग २) षडऋतुवर्णन, स्वयंवर वर्णन, सन्ध्या, चन्द्रोदय और प्रभात वर्णन, मृगया वर्णन, चन्द्रलेखा का नखशिख वर्णन, और युद्ध वर्णन आदि। इनमें से कुछ उदाहरण यहां पर्याप्त होंगे।

कल्याण नगरी के वर्णन के अन्तर्गत वहां की कामिनियों के रूप, सौन्दर्य एव विलास का ही प्राय: वर्णन किया गया है।

जिस नगर में रात्रियों में विलास में कम्पित कर्ण के आभूषणों से युक्त स्त्रियों के कपोलस्थलो में चन्द्रमा अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिबिम्ब के व्याज से प्रविष्ट होकर उनके लावण्यामृत का पान करता है[1]।

"जिस नगर में, शंकर के तृतीय नेत्र की अग्नि के दाह को न भूलने वाला काम कमलनयनी कामिनियों के विलासामृत से भरे हुए कुम्भरूपी स्तनद्वय में अपना निवास स्थल बनाकर, उसे एक क्षण के लिये भी नहीं छोडता।" (२।१९)

वसन्तऋतु वर्णन में वही परम्परागत वर्ण्य विषयों को रखा गया है, जैसे दक्षिणानिल का उत्तर दिशा की ओर चलना, सूर्य का उत्तरायण होना, विरहिणियो के लिये ठंडा दक्षिणानिल का भी गरम प्रतीत होना, ललनाओं का कामासक्त होना, कोकिलो का पचमस्वर में बोलना, विकसित पुष्पो से वन की शोभा होना, मानवती स्त्रियो का मान दूर होना, भ्रमरों की गुंजार आदि। किन्तु इस परम्परागत वस्तुवर्णन मे भी कवि की नावीन्य पूर्ण शैली ने एक चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

जैसे, यहां कवि को माधवी लता की कलियों के निर्गम का ही वर्णन अपेक्षित है, किन्तु कवि उसे इस प्रकार रूपक द्वारा प्रस्तुत करता है। "वन की भूमियो की गोद में रहने वाला वसन्त रूपी बालक नये दांत निकलने के समान सुन्दर माधवीलता की कलियों के निकलने से एक अनुपम शोभा को प्राप्त हुआ[2]।

---

१. विक्रमांक० २।४

२. "नवीनदन्तोद्गमसुन्दरेण वासन्तिकाकुड्मलनिर्गमेन।
उत्सङ्गसङ्गीविपिनस्थलीनां बालो वसन्तः किमपि व्यराजत ॥
विक्रमां०—सर्ग ७ श्लोक ३४

सन्ध्यावर्णन—'अरुणवर्ण (अनुरागशील) होकर सूर्य ने अन्य दिशा रूपी स्त्री (पश्चिम दिशा) का मुख चुम्बन किया, इस अनैतिकता को देख बेचारी कमलिनी ने केवल अपने कमलरूपी नेत्र बन्द कर लिये"[१]।

पात्र स्वभाव—

पात्र स्वभाव वर्णन में केवल नायक की स्वभावगत विशेषताओ का ही दिग्दर्शन कराया गया है। नायिका के स्वभावविषयक विशेषताओ का किंचित् वर्णन भी नही मिलता। कवि का लक्ष्य विकृमाकदेव के चरित गायन का ही होने से सम्पूर्ण काव्य मे नायक को आदर्शरूप में स्थित करते हुए लक्षण ग्रन्थो में कहे हुए लक्षणो की पूर्ति करने का प्रयत्न किया गया है।

विक्रमाकदेव और उसके पिता आहवमल्ल की ही प्रशंसा सर्वत्र मिलती है। आचार्यों ने नायक के लिये कहे हुए आवश्यक गुणो से युक्त विकृमाक-देव मे धीरोदात्त नायक के लक्षण भी मिलते हैं[२]।

जैसे नायक वह है जो त्याग भावना से भरा हो, महान् कार्यों का कर्त्ता हो, कुल का महान हो, बुद्धि वैभव से सपन्न हो, रूप, यौवन और उत्साह से युक्त हो, निरन्तर उद्योगशील हो, जनता का स्नेहभाजन हो, तेजस्वी और चतुर तथा सुशील हो। इन गुणो के अतिरिक्त धीरोदात्त के लिये अन्य गुण भी आवश्यक कहे हैं।

आत्मश्लाघा की भावनाओ से रहित, क्षमाशील, अतिगम्भीर दु ख सुख मे प्रकृतिस्थ स्वभावत स्थिर और स्वाभिमानी किन्तु विनीत कहा गया है।

उक्त गुण विकृमाक मे मिलने से वह धीरोदात्त नायक है। यहा हम दो एक गुणो के उदाहरण देखते हैं।

---

१ भानुमानपरदिग्वनितायाश्चुम्बतिस्म मुखमुद्गतरागः।
पद्मिनि किमु करोतु वराकी मिलिताम्बुरुहनेत्रपुटाभूत् ॥
वही सर्ग ११ श्लोक ९

२. "त्यागी कृती कुलीन· सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षेऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता ॥

धीरोदात्त—
अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रत. कथितः। साहित्यदर्पण ३, ३०।३२

जैसे—अविकत्थन—

गौड़, कामरूप, काञ्ची, केरल, मलय, चक्रकोट, द्रविडादि राजाओं को जीतने पर भी कल्याणपुर में लौटने पर कहीं भी विक्रमांक ने अपने पौरुष के विषय मे शब्दोच्चारण नही किया, द्रविडदेश का दूत राजसभा मे आने पर राजा इस प्रकार कहता है —

"इस प्रकार पूर्व प्रकाशित सौजन्य को न जानने वाले मेरे धनुष ने इस राजा के साथ जो कुछ धार्ष्ट्य किया है उस लज्जा से मेरी वाणी कठिनता से निकलती है[1]। इसी प्रकार क्षमावान् है जैसे—

जयकेशी, आलुपेन्द्र, द्रविड, लकानरेश आदि शरणागतों को वह क्षमा करता है। ज्येष्ठ भाई सोमेश्वर को बाँध लेने पर भी—"अपने बड़े भाई सोमदेव को उसका राज्य फिर से लौटा देने की बुद्धि उसे हुई[2]।

इस प्रकार अतिगम्भीरता, महासत्वता, स्थैयता, निगूढभावता, दृढव्रतता आदि के उदाहरण पर्याप्त मिल जाते हैं।

विक्रमाकदेव के अन्य दो भाई सोमेश्वर और जयसिंह को दुश्चरित्र के रूप मे ही वर्णित किया गया है।

काव्य सौन्दर्य—

कवि ने काव्य कलात्मकता के विषय मे अपने विचार प्रस्तुत काव्य मे ही निहित कर दिये हैं। उसने अपने काव्य को ध्वनि, अलंकार आदि के सन्निवेश से उत्पन्न होनेवाली विचित्रता से युक्त कहा है[3] और इस प्रकर्ष को प्राप्त करने मे यदि उसे प्राचीन कवियो की रूढि का त्याग भी करना पड़े तो वह प्रशसनीय है[4]। कवि ने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनो का प्रयोग किया है। किन्तु उल्लेखनीय यह है कि बिल्हण ने अलकारो का प्रयोग अर्थपुष्टि के लिये किया है और अलकार द्वारा शब्दसौन्दर्य बढाने के लिये

---

१. ईदृशी सुजनतामजानता कार्मुकेण मुखरत्वमत्र ते।
यत्कृतं किमपि तेन लज्जया भारती कथमपि प्रवर्तते। ५–५०, ८६

२ "वितरितुमिदमग्रजस्य सर्वंपुनरुपजातमति· सराजपुत्रः। विक्रमांक,६-९१

३. "सहस्रश. सन्तु विशारदाना वैदर्भलीलानिधयः प्रबन्धा.।
तथापि वैचित्र्यरहस्यलुब्धा श्रद्धां विधास्यन्ति सचेतसोऽत्र।
विक्रमांक सर्ग १–१३

४. "प्रौढिप्रकर्षेण पुराणरीतिव्यतिक्रमः श्लाघ्यतमः पदानाम्।
अत्युन्नतिस्फोटितकञ्चुकानि वन्द्यानि कान्ताकुचमण्डलानि॥
वही १।१५

कोई प्रयत्न नही किया है, और इसलिये यमक, मुरज सर्वतोभद्र आदि चित्रबन्धों का कोई प्रयोग नही किया गया है। शब्दालकारों मे वृत्त्यनुप्रास और अर्थालंकारो मे, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, समासोक्ति, काव्यलिङ्ग, निदर्शना, आदि अलंकारों का प्रयोग मिलता है।

मालोपमा का एक उदाहरण—

"एक ही उपमेय के लिये अनेक उपमानो के गुम्फन को मालोपमा कहा जाता है।"

"उसने पिता से रहित उस कल्याणपुर को, हंस से रहित कमलिनी, नीति से रहित राज्यकार्य, कवि से रहित रसास्वाद देने वाली सभा, चन्द्रमा से रहित रात, दान से रहित संपत्ति, और उत्तम काव्य रचना से रहित वाक्पटुता के समान अरमणीय समझा[१]।

उपर्युक्त उदाहरणों से काव्य की सरसता स्पष्ट हो जाती है। प्रस्तुत काव्य मे वैदर्भी रीति है। माधुर्य तथा प्रसाद के सन्निवेश से काव्य मे हृदयाह्लादकता का सर्जन हुआ है। फलतः काव्य की सूक्तियां सहृदयो की जिह्वा पर सदा नाचा करती हैं। उल्लेखनीय यह है कि प्रस्तुत काव्य ऐतिहासिक शैली मे अलंकृत एव पौराणिक काव्य शैली का सन्निवेश करता है, फलत. स्थान स्थान पर अलौकिकता जैसे भगवान् शकर का स्वप्न मे आकर विक्रमाक को युद्ध के लिये आज्ञा देना आकाशवाणी का होना, आदि तथा अलंकृत काव्य के लिये आवश्यक नियमो के अनुसरण ने काव्य की ऐतिहासिकता को काव्य की कल्पना में धूमिलता कर दी है।

जैसे—जयसिंह को इन्द्र ने अपने हाथ से उसके कण्ठ में पारिजात की माला पहना दी[२]। यहा माला पहनाना उनकी मृत्यु का संकेत है। फिर भी इतिहास की अपेक्षित स्पष्ट भाषा नही है। कही कहीं पौराणिक काव्य शैली की तरह पूर्वोक्त भावो की पुनरावृत्ति हुई है[३]।

कवि ने कालिदासादि कवियो के भावो का अनुसरण करते हुए भी उनमें विदग्धतापूर्ण नावीन्य की सृष्टि की है जो पूर्वोक्त उदाहरणो से स्पष्ट है। कवि

---

१. "एकस्यैव बहूपमानोपादाने मालोपमा", काव्यप्रकाश दशमउल्लास
विक्रमाक देव, सर्ग चतुर्थ, श्लोक ९०–९१

२. विक्रमांक सर्ग १ श्लोक ८६

३. वही सर्ग १ श्लोक १५ का भाव सर्ग ८ श्लोक ४५ में
वही सर्ग ३ श्लोक २० का भाव सर्ग ३ श्लोक २२ में
वही सर्ग ३ श्लोक ६९ का भाव सर्ग ५ श्लोक ४७ में

ने पूर्वचर्चित काव्यों की तरह विभिन्न शास्त्रों-दर्शनों की व्युत्पत्ति से प्रस्तुत काव्य को जटिल बनाने का कहीं प्रयत्न नही किया है।

छन्द प्रयोग की दृष्टि से भी विह्लण पूर्व कवियों से भिन्न मार्ग अपनाते हैं। उन्होने अप्रसिद्ध छन्दो का प्रयोग नहीं किया है। छ. सर्ग इन्द्रवज्रा के, तीन वंशस्थ के, दो श्लोक और रथोद्धता के हैं। इसके अतिरिक्त एक मन्दाक्रान्ता मे, एक पुष्पिताग्रा मे और एक स्वागता मे है। शार्दूलविक्रीडित और वसततिलका भी जहां तहां छन्द परिवर्तन मे प्रयुक्त हुए हैं। मालिनी, औपच्छन्दसिक, पृथ्वी, शिखरिणी स्रग्धरा, और हरिणी के भी प्रयोग मिलते हैं। पन्द्रहवें सर्ग मे वैतालीय छन्द का प्रयोग हुआ है।

व्युत्पत्ति—

प्रस्तुत काव्य विभिन्न शास्त्र दर्शन के पाडित्य से आक्रान्त न होने से काठिन्य दोष से मुक्त है। फिर भी कवि ने कुछ शास्त्रो के ज्ञान से इस काव्य को अलकृत किया है। जैसे—

(१) बौद्धदर्शन, (२) ज्योतिष, (३) आयुर्वेद, (४) धर्मशास्त्र, (५) इतिहासपुराण, और (६) कामसूत्र। उल्लेखनीय यह है कि अन्य काव्यो की तरह संभोग वर्णन न होने पर भी मधुपान, जल विहार, पुष्पावचय आदि मे कामिनियों के हाव-भाव-कटाक्ष आदि के चित्र मिलते हैं। चन्द्रलेखा के नखशिख वर्णन मे भी इसका आश्रय लिया गया है।

शून्यवादी बौद्धो का मत प्रस्तुत काव्य मे इस प्रकार मिलता है—

दु ख की बात है कि ये दुष्ट राजा लोग द्वारपालो के रोकने से भीतर किसी का प्रवेश न होने के कारण सम्पूर्ण जगत् को शून्य समझने लगते हैं, क्योंकि प्रकृत्या ये मूर्ख नृपगण इस लोक को छोड़कर परलोक मे जाने पर क्या स्थिति होगी, इसका क्षण भर भी विचार नही करते।[1]

---

१. नो बाह्य न च मानस जागदिदं शून्यं त्वसत्वात्तयो.
नो बंध सुखदु खभाक न च परो जीवो न मोक्षो न मा ॥
शून्यं तत्त्वमदः स्मरन् विगतभीः सोगतमारात् सदा।
नीरे पंकजवत् सृतो विजयतेऽसौ शून्यवादी परम्। १
श्रीपादशास्त्री—द्वादशदर्शन सोपानावलि पंचमं सोपानं प्रथमावृत्ति
१९३८ इन्दौर। पृ० ५७

सकलमपि विदन्ति हत शून्यं क्षितिपतयः प्रतिहारवारणाभिः।
क्षणमपि परलोकचिन्तनात्प्रकृतिजडा यदमी न संरभन्ते।
विक्रमाङ्क० सर्ग ३।३२

धर्मशर्माभ्युदय

कवि परिचय—कविहरिचन्द्र 'नोमक' नामक वंश में उत्पन्न हुये थे। ये जाति के कायस्थ थे[१]। इनके पिता का नाम आर्द्रदेव और माता का नाम 'रथ्यादेवी' था। न इन्होने किसी पूर्ववर्त्ती काव्य का उल्लेख किया है और न उनके पीछे के किसी ग्रन्थकर्ता ने इनका कही उल्लेख किया है, जिससे इनके समय का निर्णय किया जा सके। प्रशस्ति से इनके निवासस्थान का एवं गुरु के नाम का ज्ञान नहीं होता। बाण के हर्षचरित मे उल्लिखित गद्यबन्ध वाले भट्टारकहरिचन्द्र इनसे भिन्न हैं, क्योंकि भट्टारकहरिचन्द्र गद्य के लेखक थे महाकाव्य के नही। इसके अतिरिक्त कर्पूरमञ्जरी की प्रथम जवनिका मे उल्लिखित हरिचन्द्र धर्मशर्माभ्युदय काव्य के कर्त्ता से भी भिन्न ही ज्ञात होते हैं। इनके ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति का समय १२८७ वि० सं० है[५]। अत: इनका समय इसके पूर्व का है। नेमि-निर्वाण काव्य पर धर्मशर्माभ्युदय काव्य का प्रभाव पर्याप्त मात्रा मे है और नेमिनिर्वाण की रचना १२ वी शती के पूर्वार्द्ध में हुई थी, अत प्रस्तुत काव्य का समय १२वी शती होना चाहिये।

काव्यग्रन्थ—

इसमे पन्द्रहवें तीर्थंकर श्री धर्मनाथ का जीवनचरित वर्णित है। इसके २१ सर्ग है। कवि ने अपने काव्य के विषय मे कहा है, दक्ष विद्वानो ने अपने हृदय रूपी निकष पर सैकड़ो बार परीक्षा करके जिसे उत्कृष्ट होने का प्रमाणपत्र दिया, जो विविध उक्तियो, भावो एवं घटना नियोजना के सौन्दर्य से युक्त है वह काव्य रूपी सुवण विद्वानो के कर्णयुगल का आभूषण बने[६]।

काव्य का कथानक—

अन्य विदग्ध काव्यो की तरह इस काव्य का कथानक अत्यन्त स्वल्प है। रत्नपुर नगर मे इक्ष्वाकुवंश का महासेन राजा था[७]। उसकी पटरानी सुव्रता के कोई पुत्र न होने से वह चिन्तित हुआ।

---

१ Ed. pandit Durgaprasad N. S P. Bombay 1933 Kavyamala 8

२ धर्मशर्माभ्युदय ग्रन्थकर्तु: प्रशस्ति –१

३. वही—२

४. वही—३

५. गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज मे प्रकाशित, पाटण के जैन भाण्डारो की सूची।

६. प्रशस्ति। ९

७. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग २ श्लोक १, ३५, ६९.

चारणमुनि के आगमन की सूचना पाकर राजा महासेन रानी के साथ मुनि वन्दना के लिये जाता है और मुनि से पुत्र के अभावजन्य चिन्ता का निवेदन करता है [१]। मुनि राजा को धर्मनाथ तीर्थंकर के पिता होने की सूचना देते हैं।[२] मुनि वचन के अनुसार धर्मनाथ का जन्म होता है।[३] इन्द्रादि देव भगवान की स्तुति करते हैं [४]। वयस्क होने पर भगवान का इन्दुमति के साथ विवाह होता है [५]। राजा महासेन के विरक्त होने पर भगवान धर्मनाथ का राज्याभिषेक होता है।[६] एक समय धर्मनाथ ने रात्रि के समय आकाश से गिरती हुई एक उल्का देखी और उसे देख उनके चित्त में निर्वेद और खेद उत्पन्न हुआ। भगवान ने अपने पुत्र को राज्य सौंप वनकी ओर प्रस्थान किया उन्होंने 'तेला' व्रतपूर्वक दीक्षा ग्रहण की। प्रत्येक देश में विहार करते हुए, सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे विराजमान हो गये, और माघमास की पूर्णिमा के दिन पुष्य नक्षत्र के समय केवल ज्ञान को प्राप्त हुए[७]। अन्त में जीवादि सात तत्वों का उपदेश कर भगवान् ने मोक्षगमन किया[८]।

उपर्युक्त कथा को देखने से स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत काव्य मे यद्यपि रघुवंश के कथाक्रम का अनुसरण किया गया है जैसा कि हम आदान में देखेंगे, तथापि महाकाव्य के लिये अपेक्षित नियमों की पूर्ति करने के प्रयत्न मे रघुवंश की तरह प्रबन्ध काव्य की इतिवृत्त निर्वाहकता का ध्यान नहीं रखा गया है। अप्रासंगिक वर्णनों से ७ या ८ सर्ग के इतिवृत्त को पुष्ट कर २१ सर्गों का कर दिया है।

प्रथम सर्ग मे तो केवल मंगलाचरण, सज्जनप्रशंसा, दुर्जन निन्दा, सत्काव्य के लक्षण, जबू द्वीप का वर्णन, भरत क्षेत्र का वर्णन और रत्नपुर नगरी की विभूति का वर्णन है।

द्वितीय सर्ग में रत्नपुर के राजा महासेन की महामहिमा, महासेन की पटरानी सुव्रता का नखसिख वर्णन है।

---

१. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग २ श्लोक ७६ सर्ग ३ श्लोक ८, ५६
२. वही सर्ग ३ श्लोक ६६
३. वही सर्ग ६ श्लोक १३
४ वही सर्ग ८ श्लोक ४३
५. वही सर्ग १७ श्लोक ८०, १०५
६. वही सर्ग १८ श्लोक ७, ४५
७. वही सर्ग २० श्लोक ३, ९, २८, २९, ५५, ५७
८ वही सर्ग २१ श्लोक ८, ८४

तृतीय सर्ग—राजा का रानी के साथ मुनिवन्दना के लिये गमन।

चतुर्थ सर्ग—मुनिराज द्वारा धर्मनाथ तीर्थंकरके पूर्वभाव का कथन।

पचम सर्ग—महारानी की सेवा के लिये देवियों का आगमन, स्वप्न वर्णन।

षष्ठ सर्ग—रानी की गर्भावस्था, जन्मोत्सव आदि का वर्णन।

सप्तम सर्ग—इन्द्राणी का प्रसूतिगृह से जिन बालक को लाकर इन्द्र को सौंपना और जन्मकल्याणक महोत्सव की तैयारी।

अष्टम सर्ग—भगवान का जन्माभिषेक।

नवमसर्ग—भगवान की बाल लीलाओं का वर्णन। भगवान की युवावस्था का वर्णन और स्वयंवर के लिये प्रस्थान।

दशम सर्ग—मार्ग में प्राप्त विन्ध्यगिरि की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन, नर्मदा नदी का वर्णन और विश्राम के लिये कुबेर द्वारा नगरी की सूचना।

एकादश सर्ग—षट्ऋतु वर्णन।

द्वादश सर्ग—वन वैभव देखने के लिये प्रस्थान तथा वन की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन।

त्रयोदश सर्ग—जलक्रीडा व स्त्रियों के शृगारीविधि का वर्णन।

चतुर्दश सर्ग—संध्यावर्णन, रात्रिवर्णन, चन्द्रोदयवर्णन और स्त्रियों की वेषभूषा का वर्णन है।

पंचदश सर्ग—मद्यपान और सम्भोग शृंगारवर्णन।

षोडशसर्ग—निशावसान, प्रभात वर्णन व दोनों द्वारा भगवान से जागरण के लिये निवेदन और विदर्भ को प्रस्थान।

सप्तदश सर्ग—भगवान धर्मनाथ का स्वयंवर मण्डप मे प्रवेश और इन्दुमती के साथ पाणिग्रहण संस्कार।

अष्टादश सर्ग—भगवान का रत्नपुर मे प्रवेश और उनका राज्याभिषेक।

एकोनविंश सर्ग—सेनापति द्वारा युद्ध वर्णन।

विंश सर्ग—उल्कापतन दर्शन और वैराग्य वर्णन।

एकविंशसर्ग—जीवादि सात तत्वों का उपदेश, धर्म के भेदों का लक्षण, तथा द्वादश व्रतों का वर्णन।

उपर्युक्त विषय क्रम को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत काव्य मे प्रथम सर्ग, द्वितीय सर्ग का कुछ अंश, चतुर्थ, पचम, षष्ठ सप्तम और नवम से षोडश सर्ग तक कथा की गति अवरुद्ध सी रहती है।

कथावस्तु का आधार—

प्रस्तुत काव्य का कथानक आचार्य गुणभद्र के उत्तरपुराण के पर्व ६१ अध्याय १४ (पत्र १७२) से लिया गया है। मूल कथानक इतिवृत्त प्रधान केवल संक्षिप्त है। किन्तु कवि ने प्रधान बातों को मूलतः ही ग्रहण कर उसे अन्य काव्यमय प्रसंगों से पुष्ट कर वर्णित किया है।

जैसे महासेन की रानी सुव्रता का नखशिख वर्णन, प्रकृति वर्णन, जलक्रीड़ा एवं मधुपान आदि।

उनके वैराग्य का कारण उल्कापतन दर्शन ज्यों का त्यों वर्णित है।

आदान

प्रस्तुत काव्य, कथाक्रम वर्ण्यविषय एवं भावों की दृष्टि से तो 'शिशुपाल वध' की अपेक्षा रघुवंश से ही अधिक प्रभावित है। किन्तु शैली की दृष्टि से निश्चित रूप से शिशुपालवध से प्रभावित है।

जैसे—रघुवंश मे कालिदास द्वारा अभिव्यक्त विनय प्रदर्शन के ये भाव—"कवियो के यश पाने की इच्छा करनेवाला, मन्दबुद्धि मे हँसी का पात्र होऊँगा, जैसे कि लंबे पुरुष के हाथ से प्राप्त होने योग्य फल की ओर लोभ से ऊपर उठाया हुआ बौना।" अथवा वाल्मीकि आदि कवियों द्वारा वर्णन किये हुए रामायण प्रबन्धात्मक द्वार वाले सूर्यवंश मे, मणि वेधने वाली सूची विशेष से वेध किये हुये मणि मे सूत्र की तरह मेरी गति है[१]।

धर्मशर्माभ्युदय के इस श्लोक में मिलते हैं—

"अथवा पुराण रचना मे निपुण महामुनियो के वचनो से मेरी भी इसमे गति हो जावेगी, क्योकि सीढ़ियो के द्वारा लघु मनुष्य की भी मनोभिलाषा उन्नत पदार्थ के विषय मे पूर्ण हो जाती है[२]। रघुवंश के दिलीप की तरह यहा भी महासेन पुत्र के न होने से चिन्तित है। अतः दिलीप की तरह महासेन का रानी के साथ मुनिवन्दना के लिये गमन वर्णन,[३] जाते समय राजा, रानी और वन की शोभा का वर्णन, और मुनि के पुत्र के अभावजन्य चिन्ता का निवेदन[४]।

जैसे रघुवंश मे देखने में सुन्दर राजा दिलीप, अद्भुत वस्तुओं को रानी

---

१. रघुवंश सर्ग १ श्लोक ३,४

२. धर्मशर्माभ्युदय—सर्ग १ श्लोक १२

३ रघुवंश सर्ग १ श्लोक ३३,३५,३७,४६ और ६५

४. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग २ श्लोक ६९ सर्ग ३ श्लोक ८,१४,३५ और ४६

सुदक्षिणा को दिखलाते हुये महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचे[1]।

धर्मशर्माभ्युदय मे इस प्रकार प्रिया के लिये वन की सुषमा का वर्णन करता हुआ राजा उपवन के समीप पहुँचा[2]।

प्रस्तुत काव्य के दशम सर्गान्तर्गत विन्ध्यपर्वत वर्णन मे यह भाव—'इधर इस गुफा मे रात्रि के समय जब प्रेमीजन नीवी-बन्धन खोल लजीली स्त्रियों के वस्त्र छीन लेते हैं तब रत्नमय दीपकों पर उनके हस्तकमल के आघात व्यर्थ हो जाते हैं[3]।" उत्तर मेघदूत के इस भाव से साम्य रखता है।

"हे मेघ! जिस समय अलकापुरी मे चञ्चल हाथो वाले कामी प्रियजन नीवी बन्धन खोल लजीली स्त्रियो के वस्त्र छीन लेते हैं उस समय लाल अधरोष्ठवाली वे रमणियाँ रत्नप्रदीपो पर चूर्णमुष्टि फेंककर उन दीपकों को बुझाने का विफल यत्न करती है"।

कुमारसम्भव के हिमालय वर्णन का यह चित्र

"उत्तर दिशा मे देवता स्वरूप हिमालय नामक पर्वतो का राजा पूर्व और पश्चिम समुद्र मे प्रविष्ट होकर पृथ्वी के मानदण्ड की तरह विद्यमान है। प्रस्तुत काव्य में विन्ध्यपर्वत के इस चित्र से सादृश्य रखता है —

"यह पर्वत इस भारतवर्ष मे पूर्व तथा पश्चिम दिशा का विभाग करने के लिये प्रमाणदण्ड का काम करता है और उत्तर तथा दक्षिण दिशा के बीच स्थूल एवं अलघ्यसीमा की भांति स्थित है[4]।"

राजा दिलीप की रानी सुदक्षिणा के शरीर मे वर्णित गर्भ के लक्षण प्रस्तुत काव्य मे राजा महासेन की रानी सुव्रता में भी दिखाई देते हैं[5]।

स्वयंवर वर्णन—

रघुवंश के स्वयंवरवर्णन की छाया प्रस्तुत काव्य में दिखाई देती है। राजा अज स्वयंवर मे जाते समय मार्ग मे नर्मदा नदी के किनारे उपत्यका

---

१. रघुवंश सर्ग १ श्लोक ४७,४८

२, धर्मशर्माभ्युदय सर्ग ३, श्लोक ३५

३. 'प्रणयिनि नवनीवीग्रन्थिमुद्भिद्य लज्जा,
विधुरसुरवधूना मोचयत्यन्तरीयम्
अधरजनिगुहायामत्र रत्नप्रदीपे।
करकुवलयघाता साध्वपार्थीभवन्ति'॥

धर्मशर्मा० सर्ग १० श्लोक ३८ उत्तर मेघदूत ५

४. कुमार सम्भव सर्ग १।१ धर्मशर्माभ्युदय सर्ग १० श्लोक ४७

५. रघुवंश सर्ग ३ श्लोक २ से ९ धर्मशर्माभ्युदय सर्ग ६ श्लोक १ से ११

में सेना सहित विश्राम करता है, यहां भी भगवान् धर्मनाथ स्वयंवर में जाते समय नर्मदा नदी के पास में ही विन्ध्यगिरि की उपत्यका में सेना सहित विश्राम करते हैं[1]।

स्वयंवर मण्डप में कन्या को देखकर राजाओं की अभिलाषाओं को व्यक्त करने वाली अनेक चेष्टायें हुई[2]। जो रघुवंश में १३ से १९ तक सात श्लोकों मे और धर्मशर्माभ्युदय मे २३ से ३१ तक ९ श्लोको में हुई है। इसके पश्चात् रघुवश मे द्वारपालिका सुनन्दा ने इन्दुमती को प्रत्येक राजा का परिचय कराया है और उसी क्रम का अनुसरण करते हुये धर्मशर्माभ्युदय में द्वारपालिका सुभद्रा इन्दुमती को प्रत्येक राजा का परिचय कराती चलती है। स्वयंवर मे उपस्थित प्रधान राजाओ के नाम प्राय: रघुवंश के अनुसार ही हैं जैसे मगध नरेश, पुष्पपुर नरेश, अगदेश नरेश, अवन्तिनरेश, सहस्रार्जुन, शूरसेननरेश, हेमागदनरेश पाण्डयनरेश।

रघुवश और धर्मशर्माभ्युदय मे पाण्डनरेश की भूमि का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

रघुवश मे "जलीय लताओ से वेष्टित सुपारी के वृक्षो वाली छोटी इलायची की लताओ से वेष्टित चन्दन वृक्षो वाली और तमालपत्रो की ऊपरी चादर वाली मलयाचल की भूमि मे निरन्तर रमण करने के लिये प्रसन्न हो[3]।"

धर्मशर्माभ्युदय मे—

"हे तन्वि! तू कबाबचीनी, एलायची, लवली और लौंग के वृक्षों से रमणीय समुद्र के तटवर्ती पर्वतो के उन किनारों पर क्रीड़ा करने की इच्छा कर जिनमे सुपारी के वृक्ष, ताम्बूल की लताओं में लीलापूर्वक अवलम्बित हैं[4]।"

लालायित पुरसुन्दरियों का वर्णन

स्वयवर के पश्चात् धर्मनाथ और इन्दुमती को देखने नगर निवासी लालायित स्त्रियो के हाव भावो को व्यक्त करनेवाली चेष्टाओ का वर्णन, रघुवश मे अज को देखने के लिये एकत्र पुरसुन्दरियों की चेष्टाओ पर ही आधारित है[5]।

उपर्युक्त रूढ़ियो के अतिरिक्त कालिदास के द्वारा रघुवश के नवम सर्ग

---

१ रघुवश सर्ग ५ धर्मशर्माभ्युदय सर्ग ९ तथा १०

२. रघुवंश सर्ग ६ श्लोक १२ धर्मशर्माभ्युदय सर्ग १७, श्लोक २५

३. रघुवश सर्ग ६ श्लोक ६४

४. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग १७।६२

५. वही सर्ग १७ श्लोक ८६ से १०३ तक, रघुवंश—सर्ग ७, श्लोक ६-१०

में परिचालित द्रुतविलम्बित छन्द मे यमकमय वर्णन का अनुसरण प्रस्तुत काव्य के एकादश सर्ग के षड्ऋतुओं के वर्णन में किया गया है[१]।

किरातार्जुनीय—युधिष्ठिर ने भीम को उपदेश करते हुए इस प्रकार कहा—"बिना सम्यक् विचार किये किसी कार्य का आरम्भ, आपत्ति का कारण होता है" उपर्युक्त भाव को हम प्रस्तुत काव्य मे महासेन के धर्मनाथ को किये इस उपदेश में देखते है —

"बिना विचार कार्य करने वाले मनुष्य का नि सन्देह नाश होता है[२]।

शिशुपालवध—प्रस्तुत काव्य के पंचमसर्ग मे आकाश से उतरती हुई देवियों का वर्णन शिशुपालवध के प्रथम सर्ग मे आकाश से उतरते नारदमुनि के वर्णन से प्रभावित है[३]। शिशुपालवध में दर्शकों की सन्देहात्मक व्याकुलता केवल दो श्लोको में व्यक्त की गई है, जबकि धर्मशर्माभ्युदय मे नौ श्लोको मे व्यक्त है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

धर्मशर्माभ्युदय—'प्रथम तो वे देविया आकाश की दीवाल पर कान्तिरूप परदे से ढके हुए अनेक रंगो की शोभा प्रकट कर रही थी फिर कुछ-कुछ आकार के दिखने से तूलिका द्वारा निर्मित चित्र का भ्रम करने लगी थी[४]।

शिशुपालवध—"क्या आकाश मे दो हिस्सो मे बँटे हुये सूर्य बिम्ब का यह दूसरा गोला है ? पर चारो ओर अपने तेज को फैलाने वाला यह ऊपर से नीचे उतर रहा है, इसलिये सूर्य नही हो सकता, क्योकि यह तिरछा गमन करता है और अग्नि भी नही हो सकता क्योकि उसका तेज नीचे से ऊपर जाता है, और यह तो ऊपर से नीचे आ रहा है"[५]।

शिशुपालवध के चतुर्थ सर्ग में भगवान को उत्कण्ठित देख दारुक रैवतक पर्वत का वर्णन करता है। प्रस्तुत काव्य मे भी धर्मनाथ को उत्कण्ठित देख मित्रप्रभाकर विन्ध्यपर्वत का वर्णन करता है[६]।

---

१. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग ११

२ सहसाविदधीत न क्रियामविवेक. परमापदा पदम्। किरात २।३०
असंशयं स्यादविमृश्यकारिणो मणि जिघृक्षोरिव तक्षकात्क्षय.
धर्मशर्माभ्युदय १८।२८

३, धर्मशर्माभ्युदय सर्ग ५, श्लोक २ से १० तक नौ श्लोको मे।
शिशुपालवध सर्ग १ श्लोक २ तथा ३ केवल दो श्लोको मे।

४, धर्मशर्माभ्युदय सर्ग ५।५

५. शिशुपालवध सर्ग १ श्लोक २

६. शिशुपालवध सर्ग ४ श्लोक १९ से ६८ धर्मशर्माभ्युदय सर्ग १० श्लोक १६ से ५०

पर्वत वर्णन के एक दो उदाहरण वस्तुवर्णन के प्रसंग में देंगे।

रसभावाभिव्यक्ति

धर्मशर्माभ्युदय काव्य का अंगी रस शान्त है। और स्थायीभाव शम। आश्रयरूप मे धर्मनाथ है और अनित्यता आकाश से नीचे गिरती हुई उल्का को देखकर सासारिक विषयो की नि सारता का ज्ञान ही इसका आलम्बन विभाव है[१]। लोकोत्तर लोकान्तिक देवों का स्वर्ग से आकर तीक्ष्ण तपश्चरण के लिये प्रोत्साहित करना, उद्दीपन विभाव है, निर्वेद, स्मृति, जीवदया आदि व्यभिचारी भाव हैं[२]।

शृंगार और वीर रस इसके अग हैं। शृङ्गार रस की व्यञ्जना काव्य के २१ सर्गों मे से ८ सर्गों में हुई है जिनमें महासेन की रानी सुव्रता का नखशिख वर्णन[३] रानी के शरीर मे गर्भ के लक्षण[४], ऋतुवर्णन[५] स्त्री पुरुषों की रसाभिव्यक्ति का वर्णन[६] जलक्रीड़ा[७], स्त्रियो की वेषभूषा[८], मद्यपान[९] संभोगवर्णन[१०] और स्वयवर वर्णन[११] आदि हैं।

प्रस्तुत काव्य मे सुव्रता के जंघायुगल का वर्णन इस प्रकार किया है—

"उस सुव्रता के जघायुगल यद्यपि सुवृत्त थे फिर भी स्थूल ऊरुओं का समागम प्राप्त होने से उन्होने रोमशून्यता धारण कर ली थी कि जिससे अनुयायी मनुष्य को भी काम से दुखी करने में न चूकते थे[१२]।

रोमराजि का चित्र—

'उसके उदर पर प्रकट हुई रोमराजि ऐसी शोभित हो रही थी मानो

---

१. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग २० श्लोक ३,९,१०
२. वही सर्ग २० श्लोक २४–२५
३. वही सर्ग २
४ वही सग ६
५. वही सर्ग ११
६. वही सर्ग १२
७. वही सर्ग १३
८. वही सर्ग १४
९, वही सर्ग १५
१०. वही सर्ग १५
११. वही सर्ग १७
१२. वही सर्ग २ श्लोक ४०

नाभि रूपी गहरे सरोवर में गोता लगाने वाले कामदेव के मदोन्मत्त हाथी के गडस्थल से उड़ी हुई भ्रमरो की पंक्ति ही हो।[१]

वीररस की व्यञ्जना

प्रस्तुत काव्य मे केवल शब्दालंकारो के प्रदर्शन करने तथा महाकाव्य के लक्षण की पूर्ति करने के हेतु ही युद्ध प्रसंग की नियोजना की गई है[२]। क्षुद्र राजाओं के साथ भगवान धर्मनाथ का युद्ध सम्भव न होने से उनके सुषेण सेनापति के साथ युद्ध वर्णन किया गया है। और वह भी अप्रत्यक्ष रूप मे एक दूत के मुख से सामाचार श्रवण के रूप मे वर्णित है। युद्ध उसी कथात्मक रूढियो के रूप मे वर्णित है। वीभत्स रस की व्यञ्जना युद्ध प्रसग मे हुई है[३]।

वात्सल्यभाव

वात्सल्यभाव भगवान की बाललीला वर्णन मे पाया जाता है[४]।

भक्तिभाव इन्द्रियों द्वारा की गई भगवान की स्तुति मे है[५]।

वास्तु वर्णन—

प्रस्तुत काव्य मे वस्तुवर्णन इस प्रकार है—

(१) जम्बूद्वीपवर्णन (अ) भरतक्षेत्र का वर्णन (आ) आर्यखण्ड तथा उत्तरकोशल का वर्णन (इ) रत्नपुरनगरवर्णन।

(२) पर्वतवर्णन (क) सुमेरुपर्वत (ख) विन्ध्यगिरिवर्णन (३) नदीवर्णन, (४) रात्रिवर्णन (५) चन्द्रोदयवर्णन (६) प्रभातवर्णन (७) ऋतुवर्णन (८) रूप सौन्दर्यवर्णन (पुरुषरूप और स्त्रीरूप दोनो का वर्णन) किया गया है। (९) विवाह वर्णन (स्वयंवर और भगवान का इन्दुमती के साथ पाणि-ग्रहण संस्कार)

उपर्युक्त रूप सौन्दर्य के अन्तर्गत प्रस्तुत काव्य में स्त्री-नखशिख वर्णन के[६] अतिरिक्त पुरुष के रूप सौन्दर्य मे वासनात्मकता की झलक आ गई है[७]। जैसे एक उदाहरण पर्याप्त होगा —

---

१. वही सर्ग २, श्लोक ४३

२. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग १९ श्लोक ४७ से ९४

३. वही सर्ग १९ श्लोक ७० से ७२

४. वही सर्ग ९ श्लोक ७ से १२ तक

५. वही सर्ग ८ श्लोक ४३ से ५७ तक

६. वही सर्ग २ श्लोक ३९ से ६२ तक

७. वही सर्ग २ श्लोक २

"इस राजा के दिखाते ही शत्रु अहकाररहित हो जाते थे और स्त्रियां काम से पीड़ित हो जाती थीं, शत्रु सवारियां छोड़ देते थे और स्त्रियां लज्जा खो बैठती थीं"।

इसके अतिरिक्त पूर्ववर्ती काव्यो द्वारा प्रस्तुत रूपसौन्दर्य की रूप रेखा के अनुसार ही नायक का रूप सौन्दर्य प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। जैसे समस्त आदर्श-नायक लोक कल्याण की भावना से कर्म करते हैं, यहां भी धर्मनाथ का प्रयत्न लोक कल्याण की ओर ही है, जो देवो के कथन से स्पष्ट है।

"हे देव ! इस समय आप ने समस्त आपत्तियो के मूल को नष्ट करने वाला यह ठीक चिन्तन किया। इस चिन्तन से आपने न केवल अपने को किन्तु समस्त जीवो को भी ससार समुद्र से उद्धृत किया[1]।

उपर्युक्त वासनात्मकता की झलक अन्य क्षेत्रो मे भी देखी जा सकती है। जैसे नगरीवर्णन।

"सुसीमा नामक नगरी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—वनरूपी वस्त्र उस नगरी के नितम्ब तुल्य भूमिका चुम्बन कर रहे थे, पर्वत आदि उन्नत प्रदेश वनरहित होने के कारण अनावृत थे और वायु के वेग से उड़ २ कर फूलों का कुछ कुछ पराग उन पर्वत आदि उन्नत प्रदेशों पर पड़ रहा था जिससे वह नगरी उस लजीली स्त्री की तरह प्रतीत होती थी जिसका कि उत्तरीय वस्त्र ऊपर से खिसक कर नीचे आ गिरा हो, पीनस्तन खुल गये हों और जो वस्त्र द्वारा अपने खुले हुए स्तन आदि को ढंक रही हो[2]।

ऋतु वर्णन मे उद्दीपन रूप ही सामने आता है जो पूर्ववर्ती काव्यो के अनुसार ही है[3]।

पात्रस्वभाव-चित्रण

प्रस्तुतकाव्य का नायक धर्मनाथ हैं जो धीरोदात्त की कोटि में आते है। पूर्ववर्ती काव्यों की तरह स्त्रीपात्रो के नामोल्लेख तथा उनके शारीरिक सौन्दर्य के अतिरिक्त, स्वभावगत कोई चित्र नही मिलता। नायक में स्वयं देवाधिदेवों से नमस्कृत एवं पूजित होने जीवन कल्याण के लिये ही अवतरित होने से, केवल एक ही भावना दृष्टिगत होती है और वह है (पूर्ववर्ती काव्यों

---

१. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग २० श्लोक २५

२. वही सर्ग ४ श्लोक १४

३. वही सर्ग ११

के देवनायकों की तरह) लोक कल्याण की भावना। नायक मानवस्वभाव-स्तर से कहीं अधिक ऊचा होने से उसमे मानवप्रकृति की विभिन्न रेखाएं नही मिलतीं।

काव्य सौन्दर्य-व्युत्पत्ति

प्रस्तुत काव्य विभिन्नशास्त्र और दर्शनों से अलंकृत न होने के कारण काठिन्यदोष से सर्वथा मुक्त है। उल्लेखनीय यह है कि प्रस्तुत काव्य जैन धर्मावलम्बी होने पर भी हिन्दूधर्म, पौराणिक-सन्दर्भों, तथा शास्त्रो का श्रद्धापूर्वक उल्लेख करता है। जैसे स्मृति तथा कौटलीय अर्थशास्त्र के अनुसार राजधर्म वर्णित है [1]। स्मृति प्रोक्त दिवस के अनुसार स्त्रीगमन [2] और मोक्ष प्राप्ति के लिये पुत्र प्राप्ति की आवश्यकता [3]। तथा आत्मा के विषय में चार्वाक या लोकायतमत।

उदाहरण के लिये

जैसे चार्वाकों के मत मे-"भूत चतुष्टय के संयोग से (पृथ्वी अग्नि, जल, और वायु के सयोग से) जीवन उत्पन्न होता है और वही इस शरीर-रूपीयन्त्र का सचालक होता है। देह ही आत्मा है [4]।

"प्रस्तुत काव्य में चार्वाक मत को इस प्रकार कहा है-

"इस शरीर के सिवाय कोई भी आत्मा भिन्न अवयवो मे न तो जन्म के पूर्व प्रवेश करता है और न मृत्यु के पश्चात् ही निकलता है। किन्तु जिस प्रकार गुड, अन्नचूर्ण, पानी, और आवले के सयोग से एक उन्माद पैदा करने

---

१. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग १८ श्लोक १५-४२

२, मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ४८ धर्मशर्मा०-
"फल तथाप्यत्र यथर्तुगामिन सुताह्वयं नोपलभामहे वयम्।
धर्मशर्मा० सर्ग २।६९

३. "अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्राश्चोत्पाद्य धर्मत ।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्॥ मनुस्मृति, अध्याय ६-३९
धमशर्माभ्युदय-चतुर्थपुरुषार्थाय स्पृहयालोर्ममाधुना।
अदर्शनायते मोहान्नन्दनस्याप्यदर्शनम्॥ सर्ग ३।५८

४ अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनलानिलाः।
चतुर्भ्य. खलु भूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते॥ ३
किण्वादिभ्य. समेतेभ्यो द्रव्येभ्यो मदशक्तिवत्
देह स्थौल्यादियोगाच्च स एवात्मा न चापर। ५
सर्वदर्शन संग्रह पृ० ७ वासुदेवशास्त्री अभ्यंकर प्रकाशन, पूना, १९२४

वाली शक्ति उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार पृथ्वी, अग्नि, जल और वायु के संयोग से कोई इस शरीररूपीयन्त्र का संचालक उत्पन्न हो जाता है[१]। वात्स्यायनकामसूत्र के अनुसार सभोग वर्णन,[२] ज्योतिषशास्त्र के अनुसार शुभ नक्षत्रो का उल्लेख,[३] पौराणिक कथाओ का उपमानो के रूप मे अनेक स्थानों पर उपयोग किया गया है[४]। जैसे-ज्योतिष, जैन मत मे—सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र द्विगुणित है। इसका उल्लेख सिद्धान्तशिरोमणि के गोलध्याय मे श्री भास्कराचार्य ने किया है। प्रस्तुत काव्य में इसका, इस प्रकार उल्लेख किया गया है ईस ससार रूपी अधकार के बीच सभी सज्जन एक साथ चतुर्वर्ग के फल को देख सके इसलिये मानो यह द्वीप दो सूर्य और दो चन्द्रमाओं के बहाने चार दीपक धारण करता है'। प्रस्तुत काव्य मे काव्य के बाह्याभ्यन्तर सौन्दर्य की वृद्धि करने के लिये शब्दालंकारो और अर्थालंकारों का नियोजन किया गया है। शब्दालंकारो मे अनुप्रास, यमक, श्लेष और चित्रकाव्य गोमूत्रिकाबन्ध, अर्धभ्रम, सर्वतोभद्र, मुरजबन्ध, षोडशदलपद्मबन्ध चन्द्रबन्ध आदि और प्रतिलोमानुलोमपाद, एकाक्षर, द्वयक्षर, चतुरक्षर, गूढचतुर्थपाद, समुद्गक, निरौष्ठ्य, अतालव्य आदि[५]।

अर्थालंकारो मे–उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, परिसंख्या, व्यतिरेक आदि। श्लेष और परिसंख्यालंकार कवि के प्रिय अलंकार प्रतीत होते हैं।

उदाहरणार्थ परिसंख्यालंकार

'परिसंख्या वह अलकार है जिसमे पूछी गई अथवा न पूछी गई किसी वस्तु का ऐसा प्रतिपादन किया जाय जो अन्त मे अपने समान किसी अन्य वस्तु के निषेध मे परिणत होजाय[६]। इसके चार प्रकार होते हैं— (१)

१. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग ४। ६४–६५

२. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग १५

३ 'द्वौ द्वौ रवीन्दू भगणौ च तद्वदेकान्तरौ तावुदयं व्रजेताम्।
यदब्रुवन्नेवमनम्बराद्या ब्रवीम्यतस्तान्प्रति युक्तियुक्तम् ॥'
वही, सर्ग १ श्लोक ३५

४ वही सर्ग ४ श्लोक ३१, ४३ सर्ग ५ श्लोक ६ सर्ग १८ श्लोक २२.३६

५ चित्रकाव्य—धर्मशर्माभ्युदय सर्ग १९ श्लोक ७८, ८४, ८६, ९४, ९८, ९९, १०१ १०२, १०४

६. किंचित्पृष्टमपृष्ट वा कथितं यत्प्रकल्पते।
तादृगन्यव्यपोहाय परिसंख्या तु सा स्मृता ॥
मम्मट काव्य प्र० उल्लास १०–११९

प्रश्न पूर्विका व्यंग्यव्यवच्छेदा (२) प्रश्न पूर्विका वाच्यव्यवच्छेदा (३) अप्रश्नपूर्विका व्यंग्य व्यवच्छेदा (४) अप्रश्नपूर्विका वाच्यव्यवच्छेदा ।
उपर्युक्त भेदों में से तृतीय प्रकार का एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

"जब राजा महासेन संसार का पालन कर रहे थे तब मलिनाम्बर की स्थिति रात्रि के समय केवल आकाश की थी, अन्यत्र मलिन वस्त्र का सद्भाव नहीं था, द्विजक्षति-दन्तक्षति केवल प्रौढ स्त्री के संभोग में ही थी अन्य ब्राह्मणादि वर्णों अथवा पक्षियो में नही थी। सर्वविनाश सस्तव—सर्वापहारिलोप क्विप् प्रत्यय का ही होता था अन्य किसी का समूल विनाश नही होता था। परमोहसंभव—उत्कृष्ट तर्क का सद्भाव न्याय शास्त्र मे ही होता था अन्यत्र अतिशय मोह का सद्भाव नही था।"[1]

प्रस्तुत काव्य वैदर्भी रीति मे लिखा गया है। भाषा समासबहुला न होने पर भी शब्दालंकारो से अलकृत होने के कारण प्रसाद पूर्ण नहीं है। श्लेष अलंकार के नियोजन से भाषा मे काठिन्य आगया है। किन्तु शब्दसौष्ठव तथा नवीनअर्थकल्पना के लिये प्रस्तुत काव्य का विदग्ध महाकाव्यो मे महत्वपूर्ण स्थान है। प्रस्तुत काव्य मे पौराणिक शैली तथा शास्त्रीय शैली का मिश्रण मिलता है। इस काव्य का लक्ष्य साधु चरित्र के व्याज से जैन धर्म का प्रचार करना है। प्रथम सर्ग मे ही साधुप्रशंसा के पश्चात् जम्बूद्वीप भरतक्षेत्र तथा आर्यखण्ड तथा उत्तर कोशल का वर्णन पौराणिक शैली मे किया गया है। जम्बूद्वीप का वर्णन इस प्रकार प्रारम्भ होता है—

"अथास्ति जम्बूपपद पृथिव्या द्वीपप्रभान्यक्कृतनाकिलोक·।

इस पृथिवी पर अपनी प्रभा के द्वारा स्वर्गलोक को तिरस्कृत करने वाला एक जम्बू द्वीप है।[2]

चतुर्थसर्ग मे मुनिराज द्वारा धर्मनाथ तीर्थंकर के पूर्वजन्म का पुराणो की तरह कथन, और अन्त मे (२१ वे सर्ग मे) जैन धर्म का उपदेश किया गया है। पुराणो की तरह अलौकिक तत्वो का बाहुल्य देव तो मानव की तरह राजा महासेन तथा धर्मनाथ के यहा सेवा के लिये सदा तत्पर रहते हैं—पौराणिक अतिशयोक्ति का समावेश जैसे २० वें सर्ग मे कहा गया है कि 'श्री धर्मनाथ ने समुद्र के वेलावनान्त विशाल राज्य का पाच लाख वर्ष पर्यन्त पालन किया।'[3]

---

१. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग २।३०
२, वही सर्ग १ श्लोक ३२
३ वही सर्ग २० श्लोक १

इन्द्र के आदेश से कुबेर द्वारा आकाश में धर्मनाथ के लिये धर्मसभा का निर्माण[1] जिसका प्रमाण पाच सौ योजन कहा जाता है। शास्त्रीय शैली के तत्व भी (जैसे नखशिखवर्णन, ऋतुवर्णन, संभोगवर्णन, स्वयंवरवर्णन, नगरवर्णन) जो हमने वस्तुवर्णन मे कहे हैं, निहित हैं। प्रस्तुत काव्य में विभिन्न छन्दो का प्रयोग किया गया है, जो संख्या मे कुल २५ हैं। सर्गान्त मे दो या तीन छन्दो से परिवर्तन किया गया है। प्रायः छन्द प्रसिद्ध ही हैं।

उपजाति, मालिनी, वसंत, वंशस्थ, शार्दूलविक्रीडित, द्रुतविलंबित, अनुष्टुप्, शिखरिणी, पृथ्वी, रथोद्धता, हरिणी, मन्दाक्रान्ता, इन्द्रवज्रा, वैश्वदेवी, दोधक, प्रहर्षिणी, प्रमिताक्षरा, वियोगिनी, भुजंगप्रयात, पुष्पिताग्रा, स्वागता, तोटक, सुन्दरी, स्रग्विणी, और शालिनी।

श्रीकण्ठचरित*

कवि परिचय—

कवि मख या मखक ने श्रीकंठचरित नामक महाकाव्य का प्रणयन किया है। मंखक के पिता का नाम विश्ववर्त था। मखक के तीन भाई थे। जो कवि की तरह विद्वान और राजा जयसिंह के मन्त्रिपरिषद् मे थे। कल्हण ने मंखक का राज्य के विदेशमन्त्री रूप मे उल्लेख किया है[2]। मंखक अलकार सर्वस्व के लेखक रुय्यक का शिष्य था[3]। ये गुरुशिष्य कश्मीर के राजा जयसिंह (११२९-५० ई०) के सभापण्डित थे।

कवि—

कवि मंखक के पिता विश्ववर्तन ने एक दिन मंखक के स्वप्न में उक्त काव्य रचना का आदेश दिया[4]। फलत अपने कैलासवासी पिता के आदेश से कवि ने २५ सर्गों मे श्रीकंठचरित का प्रणयन किया[5], जिसमे शिव के द्वारा त्रिपुरनाश का वर्णन किया गया है।

---

१. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग २० श्लोक ६९

* Ed. Durgaprasad and K. P. Parab with comm, of Gonarga (C. 1417-67 A D.)

२. सांधिविग्रहिको मखकाख्योऽलकारसोदर.।

राजतरंगिणी अष्टमस्तरंग ३३५४
पंडित पुस्तकालय काशी, प्रकाशन १९६०

३. तं श्रीरुय्यकमालोक्य स प्रिय गुरुमग्रहीत्।
सौहार्दप्रश्रयरसस्रोतः सभेदमज्जनम्॥ श्रीकंठचरित सर्ग २५ श्लोक ३०

४. श्रीकंठचरित सर्ग ३ श्लोक ७५

५. वही सर्ग ३ श्लोक ७८

काव्य का कथानक—

काव्य का मूल कथानक तो अत्यन्त छोटा है केवल इस कथानक को (शिव के द्वारा त्रिपुरासुर के विनाश का वर्णन) महाकाव्य की परम्परागत रूढि नियमो की पूर्ति के द्वारा पुष्ट किया गया है।

प्रथम सर्ग मे विभिन्न देवो की स्तुति की गई है। द्वितीय सर्ग मे दुर्जन-निन्दा, उनके दोषो का वर्णन, सज्जनो के गुणो का कीर्तन, महाकवि के गुण, और पूर्ववर्ती कवियो मे से मेठ, सुबन्धु, भारवि और बाण का परिचयात्मक नाम निर्देश।

तृतीय सर्ग मे कवि अपने कुटुम्ब और देश का परिचय देता है। साथ ही अपने पिता, तीनों भाइयो (शृङ्गार, भृंग और अलंकार) की योग्यता आदि का परिचय देता है। अन्त मे काव्यप्रणयन के हेतु का सकेत करते हुए सर्ग समाप्त होता है। चतुर्थ और पचम सर्ग मे कथासूत्र का ग्रहण किया जाता है। इसमें नायक और उसके निवासस्थान का परिचयात्मक दीर्घ वर्णन किया गया है।

किन्तु षष्ठ सर्ग से लेकर षोडश (१६) सर्ग तक, महाकाव्य के नियमित वर्ण्य विषयों के सन्निवेश से कथासूत्र टूट जाता है, जैसे वसन्तऋतुवर्णन, (सर्ग ६) दोला क्रीडावर्णन, (७) पुष्पावचयवर्णन (८), जलक्रीडावर्णन, सन्ध्यावर्णन (१०) चन्द्रवर्णन (११), चन्द्रोदय वर्णन (१२), प्रसाधनवर्णन (१३), पान केलिवर्णन (१४), क्रीडावर्णन (१५), प्रभातवर्णन (१६)। सप्तदश सर्ग मे देव, त्रिपुरासुर से पीडित होने से भगवान शकर से अपना कष्ट निवेदन करते हैं। इस स्तुति में वही परम्परागत विभिन्न दर्शन-शास्त्रों के मतो का सन्निवेश कर नायक शकर को सब मे श्रेष्ठतम वर्णित किया जाता है। अष्टादश सर्ग मे देवो का कष्ट सुनकर शकर के गणों मे क्षोभ होता है। रौद्र-रस के अनुभावो का परम्परागत रीत्या वर्णन करने के लिये ही इस सर्ग की नियोजना है। नवदश सर्ग मे शकर सभी देवोसे अपना-अपना पराक्रम दिखाने के लिये आग्रह करते है, किन्तु देव महादेव से ही त्रिपुरों का नाश करने के लिये आग्रह करते हैं और महादेव इस महत्कार्यसम्पादन का भार स्वीकार करते हैं[१]। इसी सर्ग मे दानवो के यहाँ भावी अशुभ घटना के परम्परागत साकेतिक चिह्नो का वर्णन है।

विंश सर्ग मे शंकर के रथ का निर्माण। रथ के अवयव निर्माण रूप मे विभिन्न शक्तियो ने सहयोग दिया है। पौराणिक कल्पनानुसार सूर्य, चन्द्र

१. श्रीकण्ठचरित सर्ग १९ श्लोक ४१

उस रथ के दो चक्र बने[1]। एकविंश सर्ग में शंकर की सेना का प्रयाण। द्वाविंश सर्ग में दैत्यपुरी क्षोभ वर्णन। त्रयोविंशसर्ग में युद्धवर्णन और चतुर्विंशसर्ग मे त्रिपुरदाहवर्णन है।

प्रस्तुत काव्य का अन्तिम २५ वाँ सर्ग दो कारणों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रथम राजदरबार में रहकर राजस्तुति न करना तथा राजस्तुति करने वाले कवियोंकी निन्दा करना[2]। यह तत्कालीन कविकर्म परम्परा में क्रान्ति का सूचक है। द्वितीय तत्कालीन काश्मीरी कवियो का, उनकी विद्वत्ता का, अभिरुचियों का तथा जीवन का एक चित्र उपस्थित करता है। काव्य की पूर्ति होने पर, विद्वानो को काव्य पढ़कर सुनाना तथा काव्य की परीक्षा कराना ही इस राजदरबार मे कवि के प्रविष्ट होनेका हेतु था[3]। परीक्षा में सफल होने पर अन्त मे कवि ने काव्य को भगवान शंकर के चरणारविन्दों में समर्पित किया है[4]।

उपर्युक्त सर्गों मे वर्णित विषयो को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकण्ठचरित महाकाव्य मे भी किरातार्जुनीय, माघ, हरविजय, कप्फिणाभ्युदय आदि महाकाव्यो की तरह प्रबन्धात्मकता के निर्वाह का ध्यान नही दिया गया है। चतुर्थ और पचम सर्ग मे इतिवृत्त प्रारम्भ होने पर, वही दीर्घकाल के लिये रुद्ध हो जाता है (षष्ठसर्ग से षोडश सर्ग तक) सप्तदश सर्ग से जैसा तैसा अग्रसर होता है। उपर्युक्त ११ सर्गों मे कवि ने अपने कामशास्त्र का पाण्डित्य निदर्शित किया है।

कथा का आधार—

श्रीकण्ठचरित काव्य की मूल कथा का आधार प्रधान रूप से लिंगपुराण है[5] प्रस्तुत काव्य मे त्रिपुरोत्पत्ति की कथा सर्ग १७ में जब सभी देवगण शंकर से त्रिपुरासुरो के अधर्मों तथा अत्याचारो से रक्षण करने की याचना करने गये थे, मिलती है। दोनो मे (लिंगपुराण. व काव्य) त्रिपुरों के नाम,(विद्युन्माली, तारकाक्ष और कमलाक्ष) उनकी घोर तपस्या, वरयाचना, वर रूप मे सर्वदा सर्वभूतो से अवध्यत्व मांगना, और यह अमरत्व न मिलने पर, युद्ध

---

१. वही सर्ग २५ श्लोक ५,७,८

२ सर्ग २५ श्लोक ८

३ वही श्लोक १६,१८

४. वही श्लोक १५२, सर्ग २५ श्लोक १५२

५. लिंग पुराण—पूर्वार्ध अध्याय ७१-७२

में शत्रु के एक ही बाण से एक साथ मृत्यु की मांग, विश्वकर्मा के पुत्र मय के द्वारा त्रिपुरों का काञ्चन, रजत और आयस से निर्माण, प्रत्येक पुरी को अलग-अलग स्वामित्व में रखना (पाताल में निर्मित पुरीका स्वामी तारकाक्ष, आकाश मे निर्मित पुरी का स्वामी कमलाक्ष और पृथ्वी पर निर्मित पुरी का विद्युन्माली बनाया गया था) । उनके द्वारा अधर्म और अत्याचार होने पर देवो द्वारा शंकर की प्रार्थना, उनके विनाश के लिये सम्पूर्ण स्थावर-जगम, वेद, सूर्य, चन्द्र, दिशाएं" गृह, सिद्ध, काल और देवगण आदि के द्वारा रथ का निर्माण । ब्रह्मदेव का सारथी बनना, विष्णु, चन्द्र, अग्नि को बाण रूप मे बनाना, और निश्चित समय पर त्रिपुरो के एकत्र होने पर, शकर का उन पर बाण चलाना तथा उनका विनाश करना आदि वर्णन समान है ।

किन्तु प्रस्तुत काव्य में लिंग पुराणोक्त कथा से थोड़ी सी भिन्नता भी मिलती है जैसे लिंग पुराण में किसी पुरी का पाताल में निर्माण नहीं किया गया है ।

काचनपुरी द्युलोक मे, रजतपुरी अन्तरिक्ष मे तथा आयस पुरी भूमि पर थी, वर्णित किया गया है । जब कि प्रस्तुत काव्य मे आकाश, पृथ्वी और पाताल का वर्णन है[१] । हेमपुरी का निर्माण पाताल मे रजतपुरी का निर्माण आकाश मे और आयसपुरी का निर्माण पृथ्वी पर कहा गया है ।

शिवपुराण के अनुसार त्रिपुरो का विनाश पश्चिम समुद्र में होता है । प्रस्तुत काव्य मे इसी का अनुसरण किया गया है ।

शिवपुराण—"इस प्रकार पश्चिम समुद्र पर स्थित त्रिपुर पर महादेव का रथ आया" और अन्त मे कहा गया है कि "वे सब दैत्य समुद्र में गिरकर नष्ट हुए[२] ।"

---

१ 'काचनं दिवि तत्रासीदन्तरीक्षे च राजतम् ।
आयसचाभवद् भूमौ पु॰ तेषा महात्मनाम् ॥
१९ लिगपुराण अध्याय ७१ पूर्वार्ध ।
सर्ग–१७, श्लोक ५९.६०,६१ श्रीकठचरित ।

२ "अथाभ्ययात् पश्चिमसागरस्य । मूर्ध्नि स्थितं तत् त्रिपुर रथोऽसौ ।
शिवपुराण अध्याय ५३ सनत्कुमारसहिता ।
पेतु समुद्रे बलविप्रयुक्ता । दैत्याम् समुद्रे पतितान् प्रणष्टान् ।। वही ५६

श्रीकण्ठचरित मे कहा गया है कि "शंकर के अग्नि-बाण ने पश्चिम समुद्र मे दैत्य लोगो को फेंक दिया।" और आगे पुन. कहा है—"अपने दुःसह खड्गो से त्रैलोक्य को ताप देकर पश्चिम समुद्र मे जाते समय।" आदि[1]।

आदान—

कालिदासोत्तर कालीन महाकाव्यों की चमत्कार एव अलंकारप्रियता ने कालिदास की रसपूर्ण शैली को एकदम भुला दिया। अब नाना शास्त्रो के ज्ञान से, अनुप्रास, चित्र, यमक श्लेषादि शब्दालकारों से एव विविध छन्दों के प्रयोग से महाकाव्य के सूक्ष्म कथानक को पुष्ट करना ही श्रेष्ठ समझा जाने लगा[2]। उल्लेखनीय यहा यह है कि श्रीकण्ठचरितकार प्रचलितकाव्यविचार धारा को आत्मसात् करते हुए भी—कालिदास की रसपूर्ण प्रासादिक शैली को भी नही भूला है। श्रीकण्ठचरित पर कुमारसम्भव, रघुवंश आदि काव्यों का प्रभाव दृग्गोचर होता है।

कुमारसम्भव मे तारकासुर से पीड़ित होकर देवगण जैसे ब्रह्माजी के पास गये और उनकी स्तुति की, स्तुति से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी का, देवो को उनके पौरुष का परिचय देते हुए म्लानकान्ति का कारण पूछना, आदि वैसा ही क्रम श्रीकण्ठचरित मे शंकर को देवो की स्तुति तथा शंकर के द्वारा पूछे गये प्रश्नो मे मिलता है। एक उदाहृण पर्याप्त होगा—

कुमारसम्भव मे—ब्रह्माजी देवो से पूछते हैं—"ओस के गिरने से नक्षत्र जैसे मन्दकान्ति हो जाते है, ऐसे ही आप लोगो के मुख पहिले जैसी स्वाभाविक कान्ति को नही धारण करते, इसका क्या कारण है?"

श्रीकण्ठचरित मे महादेव देवो को कहते हैं "मुखों की कान्ति से स्पष्ट

---

१. "प्रत्यक्सिन्धौ स्मरविदिषुणा क्षिप्यमाण. प्रदीप्तै"।

३६ श्लोक श्रीकण्ठचरित सर्ग २४।

"नीत्वा ताप त्रिजगदसकृद् सहैर्मण्डलाग्रै-

रस्तंयान्त· पयसि जलधेस्ते त्रयस्तत्र शूराः॥" वही ३७।

२ "यातास्ते रससारसंग्रहविधि निष्पीड्य निष्पीड्य ये

वाक्तत्वेक्षुलता पुरा कतिपये तत्वस्पृशश्चक्रिरे।

जायन्तेऽद्य यथायथं तु कवयस्ते तत्र सन्तन्वते

ये नुप्रासकठोरचित्रयमकश्लेषादिशल्कोच्चयम्।

४२ श्रीकण्ठचरित सर्ग २।

होता है कि आपका धैर्य समाप्त हो चुका है। प्रातःकालीन चन्द्र के तुल्य नष्ट कान्ति आपके कष्टों को भी व्यक्त करती है[1]!"

जैसा कि विदग्ध महाकाव्यों की विशेषताओं में चर्चा की है कि नायक (देव) को, विभिन्न दर्शन-शास्त्रों के द्वारा श्रेष्ठ प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया गया है। इसी क्रम का अनुसरण कर, तथा कालिदासोक्त संक्षिप्त स्तुति क्रम को श्रीकण्ठचरित मे विभिन्न दर्शन शास्त्रों द्वारा दीर्घ कर दिया गया है।

रघुवंश के त्रयोदश सर्ग मे कालिदास ने गंगा, यमुना के संगम वर्णन के लिये वृक्ष की छाया मे छिटकी शबलित चांदनी की उपमा दी है। इसी भाव को प्रस्तुत काव्य मे इस प्रकार कहा गया है। "उदित चन्द्रमा का प्रकाश जो अन्धकार मे फैल रहा था, चन्दन और मृगनाभि रस के संकर के द्वारा स्पष्ट किया गया है[2]।"

माघ के शिशुपाल वध के इस भाव की छाया—

"इस रावण ने धनुष बनाने के लिये यमराज के वाहन भैसे के शृंगो को उखाड़ लिया, इस प्रकार शृंग के भार को हल्का करने पर भी वह महिष लज्जारूपी बड़े भारी बोझ से अत्यन्त नम्र मस्तक को दुःख के साथ वहन करने लगा।"

"श्रीकण्ठचरित मे—"उखाड़े हुए देववृक्षों के स्कन्धरूपी आलानों को दिग्हस्तियों की ग्रीवाये सर्पमय पाशों से बांध दी हैं और उनका मदजल सूख गया है। अब इन हस्तियों पर पृथ्वी का भार न होने पर भी वे लज्जा से अब अपना मस्तक ऊपर नहीं करते[3]?"

---

१. "प्राप्ताना मम सविध विधूतधैर्या चर्यासौ विपुलमुपप्लव व्यनक्ति।
विश्लिष्यन्निजमहसा मुखानि यद्व प्रातस्त्यं रजनिपतिं विडम्बयन्ति॥
श्रीकण्ठचरित सर्ग १७ श्लोक ३५

किमिद द्युतिमात्मीयां न बिभ्रति यथा पुरा।
हिमक्लिष्टप्रकाशानि ज्योतींषीव मुखानि व॥
कुमारसंभव २ श्लोक १९॥

२. रघुवंश सर्ग—१३ श्लोक ५६ श्रीकण्ठचरित सर्ग १० श्लोक ३६।

३ "हृतेऽपि भारे महतस्त्रपाभरादुवाह दुःखेनभृशानतं शिर।
माघ—सर्ग १—श्लोक ५७।

"— — — — — — —स्तेऽपि विश्वंभरा—
भारे व्रीडनिपीडनेन वहते दूरावनम्रं शिरः॥
श्रीकण्ठचरित, सर्ग १७ श्लोक ६५।

इसके अतिरिक्त पुष्पावचयवर्णन, जलक्रीडावर्णन, सन्ध्यावर्णन, चन्द्रोदयवर्णन, प्रसाधन, पान, केलिवर्णन और क्रीडावर्णन आदि के चित्र और नायिकाओं के हाव-भाव, चेष्टाओं के सभी चित्र उत्तरकालीन काव्यों से पर्याप्त मात्रा में सादृश्य रखते हैं। इस प्रसंग के दो-एक उदाहरण धर्मशर्माभ्युदय से आगे देंगे।

हयग्रीववध मे यह भाव "नन्दन वन में पारिजात नामक कल्पवृक्ष की जिन मंजरियों से भाग्यशालिनी देवेन्द्राणी ने अपने केश अलंकृत किये थे, उन मंजरियों को इन (त्रिपुरों के) सैनिक ने तिरस्कार के साथ खींचा।"

प्रस्तुत काव्य के इस भाव से साम्यता रखता है—

देव महादेव से कहते हैं "देवांगनाएँ भूषण निमित्त भी सूर्यकान्तमणियों की ज्वालायें सहन नहीं करती थीं। वे ही अब उन त्रिपुरासुरों के सैनिकों द्वारा पीडित की गई हैं [1]।"

हरविजय की यह उक्ति—"पर्वत प्रदेश मे प्रीतम सूर्य के आलिंगन करने पर विकसित-मुखी कमलिनियां अनुरागवश कामक्रीडासूचक अनिर्वचनीय मधुर आलाप भ्रमरों के गुञ्जारमिष से रात-दिन कुछ कहती रहती हैं।"

प्रस्तुत काव्य की इस उक्ति से साम्य रखती है—

"स्त्रियों के सामने रखे हुए सुवर्णघट, जिनमें आसव भरा हुआ था, मदोन्मत्त की तरह, भ्रमरो के द्वारा कुछ अस्पष्ट शब्द कहने लगे [2]।"

अमरूशतक का यह भाव—

रात्रि मे स्त्री-पुरुषो के द्वारा कहे हुए वचनों (वार्तालाप) को सुनकर, गृह-शुक ने प्रात:काल वृद्धपुरुषों के पास कहना प्रारम्भ किया। प्रस्तुत काव्य के क्रीडावर्णन प्रसंग मे इस उक्ति से साम्यता रखता है—

---

१. स्पृष्टास्ता नन्दने शच्या केशसंभोगलालिताः।
सावज्ञं पारिजातस्य मंजर्यो यस्य सैनिकैः॥

"हयग्रीववध" साहित्यदर्पण में उद्धृत।

श्रीकण्ठचरित–सर्ग १७ श्लोक ६४।

२. "प्रेयांसमर्कमुपकण्ठगतं विकासि। पद्मानन: कटकवर्त्मनि पंकजिन्य:।
रागादिवालिविरुतै: स्मरकेलिगर्भमव्रानिशं किमपि कोमलमालपन्ति।"

हरविजय सर्ग ५ श्लोक ९

श्रीकण्ठचरित सर्ग १४—श्लोक ६

नायक-नायिका के प्रगाढ़ आलिंगन के समय हुए मधुर प्रलापो को गृह-शुक ने, काम रहस्य भेद को, अनुवाद रूप मे प्रातःकाल गुरुओं के सम्मुख स्पष्ट किया[1]।

धर्मशर्माभ्युदय—इस काव्य के मधुपान के कुछ प्रसंग चित्र उदाहरणरूप में पर्याप्त होंगे, जैसे चषक के मधु का पुष्पपराग पड़ा रहने से फूंक २ कर पीना चषक का मधु समाप्त होने पर भी भ्रमवश उसे पीते रहना, और मधु में नेत्रों का प्रतिबिम्ब पड़ना, आदि चित्र श्रीकण्ठचरित के मधुपान के प्रसंग में मिलते हैं[2]।

प्रेरक हेतु—

उपर्युक्त विवेचन से प्रस्तुत काव्य का हेतु स्पष्ट हो जाता है। प्रधान हेतु तो कवि के पिता की आज्ञा है जिसे कवि ने तृतीय सर्ग मे स्पष्ट कर दिया है और इसी के साथ विविधशास्त्र के पाण्डित्य निदर्शन की भावना भी है।

रसभावाभिव्यक्ति—

प्रस्तुत काव्य का अंगीरस वीर है और उसके अंगरूप में है शृङ्गार रस। अन्य रसो की भी योजना की गई है। किन्तु शृंगार ने वीर को आक्रान्त-सा कर दिया है। काव्य के १५ सर्ग तक अध्ययन से तो सहृदय पाठक इसे शृंगार काव्य ही समझने लगता है। यहा वीर रस की व्यञ्जना वीररसात्मक रूढियो का संकेत करती हैं जो चरित काव्यों की विशेषताएं हैं जैसे दोनो पक्षो की सेना का परस्पर वेग से भिड़ना, सैनिको के खड्ग चमकना, सर्वत्र बाणो का छा-जाना, शरो के समुदाय का वीरो के कवचो पर टकरा कर अग्निस्फुलिंगो का चमकना आदि।

जैसा कि पूर्व कहा है शृंगार रस ने इस अंगी रस को अपनी व्यापकता से आक्रान्त कर लिया है। इस दृष्टि से प्रस्तुत काव्य के ऋतुवर्णन, वनविहार, जलविहार, रतिवर्णन और प्रभातवर्णन के अनेक चित्र शृङ्गार रस से लिप्त मिलते हैं। जैसे, चन्द्रोदय मे अभिसारिकाओं का संकेत स्थानो पर जाना, मानिनियो का मान विमोचन, विरहिणियों का चन्द्रोपालम्भ,(सर्ग ११) विरही

---

१. काव्यमाला अमरुशतकम् १६ श्लोक पत्र नम्बर १८

श्रीकण्ठचरितम् सर्ग १५ श्लोक २८

२. धर्मशर्माभ्युदय सर्ग १५ श्लोक ६, ७, ८

श्रीकण्ठचरित सर्ग १४—श्लोक २५, २६, ३१।

स्त्रियों की मानसिक दशा के चित्र (सर्ग १२, २६, ३६) दूती कथन ने नायिकाओं के प्रसाधनवर्णन व शारीरिक सौन्दर्यवर्णन, मधुपान, संभोग-वर्णन, सर्ग १५ (वात्स्यायन कामसूत्र के अनुसार हैं) विपरीतरतिवर्णन (सर्ग १५, ३४-३५) आदि दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे।

"विलासियो ने नायिकाओं का बलात् चुम्बन किया। उनके नेत्र अधिक विकसित हुए और शरीर कांपने लगा, मानो चषकों मे प्रतिबिम्बित चन्द्र को भी मधु के साथ पी जाने के कारण, उनका शरीर कापने लगा था[1]।"

"सुरतकाल मे किसी नायिका ने लज्जाभाव से अलकारों को निकाल रखा था किन्तु उसकी विदग्धता को सूचित करने के लिये हठात् कण्ठनाद हुआ[2]।"

"सुरतक्रीड़ा के समय गण्डोपधान शैया के पास पड़ा था और उन पर मोतियो के हार टूटने से, मोती बिखरे थे। अत. ऐसा प्रतीत होता था कि चन्द्र ने ताराओ के साथ पृथ्वी पर आकर विपरीत सुरतक्रीड़ा की है[3]।

श्रृङ्गार के अतिरिक्त प्रस्तुत काव्य मे रौद्ररस (सर्ग १८), बीभत्सरस (सर्ग २३) और करुणरस (सर्ग १७) की व्यञ्जना हुई है। इन रसों की व्यंजना तो परम्परागत रीत्या ही है। देवताओ के कष्ट निवेदन मे करुणरस की व्यंजना है (सर्ग १६-१७)।

वस्तु वर्णन—वस्तुवर्णन मे कैलासवर्णन, ऋतुवर्णन, समुद्रवर्णन, चन्द्रोदय, प्रभातवर्णन, देशवर्णन, सेनाप्रयाणवर्णन, युद्धवर्णन आदि। ये चित्र अलंकृतरूप मे ही सामने आते हैं।

दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे:—

प्रभात वर्णन—उदयकालीन सूर्य की अरुण प्रभा से सम्पूर्ण आकाश आरक्त हो गया है, ऐसी स्थिति में कवि को सुरा-सुन्दरी के चित्र के अतिरिक्त अन्य चित्र नही दिखाई देता "सूर्योदय से फैलनेवाली गहन लालिमा मद्य है और चन्द्रबिम्ब चषक। कवि कल्पना करता है कि निश्चय से इस रात्रिरूपी नायिका ने तारागणरूपी पुष्प शैया पर, आकाशरूपी प्रागण में आसव रस का पान किया है, अत. प्रात काल होने पर सम्पूर्ण मार्गों मे फैलनेवाली यह लालिमा उस नायिका द्वारा पातित मदिरा ही है[4]।"

---

१. सर्ग १४ श्लोक ५१ श्रीकण्ठचरित।

२ सर्ग १५ श्लोक ३४ वही।

३. सर्ग १५ श्लोक ४४ वही।

४. सर्ग १६ श्लोक १४ वही।

भगवान शंकर की स्तुतिः-

हे भगवन् शंकर ! आप शैया का त्याग करें. पास मे ही क्रीड़ावापियों, में कुमुद पंक्तियां संकुचित हो रही हैं। उनका सकुचित होना ही मानो वे अंजली बांधकर गर्भ में बैठे हुए भ्रमरो की गुञ्जार द्वारा आपकी स्तुति कर रही हैं।"[1]

कैलास पर्वत वर्णनः-

कैलास पर्वत को कवि ने विभिन्न दृष्टिकोणो से देखते हुए उत्प्रेक्षायें की हैं जिनमे दुरारूढ़ कल्पना या अद्भुत चित्रो के अतिरिक्त कोई यथार्थ चित्र सामने नही आता।

"जहां स्फटिक की श्वेत कान्ति से तथा शकर के नील कण्ठ की कान्ति से रात्रि भी दिन की तरह और दिन रात्रि की तरह क्रमश दिखाई देता है[2]।"

"जो बीच-बीच मे मेघों के प्रतिबिम्ब से इस प्रकार शोभित होता है मानो वह कोई प्रशस्तिपट ही है[3]।"

या ऐसा दिखाई देता है—

सूर्य के अग्नितुल्य प्रतिबिम्बो से (ऐसा दिखाई देता है) मानो महादेव द्वारा दग्ध विश्व के पापों की राशि हो[4]।

वस्तुवर्णन में जिन विशेषताओ का हमने शिशुपालवध मे सकेत कर दिया था, उन्हीं को पुन यहा कहना संगत नही होगा।

पात्र स्वभाव—

प्रस्तुत काव्य मे, नायकरूप भगवान शंकर और प्रतिनायक के रूप में त्रिपुरासुर हैं। नायिका पार्वती का केवल नामोल्लेख ही मिलता है। आदर्श नायक लोककल्याण, या दुष्टसंहार की भावना के अतिरिक्त कोई रूप सामने नही आता[5]। वस्तुत. कवि का इस ओर ध्यान है भी नही।

व्युत्पत्ति—

प्रस्तुत काव्य विभिन्न दर्शन तथा शास्त्रो के ज्ञान से अलंकृत है। जैसे मन्त्रशास्त्र, आयुर्वेद, पुराण, ज्योतिष, व्याकरण, कामसूत्र, नाट्यशास्त्र, धर्म-

---

१. श्रीकण्ठचरित सर्ग १६ श्लोक १५।

२ सर्ग ४ श्लोक १२ वही।

३. सर्ग ४ श्लोक २४ वही।

४. सर्ग ४ श्लोक २५ वही।

५. सर्ग २४ श्लोक ३८ वही।

शास्त्र, गीता, सांख्य, न्याय, बौद्धदर्शन, जैनदर्शन, चार्वाकदर्शन, वेदान्त, शैवदर्शन आदि[1]।

इसके पूर्व हमने प्रस्तुत काव्य का कलाविषयक दृष्टिकोण देख लिया है। प्रचलित काव्यधारा को आत्मसात करते हुए भी कालिदासोक्त काव्यधारा की ओर भी ध्यान देने का प्रयत्न किया है फलतः माघ, हरविजय, कप्फिणाभ्युदय, काव्यों (जैसे चित्र-काव्यों) को, (चित्रालंकारों को) प्रस्तुत काव्य में स्थान नहीं मिला है। श्रीकण्ठचरित में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, श्लेष, समासोक्ति, श्लेष, समासोक्ति तद्‌गुण, सन्देह भ्रान्तिमान, अपह्नुति, उल्लेख, दीपक, दृष्टान्तध्वनि, व्यतिरेक, निदर्शना आदि अलंकारों के सुन्दर प्रयोग मिलते हैं। इनमें भी रूपक और उसके प्रभेद समस्त विषय अलंकार का प्रयोग विशेषतः हुआ है।

दो उदाहरण पर्याप्त होंगे

जहां आरोपित अर्थात् उपमान शब्द प्रतिपाद्य रहे वह रूपक 'समस्त वस्तु विषय' कहा जाता है[2]।

चन्द्रोदय में उल्लसित समुद्र की समस्त क्रियाकलापों का वर्णन समस्तवस्तुविषयरूपक अलकार में किया गया है।

"समुद्ररूपी गज ने जिसके उत्ताल लहरों के गम्भीर शब्द को दिक्कुञ्जरों ने सुन लिया है, स्वच्छन्द रीति से जिसने तटरूपी पर्वत पर वप्रक्रीड़ा प्रारम्भ की है, चमकीली चन्द्रकिरणों के प्रकाशरूपी भस्म से जिसका शरीर अलंकृत है। आकाशरूपी तमालवन को नष्ट करने के लिये मद धारण किया है"।

सर्ग—१० श्लो०—५४।

---

१ मन्त्रशास्त्र सर्ग ११, श्लोक ३, आयुर्वेद सर्ग ११, श्लोक ४, सर्ग १७, श्लोक ६३, पुराण सर्ग ११, श्लोक ६१, सर्ग १६ श्लोक ५८, सर्ग २१, श्लोक ३६, सर्ग २४, सर्ग ३६, ज्योतिष सर्ग ११, श्लोक ७२, सर्ग १२, श्लोक ४०, सर्ग १९, श्लोक ५०, सर्ग २१,श्लोक ३६, व्याकरण सर्ग १७, श्लोक २२, सर्ग २१, श्लोक ३२, काममूत्र सर्ग ८,९,१२,१३,१४,१५, नाट्यशास्त्र सर्ग १७, श्लोक ६७, सर्ग १८, श्लोक ५५, सर्ग २४, श्लोक १५, धर्मशास्त्र सर्ग २३, श्लोक ४२, गीता सर्ग २२, श्लोक ५३, साख्य सर्ग १७, श्लोक२०-२१, न्याय सर्ग, १७ श्लोक २३, बौद्धदर्शन सर्ग १७, श्लोक २४-२५, जैनदर्शन सर्ग १७, श्लोक २६, चार्वाक सर्ग, १७ श्लोक २७, वेदान्त सर्ग, १७ श्लोक २८, शैवदर्शन १७।२९

२. समस्त वस्तुविषयं श्रोता आरोपिता यदा। ९३

काव्यप्रकाश दशम उल्लास।

दूसरा उदाहरण—"इस प्रकार भगवत्सेवकों के प्रकोप ने निरन्तर प्रवाहित स्वेद जल से मुखरूपी भूमि पर अभिषिक्त होकर साम्राज्य प्राप्त कर लिया। और द्वार-पाल की तरह उस कपोल की ललिमा ने चंचल भ्रूलतारूपी दंड के द्वारा गडस्थल पर से प्रसन्नता को चतुराई से दूर हटा दिया[1]।" सर्ग १८, श्लोक ६१।

कालिदास के रघुवंश की तरह प्रस्तुत काव्य में भी (सर्ग १२, श्लोक ७५ से ८६) प्रकृति वर्णन में यमक अलंकार का प्रयोग किया गया है।

छन्द की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य पूर्ववर्ती काव्यों से भिन्न प्रकार का है। इस काव्य में २४ छन्दों का प्रयोग मिलता है जो प्रसिद्ध हैं, अप्रसिद्ध छन्दों का प्रयोग नहीं मिलता। छन्द परिवर्तन में कोई विशेष नियम का पालन नहीं किया गया है। प्रत्येक सर्ग मे कई छन्दों के प्रयोग किये गये हैं।

भाषा शैली की दृष्टि से भी प्रस्तुत काव्य कालिदासोत्तरकालीन अल-कृत काव्यों से भिन्न प्रकार का है। इस काव्य मे वैदर्भीरीति है। माधुर्यगुण का समावेश शृंगाररस के लिये किया गया है। वीर रस के प्रसंग मे ओज-गुण की योजना है। हरविजय, धर्मशर्माभ्युदय जैसे काव्यो की अपेक्षा प्रस्तुत काव्य की भाषा मे प्रासादिकता अधिक मिलती है।

सन्दानितक और कुलक, आदि का प्रयोग भी सीमित मात्रा मे है। भाषा मे रूपक अलंकार के प्रयोग से नाटकीयता का समावेश हो गया है। प्रस्तुत काव्य की भाषा और शैली राजदरबार के चित्र-वातावरण को सफलता से अंकित कर देती है। राजदरबार मे प्रार्थी जाने पर उस पर दृष्टि-पात अनुग्रह करने के लिये— दरबार का सेवक मन्त्री राजा से, "इस सेवक पर अनुग्रह कीजिये", "इस पर दृष्टिपात कीजिये," आदि शब्दो से राजा से प्रार्थना करता है। यही चित्र प्रस्तुत काव्य मे जब त्रिपुरासुरो से त्रस्त होकर देवगण शंकर जी के पास जाते हैं, नन्दी सेवक शकर से इन देवगणो पर दृष्टिपात, अनुग्रह करने के लिये 'मनाक् अनुगृह्यताम्'। 'पश्य' आदि शब्दों का प्रयोग करता है।[2]

नैषध

कवि परिचय—श्री हर्ष कवि ने नैषध काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त मे आत्मवृत्त दिया है, जिससे तथा काव्य के अन्त मे ग्रथित चार श्लोको से श्री

---

१. श्रीकण्ठचरित सर्ग १८ श्लोक ६१

२. सर्ग १६ श्लोक ३६, ३७, ३९, ४२, ४३

हर्ष कवि के विषय मे परिचय मिलता है। श्री हर्ष के पिता का नाम हीर तथा माता का नाम मामल्लदेवी था[1]। हीर काशी के राजा गहड़वालवंशी विजयचन्द्र की सभा के प्रधान पण्डित थे। कवि ने कान्यकुब्जेश्वर से आसन तथा पान के बीड़ा मिलने का उल्लेख किया है, जिससे राजसभा में उनके मान-सम्मान का ज्ञान होता है[2]। इन्ही श्लोक पक्तियों से यह ज्ञात होता है कि तर्कशास्त्र में उनका विशेष पाण्डित्य था, जिनकी वैदग्ध्यपूर्ण उक्तियों से पराभव प्राप्त करके प्रतिवादी भाग जाते थे[3]। उनकी कविता सहृदयाह्लादक होने मे मधु वर्षा करने वाली होती थी[4]। श्री हर्ष ने नैषधीयचरित के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थो की भी रचना की है—वे इस प्रकार हैं—स्थैर्य विचारण,[5] शिवशक्तिसिद्धि,[6] खण्डनखण्डखाद्य,[7] नवसाहसाक चरितचम्पू,[8] अर्णववर्णन,[9] गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति,[10] श्री विजयप्रशस्ति[11] छिन्दप्रशस्ति[12]। उनका नैषधीयचरित महाकाव्य चतुर्दश विद्याओ के ज्ञाता काश्मीरी पंडितों के द्वारा आदृत हुआ था[13] और इस असाधारण सफलता का रहस्य यह है कि उक्त काव्य चिन्तामणिमन्त्र की उपासना का फल था। नै०—तच्चिन्ता-

---

Ed. Sivadatta and V. L. Parashikar, with comm. of Narayana, N S P Bombay 1894, 6th Ed 1928 and Various other editions.

१ श्री हर्षं कविराजराजिमुकुटालंकारहीरः सुतं।
श्री हीर सुषवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्॥
नैषध यह पद्यार्थ प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में आता है।

२. ताम्बूलद्वयमासनं च लभते य. कान्यकुब्जेश्वरात्।
नैषध सर्ग २२।अन्तिम १५५

३ 'धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः' नैषध वही।

४. 'यत्काव्यं मधुवर्षि'–नै० वही।

५. 'स्थैर्य विचारण प्रकरण भ्रातरि'—महाकाव्ये। नै० ४।१२३

६. अस्मिन् शिवशक्ति सिद्धिभगिनी सौभ्रात्रभव्ये महाकाव्ये, नै० १८।१५४

७. खण्डन खण्डतोपि सहजात् क्षोदक्षमे—महाकाव्ये नै० ६।११३

८. नवसाहसाक चरिते चम्पूकृत (तस्याकवे) महाकाव्ये, नै० २२।१५१

९. सन्दृब्धार्णववर्णनस्य तस्ये (कवे) महाकाव्ये, नै० ९।१६०

१०. गौडोर्वीशकुल प्रशस्तिमणितिभ्रातरि—महाकाव्ये नै० ७।११०

११. तस्य श्री विजयप्रशस्तिरचनाततस्य (कवे)। नव्ये महा० नै० ५।१३८

१२. स्वसुः सुसदृशिच्छिन्दप्रशस्तेर्महाकाव्ये, नै० १७।१२२

१३. काश्मीरैर्महिते चतुर्दशतयी विद्यां विद्भिर्महाकाव्ये तद्भि नैषधीय चरिते। नै० १६।१३१

मणिमन्थचिन्तनफले महाकाव्ये १।१४५। पूर्ववर्ती कवियों की तरह (भट्टि, रत्नाकर, शिवस्वामी) श्री हर्ष ने भी अपने काव्य के विषय मे कहा है कि इस काव्य की रसामृत लहरियों से उसी सहृदय सज्जन को आनन्दानुभव हो जिसने श्रद्धापूर्वक गुरु की आराधना तथा पूजा करके गुरु प्रसाद से (शब्द और अर्थ की) उन जटिल ग्रन्थियों को सुलझा दिया है, जिन्हे (ग्रन्थियों को) कवि ने इस काव्य में स्थान-स्थान पर प्रयत्नपूर्वक (सोच-विचार कर) केवल इस उद्देश्य से सन्निहित कर रक्खा है कि अपने को विद्वान् समझनेवाला कोई दुर्जन केवल अपनी बुद्धि से इसके साथ खेल न सके[1]।

श्री हर्ष के आविर्भाव काल के विषय मे विद्वानों का ऐकमत्य नहीं है[2], किन्तु श्री हर्ष विजयचन्द्र तथा जयचन्द्र के सभापण्डित होने के कारण द्वादश शताब्दी का उत्तरार्द्ध निश्चित होता है। और ११७४ ई० के पूर्व कवि ने नैषध की रचना कर ली थी[3]।

---

१. ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित् क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया
प्राज्ञंमन्यमना हठेन पठिती माऽस्मिन् खल खेलतु।
श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतदृढग्रन्थि: समासादय-
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनः सज्जनः। नै० २२।१५४

२. डॉ० श्रीगजाननशास्त्री ने इस विषय में अपने तर्क इस प्रकार दिये हैं—

(१) श्री चाडुपण्डित के लेख से स्पष्ट है कि उदयनाचार्य के साथ श्री हर्ष का साक्षात्कार तथा संभाषण हुआ था जिससे उन दोनों का समसामयिक होना अर्थात् सिद्ध है। उदयनाचार्य ने स्वरचित लक्षणावली का रचना काल स्वय (शक ९०६ संवत् १०४१ सन् ६८४) अकित किया है। (२) कान्यकुब्जेश्वर की आज्ञा से भूदेव पण्डित ने नैषध की व्याख्या लिखी जिसके आरम्भ मे ही उसका रचना काल (शक ९७२ सम्वत् ११०७ सन् १०५० उन्होंने स्वयं अंकित किया है। (३) श्रीहर्षरचित खण्डन खण्ड खाद्य ग्रन्थ के खण्डनकर्त्ता यदि षट्दर्शन टीकाकार वाचस्पति मिश्र ही हैं तो उन्होंने भी अपने रचित न्यायसूची निबन्धग्रन्थ का रचना काल शाके ८९८ सम्वत् १०१३ सन् ९७६ अंकित किया है। इन सब अन्त.साक्ष्य के आधार पर यह नि.सकोच कहा जा सकता है कि श्री हर्ष का काल नवम-दशम शताब्दी का मध्य ही हो सकता है।

श्री हर्ष का लेख—दिव्यज्योति, शिमला, मार्गशीर्ष वि० सं० २०१४ दिसम्बर १९५७, द्वितीय वर्ष का तीसरा अंक। डॉ० श्रीगजानन शास्त्री प्रो० का० हि० विश्वविद्यालय, मीमासा विभाग, वाराणसी।

३. नैषध परिशीलन—डॉ० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल, पत्र ९
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद।

कथासार—

प्रस्तुत महाकाव्य मे २२ सर्ग हैं, जिनमें २८३० श्लोक हैं। इसमें निषध देश के पुण्यश्लोक अधिपति नल के जीवन का पूर्वभाग ही वर्णन किया गया है। आरम्भ में राजा नल के चरित विद्याभ्यास, धर्माचरणप्रताप एवं दिनचर्या का विशद वर्णन है। नल का सौन्दर्य त्रैलोक्य में अनुपम था। किस स्त्री ने रात को स्वप्न में नल को नही देखा। विदर्भ कुमारी दमयन्ती ने अपनी रूपसम्पत्ति के योग्य तथा अनेक बार सुने हुए नल में अपना मन लगाया। प्रतिदिन वन्दीजनो से नल का वर्णन सुनकर दमयन्ती रोमाचित हो जाती थी। उसी प्रकार नल ने भी दमयन्ती के रूप और गुणों को सुना। काम ने नल के धैर्य को नष्ट किया किन्तु नल ने कामार्त होने पर भी भीम से दमयन्ती को नहीं मागा। अन्त मे शान्ति की अभिलाषा से उपवन में उसने प्रवेश किया। उस उपवन मे एक सरोवर के किनारे सुरतक्लान्त एक पैर पर खड़े हुए एक स्वर्णिम हंस को देखा। नल ने उसे पकड़ लिया। हंस करुणोत्पादक विलाप करते-करते मूर्च्छित हो गया। यह देख नल के भी करुण आंसू हस पर उमड़ पड़े, हस पुनः प्रकृतिस्थ हुआ नल ने उसे मुक्त कर दिया। हस के अग्रह पर नल ने हंस को दमयन्ती के पास भेजा। हंस कुण्डिनपुर मे पहुंचा। क्रीडावन के एकान्त स्थल पर हंस ने दमयन्ती के समक्ष नल के सौन्दर्य का वर्णन किया। इसके पश्चात् दमयन्ती के पुर्वानुराग का हृदयग्राही वर्णन किया गया है। मदनमथिता दमयन्ती की अस्वस्थता का कारण जानकर राजा भीम ने दमयन्ती के लिये स्वयंवर की रचना की। इन्द्र, वरुण, अग्नि, और यम देवताओ ने दमयन्ती के रूप गुण की कथा सुन, स्वयंवर में उपस्थित होना चाहा। किन्तु नल की रूप संपत्ति को देख देव दमयन्ती से निराश हो गये। अत· वंचनाकुशल इन्द्र ने नल को ही तिरस्करणी विद्या के सहारे दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजा। वहां नल ने देवो की ओर से पर्याप्त पैरवी की, किन्तु दमयन्ती अपने निश्चय पर दृढ़ रही। निश्चित समय पर स्वयंवर रचा गया। चारों देव नल के रूप मे स्वयंवर मे उपस्थित हुये। उपस्थित राजाओ का परिचय देने के लिये सरस्वती स्वयं आई और उसने उनका परिचय दिया। नल की प्रतिकृतिवाले पांच पुरुषो को देख दमयन्ती चिन्तित हुई। यह देख देव उसकी पतिभक्ति पर प्रसन्न हुए और अपने विशिष्ट चिह्नो को प्रकट किया। फलतः दमयन्ती ने नल को पहचान कर उसके गले में वरमाला डाल दी। दोनों का विवाह हुआ। देव स्वर्ग को लौट गये। स्वर्ग जाते हुए देवों ने मार्ग में कलि को देखा। उसके साथ चार्-

युद्ध हुआ। इसमे नास्तिकवाद के खण्डन के साथ-साथ कलि की हार हुई। नल दमयन्ती के प्रथम मिलन, सुरत क्रीड़ा का रुचिर वर्णन कर काव्य की समाप्ति की गई है।

कथारचना—

नैषधीय चरित २२ सर्ग का काव्य है। (जो रत्नाकरकृत हरविजय के आकार की तुलना मे आधा भी नहीं है) जिसके प्रत्येक सर्ग में सौ से ऊपर पद्य हैं। १७ वें सर्ग में तो २२१ श्लोक हैं, जब कि १३ वें और १९ वें सर्ग में केवल ५५ तथा ६६ पद्य हैं। महाकाव्य के इस विशाल आलवाल के आकार को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि श्री हर्ष ने नल चरित से सम्बद्ध जितना कथांश लिया है, (केवल पूर्वभाग) वह परिमित है। जिसमें दमयन्ती तथा नल के प्रेम को लेकर उनके विवाह और विवाहोपरान्त क्रीड़ाओं आदि की रोचक वर्णन कर काव्य को समाप्त कर दिया है।

वर्ण्य विषय के विस्तार मे जहा एक ओर श्री हर्ष ने कालिदासोत्तर-कालीन महाकाव्यो का अनुसरण किया है वहा दूसरी ओर कालिदासीय काव्यों के वर्ण्य विषयों के सन्तुलित विकास का ध्यान नही रखा है। यद्यपि ढूढने से उसमे निहित पचसन्धियों का ज्ञान हो जाता है, फिर भी जीवन की अनेकरूपता के अभाव मे, अद्भुत प्रतिभा और कल्पना विलासजन्य वर्ण्य-विषय या कथा के असन्तुलित विस्तार को दृष्टि से ओझल नही किया जा सकता।

आलोच्य काव्य के कथानक की विकासावस्थाओ— (१) नलदमयन्ती का परस्पराकर्षण (२) मध्यस्थ हंस के द्वारा उनके अनुराग की वृद्धि (३) इन्द्रादि देवो के अभिलाष से नल दमयन्ती के अनुराग मे अनपेक्षित अवरोध (४) दमयन्ती द्वारा उस अवरोध का निराकरण (५) नल के प्रतिरूप मे देवो के उपस्थित होने से उत्पन्न नई कठिनाई (६) दमयन्ती द्वारा इस कठिनाई का भी निराकरण और अन्त मे (७) दोनों का विवाह)— में पंचसन्धियो का–आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम समावेश हो जाता है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय और पंचम, इन सर्गों मे कथा की गत्यात्मकता एवं कालात्मकता दर्शनीय है। इनमे विकासावस्था की प्रथम तीन अवस्थाओं का (प्रारम्भ, यत्न और प्राप्त्याशा) समावेश हो जाता है। तृतीय अवस्था के कुछ अंश की तथा अन्तिम दो अवस्थाओं की (नियताप्ति और फलागम) पूर्ति के हेतु काव्य मे १७ सर्गों की नियोजना है। एक नवम सर्ग छोड़ने पर चतुर्थ, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, दशम, एकादश, द्वादश और त्रयोदश सर्ग की कथा की गति में अवरोध उत्पन्न

करते हैं। चतुर्दश सर्ग मे अन्तिम दो अवस्थाओं का समावेश हो जाता है वस्तुत: काव्य की समाप्ति भी यही अर्थात् स्वयंवर के पश्चात् या अधिक से अधिक विवाहोपरान्त हो जानी चाहिये। किन्तु श्रीहर्ष वर्णन-प्रियता का मोह आवरण न कर सके। फलतः ६-७ सर्गों की नियोजना और की जाती है। और इनमे अनावश्यक घटनाओं के विस्तार को देखकर विद्वानों मे दो पक्ष हो जाते हैं।

(१) २२ सर्गात्मक नैषध को पूर्णकाव्य माननेवाला प्रथम पक्ष और उक्त सर्ग-संख्यात्मक काव्य को अपूर्ण मानकर और अधिक सर्गों की कल्पना करने वाला द्वितीय पक्ष।

२२ सर्गात्मक नैषध एक पूर्ण काव्य है।

इस पक्ष का विरोध करने वालो मे प्रमुख हैं श्री नीलकमल भट्टाचार्य और डाक्टर वाटवे। इनके मत मे महाभारत में वर्णित नल के सम्पूर्ण जीवन चरित को लेकर नैषध काव्य की रचना हुई थी। इस पक्ष के आक्षेप संक्षेप में इस प्रकार हैं[1]। (यहां हम विस्तार मे न जाकर संक्षेप मे ही उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे) काव्य की अपूर्णता के कारण—

१— काव्य के नैषधीय चरित नाम मे अतिव्याप्ति।

२—नैषध मे स्थान-स्थान पर आया हुआ कलिप्रसंग।

प्रथम आक्षेप के उत्तर के लिये हमे कवि के उद्देश्य या काव्य मे उल्लिखित उसकी प्रतिज्ञा को देख लेना आवश्यक है। कवि ने प्रथम सर्ग के अन्त मे तथा अन्य स्थानो पर अपने संकल्प का स्पष्ट संकेत कर दिया है कि उनके इस काव्य की रचना शृंगार रस की हो रही है[2]। कवि के इस संकल्प को विचार मे रखते हुये, नल जीवन के उत्तरार्ध की अपेक्षा जो करुण अधिक होने से शृङ्गार के प्रतिकूल पडता है, (इस काव्य मे वर्णित २२ सर्गात्मक) नल चरित का पूर्वार्द्ध ही अधिक समीचीन एवं उपयुक्त ज्ञात होता है। उत्तरार्द्ध यदि सम्मिलित भी कर लिया जाय तो उसमे वर्णित नलचरित दमयन्ती के ज्योतिष्मान चरित के सामने नि.स्तेज हो जाता है। इसके अतिरिक्त जैसा कि हमने काव्य प्रकारो मे देखा है, संस्कृत आचार्यों ने लक्षणग्रन्थो में

---

१. आक्षेप और उनका विस्तृत खण्डन का विवेचन डॉ० चन्द्रिकाप्रसादजी शुक्ल ने अपनी थीसिस नैषध परिशीलन मे किया है। पृ० ४८-५२

२. शृङ्गार भंग्यामहाकाव्ये—इति नै० १।१४५ और
शृंगारामृत शीतगौ—नै ११।३३०

चरित काव्य नामक कोई विभाग नहीं किया है। आचार्योक्ति लक्षण के अनुसार इतिहास प्रसिद्ध या लोक प्रसिद्ध नायक चरित के अभीष्ट या रसपूर्ण अंश को ही काव्य का आधार बनाया जा सकता है[1]। और काव्य में वह अंश चरित ही कहा जायगा चरितांश नहीं।

ऐतिहासिक काव्य नवसाहसांक चरित में सिन्धुराज का शशिप्रभा से विवाह का ही अंश वर्णित है। सिन्धुराज का पूरा चरित वर्णित होने पर भी उस काव्य का नाम नवसाहसांक चरित ही रखा गया है।

(२) काव्य में कलिप्रसंग की चर्चा होने पर भी उसके कृत्यों के वर्णन के पूर्व काव्य की समाप्ति मे ही, पूर्वोक्त कवि सकल्प (काव्य मे शृंगार रस के अंगी रूप में योजना) की सार्थकता है। इसके अतिरिक्त कवि ने सत्रहवां सर्ग में कलि प्रसग की चर्चा करते हुए दीर्घ काल के पश्चात कलि को उपवन मे स्थान मिला[2] कहा है। इस श्लोक मे कवि ने डा० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल के अनुसार 'किल' शब्द का प्रयोग करके उन्होंने कलिप्रसंग को यहीं समाप्त कर दिया है। अर्थात् कलि का उस उपवन में टिकना या आगे का उसका कोई कार्य इतिहास पुराण में अति प्रसिद्ध है, इस काव्य मे उसके कहने की कोई आवश्यकता नही रह जाती। इस प्रकार नैषध २२ सर्गों में ही एक पूर्ण काव्य है।

नैषधीय कथा का आधार-महाभारत

नल कथा, रामायण तथा अन्य पुराणों—मत्स्य, स्कन्द, लिंग आदि मे उल्लिखित है। किन्तु जितने विस्तार से महाभारत (वनपर्व) में है उतने विस्तार से इनमे नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त नैषध के नलविषयक कथानक का विवेचन करने पर ज्ञात होता है कि इसका मूल आधार महाभारत ही है। जैसा कि पूर्व देखा है कि इन आर्ष काव्यों के कथानक केवल इतिवृत्त-प्रधान अलकृत एवं प्राकृत होते है। ऐसी स्थिति में भी महाभारतीय नल कथा को अपने काव्य की कथावस्तु बनाने में श्री हर्ष का कुछ उद्देश्यविशेष प्रतीत होता है।

डा० वाटवे के अनुसार प्रथम हेतु, स्वकालीन इतिहासप्रसिद्ध संयोगिता स्वयंवर व तज्जन्य राज्यभ्रंश को नल कथा के द्वारा ध्वनित करना है। (सम्भवत:) श्री हर्ष ने अपने आश्रयदाता जयचन्द की कन्या संयोगिता का स्वयंवर प्रत्यक्ष देखा होगा। संयोगिता के पृथ्वीराजविषयक प्रेम में अनेक

---

१ काव्यादर्श—१।१५

२ नैषध परिशीलन पृ० ५१ डा० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल।

विघ्न-बाधाएँ थीं, फिर भी संयोगिता ने पृथ्वीराज के गले में वर-माला डाली। अतः गृहकलह ने दोनों को नष्ट करने के लिये ही प्रतिज्ञा कर मानो युद्ध के ब्याज से पृथ्वीराज और जयचन्द को राज्यभ्रष्ट किया[1]।

उपरिनिर्दिष्ट हेतु स्वकालीन घटनाओं को ध्वनित करनेवाला विदग्ध महाकाव्यों की शैली के अनुसार तर्क युक्त प्रतीत होता है।

दूसरा उद्देश्य रसविषयक है। जो हमने इसके पूर्व कह दिया है, अधिक समीचीन ज्ञात होता है। क्योंकि रसवादी कवि हर्ष दिव्य पुरुष के चरित को शृङ्गारामृत से लिप्त कर आनन्दवर्धन के क्षोभ से बचना चाहते थे, जो कुमारसम्भव में देवी सम्भोग वर्णन के लिये महाकवि कालिदास पर व्यक्त हुआ था[2]।

काव्य में ऐतिहासिक कथानक की मर्यादा:—

इस विषय में हमने पीछे भी कहा है, इसलिये यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ऐतिहासिक सत्य और कल्पना का सन्तुलित समन्वय सहृदय हृदयाल्हादजनक होता है और इसीलिये आचार्यों ने काव्य कथानक के लिये इतिहासोद्भव वृत्त की प्रधानता स्वीकार की है, किन्तु उसमें भी एक मर्यादा अंकित की है। महाकाव्य मे सम्पूर्ण ऐतिहासिक इतिवृत्त को अंकित नहीं किया जाता, अपितु उस वृत्त का जितना अंक कार्य रसविशेष के लिये नितान्त आवश्यक समझा जाता है, कवि उतने मात्र को ग्रहण कर लेता है।

आचार्य आनन्दवर्धन के मत में विभाव, भाव, अनुभाव और संचारीभाव की उचित योजना द्वारा (ऐतिहासिक आदि) सुन्दर या उत्प्रेक्षित कथानक से युक्त प्रबन्ध ही रस का व्यंजक होता है[3]।

उपर्युक्त सिद्धान्त को श्री हर्ष ने ध्यान मे रखकर ही महाभारतीय कथा मे कल्पनाश्रय से परिवर्तन किया है इसे यहां संक्षेप मे देखते हैं।

१—नैषध मे आद्यो वाच्यः स्त्रिया रागः के अनुसार दमयन्ती के हृदय में नल के प्रति अनुराग प्रथम जगता है, जब कि महाभारत में नल-दमयन्ती ने

---

१. संस्कृत काव्याचे पंचप्राण, डा० वाटवे पृ० २७७

२ तथाहि—महाकवीनामप्युत्तमदेवताविषयप्रसिद्धसम्भोगशृङ्गारनिबन्धनाद्यनौचित्यं शक्तितिरस्कृतं ग्राम्यत्वेन प्रतिभासते यथा कुमारसम्भवे देवीसम्भोगवर्णनम्। इत्यादि।

ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत पृ० १९१ चौ० सं० प्र०।

३. ध्वन्यालोक उद्योत ३ कारिका १०

एक दूसरे की प्रशसा लोगो से सुनी और उनका परस्पर अनुराग बढ़ा। (महा० वन० प्र० ५१-१६-१७)

२—उपवन में सरोवर की कल्पना श्री हर्ष की है जब कि महाभारत में सरोवर का कोई उल्लेख नहीं है। यहां उल्लेख्य यह है कि श्री हर्ष का ध्यान रस की ओर रहते हुए भी लक्षणग्रन्थो मे उल्लिखित वर्ण्यविषय सूची की ओर भी रहता है। सरोवर की कल्पना से उपवन सौन्दर्य की वृद्धि तो अवश्य हुई, साथ ही उद्यानवर्णन के लिये आवश्यक कथित क्रीडावापी आदि की भी पूर्ति हो गई[1]।

३ हंस के करुणरोदन की कल्पना श्री हर्ष ने की है—महाभारत के हंस का इतिवृत्तप्रधान यह कहना कि 'राजन्! मुझे न मारिये। मैं आपका प्रिय करूंगा। दमयन्ती के सम्मुख मैं आपका ऐसा वर्णन करूंगा कि वह कभी आपको छोड़कर अन्य पुरुष को मानेगी ही नहीं'', नैषधीय हंस के करुणरसपूर्ण विलापों के सम्मुख बिल्कुल नीरस लगता है। नैषध का हंस हर्ष के हृदय को करुणा से द्रवित करने के लिये अपनी स्थिति को सम्यक् रीत्या सामने रखता है जिससे नल का हृदय अनायास ही द्रवित हो जाता है।

४—हंस द्वारा दमयन्ती के सम्मुख अपनी दिव्यता का परिचय :— महाभारत में हंस दमयन्ती से कहता है 'हे दमयन्ति, निषध देश मे नल नामक एक राजा है[2] किन्तु नैषध मे हंस एकाएक नल का प्रसंग उपस्थित नहीं करता। अपितु नलप्रसग की अवतारणा अत्यन्त स्वाभाविक ढग से तथा युक्तिपूर्वक करता है। जिसमें अपने दिव्यत्व के परिचय से नल की और भी महत्ता सूचित होती है। पृथ्वी पर विरले ही जन्म लेने वाले किसी मनुष्य के स्वर्ग लोक मे योग्य असाधारण शुभ कर्म के बिना मुझ सरीखे दिव्यपक्षी के पकड़ने के लिये किसी पाश आदि का सामर्थ्य नहीं है[3]।

इसके विपरीत महाभारत में हंस ने कहीं अपने को दिव्य पक्षी नहीं बताया है। संक्षेप मे महाभारत मे आये हुये इस प्रसग के केवल १४ श्लोक

---

१ उद्याने सरणि. सर्वफलपुष्पलताद्रुमा.।
पिकालिकेलिहंसाद्या:क्रीडावाप्यध्वगस्थिति.।

काव्यकल्पलतावृत्ति १।५-६८

२. दमयन्ति नलोनाम निषधेषु महीपति म० भा० व० प० ५३।२६-२७

३. बन्धाय दिव्ये न तिरश्चि कश्चित् पाशादिरासादित पौरुष स्यात्।
एकं विना मादृशि तन्नरस्य स्वर्भोगभाग्यं विरलोदयस्य ॥ ३-२० नै०

का आधार लेकर श्री हर्ष ने १, २, ३ तीन सर्गों का ३३१ श्लोकों में सरस विस्तार किया है।

५—महाभारत मे हंस के चले जाने पर दमयन्ती की विरह दशा का वर्णन मिलता है किन्तु श्री हर्ष ने १२२ श्लोको का पूर्ण सर्ग ही इसके लिये नियोजित किया है जिसमे विरह की सम्पूर्ण अवस्थाओ का चित्रण किया गया है।

६—देवदूत के रूप मे दमयन्ती के अन्तःपुर में नल का प्रवेश, नल का वर्णन—(सर्ग ६) नल द्वारा किये गये दमयन्ती का नखशिख वर्णन (सर्ग ७, १०, ११] १२ वें सर्ग में सरस्वती का प्रवेश और स्वयंवर में उसके द्वारा राजाओं का वर्णन। १३ वें सर्ग में श्लिष्ट पंचनली वर्णन। १५ वें सर्ग में वधू-वर की वेषभूषा और बरात का वर्णन। १६ वें सर्ग में अतिथियों का विनोद। १७ वें सर्ग मे चार्वाक नास्तिक मत का खण्डन। १८ वें सर्ग मे विलास वर्णन। १९ वें सर्ग में वैतालिको द्वारा स्तुति। नल दमयन्ती का नर्मविनोद, शुकसारिकाएं, नल की दिनचर्या और चन्द्रोदय वर्णन आदि के लिये २०, २१ और २२ सर्ग नियोजित हैं।

उपर्युक्त सर्ग श्री हर्ष के विराट कल्पना विलास के द्योतक हैं।

आदान

जैसा कि हम कलात्मक मान्यता में देख चुके हैं कि कालिदास की रचना शैली का आदर्श उत्तरवर्त्ती कवियों ने स्वीकार न कर भट्टि तथा माघ द्वारा पुरस्कृत शैली को ही स्वीकार किया। आचार्यों ने भी सहज प्रतिभा की अपेक्षा व्युत्पत्ति को ही अधिक प्राधान्य दिया था। परिणामतः सहज-स्वाभाविकता के स्थान पर कृत्रिमता तथा पाडित्य का बोलबाला हुआ। शब्दक्रीडा मात्र को ही काव्य समझा जाने लगा था। ऐसे अवसर पर श्री हर्ष का साहित्य क्षेत्र मे प्रादुर्भाव हुआ, जब कि इसके पूर्व ही साहित्य अपनी चरम अवस्था को पहुच चुका था। कला विज्ञान आदि सस्कृत साहित्य के प्रत्येक विभाग मे अभिनव सर्जना प्रायः दशम शती तक समाप्त हो चुकी थी। यह तो पूर्वरचित कृतियो की टीका पर, टीका लिखने का युग था। इसमें ज्ञान प्रसार तथा बौद्धिक क्रियाओं का विस्तार तो अवश्य हुआ किन्तु इन आलोचना प्रत्यालोचनाओं की सूक्ष्मता का कोई विशेष उपयोग नही था। साहित्य रचना में मौलिक चिन्तन या नूतन रचनात्मक कार्य का अभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा था। उस काल की काव्य रचना पूर्वकालीन कवियों की अनुकृति मात्र रह गई थी। फलतः उन्हीं पुराने विषयो पर पुराने ढंग से छन्द रचना और नावीन्य शून्य पुराने भावों की आवृत्ति होने लगी थी,

जिसकी कल्पना पूर्वचर्चित प्रत्येक काव्य के आदान विभाग को देखने से सहजगत्या आ सकती है। इधर यदा-कदा किसी प्रतिभासम्पन्न कवि की कृति अवश्य उपलब्ध हो जाती है किन्तु इस प्रदीर्घ युग की रचनाओं का एक सा स्वरूप उसे आच्छादित कर देता है। निश्चय से यह प्रगति न होकर अवनति थी।

किन्तु इसे देख साहित्य क्षेत्र मे क्रमिक विकास का सिद्धान्त भी लागू नही किया जा सकता क्योकि यदा-कदा किसी प्रकार की काव्यधारा के युग में कोई प्रतिभासंपन्न कवि उदित होता है, जिसकी रचना उस युग की परम्परागत काव्य प्रवृत्तियों को आत्मसात् करते हुए भी अपनी रचना शैली में अपूर्व एवं उत्कृष्ट होती है। किन्तु उस युग की अधिकाश रचनाओ की सामान्य प्रवृत्तियों की अधिकता के आधार पर ही हम उस युग को विशिष्ट प्रणाली का युग कहते हैं[1]।

नैषधकार ने यद्यपि अपने नैषध को अतिनव्य कृति कहा है।[2] इसे ऐसे काव्य मार्ग का पथिक बताया है जिसे अन्य कवियो ने देखा तक नही है[3] इसे सदा अभिनव प्रमेयो से सम्पन्न कहा है[4] तथापि पूर्ववर्ती महाकाव्यों के भावों तथा शैली की झलक तो अवश्य ही मिलती है।

कालिदास रघुवंश—

जैसा कि इसके पूर्व संकेत किया था कि कालिदास द्वारा प्रवर्तित कुछ काव्य रूढियां परवर्ती कवियों को इतनी आकर्षक रही कि उन्होंने अपने काव्य में नियोजित कर काव्य को अलंकृत अवश्य किया है किन्तु वे कालिदास की रचना शैली की आत्मा को न पहचान पाये। इसलिये कालिदास द्वारा वर्णित उन रूढ़ियो का रूप इन परवर्ती काव्यों मे आकार और प्रकार मे कुछ भिन्न हो गया है।

इन्दुमती स्वयंवर

रघुवंश में कालिदास का अनेक राजाओ का चरित वर्णन करना था फिर भी उन्होंने काव्य का एक ही सर्ग व्यय किया जिससे काव्य की प्रबन्धात्मकता मे किसी भी प्रकार की अस्वाभाविकता उत्पन्न न हो। इसलिये यह स्वयवर

१. दे-संस्कृत साहित्य का इतिहास अध्याय ६

२. नव्ये महाकाव्ये, नै ५-१३८, काव्येतिनव्ये कृतो, नै. २१।१६३

३. कविकुलादृष्टाध्वपान्थेमहाकाव्ये, नै. ८।१०९ अन्याक्षुण्ण रस प्रमेय-भणितौ, नै. २०।१२८।१८२

४. एकामत्यजतोनवार्थघटनात्-नै. १९।६७

वर्णन के काव्य की दृष्टि से अत्युत्तम रचना मानी जाती है। नैषधकार को कालिदास के स्वयवर वर्णन का लघ्वाकार पसद न आया और उन्होने इसे पाच सर्गों मे वर्णित किया है। इसके अतिरिक्त रघुवंश की स्वयंवर सभा से नैषध की स्वयवर सभा मे महान अन्तर है क्योंकि उसमे केवल नरेश ही आये थे और इसमे जगत्रयी के पण्डित आये थे। रघुवश की स्वयंवर सभा में राजपरिचय सुनन्दा द्वारा कराया गया है, जबकि नैषध की सभा मे साक्षात् सरस्वती को यह कार्य करना पडा है।

स्वयवर सभा मे इन्दुमती के प्रवेश करने पर, राजाओ की प्रणयसूचक विविध शृङ्गार-चेष्टाओ, अनुभवो का वर्णन मनोवैज्ञानिक होने से अत्यन्त स्वाभाविक और हृद्य हुआ है। (इन चेष्टाओ का वर्णन अनेक काव्यो मे ऐसे अवसर पर वर्णित है जो पीछे देख चुके हैं) अत. यहा पुनः कहना उपयुक्त नही, हा, नैषध के कुछ चित्र देख लेते हैं—

"दमयन्ती के शरीर सौन्दर्य को देखकर—वहाँ ऐसा कोई राजा नहीं था, जिसका शरीर आश्चर्य से रोमाचित होने से पुलकित न हुआ हो[1]। उधर इन्दुमती स्वयवर मे, इन्दुमती के शरीर सौन्दर्य को देख, नरेन्द्रगण उसमे अपने अन्त करण से लीन हो गये थे, आसनों पर तो केवल शरीर से स्थित थे। इधर दमयन्ती को देख युवक राजा दमयन्ती मे केवल दृष्टि से अथवा केवल हृदय से निमग्न नही हुये किन्तु उसके निर्मल अंगो की भित्तियो मे और आभूषणो के रत्नो मे प्रतिबिम्बित होने के कारण सब शरीर से निमग्न हो गये[2]। इन्दुमती को एक राजा के पास से दूसरे राजा के पास जाने का कालिदास ने मनोरम चित्रण किया है[3]। नैषधकार ने भी दमयन्ती का ऐसा ही चित्र अंकित किया है। "तब शिविकावाहक अरुण-वस्त्र सदृश रमणीय अधरचरणो वाली दमयन्ती को देवताओ के पास से सर्पराज वासुकि के पास इस तरह ले गये जैसे मेघराज हसो को अन्य जलाशयो से मानससरोवर पर ले जाते हैं[4]। स्वयवर के पश्चात् रघुवंश का अन्य चित्र लाजावर्षा का है—वन से

१ नै. १०।१०९

२. नै० ११।२

३. रघुवश ६।२६

४. जन्यास्तत फणभृतामधिपः सुरोधान्मा-
 ज्जिज्पठमञ्जिमवगाहि पदोष्ठ लक्ष्मीम्।
 तां मानसं निखिल वारिचयान्नवीना
 बंसावलीमिव धनागमयाम्बभूवु.॥ नै० ११।१५

लौटने पर जिस समय राम ने नरेन्द्रवेश मे अयोध्या मे प्रवेश किया उस समय उनके ऊपर नगर प्रासादों से कुमारिया लाजावर्षा कर रही थी[१]।" नैषध में भी विवाह के पश्चात् लौटने पर वधू सहित नल के ऊपर कुमारियों ने लाजावर्षा की[२]। राजदर्शन करने के लिये पुरसुन्दरियों का प्रासाद वातायन से देखना, नमस्कार करना आदि का भी नैषध मे चित्र अंकित है[३]। नल दमयन्ती के सम्भोग श्रृङ्गार मे भी रघुवंश ने अग्निवर्ण की रति-क्रीड़ा का भाव-साम्य मिलता है "जैसे राज्यभार सचिवो पर सौंप कर अग्निवर्ण यौवन सुख भोगने मे प्रवृत्त हुआ वैसे ही नल भी राज्य कार्य भार सचिवो पर छोड़ कर प्रिया दमयन्ती के साथ मदनसुख मे प्रवृत्त हुए[४]। यहाँ यह उल्लेख्य है कि नल के उक्त चित्र को तथा भाटो के वचनो को (नै० १९-२१-२५ तक) देख सम्भवत डा० वाटवे ने नल को ललित नायक की संज्ञा से अभिहित किया है[५]। किन्तु यह ठीक प्रतीत नही होता क्योंकि नल पर अग्निवर्ण जैसा, इन सुख भोगो का कोई प्रभाव नही था[६]।

इसका यथास्थान विवेचन करेंगे। रघुवश के पञ्चम सर्ग के प्रभात वर्णन ने भी नैषध को प्रभावित किया है।

कुमारसम्भव—

नैषध पर कुमारसम्भव का प्रभाव भी कुछ कम नहीं है। दमयन्ती का नखशिख वर्णन (सर्ग ७) कुमारसम्भव में वर्णित पार्वती रूप वर्णन पर ही आधारित है (कु० १ सर्ग)। दो उदाहरण पर्याप्त होंगे—

१—पार्वती के चकित नेत्रो की उपमा प्रवातकम्पित इन्दीवर से देते हुये कालिदास को सन्देह हुआ कि इस प्रकार चचल ईक्षण क्या पार्वती ने मृगाग-नाओं से लिया है, अथवा मृगागनाओ ने पार्वती से[७]। नैषध मे दमयन्ती की नेत्र कान्ति को देख श्रीहर्ष को भी सन्देह होता है।

---

१. रघुवश १४।१

२. नै० १६।१२६

३. रघु० १४।१३ नै० १६।१२७

४. रघुवंश १९।४ न० १८।३

५. संस्कृत काव्याचे पंचप्राण। डा० वाटवे पृष्ठ २८८

६ निश्चिन्तो धीरललित कलासक्तः सुखीमृदु।

दशरूपक २।३ नै० १८।२

७. कुमारसंम्भव १४।६

"हरिनियो ने क्या दमयन्ती से नेत्रों की शोभा उधार ली थी, क्योकि दमयन्ती ने भयभीत हरिनियो से अपने नेत्रो की अनेक तरह की तथा पूरी शोभा बलात् प्राप्त की है[1]।

कालिदास को पार्वती की बाहु 'शिरीषपुष्प से भी अधिक सुकुमार' लगी। इधर श्रीहर्ष के विचार से दमयन्ती के सम्पूर्ण अंग ही 'शिरीषाधिक कोमल थे[2]।'

इस प्रकार अनेक साम्यतापूर्ण प्रसंग प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

१—शिवपूजा के लिये जाती पार्वती के सौन्दर्य का वर्णन[3]। इधर नैषध मे भी स्वयवर मे प्रवेश करती दमयन्ती का अत्यन्त मनोहारी सौन्दर्य अंकित किया गया है[4]।

२—पार्वती के उपस्थित होने पर काम का शकर को वश करने का विचार करना[5]। नैषध मे भी नल को जीतने के लिये कामदेव ने वही अवसर उचित समझा जब नल ने दमयन्ती के सौन्दर्य के विषय मे सुना[6]।

३—कुमारसम्भव के पचम सर्ग की शैली पर नैषध का नवम सर्ग एवं सप्तम सर्ग पर पंचदश सर्ग आधारित है। इसके अतिरिक्त कुमारसंभव के अष्टम सर्ग की शैली पर नैषध के (१८, १९, २०, २१ और २२) पाच सर्ग आधारित हैं।

४—विवाह के पूर्व पार्वती तथा दमयन्ती दोनों के मंगलस्नान प्रायः एक ही प्रकार से वर्णित हैं[7]।

५—पार्वती का और दमयन्ती का सखियो द्वारा अंग शृंगार वर्णन प्राय एक से ही हैं।

६—श्री शकर को देखने के लिये सुन्दरियों की त्वरापूर्ण चेष्टाओ के चित्रण पर अधारित नैषध मे भी नल को देखने के लिये ललनाओं की चेष्टाओ का चित्र अकित है[8]।

---

१. नै० ७।३३

२. शिरीषपुष्पाधिक सौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितर्क। कु० १।४१

३ शिरीषपुष्पादपिकोमलाया वेधा विधायांगमशेषमस्या.। नै० ७।४७

४. कु० ३।५१–५६

५. नै० १०।९२–१०८

६. कु० ३।६४

७. नै० १।४३,

८. कु० ७।१०। नै० १५।१९।

एक दो चित्र पर्याप्त होंगे (कुमारसंभव के चित्र हमने पीछे देखे हैं) ।

"कोई सुन्दरी नल को देखने के लिये इतनी उत्सुक थी कि वायु से हटाये गये स्तनावरण को भी न जान सकी और इस प्रकार नल की विवाह यात्रा के लिये आगे खडी होकर मानो मगल कलश का शकुन कर रही थी[1] । किसी विलासिनी स्त्री ने जिसके नेत्रकमल एकाग्र होकर नल को देख रहे थे हाथ मे लिये ताम्बूल को खाने की इच्छा से हाथ पर रखे हुए लीलाकमल को मुख में रख लिया, मानो उस पर क्रोध किया कि वह सौन्दर्य मे उसके मुख की समानता करता है[2] । कालिदास ने शिव-पार्वती विवाह के पश्चात् रतिक्रीड़ा के प्रसंग मे प्रकृति का, (सन्ध्या, रजनी, चन्द्रिका वर्णन) उद्दीपन रूप में किया है । इधर नैषधकार ने भी इसी योजना को अपनाया है । कालिदास और श्रीहर्ष का रतिक्रीडावर्णन प्राय समान होने पर भी नैषध में कामसूत्र के प्रयोग का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखाई देता है । दोनो काव्यो मे (कुमारसभव ८ सर्ग, नैषध १८ सर्ग, समान छन्द रथोद्धता का प्रयोग किया गया है ।

उपर्युक्त वर्णन समता के अतिरिक्त कालिदास की उक्तिया भी नैषधकार की युक्तियो से समता रखती हैं । जैसे रघुवश की यह उक्ति "भिन्न रुचिर्हि लोक." रघु ६।३० नैषध की इस उक्ति से समता रखती है "जिनकी स्पृहा भिन्न-भिन्न है, उनको किसी विषय से द्वेष तथा किसी से सहानुभूति रखने की कोई व्यवस्था नही है[3]।" मेघदूत की यह उक्ति कामान्ध व्यक्तियो को स्वभावतया जडचेतन का ज्ञान नही रहता । नैषध की इस उक्ति से समता रखती है । 'मुग्धेषु क सत्यमृषा विवेक ' नै० ८।१८

माघ के शिशुपालवध का भी प्रभाव पर्याप्त मात्रा मे नैषध पर लक्षित होता है । संक्षेप मे यहा दो-एक उदाहरण देखते हैं —

द्वारकावर्णन करते हुए कवि माघ की उत्प्रेक्षा "द्वारकापुरी दर्पणतल के समान निर्मल समुद्र जल मे स्वर्ग की छाया के समान दृष्टिगोचर होती थी" ।[4] श्रीहर्ष ने भी कुण्डिनपुर के वर्णन मे इसी प्रकार उत्प्रेक्षा की है । "वह नगरी किसी सरोवर के मध्य मे प्रतिबिम्बित होकर स्वर्ग के समान शोभायमान हुई[5] ।"

---

१. नै० १५।७४
२. नै० १५।७७
३. नै० ६।१०६
४. माघ ३।३५
५. नै० २।७९

माघ ने भीष्म के द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति कराते हुये विष्णु के कूर्म, वराह, नृसिंह आदि अवतारों का नामोल्लेख किया है। नैषध में भी नल के मध्याह्न अर्चना के समय विष्णु के मत्स्य, कच्छप, वराह आदि अवतारों की स्तुति की गई है। दोनों ने दत्तात्रेय का उल्लेख किया है। सबसे अधिक नैषध पर माघ का प्रभाव श्लिष्ट रचना का है। माघ के १६ वें सर्ग में शिशुपाल द्वारा प्रेषित दूत का सन्देश प्रिय-अप्रिय दोनों अर्थों को व्यक्त करता है[1] इसके पश्चात् तीन अर्थों को व्यक्त करने वाला एक श्लोक भी मिलता है।[2] निश्चय से श्रीहर्ष को श्लिष्ट रचना, पंचार्थ श्लोक की प्रेरणा माघ से ही मिली होगी।[3]

धर्मशर्माभ्युदय—नैषधकार धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य से पूर्ण परिचित हैं। दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे।

रत्नपुराधिपति महासेन की महिषी सुव्रता के रूपवर्णन के प्रसंग में कवि हरिचन्द ने कहा है—"ऐसा लगता है कि विधाता ने इसका सुन्दर शरीर बनाने के लिये मानो कमल से सुगन्धि, इक्षु से फल और कस्तूरी से मनोहर रूप ले लिया था अथवा किससे क्या सारभूत गुण नहीं लिया।[4] नैषध में भी दमयन्ती के मुख तथा नेत्र के लिये विधाता को कई मनोरम वस्तुओं का सार ग्रहण करना पड़ा। ब्रह्मा ने दमयन्ती का मुख बनाने के लिये चन्द्रबिम्ब का मानो सार निकाल लिया है, इस कारण उसके बीच छेद हो गया है। उसी छेद की गहराई में से आकाश की नीलिमा दिखाई देती है।[5] दमयन्ती के नेत्र बनाने के लिये ब्रह्मा के प्रयत्न में चकोर के नेत्रों का, हरिणियों के नेत्रों का तथा कमलों का पीयूषनिर्झर रूप सार–निमेषयन्त्र से खींचा गया है क्या ?[6]

एक स्थान पर विदर्भराज की दुहिता के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुये हरिचन्द उत्प्रेक्षा करते हैं—"जिसका मध्य भाग एक मुष्टि के द्वारा ग्राह्य था। ऐसी उस कुमारी को धनुर्यष्टि के समान पाकर कामदेव ने बड़ी शीघ्रता से बाणों के द्वारा सम्पूर्ण राजाओं को घायल किया"।[7] इधर नैषध में नल को

१. माघ १६।२ से १५ तक
२. माघ १९।११६
३. नै० १३।१४
४. धर्मशर्मा० २।६५
५. नै० २।२५
६. नै० ७।१२
७. धर्मशर्मा० १७।१४

दमयन्ती भी ऐसी प्रतीत हुई कि मुट्ठी मे ग्रहण करने योग्य क्षीण कटिवाली यह सुन्दरी कामदेव की पुष्पमयी धनुर्लता है जो हमें मोहित करने के हेतु अपने सुन्दर नेत्रप्रान्त से बाणरूप दृष्टि की वृष्टि करती है[1]।

भर्तृहरि शतक–इस काव्य की अनेक उक्तियो के भाव सादृश्य नैषध में देखने मिलते हैं। दो-एक उदाहरण रूप मे पर्याप्त होगे। नीतिशतक मे कहा गया है कि महान् अपना पराक्रम महान् मे ही दिखाता है[2] नैषध मे इसी अर्थ को इस प्रकार कहा है 'महान् अपना पौरुष महान् से ही दिखाता है[3]।' वैराग्य शतक मे स्त्री रूप की निन्दा करते हुये कहा है कि स्तन मास की ग्रन्थियाँ हैं किन्तु उन्हें स्वर्ण कलश की उपमा दी गई है। मुख कफ से पूर्ण है किन्तु उसकी चन्द्र के साथ तुलना की गई है। मूत्रलिप्त जांघो को हाथी के सूडो के समान बताया है। स्त्री रूप महान् निंद्य है किन्तु कवियो ने विशेष रूप से ऊँचा उठाया है[4]। नैषध में भी चार्वाक से देवों को उत्तर इन्ही रूपो मे दिया गया है। स्त्रियों के प्रति 'मुख श्लेषमागारं, स्तनौमासग्रथी' आदि घृणोत्पादक वचन तृण के समान त्याग देना चाहिये, इस तरह कब तक तुम लोगो को ठगोगे ? तुम भी तो उतने ही बुरे हो[5]। इसके अतिरिक्त अन्य काव्यग्रन्थो का भी प्रभाव नैषध पर लक्षित होता है। जैसे शाकुन्तल, कृष्णमिश्रकृत प्रबोध-चन्द्रोदय, महिमन् स्तोत्र, अनर्घराघव, आदि[6]।

रसभावाभिव्यक्ति :—

नैषध मे अंगी रस शृङ्गार है और रति प्रधान भाव तथा अगरूप से रस है वीर, रौद्र, अद्भुत, करुण, हास्य, बीभत्स, भयानक।

नैषध मे शृंगार के दोनो पक्षो का (संयोग, वियोग) मनोरम सागोपाग चित्रण हुआ है। इसमे भी नवसाहसाक चरित जैसा वियोग या विप्रलभ पक्ष प्रथम आया है, संभोग बाद में। नैषध का प्रारम्भ नल दमयन्ती के पूर्वराग (प्रेम) से होता है। सस्कृत साहित्य में समस्त प्रेमाख्यानो वाले काव्यो मे वर्णित प्रेमप्रकारों को हम नवसाहसांक चरित के अनुशीलन के अवसर पर कह

---

१. नै० ७।२८
२. नी० श० १
३. न० १२।८
४. वैराग्य श० २० वै० क० प्रे० १८०६
५. नै० १७।५८
६. पठनीय नैषध परिशीलन डा० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल आदात्र बाग

आये हैं। अतः यहाँ कहना ठीक नहीं। उन वर्णित प्रेम प्रकारों में से चौथे प्रकार का प्रेम नैषध में मिलता है। यहां उल्लेख यह है कि नल दमयन्ती का प्रेम लोक विमुख ऐकान्तिक प्रेम नहीं है। उसमें लोकव्यवहार की चिन्ता तथा कर्तव्य की भावना सदा साथ रही है।

इस बिन्दु को दृष्टि से ओझल करते ही नल धीरोदात्त नायक के पद से धीर ललित नायक पद पर आ जाते हैं। वियोग चार अथवा पांच प्रकार का माना गया है।

जिसका हेतु १—पूर्वराग अथवा अभिलाष, २–मान अथवा ईर्ष्या, ३–प्रवास ४–करुण तथा ५–शाप।[१] नैषध का वियोग प्रथम प्रकारान्तर्गत आता है।

दमयन्ती का नल मे अनुराग अत्यन्त स्वाभाविक रीति से उत्पन्न होता हुआ, वर्णित किया गया है। इसके लिए भूमिका के रूप में नल के यश और पराक्रम का वर्णन करते हुये कवि ने उसके रूप सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन किया है। दमयन्ती की वय सन्धि के अवसर पर इन बातो का सुनना या देखना अधिक प्रभावोत्पादक होता है।

पिता के पास द्विज, बन्दि, चारणो के मुख से नल की प्रशंसा सुनकर रोमाञ्चित होना और चित्रकार से भित्ति पर अपना और नल का चित्र बनवाना आदि मनोभिलाष अवस्था के सूचक हैं।

आचार्यों ने पूर्वराग की अवस्था में अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन' उद्वेग, सम्प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, स्मृति (स्मरण) आनेवाली इन दश दशाओ को कामदशा कहा है। सुन्दरी दमयन्ती की करुणदशा सूचक एक चित्र—

"कामदेव के बाण रूप सर्पो से काटे जाने के कारण फैले हुए वियोग रूप विष से विह्वल हुई दमयन्ती ने सूर्य की किरणों से पीड़ित हुई चन्द्रकला की तरह किसे करुणा समुद्र मे नहीं डाला।"

नैषध मे श्रीहर्ष ने इन दश अवस्थाओं को नल तथा दमयन्ती दोनों में क्रमिक चित्रित कर दोनो में तुल्यानुराग दिखाते हुये, लक्षणग्रन्थ का एक

---

१. अपरस्तु अभिलाष, विरहेर्ष्या प्रवास, शाप हेतुक इति पंचविधः

काव्यप्रकाश ४र्थ उल्लास।

केचित्तु पूर्वानुरागमानाख्यप्रवासकरुणात्मना।
विप्रलम्भविधानोऽयं श्रृंगारः स्याच्चतुर्विधः॥

उदाहरण ही मानो प्रस्तुत कर दिया है। श्रीहर्ष ने आदर्शभूत नल-दमयन्ती का प्रेम वर्णन अत्यन्त मर्यादित रूप मे चित्रित किया है। प्रयत्न की अधिकता नायिका की ओर से वर्णित कर, चित्र को स्वाभाविक बना दिया है। नायक की ओर से हंस को भेजने के अतिरिक्त किसी प्रकार का उल्लेख नही है। इससे नायक के चरित्र की उदात्तता तथा गम्भीरता ही प्रतिष्ठित हुई है।

नैषध मे शृंगार रस के दूसरे पक्ष सयोग (सभोग) का आरम्भ स्वयंवर सभा से ही होता है। जब दमयन्ती ने देवताओ मे से नल को पहचान लिया तब दमयन्ती को नल के गले मे माला डालने की त्वरा ने एक ओर अग्रसर किया किन्तु दूसरी ओर लज्जा ने उसे रोका। त्वरा और त्रपा के मध्य आन्दोलित दमयन्ती की स्थिति दर्शनीय है।

एक और चित्र "नल के गले मे डालने के लिये माला से सुसज्जित दमयन्ती का हाथ (जैसे तैसे) नल के सामने हुआ किन्तु लज्जा से निवृत्त हुआ। उसी प्रकार दमयन्ती का चचल कटाक्ष नल के मुख के आधे रास्ते तक जाकर फिर लौट आया"।[१]

इस सयोग शृंगार के अन्तगत, आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट स्त्रियो के शरीरज (भाव, हाव आदि) अयत्नज (शोभा, कान्ति आदि) तथा स्वभावज (लीला, विलास आदि) अलकारों का वर्णन नैषध मे मिलता है। वस्तुत. श्रीहर्ष शृंगार के कवि हैं। उन्होंने अन्य दर्शनों की तरह वात्स्यायन कामसूत्र का अध्ययन और मनन किया था जिसका उपयोग कवि ने १८ तथा २० वे सर्ग के रति केलि वर्णनो के अतिरिक्त, अन्य स्थानो पर अप्रस्तुत रूप मे किया है दमयन्तीका नखशिख वर्णन(सर्ग ७)तथा रति वर्णन उसी ज्ञान का फल है।

वीररस —वीर रस के चारो (दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर तथा दयावीर) रूप नल मे दिखाने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दानवीरता का ही विशेष वर्णन मिलता है। प्रथम, तृतीय और पचम सर्ग में।

रौद्ररस, क्रोध भाव की व्यञ्जना, देव-कलि सवाद में देखने को मिलती है। करुणरस की व्यञ्जना, नल के करपजर मे पड़े हंस के शब्दो मे हुई है। कभी वह अपने दैव को उपालंभ देता है, कभी वह अपनी वृद्धा माता की असहाय अवस्था का स्मरण कराता है तो कभी नवप्रसूता अपनी प्रिया के अकथनीय दुखवाले क्षण का चित्र अंकित करता है।[२]

---

१. नैषध १४।२५, २६, २८

२. नै० १।१३०, १३६, १३७

हास्यरस की छटा सर्ग १६, १७ में मिल जाती है।

वस्तु वर्णन—

नैषध मे, उपवन वर्णन, कुण्डिनपुर वर्णन, अन्तःपुरवर्णन, विवाहवर्णन, प्रभातवर्णन, सन्ध्यावर्णन।

वस्तु वर्णन—के अन्तर्गत नैषध मे कवि ने कुछ संयम से काम लिया है। संयम का अर्थ यथा स्थान कहेंगे। इसके अन्तर्गत उपवन, पुर, अन्तःपुर, विवाह, प्रभात तथा सन्ध्या वर्णन है। जिनका कवि ने तन्मयता से वर्णन किया है। किन्तु साथ ही परम्परागत वर्णनादर्शक का ही अनुसरण किया गया है।

उदाहरणार्थ—

कुण्डिनपुर वर्णन मे स्फटिक मणि निर्मित भवन[1], नीलमणि निर्मित राजप्रासाद[2], श्वेतमणि गृह[3], कुंकुमरागकषायित क्रीडावापि[4], जलपूर्ण परिखा[5], गगनस्पर्शी गृहो की उन्नत पताकाएँ[6], प्रासाद भित्तियो पर निर्मित पुत्तलिकाएँ[7], कनकप्राकार[8], सूर्यकान्त मणियो वाले भवनो से प्रातः से सूर्यास्त तक ज्वालाओ का निकलना[9], समुद्र के समान कोलाहल तथा रत्नादि की तरह बाजार[10], भवन की अट्टालिकाओं पर जटित चन्द्रकान्त मणियो से प्रतिचन्द्रोदय के समय जलस्राव[11] आदि का वर्णन है।

विवाह वर्णन—

इस वर्णन के अन्तर्गत, नगर की अलकृति, मंगलवाद्य, नल-दमयन्ती का

---

१. स्फटिकोपल विग्रना गृहाः। नै० २।७४
२. नृपनीलमणिगृहत्विषाम्। नै० २।७५
३. सितदीप्रमणिप्रकल्पिते यदगारे॥ नै० २।७६
४. सुदती जनमज्जनार्पितघुसृणैर्यत्र कषायिताशया। नै० २।७७ वापिका
५. परिखाकपटस्फुटस्फुरत् प्रतिबिम्बानवलम्बिताम्बुनि। नै० २।७९
६. २।८०
७ २।८१
८. वरण. कनकस्य मानिनीम्—परिरभ्यानुनयन्नुवासयाम्। नै० २।८६
९. अनलैः परिवेषमेत्य या ज्वलदर्कोपलवप्रजन्मभि.। न० २।८७
१०. बहुकम्बमणि—पटु दध्वानयदापणार्णव.। नै० २।८८
११ यदगारघटाट्टकुट्टिमस्रवदिन्दूपलतुन्दिलापया। नै० २।८९

नखशिख शृंगार, वर-यात्रा, विवाह विधि तथा अन्त मे हास-परिहास के साथ बरातियो का भोजन आदि का मनोरम चित्रण किया गया है।

भोजन के अवसर पर हास-परिहास का चित्र कहीं-कहीं मर्यादातिक्रमण कर जाता है, जो खटकता है।

बरात देखने के औत्सुक्य पूर्णत्वरा का परम्परागत वर्णन किया गया है।

पात्र स्वभाव चित्रण—

जैसा कि पीछे हमने कुछ महाकाव्यो के नायकों के चरित्रों को देखा है उनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि सस्कृत प्रबन्ध काव्यो मे पात्रो का चरित्र प्रायः विशेष प्रकार के बने साचे मे ढला हुआ होता है।

यहां भी उसी का अनुसरण किया गया है, किन्तु ईषद् परिवर्तन के साथ अर्थात् कवि अपनी तर्कपूर्ण प्रकृति के अनुसार पात्रो की प्रकृति को भी तर्कपूर्ण दृष्टि से देखते हुए उनका मनोविश्लेषण करने मे सफल हुआ है। काव्य में अमूर्त सूक्ष्म द्वन्द्व की मात्रा का होना, काव्य की सफलता तथा उत्कृष्टता का द्योतक है।

प्रस्तुत काव्य मे नायक नल परम्परा के अनुसार धीरोदात्त के रूप मे स्थित है। आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट धीरोदात्त नायक के सभी गुण नल में पाये जाते हैं। जैसे—यह लक्षण हमने पीछे देखे हैं।

नैषध के प्रारम्भ मे ही कवि ने नल को पुण्यशील, विद्वान्, शास्त्रचक्षु, शूर, त्यागी तथा गुणानुरागी के रूप मे देखा है[१]। नल-दमयन्ती के अनुराग में स्मरतत्त्व होने पर भी, दमयन्ती को माग नही करते, यही उनके स्वाभिमान का द्योतक आचरण है। देवो के दौत्यरूप मे नल के अनेक गुण सामने आते हैं। देवो की मांग स्वीकार करने मे नल की त्यागशीलता, वदान्यता, सरल सहृदयता, कर्तव्य परायणता आदि महापुरुषोचित गुण द्योतित हुए हैं। उपर्युक्त गुणो से नल के हृदय की पावनता के साथ यह भी स्पष्ट होता है कि वे दमयन्ती के अनुराग में अन्धे नही हुये थे। इन्द्रिय भोग लिप्सा की परिधि से कही अधिक ऊँचे उठे हुये थे।

प्रस्तुत काव्य के १८ तथा २० वें सर्ग मे एक सफल गृहस्थ के साथ आदर्श चक्रवर्ती नरेश के सामने आते हैं जो अन्य माण्डलिक राजाओं से उपहार स्वीकार कर पुनः उन्हीं को कुशलप्रश्न पूछते हुये देना, शिष्य राज-

---

१. नै० १।१, ४, ६, १०, १५, १६ और १७

कुमारो को शस्त्रोपदेश देना आदि गुण उन्हे धीरोदात्त नायक के पद से विचलित नही होने देते । वस्तुत. नल महापुरुषोचित गुणो से युक्त है । उदाहरणार्थ हंस की युक्ति—

"यदि महापुरुषो के वर्गीकरण का विचार किया जाय तो नल ही प्रथम परिगणित होंगे, जो अपने तेज के वैभव से असंख्य शत्रुराजाओ के पदो को अपने अधीन करने में पूर्ण समर्थ हुआ है"[१] ।

उपर्युक्त पद वस्तुत नल के जीवन में चारों पुरुषार्थों की धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, साधना हुई है । और यही साधना उसे धीरललित नायक की कोटि मे जाने से रोकते हैं ।

दमयन्ती—

महाकाव्य की परम्परा मे दमयन्ती, (भारवि की द्रौपदी तथा भट्टभीम की मन्दोदरी को छोड़कर) प्रथम काव्य की नायिका है, जिसका चरित्र विस्तृत रूप मे सामने आता है । दमयन्ती का प्रथम परिचय विनयशील के रूप मे होता है । उल्लेख्य यहा यह है कि, दमयन्ती का शृङ्गार रूप मे सर्वांगपूर्ण चित्रण होने पर भी वह सती नारी की पतिभक्ति के रूप मे ही आद्यन्त रहती है । युवतियों की उद्दाम कामवासना मे लिप्त दिखाई नही देती । उसकी तो एकमात्र इच्छा है नल की दासी बनने की, वह हंस से कहती है।

"दासी पद से भी बढ़कर मेरे किसी इष्टविशेष की साधना की आपकी इच्छा को धन्यवाद[२] । उसके मन को अमूल्य चिन्तामणि प्राप्त करने की भी इच्छा नही है[३] । उसके लिये तो त्रिलोकी मे श्रेष्ठ नल का कमल मुख ही खजाना है । चन्द्रोपालम्भ के अवसर पर नल की विरहव्यथा से वह मूर्छित हो जाती है किन्तु पिता के आने पर वह शीघ्र ही विरहव्यथा के चिन्हो को छिपाकर उनके चरणों मे प्रणाम करती है । यह उसके उदात्त चरित्र की विशेषता है । दमयन्ती के उदात्त चरित्र की तेजस्विता, इन्द्र-दूती द्वारा तथा देवो के दौत्यरूप मे नल द्वारा किये गये प्रस्तावो के निराकरण मे लक्षित होती है ।" स्वर्लोक के अधिपति तथा अनन्त ऐश्वर्य के स्वामी इन्द्र के रूप तथा ऐश्वर्य के प्रति उसमे लोभ नहीं है। मानव नल मे ही उसकी निष्ठा है ।

१. नै० ३।२३
२. नै० ३।८०
३. नै० ३।८१

स्वयम्वर के अन्त मे, नरेशो की करुणदशा से द्रवित होकर, दमयन्ती अपने पिता से, दमयन्ती न मिलने के कारण जीवन के प्रति निराश उन राजाओं को अपने समान कला कौशल मे निपुण सुन्दरियों को देने के लिये प्रार्थना कर उन्हें जीवन दान देती है। कितने उदार हृदय का परिचय दिया है। अन्त मे दमयन्ती एक आदर्श गृहिणी के रूप में भी सामने आती है। जो देवपूजा करती तथा पति के भोजन के पश्चात् भोजन करती थी। उसके सारे चरित्र की विशेषता इन्द्र के शब्दो मे यह है। दमयन्ती पृथ्वी का भूषण कोई अमूल्यरत्न और अमोघ कामशास्त्र है।

"या भुव किमपिरत्नमनर्घभूषण जयति तत्रकुमारी।" नै० ५।२६

प्रस्तुत काव्य मे इन्द्र तथा अन्य देवगण प्रतिनायक हैं।

काव्यसौन्दर्य—

श्रीहर्ष ने अपने काव्य को विभिन्न अलकारो से अलकृत किया है किन्तु यहा उल्लेखनीय यह है कि श्रीहर्ष ने अलंकारो का प्रयोग अर्थपुष्टि के लिये किया है। काव्य की रसधारा मे अवरोध उत्पन्न करनेवाले अलंकारो को जैसे मुरज, सर्वतोभद्र और चित्रबन्ध आदि, काव्य मे समादर नही किया है। शब्दालंकारो मे उन्हे अनुप्रास और श्लेष ही अधिक प्रिय होने से, पर्याप्त मात्रा मे काव्य मे प्रयुक्त है। यमक प्राय: सीमित मात्रा मे ही प्रयुक्त हुआ है। उसके साथ ही श्रीहर्ष के काव्य का सहृदय पाठक सच्चे अर्थ मे 'व्युत्पन्न सहृदय' होना आवश्यक है, क्योकि उसकी कल्पनायें उसके अप्रस्तुतो का चयन, व्याकरण, दर्शन और कामशास्त्र आदि से गृहीत होता है। यहा पुन स्मरण रूप में लिखना अप्रासगिक न होगा कि शास्त्रीय अप्रस्तुत विधानो का प्रयोग नैषध में आकस्मिक रूप में नही हुआ है। इसके बीज कालिदास के काव्य में ("धातो स्थानमिवादेश सुग्रीव सन्यवेशयत्। रघु १२ सर्ग") निहित थे और माघ में होते हुए नैषध में विकसित हुये है। इसका परिणाम यह हुआ है कि 'नैषध' सर्वसाधारण भावुक पाठक के लिये पाठ्य न होकर गुरु चरणो में बैठकर ग्रन्थ की जटिल गाठों को ढीली करने वाले व्युत्पन्न सहृदय के लिये है। उदाहरण के लिये नल के साथ इन्द्रादि देवो का श्लिष्ट वर्णन किया गया है। एक पद्य में एक साथ पाचों का वर्णन इतना जटिल हो गया है कि टीका के बिना समझना कठिन है।

व्युत्पत्ति

नैषध में विभिन्न दर्शन-शास्त्रो का उल्लेख मिलता है जो पूर्ववर्ती काव्यों की अपेक्षा कहीं अधिक है।

उदाहरण के लिये—वेदान्त, स्वप्नस्थिति (नै० १।४०) लिंगदेह (नै० ९।९४) बुद्धमत शून्यवाद-विज्ञानवाद आदि (नै० १०।८७) जैनमत रत्न-त्रितय (नै० ९।७१) चार्वाकमत (नै० १७।६९) न्यायवैशेषिकदर्शन (नै० ३।१२५) नैयायिकों की मोक्ष कल्पना (१५।७५) मीमांसा (नै० १४।७३ व ५।३९) स्वत प्रामाण्यवाद (नै० २।६१) सांख्य व योग (नै० ५।९४ व २२।७६) इनके अतिरिक्त कामशास्त्र, ज्योतिष धर्मशास्त्र, नृत्य-गीतादि कला आदि[1]।

नैषध के कवि ने अपनी भाषा वैदर्भी कही है[2]। किन्तु नैषध मे पाडित्य प्रदर्शन की भावना ने वैदर्भी की प्रासादिकता और माधुर्य को कहीं-कहीं अवश्य ही दबा दिया है। छन्द की दृष्टि से भी नैषध में विदग्धता दिखाई देती है। नैषध के खास १९ छन्द हैं जब कि माघ के १६ खास छन्द हैं।

संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा में नैषध का महत्वपूर्ण स्थान

कालिदासोत्तरकालीन संस्कृत महाकाव्यों का अध्ययन श्रीहर्ष की उक्तियों की सत्यता स्पष्ट कर देता है। जैसा पीछे कहा है, श्रीहर्ष ने अपने काव्य को अति नव्य कृति कहा है। उसे ऐसे काव्य मार्ग का पथिक कहा है जिसे अन्य (पूर्ववर्ती) कवियों ने देखा तक नहीं है। उपर्युक्त उक्तियों की सत्यता हम इस प्रकार देखते है।

१—नैषध के पूर्ववर्ती महाकाव्यों मे (जैन व धार्मिक काव्यों को छोड़-कर) अगीरस वीर कहा है और अगरूप मे शृङ्गार की नियोजना की गई है। किन्तु नैषध मे ही सर्वप्रथम परम्परागत अंगी वीर रस के स्थान पर अद्यावधि गौण अग रूप मे स्थित शृङ्गार रस को प्रधान स्थान दिया गया हैं, इसके साथ ही नल जैसे पुण्यशील नायक और दमयन्ती जैसी पतिव्रता नायिका—विभावादिकों द्वारा परिपुष्ट शृङ्गार मे, अर्थ और धर्म का भी समान महत्व वर्णित किया है। शृंगार के दोनों पक्षों मे से संभोग पक्ष की अपेक्षा विप्रलम्भ ही अभिनव शैली मे वर्णित है। पूर्ववर्ती महाकाव्यों का (शिशुपालवध, हरविजय आदि) लक्ष्य लक्षणग्रन्थों मे निर्दिष्ट लक्षणों की पूर्ति करने का रहा है। परिणामत. इतिवृत्त में अनपेक्षित, अप्रासंगिक वर्णनों तथा महाकाव्य के रूढ़ नियमों की पूर्त्ति करने से इतिवृत्त असन्तुलित हो गया

१. विशेष अध्ययन के लिये डा० शुक्ल का 'नैषध' परिशीलन।
२. ३।११६ और १४।९१ नैषध

है। इसके विपरीत नैषध के वस्तु वर्णन मे सागर वर्णन, षड्ऋतुवर्णन, जल-क्रीडा, पुष्पावचय, कुमारजन्म, युद्ध आदि की नियोजना नहीं है। श्रीहर्ष के तार्किक शक्ति ने वर्णनप्रियता का संवरण कर मौलिकता का परिचय दिया है।

३—अलकारो के विषय में श्रीहर्ष का दृष्टिकोण हम पीछे देख चुके हैं।

४—नैषध मे वर्णित प्रकृति वर्णन तथा अन्य स्थल वर्णन मे प्रसगौचित्य होने से, वे पात्रों के मन स्थिति के अनुरूप रहे हैं। उदाहरणार्थ उपवनवर्णन नल के विरही वृत्ति के अनुरूप ही है। कुण्डिनपुरी वर्णन में (२,७३-१०५ व नल प्रासाद वर्णन नै० १८,४-२८) शृंगार रस पोषक ही है।

५—विशेष उल्लेखनीय यह है कि नैषध मे कालिदासोत्तर काव्यो की अपेक्षा हम सर्वप्रथम प्रधान पात्रो के मनोविश्लेषणात्मक सूक्ष्म चित्र देखते हैं जो सर्वथा अभिनव है। नैषध के कवि ने यहाँ अपनी सूक्ष्म तार्किक दृष्टि का परिचय दिया है।

उदाहरणार्थ—नल के सौन्दर्य को देखकर इन्द्रादि देवो के विचार (नै० ५,६०-७३) इन्द्रादि देवो ने नल को प्रार्थना करने पर उसकी मन.स्थिति का चित्र (नै० ५,७९ से ९२) देव दौत्य स्वीकार करने पर विविध मनोभावो से संकुलित नल का हृदय चित्र (नै० ६, १०, १६, १७) नल का कर्तव्य और प्रेम द्वन्द्वात्मक प्रतिमूर्तिरूप स्थिति, स्वयम्वर सभा मे नल की प्रतिमूर्त्ति-रूप इन्द्रादि देवो को देखकर दमयन्ती के मन की स्थिति (नै० १३, ३६ से ५५ तक) दर्शनीय है।

इस प्रकार रससिद्ध एव सर्वांगीण उत्कृष्ट नैषध का परवर्ती काव्यो पर भी पर्याप्त प्रभाव पडा। परिणामत. नैषध की वर्णन शैली के साथ-साथ नल-कथाओं को भी कवियो ने अपनाकर अनेक काव्य नाटक चम्पू लिखे[१] इसके अतिरिक्त नैषध पर उपलब्ध अनेक टीका उसकी लोकप्रियता तथा प्रसिद्धि उद्घोषित करती है।

(२)

पूर्व निर्धारित काव्य शैलियों (१ शास्त्रीय शैली—अ—रस प्रधान, आ—लक्षणप्रधान, इ—शास्त्र या श्लेष या यमकप्रधान) (२) मिश्र शैली—(ऐतिहासिक-पौराणिक या कथात्मक) के प्रमुख काव्यों का हमने विस्तृत परिशीलन

१. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर डा० सु० कु० दे व हिस्ट्री आफ क्लॉसीकल संस्कृत लिटरेचर डॉ एम० कृष्णमाचारिया।

गत पृष्ठो मे देखा है । यहां हम उपर्युक्त शैलियो के अन्य काव्यो का संक्षेप मे विवेचन करते हैं।

रामचरित[1]—

रामचरित महाकाव्य के कवि अभिनन्द के कवित्व की प्रसिद्धि संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थो में उद्धृत इनके श्लोको से उपलब्ध होती है । इनका समय १२वीं शती से पूर्व माना गया है। ये पालवंशीय हारवर्षयुवराज के दरबारी कवि थे।

रामचरित कालिदास की रसप्रधान शैली के अनुकरण पर लिखा गया है। इसमे रामायण के किष्किन्धा काण्ड में युद्ध काण्ड तक का कथानक ३६ सर्गों मे वर्णित है। परन्तु अपूर्ण है। इसके अन्त मे दो परिशिष्ट लगे हैं, जिनमें से प्रथम चार सर्गों की अभिनन्द की कृति है और द्वितीय भी चार सर्गों को किसी भीम कवि की है। कवि ने रामचरित का कथानक (किष्किन्धा काण्ड के मध्य से युद्ध काण्ड की समाप्ति तक) कुछ परिवर्तनो के साथ निम्न कारणो से ग्रहण किया है। प्रथम, यह काव्य नायक रामचन्द्र का उत्कर्ष एवं उनकी उदात्तता, वाल्मीकि रामायण की अपेक्षा अधिक बढाने के लिए, और द्वितीय, काव्य को नवीन कल्पना रंग से अलकृत कर, अपनी विदग्धता का परिचय देने के लिये है।

(१) रामचरित काव्य मे सुग्रीव अपनी सेना के साथ राम की सहायता करने के लिए स्वयं उपस्थित होता है। प्रस्तुत काव्य में वाल्मीकि रामायण की तरह लक्ष्मण को किष्किन्धा मे सुग्रीव को देखने नही भेजा गया है। यद्यपि दोनों काव्यो मे सुग्रीव रामचन्द्र जी की सहायता, एक राजा के नाते और एक मित्र के नाते करने के लिये सहर्ष तैयार है, तथापि रामचरित मे रामचन्द्र जी सुग्रीव की सहायता उसकी इच्छा न होने पर स्वीकार नही करते और उसे किष्किन्धा में अपनी सेनासहित लौटने के लिये आदेश देते हैं।

(२) रामचरित में सीता की खोज मे निकली सेना राम को विष्णु का अवतार मानती है। रामायण में इस भावना का उल्लेख नहीं है। रामचरित मे सीता के शोध में प्रथम सैनिक भेजे जाते हैं और जब वे कोई शोध न मिलने से लौट आते हैं तब सेना के प्रधान स्वयं आते हैं।

---

१. गायकवाड ओरियण्टल सीरीज मे प्रकाशित संख्या ४६,१९३०

(३) विभीषण के राम को मिलने के लिये जाने के पश्चात् रामचरित में मन्दोदरी रावण को एक लम्बा राजनीति पर भाषण देती है, जब कि रामायण मे ऐसी स्थिति नही है।

ऐसे अनेक परिवर्तन कवि ने रामचरित मे कर दिये हैं।

जैसा कि प्रथम कहा गया है कि रामचरित का कवि, कालिदास की शैली का अनुसरण करता है, फलत उसने काव्य की परम्परागत रूढियो को पूर्ववर्ती काव्यो की तरह अपने काव्य मे नियोजित नही किया है और इस स्वतन्त्र विचार कल्पना का परिचय रामचरित काव्य के नाटयात्मक प्रारम्भ से ही मिलता है। प्रस्तुत काव्य मे कवि ने राम को बाल्यरूप मे चित्रित न कर, उसे प्रौढ नायक रूप मे ही स्वीकार किया है। जो काव्य के प्रारम्भ मे ही सीता वियोग की स्थिति मे चित्रित एवं सुग्रीव के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए पाठको के सामने आते है। परिणामत पाठक की अग्रिम कथा को जानने की उत्सुकता स्वभावत ही बढती है।

प्रस्तुत काव्य का कथानक वस्तुनिर्देश से प्रारम्भ होता है। इसमे नगरी, सागर, पर्वत, ऋतु, सूर्य-चन्द्रोदयास्त और तम आदि यथास्थान वर्णित हैं। उदाहरण रूप मे दो-एक चित्र पर्याप्त होगे—

अन्धकार की सघनता को द्योतित करते हुये कवि ने अन्धकार का कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया है।

"अन्धकार मे मृगी के शावक अपनी मृगी को ही भूल गये और कोकयुवति अनायास ही वियोगजन्य दुःख से व्याकुल पति के पास आ गई[1]।"

(२।५९)

अरुणोदय का एक चित्र—

प्रातःकालीन सूर्य की किरण लाल होती है, उनका प्रकाश वृक्षों और आकाश को लाल करते हुये छा जाता है। "पीले रंग के पत्ते नक्षत्र को आकाश रूपी वृक्ष ने नीचे गिरा दिया और उस वृक्ष पर लाल मंजरिया शोभने लगी।"[2] (३।७०)

कवि ने, गौड देश का होने पर भी गौडी को न अपनाकर वैदर्भी रीति को ही स्वीकार किया है, जिसमे माधुर्य और प्रसाद की कमी नही है। छन्द की दृष्टि से काव्य में अनेक छन्दो का प्रयोग मिलता है।

---

१. रामचरित. सर्ग २ श्लोक ५९

२. वही सर्ग ३ श्लोक–७०

(१) अनुष्टुप्, (२) रथोद्धता, (३) वसन्ततिलका, (४) मालिनी, (५) शिखरिणी, (६) उपेन्द्रवज्रा, (७) प्रहर्षिणी, (८) वंशस्थ, (९) मंजुभाषिणी, (१०) हरिणी, (११) शार्दूलविक्रीडित, (१२) मन्दाक्रान्ता, (१३) द्रुतविलम्बित, (१४) पृथ्वी, (१५) उपजाति, (१६) दोधक, (१७) वैतालीय, (१८) शिखरिणी, (१९) रुचिरा, (२०) स्वागता, (२१) प्रमिताक्षरा आदि ।

नेमिनिर्माण

वाग्भट ने जैनतीर्थंकर 'नेमिनाथ' का चरित्र प्रस्तुत काव्य के १५ सर्गों में निबद्ध किया है । यह एक मिश्रशैली के अन्तर्गत पौराणिक शैली का महाकाव्य है । इसमे पूर्वकथित पौराणिक शैली की सम्पूर्ण विशेषताएँ मिलती हैं । साथ ही मूल स्वरुप कथानक को महाकाव्य का स्वरूप देने के लिये कवि ने शास्त्रीय शैली की लक्षणबद्धता भी नियोजित की है । फलत. इसमें सूर्य-चन्द्रोदयास्त वर्णन (सर्ग ९) दूतीप्रेषण (९, ४८-५१) मधुपान, रतिक्रीडा-वर्णन (सर्ग २०) स्त्री सौन्दर्य वर्णन (शारीरिक) सर्ग १२, ३२ से ३९ तक नगरी वर्णन, पर्वत वर्णन आदि ।

पौराणिक शैली की विशेषता के अनुसार इसमे नेमिनाथ ने अपने पांच जन्मो का वर्णन किया है । देव मानवों के साथ व्यवहार करते हैं । अलौकिक अद्भुत वातावरण की कमी नहीं है । अन्त में जैन मत का उपदेश किया गया है ।

कवि ने उपर्युक्त तीर्थंकर के जीवनचरित को गुणभद्र के उत्तरपुराण से लिया है । (पर्व ७१-श्लो० २४) मूल कथानक अत्यन्त छोटा है । इस काव्य पर धर्मशर्माभ्युदय काव्य का प्रभाव पर्याप्त मात्रा मे है । विषयक्रम को उसी के अनुसार रखा गया है ।

पूर्ववर्ती महाकाव्यो में वर्णित काव्य परम्परागत वर्णनों की नियोजना भी मिलती है, जैसे प्रस्तुत काव्य के सर्ग १२ श्लोक ४९ से ६९ तक वर को देखने के लिये पौरांगनाओं की उत्सुकतापूर्ण त्वरा का वर्णन है ।

इस काव्य का अंगीरस शान्त है और गौण श्रृंगार । प्रस्तुत काव्य का नायक नेमिनाथ धीरोदात्त है । भाषा, छन्द और अलंकार की दृष्टि से प्रमुख काव्यो में विभिन्न छन्दो का व अलंकारों का उपयोग किया गया है । सर्ग ७ में तो विभिन्न छन्दों के लक्षण व उदाहरण प्रस्तुत करने के व्याज से ही पर्वत वर्णन किया गया है । उक्त नगरी वर्णन में परिसंख्या अलंकार धर्मशर्माभ्युदय के अनुकरण पर प्रयुक्त है । भाषा वैदर्भी है और प्रसादगुण सर्वत्र है । पीछे हम श्लेष, यमक और श्लेषप्रधान शैली का उल्लेख कर चुके हैं । यहां हम

इस शैली के अन्तर्गत आने वाले यमक और श्लेषप्रधान काव्यों पर विचार करते हैं।

भट्टि के रावणवध काव्य के दशम सर्ग में हम यमक के विभिन्न उदाहरण पाते हैं। परिणामत इसी शैली के अर्थात् यमकप्रधान कुछ काव्य हमें मिलते हैं, जिनमें भट्टि के पश्चात् 'घटकर्पर' एक यमकप्रधान लघुकाव्य मिलता है। एकादश शती के पूर्व ही नीतिवर्मन् का 'कीचक वध' काव्य इसी शैली का एक काव्य है जिसमे महाभारत की कथा के अन्तर्गत भीम द्वारा हुए कीचक वध को पांच सर्गों मे निबद्ध किया गया है और जिसके चार सर्गों मे यमक है और तृतीय सर्ग मे श्लेष का प्राधान्य।

इसके पश्चात् दूसरा यमकप्रधान महाकाव्य वासुदेव विरचित 'युधिष्ठिर-विजय' मिलता है, जिसमे पौराणिक शैली के अनुसार महाभारत की कथा को सक्षेप मे वर्णित किया गया है। इसमें सर्गों के स्थान पर आठ आश्वास का प्रयोग किया गया है। इसमे पाण्डु की मृगया वर्णन से कथा प्रारम्भ होकर महाभारत विजय के पश्चात् युधिष्ठिर के राज्याभिषेक तक की कथा है।

त्रिपुरदहनम्[1]

यह काव्य भी वासुदेव का है इस पर पंकजाक्ष कृत हृदयग्राहिणी व्याख्या है। इसमें तीन आश्वास की नियोजना है।

कथा—असुरों के द्वारा त्रैलोक्य जब पीड़ित होने लगा तब देवताओं ने भगवान से प्रार्थना की तब भगवान श्रीहरि कैलाश पर जाकर श्रीशंकर की आराधना करने लगे। पश्चात् प्रसन्न होकर शंकर द्वारा बताये गये उपायों को श्रीहरि ने अपनाया, त्रिपुर मे जाकर असुरो को शिवभक्ति से विमुख किया। देवताओं ने नारद जी के द्वारा असुर स्त्रियों को कुमार्ग पर प्रवर्तित किया। इस प्रकार असुर समाज से धर्म का निरास किया गया। तब शिवजी धर्मभ्रष्ट हुये असुरो पर क्रुद्ध हुये और असुर उनकी क्रोधाग्नि में जल कर भस्म हो गये।

इस काव्य पर ५ व्याख्यायें सम्पादक के संग्रह मे हैं, उनमे यह हृदय-ग्राहिणी व्याख्या ही सर्वोत्तम है।

वस्तुतः इन काव्यों का महाकाव्य की दृष्टि से कोई महत्व नहीं है। यहां तो महाकाव्य की संज्ञा धारण करने वाले महाकाव्यों पर एक विकास-क्रम को स्पष्ट करने के लिये उल्लिखित किया गया है। श्लेष काव्यो मे—

---

१. अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थावली

सम्पादक शरनाड कुञ्जन् पिल्ल एम० ए० १९५७

'संध्याकर-नन्दी'[1] का रामचरित महाकाव्य है। इस काव्य में राम तथा पालवंशी नरेश रामपाल का एक साथ श्लेष द्वारा वर्णन किया गया है जिसका वस्तुतः श्लेष के कारण साहित्यिक महत्व बहुत ही कम है। साथ ही ऐतिहासिक तथ्य भी धूमिल हो गये हैं इस प्रकार एक ही काव्य में एक साथ दो या दो से अधिक कथाओं को कहने की ओर कवियों का ध्यान गया।

इस श्लेषप्रधान शैली के अन्तर्गत आने वाले काव्यों को हमने पीछे वर्णित किया है यहां दो काव्यों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

धनञ्जय का 'द्विसन्धान काव्य' इसी प्रवृत्ति का सूचक है। इस काव्य का अपर नाम 'राघवपाण्डवीय' है। इसके १८ सर्गों मे श्लेष पद्धति से रामायण और भारत दोनों की कथाओं को एक साथ ही वर्णित किया गया है।

राघवपाण्डवीय—के कवि कविराज सुरि हैं। इसमें १३ सर्ग हैं। ये अपने को सुबन्धु और बाणभट्ट जैसे वक्रोक्ति निपुण कवियों की परम्परा में परिगणित करते हैं। (राघवपाण्डवीय १।४१)

मिश्रशैली के अन्तर्गत कथात्मक काव्यों में अभिनन्द का 'कादम्बरी कथासार' काव्य मिलता है, जिसके ८ सर्गों में सम्पूर्ण कादम्बरी की कथा वर्णित है। कवि ने प्रारम्भ मे अपना परिचय दिया है। इस काव्य मे अनुष्टुप् छन्द के प्रयोग के साथ अन्य छन्दों का भी प्रयोग किया गया है।

---

१. हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित, कलकत्ता १९१०, इसका नवीन संस्करण डा० रमेशचन्द्र मजुमदार के सम्पादकत्व में प्रकाशित है। १९३६

सारतः अरस्तू की काव्यपरिभाषा निम्न प्रकार है—

"काव्य भाषा के माध्यम से (जो गद्य तथा पद्य दोनों ही हो सकती है) प्रकृति का अनुकरण है"[1]।

शेक्सपीयर ने काव्य मे कल्पना को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। शैली ने काव्य को कल्पना की अभिव्यक्ति कहा तो वर्डस्वर्थ ने भावना की प्रधानता को स्वीकृत किया है। मेथ्यू आर्नल्ड ने कविता को जीवन की व्याख्या कहा है। कॉलरिज ने कविता को सुन्दर शब्दों का उत्तम विधान रूप माना है। हडसन की परिभाषा में कुछ समन्वयात्मक रूप मिलता है। उनके मतानुसार काव्य में जीवन की व्याख्या, कल्पना और मनोवेग तीनो के रूप सम्मिलित रूप मे रहते हैं। किन्तु डॉ० जॉनसन के मत में कविता सत्य और आनन्द के योग की कला है, जिसमें बुद्धि की सहायता के लिए कल्पना का प्रयोग किया जाता है। इस परिभाषा मे काव्य के चारों तत्त्वो का समन्वय मिल जाता है। कला से अभिव्यक्ति का अन्तर्भाव हो जाता है।

---

१. अरस्तू का काव्यशास्त्र पृ० २६ वही, सं० डॉ० नगेन्द्र।

Shelley—'Our sweetest songs are those that tell of the saddest tale! They learn in suffering what they teach in song.'

Wordsworth—'Poetry is the spontaneous over flow of powerful feelings. It takes its origin from emotion recollected in tranquility'—

Preface to Lyrical Ballads.

Matthew Arnold—'Poetry is at bottom a criticism of life' (The study of poetry in 'Essays in criticism' Second series)

Coleridge—'Poetry, the best words in the best order' Quoted by Shipley in Quest for Literature P. 241

Hudson—'Poetry is interpretation of life through imagination and emotion.'

(Introduction to the study of poetry P. 62)

Dr. Johnson—'Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason.'

—Life of Milton.

परिशिष्ट १

काव्य के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के मत

पाश्चात्य वाङ्मय में भी काव्य चर्चा पर्याप्तरूप से हुई है। भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य चर्चा पर एक विहंगम दृष्टि डालने से यह विदित हो जाता है कि दोनों आचार्य (भारतीय, पाश्चात्य) अपने मंतव्य में अभिन्न हैं। मार्ग भिन्न-भिन्न होने पर भी दोनों का गंतव्यस्थान 'परमानन्द', एक ही है। अरस्तू ने काव्य को प्रकृति का अनुकरण कहा है। किन्तु इस अनुकरण से उनका तात्पर्य, कोरा अनुकरण ही न होकर, भारतीय साहित्यविदों द्वारा स्वीकृत उसी कवि-कर्म से है, जिसमें कवि न तो वस्तु के स्थूल रूप का अनुकरण करता है और न अविद्यमान वस्तु का निर्माण। वह तो केवल अपनी अम्लान प्रतिभा से उस वस्तु के या लौकिक पदार्थों के मार्मिक रसपूर्ण रूपों का उद्घाटन करता है। आचार्य कुन्तक ने इसी अर्थ में कवि को नमस्कार किया है, जो कवि वस्तु के भीतर लीन सूक्ष्म तत्त्व को अपनी वाणी द्वारा बाहर निकालता है[1], और इसी अर्थ में कवि स्रष्टा भी है[2]। अर्थात् अनुकरण का अर्थ अविद्यमान या (अभूतपूर्व) विद्यमान पदार्थ का सर्जन न होकर (उसके) विद्यमान पदार्थ के आह्लादकारी रूप का उद्घाटन है, उसका पुनर्निर्माण है। अरस्तू के अनुसार छन्द काव्य का अनिवार्य माध्यम नहीं है। काव्य के माध्यम, भाषा, गद्य या पद्य दोनों ही हो सकते हैं[3]। छंद के विषय में पाश्चात्य काव्यशास्त्र में पर्याप्त विवाद रहा है। किन्तु भारतीय साहित्य में पूर्व से ही शब्दार्थ काव्य का माध्यम स्वीकृत होने से इस विवाद का जन्म ही नहीं हुआ[4] और इसी अर्थ में केवल गद्य लिखने वाले दण्डी और बाणभट्टादि महाकवि के रूप में प्रशंसित हुए।

---

१. 'लीनं वस्तुनि येन सूक्ष्म सुभगं तत्त्वं गिरा कृष्यते'।
संपादक डा० नगेन्द्र। व० जी० का० ३२।१०७

२. 'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः' अग्निपुराण अ. ३३८ श्लो० १०

३. काव्यशास्त्र—अरस्तू : ७-१०-७ अनुवाद भूमिका डा० नगेन्द्र। पृ० २३

४. 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यञ्च तद् द्विधा' १।१६ भामह।

सारतः अरस्तू की काव्यपरिभाषा निम्न प्रकार है—

"काव्य भाषा के माध्यम से (जो गद्य तथा पद्य दोनों ही हो सकती है) प्रकृति का अनुकरण है"[1]।

शेक्सपीयर ने काव्य में कल्पना को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। शैली ने काव्य को कल्पना की अभिव्यक्ति कहा तो वर्ड्सवर्थ ने भावना की प्रधानता को स्वीकृत किया है। मेथ्यू आर्नल्ड ने कविता को जीवन की व्याख्या कहा है। कॉलरिज ने कविता को सुन्दर शब्दों का उत्तम विधान रूप माना है। हडसन की परिभाषा में कुछ समन्वयात्मक रूप मिलता है। उनके मतानुसार काव्य में जीवन की व्याख्या, कल्पना और मनोवेग तीनों के रूप सम्मिलित रूप में रहते हैं। किन्तु डॉ० जॉनसन के मत में कविता सत्य और आनन्द के योग की कला है, जिसमें बुद्धि की सहायता के लिए कल्पना का प्रयोग किया जाता है। इस परिभाषा में काव्य के चारों तत्त्वों का समन्वय मिल जाता है। कला से अभिव्यक्ति का अन्तर्भाव हो जाता है।

---

१. अरस्तू का काव्यशास्त्र पृ० २६ वही, स० डॉ० नगेन्द्र।

Shelley—'Our sweetest songs are those that tell of the saddest tale ! They learn in suffering what they teach in song.'

Wordsworth—'Poetry is the spontaneous over flow of powerful feelings. It takes its origin from emotion recollected in tranquility'—

Preface to Lyrical Ballads.

Matthew Arnold—'Poetry is at bottom a criticism of life' (The study of poetry in 'Essays in criticism' Second series)

Coleridge—'Poetry, the best words in the best order' Quoted by Shipley in Quest for Literature P. 241

Hudson—'Poetry is interpretation of life through imagination and emotion.'

(Introduction to the study of poetry P. 62)

Dr. Johnson—'Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason.'

—Life of Milton.

उपर्युक्त काव्य की परिभाषाओं के उल्लेख से यह सुविदित हो जाता है कि भारतीय विचारधारा (शरीर और आत्मा के रूप में) के अनुसार पाश्चात्य साहित्य में काव्य परिभाषाओं का विवेचन नहीं हुआ है। किसी ने भावना पर तो किसी ने कल्पना पर बल दिया है और किसी ने बुद्धितत्त्व एवं शैलीतत्त्व पर।

सारत. पाश्चात्य कवियों की काव्य संबन्धी परिभाषाओं के अध्ययन से निम्नोक्त काव्य संबंधी चार तत्त्व माने जा सकते हैं—

१—भावनातत्त्व

२—बुद्धितत्त्व

३—कल्पनातत्त्व

४—शैलीतत्त्व

भावनातत्त्व से तात्पर्य रागात्मक तत्त्व या भावनाओं और मनोगतों से है। जिन्हे कवि अपने काव्य मे अभिव्यक्त करता है। भावतत्त्व ही काव्य का आत्मतत्त्व है और अन्य शेष तत्त्व, बुद्धितत्त्व, कल्पनातत्त्व और शैली-तत्त्व इसी के आश्रित रहते हैं। कवि की अम्लान प्रतिभा बाह्यी सृष्टि के पदार्थों का निरीक्षण करती हुई उन्हे आत्मसात् करती है और फलतः मनोवेग के किसी विशेष उद्रेकद्वारा उस पदर्थ का मार्मिक रूप (भावनासत्य) ललित शब्दार्थों द्वारा अभिव्यक्त होता है।[१]

बुद्धितत्त्व—

यह तत्त्व भावतत्त्व की अपेक्षा गौण होने पर भी महत्त्वपूर्ण है। यह भावतत्त्व का अवलंब है। काव्य दोनों का समन्वयात्मक रूप है। बुद्धितत्त्व के अभाव मे भावतत्त्व का काव्य में कोई अस्तित्व नहीं। केवल भावनावेग से ही काव्य का जन्म नहीं होता। केवल भावनापुंज विक्षिप्त का प्रलाप मात्र है। उसे बुद्धि के परिमार्जन की आवश्यकता होती है। भावनास्रोत में व्यव-स्था-क्रम और मर्यादा निश्चित करने का काम बुद्धि का ही है। इसी से

---

१. विंचेस्टर का मत उद्धृत करते हुए प० रामदहिन मिश्र जी ने लिखा है कि काव्य के मूल तत्त्व चार होते हैं। पृ० १३ काव्यदर्पण।

(क) भावात्मकतत्त्व—इसमें रस ही मुख्य है।

(ख) बुद्धितत्त्व—इसमें विचार की प्रधानता है।

(ग) कल्पनातत्त्व—रसाभिव्यक्ति में इसकी प्रधानता मानी जाती है।

(घ) काव्यांग इसमें भाषा, शैली, गुण' अलंकार आदि हैं।

भावना में सौष्ठव आता है। दोनों तत्त्व अन्योन्याश्रित हैं, केवल भावना एक अस्थिहीन मांसपिण्ड के सदृश है और केवल बुद्धि मांसहीन भयावह शुष्क कंकाल के सदृश। बुद्धितत्त्व से ही काव्य में 'सत्यं, शिवं', की रक्षा होती है।

कल्पनातत्त्व—

कल्पनातत्त्व से तात्पर्य वर्ण्यवस्तु का यथावत् चित्रण है। वाक्य का अधिकांश भाग कल्पना निर्मित होता है। भारतीय साहित्यशास्त्र में कल्पनातत्त्व का स्वतन्त्र रूप से विचार नहीं किया गया है। वस्तुतः भक्तिक्षेत्र में जो उपासना है वही काव्यक्षेत्र में भावना और कल्पना की संज्ञा से अभिहित होती है। 'जो वस्तु हमसे अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है, उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके सामीप्य का अनुभव करना ही उपासना है। जिस प्रकार भक्ति के लिए उपासना या ध्यान की आवश्यकता होती है उसी प्रकार अन्यान्य भावों के प्रवर्तन के लिए भी भावना या कल्पना अपेक्षित होती है'[१]।

हमारे यहां नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा—विवेचन के अन्तर्गत ही इसका अन्तर्भाव है। कल्पना दो प्रकार की होती है (१) विधायक, (२) ग्राहक। कवि में विधायक और पाठक में अधिकतर ग्राहक कल्पना अपेक्षित होती है। यहां अधिकतर कहने का तात्पर्य यह है कि जहां कवि पूर्ण चित्र अंकित नहीं करता, वहां श्रोता या पाठक को विधायक कल्पना के सहारे ही उस अपूर्ण चित्र को पूर्ण करना पड़ता है। उस कृति में पाठक को अपनी ओर से मूर्ति विधान करना पड़ता है। पाश्चात्य साहित्य में काव्य के चार तत्त्वों में इसका विवेचन किया गया है। इसी तत्त्व के आधार पर कवि को प्रजापति की संज्ञा दी गई है। कवि अपनी अनुभूति को इसी तत्त्व के आधार पर अन्य सामग्री से पुष्ट करते हुए, अभिव्यक्त करता है। वाक्य में भावना सौन्दर्य 'सुन्दरं' की रक्षा का भार इसी पर रहता है। इसी तत्त्व के साधन से कवि अपने मनोगतों को 'सुन्दरं' के परिधान में आवृत कर सहृदयों को आह्लादित करता है।

शैलीतत्त्व—

शैली से तात्पर्य अभिव्यक्ति के ढंग से है। यह सहृदय और कविहृदय के मध्यस्थित तन्तु है, जिससे कविहृदय के स्पन्दन के साथ-साथ पाठक के हृदय का भी स्पन्दन होता है इसी तत्त्व के अन्तर्गत भारतीय रीति, गुण, छंद, शब्दशक्तियां आती हैं। पाश्चात्य साहित्य में शैलीतत्त्व पर अधिक विचार-विमर्श हुआ है। शैलीतत्त्व, भावतत्त्व का बाह्यरूप होने पर भी उसे सरस एवं विकसित करने

१. रसमीमांसा—आ० रामचन्द्र शुक्ल पृ० २१

में सहायक होता है। कवि-स्वभावानुसार शैली में भी भेद हो जाता है।[1] काव्य रचना में कविस्वभाव ही प्रमुख है[2]। हृदयगत भावों को प्रत्यक्षानुभूति के योग्य बनाने में ही कवि की योग्यता निहित है।

भारतीय काव्यशास्त्रकारों का दृष्टिकोण कुछ भिन्न रहा है। यहां के सभी प्रतिनिधि लक्षणों में, काव्य को शब्दार्थरूप में माना गया है। भामह ने काव्य को शब्दार्थ रूप में माना है।[3]

दंडी ने इष्टार्थयुक्त पदावली को काव्य शरीर कहा है[4]। कुन्तक के मत मे वक्रोक्तियुक्त बंध मे सहभाव से स्थित शब्दार्थ ही काव्य है।[5] मम्मट ने दोषरहित शब्द और अर्थ के गुण एवं अलंकारयुक्त रूप को और कहीं अलंकार के स्पष्ट न रहने पर भी काव्य कहा है।[6] विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा[7] तो पं० जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा।[8]

उपर्युक्त काव्य लक्षणों से यह विदित होता है कि यहां काव्य पर दो दृष्टियों से विचार किया गया है—(१) शरीर और (२) आत्मा की दृष्टि से। काव्य शरीर सम्बन्धी विद्वान भी दो वर्गों में विभाजित हैं। (१) केवल शब्द को काव्य कहने वाले और (२) शब्द और अर्थ—उभय को काव्य मानने वाले।

सारतः कुछ लक्षण बहिरंग निरूपक हैं और कुछ अंतरंग निरूपक। बहिरंग निरूपक काव्यलक्षणों में प्रसिद्ध काव्यलक्षण मम्मट का है। आचार्य मम्मट ने काव्य के अंग उपांगो की विशिष्टता का सूक्ष्म वर्णन किया है। इनके मता-

---

१. 'अस्त्यनेको गिरां मार्गः सूक्ष्मभेदः परस्परम्।'
काव्यादर्श दंडी १।४० चौ० सं० प्र०

२ शृंगारी चेत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स एव वीतरागश्चेन्नीरस सर्वमेव तत् उ० ३, कारि० ४३ ध्व० लो०
'स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते' १।२४ व० जी० कुन्तक

३. 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' भामह १।१६ काव्यालंकार

४. 'शरीर तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली' १।१० काव्यादर्श

५. शब्दार्थसहितौ वक्रकविव्यापारशालिनी। बन्धे व्यवस्थितौ काव्यम्'।
व० जी० १।७

६. 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि' का० प्र० १ उल्लास

७. 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' सा० दर्पण १।३

८. रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। रसगंगाधर-प्रथमानने

नुसार काव्य में शब्द और अर्थ का हृदयहारी समन्वय होता है। इसी अर्थ का प्रतिपादन कवि कालिदास ने रघुवंश के प्रथम श्लोक में किया है। शब्द और अर्थ का संबंध नित्य होता है, शब्दोच्चारण के साथ ही साथ अर्थ स्वयमेव चला आता है ये दोनों मिलकर ही हृदयाह्लाद को जन्म देते हैं। किन्तु ये शब्द और अर्थ मम्मट के मतानुसार दोषहीन, गुणों से मण्डित, एवं प्राय: अलंकारयुक्त होने चाहिये। मम्मट की काव्य परिभाषा में प्रयुक्त उपर्युक्त विशेषणों के विरुद्ध कुछ विद्वानों ने कहा कि दोष का संबंध काव्य शरीर से न होकर उसके उत्कर्ष या अपकर्ष से है। श्रुतिकटुत्वादि दोष से काव्य काव्यत्व से हीन कदापि नही हो सकता, मनुष्य एक आंख से हीन होने पर भी अपने मनुष्यत्व से हीन नहीं होता।

उसी प्रकार दोष होने पर काव्य के काव्यत्व मे अपकर्ष हो सकता है, वह काव्य तो अवश्य मेव ही रहेगा। फलत. मम्मटोक्त 'अदोषौ', विशेषण काव्य के शरीर से नितान्त आवश्यक मानना उचित प्रतीत नहीं होता। किन्तु इस आलोचना का सारगर्भित उत्तर मम्मट ने पूर्व से ही अपने ग्रन्थ मे समाविष्ट कर रखा है। मम्मट ने काव्य के मुख्यार्थ के विघातक को दोष कहा है[1] और यहा 'मुख्यार्थ विघातक' से तात्पर्य रसादिरूप अर्थ के अपकर्ष से है। केवल दोष की सत्ता से काव्य के काव्यत्व की हानि नही होती क्योंकि सब दोष, दोष नही होते कुछ अनित्य होते हैं और कुछ नित्य। इनमे से बहुत वक्ता, बोद्धव्य, रस, भाव, वाच्य, प्रकरणादि की महिमा से गुणरूप हो जाते हैं। काव्य मे रसदोष ही मुख्य होते हैं, उनका परिहार परमावश्यक है[2]। इस प्रकार मम्मटोक्त 'अदोषौ' विशेषण सर्वथा उचित है।

'सगुणौ', इस विशेषण पर भी कविराज विश्वनाथ ने आपत्ति की है। मम्मट ने गुणों, (प्रसाद, माधुर्य, ओज) को रस के अचल धर्म होने से नित्य माना है, और अलकारो को अनित्य। काव्य में गुणों का सम्बन्ध प्रधानतया रस से और गौणतया शब्द-अर्थ से है। पूर्वोक्त आपत्ति के अनुसार ही यहा भी यही कहा गया है कि विद्वत्तादि गुणों से मण्डित न होने पर मनुष्य के मनुष्यत्व की हानि नहीं होती। अतः गुणों का सम्बन्ध काव्य के स्वरूप से नहीं है। इसलिये काव्यलक्षण मे इन्हें रखना कोई आवश्यक नहीं। इस मत का खण्डन प्रदीपकार ने किया है। किन्तु यह तो अनुभवसिद्ध है कि गुणमण्डित होने पर उत्कर्ष होता है और इनके अभाव में अपकर्ष। यदि काव्य अपने

---

१. का० प्रकाश उल्लास ७, ४९

२. वक्त्राद्यौचित्यवशाद्दोषोऽपि गुणः···७।८१ काव्य प्र०

लक्ष्य की सिद्धि नहीं कर सका तो उसका काव्यत्व होने या न होने के बराबर ही है। निष्कर्षतः काव्य मे गुणों का होना परमावश्यक है। 'अनलंकृती पुन क्वापि', शब्द और अर्थ को अलंकृत होना चाहिये, किन्तु अलंकृत न होने पर भी, कोई आपत्ति नहीं। अलकार की अनिवार्यता आचार्य मम्मट नहीं मानते। क्योंकि रस दशा में काव्य में अलंकार आवश्यक नहीं होते। सारत मम्मट का काव्यलक्षण वर्णनात्मक है। इसमे सांगोपांग की विलक्षणता एवं चमत्कार का वर्णन है। इस प्रकार मम्मट ने आदर्श काव्य का स्वरूप प्रस्तुत कया है।

अन्तरंग लक्षण—विश्वनाथ कविराज ने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है। 'वाक्य रसात्मक काव्यम्। इस लक्षण मे काव्यात्मा रस के उल्लेख के साथ ही साथ वाक्य से शरीर का भी उल्लेख कर दिया गया है। किन्तु इस लक्षण पर प० जगन्नाथ ने आपत्ति की है, क्योंकि रसात्मक वाक्य को ही काव्य मानने पर महाकवियों के काव्य समुद्र, नदी, पर्वत, प्रकृतिवर्णन से युक्त होने से अकाव्य हो जायेंगे। क्योंकि इन वर्णनो मे रस का साक्षात् सम्बन्ध नही आता। इसीलिये उन्होने रसगुण का उल्लेख न करते हुये केवल रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को ही काव्य कहा है 'रमणीयार्थप्रतिपादक शब्द काव्यम्' इसमे भी काव्यशरीर मे (शब्द और अर्थ) शब्द द्वारा प्रतिपादित अर्थ ऐसा हो जो हृदय में चमत्कार (आनन्द) की निष्पत्ति करे, कहा गया है। अर्थात् यह कहा जा सकता है कि हृदय मे रमणीय अलौकिक आनन्द का सचार करने वाले शब्द अर्थ की रचना ही काव्य है।

भारतीय और पाश्चात्य समन्वय

इस प्रकार भारतीय और पाश्चात्य काव्यलक्षणो की विश्लेषणात्मक चर्चा हमें इस निष्कर्ष पर ले जाती है कि दोनो साहित्यविदो के मार्ग भिन्न-भिन्न होने पर भी दोनो का गन्तव्यस्थान एक ही है—परमानन्द की प्राप्ति। भारतीय काव्य को[1] उक्ति रूप माना गया है जिसकी आत्मा 'रस' है। और शरीर है, शब्द और अर्थ का मञ्जुल समन्वय।

---

१. 'उक्तिविशेष काव्यम्'

Rajasekhare, Karpurmanjari, Prologue quoted by V. Raghavan, M.A Ph D

Bhoja Sringarprakasha Vol I. Chapter IX

Bhoja distinguishes Kavya, Sastra and Itihasa he says S. K A. P. 260

'तदिदम् उक्ति प्रांधान्यात् काव्यमित्युच्यते। वही

विशिष्ट आनन्द प्रदान करता है[1]। पात्रों की दृष्टि से और कालावधि की दृष्टि से महाकाव्य और त्रासदी में समानता है। दोनों में उच्चतर कोटि के पात्रों की नियोजना होती है। त्रासदी का काव्य व्यवहार सूर्य की एक परिक्रमा या कुछ अधिक समय तक सीमित होता है जब कि महाकाव्य के कार्य-व्यापार में समय की कोई सीमा नहीं होती[2]।

महाकाव्य और इतिहास में अन्तर

इतिहास और महाकाव्य में मौलिक अन्तर है। इतिहास एक काल खंड को और उस काल खण्ड में एक या अनेक व्यक्तियों से सम्बन्धित सभी घटनाओं को अंकित करता है, ये अंकित घटनायें परस्पर असम्बद्ध एवं परिणाम में भी भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। किन्तु कुशल महाकाव्यकार सभी घटनाओं को महाकाव्य में स्थान नहीं देता, वह तो केवल उन्हीं घटनाओं को ग्रहण करता है जो परस्पर सम्बद्ध एवं परिणाम में एक होती है। वह एक प्रमुख कार्य को लेकर उससे सम्बद्ध अनेक घटनाओं को उपाख्यानों के रूप में ग्रथित करता है इस तरह वह अनेकता में एकता स्थापित कर महाकाव्य के एकान्विति प्राणतन्तु की रक्षा करता है।

यह तो पूर्व ही स्पष्ट कर दिया है कि महाकाव्य और त्रासदी के अंग (गीत एवं दृश्यविधान के अतिरिक्त) समान होने से महाकाव्य के कथानक का निर्माण भी नाट्य सिद्धान्तों के अनुसार ही होता है।

कथावस्तु—

महाकाव्य का कथानक प्रख्यात होता है। उसमें यथार्थ की अपेक्षा श्रेष्ठतर जीवन का अंकन होता है। वह न तो शुद्ध रूप से ऐतिहासिक ही होता है और न कोरा काल्पनिक पाठकों और श्रोतागणों की जिज्ञासा बढ़ाने तथा

---

1. As to that peoetici mitation which is narrative in form and employes a single metre, the plot ought, as in a tragedy to be constructed on dramatic principles. It should have for its subject a single action, whole and complete, with a beginning a middle and an end. It will thus resemble a single and coherent oreganism and produce the pleasure proper to it.

Aristotle's Theory of Poetry and fine Arts. A. H. Butcher M.P. 4th Edition London 1927 Page 89–91.

२. 'अरस्तू का काव्यशास्त्र' अनु० डा० नगेन्द्र। प्रथम संस्करण, पृ० १८

परिशिष्ट २

महाकाव्यविषयक पाश्चात्य धारणा

पाश्चात्य साहित्य में महाकाव्य को एपिक् (Epic) कहा जाता है। (Epic) एपिक् शब्द ग्रीक (Epos) से बना है जिसका अर्थ है वचन, शब्द, कथन (Saying) या देवताओं या सिद्ध पुरुषों के वाक्य (Oracle) और धीरे-धीरे इस (Epos) एपोस् का प्रयोग वक्तव्य अथवा गीत के लिये होने लगा। होमर के पूर्ववर्ती हेसिअड् (Hesiod) ऐसे ही वक्तव्यों या लोकगीतों का कर्त्ता कहा जाता है।(Homer) होमर ने इन्ही लोकगीतों से (Epopee) महाकाव्य का निर्माण किया। इनमे प्रधानतः पुराणों (Mythology) और दन्तकथाओं (Legends) का मिश्रण रहता है। पुराणान्तर्गत देव-देवताओं का निर्माण निसर्गशक्ति के विषय आदिमानवों द्वारा की हुई कल्पना जगत् से हुआ है और दन्तकथाओं (Legends) मे ऐतिहासिक प्रसंगों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन होता है। इन्ही दो घटकों के कल्पनारम्य मिश्रण से प्राचीन (Epics) महाकाव्यों का निर्माण हुआ है। तात्पर्य यह है कि किसी भी देश के मानव को निसर्ग और मानवी जीवन से प्राप्त प्रथम अनुभव का कथात्मक एवं कल्पनारम्य चित्रण ही उस देश के महाकाव्य होते हैं।[1] कालान्तर से यह 'एपिक' वीर काव्य का बोधक हो गया जिसमें किसी महान् घटना या महत्वपूर्ण विषय का ओज और प्रभावपूर्ण शैली मे वर्णन हो।

अरस्तू की परिभाषा

अरस्तू के मत मे महाकाव्य और त्रासदी = ट्रेजेडी (दुखान्तनाटक) मे पर्याप्त समानता है। महाकाव्य के सम्पूर्ण तत्त्व त्रासदी मे वर्तमान होते हैं। उसके अनुसार महाकाव्य भी, काव्य कला के विभिन्न रूपों मे से, एक अनुकरण का ही प्रकार है। उसकी रचना समाख्यान शैली में होती है। उसमें एक षट्पद वीर वृत्त का ही निरन्तर प्रयोग होता है। जिसके कथानक का निर्माण त्रासदी की तरह नाट्य सिद्धान्तों के अनुसार ही अन्वितियुक्त होता है। जिसमें कोई एक समग्र एवं पूर्ण कार्य आदि, मध्य और अन्त युक्त होने से एक जीवित प्राणी-सा प्रतीत होता है और इस तरह वह काव्य रूप अपना

1. Illusion and Reality Page 13 Cawdwel.

कथानक में कलात्मकता एवं असाधारणता का गुण उत्पन्न करने के लिये कवि को कल्पना का आश्रय लेना चाहिये। त्रासदी की अपेक्षा महाकाव्य में कल्पना का अधिक प्रयोग हो सकता है। क्योंकि महाकाव्य में अपनी सीमाओं का विस्तार करने की क्षमता होती है। उसमें विविध उपाख्यानो का समावेश होता है। इस कारण एक ओर उसके प्रभाव में वृद्धि होती है और दूसरी ओर कथा की एकरसता दूर होकर श्रोतागणों का मनोरंजन होता है[१]। यद्यपि महाकाव्य मे रंगमंच का, देशकाल सम्बन्धी सीमाओं का बन्धन नहीं होता, फिर भी उसमें प्रयुक्त उपाख्यानों की बहुलता पर एकान्विति आदि, मध्य और अवसान का नियन्त्रण आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त महाकाव्य मे त्रासदी की अपेक्षा अतिप्राकृत अलौकिक और असम्भव बातों के वर्णन के लिये अधिक अवकाश रहता है क्योकि महाकाव्य मे अभिनेता प्रत्यक्ष उपस्थित नही होता और अद्‌भुत बातों के वर्णन से पाठक आह्लादित भी होता है। क्योंकि मनुष्य स्वभाव की यह प्रवृत्ति है कि वह किसी कथा को, अपनी ओर से बढ़ा-चढ़ा कर कहता है। इसी कारण महाकाव्य मे अलौकिक अतिप्राकृतिक शक्ति वाले मानवों, देवताओं और प्रसगो का चित्रण होता है[२]। इसीलिये महाकाव्यकार को अरस्तु का कहना है कि वह 'असभाव्य प्रतीत होनेवाली सम्भावनाओ की अपेक्षा संभाव्य प्रतीत होनेवाली असम्भनाओं को प्राथमिकता दें'[३]। अर्थात् महाकाव्य मे भी इस बात का नियन्त्रण रहे कि जो कुछ भी वर्णित किया जाय या कहा जाय वह पाठकों को असम्भव न प्रतीत हो।

वस्तुव्यापार वर्णन—

महाकाव्य में अनेक वस्तुओ, विविध परिस्थितियो और भावों तथा अनुभावो के विस्तृत वर्णनो की नियोजना होती है। सम्पूर्ण जीवन की एक झाकी प्रस्तुत करने के लिये महाकाव्यकार अपनी कल्पना से जीवन के विविध चित्र तथा उससे सम्बन्धित अन्य आवश्यक वस्तुओं तथा व्यापारों का अंकन करता है। उदाहरणार्थ उसमे समुद्री पोतो की सूची तथा अन्य विवरण और

---

१. अरस्तू का काव्यशास्त्र, अनु० हिन्दी—डा० नगेन्द्र, प्रथम संस्करण, हिन्दी अनुसन्धान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय पृ० ६३

२. वही पृ० ६५

३. वही पृ० ६५

(नाटक तथा महाकाव्य के सभी अंग समान होने से) जीवन के विविध व्यापारों जैसे युद्ध, क्रान्ति, अन्वेषण, दुर्घटना आदि का वर्णन होना चाहिये[1]।

पात्र—

अरस्तू ने महाकाव्य के पात्रों के स्वरूप आदि पर विशेष विचार नहीं किया है। केवल एक वाक्य लिखा है कि 'दोनों महाकाव्य और त्रासदी में उच्चतर कोटि के पात्रों की पद्यबद्ध अनुकृति रहती है'[2]। महाकाव्य मे कवि को कम से कम बोलना चाहिये। होमर में यह एक विशेष उल्लेखनीय गुण है, वह जानता है कि कवि को कब और कितना बोलना चाहिये। प्रस्तावना के रूप मे दो शब्द बोलकर वह तुरन्त ही पात्रों को मञ्च पर ले आता है जिनका अलग-अलग व्यक्तित्व होता है[3]।

महाकाव्य की भाषा, शैली और छन्द

अरस्तू के मत मे महाकाव्य की शैली मे दो गुण आवश्यक है—वे हैं गरिमा और प्रसाद गुण। और यह गरिमा गुण, शब्द प्रयोगों मे, वाक्य रचना में और मुहावरो मे असाधारणता से आता है। अर्थात् उपर्युक्त शब्दादि कम प्रचलित हों। उसके मत में शब्दों के ६ भेद है। १. प्रचलित, २. असामान्य, ३. लाक्षणिक, ४. आलंकारिक, ५. नवनिर्मित, ६. संकुचित या परिवर्तित। सम्पूर्ण शब्द भेद रौद्रस्तोत्र के लिये, अप्रचलित वीरकाव्य के लिये और औपचारिक द्विमात्रिक वृत्त के सबसे उपयुक्त होते हैं। वीरकाव्य में ये सभी

---

1. 'Instead of this, selecting one part only of the war, he has from the rest introduced many episodes--such as the Catalogue of the Ships and others by which he has diversified his poem……Its parts also, setting aside music and decorations, are the same for it requires revolutions, discoveries and disasters. Page 47.

Aristotle's Poetics—Part III of the Epic Poem.

Everyman's Library edition edited by T.A. Moxon. 1949

2. 'Epic Poetry agrees with tragedy in so far as it is an imitation in verse of characters of a higher type' Page 21

Aristotle's Theory of Poetry and fine Arts S. H. Butcher M.P. 4th Edition London 1927.

३. अरस्तू का काव्यशास्त्र, अनु० डॉ० नगेन्द्र पृ० ६४

प्रकार के शब्द काम दे सकते है। संक्षेप मे महाकाव्य की भाषाशैली असाधारण शब्द प्रयोगों से कलात्मक, उदात्त और गरिमायुक्त होनी चाहिये। साथ ही वह प्रसादपूर्ण भी हो[1]। महाकाव्य में आद्यन्त एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिये और वीर छन्द ही उपयुक्त सिद्ध हो चुका है[2]।

अरस्तू के अनुसार नाटक की तरह, महाकाव्य के भी उतने ही प्रकार होते हैं सरल और जटिल, नैतिक और करुण। होमर का इलियड सरल और करुण है और ओडेसी, जटिल और नैतिकतापूर्ण है[3]।

उद्देश्य—

अरस्तू के अनुसार काव्य एक कला है। जिसका उद्देश्य अनुकृति द्वारा शिक्षा तथा आनन्द प्रदान करना है। इस प्रकार अनुकरण रूप काव्य के दो प्रयोजन अरस्तू ने माने हैं। १ शिक्षा, २. आनन्द। क्योंकि अनुकरण की यह सहज प्रवृत्ति मनुष्य में शैशवकाल से ही होती है। आरम्भ मे वह अनुकरण के द्वारा ही सीखता है और अनुकृत वस्तु आनन्द प्राप्त करता है जो सार्वभौम होता है। वस्तुत प्रतिकृति को देखकर मनुष्य उससे कुछ ज्ञान प्राप्त करता है और यही ज्ञान, आनन्द का साधन है। इस प्रकार उपर्युक्त दो प्रयोजन ज्ञान और आनन्द पृथक होते हुए भी एक ही हैं। इस तरह महाकाव्य का उद्देश्य जो महत्वपूर्ण घटनाओ और उदात्त चरित्रो का गरिमामयी शैली में अनुकरण करता है, भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिपादित प्रयोजन उद्देश्य के समान ही समाज को सकल प्रयोजन मौलिभूत आनन्द ही प्रदान करना है[4]।

---

१. अरस्तु का काव्यशास्त्र, अनु० डॉ नगेन्द्र पृ० ५४ से ६१

२. वही पृ० ६४

३. 'Again, Epic Poetry must have as many kinds as tragedy, it must be simple or complex or ethical or pathetic.'

Aristotle's Theory of Poetry and fine Arts S.H. Butcher M. P. 4th Edition London 1927. page 91.

४ 'All men, likeiwse, naturally receive pleasure from imation This is evident from that we experience in viewing the works of imitative art, for in them we contemplate with pleasure and with the more pleasure, the more exactly they are imitated, such objects as, it real, we could not see without pain, as the figures of the meanest and most disgusting

पाश्चात्य आलोचकों की कुछ अन्य परिभाषाएं

१. लोर्ड कैम्स (Lord Kames) के मत में 'वीरतापूर्ण कार्यों का उदात्त शैली में वर्णन ही महाकाव्य है'[१]।

फासीसी विद्वान् ला वस्यु (Le–Bossue) के विचार मे महाकाव्य प्राचीन महत्वपूर्ण घटनाओं का पद्यबद्ध वर्णन है[२]। और Hobbes हाब्स के मत में—'वोरतापूर्ण प्रकथनात्मक काव्य ही महाकाव्य है'[३]।

पाश्चात्य विद्वानो ने महाकाव्य के दो भेद किये हैं। वे हैं (१) संकलनात्मक या विकसनशील महाकाव्य, (२) अलकृत या कलात्मक महाकाव्य।

एवर क्राम्बे तथा सी० एम० बावरा के विचार मे एपिक के दो भेद है[४]। (१) अलंकृत या साहित्यिक, (२) सकलनात्मक या ऐतिहासिक।

इन्ही दो भेदों को भिन्न-भिन्न नामो से अभिहित किया गया है।

Epic of Growth संकलनात्मक, विकसनशील प्रामाणिक, Authentic Literary कलात्मक अलंकृत या साहित्यिक।

---

animals, dead bodies and like. And the reason of this is that to learn is a natural pleasure not confined to philosophers, but common to all men ..... Hence the pleasure they receive from a picture, in viewing it they learn, they infer, they discover what every object is, that this, for instance, is such a particular man ' T.A. Moxon, Aristotle's Poetics. p. 9

१. 'As to the general taste there is a little reason to doubt that a work where heroic actions are related in a elevated style will, without furthre requisite, be deemed on epic poem.'

M. Dixon–English Epic and Heroic Poetry Page 18.

२. Le-Bossue defined epic, therefore, as a composition in verse intended to form the manners by instructions disguised under the allegories of an important actions'...Ibid Page 2.

३. 'The Heroic poem narative is called an epic poem' said Hobbes 'the Heroic poem dramatic is tragedy' Ibid Page 22.

४. The Epic, an Essay–Abercrombie, page 25 from Virgil to Milton by C. M. Bowra Page 16.

"संकलनात्मक महाकाव्य केवल किसी एक व्यक्ति या कवि की साहित्यिक रचना न होकर वह अनेक लेखकों की प्रतिभा का फल होता है[१]।"

कभी-कभी कोई प्रतिभाशाली कवि समाज में पूर्व-प्रचलित गाथाचक्रों या विविध कथाओं को एक सूत्र में ग्रथित कर देता है। इस प्रकार काव्योचित रूप प्राप्त रचना सुनाने या गाने के लिये की जाती है[२]। जैसा कि हमने पूर्व ही प्रतिपादित किया है कि प्रारम्भिक विकसनशील महाकाव्य मौखिक परम्परा में ही विकसित होते रहे हैं। ये श्रव्यकाव्य होते हैं इनमे प्राचीन वीर पुरुषों की वीर गाथाओं का चित्रण स्वाभाविक, सरल शैली में होता है। होमर के इलियड और ओडेसी जैसे महाकाव्यों को संकलनात्मक महाकाव्य कहा जाता है और सस्कृत के महाभारत और रामायण भी ऐसे ही विकसनशील प्रबन्ध महाकाव्य हैं।

कलात्मक महाकाव्य—

जो रचना व्यक्तिविशेष द्वारा पूर्वनिश्चित रूप में, कलात्मक एवं साहित्यिक अंग-संगठन के विधान से लिखी जाती है, जिसका उद्देश्य मनोरञ्जन अधिक हो, जो कल्पनाप्रधान हो, वह अलंकृत या साहित्यिक महाकाव्य हैं। इसमे स्वाभाविकता एव सरलता के स्थान पर कृत्रिमता रहती है[३]। यह रचना प्रधानतः श्रव्य न होकर पाठ्य होती है। इसमे कलात्मकता एवं साहित्यिकता अधिक होने से यह जनसाधारण के लिये न होकर विद्वानों के लिये ही होती है। कलात्मक महाकाव्य का निर्माण काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है। इसमे भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष प्रधान होता है। इसमें कवि का ध्यान काव्य के शरीर अर्थात् भाषा, शैली, छन्द,

---

१. 'In it (Authentic epic) the students discover not the mind of one skilful artist only, but the minds of many previous makers.'

M. Dixon English Epic and Heroic Poetry Page 27.

२. 'Ths first (authentic) epics are intended for recitations, the literary epic is meant to be read'.

L. Abercrombic. The Epic Page 39.

३. 'In the first place, a poem constructed out of ballads composed some how or other by the folk, ought to be more natural than a work of deliberate art–a literary epic'...

L. Abercrombic–The Epic Page 28.

अलंकार की ओर अधिक होता है। साहित्यिक महाकाव्यों का निर्माण प्राचीन विकसनशील महाकाव्यों के आदर्श पर ही किया जाता है[1]।

विकसनशील महाकाव्यों की कथावस्तु तथा काव्यरूढ़ियो को कलात्मक रूप देकर स्वीकार किया जाता है। वर्जिल ने होमर का अनुकरण किया। उसने अपने इनीड में 'होमर' की कथावस्तु, काव्यरूढ़ियो अर्थात् होमर के युद्धतत्व, रोमांचकतत्व और साहसपूर्ण यात्राओ के वर्णन के मिश्रित रूप को अपना लिया है। होमर की यूनानी भावनाओ को इनीड में रोमन राष्ट्रीय भावना के रंग मे डुबोकर चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त होमर के अलौकिक और अतिप्राकृत तत्वों का भी वर्जिल ने अनुकरण किया है। होमर के सेना, अस्त्र, शस्त्र, खेल-कूद आदि का भी वर्णन इनीड में एक-सा ही है। इतना साम्य होने पर भी वर्जिल का इनीड काव्य अलंकृत काव्य है। क्योंकि वर्जिल के काव्य की मूल प्रेरणा, वातावरण, शैली होमर से भिन्न है। फिर भी मूल आधार होमर ही है। एक पाश्चात्य विद्वान लेखक के मत मे तो यदि आज होमर का काव्य नष्ट हो जाता तो सम्भवत साहित्यिक या अलंकृत महाकाव्यो का निर्माण भी रुक जाता[2]। गत पृष्ठो मे बताया है कि संस्कृत महाकाव्य भी रघुवंश, कुमारसंभव, किरात, माघ, नैषध आदि प्राचीन विकसनशील महाप्रबन्धकाव्यों, रामायण, महाभारत आदि के आदर्श पर ही निर्मित हुए हैं और ये भी विदग्ध महाकाव्य हैं।

---

१ 'I prefer to divide into Primary Epic and Secondary Epic The Secondary here means not 'the second rate' but what comes after, and grows out of the Primary'

A Preface to Paradise Lost, G S. Lewis, page 12.

२. Moreover, these (Iliad and Odyssey) truely great poems have been models for the epic in every Western age that know them, or the works that perpetuated their pattern (i. e. g. Virgil's Aeneid) It is probable that we should never have had the 'Artificial Epics' as they have been called, of Virgil, Lucan, Dante, Milton, and the rest, if the Homeric poems had been lost. It is even possible that such a loss would have prevented the 'grand style' of poetry from being consciously cultivated. Page 37.

'The outline of literature' edited by John Drinkwater Revised and Extended. Volume one 1940. London. page 37.

बावरा के शब्दों मे साहित्यिक महाकाव्यों का उद्देश्य सत्य का विवेचन और कलात्मक आनन्द प्रदान करना होता है[१]।

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार दोनो महाकाव्यों के (विकसनशील और अलंकृत) सामान्य लक्षण ये हैं—

एवरक्रम्बी के विचार मे महाकाव्य का कथानक केवल कल्पनाश्रित नहीं होना चाहिये। वह महत्वपूर्ण, लोकविश्रुत हो और व्यापक हो[२]।

२. महाकाव्य का नायक इतिहास विख्यात होना चाहिये। उसमे उदात्त गुणों का होना आवश्यक है। महाकाव्यों मे उसे विजयी अंकित करना चाहिये क्योंकि वह सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधि होता है और उसकी विजय मे ही सारे राष्ट्र की विजय निहित होती है[३]।

३. पाश्चात्यो ने महाकाव्य के कार्यकलाप का विस्तार करने के लिए तथा इसके कथानक को महत्वपूर्ण बनाने के लिये, अलौकिक या अतिप्राकृत शक्तियो का समावेश आवश्यक समझा है। इन अलौकिक शक्तियों की बहुलता, होमर के तथा मिल्टन के क्रमश. इलीयड, ओडेसी तथा पैराडाइज लॉस्ट मे है। ये अलौकिक शक्तिया मानव व्यापार मे प्रत्यक्ष रूप से भाग लेती हैं[४]।

---

१ From Virgil to Milton by C. M. Bowra p. 16,

२. 'The prime material of the epic poet, then must be real and not invented,..The reality of the central subject is of course, to be understood broadly It means that the story must be founded deep in the general experience of men'.

L Abercrombie. The Epic, page 55.

३. Epic for instance, one notices, usually depicts victorious hero. It cannot well do otherwise. For in such a poem the interest is rather national than individual. The hero represents a country or a cause which triumphs with his triumph whose honour would suffer from his defeat.

M. Dixon–English Epic and Heroic Poetry, page 21.

४. Other things, which epics have been required to contain besides much that is not worth mentioning are descent into hell and some supernatural machinery. Both of these are obviously devices for enlarging scope of action.

L. Abercrombie. The Epic page 65.

४. डिक्सन के विचार में महाकाव्य का कथानक विविध उपाख्यानों की सृष्टि करता विभिन्न गौण पात्रों की अवतारणा करता तथा विविध दृश्यों को चित्रित करता हुआ मंथर गति से आगे बढ़ता है और वह अपनी उदात्तता एवं समृद्धि से पाठक के हृदय को अभिभूत करता है। महाकाव्य की इस मंथर गति से उसके कथानक की विविध घटनाओं में एकान्विति कायम रहती है[१]।

५. महाकाव्य में आद्यन्त एक ही छन्द का प्रयोग होता है। उसकी भाषा, शैली उत्कर्षपूर्ण और गरिमादिगुणों से युक्त होती है। संक्षेप में महाकवि को भाषा, शैली, भावव्यञ्जना, कल्पना तथा वर्णन पर असाधारण अधिकार होना आवश्यक है[२]।

महाकाव्यविषयक पाश्चात्य और पौरस्त्य धारणाओं की तुलना

पाश्चात्य समीक्षकों के अनुसार महाकाव्य के मूलतत्वों की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

१. ये प्रायः सभी भारतीय महाकाव्य के लक्षणों से मिलती हैं। दोनों समीक्षकों के अनुसार महाकवि की प्रतिभा का, काव्य के अन्य रूपों में, श्रेष्ठतम काव्यरूप फल है—महाकाव्य। इस काव्य रूप के रचयिता संसार में इने-गिने ही रहते हैं[३]। पाश्चात्य और भारतीय (दोनों) समीक्षकों के अनुसार महाकाव्य का कथानक प्रख्यात या ऐतिहासिक होना चाहिये। जिसमें श्रेष्ठतर जीवन का चित्रण होना चाहिये। उसका आयाम विस्तृत रहना चाहिए। जिसमें विविध उपाख्यानों का समावेश, प्रधान कथा या घटना

---

१. 'Where as the epic action moves slowly with a kind of unhurried statelyness and can only achieve elevation, grandeur, by the mass or volume of its interests. It may seek to enlarge the volume of these interests by the introduction of numerous subsidiary characters or by the diversity of its minor incidents or by the variety of its episodes or by the romantic charm of its scenery by any or all of these.

M· Dixon–English Epic and Heroic Poetry Page 22.

२. L. Atecrombic. The Epic Page 61.

३. 'For the epic poet is the rarest kind of Artist'

The Epic and Essay L. Abecrombic Chapt. III. P. 51,

ध्वन्यालोक-अभिनवगुप्त प्र. उ. पृ. २९

को गतिशील बनाने के लिए होना चाहिये। उसमें वस्तु संगठन के सभी गुण होने चाहिए। पाश्चात्यों के अनुसार महाकाव्य का कार्य कुछ ही दिनों तक सीमित रहता है, जब कि भारतीय महाकाव्यों का कार्य किसी काल सीमा से बद्ध नहीं है। होमर के इलियड, ओडेसी जैसे विकसनशील महाकाव्यों में कथानक कुछ दिनों तक ही सीमित रहता है जब कि भारतीय रामायण, महाभारत, रघुवंश महाकाव्यों में अनेक वर्षों की घटनाओं को स्थान मिला है। महाकाव्य के नायक के विषय में भी पाश्चात्य और पौरस्त्य समीक्षकों की धारणा प्रायः समान ही है। दोनो के अनुसार महाकाव्य के पात्र, उसके कथानक और उद्देश्य के अनुरूप उदात्त तथा भद्र होने चाहिये। भारतीय काव्यशास्त्र मे तो नायक के गुणो की तथा उसकी विशेषताओ की एक लम्बी सूची दी गयी है जिसका तात्पर्य यही है कि नायक शरीर, हृदय और मस्तिष्क के सम्पूर्ण गुणो से सम्पन्न होना चाहिये। भारतीय आदर्श-निरूपिणी दृष्टि का ही यह उपर्युक्त गुणों की सूची फल है। वैसे भारतीय महाकाव्य के नायक निर्दोष नही हैं। वे सब मानवीय गुण, दोषों, दुर्बलताओं से युक्त हैं। और यह चित्रण स्वाभाविक भी है। राम और कृष्ण भी मानवीय दुर्बलताओ से मुक्त नही हैं। किन्तु भारतीय आदर्श-निरूपणी दृष्टि ने उन दुर्बलताओं को दबाकर. नायक का उत्कर्ष अवश्य कर दिया है। भामह, दण्डी आदि आचार्यों ने तो नायक का उत्कर्ष बताने के लिये प्रतिनायक के गुणों की प्रशंसा कर अन्त में उसका पराजय या वध बताना आवश्यक कहा है। महाकाव्य के कार्यान्त में असत् पर सत् की विजय बताकर नायक के उज्ज्वल चरित्र अंकित करना यहां आवश्यक कहा गया है किन्तु पाश्चात्य महाकाव्यों मे दृष्टिभेद होने से, नायक का चरित्र गिरा हुआ भी हो सकता है और अन्त में उसकी पराजय भी हो सकती है जैसा कि मिल्टन ने पैराडाइज लॉस्ट में अंकित किया है।

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों का प्रायः भाव-रस के विषय मे एकमत नही है। भारतीय महाकाव्यों में शृंगार, वीर और शान्त इन तीन रसो मे से एक ही रस अंगी, प्रधान होता है। जब कि पाश्चात्य महाकाव्यों मे केवल वीर भावना को ही प्रधानता दी गई है। इसीलिए पाश्चात्य आचार्यों ने महाकाव्य को वीरकाव्य की संज्ञा दी है। वास्तव में यह भेद भी संस्कृतिजन्य ही है। पाश्चात्य संस्कृति भौतिक संघर्षप्रधान है। इसीलिये महाकाव्यों का प्रधान तत्व युद्ध-संघर्ष है। पाश्चात्य महाकाव्यों के नायक होमर के इलियड मे एकिलिस हेक्टर बाहुबल युक्त वर्णित है जब कि भारतीय नायक बाहुबल की अपेक्षा पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और

मोक्ष की ओर उन्मुख होने से, धर्मबल, सत्यबल और औदार्य बल से युक्त वर्णित हैं। भारतीय महाप्रबन्ध काव्यों में पर्याप्त युद्ध व्यापार होते हुए भी वीर रस को महत्व नहीं दिया गया उन महाकाव्यों का अवसान शान्तरस में ही किया गया है। किन्तु अब पाश्चात्य अलंकृत महाकाव्यों में भी होमर के इलियड - ओडेसी में वर्णित वैयक्तिक वीरता के स्थान पर अन्य भावनाओं ने देशभक्ति और सामाजिक हित की भावना ने स्थान ले लिया है। और इसीलिये इन अलकृत महाकाव्यो में प्रेम के चित्रण की परम्परा दिखाई देती है।[१] पाश्चात्य महाकाव्यों में अलौकिक तत्व, अतिप्राकृत देवता, भूत, प्रेत तत्वों की बहुलता है। भारतीय आचार्यों ने जीवन के परम पुरुषार्थों की सिद्धि को महाकाव्य का प्रयोजन मान लेने से, महाकाव्य में इन अलौकिक, अतिप्राकृतिक तत्वों के प्रयोग पर औचित्य का नियन्त्रण करना आवश्यक कहा है। पाश्चात्य महाकाव्यों मे दैवी शक्ति, प्रत्यक्ष रूप से कार्य करती है किन्तु भारतीय महाकाव्यो मे, औचित्यानुसार, अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करती लक्षित होती है। होमर के इलियड, ओडेसी में देवता मानव कार्य व्यापार में प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करते हैं किन्तु भारतीय रामायण-महाभारत काव्यों में देवता अप्रत्यक्ष रूप से प्रसन्नता के सूचक पुष्पों की वृष्टि करते हैं।

पाश्चात्य महाकाव्यों मे जातीय भावनाओ की अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया गया है। होमर के काव्यो में यूनानी जातीय भावना अंकित है। वर्जिल ने उसके अनुकरण पर रोमन राष्ट्रीय भावना अभिव्यक्त की है। इस प्रकार की जातीय भावना की अभिव्यक्ति के लिये भारतीय आचार्यों ने कोई विशेष उल्लेख नही किया है। भारतीय महाकाव्य के प्रयोजन पुरुषार्थ चतुष्टय में तथा नायक के आदर्श चरित्र मे जातीय भावना स्वयमेव ही अभिव्यक्त हो उठती है। यहा नायक के विविध कार्य-कलापो से ही जातीय भावों की अभिव्यञ्जना हो जाती है। रामायण, महाभारत, कुमारसंभव, रघुवंश आदि काव्यों मे आर्य जाति का महान आदर्श व्यञ्जित है।

पाश्चात्य महाकाव्यों में आद्यन्त एक ही छन्द का प्रयोग विहित है पर भारतीय विद्वानों ने अनेक वृत्तो की शुभाशंसा की है। यहा किसी सर्ग मे एक वृत्त की योजना होती है और सर्गान्त मे वृत्त परिवर्तन की। और किसी-किसी सर्ग में तो नाना वृत्तो के प्रयोग किये जाते हैं। भाषा, शैली की दृष्टि से दोनों विद्वानो ने महाकाव्य के लिये उदात्त और अलकृत भाषा, शैली को उचित कहा है।

---

१ The Epic–L. Abercrombic P. 71.

दोनो विद्वान महाकाव्यों के लक्ष्य—प्रयोजन में एकमत हैं। पाश्चात्य विद्वानो के अनुसार काव्य का अन्तिम लक्ष्य आनन्द प्रदान करना है। भारतीय काव्यशास्त्र में जीवन के परम पुरुषार्थों की सिद्धि को ही महाकाव्य का प्रयोजन माना गया है और इन प्रयोजन चतुष्टय की परिणति भी अन्त में आनन्द में ही होती है। अन्य प्रयोजन तो दोनों के अनुसार गौण हैं—ज्ञानार्जन, सत्य का उद्घाटन आदि प्रधान प्रयोजन आनन्द की प्राप्ति ही है।

इस प्रकार दोनों—भारतीय और पाश्चात्य विद्वान महाकाव्य के विषय की व्यापकता, नायक की उदात्तता, जातीय आदर्शों की अभिव्यक्ति विविधतापूर्ण मानव जीवन का चित्रण भाषा और शैली की गरिमा एवं आनन्द को अन्तिम लक्ष्य स्वीकार करते हैं।

दोनों देशों के महाकाव्यों के मूलतत्वों का परीक्षण हमें इस निष्कर्ष पर ले आता है कि दोनो देशों के महाकाव्यों की रूपरेखा और रचना शैली में यत्र-तत्र अन्तर होने पर भी दोनों भारतीय और पाश्चात्य महाकाव्यों के रचना सिद्धान्तो में कोई विशेष अन्तर नहीं है दोनों के सिद्धान्तों में समानता है।

इसीलिये डिक्सन ने कहा है कि देश की भिन्नता से महाकाव्यों के रचना विधान में कोई अन्तर नहीं आता। चाहे वह पूर्व का हो या पश्चिम का, उत्तर का हो या दक्षिण का, उसकी आत्मा और प्रकृति सर्वत्र एक-सी ही रहती है अर्थात् मानव भाव सर्वत्र समान ही रहते हैं। और सच्चा महाकाव्य जहाँ कहीं भी निर्मित होगा, वह सदा वर्णनात्मक होगा, उसकी रचना सुव्यवस्थित होगी, उसके पात्र और कार्य महत् होंगे, उसकी शैली विषय की गरिमा के अनुसार भव्योदात्त होगी। उसका महत् कार्य और पात्र आदर्शोन्मुख होंगे। उसका कथानक विभिन्न उपकथाओं और वर्णनों से समृद्ध होगा[1]।

महाकाव्यों के लक्षणो के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि हमारे यहां महाकाव्य के बाह्याग विषयक और अस्थायी लक्षणो की चर्चा इतनी अधिक

---

१. Yet Heroic Poetry is one, whether of the East or West, the North or South, its blood and temper are the same and the true epic, wherever created, will be a narrative poem organic in structure, dealing with great actions and great characters in a style commensurate with the lordliness of its theme, which tends to idealise these characters and actions and to sustain and embellish its subject by means of episode and amplification

M. Dixon, English Epic and Heroic Poetry Page 24.

हुई है कि महाकाव्य की आत्मा और उसके स्थिर लक्षणों की अपेक्षा उसके बाह्य शरीर विषयक चित्र ही अधिक उभर आया है। इन अस्थायी लक्षणों की विपुलता से उसका वास्तविक रूप कुछ दब-सा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि महाकवियों ने लक्षणो का अन्धानुकरण कर महाकाव्य के उदात्त स्वरूप को कृत्रिम या अलंकृत रूप मे परिणत करना प्रारम्भ किया। रामायण और महाभारत की कथाओं पर आश्रित बाह्यांग विषयक लक्षणों से युक्त कोई भी काव्य महाकाव्य कहा जाने लगा। व्याकरण शास्त्र व साहित्य शास्त्र के उदाहरणों के निमित्त रचित भट्टिकाव्य या द्विसन्धान या त्रिसन्धान आदि शाब्दिक चमत्कार को बतलाने वाले तन्त्रबद्ध काव्यों को भी महाकाव्य कहा जाने लगा। महाभारत व भागवतान्तर्गत शिशुपालवध कथा का कोई भी गम्भीर अर्थ या किसी गम्भीर तत्व का प्रतीकात्मक चित्रण की योजना न करते हुए भी केवल बाह्याग की सजावट विविध शास्त्र के पाण्डित्य और कल्पना प्रदर्शन के आधार पर ही कवि माघ को महाकवि और उसके काव्य को महाकाव्य कहा जाता है। इसलिये वास्तविक महाकाव्य का स्वरूप ज्ञात करने के लिये हमे उसके अनिवार्य एव स्थिर तत्वों को भी देख लेना चाहिये। भारतीय विद्वानों के मत मे महाकाव्य के स्थिर तत्व ये हैं :—

१. चतुरोदात्त नायक, २. चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति, ३. रस निष्पत्ति,
४. प्रख्यात या इतिहास से उद्भूत और सत् पर आश्रित कथानक,
५. कथात्मकता और छन्दोबद्धता, ६. सर्गबद्धता, ७. संध्यंगो की योजना,
८. जीवन के विविध और समग्ररूप का चित्रण, ९. उदात्त शैली।

इन उपर्युक्त तत्वों को सभी आचार्यों ने स्वीकृत किया है। इन तत्वो का महाकाव्य के आन्तरिक आत्मा और बाह्यशरीर से सम्बन्ध है।

पाश्चात्यों के मत में महाकाव्य के स्थिर तत्व—

१. नाटकीय अन्विति से युक्त कोई घटना
२. महान् उद्देश्य
३. प्रभावान्विति
४. महान नायक

अन्य बाह्यशरीर विषयक तत्व वे ही हैं जो भारतीय स्थिर तत्व हैं।

सहायक ग्रन्थावली

१. ऋग्वेद संहिता
२. शुक्लयजुर्वेद संहिता
३. रेलिजन एण्ड फिलासफी आफ दी वेद—कीथ
४ शतपथ ब्राह्मण
५. अष्टाध्यायी
६. उपनिषद्—ऐतरेय आरण्यक
७ छान्दोग्य उपनिषद्
८ बृहदारण्यक उपनिषद्
९. तैत्तरीय उपनिषद्
१०. वाल्मीकि रामायण—नि० सा० प्रे०
११. महाभारत—चित्रशाला प्रेस, पूना
१२. वायुपुराण
१३. मत्स्यपुराण
१४. स्कन्दपुराण
१५. लिंगपुराण
१६ अग्निपुराण
१७ श्रीमद्भागवतपुराण
१८. शिवपुराण
१९. देवीभागवत
२०. विष्णुपुराण
२१. पद्मपुराण
२२. महिम्न स्तोत्र
२३. मनुस्मृति
२४. याज्ञवल्क्यस्मृति
२५. निर्णयसिन्धु
२६. चरक संहिता
२७. सुश्रुत संहिता
२८. तर्कभाषा
२९. सर्वदर्शन संग्रह—अभ्यंकर संपादित

३०. सांख्यकारिका—ईश्वरकृष्ण
३१. गीता
३२. पंचदशी—विद्यारण्य मुनि
३३ वाक्यपदीय—भर्तृहरि
३४. वेदान्तसार
३५. मीमांसा सूत्र—जैमिनि
३६ कठोपनिषद्
३७. मेदिनी कोश
३८. हलायुध कोष
३९. शब्दकल्पद्रुम
४०. कामसूत्र

लक्षण ग्रंथ

४१. काव्यमीमांसा—राजशेखर
४२. काव्यालकार सूत्र
४३. काव्यादर्श
४४. काव्यप्रकाश
४५. काव्यालकार—भामह
४६. काव्यालंकार—रुद्रट
४७. ध्वन्यालोक—लोचन टीका
४८. वाग्भटालंकार
४९. रसगंगाधर
५०. काव्यानुशासन—हेमचन्द्र
५१. वक्रोक्तिजीवितम्—कुन्तक
५२. दशरूपक
५३. साहित्यदर्पण
५४. शृङ्गारप्रकाश
५५ नाटयशास्त्र—काव्यमाला
५६. चन्द्रालोक
५७. अलंकारसर्वस्व—रुय्यक
५८. काव्यालकार—उद्भट
५९. नाटयशास्त्र—गायकवाड़ संस्करण
६०. सुवृत्ततिलकम्—डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री सम्पादित

६१. औचित्यविचारचर्चा—डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री
६२. अलंकार सुधानिधि—प्रतापरुद्रीयटीका, रत्नापण
६३. चित्रमीमांसा
६४. भट्टप्रभाकर रस प्रदीप
६५ रसमंजरी
६६. प्रतापरुद्र यशोभूषण—काव्यप्रकरण
६७. रसार्णवसार—शिंगभूपाल
६८. कवि कठाभरण
६९. काव्यकल्पलता—अमरसिंह
७०. भारतीय साहित्य शास्त्र—प० बलदेव उपाध्याय
७१. अभिनव भारती
७२. शुक्रनीति
७३. आर्यासप्तशती
७४ ईशान सहिता
७५. कविरहस्य—म० म० गंगानाथ झा
७६ व्यक्तिविवेक—महिमभट्ट

मराठी

७७. अभिनव काव्यप्रकाश—प्रो० जाग
७८. भारतीय साहित्य शास्त्र—ग० त्र० देशपांडे
७९ संस्कृत साहित्य का इतिहास—मेकडोनल अनुवाद पेंडसे बड़ौदा
८०. संस्कृत काव्याचे पञ्चप्राण—डॉ० वाटवे
८१. रस विमर्श—डॉ० वाटवे
८२. संस्कृत साहित्य का इतिहास—डॉ० काणे
८३. संशोधन मुक्तावलि भाग १, २, ३—म० म० मिराशी

हिन्दी

८४ प्रकृति और काव्य संस्कृत भाग—डॉ० रघुवंश
८५. रसमीमांसा—आ० रामचन्द्र शुक्ल
८६ चिन्तामणि—आ० रामचन्द्र शुक्ल
८७. संस्कृत कविदर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास
८८. संस्कृत साहित्य का इतिहास—कन्हैयालाल पोद्दार
८९. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास—डॉ० शम्भुनाथ सिंह
९०. प्राचीन साहित्य—रवीन्द्रनाथ ठाकुर
९१. कालिदास अनुवाद हिन्दी—म० म० मिराशी

९२. भारतीय संस्कृत—डॉ० देवराज
९३. सस्कृत का दार्शनिक विवेचन—डॉ० देवराज
९४. भारतीय इतिहास की रूपरेखा—जयचन्द्र विद्यालंकार
९५. काव्यदर्पण—पं० रामदहिन मिश्र
९६. अरस्तू का काव्यशास्त्र—सम्पादक डॉ० नगेन्द्र
९७. आधुनिक हिन्दी काव्य मे छन्द योजना
९८. महाभारत मीमासा हि० अनुवाद—चि० वैद्य, अनु० मा० सप्रे, पूना
९९. नैषध परिशीलन—डॉ० शुक्ल

पत्रिकायें

१०० अपभ्रंश भाषा और साहित्य—प्रो० हीरालाल जैन, काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५०
१०१ आलोचना संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा —डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१०२. मध्यभारत सन्देश—डॉ० भगवत् शरण उपाध्याय। काव्य और परम्परा
१०३. कल्याण—उपनिषद् अंक—गीता प्रेस

ENGLISH

104. History of Sanskrit Literature Vol 1, Dr. Das Gupta & S K. De.
105 History of Indian Literature, Vol. 1, Winternitz.
106. English Epic and Heroic Poetry, Dixion, London.
107. World Literature, Molton.
108. A Hand Book of Poetics, F. B Gummere.
109 The Epic. The Art and Craft of letters, L. Abercrombic.
110. The Book of the Epic, H. A. Guerber.
111. A History of Sanskrit Literature, A. B. Keith
112. Classical Sanskrit Literature, H. Krishnamachariar.
113. The Heroic Age in India N. K. Sidhanta.
114. From Viril to Milton, C. N. Nowra.
115. A preface to the Paradise Lost, G. S Lewis.
116. The Folk element in Hindu Culture, B. K. Sarkar
117. Introducion to old English Ballads, F. B. Gummere.
118. The Growth of literature, Chandwick Vol. 1.
119. Hindu God and Heroes, Lionet D. Barnett.

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११९	१२	भिन्न होते हैं।	भिन्न होते हैं, कहा है।
११९	१३	भाषा को	भाषाओं ने
१२०	२०	आदर्श मात्र	आदर्श पात्र
१२२	४-५	हुहुम, हुहुम	हुडुम हुडुम
१२७	३	एक सामाजिक	एक सामासिक
१२७	२०	भारतत्वाच्च	भारवत्वाच्च
१४०	२५	महाकाव्यो के	महाकवियो के
१७६	२३	आख्यान सूतो–	आख्यानों ने सूतो–
१७६	२६	इस कथानक की	मूल कथानक की
१७७	५	आदि और।	आदि पर्व–इसमें चन्द्रवंश का इतिहास तथा कौरव और पाण्डवों की उत्पत्ति का वर्णन है।
१८४	५	पृथ्वीराज	पृथ्वीराज विजय
१८५	६ (टि०)	महाकाव्य	महाभाष्य
१८८	७	तुच्छ प्रगति	पुच्छ प्रगति
१९०	४	कवि-वश	कवि-यश
१९०	१०	और उचित	और उक्ति
२१४	३	काव्य सृष्टि तिरोहित	काव्य सृष्टि से प्रकृति तिरोहित
२२३	१७	मन्द गति का	मन्द कवि का
२३३	४	(१) श्रुति (वेदी) (२) (स्मृति) (मनु आदि धर्मशास्त्र) (३) इतिहास (४) पुराण (५) प्रमाण विद्या (मीमांसा और छ प्रकार का तर्कशास्त्र)	श्रुति (वेद) (२) स्मृति (मनु आदि धर्मशास्त्र) (३) इतिहास (४) पुराण (५) प्रमाणविद्या –अर्थात् मीमांसा और न्याय, वैशेषिक।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३३	६	(६) राजसिद्धान्तत्रयी (अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र और कामशास्त्र)(७)लोक (८) विरचना (अन्याम्य) कवियों की रचनायें काव्य, नाटक महाकाव्यादि) (९) प्रकीर्णक (चौसठ कलाओ, आयुर्वेद,ज्योतिषि, वृक्षशास्त्र, अश्व, गज, लक्षण आदि) इनमे राजेश्वर ने चार और मिलाकर सोलह काव्यार्थ के स्रोत कहे हैं। (१) उचित संयोग (२) योक्तृ सयोग (३) उत्पाद्य सयोग (४) संयोग विकार[४]	(६) समयविद्या, अर्थात् अवान्तर दार्शनिक सिद्धान्त (शैव, वैष्णव, बौद्ध आदि) (७) राजसिद्धान्तत्रयी,अर्थात् अर्थशास्त्र, (८) नाट्यशास्त्र (९) कामसूत्र (१०) लौकिक (११) विरचना (१२)प्रकीर्णक इनमे राजशेखर ने चार और मिलाकर सोलह काव्यार्थ के स्रोत कहे हैं।
२४०	१२	अनिवार्य	अविचार्य
२४८	६	पण्डित	पाण्डित्य
२९६	१९	मौलिक	मौखिक
३००	१५-१६	मानव जगत देवताओ का उद्भव प्राकृतिक	मानव जगत का देवताओ के संसार से घनिष्ट संबन्ध है। ऋग्वेद के अधिकाश देवताओं का उद्भव प्राकृतिक